कहै कबीर दिवाना

मैं ही इक बौराना

11 मई, 1975 प्रात; श्री ओशो आश्रम पूना

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सत गुरु जुगत लखाई।
किरिया करम अचार मैं छाड़ा, छाड़ा तीरथ नहाना।
सगरी दुनिया भई सुनायी, मैं ही इक बौराना।।
ना मैं जानूं सेवा बंदगी ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरि सिंहासन ना मैं पुहुप चढ़ाई।।
ना हरि रीझै जब तप कीन्हे ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोति छाड़े ना पांचों के मारे।।
दाया रखि धरम को पाले जगसूं रहै उदासी।
अपना सा जिव सबको जाने ताहि मिले अनिवासी।।
सहे कसबद बदा को त्यागे छाड़े गरब गुमाना।
सत्य नाम ताहि को मिलि है कहै कबीर दिवाना।।

एक अंधेरी रात की भांति है तुम्हारा जीवन, जहां सूरज की किरण तो आना असंभ व है, मिट्टी के दिए की छोटी सी लौ भी नहीं है। इतना ही होता तब भी ठीक था, निरंतर अंधेरे में रहने के कारण तुमने अंधेरे को ही प्रकाश भी समझ लिया है। औ र जब कोई प्रकाश से दूर हो और अंधेरे को ही प्रकाश समझ ले तो सारी यात्रा अ वरुद्ध हो जाती है। इतना भी होश बना रहे कि मैं अंधकार में हूं, तो आदमी खोज ता है, तड़फता है प्रकाश के लिए, प्यास लेती है, टटोलता है, गिरता है, उठता है, मार्ग खोजता है, गुरु खोजता है, लेकिन जब कोई अंधकार को ही प्रकाश समझ ले तब सारी यात्रा समाप्त हो जाती है। मृत्यु को ही कोई समझ ले जीवन, तो फिर जीवन का द्वार बंद हो गया।

एक बहुत पुरानी यूनानी कथा है। एक सम्राट को ज्योतिषियों ने कहा कि इस वर्ष पै दा होने वाले बच्चों में से कोई एक तेरे जीवन का घाती होगा।

ऐसी बहुत कहानियां हैं संसार के सभी देशों में। कृष्ण के साथ भी ऐसी कहानी जोड़ ी है और जीसस के साथ भी है कहानी जोड़ी है। लेकिन यूनानी कहानी का कोई मु काबला नहीं।

सम्राट ने जितने बच्चे उस वर्ष पैदा हुए, सभी को कारागृह मग डाल दिया, मारा न हीं। क्योंकि सम्राट को लगा कि कोई एक इनमें से हत्या करेगा और सभी हत्या मैं करूं, यह महा-पातक हो जाएगा। छोटे-छोटे बच्चे बड़ी मजबूत जंजीरों में जीवन भर के लिए कोठरियों में डाल दिए गए। जंजीरों में जीवन भर के लिए कोठरियों में डा ल दिए गए। जंजीरों में बंधे-बंधे हुए ही वे बड़े हुए। उन्हें याद भी न रही कि कभी ऐसा भी कोई क्षण था जब जंजीरें उनके हाथ में न रही हों।

जंजीरों को उन्होंने जीवन के अंग की तरह ही पाया और जाना। उन्हें याद भी तो नहीं हो सकती थी, कि कभी वे मुक्त थे। गुलामी ही जीवन थी, और इसीलिए उन्हें कभी गुलामी अखरी नहीं। क्योंकि तुलना हो तो तकलीफ होती है। तुलना का कोई

उपाय ही न था। गुलाम ही वे पैदा हुए थे, गुलाम ही वे बड़े हुए थे। गुलामी ही उनका सार-सर्वस्थ थी। तुलना न थी स्वतंत्रता की। और दीवारों से बंध थे वे, भयंकर मजबूत जंजीरों से।

और उनकी आंखें अंधकार की इतनी आधीन हो गई थी कि वे पीछे लौटकर भी नहीं देख सकते थे, जहां प्रकाश का जगत था। प्रकाश कष्ट देने लगा था। अंधेरे से इतनी राजी हो गए थे, कि अब प्रकाश से राजी नहीं हो पाती थी आंखें। सिर्फ अंधेरे में ही आंख खुलती थीं, प्रकाश में तो बंद हो जाती थीं।

तुमने भी देखा होगा, कभी घर के शांत स्थान से भरी दुपहरी में बाहर आ जाओ, आंख तिलमिला जाती है। छोटे बच्चे पैदा होते हैं, नौ महीने अंधकार में रहते हैं मां के पेट में। प्रकाश की एक किरण भी वहां नहीं पहुंचती।

और जब बच्चा पैदा होता है, तब नासमझ डाक्टरों का कोई अंत नहीं है। बच्चा पैदा होता है अस्पताल में, वहां से इतना प्रकाश रखते हैं, कि बच्चे की आंखें तिलमिला जाती हैं। और सदा के लिए आंखों को भयंकर चोट पहुंच जाती है। बच्चे को पैदा होना चाहिए मोमबत्ती के प्रकाश में। वहां हजार-हजार कैंडल के बल्ब लगाने की जरूरत नहीं है। दुनिया में जो इतनी कमजोर आंखें हैं, उनमें से पचास प्रतिशत के लिए अस्पताल का डाक्टर जिम्मेवार है।

उसको सुविधा होती है ज्यादा प्रकाश में। वह देख पाता है, क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। क्या करना है, क्या नहीं करना। लेकिन उसकी सुविधा का सवाल नहीं है, सुविधा तो बच्चों की है।

जो जीवन भर रहे हैं अंधकार में, नौ महीने नहीं, पूरे जीवन, वे पीछे लौटकर भी नहीं देख सकते थे। वे दीवाल की तरफ ही देखते थे। राह पर चलते लोगों, खिड़की-द्वार के पास से गुजरते लोगों की छायाएं बनती थीं सामने दीवाल पर। वे समझते थे, वे छायाएं सत्य है। यही असली लोग हैं। उस छाया को ही वे जगत समझते थे।

छाया के इस जगत को ही हिंदुओं ने माया कहा है। असली तो दिखाई नहीं पड़ता, असली का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। असली को देखने के लिए आंख चाहिए--समर्थ आंख, जो प्रकाश में खुल सके। जो सूरज के सामने-सामने हो सके। अंधेरे की आदी आंख सत्य को नहीं देख सकती। सत्य ढंका हुआ नहीं है। सत्य तो प्रकट है, उघड़ा हुआ है। तुम्हारी आंख कमजोर है और सत्य को न देख पाएगी।

धीरे-धीरे उन्होंने पीछे लौट कर देखना ही बंद कर दिया। पीछे लौट कर देखने का मतलब यह था, आंख में आंसू आ जाएं। वह पीड़ा का जगत था।

तुमने भी सत्य को देखना बंद कर दिया है। और जब भी कोई तुम्हें सत्य दिखा देता है तो पीड़ा होती है। आनंद जन्मता नहीं, कष्ट होता है। जब भी कहीं कोई सत्य कह देता है तो कष्ट ही होता है।

लेकिन एक आदमी ने हिम्मत की। क्योंकि उसे शक होने लगा। ये छायाएं छायाएं नहीं हैं। क्योंकि इनसे बोलो तो ये उत्तर नहीं देती। इन्हें छुओ, तो कुछ भी हाथ नहीं

आता। इन्हीं पकड़ो तो कुछ पकड़ में नहीं आता। एक आदमी को शक होने लगा। कोई मनीषी, कोई बुद्ध!

उस आदमी ने धीरे-धीरे पीछे देखने का अभ्यास शुरू किया। वर्षों लग गए। बड़ा कष्ट हुआ। जब भी पीछे देखता, आंखें तिलमिला जातीं। आंसू गिरते। लेकिन उसने अभ्यास जारी रखा। वह बड़ी तपश्चर्या थी। फिर धीरे-धीरे आंखें राजी होने लगीं।

और तब वह चकित हुआ, कि हम किसी कारागृह में पड़े हैं, और हमने छायाओं को सत्य समझ लिया है। वह पीछे देखने में समर्थ हो गया। उसकी गर्दन मुड़ने लगी और उसकी आंखें देखने लगीं बाहर के रंग, वृक्ष और वृक्षों में खिले फूल, राह से गुजरते लोग। रंगीन थी दुनिया काफी। छायाएं बिलकुल रंगहीन थीं, उदास थीं। बाहर उत्सव था। छायाओं में कोई उत्सव पकड़ में नहीं आता था। बच्चे नाचते गाते निकलते थे। छायाएं तो बिलकुल चुप थीं। वह वाणी न थी, वहां मुखरता न थी—बाहर। पीछे छुपा हुआ असली जगत था।

उस आदमी ने धीरे-धीरे इसकी चर्चा दूसरे कैदियों से शुरू की। बाकी कैदी हंसने लगे, कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। हम तो सदा से यही सुनते आए हैं कि यही सत्य है, जो सामने है। और हम तो पीछे मुड़ कर देखते हैं तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता, सिवाय अंधकार के। जब आंख बंद हो जाए तो सिवाय अंधकार के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

जरूरी नहीं है कि अंधकार हो। हो सकता है, सिर्फ आंख बंद हो जाती हो। लेकिन दोष कोई अपने ऊपर कभी लेता नहीं। तो कोई यह तो मानता नहीं कि मेरी आंख बंद हो सकती है, इसलिए अंधकार है। लोग मानते हैं, अंधकार है, इसलिए अंधकार है। मेरी आंख और बंद हो सकती है? यह कभी संभव है? हम अपनी आंख तो सदा खुली मानते हैं। अपना हृदय तो सदा प्रेम से भरपूर मानते हैं। अपनी प्रज्ञा तो सदा प्रज्वलित मानते हैं। अपनी आत्मा तो सदा जाग्रत मानते हैं। और वही हमारी भ्रांतियों की जड़ है।

फिर कैदियों की संख्या बहुत थी, वह अकेला था। लोकतंत्र कैदियों के पक्ष में था। बहुमत उनका था। और उन्होंने कहा कि अगर ऐसा ही है तो सबकी सलाह ले ली जाए। एक भी मत मिला नहीं उस आदमी को। और लोग हंसे, खूब मजाक की उन्होंने। धीरे-धीरे उस आदमी को पागल मानने लगे।

वही कबीर कह रहे हैं,

'सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।'

उस आदमी को अगर कबीर का पद याद होता तो उसने भी कहा होता सब लोग सयाने, सिर्फ मैं एक पागल। और सिर्फ वह एक ही सयाना था। लेकिन जहां अंधों की भीड़ हो वहां आंखवाला पागल हो जाता है। जहां मूढ़ों की भीड़ हो वहां बुद्धिमान पागल हो जाता है। जहां बीमारी स्वास्थ्य समझी जाती हो, वहां स्वस्थ आदमी का लोग इलाज कर देंगे पकड़ कर।

स्वाभाविक है। क्योंकि लोग अपने को मापदंड समझते हैं। और फिर जब बहुमत उन के साथ हो, बहुमत ही नहीं, सर्वमत उनके साथ हो...उस एक आदमी को छोड़ कर सभी उनके साथ थे। तो संदेह ही कैसे पैदा हो? लोग हंसे, मजाक की, उसे पागल समझा, उसका तिरस्कार किया, उसकी अपेक्षा की।

धीरे-धीरे लोगों ने उससे बातचीत बंद कर दी। क्योंकि वह बेचैनी पैदा करता था। बेचैनी पैदा करता था क्योंकि कभी-कभी संदेह उनके मन में भी उठ आता था कि हो न हो, कहीं यह आदमी सच न हो। क्योंकि अगर यह आदमी सच है तो उनकी पूरी जिंदगी बेकार गई। बड़ा दांव है। यह आदमी गलत होना ही चाहिए। नहीं तो उनकी पूरी जिंदगी गलत होगी।

और कोई भी आदमी नहीं चाहता कि उसकी पूरी जिंदगी गलत सिद्ध हो। क्योंकि इ सका अर्थ हुआ तुमने यूं ही गंवाया। तुमने अवसर खो दिया। तुम मूढ़ हो, अज्ञानी ह ो, मूर्च्छित हो। अहंकार यह मानने को तैयार हनीं होता। अहंकार कहता है मुझसे ज्ञ ानी और कौन? मुझसे समझदार और कौन? ऐसे अहंकार रक्षा करता अज्ञान की। अहंकार रक्षक है, अज्ञान के ऊपर। उसके रहते अज्ञान का किला पराजित न होगा, तोड़ा न जा सकेगा।

धीरे-धीरे उन्होंने इसकी उपेक्षा कर दी, क्योंकि उससे बात करनी भी बेचैनी थी। क योंकि वह हमेशा रंगों की बात करता, रंग उनमें से किसी ने भी देखे न थे। वह ह मेशा पीछे चलनेवाले संगीत की बात करता। संगीत उनमें से किसी ने भी सुना था। उनकी सब इंद्रियां पंगु हो गई थीं।और धीरे-धीरे वह आदमी कहने लगा, कि ये जं जीरें हैं जिनको तुम आभूषण समझे हुए हो। आखिर कैदी को भी सांत्वना तो चाहि ए। तो वह जंजीर को आभूषण समझ लेता है। आखिर कैदी को भी जीना तो है। त ो कारागृह को घर समझ लेता है। न केवल समझ लेता है बल्कि भीतर से सजा भी लेता है, ताकि पूरा भरोसा आ जाए, अपना घर है।

जंजीरों पर कैदियों ने फूल पत्तियां बना ली थीं। जंजीरों को घिस-घिस कर वे साफ किया करते थे। क्योंकि जिसकी जंजीर जितन चमकदार होती, वह उतना संपत्तिशा ली समझा जाता था। जिसकी जंजीर जितनी मजबूत होती, वह उतना धनी समझ जाता था। जिसकी जंजीर जितनी वजनी होती, उसकी उतनी ही संपदा थी स्वभावत :। अगर जंजीर कमजोर होने लगे तो वे उसे सुधार लेते थे। क्योंकि जंजीर ही उन का जीवन थी। और जंजीर को उन्होंने जंजीर कभी माना न था, वह आभूषण था। वही तो एकमात्र थी उनके शरीर पर। और तो कोई सजावट न थी।

धीरे-धीरे इन आदमी को समझ में आने लगा कि ये आभूषण नहीं, जंजीरें हैं। क्यों क उसे स्वतंत्रता के जगत की थोड़ी झलक मिलनी शुरू हो गई। एक किरण उतर आई अंधेरे में। सूरज का संदेश आ गया। अब इस अंधेरे घर में, इस अंधेरे कारागृह में रहना मुश्किल हो गया। धीरे-धीरे उसने जंजीर को तोड़ने की व्यवस्था कर ली।

असली सवाल तो भीतर की जंजीर का टूट जाना है। बाहर की जंजीर बहुत कमजो
र है। अगर तुम बंध हो, तो भीतर की जंजीर से बंध हो। भीतर की जंजीर है, जं
जीर को आभूषण समझना। एक बार उसे समझ में आ गया कि आभूषण नहीं है, अ
ाधी तो मुक्ति हो ही गई। उसी दिन से उसने जंजीरों को घिसना बंद कर दिया, सा
फ करना बंद कर दिया, सजाना बंद कर दिया। लोग समझने लगे कि जीवन से उद
ास हो गया है।

जैसा कि आम तौर से संन्यासी के लिए संसारी समझते हैं। उदास हो गया बेचारा।
उनके भाव में एक बेचारेपन की प्रतीति होती है। जिंदगी में हार गया। शायद पाया
कि अंगूर खट्टे हैं। छलांग पूरी न हो सकी। कमजोर था। हम पहले से ही जानते थे
कि कमजोर है। आज नहीं कल थक जाएगा और संघर्ष से अलग हो जाएगा। काय
र है। जंजीरें, जो कि आभूषण हैं, इनको सजाना बंद कर दिया। ऐसा ही बे सजाय
ा रह रहा है। आसपास की दीवाल को साफ-सुथरा करना भी बंद कर दिया।अब पा
गलपन बिलकुल पूरा हो गया है।

लेकिन उस आदमी ने धीरे-धीरे जंजीरें तोड़ने के उपाय खोज लिए। भीतर की जंजी
रें टूट जाए तो बाहर का कारागृह टूटा ही हुआ है। आधा तो गिर ही गया। बुनिया
दी तो हिल ही गई। और पीछे के जगत का, छिपे हुए जगत का संदेश आ जाए...त
ब एक अनंत पुकार उसे पुकारने लगी। एक प्यास उसके रोएं-रोएं में समा गई—अस
ली जगत में प्रवेश करना है।

उसने जंजीरें तोड़ी। जब प्यास प्रगाढ़ हो, तो कमजोर से कमजोर आदमी शक्तिशाली
हो जाता है। जब प्यास प्रगाढ़ न हो, तो कमजोर से कमजोर जंजीरें भी बड़ी मजबू
त मालूम पड़ती हैं।

प्यास बढ़ती चली गई। पीछे का जगत ज्यादा साफ होने लगा। आंख जितनी सिर्फ ह
ोने लगी, उतना ही सत्य का जगत साफ होने लगा। एक दिन उसने जंजीरें तोड़ दीं
और वह उस कारागृह से निकल भागा। उसके आह्लाद का अंत नहीं था। वह नाच
रहा था। सूरज, पक्षी, वृक्षों में खिले फूल! बस वास्तविक लोग छायाएं नहीं। संगीत
! रंग! सुगंध! वह आह्लादित था। वह नाच रहा था।

लेकिन कारागृह में अफवाहें उड़ गई, कि हम जानते थे आज नहीं कल, जीवन के
संघर्ष से भाग जाएगा—'एस्केपिस्ट,' पलायनवादी, भगोड़ा! संसारी हमेशा संन्यासी को
यही कहता रहा है। उसने साधारण संन्यासी को कहा हो, ऐसा नहीं है। महावीर अ
ौर बुद्ध को भी भगोड़ा ही कहा है। भाग गए!

यह अपने को बचाने की तरकीब है। यह अपने का सांत्वना देने की तरकीब है कि
हम कायर नहीं। और तुम कायर हो, इसलिए तुम वहां हो, जहां तुम हो। यह अपने
को समझाने की तरकीब है। हम कोई पलायनवादी नहीं हैं। हम तो जीवन के संघ
र्ष में जूझेंगे।

और तुम्हें जीवन का अभी पता ही नहीं। और जिससे तुम जूझ रहे हो वह केवल छ
ाया का जगत है। असली जूझनेवाले जीवन से जूझते हैं। तुम जिससे जूझ रहे हो, अ

ौर जिससे लड़ रहे हो, वह सपनों से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। और उसका अस्तित्व तुम्हारी नींद में है। उसका अस्तित्व और कहीं भी नहीं है। वह तुम्हारा सपना है। व ह तुम्हारा अंधकार है। वह तुम्हारी गहन निद्रा और मूर्च्छा है।

लेकिन अगर सब लोग सोए हों और एक जग जाए—भले वे सोए लोग भयंकर दुखद स्वप्न देखते हों। देखते हों, कि नर्क में सड़ाए जा रहे हैं, गलाए जा रहे हैं, तो भी वे सोए हुए लोग कहेंगे, भगोड़ा! भाग गया! जीवन के संघर्ष को छोड़ गया। करव ट ले लेंगे, फिर अपने सपने में खो जाएंगे।

थोड़े दिन चर्चा रही फिर लोग भूल गए। लेकिन उस आदमी जीवन में एक नई बेचै नी का प्रारंभ हुआ। जितना उसने बाहर की मुक्ति व आनंद को जाना, जितना उस ने सत्य को अनुभव किया, उतनी ही नई महा-करुणा, एक दुर्दम्य करुणा पैदा होने लगी, लौट जाए कारागृह में और खबर दे दे उन सब लोगों को थोड़े दिन तो ऐसे उसने समझाया अपने को, कि वे सुनेंगे नहीं। और बहुमत उनका है। वे फिर हंसेंगे, वे भरोसा नहीं करेंगे। क्योंकि अंधकार में रहते-रहते लोग श्रद्धा भूल ही जाते हैं। श्र द्धा तो प्रकाशवान चित्त का लक्षण है। अंधेरे में रहने वाले लोग संदेह में निष्णात हो जाते हैं। संदेह अंधकार का हिस्सा है; श्रद्धा प्रकाश का। इसलिए तो समस्त ज्ञानियों ने श्रद्धा को सेतु माना है, कि अगर अंधकार से प्रकाश की ओर आना हो, तो श्र द्धा के सेतु से गुजरना पड़ेगा।

एक भरोसा चाहिए। भरोसे का मतलब इतना ही है, कि जो मैंने नहीं जाना है वह भी हो सकता है। अगर तुम यह सोचते हो कि तुमने जो जाना है बस उतना ही है, तब तो यात्रा का कोई सवाल ही नहीं है। बा समाप्त हो गई। बुद्ध आकर सिर पी टें और कहें कि मैंने थोड़ा सा ज्यादा जाना है तुमसे, तो भी तुम मानोगे नहीं।

संदेह का इतना ही अर्थ है, कि मुझ पर सत्य समाप्त हो गया। मैंने जो जान लिया, वही सत्य की भी सीमा है। मेरा अनुभव और सत्य समान है। यह संदेह है। श्रद्धा का अर्थ है, मेरा अनुभव छोटा है, सत्य बहुत बड़ा हो सकता है। मेरा छोटा आंगन है। आंगन पूरा आकाश नहीं। बड़ा आकाश है। मेरी छोटी खिड़की है। लेकिन खिड़की की ढांचा आकाश का ढांचा नहीं। माना कि मैं खिड़की से ही झांक कर देखता हूं, तो भी खिड़की आकाश नहीं है।

इतना जिसे खयाल आ जाए, जिसे संदेह पर संदेह आ जाए, वह श्रद्धावान हो जाता है। वह बड़े से बड़ा संदेह है, ध्यान रखना। जिसे संदेह पर संदेह आ जाए, जो अप ने संदेह की प्रवृत्ति के प्रति संदिग्ध हो जाए, उसके जीवन में श्रद्धा का आविर्भाव हो जाता है।

श्रद्धा का अर्थ है, जानने को बहुत कुछ शेष है। मैंने कंकड़-पत्थर बीन लिए हैं समुद्र के तट पर, लेकिन इससे समुद्र का तट समाप्त नहीं हो गया। मैंने मुट्ठी भर रेत इ कट्ठी कर ली है, लेकिन सागर के किनारों पर अनंत रेत शेष है। मेरी मुट्ठी की सीम ा है, सागर की सीमा नहीं है। मेरी बुद्धि की सीमा है, सत्य की सीमा नहीं। मैं कि तना ही पाता चला जाऊं तो भी पाने को सदा शेष रह जाएगा।

यही तो अर्थ है परमात्मा को अनंत कहने का। तुम कितना ही पाओ, वह फिर भी पाने को शेष रहेगा। तुम पा-पा कर थक जाओगे, वह नहीं चूकेगा। तुम्हारा पात्र भर जाएगा, ऊपर से बहने लगेगा, लेकिन उसके मेघों से वर्षा जारी रहेगी।

हम कण मात्र है। जब कण का खयाल हो जाता है कि मैं सब, वहीं श्रद्धा समाप्त हो जाती है। श्रद्धा अज्ञात की तरफ पैर उठाने के साहस का नाम है। अनजान में प्रवेश, अज्ञात में प्रवेश; जहां मैं कभी नहीं गया, जो मैं कभी नहीं हुआ, वह भी हो सकता है।

उस आदमी के मन में बहुत बार करुणा उठने लगी, आनंद का अनिवार्य लक्षण है करुणा।

जब बुद्ध से किसी ने पूछा कि समाधि की पूर्ण परिभाषा क्या है। तो उन्होंने कहा, कि परिभाषा तो मुझे पता नहीं। लेकिन दो बातें निश्चित हैं--महाज्ञान, महाकरुणा। पूछनेवाले ने कहा, महाराज कह देने से क्या काफी न होगा? बुद्ध ने कहा, नहीं। वह अधूरा होगा। वह सिक्के का एक पहलू है। दूसरा पहलू है, महाकरुणा। जब भी ज्ञान का जन्म होता है, तभी करुणा का जन्म हो जाता है। क्यों? क्योंकि अब तक जो जीवन ऊर्जा वासना बन रही थी वह कहां जाएगी? ऊर्जा नष्ट नहीं होती। अभी धन के पीछे दौड़ती थी, पद के पीछे दौड़ती थी, महत्वाकांक्षा थीं अनेक। अनेक-अनेक तरह के भोगों की कामना थी, सारी ऊर्जा वहां संलग्न थी। प्रकाश के जलते, ज्ञान के उदय होते वह सार अंधकार, वह भोग, लिप्सा, महत्वाकांक्षा ऐसे ही विलीन हो जाते हैं, जैसे दीए के जलते अंधकार।

ऊर्जा का क्या होगा? जो ऊर्जा काम-वासना बनी थी, जो ऊर्जा क्रोध बनती थी, जो ऊर्जा ईर्ष्या बनती थी, मत्सर बनती थी, उस ऊर्जा का, उस शुद्ध शक्ति का क्या होगा? वह सारी शक्ति करुणा बन जाती है। महाकरुणा का जन्म होता है। और वह करुणा तुम्हारी काम-वासना से ज्यादा अदम्य होती है। क्योंकि तुम्हारी काम-वासना और बहुत सी वासनाओं के साथ है। महत्वाकांक्षा है, धन भी पाना है। तुम काम-वासना को स्थगित भी कर देते हो कि ठहर जाओ दस वर्ष; धन कमा लें ठीक से, फिर शादी करेंगे।

धन की वासना अकेली नहीं है। पद की वासना भी है। तुम पद पाने के लिए धन का भी त्याग कर देते हो। चुनाव में लगा देते हो सब धन, कि किसी तरह मंत्री हो जाओ। लेकिन मंत्री की कामना भी पूरी कामना नहीं है। मंत्री होकर फिर तुम स्त्रियों के पीछे भागने लगते हो। मंत्री-पद भी दांव पर लग जाता है।

तुम्हारी सभी कामनाएं अधूरी-अधूरी हैं। हजार कामनाएं हैं और अभी में ऊर्जा बंटी है। लेकिन जब सभी कामनाएं शून्य हो जाती हैं, सारी ऊर्जा मुक्त होती है। तुम एक अदम्य ऊर्जा के स्रोत हो जाते हो। एक प्रगाढ़ शक्ति! उस शक्ति का क्या होगा? जब भी आनंद का जन्म होता है, समाधि का जन्म होता है, सत्य का आकाश मिलता है, तब तुम तत्क्षण पाते हो कि वे जो पीछे रह गए, उन्हें अभी इसी खुले आकाश में ले आना है। तब तुम्हारा सारा जीवन जो बंध हैं उन्हें मुक्त करने में लग जा

ता है। जो कारागृह में हैं, उन्हें खुला आकाश देने में लग जाता है। जिनके पंख जंग खा गए हैं, उनके पंखों को सुधारने में लग जाता है कि वे फिर से उड़ सकें। जिन के पैर जाम हो गए हैं, उनके पैरों को फिर जीवन देने में लग जाता है। ताकि लंग. डे चलें और अंधे देखें और बहरे सुन सकें।

और तुम लंगड़े हो। तुम चले नहीं। यात्रा तुमने बहुत की है लेकिन जब तक तीर्थया त्रा न हो, तब तक कोई यात्रा यात्रा हनीं है। तुम बहरे हो। तुमने सुना बहुत है, ले किन वासना के सिवाय कोई स्वर तुमने नहीं सुना। और वासना भी कोई संगीत है! वासना तो एक शोरगुल है जिसमें संगीत बिलकुल ही नहीं है। वासना तो एक विसं गीत है, जिससे तुम तनते हो, चिंतित होते हो, बेचैन-परेशान होते हो। संगीत तो वह है जो तुम्हें भर दे उस अनंत आनंद में से, जहां सब बेचैनी खो जाती है, जहां चैन की बांसुरी बजती है। और ऐसी बांसुरी, कि उसका फिर कभी अंत नहीं आता। तुम अंधे हो। तुमने बहुत कुछ देखा है लेकिन जो देखा है वह सब ऊपर की रूपरेखा है। भीतर का सत्य तुम नहीं देख पाते। शरीर दिखता है, आत्मा नहीं दिखती। पद ार्थ दिखता है, परमात्मा नहीं दिखता। दृश्य दिखाई पड़ता है, अदृश्य नहीं दिखाई प. डता। और अदृश्य ही आधार है दृश्य का। परमात्मा ही आधार है पदार्थ का। और आत्मा के बिना क्षणभर भी तो शरीर जीता नहीं। इधर उड़ गया पंछी, उधर शरीर जलाने को लोग ले चलें। फिर भी तुमने सिर्फ शरीर देखा है और आत्मा नहीं देखी । अंधे हो तुम, पंगु हो तुम।

जिसके जीवन में समाधि खिलती है वह भागता है उनको जगाने, जो सोए हैं। लेकि न उसे भी कठिनाई खड़ी होती है।

कुछ दिन तो उसने आपको रोका। क्योंकि वह जानता है कि वे लोग हंसेंगे। क्योंकि वह जानता है कि वे सुनेंगे नहीं। क्योंकि वह जानता है, कि जो सदा से हुआ है, व ही फिर होगा। पत्थर और कांटों से स्वागत होगा, फूलमालाएं मिलने को नहीं। लेकि न अदम्य है करुणा। उसे रोका नहीं जा सकता।

कथा है, कि बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो सात दिन तक वे चुप बैठे रहे। बड़ी मीठी कथा है। क्या करते रहे चुप बैठ कर? बहुत बार अदम्य वेग से उठी करुणा, कि जाए। बहुत लोग भटकते हैं। सारे लोग भटकते हैं। जो मुझे मिल गया है वह बांट दूं । लेकिन कोई चीज रोकती रही...कोई चीज रोकती रही।

बुद्ध जैसा व्यक्ति भी हिम्मत न जुटा सका। तुम्हारे सामने बुद्ध भी हारे हुए हैं। बुद्ध को भी डर लगा। जिसको अब कोई डर नहीं बचा है, जिसको मृत्यु का भय नहीं। वह भी तुमसे डरता है। जो यम से नहीं डरता, वह तुमसे डरता है।

सात दिन तक बुद्ध ने प्रतिरोध किया अपना ही। सब तरह से रोका, कि नहीं। अपने को समझाया, कि जो जागनेवाले हैं वे मेरे बिना भी जाग जाएंगे। और जो नहीं जा गनेवाले हैं, मैं लाख सिर पटकूं, वे सुनेंगे नहीं। फिर क्यों व्यर्थ मेहनत करूं?

कथा है, कि आकाश के देवता चिंतत हो गए। बड़ी बेचैनी फैल गई आकाश के देव ताओं में! बेचैनी यह, कि कभी करोड़-करोड़ वर्षों में कभी कोई एक व्यक्ति बुद्धत्व

को उपलब्ध होता है। और वह भी अगर चुप रह गया, तो जो भटकते हैं मार्ग पर उनका क्या होगा? जतो अंधेरे में प्रतीक्षा करते हैं, अनजानी प्रतीक्षा, उन्हें पता भी नहीं है। किसी का, जो मार्ग बताएगा। बतानेवाले का पत्थर से ही वे स्वागत करेंगे। लेकिन फिर अनंत-अनंत काल से खोजते तो हैं ही। भीतर कहीं कोई गहरे में छिपा हुआ बीज तो पड़ा ही है। न फूट जाता हो, ठीक भूमि न मिली हो, सूरज का प्रकाश न मिला हो, कोई पानी देनेवाला न मिला हो, कोई साज-संभाल करनेवाला न मिला हो। लेकिन बीज तो पड़ा ही है; उनका क्या होगा?

कथा है कि आकाश के देवता उतरे। बुद्ध के चरणों में उन्होंने सिर रखा और कहा, कि नहीं अब चुप न बैठें, उठें। बहुत देर अब वैसे ही हो गई।

देवता का अर्थ है, ऐसी चेतनाएं जो अत्यंत शुभ-परिणाम हैं। ऐसी चेतनाएं जिनके जीवन से अशुभ खो गया है, सिर्फ शुभ बचा है। अभी वे पूर्ण मुक्त नहीं हैं। क्योंकि जब शुभ भी खो जाएगा तभी पूर्ण मुक्ति होगी। देवता का अर्थ है शुद्धतम चेतनाएं, मुक्ततम नहीं। पहले अशुद्धि से दबी हुई चेतनाएं हैं, जिनको हम राक्षस कहें, असुर कहें। नारकीय योनि में पड़े हुए लोग कहें4 और फिर शुद्ध चेतनाएं हैं जो स्वर्ग में हैं, शांत हैं, शुभ-परिणाम हैं। किसी का बुरा नहीं चाहतीं, भला चाहती हैं; लेकिन चाह बाकी है। नरक में जो पड़े हैं उनके हाथ में जो जंजीरें हैं वह लोहे की हैं। स्वर्ग में जो पड़े हैं उनके हाथ में जो जंजीरें हैं वह सोने की हैं। हीरे माणिक से जड़ी हैं, पर जंजीरें हैं।

मुक्त वह है जिसमें न शुभ रहा, न अशुभ रहा। जिसकी लोहे की जंजीरें सोने की जंजीरें सब टूट गईं। मुक्त वह है, जिसका द्वंद्व समाप्त हो गया। जिसे भीतर दो न रहे। शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा, रात-दिन, स्वर्ग-नर्क, सुख-दुख सब खो गए।

देवता का अर्थ है, शुद्ध, सुखी चेतनाएं। निश्चित ही स्वभावतः उनके ही हृदय में कंपन पैदा होगा क्योंकि वे निकटतम हैं मुक्त पुरुषों के। नर्क में पड़े लोगों को पता भी न चला, कि कोई बुद्ध हो गया है।

पृथ्वी पर जो लोग हैं वे दोनों के बीच में हैं। न तो नर्क में हैं और न स्वर्ग में। वे त्रिशंकु की भांति हैं। शुभ-अशुभ दोनों में डोलते रहते हैं। सुबह देवता, घंटे भर बाद शैतान। घंटे भर बाद फिर देखो मुस्कुरा रहे हैं, अच्छे भले आदमी मालूम पड़ते हैं। और थोड़ी देर बाद किसी की गर्दन काट सकते हैं। पृथ्वी पर जो हैं, मध्य लोक जिसको ज्ञानियों ने कहा है, वे स्वर्ग और नर्क के बीच डोलते रहते हैं। एक पैर नर्क में और एक पैर स्वर्ग में। कहीं भी नहीं हैं वे। उनका होना नहीं है। इसलिए तो तुम्हें पता नहीं चलता कि तुम कौन हो? नर्क में ठीक पता चलता है लोगों को, कि कौन हैं। स्वर्ग में भी ठीक पता चलता है। कि कौन हैं। क्योंकि एक ही नाव पर सवार हैं।

जो शुभ की नाव पर सवार हैं उनको लगा, उनके प्राण कंप गए, कि बुद्ध चुप हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे चुप ही रह जाएं।

देवताओं ने पैर में सिर रखा। स्वयं ब्रह्मा ने कहा कि नहीं, आप बोलें। और देर हो जाएगी तो वाणी खो जाएगी। आप भीतर मत डूबते चले जाएं। आपने पा लिया लेकिन जिन्होंने नहीं पाया है, उन पर करुणा करें।

कहते हैं, बुद्ध ने कहा, कि जो पाने को हैं, जो पाने की चेष्टा में रत हैं वे पा ही लेंगे। मैंने पा लिया, वे भी पा लेंगे। वे भी मेरे जैसे हैं। थोड़ी देर-अबेर होगी पर इस अनंत काल में क्या देर क्या अबेर! घड़ी भर पहले, कि घड़ी भर बाद। एक जन्म पहले, कि एक जन्म बाद। क्या फर्क पड़ता है? मुझे क्यों परेशानी में डालते हो? और जो नहीं पाने को हैं—मेरे पहले बहुत बुद्ध पुरुष हो चुके हैं, उन सब ने उनके द्वार पर दस्तक दी है। उन्होंने द्वार भी खोला। नहीं कि उन्होंने द्वार नहीं खोला, वे नाराज भी हो गए, कि क्यों हमारी नींद तोड़ते हो? क्यों हमारी शांति में दखल देते हो? हम जैसे, ठीक हैं। क्यों हमें बेचैन करते हो? ये किस लोक की खबरें लोटे हो। यही लोक सब कुछ है। कोई और लोक नहीं है। उन्होंने श्रद्धा नहीं की। वे नहीं सुनेंगे। हजारों बुद्ध हार चुके हैं। मैं भी हार जाऊंगा। तुम मुझे क्यों परेशान करते हो?

देवताओं ने चिंतन किया, विचार किया कि कुछ तर्क निकालना ही पड़ेगा, कि बुद्ध को उनके बाहर ले आया। जाए। फिर वे सब विचार करके आए और उन्होंने कहा कि आप ठीक कहते हैं। कुछ हैं, जो आपके बिना भी पा लेंगे और कुछ हैं, जो आपके सहयोग से भी नहीं पाएंगे। लेकिन दोनों में मध्यम में भी कुछ हैं, जो आपके बिना न पा सकेंगे और आपके साथ पा लेंगे। उनकी संख्या बहुत न्यून होगी। समझ लो, कि एक ही आदमी पा सकेगा, तो भी...तो भी उपाय करने योग्य है। क्योंकि एक व्यक्ति का भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाना इतनी महान घटना है कि आप बैठे मत रहे।

बुद्ध के झुकना पड़ा। देवताओं के तर्क से नहीं; देवताओं के तर्क ने तो जो प्रतिरोध था, उसको भर तोड़ा। भीतर तो करुणा बहने को तैयार थी।

उस आदमी को भी तकलीफ हुई। बेचैनी होने लगी। कारागृह में जिनको छोड़ आया था उनकी याद आने लगी। वे ऐसे ही बंधे-बंधे समाप्त हो जाएंगे? उनका जीवन ऐसे ही अंधकार में पैदा हुआ, अंधकार में ही खो जाएगा? कभी उनकी आंखें प्रकाश न देख सकेंगी? वे छायाएं ही देखते रहेंगे दीवाल पर? वे जंजीरों को ही आभूषण मानते रहेंगे? उन्हें मुक्ति के पंख कभी भी न मिलेंगे?

नहीं। भारी होने लगा उसका मन। जैसे मेघ जब भर जाते हैं तो बरसते हैं, ऐसे भारी होने लगा उसका प्राण। बरसने को तत्पर होने लगा। जैसे फूल जब भरा जात है गंध से, तो खुल जाता है और गंध फेंक देता है, चारों लोक-लोकांतर में। ऐसे उसके प्राण भी खिलने को तत्पर होने लगे। कोई अवश प्रेरणा उसे खींचने लगी वापिस।

जानते हुए, वहां स्वागत नहीं होने का है, वह वापिस लौट आया कारागृह में। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, हमने पहले ही कहा था कि वहां कुछ भी नहीं है। सिर्फ छा

याएं हैं, जहां तुम जा रहे हो। आ गए वापिस? आ गई बुद्धि? रास्ते पर आ गई बुद्धि? और उल्टा हमें समझा रहे थे, कि हम भी तुम्हारे साथ चलें। हमें भी मूढ़ बनाने की सोची थी? और अब तो समझ आ गई? आ जाओ वापिस सम्हाल लो अपने आभूषणों को। यही एकमात्र जगत है। और दीवाल पर बनती छायाएं ही सत्य हैं। ये सब सपने हैं रंगीनियों के, प्रकाश के। ये कल्पनाएं हैं। और तुम अकेले नहीं हो। हममें से भी बहुतों ने ऐसे सपने देखे हैं। और ऐसी कल्पनाएं की हैं। वे सब कविताएं हैं और लोकों की, सत्यों के लोकों की, मुक्त आत्माओं की, सिद्धों की। सब कल्पनाएं हैं। सब बकवास हैं। ये चालबाजों ने मूढ़ों को चूसने के, शोषण करने के उपाय बना रखे हैं।

धक से रह गया होगा वह आदमी! द्वार बंद है। इन्हें मुक्त करने आया है। लेकिन ये अपने कारागृह को अपना जीवन समझ बैठे हैं। फिर भी उसने कोशिश की। जो सदा हुआ है, वही हुआ। लोग उसके विरोध में होते गए। जितनी ही वह चेष्टा करने लगा, उतना ही वे नाराज होते गए।

क्योंकि उनकी नाराजगी भी स्वाभाविक मालूम होती है। तुम उनके जीवन भर के दांव को मिट्टी पर करने में लगे हो। तुम यह कह रहे हो कि साठ साल तुम व्यर्थ ही जीए। तुम यह कह रहे हो, कि तुम इतने बुद्धिहीन हो कि साठ साल तुम व्यर्थ ही जीए। तुम यह कह रहे हो, कि तुम इतने बुद्धिहीन हो कि साठ साल अंधेरे में रहे, फिर भी तुम्हें खयाल न आया कि यह अंधकार है? जंजीरों में बंधे सड़ते रहे और तुम्हें इतना भी बोध न उठा, कि ये जंजीरें हैं? मूढ़! और तुम इन्हें आभूषण समझते रहे? दीवाल पर बनी छायाओं को देखा और समझा कि यही सत्य है?

यह बरदाश्त के बाहर है। क्योंकि अगर यह आदमी सच है तो उस कारागृह के सभी आदमी गलत है।

भीड़ गलत है, अगर बुद्ध सच हैं। अगर मैं सच हूं,तो तुम गलत हो। तुम्हारे सही होने का एक ही उपाय है, कि मैं गलत हूं। और तुम आसानी से यह उपाय कर सकते हो। भीड़ तुम्हारी है, संख्या तुम्हारी है।

वह आदमी अकेला था, अजनबी। अपरिचित लोगों के बीच। उसकी भाषा और हो गई थी। उनकी भाषा और थी। उनके बीच, उन दोनों के बीच अब कोई संवाद होना तक मुश्किल था। उसने लाख समझाने की कोशिश की, लेकिन कोई समझने को राजी न था। फिर उसका समझाना भी लोगों के सिर पर भारी होने लगा। और जो सदा हुआ है वही हुआ। उन्होंने पत्थरों से और जंजीरों की चोटों से उस आदमी को मार डाला।

तुमने जीसस के साथ वही किया। तुमने सुकरात के साथ वही किया। तुमने मंसूर के साथ वही किया।

यह कहानी बड़ी प्राचीन है, और बड़ी नई भी। पुरानी से पुरानी, नई से नई। यह अतीत में भी होती रही है, और आज भी हो रही है; भविष्य में भी होती रहेगी। यह चिर-नूतन और चिर-पुरातन कथा है। यूनान के बहुत बड़े मनीषी अफलातून ने इस

कथा का एक अंश अपने किताबों में उल्लेख किया है। लेकिन यह कथा अफलातून से भी पुरानी है। यह उतनी ही पुरानी है जितना आदमी पुराना है। और यह तब तक रहेगी, जब तक एक भी आदमी जमीन पर बंधा हुआ है।
अब हम कबीर के इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।
तब तुम समझ पाओगे क्यों कबीर कहता है, कहै कबीर दिवाना! नहीं तो तुम न समझ पाओगे, क्यों कबीर अपने को खुद पागल कहता है? कैसी बेबूझ दुनिया है! प्रज्ञावान पागल समझे जाते हैं, मूढ़ ज्ञानी। जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, जिन्होंने शब्दों का कचरा इकट्ठा कर लिया है। या खोपड़ी से शास्त्र भर लिए हैं, वे ज्ञानी हैं, वे पंडित हैं।
कबीर काशी में रहे जीवन भर। पंडितों की दुनिया! स्वभावतः उन सभी पंडितों ने कहा होगा पागल है। काशी...! वहां तो सबसे ज्यादा बड़े अंधों की भीड़ है। वहां तो सब तरह के मूढ़ प्रतिष्ठित हैं, जिनके पास शब्दों का जाल है। वेद, उपनिषद है, गीता, पुराण है। जिन्हें गीता पुराण, वेद, उपनिषद कंठस्थ हैं। शब्दों के अतिरिक्त जिन्होंने कुछ भी नहीं जाना। दीवालों पर बनी छायाओं को जिन्होंने इकट्ठा किया है—बड़ी मेहनत से, बड़े श्रम से, बड़ी कुशलता से। वे बड़े निष्णात हैं तर्क में। क्योंकि शब्द तो छाया है सत्य की। और तर्क तो सिर्फ सांत्वना है।
इसलिए कबीर अपने को खुद कहते हैं: कहै कबीर दिवाना।
एक-एक शब्द को सुनने की, समझने की कोशिश करो। क्योंकि कबीर जैसे दीवाने मुश्किल से कभी होते हैं। उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। और उनकी दीवानगी ऐसी है, कि तम अपना अहोभाग्य समझना अगर उनकी सुराही की शराब से एक बूंद भी तुम्हारे कंठ में उतर जाए। अगर उनका पागलपन तुम्हें थोड़ा सा भी छू ले तो तुम स्वस्थ हो जाओगे। उनका पागलपन थोड़ा सा भी तुम्हें पकड़ लें, तुम कभी कबीर जैसा नाच उठो और गा उठो, तो उससे बड़ा कोई धन्यभाग नहीं। वही परम सौभाग्य है। सौभाग्यशालियों को ही उपलब्ध होता है।
जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
करिया करम अचार मैं छाड़ा, छाड़ा तीरथ नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।।
जब मैं भूला रे भाई—क्या भूल है? क्या तुम भूल गए हो? तुम स्वयं को भूल गए हो, सब तुम्हें याद है। वेद कंठस्थ है सिद्धांत, शास्त्र याद। सिर्फ एक को तुम भूल गए हो, वह तुम स्वयं हो। और उसे जाने बिना सब ज्ञान व्यर्थ है। और जिसने उस एक को जान लिया, उसने सब जान लिया। उस एक के जानने में सब जान लिए जाते; सब वेद, कुरान, बाइबिल। उस एक को चूकने में सब चूक जाता है।
क्योंकि वही एक तुम्हारे भीतर चैतन्य को स्रोत है। उस एक से ही तुम परमात्मा से जुड़े हो। वह एक तुम्हारे भीतर आया हुआ परमात्मा है। जैसे तुम्हारी खिड़की में से आ गया आकाश तुम्हारे घर को भरे; ऐसा तुम्हारे उस एक में से आ गया आकाश—परमात्मा—तुमको भरे। उस एक को भर तुम भूल गए हो।

उसकी तरफ पीठ, सारी संसार की तरफ आंख है। भागे फिरते हो, ज्ञान का संग्रह करते चले जाते हो। धन का संग्रह करते चले जाते हो। एक बात भूल ही जाते हो वह कौन है, जिसके लिए तुम संग्रह कर रहे हो? वह कौन है, जो संग्रह कर रहा है ? वह कौन है जो शास्त्र पढ़ रहा है? शास्त्र तो याद रह जाता है, वह कौन है, जो शास्त्र पढ़ रहा है? वह कौन है, जो सबके प्रति साक्षी है? वह कैन है चैतन्य का स्रोत तुम्हारे भीतर?

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।

कवीर कहते हैं, जब मैं भूल गया—विस्मरण, अज्ञान है। इसलिए तुम ज्ञान से अज्ञान को न मिटा सकोगे; स्मरण से मिटा सकोगे। इसे ठीक से समझ लो। विस्मरण अज्ञा न है। तुम भूल गए हो, कि तुम कौन हो? इसकी पुनर्याद, पुनर्स्मरण चाहिए। ज्ञान से यह न होगा।

क्योंकि ऐसा नहीं है कि तुम्हें कुछ जानकारी की कमी है, तो जानकारी बढ़ जाएगी, तो ज्ञान हो जाएगा। तुम्हारे मन में अभी हजार जानकारियां हैं, दस हजार हो जाएं गी। इससे तुम्हारा अज्ञान न टूटेगा। तुम महापंडित हो जाओगे, लेकिन तुम्हारी मूढ़त ा बरकरार रहेगी। क्योंकि मूढ़ता का पांडित्य के होने से और टूटने का कोई संबंध नहीं है। मूढ़ता है भूलना; विस्मरण। इसलिए स्मरण से तुम्हें अपनी याद आ जाएगी, मैं कौन हूं।

इसलिए कबीर दो शब्दों में समझे जा सकते हैं—विस्मरण और स्मरण; जिसको कबीर ने सुमिरन कहा है, सुरति कहा है। सुरति संस्कृति के स्मृति शब्द का अपभ्रंश है। स्‍ मृति आ जाए, सुरति आ जाए, सुमिरन आ जाए। लेकिन लोग बड़े अजीब हैं। कबी र के माननेवालों को भी मैं जानता हूं। वे माला फेरते हैं। उनसे पूछो क्या कर रहे हो? वे कहते हैं सुमिरन कर रहे हैं। सुमिरन को उन्होंने जाप बना लिया।

सुमिरन का अर्थ है स्मरण जिसको गुरजिएफ ने सेल्फ-रिमेंबरिंग कहा है—आत्मस्मृति। जिसको बुद्ध ने सम्यक-स्मृति कहा है—राइट माइंडफुलनेस। जिसको महावीर ने विवे क कहा है—याद।

लेकिन कैसे तुम्हें याद आएगी? तुम तो भूल गए हो। तुम्हें कोई याद दिलाए, तो ही आएगी। तुम्हें खुद कैसे याद आएगी?

रात तुम सोते हो। सुबह पांच बजे उठते हो, ट्रेन पकड़नी है, क्या करते हो? कोई जुगत चाहिए। अलार्म भर देते हो। अलार्म जुगत है। तुम न जाग सकोगे पांच बजे। कोई तुम्हें जगाए। घड़ी भी जगा सकती है। यंत्र है सिर्फ। लेकिन तुम स्वयं न जाग सकोगे। या किसी को कह देते हो पड़ोस में, कि जगा देना।

कोई जागा हुआ जगा सकता है। किसी सोए आदमी से मत कह देना, कि जगा देना । वो पहले ही घुर्रा रहे हैं और तुम उनसे जाकर कहो, कि भाई सुनो। पांच बजे ज गा देना। उससे कुछ हल न होगा। उन्होंने सुना ही नहीं। उनको खुद ही कोई जगाने वाले की जरूरत थी। कोई जागा हुआ चाहिए।

और समस्त योग का अर्थ है, जुगत। जुगत शब्द बड़ा प्यारा है।

अंग्रेजी में उसके लिए शब्द है—डिवाईस, तरकीब। हजारों तरह की तरकीबें उपयोग की गई हैं आदमी को जगाने के लिए। लेकिन अगर तुम खुद ही करोगे, तो खतरा है।

मैंने सुना है, कि अमेरिका का बहुत बड़ा वैज्ञानिक एडीसन भुलक्कड़ था। भूल जाता था। अक्सर जो लोग बहुत सोचते हैं वे भुलक्कड़ हो जाता हैं। सोचना इतना ज्याद ा हो जाता है, कि सबकी याद रखनी मुश्किल हो जाती है। तो वह हर चीज को, जब भुलक्कड़ हो गया...और उसने एक हजार आविष्कार किए हैं। इसलिए बड़ी पैनी बुद्धि का आदमी था। कभी वह कोई चीज आधी पूरी करके...पूरी न कर पाया है। आधी की है, आधा कोई आविष्कार कर लिया है। फिर भूल जाएं वर्षों तक; तो ब. डा नुकसान होने लगा।

तो किसी ने उसे सुझाव दिया कि तुम ऐसा क्यों नहीं करते, कि हर चीज को लिख लिया, ताकि याद बनी रहे। उसने लिखना शुरू कर दिया। तो अलग-अलग कागजों पर लिख कर रखता जाता; वे कागज खो जाते, कि कहां रख दिया? किसी ने क हा, तुम भी पागल हो। अलग-अलग कागजों पर क्यों लिखते हो? डायरी क्यों नहीं बना लेते? उसने डायरी बना ली। डायरी खो गई।

आदमी भूलनेवाला हो, तो इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम चाहे कागज पर लिखो च ाहे तुम डायरी पर लिखो। इससे फर्क ही क्या पड़ता है? क्योंकि वह आदमी तो बुि नयादी वही है। वह डायरी भूल गया एक दिन। उसने कहा इससे तो कागज ही बेह तर थे। एक भूलता था, तो बाकी तो बचते थे। यह पूरा गया। डायरी में सब लिखा था। अब डायरी कहां है?

आदमी अपने से ही कोशिश करेगा तो उसका जो बुनियादी गुण है, उसके पार नहीं जा सकता। इसलिए आध्यात्मिक जीवन में गुरु की अनिवार्यता है। गुरु का केवल इ तना ही अर्थ है, कोई जो जाग गया। कोई जो तुम्हें भूलने न देगा। कोई जो तुम्हें क ोड़े लगाता रहेगा। कोई जो तुम्हें हिलाता रहेगा। कोई जो तुम्हें करवट ले कर फिर सपने में न खो जाने देगा।

तुम्हारा सारा अतीत नींद की तैयारी है। गुरु के रहते भी तुम जाग जाओगे, यह पक का नहीं है। लेकिन गुरु के बिना तो बिलकुल पक्का है, तुम जाग न सकोगे। हां, य ह हो सकता है कि तुम नींद में ही सपना देखने लगो, कि जाग गए। यह भी होता है। तुमने कभी नींद में भी ऐसा सपना देखा होगा कि जब तुम जाग गए।

इसलिए अलार्म भी बहुत काम नहीं दे सकता। अलार्म बज रहा है। तुम सो रहे हो। तुम एक सपना पैदा कर लेते हो कि मंदिर में प्रार्थना चल रही है। घंटी बज रही है। तुमने खतम कर दी घड़ी। तुमने तरकीब निकाल दी। नींद ने रास्ता बना लिया। क्योंकि अगर अलार्म हो तो जागना पड़ेगा। तो नींद ने एक सपना पैदा किया। नींद ने कहा कि अहा! कैसी सुंदर आरती उतर रही है। सवाल न रहा। नींद में तुम अ लार्म भी बंद कर सकते हो। करवट ले सकते हो। घड़ी मुर्दा है।

इसलिए विधियां अकेली काम न देंगी। गुरु चाहिए। विधियां तो उपलब्ध हैं। पतंजलि का योगशास्त्र, योगसूत्र, उपलब्ध है। सब विधियां लिखी हैं। लेकिन अगर किताब प. ढ कर तुमने काम किया तो विधियां घड़ी की तरह होंगी--यंत्रवत। तुम कर भी लो गे, लेकिन करेगी तो तुम्हीं--सोया हुआ आदमी। कबीर कहेंगे, स्मरण करो। तुम सुि मरन कर लोगे, माला फेर लोगे।

जीवित गुरु चाहिए। सभी धर्म मर जाते हैं। जिस दिन उनका जीवित गुरु मर जाता है, उसी दिन मर जाते हैं।

सिक्ख धर्म जिंदा था, जब तक दस गुरु जिंदा रहे। जिस दिन गुरु गोविंदसिंह ने तय किया कि अब गुरु-ग्रंथ ही गुरु होगा, अब कोई जीवित गुरु नहीं होगा, उसी दिन मर गया। तो दस गुरुओं के जीते जी जो खूबी थी सिक्ख धर्म में, वह बात ही और थी। तब यंत्र नहीं था। जीवित आदमी था।

जैनों के चौबीस तीर्थंकर जब तक थे तब तक एक जीवित धारा थी। फिर जैनियों ने तय किया, कि अब चौबीस से ज्यादा तीर्थंकर नहीं। महावीर के बाद दरवाजा उन् होंने बंद कर दिया। मर गया। तब से जैन धर्म एक लाश है। मोहम्मद के साथ इस्ल ाम जिंदा था। कुरान के साथ मुर्दा है। हालांकि कुरान मोहम्मद की किताब है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

मैं खड़ा हूं एक डंडा लिए, तुम सो रहे हो। मैं डंडे से तुम्हें उठाता हूं। डंडा नहीं उठ ाता, मैं उठाता हूं। तुम्हारी आंख खुल जाती है। मैं तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। डंड ा तुम्हें छूता दिखाई पड़ता है। तुम डंडे को पकड़ लेते हो अहोभाव से, कि बड़ी कृप ा! कि मुझे जगा दिया।

अब तुम अपने बच्चों को डंडा दे जाओगे कि सम्हाल कर रखना। यह जगाता है। जु गत मर गई। डंडा नहीं जग रहा था, डंडे के पीछे कोई जीवित हाथ थे। डंडा क्या जाएगा? डंडा अकेला क्या करेगा? अलार्म घड़ी रह जाती है आखिर में। फिर उसे तुम सम्हाले रहो। अलार्म भी बजता रहेगा और तुम सोते भी रहोगे।

सभी शास्त्र डंडे हो जाते हैं। तुम उनकी पूजा करते हो, याद करते हो। और यह भ ी नहीं है, कि कभी उनसे लोग न जगे थे--जगे थे। लेकिन कोई जीवित हाथ पीछे थ ा। कोई नानक पीछे था। वह कंवन जो डंडे में था, डंडे का नहीं था। वह उस जीवि त हाथ का था। वह डंडे में जो जीवन प्रवाहित हो रहा था, वह नानक का था। अब तुम चले जाओ। पांचों कार्य पूरे करते रहो। केश बांधो, कंधा लगाओ, कटार रखो, कंछा पहनो, जो तुम्हें करना है करो, मगर ये सब डंडे हैं। अब इनसे कुछ होनेवाल ा नहीं है।

जुगत जीवित होती है, जब कोई हाथ जागा हुआ पीछे होता है। मैं अभी हूं, तब तु म मेरे डंडे का उपयोग कर लोग। मेरे मर जाने के बाद तुम सक्रिय ध्यान, कुछ भी न होगा। और तुम करोगे मरने के बाद। यह मुझे पक्का है। इससे कोई शक नहीं। क्योंकि तुम्हारी पुरानी आदत है।

क्यों ऐसा होता है? ऐसा इसलिए होता है, विधियों से तुम्हें कोई डर नहीं, तुम्हारी नींद को कोई डर नहीं। तो विधियां तो तुम करने को राजी हो, लेकिन गुरु से डर है। खतरा है। क्योंकि जीवित आदमी के पास कितनी देर तुम सोए रहोगे? नींद तुम्हें छोड़नी पड़ेगी। वह तुम्हें छुड़ाएगा।

जागा हुआ आदमी कितनी देर तक तुम्हारी नींद की दशा देख सकेगा? तुम्हारा उदास चेहरा तुम्हारी कीचड़ से भरी आंखें, तुम्हारे मुंह से टपकती लार! तुम मुर्दे की भांति पड़े हो। अनर्गल तुम्हारी नींद में बकवास! कभी भयभीत होते हो, कांपते हो। कभी सुखी मालूम होते हो। मुस्कुराहट फैल जाती है चेहरे पर, लेकिन सब नींद में होता, सब सपने में हो रहा है। सब झूठ हो रहा है। तुम्हारी नींद तोड़नी जरूरी है।

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।

तो मेरे गुरु ने मुझे जगाया। मुझे जुगत दी, कोई विधि दी। और जो विधि दी...

जब कोई जीवित गुरु विधि देता है तो सारी पुरानी विधियां व्यर्थ हो जाती हैं स्वभावतः। क्योंकि पुरानी विधियों का क्या प्रयोजन? तुम पुराना सब साज-सामान फेंक देते हो। अगर अब तक तुम बैठ कर अपने घर में एक कोठरी बना कर और शंकरजी की पूजा कर रहे थे, अब तम इनको लपेट कर सागर में डुबा आते हो। अब कोई जरूरत न रही। अभी तक तुम मंदिर में जाकर रोज घंटी बजाते थे। अब यह बंद हो जाता है खेल। क्या जरूरत जागे हुए आदमी को, कि वह अलार्म घड़ी रखे। बैठा रहे और उसकी पूजा करे? वह किसी और को दे देता है। बांट आता, या नदी में फेंक आता है।

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।

वह जगत क्या है? जिसके कारण—किरिया करम अचार मैं छाड़ा। सब क्रियाएं छोड़ दीं। सब कर्म छोड़ दिए। सब आचरण छोड़ दिए।

छाड़ा तीरथ नहाना।

और तीर्थ में जाकर नहाना छोड़ दिया। गंगा साधारण नहीं हो गई। अब कोई तीर्थ न रहा।

क्रिया-कांड का अर्थ है, वे जुगतें, जिनका जीवित हाथ विदा हो गया। वे सब क्रिया-कांड हो जाती हैं।

तुम मेरे साथ ध्यान करो, यह एक बात है। तुम मेरे बिना ध्यान करोगे, यह क्रियाकांड हो जाएगा। तुम कर लोगे पुरा-पूरा। ठीक श्वास लोगे, ठीक उछलोगे, कूदोगे, लेकिन सब नाटक होगा। तुम उसके भी अभ्यासी हो जाओगे। वह व्यायाम होगा। थोड़ा बहुत लाभ जो शरीर को हो सकता है वह होगा लेकिन तुम जाग न सकोगे।

किरिया करम अचार मैं छाड़ा।

और अब आचरण छोड़ दिया जो कि साधु को करना चाहिए। कि रात्रि भोजन करे, कि पानी छान कर पीए, कि ये न खाए, कि वह न पीए, ये कपड़े पहने, वे न पहने, कि नग्न रहे, कपड़ा न पहने, कि शरीर पर भभूत लगाए, कि धूप में बैठे, कि आग जला कर शरीर को गर्मी में और तपाए, जलाए और गलाए, कि कांटे बिछा

कर लेटे। नहीं। किरियां करम आचार मैं छाड़ा, छाड़ा तीरथ नहाना। सब छोड़ दिया। छूट ही जाता है। छोड़ना पड़ता नहीं।

जब सतगुरु मिल जाए, सब छुट जाता है। इसलिए सभी धर्म सतगुरुओं के विपरीत होंगे। क्योंकि सभी धर्म पुराने क्रियाकांड, पुरानी विधि, पुराना तीर्थ, पुराना मंदिर, पूजा पाठ—उस पर आरूढ़ हैं। जब भी कोई सतगुरु पैदा होगा तत्क्षण सारे धर्म उस के विपरीत हो जाएंगे।

क्योंकि जो जो उसे सतगुरु के साथ चलेंगे, उनके क्रियाकांड छूटने लगेंगे। वे तीर्थ जाना बंद कर देंगे। एक नया तीर्थ पैदा हो गया और जीवित तीर्थ पैदा हो गया, अब कौन मुर्दा तीर्थों में जाता है? अब एक नई विधि मिल गई, जीवित विधि मिल गई, जिसमें अभी भी आग है, अंगार है; राख नहीं हो गई।

तो अब कौन पुरानी विधियों को खोजता है, जिनकी अंगार कभी की बुझा गई? कभी थी। अब नहीं है। अब सिर्फ राख के ढर्रे रहे गए। राख के ढेर में भी गर्मी तक नहीं रह गई, बिलकुल ठंडे हो गए। कोई प्राण नहीं बचा। अब उनको तुम छोड़ ही दोगे। छोड़ना पड़ता नहीं, वे छूट जाते हैं।

इसलिए एक बात खयाल में रखना कि जब भी कोई सतगुरु पैदा होता है, तभी सारे धर्म उसके विपरीत ही जाते हैं। होना उल्टा चाहिए, कि सारे धर्म उसके पक्ष में हो जाएं क्योंकि वह वही कर रहा है, जो धन धर्मों ने कभी किया था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वह दुश्मन है।

नानक पैदा होगा, तो सिक्ख धर्म पैदा हो जाएगा अलग। हिंदू राजी न होंगे इसे स्वीकार करने को मुसलमान राजी न होंगे, स्वीकार करने को, जैन राजी न होंगे स्वीकार करने को। क्योंकि नानक की मान कर कोई जैन नग्न साधु कपड़े पहन लेगा। छो.ड देगा नग्नता। नानक की मान कर कोई हज यात्रा आधी यात्रा से वापस लौट आएगा। नानक की मान कर कोई माला को फेंक देगा। कोई पूजा, अर्चना को बंद कर देगा। सभी दुश्मन हो जाएंगे—मस्जिद भी, मंदिर भी।

लेकिन वही अब होगा। अब नानक का धर्म भी उतना ही मर्दा है, जितना नानक के समय हिंदू, मुसलमान और जैन मुर्दा थे। अब अगर कोई सदगुरु पैदा होगा तो नानक के माननेवाले उसके खिलाफ खड़े हो जाएंगे क्योंकि उसकी सुनकर कोई गुरुद्वारा जाना बंद कर दोगे। कोई गुरु ग्रंथ को बंद करके रख देगा कि अब क्षमा करो। सदगुरु सदा ही संप्रदायों को दुश्मन की तरह मालूम होगा। धर्म का वह दुश्मन नहीं है, धर्म को तो वह पुनर्स्थापक है, स्थापन कर रहा है, लेकिन संप्रदाय का वह दुश्मन है।

संप्रदाय का अर्थ है, मरा हुआ धर्म। संप्रदाय का अर्थ है, तुम्हारे पिता बड़े प्यारे थे, जिंदा थे, तुम उनकी सेवा करते थे, वे मर गए। अब क्या करो? संप्रदाय का अर्थ है, पिता की लाश को घर में रख लोग और पूजा करो। समझदार आदमी यह नहीं करता। माना कि पिता बड़े प्यारे थे। रोता है, जार-जार रोता है। छाती पीटता है। महीनों तक घाव न भरेगा। लेकिन सब ठीक। अर्थी सजाता है। पिता को लेकर रोता

हुआ मरघट जाता है। प्यारे थे, संबंध गहरा था। लेकिन मर गए, बात खतम हो गई।
जिस दिन दुनिया में वस्तुतः लोग थोड़ी गहरी समझ के होंगे, उस दिन धर्म जिस दिन मरेगा, संप्रदाय बनेगा, उसी दिन अर्थी सजा कर मरघट ले जा कर बिदा कर देंगे। ताकि जब भी नया सदगुरु पैदा हो, तो लोग उसके लिए उपलब्ध हो सकें। लोग पुराने संबंध हों, उपलब्ध नहीं हो पाते। पुराने से ग्रस्त हों उपलब्ध नहीं हो पाते।
जब मैं भूला रे भाई--कबीर कहते हैं--
मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
किरिया करम आचार मैं छोड़ा, छाड़ा तीरथ नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।।
और सदगुरु की मान कर हालत ऐसी बनी कि सारी दुनिया तो समझदार मालूम होने लगी, एक मैं ही पागल हो गया।
निरंतर ऐसा होगा। मेरे संन्यास को पागल होना ही पड़ेगा। जहां जाएगा, लोग देख कर हंसेंगे। हो गया दिमाग खराब? पड़ गए तुम भी चक्कर में? तुम जैसे बुद्धिमान आदमी?
स्वाभाविक है। यह बचाव है। यह रक्षण है दूसरे व्यक्ति का। यह उसका सिफेन्स है। वह यह कह रहा है, हम इतने बुद्धू नहीं। वह यह कह रहा है, हम काफी समझदार हैं। ऐसे जल्दी चक्कर में नहीं पड़ते। सम्मोहित हो गए हो मालूम होता है। हिप्नोटाइज कर लिया किसी ने। हमें कोई सम्मोहित नहीं कर सकता।
वह अपनी रक्षा कर रहा है। वह तुम पर नहीं हंस रहा है। कहीं अपने पर उसे रोना न पड़े, इसलिए वह तुम पर हंस रहा है। उसकी हंसी में वह अपने रोने की संभावना को दबा रहा है। कहीं उसे अपने पर पछताना न पड़े इसलिए वह तुम्हारा व्यंग कर रहा है।
भीतर वह जानता है कि जिंदगी छूटी जा रही है हाथ से। भीतर वह जानता है, क्रियाकांड पूरा कर रहा हूं, आचरण का पूरा पालन कर रहा हूं। कुछ भी नहीं हो रहा है। कोई दीया नहीं जल रहा। कोई बांसुरी नहीं बज रही, कोई नृत्य पैदा नहीं हो रहा। वह जानता है कि मंदिर नियम से जाता हूं, पाठ रोज गीता का करता हूं लेकिन गीत पैदा नहीं हो रहा। गीता रोज पढ़ता हूं लेकिन गीत पैदा नहीं हो रहा है। वह धुन नहीं आ रही। वह महक--जो नचा दे, उत्सव से भर दे। कि जीवन एक परम आशीष मालूम होने लगे परमात्मा की--एक आशीर्वाद, वह नहीं हो रहा है। वह जानता है। उसे पता है।
क्यों पता न होगा? उसे पता है कि उसकी जिंदगी एक रेगिस्तान है। और उसमें कोई मरूद्यान नहीं है। सब वह तुम्हारे जीवन में मुस्कुराहट देखेगा और थोड़े से मरूद्यान का जन्म देखेगा, वह तुमसे कहेगा, अरे! तुम भी पागल हो गए? ऐसा कह कर वह यह कह रहा है, तुम्हारा मरूद्यान झूठा है। क्योंकि अगर तुम्हारा मरूद्यान सही है, अगर तुम्हें सच में ही मिल गया शीतल स्रोतजल का, कि तुम हरे होने लगे हो, ि

क तुममें फूल की संभावना आई जा रही है तो फिर मेरा क्या होगा? वह तुम्हें पोंछ कर मिटा देना चाहता है ताकि तुम उसके भीतर पीड़ा का एक बीज अंकुरित न का दो। वह तुम पर हंसेगा, व्यंग करेगा तुम्हारी उपेक्षा करेगा, अपमान करेगा, तिरस्कार करेगा।और अगर तुम अपनी जिद में कायम रहे, अगर तुम अपनी दीवानगी में कायम रहे और तुमने फिकर नहीं की और तुम चिंतित न हुए तो धीरे-धीरे वह फिर तुम्हें भूलने की कोशिश करेगा कि तुम हो भी। वह तुम्हारे अस्तित्व को इंकार करेगा, कि तम जैसे हो ही नहीं। वह तुम्हें समाज बहिष्कृत कर देगा। वह तुम्हें देखकर निकल जाएगा, नमस्कार न करेगा। वह तुम्हारे पास न आएगा। तुम अछूत हो जाओगे।

पर यह होगा। क्योंकि ये सब उसकी रक्षा के उपाय हैं। वह अपनी दीनता को दबा रहा है, छिपा रहा है। अपनी मूढ़ता को आवृत्त कर रहा है। अपने जीवन के मरुस्थल को तुम्हारे मरूद्यान को गलत सिद्ध करके यह सांत्वना दे रहा है कि मरुस्थल तो सभी के भीतर है, मरूद्यान होता ही नहीं। इसलिए मेरे जीवन में मरूद्यान नहीं तो कोई खास बात नहीं, सभी के भीतर ऐसा है। तुम हंसते हुए उसे स्वीकार नहीं हो सकते। वह कहेगा कि तुम पागल हो। या तुम कल्पना कर रहे हो। यह बड़े मजे की बात है।

एक युवक ने संन्यास लिया। उस युवक के पिता उसे लेकर मेरे पास आए। पहले उन्होंने सब उपाय कर लिए। लेकिन युवक सच में ही युवक था। वह हंसता ही रहा। वह न तो नाराज हुआ, न लड़ा, झगड़ा, न उसने कोई प्रतिशोध किया, न कोई प्रतिशोध लेने की कोई कोशिश की। वह जैसा था वैसा ही रहा। हंसता रहा, प्रसन्न रहा। न उसने क्रोध किया।

बेचैनी बढ़ गई पिता की। जरूर लड़के के दिमाग में कुछ बड़बड़ हो गई। क्योंकि पहले अगर पिता कुछ कहता था तो वह लड़ने को तैयार हो जाता था। वह ठीक था, नेचरल मालूम होता था—स्वाभाविक। गाली दो, अपमान करो, तो वह भी गाली और अपमान करने को तैयार था। लेकिन अब कोई गादी दे तो वह हंसता है। जरूर कुछ गड़बड़ हो गई। अस्वाभाविक! इसके दिमाग में कोई खराबी तो नहीं हो गई? आखिर पिता लेकर मेरे पास आए। कहने लगे, कि मुझे शक है, इसके दिमाग में कुछ गड़बड़ हो गई। यह जो ध्यान वगैरह कर रहा है, यह ठीक नहीं। क्योंकि हम अगर नाराज भी हों तो यह मुस्कुराता है। या तो हम पागल हैं या यह पागल है। दोनों में से कोई एक को पागल होना ही चाहिए यह मुस्कुराहट किस तरह की? और इसकी मुस्कुराहट देखकर बड़ी हैरानी होती है। इससे तो बेहतर था नाराज हो पड़े, टूट पड़े, झगड़ा कर ले—समझ में आता है। वह भाषा पहचानी हुई है। इसको कुछ हो गया है। पिता निश्चित दुखी थे। कहने लगे, कुछ भी करें, इसको ठीक करें।
बेचैनी कहां है? क्या तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा लड़का हंसे? क्या तुम नहीं चाहोगे कि तुम्हारा बेटा अपमान में भी हंसे? यही तो जीवन की कला है। नहीं, लेकिन बाप चाहेगा बेहतर है वह झगड़ा कर ले, बेहतर है वह लड़ पड़े। गाली दे।

लेकिन स्वाभाविक—तुमने अपने अंधेपन को, अपने रोग को स्वाभाविक समझ लिया? तुम अपने अंधेरे को स्वभाव समझ रहे हो? बाप लेकर बेटे को आया है, कि इसे सुधार दें। इसको वापस रह जैसा था वैसा ही हो जाना चाहिए।
मैंने उनको कहा, कि बेहतर हो कि आप इसके जैसे हो जाएं। उन्होंने का कि अव सत्तर साल की उम्र...!
सत्तर साल का इंवेस्टमेंट है। सत्तर साल जिंदगी लगाई है एक धंधे में। और अब अचानक पता चले कि वह धंधा बिलकुल ही बेकार था। उसमें कोई सार ही नहीं था जिस बैंक में तुम रुपया जमा कर रहे थे, वह बैंक है ही नहीं। अब सत्तर साल में इसका पता चलेगा चैक-बुक नकली है, तो बड़ी पीड़ा होती है। आदमी चाहता है अब जैसा भी भ्रम था, जो भी था, शांति से मर जाएं।
वे कहने लगे, इस उम्र में सत्तर साल की उम्र में अब बदलाहट न हो सकेगी। अब तो मैं जी लिया।
तो मैंने कहा, कि कृपा करके इसको जी लेने दें नए ढंग से। तुमने कुछ पाया, जो तुम सोचते हो कि तुम्हारे ढंग से यह लड़का भी जीएगा तो कुछ पा लेगा? तुम्हारे बाप भी ऐसे ही जीए। उनके बाप भी ऐसे ही जीए। तुम भी ऐसे ही जीए।— इस लड़के ने थोड़ी हिम्मत की है बंधी लकीर से हट जाने की। तुम क्यों बेचैन हो रहे हो?
बेचैनी है, क्योंकि इसका मतलब वे भी गलत, उनके बाप भी गलत उनके बाप के बाप भी गलत। और यह लड़का—कभी उम्र केवल तीस साल, और यह ठीक? कठिन है। अहंकार नहीं मान पाता।
इसलिए कबीर कहते हैं, जैसे ही क्रिया—कर्म छोड़ा—
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है, कि बुद्ध ने छह वर्ष तक बड़ी गहन तपश्चर्या की। जो जो सूत्र दिए जिस जिस ने पाले, जो जो अनुशासन बताया गुरुओं ने, पूरा किया। ऐसी हालातें आ गई, कि गुरु थक जाते थे। क्योंकि उनको सब, जितना बता सकते थे, बता दिया। और बुद्ध उसको इतनी निष्णात स्थिति से करते थे, इतनी तत्परता और लगन से करते, कि गुरु के पास यह भी बहाना नहीं बचता कहने का, कि तुमने ठीक से नहीं किया, इसलिए हो रहा है।
गुरुओं के पास वह तरकीब है—गुरु जो कि सचमुच में गुरु नहीं हैं—क्योंकि वे जो बनाते हैं तुम कभी पूरा कर नहीं पाते, इसलिए सच जांच कभी हो नहीं पाती कि वे जो बताते हैं, वह सार का भी है, कि निस्सार है? कोई गुरु कहता है कि अगर तुमने नब्बे दिन का उपवास किया तो आत्मज्ञान हो जाएगा। अब बड़ी मुश्किल है। नब्बे दिन का उपवास न तुम करोगे, न आत्मज्ञान होगा। और अगर तुमने एक दिन पहले ही तोड़ दिया, गुरु कहेगा कि अधूरा रह गया। इसलिए तो तुम्हें कभी जांच का मौका भी नहीं मिलता।
गुरुओं की ठीक परीक्षा तभी होती है, जब उन्हें ठीक शिष्य मिल जाते हैं।

बुद्ध ऐसा ही शिष्य था। उसने अनेक गुरुओं का पानी उतार दिया। वे जिस गुरु के पास गए, गुरु ने जो कहा—गुरु ने कहा पंद्रह दिन का उपवास तो उन्होंने पैंतालीस ि दन का करके बताया। गुरु को यह कहने की जगह न रही, कि तुमने किया नहीं। आखिर गुरु हाथ जोड़ लेते थे। हम जो बता सकते थे, बता दिया। इसके आगे हमें भी पता नहीं है। तुम कहीं और जाओ। क्योंकि उनकी वजह से दूसरे शिष्यों में शक पैदा होने लगता, कि जब इतना करके इस आदमी को कुछ न हुआ, तो हमको क या होगा? बुद्ध की वजह से शिष्य भागने लगते दूसरे।

बुद्ध ने सारे गुरुओं को टटोल डाला। और जैसा कि अक्सर होता है, गुरु तो मुश्किल से कोई होता है। सौ में कभी एक। निन्यानबे तो केवल धोखे के गुरु होते हैं। जैसे कि तुमने खेतों में खड़े आदमी देखे हैं, धोखे के। हंडी लगी है, कपड़ा लगा है, डंडे पर खड़े हैं। पक्षियों को भगाने के लिए ठीक। ऐसे गुरु हैं तुम्हारे। नासमझों के लिए ठीक, कमजोरों के लिए ठीक, नपुंसकों के लिए ठीक। जो कुछ नहीं करना चाहते, जो सिर्फ सिर हिलाते हैं कि ठीक है, कभी करेंगे; उनके लिए ठीक। लेकिन कोई क रने वाला आ जाए तो कठिनाई हो जाती है।

बुद्ध ने मुश्किल खड़ी कर दी। सब किया। ऐसी हालत हो गई कि लोग बुद्ध के पीछे चलने लगे। बुद्ध ने इतना किया और बुद्ध कहे जा रहे हैं कि मुझे कोई ज्ञान नहीं हुआ है। यह सब करना फिजूल गया है, लेकिन फिर भी मानने वाले पैदा हो गए। एक गुरु—आखिरी गुरु—अलार कालाम को जब उन्होंने छोड़ा तो उसके पांच शिष्य बु द्ध के शिष्य हो गए। उन्होंने कहा कि इस गुरु से तो यह बुद्ध बेहतर। उन दिनों बु द्ध केवल एक दाना चावल रोज लेते थे भोजन में। कृशकाय हो गए थे। सिर्फ एक मूर्ति उसको चित्रित करनेवाली उपलब्ध है। शायद उसका चित्र तुमने कभी देखा हो। उसमें बुद्ध की पीठ और पेट एक हो गए हैं। शरीर सिर्फ हड्डियां का अस्थि-पंजर र ह गया है। एक-एक हड्डी तुम गिन सकते हो! सब चर्बी खो गई है। खून सूख गया है। सिर्फ आंखें भर जीवित मालूम पड़ती हैं। सारा मुंह धंस गया है। सिर्फ चमड़ी औ र हड्डियां बाकी रह गई।

ऐसे बुद्ध एक तृण मात्र खा कर जीते थे। इतने कमजोर हो गए, कि निरंजना नदी को पार करते वक्त बुद्ध गया के पास, पार न कर सके। कमजोरी ऐसी थी। और नदी बड़ी छिछली है। कोई बुद्ध पार किए, कई बार जा कर देख लिया हूं। उसमें ट ी. बी. का मरीज भी पार होगा। उसमें कैंसर का मरीज भी पार हो सकता है। बुद्ध पार न हो सके। हालत बड़ी कमजोर रही होगी, बड़ी दयनीय रही होगी। और नदी बलवान मालूम पड़ती थी। घाट चढ़ न सकते थे। तो एक वृक्ष की शाखा को पकड़ कर लटक गए।

उस क्षण में उन्हें होश आया, कि यह मैं क्या कर रहा हूं। शरीर को नष्ट कर रहा हूं। इससे आत्मा कैसे मिलेगी? आत्मा के मिलने का शरीर को नष्ट करने से कौन सा संबंध है? कौन वसा तर्क है, कौन सा गणित है? और कमजोर में इतना हो ग

या कि निरंजना—साधारण सी नदी पार नहीं कर पाता, और भवसागर पार करने क
ी सोच रहा हूं। यह नहीं होगा।
और उस क्षण निरंजना नदी में पड़े हुए, वृक्ष की जड़ को पकड़े हुए उन्हें लगा कि
सब करता व्यर्थ गया। कोई क्रिया-कांड कहीं न ले जा सका। पहले मैंने संसार छोड़
दिया था। अब मैं यह त्याग तपश्चर्या भी छोड़ देता हूं। उस दिन त्याग पूरा हुआ।
उस दिन कुछ भी न बचा पकड़ने को। सब छूट गया। मुट्ठी खुल गई।
बुद्ध किसी तरह बाहर निकले। जिस वृक्ष के नीचे उनको बोध हुआ उस वृक्ष के नी
चे बैठे। किसी युवती ने गांव की, जिसका नाम सुजाता है; ऐसा उस वृक्ष के देवता
के लिए कुछ चढ़ौती मानी होगी, कि कोई उसकी इच्छा पूरी हो जाएगी तो वह खी
र से भरा हुआ थाल वृक्ष को चढ़ाएगी। पूर्णिमा की रात थी। उस रात वह खीर च.
ढाने आई। उसकी इच्छा पूरी हो गई थी।
पूर्णिमा की उस निर्जन रात में, निरंजना के एकांत तट पर वृक्ष के नीचे उसने बुद्ध
को देखा—दुर्बलकाय, पीत हो गए। समझा—भोली युवती रही होगी, श्रद्धावान—समझा
कि वृक्ष का देवता स्वयं खीर लेने को उपस्थित हुआ है। कोई और दिन होता, तो
बुद्ध ने खीर न ली होती क्योंकि वे केवल एक तृण ही लेते थे। कोई और दिन होत
ा तो बुद्ध ने रात में कुछ भी न लिया होता एक तृण भी, क्योंकि रात वे लेते थे।
कोई और दिन होता तो जात-पात पूछी होती कि स्त्री कौन है?
निश्चित ही स्त्री शूद्र रही होगी। नाम सुजाता बताता है, कि शूद्र रही होगी। क्यों
कि जो अच्छी बात में पैदा हुआ हो वह सुजाता नाम न रखेगा। जरूरत नहीं। इसलि
ए अक्सर कुरूप स्त्रियों का नाम तुम पाओगे सुंदरबाई। सुंदर स्त्री को कोई सुंदरबाई
नाम देता? जंचती नहीं बात, बैठती नहीं बात। निश्चित लड़की शूद्र रही होगी। औ
र शूद्र ही तो वृक्षों इत्यादि को पूजते हैं। ब्राह्मणों के तो मंदिर हैं। जैनों के बड़े वि
शाल मंदिर हैं। उनको कोई वृक्षों की पूजा करने नहीं जाना पड़ता। जो मंदिर बना
नहीं सकते, देवता प्रतिष्ठापित नहीं कर सकते, दीन-दरिद्र हैं, वे ही तो वृक्षों को पू
जते हैं। शूद्र ही रही होगी।
लेकिन उस रात बुद्ध ने पूछा। पूछने की बात ही न रही। उस दिन सब छोड़ दिया।
जो हो, हो। अब यह हो रहा है, कि यह लड़की अचानक इस रात में बिना मांगे
खीर लेकर आ गई, तो उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह खबर उनके पांच शिष्यों को
मिली जो दूसरे वृक्षों के नीचे ध्यान कर रहे थे। पांच शिष्य, जो बुद्ध की तपश्चर्या
देखकर इनके पीछे हो गए थे। उन्होंने कहा कि अब यह भ्रष्ट हो गया है। शूद्र लड़
की रात का समय और अब तक एक तृण लेता था। यह गौतम भ्रष्ट हो गया। उन्ह
ोंने तत्क्षण गौतम को छोड़ दिया, त्याग कर दिया।
वैसी ही दशा कबीर की हो होगी।
किरिया करम अचार मैं छाड़ा, छाड़ा तीरथ नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।।

बुद्ध के अपने पांच शिष्य भी छोड़कर चले गए कि भ्रष्ट हो गया यह आदमी। क्योंकि तुम्हारे लिए धर्म का अर्थ क्रियाकांड है। तुमने धर्म को तो जाना नहीं। तुमने तो धर्म के नाम पर मुर्दा विधियों को जाना है। अब तक यह बुद्ध ज्ञानी था, मानने योग्य था, पूज्य था। अब यह भ्रष्ट हो गया। खीर खाने से आदमी भ्रष्ट हो गया। रात भोजन लेने से भ्रष्ट हो गया।

मैं एक घर में मेहमान था, जैन घर। गांव के सबसे प्रतिष्ठित वृद्ध जैन मुझे मिलने आए थे, उन्होंने मेरी किताब साधना पंथ पढ़ी और बहुत प्रभावित हुए थे। और मेरी बड़ी तारीफ कर रहे थे। ऐसे, जैसे मैं पच्चीस तीर्थंकर हूं। और तभी घर की गृहिणी ने आकर मुझे कहा, कि अब आप चलें। रात हुई जाती है, भोजन कर लें। जैन तो रात भोजन नहीं करते। और वृद्ध उतने भाव में थे कि मैंने कहा कि थोड़ी देर हो जाएगी तो हर्जा नहीं। पहले मैं उनसे बात कर लूं।

फिर रात हो गई। फिर गृहिणी आई, उसने कहा, अब देर हुई जाती है। अब उसको भी बेचैनी शुरू हो गई। क्या रात में मैं भोजन करूंगा? और मैंने कहा कि बस, मैं स्नान कर लूं और आया। तो वृद्ध जो मेरा पैर पकड़े बैठे थे, तत्क्षण मेरा पैर छोड़ दिया और कहा, क्या? क्या आप रात्रि भोजन करेंगे।

मैंने कहा, भूख न तो दिन जानती है और न रात। और महावीर के जमाने में बिजली नहीं थी। अंधेरे में—नब्बे प्रतिशत लोग अंधेरे में भोजन करते थे। दस प्रतिशत, जिनके पास सुविधा थी, वे भी मिट्टी के दीए जलाते थे। उन दीयों में भी बहुत रोशनी न थी। उल्टे उन दीयों के कारण कीट-पतंग आते थे। अब इस एयर कंडीशंड घर में कीड़े पतंगों के आने का उपाय नहीं। दिन हो कि रात, सूरज सदा बटन से बुझता और जलता है, उगता है, डूबता है। क्या इसमें पंचायत की बात है? कोई हर्जा नहीं है। ज्यादा उचित यह है कि, आप की बात पूरी हो जाए। वृद्ध हैं, इतनी दूर चल कर आए हैं।

उन्होंने कहा, तब फिर मुझे आपको एक बात कहनी पड़ेगी। मैं कुछ सीखने आया था। लेकिन मैं गलत आदमी के पास आ गया। और बजाय सीखने के मैं आपको इतना सिखाना चाहूंगा—मैं वृद्ध हूं, पचहत्तर वर्ष की मेरी उम्र है—इतनी शिक्षा आपको जरूर दूंगा, कि जिसको अभी इतना भी ज्ञान नहीं कि रात्रि भोजन वर्जित है, उसका सब ज्ञान वृथा है। इसमें कोई सार नहीं। स्वभावतः—सारी दुनिया भई सयानी, मैं ही बौराना।

क्रियाकांड जब छोड़ दिया होगा कबीर ने, लोगों ने कहा होगा, कि हो गया भ्रष्ट। बुद्ध ने जब ज्ञान उत्पन्न हो गया उस रात, जब शिष्य छोड़कर चले गए, उस वृक्ष के नीचे सोए पहली दफा निश्चित। न चिंता रही संसार की, बाजार की, राज्यों की, साम्राज्य की। न चिंता रही मोक्ष की, स्वर्ग की, परमात्मा की। उस रात बिलकुल निश्चित सोए। चिंता ही नहीं रही। पाने को कुछ न बचा। सब व्यर्थ है। सब व्यर्थ इतना समग्र रूपेण हो गया, कि चिंता न रही। कोई सपना न आया। कोई मन में उद्विग्नता न उठी। नींद थी, सो गए। सुबह पांच बजे आंख खुली। वैसी शुद्ध आंख, कुं

आरी आंख जब भी खुलती है, तभी सत्य उपलब्ध हो जाता है। कोई विचार नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई धारणा नहीं। क्या ठीक, गलत; क्या करना, क्या नहीं करना; कोई ऊहापोह नहीं।

सीधी-सादी कुंआरी आंख! आखिरी तारा डुबता था। और बुद्ध को परमज्ञान उपलब्ध हुआ उस डूबते तारे के साथ ही पुराना आदमी समाप्त हो गया। नए का जन्म हुआ। चेतना पुरानी लीन हो गई, नई चेतना जनम गई।

उस क्षण बुद्ध ने जाना, कि सत्य कुछ करने से नहीं मिलता, सिर्फ आंख खोलने की बात है। सिर्फ होश, स्मरण, जागृति। पहला स्मरण आया उन पांच शिष्यों का, जो छोड़ कर चले गए। इतने दिन साथ थे बेचारे। असमय में साथ रहे। जब कुछ देने को न था तब पीछे चले। जब कुछ मेरे पास ही न था, तब मुझे गुरु माना और अब जब मेरे पास देने को है, तब मुझे छोड़ कर चले गए हैं।

तो बुद्ध उन्हें खोजने निकले। उनको जाकर पकड़ पाए सारनाथ में। जब उन्होंने देखा बुद्ध को आते हुए, दूर से एक टीले पर बैठे हुए तो उन पांचों ने तय किया, यह भ्रष्ट गौतम आ रहा है। हम न तो इसको उठ कर आदर दें और न नमस्कार करें। न इतना, हम उसकी तरफ पीठ कर लें। अगर इसको आना हो खुद आ जाए। बैठना हो, खुद बैठ जाए। हम यह गौतम भ्रष्ट है। इसने नियम छोड़ दिए, तप छोड़ दी, चर्या छोड़ दी। आचरण भ्रष्ट! इसके लिए अब कोई समादर नहीं है।

लेकिन जैसे-जैसे बुद्ध पास आने लगे, उनको बड़ी बेचैनी होने लगी। जैसे ही बुद्ध पास आए निकट आए, पहले एक उठकर खड़ा हुआ, चरणों में गिरा। फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर वे पांचों। और बुद्ध ने कहा कि तुमने निर्णय कुछ और किया था। निर्णय बदल क्यों दिया? निर्णय पर आदमी को टिकना चाहिए।

उन्होंने कहा, हमने बदला ऐसा कहना ठीक न होगा। तुम्हारी सन्निधि, तुम्हारा पास होना—और हमने आदर दिया, ऐसा कहना भी ठीक न होगा। क्योंकि हमने तो निर्णय किया था न देने का। आदर हुआ तुम्हारी मौजूदगी में, जैसे कि कोई एक चुंबक खींच ले।

जिनके भीतर भी थोड़ी सी क्षमता है, सदगुरुओं के पास वे खिंचे चले जाते हैं चुंबक की भांति। किसी क्रियाकांड के कारण नहीं, किसी योग तपश्चर्या के कारण नहीं किसी संप्रदाय, सिद्धांत, शास्त्रों के कारण नहीं। जिनके भीतर थोड़ी सी भी संभावना है आत्मा की, वे सदगुरु के पास खिंचे चले जाते हैं। चाहे दुनिया विरोध में हो। चाहे सारी दुनिया कहे कि तुम पागल हो। वह पागल होना दांव लगाने जैसा लगता है। वह पागल होना शुभ मालूम होता है।

ना मैं जानूं सेवा बंदगी, ना मैं घंट बजाईं।
ना मैं मूरत धरि सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई।

सब छूट गया। फूल चढ़ाना पत्थरों पर—क्योंकि जो अपनी आत्मा के खिले हुए फूल को परमात्मा में चढ़ाने में समर्थ हो गया, अब वह फूलों को तोड़ कर पत्थरों पर चढ़ाने जाएगा? और वृक्ष के लिए हुए फूल तो जिंदा हैं। तुम उन्हें मार डालोगे तोड़

कर। और तुम पत्थरों पर चढ़ा दोगे। वृक्ष में क्या कम चढ़े थे परमात्मा को? वृक्ष में भले चढ़े थे, पूरी तरह चढ़े थे, जीवित चढ़े थे। तुमने मार कर चढ़ाया।
असल मग संप्रदाय मुर्दा है और मुर्दा चीजें ही करवाता है। फूल जिंदा था। चढ़ा ही हुआ था परमात्मा को। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और किसको चढ़ेगा? वह प रमात्मा की ही सुगंध थी जो बिखर रही थी उससे। वे परमात्मा के ही रंग थे, जो खिले थे। वे परमात्मा की ही पंखुडियां थीं। वह परमात्मा का ही रूप था। वह उसक ा ही गीत था, तुम उसे तोड़ डाले और पत्थर पर चढ़ा आए।
तुमने उसे अपने परमात्मा पर चढ़ा दिया। तुम्हारा परमात्मा झूठा है। वह तुम्हारा ह ी बनाया गया परमात्मा है। वह मूर्ति तुम्हारे हाथ से गढ़ी हुई है। अपने हाथ से गढ़ी मूर्ति, जिसे बाजार से खरीद लाए हो और कुछ पंडित पुजारी, जिनको भी तुम बा जार से खरीद लाए थे, उन्होंने शोर गुल मचाकर, घंटे बजाकर आवाज करके, धुआं पैदा करके उसको असली परमात्मा की तरह प्रतिष्ठित कर दिया है। तुम भी जान ते हो, वे भी जानते हैं। और फूल नाहक बेचारा बलि दिया जा रहा है। उसका कोई कसूर नहीं है। उसका कोई हाथ नहीं है इस उपद्रव में।
मैं जबलपुर में था, तो मैंने एक बड़ा बगीचा अपने चारों तरफ लगा रखा था। मैं ब. डी मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि धार्मिक लोग—पास ही मंदिर थे—वे सुबह सुबह वहां से निकलते, वे बगीचे में घुस जाते। अधार्मिक को तो डर भी हो धार्मिक को डर ही नहीं। उसको पूछने की भी जरूरत नहीं, कि फूल हम तोड़ सकते हैं कि नहीं? क योंकि वह पूजा के लिए तोड़ रहा है। अब पूजा के लिए कोई मना करता है?
आखिर मुझे एक तख्ती लगा देनी पड़ी, कि पूजा के लिए भर तोड़ना मना है। और किसी के लिए तोड़ो, चलेगा। क्योंकि पूजा का फूल तोड़ने से क्या लेना-देना? और वे इतनी अकड़ से घुस आते, राम-राम जपते, कि उनका अधिकार है। वे तो पूजा के लिए तोड़ रहे हैं। वे मुझसे कहते हैं, कोई अपने लिए थोड़े ही तोड़ रहे हैं।
फूल भले ही सोह रहे हैं वृक्षों पर, क्यों उनको तोड़कर पत्थरों पर चढ़ा रहे हो? अ गर बहुत ही ज्यादा इच्छा होती हो, पत्थरों को लाकर फूलों पर चढ़ा दो। कम से कम मुर्दा को जिंदगी पर चढ़ा दो। मगर संप्रदाय उलटा ही सिखाते हैं।
जिस दिन कबीर ने बंद कर दिया—
नाम मैं जानूं सेवा बंदगी, ना मैं घंटा बजाई
ना मैं मूरत धरि सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई
ना हरि रीझै जप-तप कीन्हें ना काया के जारे।
न तो परमात्मा को कोई रटन लगाकर राम-राम मी पा सकता है, रिझा सकता है। रिझाएगा, क्या! उल्टा उसको उबाता होगा।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा और उसने जाकर स्वर्ग में जब देखा, तो वह बहुत न ाराज हुआ। एक पापी जो उसके घर के सामने ही रहता था वह परमात्मा के पास बैठा हुआ है। उसे नर्क में होना चाहिए।

उसने कहा, यह अन्याय है। यह क्या मैं अपनी आंख से देख रहा हूं! तो यह भी रिश्वत चल रही है, कि भाई-भतीजावाद चल रहा है। क्या मामला है? यह आदमी यहां कैसे बैठा है? यह पापी है। और मैं सदा तुम्हारा गुणगान गाता रहा। और सिवाय कष्ट के मुझे जिंदगी में कुछ न मिला और अब यह कष्ट तुम दे रहे हो, कि इस पापी को यहां देखना पड़ेगा स्वर्ग में? तो मतलब हमारे पुण्य का क्या है!

परमात्मा ने कहा, कि तुम इसमें ही खैर समझो, कि तुम स्वर्ग में हो। इरादा तो तुम्हें नर्क में भेजने का था।

उस आदमी ने कहा क्या? और मैं राम-राम जपता रहा–दिन में नहीं, रात में तक। सोते, जागते, राम की धुन लगाए रहा।

परमात्मा ने कहा, उसी की वजह से तो। तुमने मुझे तक नहीं सोने दिया। तुम खोपड़ी खा गए। एक रात चैन न लेने दिया। तुम काफी सौभाग्य समझो, कि तुम यहां प्रवेश किए जा रहे हो। और यह आदमी यहां है, क्योंकि इसने मुझे कभी सताया नहीं। इसने न तो कभी कोई प्रार्थना की, न कभी पूजा की, न यह कभी मंदिर गया। दुनिया इसे पापी समझती थी। क्योंकि दुनिया जिसे पुण्य समझती है वह पुण्य ही नहीं है। मंदिर जाने में क्या पुण्य है?

लेकिन इस आदमी ने चुपचाप दिनों की सेवा की है। इधर दुकान पर कमाया, उधर गरीबों को बांट दिया। बांटा भी इसने शोरगुल करके नहीं। अखबार वालों को बुलाकर नहीं बांटा। फोटोग्राफर तैयार नहीं रखे। चुपचाप लोगों के घरों में डाल आया। उनको भी पता नहीं है। वह धन्यवाद देने का भी मौका इसने नहीं दिया। वह मंदिर नहीं गया, यह सच है। इसने पूजा नहीं की, यह सच है। लेकिन यह मेरा प्यारा है।

ना मैं मूरत धरि सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई
ना हरि रीझै जप तक कीन्हें, ना काया के जारे।

और तुम शरीर को तपाओ, जलाओ, इससे तुम सोचते हो, परमात्मा प्रसन्न होगा? आत्मा तक प्रसन्न नहीं होती, परमात्मा क्या प्रसन्न होगा! भीतर की आत्मा से पूछो। वह परमात्मा का प्रतिनिधि है तुम्हारे भीतर। पीड़ा पाती है। पीड़ा कभी पूजा नहीं हो सकती। उत्सव ही केवल पूजा हो सकती है।

तुम जब प्रफुल्लित हो, जब तुम्हारा सारा शरीर खिला है और स्वस्थ है, जब तुम्हारे सारे शरीर के रंग-रंग, रोएं-रोए में जीवन की धारा बह रही है, जब तुम नाच सकते हो, तभी तुम्हारी आत्मा प्रसन्न है। और जिस बात में आत्मा प्रसन्न है, वही परमात्मा की पूजा है। तुम अपनी आत्मा की सुनो, तुमने परमात्मा की सुनी। तुमने अपनी आत्मा की न सुनी, तुम परमात्मा के दुश्मन हो।

गुरजिएफ कहा करता था, कि दुनिया के सारे धर्म परमात्मा दुश्मन हैं। और वह ठीक कहता था। क्यों? वे सब तुम्हें तुम्हारी आत्मा की सुनने को नहीं सिखाते। उनके पास बंधे हुए अनुशासन हैं, उनको पूरा करो। अगर तुम्हारी आत्मा इनके विपरीत है, तो दबाओ। अपने को मारो। अपना ही गला घोंटो। वे सब आत्मघाती हैं।

ना हरि रीझै धोति छाड़े...
और नग्न हो जाने से कोई हरि को रिझा लोगे?
ना पांचों के मार...
और पांचों इंद्रियों को भी मार डालो। फोड़ लो आंखें अपनी। कान में सीखचें डाल लो, ताकि न सुनाई पड़ेगा संगीत, न वासना पैदा होगी। न दिखाई पड़ेगा रूप, न वासना पैदा होगी। मार डालो, काट डालो पांचों इंद्रियों को। वही तो तुम्हारे साधु संन्यासी कर रहे हैं।
परमात्मा बनाता है, तुम मिटाते हो। तुम कैसे उसके मित्र हो सकते हो? परमात्मा आंखें बनाता है, तुम फोड़ते हो। परमात्मा कान देता है, तुम बहरे बनना चाहते हो। जो परमात्मा ने दिया है, उसे मिटाओ मत, उसे संभालो। उसे सुसंस्कृत करो, उसे संवेदनशील बनाओ।
आंख ऐसी संवेदनशील हो जाए, कि रूप दिखाई पड़े ही, रूप के भीतर छिपा अरूप भी दिखाई पड़ने लगे। कान ऐसे श्रवण की गहनता को उपलब्ध हो जाएं, कि संगीत तो सुनाई पड़े ही, सब संगीत में जो शून्य छिपा है, वह भी सुनाई पड़ने लगे। स्वर तो है ही संगीत में, शून्य भी है। स्वर ऊपर का आवरण है। शून्य भीतर का प्राण है। रूप तो है ही फूल में, अरूप भी है। रूप तो है ही एक सुंदर स्त्री में, सुंदर पुरुष में; अरूप भी है। आकार तो दिखाई पड़े ठीक, निराकार भी दिखाई पड़े। आंख चाहिए ऐसी।
तुम आंख फोड़ रहे हो, कि रूप से डर गए हो कि कहीं रूप न दिखाई पड़ जाए, नहीं तो वासना पैदा होती है। ठीक है। रूप दिखाई पड़ने से वासना पैदा होती है। आंख फोड़ लेने से रूप दिखाई न पड़ेगा। इस भ्रांति में मत रहना। अंधे में भी वासना होती है भयंकर वासना होती है। और तुम तो कुछ भी कर सकते हो। वह बेचारा कुछ कर नहीं पाता। इसलिए बड़ी असहाय वासना होती है। बड़ी विकृत, पर्वर्टेड।
सच है। रूप दिखाई पड़ने से वासना पैदा होती है। इसका अर्थ है कि थोड़ा और गहरे देखो: अरूप दिखाई पड़ने के करुणा पैदा होती है। रूप दिखाई पड़ने से काम पैदा होता है। अरूप दिखाई पड़ने से प्रेम पैदा होता है। आंख को बढ़ाओ, स्वाद को बढ़ाओ। स्वाद को मिटाओ मत। जीभ को जला लेना बहुत आसान है। क्या कठिनाई है? स्वाद से घबड़ाओ मत। स्वाद में परम स्वाद भी छिपा है। अस्वाद को उपलब्ध नहीं होना है, परम स्वाद को उपलब्ध होना है। तब तुम परमात्मा की धारा में बह रहे हो। तब तुम्हें कुछ करना न पड़ेगा। तुम ऐसे ही बहते हुए पहुंच जाओगे। धारा जा रही है सागर की तरफ। तुम बस, धारा के साथ एक हो जाओ।
दाया रखि धरम को पाले, जगसूं रहे उदासी
अपना सा जिव सबको जाने ताहि मिले अविनासी।
दो शब्द दया, करुणा। जिसमें करुणा जग गई, सब जग गया।
धर्म-धर्म से तुम अर्थ मत लेना, हिंदू धर्म, मुसलमान धर्म, ईसाई धर्म; नहीं। क्योंकि वे सब तो क्रियाकांड हैं। धर्म से मूल अर्थ है, स्वभाव; स्वयं को साध ले। हम कहते

हैं आग का धर्म—ताप; पानी का धर्म—शीतलता। क्या है धर्म तुम्हारा—मनुष्य का? क्या है गुण तुम्हारा, तुम्हारी निजता का? चैतन्य, होश बुद्धत्व। जो प्रज्ञा को साध ले और करुणा को; जो जाग जाए और करुणावान हो जाए...।

दाया रखि धरम को पाले, जगसूं रहे उदासी।

वह अपने आप इस अपने के प्रति, जो चारों तरफ चल रहा है, उदास हो जाता है। पर यह उदासी घृणा की नहीं है। क्योंकि घृणा कभी उदास नहीं होती।

दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक जो दुनिया के राग में पड़े हैं, वे उदास नहीं हैं। दूसरे—जो दुनिया के प्रति विरागी हो गए हैं, वे भी उदास नहीं है। प्रेम घृणा में ब दल गया। मित्रता शत्रुता बन गई। जिस तरफ देखते थे, वहां पीठ कर ली। लेकिन उदासी नहीं है।

उदास तो वह है, जो दोनों से मुक्त हो गया—राग से, विराग से। जिसको महावीर ने वीतराग कहा है। जो उदास है। उदास का अर्थ तुम्हारी उदासी नहीं कि पत्नी ना राज है, तुम उदास बैठे हो। कि धंधा ठीक नहीं चल रहा है, तुम उदास बैठ हो। य ह तो राग है, यह उदासी नहीं है। यह तो राग असफल हो रहा है, इसलिए तुम उ दास हो।

तुम्हारा आनंद भी झूठा है। कि आज धंधा खूब चला, कि तुमने ग्राहकों को खूब लूट ा, कि तुम बड़े प्रसन्न घर चले जा रहे हो। पैर पड़ते नहीं जमीन पर, आकाश में उ. डते हैं। यह आनंद भी आनंद नहीं है। यह भी राग है। राग और विराग दोनों जब छूट जाएं। न तो संसार के प्रतिराग रहे और न घृणा। न द्वेष रहे, न राग; तब उदा स।

उदासी परम अनुभव है। उदासी से बड़ा इस जगत में कुछ भी नहीं है। उदासी सुख भी नहीं है ध्यान रखना, जैसे तुम्हारे शब्द कोषों में लिखा है। उदासी परम आनंद है। संसार के प्रति उदासी तब ही आती है जब अपने प्रति परमानंद आ जाता है। जब परमात्मा में नृत्य चलने लगते हैं तब संसार के प्रति उदासी आ जाती है।

जैसे छोटा बच्चा है, वह बड़ा हो गया। अब खिलौने पड़े हैं कोने में, वह निकल भी जाता है, देखता भी नहीं कमरे से। कभी बिलकुल पागल था। कभी इतना पागल था, कि रात भी खिलौने को साथ लेकर सोता था। बिना खिलौने के नींद भी नहीं आ ती थी। कोई दूसरा मांगता खिलौना तो लड़ने को तैयार हो जाता था। अब बड़ा हो गया, समझ आ गई, खिलौने पड़े हैं। धीरे-धीरे कचरे में फेंक दिए जाएंगे।

जिस दिन तुम्हें बड़ा आनंद मिल जाता है, छोटे आनंद अपने आप पड़े रह जाते हैं, खिलौने हो जाते हैं। जिस दिन परमात्मा मिलता है, संसार के प्रति उदासी हो जाती है। तुम संसार के प्रति उदास होने की कोशिश मत करना। अन्यथा उदासी गलत होगी। वह उदासी विराग की होगी। तुम तो परमात्मा को पाने की कोशिश करो। त ब एक अनूठी उदासी आती है, जिसका स्वभाव आनंद का है। जो बड़ी विरोधाभासी है। संसार के प्रति कोई अच्छा न बुरा भाव रह जाता। सब खो जाता है। अपने में कोई लीन है। इतना आनंदित है कि कुछ और चाह न रही। सब मिल गया। कुछ प

ाने को न बचा। संसार की तरफ जो उदासी है, वही परमात्मा की तरफ आनंद है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है।

दाया रखि धरम को पाले, जगसूं रहै उदासी
अपना सा जिव सबको ताहि मिले अविनासी।

और जैसे ही ये दो घटनाएं घटती हैं, दया और धर्म; करुणा और प्रज्ञा; वैसे ही दिखाई पड़ता है कि जो ज्योति मुझे जल रही है, वही सबमें जल रही है।

अहिंसा अपने आप पैदा हो जाती है। चींटी में भी वही है। हाथी में भी वही है। वृक्ष में भी वही है। छोटे में, बड़े में, विराट में, सबमें वही है। और वह मैं ही हूं। तत्वमसि श्वेतकेतु। वह मैं हूं। वह श्वेतकेतु तुम्हें हो। एक ही का विस्तार है अनेक में।

सहे कुसबद बाद को त्यागे छाड़े गरब गुमाना

तब सब गर्व और गुमान, सब अहंकार और अस्मिता छूट जाती है। तब सब कुशब्द, कोई गाली दे रहा है, अपमान कर रहा है, कुछ सालता नहीं।जो उदास हो गया संसार के प्रति। कोई गाली दे तो बराबर, कोई स्तुति करे तो बराबर।

सहे कुसबद, बाद को त्यागे--

और जब उसको कोई वाद नहीं है।

ईश्वरवादी का कोई वाद नहीं है। ईश्वर को जाननेवाले का कोई सिद्धांत नहीं है। सिद्ध का कोई सिद्धांत नहीं है, वह स्वयं ईश्वर है। वह समझाता नहीं सत्य के संबंध में; वह सत्य ही समझाता है। वह बोलता नहीं सत्य के संबंध में, सत्य ही उससे बोलता है।

सहे कुसबद बाद को त्यागे, छाड़ गरब गुमाना
सत्य नाम ताहि को मिलि है, कहै कबीर दिवाना।

पागल कबीर कहता है, कि जिसने ऐसा कर लिया, मुर्दा क्रिया-कांड छोड़ दिया, जीवत अंतधर्म में जागा, वासना की ऊर्जा को करुणा बना लिया, कोई वाद, कोई शास्त्र जिसमें न रहा, जो शास्त्र-शून्य और वाद-शून्य हो गया। और जिसने सबके भीतर एक ही अखंड ज्योति को जलता देखा, वह उस अविनाशी को पा सकता है। वही पाता है।

कहै कबीर दिवाना।

भगति भजन हरिनाम

पीछें लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगे थे सदगुरु मिला, दीपक दिया हाथि।।
भगति भजन हरिनाम है, दूजा दुख अपार।
मनसा वाचा कर्मना कबीर सुमरिन सार।।
मेरा मन सुमरे राम कूं, मेरा मन राम ही आहि।
अब मन रामही व्है रहया सीस नवावें काहि।।
सब रग तंत रबाब तन, विरह बजावे नित।

और न कोई सुन सके कै सांई के चित्त।।
इस तन का दीवा करूं, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौ पीव।।
जीवन बीतता है बूंद-बूंद। रिक्त होता है रोज। हाथ से जैसे रेत सरकती जाए वैसे पैर के नीचे की भूमि सरकती जाती है। दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि देखने के लिए ब. डी सजगता चाहिए। और इतनी धीमे-धीमे बीतता है जीवन, कि पता नहीं चलता ि क हर घड़ी मौत निकट आ रही है। जब भी कोई मरता है तो मन सोचता है, मौत सदा दूसरे की होती है। मैं तो कभी मरता नहीं; कोई और मरता है। पड़ोसी मरत ा है। लेकिन मौत तुम्हारी मौत की खबर लाती है। जो पड़ोसी को हुआ है, वही तुम् हें भी होने वाला है।
आखिरी क्षण तक भी होश नहीं आता। गफलत में, बेहोशी में; आपने ही हाथ से अ ादमी अपने को समाप्त कर लेता है। और जो भी तुम कर रहे हो उसका कोई भी अत्यंतिक मूल्य नहीं है। कितना ही धन कमाओ, कितनी ही पद-प्रतिष्ठा मिले, मौत सभी कुछ साफ कर देती है। मौत सब मिटा देती है। तुम्हें बनाए सब घर, ताश के पत्तों के घर सिद्ध होते हैं। और तुम्हारे द्वारा तैराई गई सभी नावें कागज की ना वें सिद्ध होती हैं। सब डूब जाता है।
जिसे यह होश आना शुरू हो गया कि मौत है, उसी के जीवन में धर्म की किरण उ तरती है। मौत का स्मरण धर्म की प्राथमिक भूमिका है। अगर मृत्यु न होती तो संस ार में धर्म भी न होता। मृत्यु है, इसलिए धर्म की संभावना है। और जब तक तुम मृत्यु को झुठलाओगे तब तक तुम्हारे जीवन में धर्म की किरण न उतरेगी।
मृत्यु को ठीक से समझो। क्योंकि उसके आधार पर ही जीवन में क्रांति होगी। तुम्हें अगर पता चल जाए कि आज सांझ ही मर जानता है, तो क्या तुम सोचते हो, तुम् हारे दिन का व्यवहार वही रहेगा जो इसे पता चलने पर रहता? क्या तुम उसी भांि त दुकान जाओगे? उसी भांति ग्राहकों का शोषण करोगे? क्या उसी भांति व्यवहार करोगे, जैसा कल किया था? क्या पैसे पर तुम्हारी पकड़ वैसे ही होगी, जैसे एक क्ष ण पहले तक थी? क्या मन में वासना उठेगी, काम जगेगा? सुंदर स्त्रियां आकर्षित करेंगी? राह से गुजरती कार मोहित करेगी? किसी का भवन देख कर ईर्ष्या होगी? नहीं, सब बदल जाएगा।
अगर मौत का पता चल जाए कि आज ही सांझ हो जाने वाली है, तुम्हारी जीवन का सारा अर्थ, तुम्हारे जीवन का सारा प्रयोजन, तुम्हारे जीवन का सारा ढंग और शै ली बदल जाएगी। मौत का जरा सा भी स्मरण तुम्हें वही न रहने देगा जो तुम हो।

और तुम जो हो, बिलकुल गलत हो। क्योंकि सिवाय दुख के और तुम्हारे होने से कु छ भी फूल नहीं आता। फल लगते हैं निश्चित; केवल दुख के लगते हैं। फल लगते हैं निश्चित। तुम्हारी आशाओं के अनुकूल नहीं, न तुम्हारे स्वप्नों के अनुसार। फल ल गते हैं तुम्हारी आशाओं के विपरीत। तुम्हारे सपनों से बिलकुल उलटे।

जीवन के अंत में सिर्फ राख छूट जाती है हाथ में। और एक विषाद और एक गहन पीड़ा, कि एक और अवसर खो गया। इसीलिए तो मरते वक्त लोग इतने दुखी और पीड़ित मरते हैं। अन्यथा अगर जीवन की चरितार्थता उपलब्ध हुई हो और जीवन की धन्यता को जाना हो और जीवन एक गीत बन गया हो, जिसे कबीर कहते हैं, सुमिरन बन गया हो; एक याददाश्त, कि मैं कौन हूं, तो मृत्यु तो एक महोत्सव हो जाएगी। क्योंकि वह तो सारे जीवन की परिपूर्णता है। वह तो सारे जीवन का निचोड़ है, सार है। तब मृत्यु न होगी, महाजीवन में प्रवेश हो जाएगी।

जो जान कर जीता है उसकी मृत्यु समाधि हो जाती है। जो अनजान जीता है, उसका जीवन भी मृत्युवत है। जा होश से जीता है वह मरता ही नहीं। जो बेहोशी में जीता है वह कभी जीता ही नहीं। उसका जीवन एक प्रवेचना है।

और स्वभावतः जिनके बीच तुम पैदा हुए हो वे ऐसे ही मुर्दे हैं। और उनके पीछे ही तुम चल रहे हो। कबीर कहते हैं--

पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।

लोगों के पीछे चला जा रहा था। जहां लोग जा रहे थे वहां मैं चला जा रहा था। उनका अनुसरण कर रहा था। इस बात को विना सोचे कि वे उतने ही अंधे हैं जितना मैं हूं। बिना यह सोचे कि इस सारी भीड़ का क्या अंत होता है, आदमी भीड़ के साथ चलता है। बड़े गहरे कारण हैं। वे समझ लेना जरूरी हैं।

समाज व्यक्ति का शत्रु है। समाज तुम्हें भेड़ों की भांति चाहता है, व्यक्तियों की भांति नहीं। क्योंकि व्यक्ति के साथ ही बगावत का स्वर शुरू हो जाता है। व्यक्ति के साथ ही होश। और जैसे ही होश की पहली किरण उतरी कि व्यक्ति अपने मार्ग को खोजने में लग जाता है। फिर वह भीड़ के पीछे नहीं चलता। कितना ही सुंदर राजपथ हो, कितना साफ-सुथरा हो, कंटकाकीर्ण न हो, फिर भी वह भीड़ की पीठ के साथ नहीं चलता। वह अपना रास्ता बनाना शुरू करता है होश जैसे ही आया; कि तुम समाज से टूट जाते हो। तुम पहली दफा स्वयं होते हो। और स्वयं होने में बगावत है, विद्रोह है, क्रांति। इसलिए कोई समाज बर्दाश्त नहीं करता व्यक्ति को।

जन्म के पहले क्षण से लेकर मृत्यु की आखिरी घड़ी तक समाज व्यक्ति को नष्ट करने की कोशिश करता है, दबाता है। हर तरह से तुम्हें तोड़ता है। तुम कहीं आत्मवान न हो जाओ; क्योंकि तुम अगर आत्मवान हुए तो समाज का नियंत्रण तुम पर न हो सकेगा।

अब तक किसी आत्मवान व्यक्ति पर समाज नियंत्रण नहीं कर सका। सिर्फ मुर्दों को काबू में रख सकता है। जिंदा व्यक्ति एक आग है। उसे हाथ में बांध कर रखना आसान नहीं। उसके ऊपर कोई बंध नहीं हो सकते। तुम जिंदा व्यक्ति को कारागृह में डाल सकते हो, लेकिन कैदी नहीं बना सकते। तुम जंजीरें पहना सकते हो, लेकिन तुम उसकी स्वतंत्रता नहीं छीन सकते। उसकी स्वतंत्रता आंतरिक है। होश की स्वतंत्रता है।

इसलिए सभी समझा, बिना किसी अपवाद—चाहे वह पूंजीवादी हों, या समाजवादी हों
, चाहे साम्यवादी हों—सभी समाज व्यक्ति के दुश्मन हैं। और समाज में होने वाली
कोई भी क्रांति वास्तविक क्रांति नहीं है, धोखा है। चाहे फ्रांस में हो, चाहे रूस में,
चाहे चीन मग, सभी क्रांतियां धोखे हैं। क्योंकि क्रांति कुछ भी करती नहीं। समाज
के एक ढांचे को दूसरे ढांचे से बदल देती है। एक गुलामी की जगह दूसरी गुलामी
आ जाती है। और स्वभावतः दूसरी गुलामी पहली गुलामी से अक्सर ज्यादा ताकतव
र सिद्ध होती है क्योंकि नई होती है।

पुरानी गुलामी जराजीर्ण हो गई होती है। उसमें से छेद होते हैं निकलने के बाहर।
उसकी दीवारें गिर गई होती हैं। उसके द्वार दरवाजे कमजोर हो गए होते हैं। उसके
पहरेदार शिथिल हो गए होते हैं। कारागृह का मालिक आश्वस्त हो गया होता है ि
क सब ठीक चल रहा है। सो जाता है।

नई गुलामी, पुरानी गुलामी से हमेशा ज्यादा मजबूत होती है। क्योंकि कारागृह नए
बनते हैं। द्वार दरवाजे मजबूत बनते हैं। और नये समाज की व्यवस्था जानती है, कि
जिस तरह हमने पुरानी व्यवस्था को तोड़ दिया है, कोई दूसरी बगावत इस व्यवस्थ
ा को न तोड़ दे। इसलिए नई व्यवस्था पुरानी से ज्यादा कुशल होती है।

जार के जमाने में रूस में जितनी आजादी थी, उतनी स्टैलिन के जमाने में न रही।
और च्यांग-काई-शेक के साथ चीन में जितनी स्वतंत्रता थी, उतनी माओ के साथ न
रही। गर्दन और कस जाती है। क्योंकि क्रांति असली क्रांति से बचाव करने की व्य
वस्था है।

असली क्रांति सिर्फ एक है—कि व्यक्ति समाज से मुक्त हो जाए।

मुक्त होने का यह अर्थ नहीं है, कि समाज में नियम है कि रास्ते में बीच में मत च
लो, तो वह बीच में चलने लगे। वह तो मूढ़ता होगी, मुक्ति न होगी। मुक्त हो जा
ने का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। क्योंकि जो स्वच्छंद होगा, वह समझा ही नहीं। स्वच्छं
दता तो गुलामी की ही उलटी तस्वीर है। स्वतंत्रता न तो स्वच्छंदता है और न गुला
मी। वह दोनों के मध्य में परम जागरण है।

वैसा व्यक्ति समाज का दुश्मन नहीं होता। पर वैसा व्यक्ति समाज की छाया भी नहीं
होता। जहां तक समाज की गौण व्यवस्था का संबंध है, वह हमेशा राजी होता है।
क्योंकि उसका कोई मूल्य ही नहीं है।

रास्ते पर नियम है भारत में, कि बाएं चलो; अमरीका में, कि दाएं चलो; क्या फर्क
पड़ता है? चाहे बाएं चलो, चाहे दाएं चलोगे। एक बात तय है, कि सभी लोग एक
ही तरफ चलें, ताकि रास्ते पर सुविधा रहे। बाएं चलने से भी काम चल जाता है,
दाएं चलने से भी चल जाता है। लेकिन सभी लोग बाएं-दाएं इकट्ठा चलने लगें तो
काम न चलेगा। तो अड़चन होगी। ये गौण नियम हैं। ये कोई शाश्वत नियम नहीं है
। और न ही इनमें कोई नीति है। और न कोई इनमें परमात्मा का हाथ है, हस्ताक्ष
र है। समाज की सुविधा है।

स्वतंत्र व्यक्ति समाज की सुविधा में बाधा नहीं डालता, सहयोगी होता है। लेकिन स
माज की सुविधा के लिए अपनी आत्मा को खोने को राजी नहीं होता। जहां तक बा
एं-दाएं चलने का सवाल है, बिलकुल राजी होता है। लेकिन जहां समाज आग्रह कर
ता है, कि तुम अपनी आत्मा ही खो दो, वहां वह उस आग्रह को ठुकरा देता है।
लेकिन समाज को उससे कोई बाधा भी नहीं आती। लेकिन समझा की सुविधा के लि
ए अपनी आत्मा को खोने को राजी नहीं होता। जहां तक बाएं-दाएं चलने का सवा
ल है, बिलकुल राजी होता है। लेकिन जहां समाज आग्रह करता है, कि तुम अपनी
आत्मा ही खो दो, वहां वह उस आग्रह को ठुकरा देता है।

लेकिन समाज को उससे कोई बाधा भी नहीं आती। क्योंकि आत्मा कोई रास्ते का ट्रै
फिक नहीं है। वहां तुम बिलकुल अकेले हो। वहां दूसरा है ही हनीं। इसलिए वहां स
माज के नियमन की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन समझा को खतरा है। खतरा
यह है कि, आत्मवान व्यक्ति दबाया नहीं जा सकता। आत्मवान व्यक्ति झुकाया नहीं
जा सकता है।

और आत्मवान व्यक्ति संक्रामक होता है। जो और भी बड़ा खतरा है, क्योंकि जैसे ह
ी कोई व्यक्ति आत्मन होता है। उसके आसपास फैलने लगती है आत्मवता की, भग
वत्ता की। दूसरे लोग भी आत्मवान होने लगते हैं। और अगर बहुत लोग को छोड़
कर अपने रास्ते और पगडंडियां खोजने लगें, तो वह जो राजपथ का बल है, वह टू
ट जाता है। समाज निर्बल हो जाता है। क्योंकि आत्मवान व्यक्ति मौलिक रूप से अर
ाजक होता है, स्वच्छंद नहीं। लेकिन वह कोई शासन पसंद नहीं करता।

इसलिए तो कबीर कहते हैं, कि जब अब मैं हरि हो गया तो किसके सामने सिर झु
काना? आत्मवान व्यक्ति एक दिन पाता है, कि वह स्वयं परमात्मा है। अब कैसे सि
र झुकाना? कहां झुकाना? क्यों झुकाना?

इसलिए नहीं, कि वह कोई अहंकारी है; नहीं आत्मवान तो होती ही तब है, जब अ
हंकार खोज जाता है। नहीं, लेकिन अब कुछ बचा ही नहीं, जहां सिर झुकाना। सिर
झुकानेवाला भी नहीं बचा। सिर भी नहीं बचा। सब खो ही गया है। तो न तो राज
य पसंद करता है आत्मवान व्यक्ति को, न तुम्हारे तथाकथित धर्म पसंद करते हैं,
आत्मवान व्यक्ति को, क्योंकि मंदिर मस्जिद वह छोड़ देगा।

वहां सिर पटकना? आदमी की बनाई हुई मूर्तियों के सामने सिर पटकने से होगा भी
क्या? वे गुलामी के जाल हैं, जो समाज ने सब तरफ फैला रखे हैं। कारागृह भी उ
सी का कारागृह है। और जिसे तुम मंदिर कहते हो वह भी उसी का कारागृह है। ि
जसको तुम पुलिस का आदमी कहते हो, वह भी समाज का नौकर है। और जिसको
तुम पुजारी, पुरोहित कहते हो वह भी उसी समाज का उतना ही नौकर है। वे दो
नों ही पुलिसवाले हैं। एक तुम्हारे शरीर के ऊपर नियंत्रण रखता है, दूसरा तुम्हारी
आत्मा पर नियंत्रण रखता है। तुम छूट न जाओ।

और जैसा मैंने कहा, जन्म के पहले क्षण से समाज का हस्तक्षेप शुरू हो जाता है तुम्
हें मारने का। वह बच्चा पैदा नहीं हुआ, कि समाज मौजूद है। जैसे ही बच्चा पैदा ह

ोता है, नवीनतम खोजें कहती हैं विज्ञान की कि जैसे ही बच्चा पैदा होता है सारी दुनिया में दाइयां, डाक्टर, नर्सेस बच्चे की नाल को तत्क्षण काट देते हैं। और नवीन तम विज्ञान की खोजे कहती हैं, कि बच्चे की नाल को तत्क्षण काटना सदा के लिए उसे कमजोर बना देना है। सदा के लिए। वह कभी बलवान न हो सकेगा। और स दा उसकी ऊर्जा क्षीण प्रवाह की होगी।

उसके पीछे कारण है। मां के पेट बच्चा श्वास खुद नहीं लेता। नाभि से जुड़े नाल से मां ही उसके लिए श्वास लेती है। मां की श्वास पर ही बच्चे का हृदय धड़कता है लेकिन बच्चा स्वयं श्वास नहीं लेता। श्वास, आक्सीजन, वायु, प्राण नाभि से भीतर जाते हैं। वह बच्चे की व्यवस्था है मां के पेट में, कि वह मां का एक अंग है। मां का अंग होकर जीता है।

जैसे ही बच्चा मां के पेट के बाहर आया, एकदम से श्वास नहीं ले सकता। क्योंकि नये यंत्र को चलने में थोड़ा वक्त लगेगा।भीतर एक बड़ा रूपांतरण घटेगा। अभी तक नाभि से सांस ली थी, अब नाक से सांस लेगा। एक नई व्यवस्था शुरू होगी। इसमें कोई पांच मिनिट, सात मिनिट लगते हैं। लेकिन हम बच्चे की नाल तत्क्षण काट दे ते हैं। जब कि बच्चा मां से अभी नाल के द्वारा सांस ले ही रहा था। पांच-सात मिन ट में रूपांतरण हो जाएगा। बच्चा सांस लेने लगेगा, उसका हृदय धड़कने लगेगा, त ब तुम नाल को काटना। क्योंकि अब बच्चा स्वयं अपनी ऊर्जा को पाने लगा। ज्यादा देर नहीं लगती, पांच-सात मिनट का ही मामला है, लेकिन धैर्य नहीं है समाज को। बड़े से बड़े अस्पताल में, कुशल से कुशल डाक्टर के नीचे भी वही हो रहा है जो ए क गैर-कुशल दाई गांव मग कर रही है। बे-पढ़ी लिखी दाई गांव में कर रही है। उ नके काटने के ढंग बदल गए हैं। दाई बेहूदे ढंग से काटती है, उसके पास उतने कुश ल औजर नहीं। डाक्टर बड़ी कुशलता से काटता है। उसके पास सुविधा संपन्नता है। सारे कुशल औजार हैं। लेकिन दोनों एक ही काम कर रहे हैं।

जैसे ही तुम नाल काट देते हो, सारे बच्चे का जीवन-तंत्र जाता है, हड़बड़ा जाता है । और इसलिए बच्चा रो उठता है, चीखता है। क्योंकि एक नई सांस की व्यवस्था उसको लेनी पड़ती है। घबड़ाहट से सांस लेता है। और पहली सांस जिसने घबड़ाहट से, भय से, कंपन से ली हो उसमें जीवनभर भय और कंपन प्रविष्ट हो जाएगा। क्यों कि श्वास जीवन है। भय पहली ही श्वास से जुड़ गया। अब पूरा जीवन यह भयभीत आदमी होगा।

पांच मिनिट रुका जा सकता है। पांच मिनिट के बाद अपने आप नाभि से जुड़ा हुआ नाल और उसका कंवन बंद हो जाता है। पांच मिनिट तक कंपन जारी रहता है। क योंकि धड़कन जारी रहती है, श्वास जारी हरती है। पांच मिनट में नाल अपने आप बंद हो जाती है। प्रकृति के द्वारा ही उसका कंपन बंद हो जाता है। उसकी गर्मी औ र ऊर्जा खो जाती है। यंत्र बदल गया।

अब तुम काट सकते हो। अब तुम मुर्दा चीज को काट रहे हो। पांच मिनिट पहले तु म जिंदा चीज को काट रहे थे, और तुमने बच्चे को पहला धक्का दे दिया, और बच

चा बहुत कोमल है, अति कोमल है। नौ महीने मां के पेट में उसने कोई कष्ट नहीं जाना। कोई पीड़ा नहीं जानी। किसी तरह का दुख नहीं जाना। एकदम स्वर्ग से, आदमी के बगीचे से बाहर आ रहा है। और तुमने उसे पहला धक्का दे दिया। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यह जो धक्का है, यह सारी दुनिया को कमजोर बनाए हुए है।

डाक्टर को जल्दी है। शायद वह कहेगा, कि पच्चीस और बच्चे होनेवाले हैं। हड़बड़ाहट है, बेचैनी है, उसका खून मन तना हुआ है। और उसे पता नहीं, वह क्या कर रहा है। अब तो यह अचेतन का हिस्सा हो गया, कि बच्चा पैदा हुआ, नाल काट दी। जन्म की पहली घड़ी से भय समाविष्ट हो गया। अब तुम्हें कोई भी डरा सकेगा। सब तुम्हें कोई भी चीज डरा सकेगी। पुलिस का डंडा डरा सकेगा। पुरोहित की आवाज डरा सकेगी, कि नर्क चले जाओगे। अब तुम्हें कोई भी प्रलोभित कर लेगा। क्योंकि प्रलोभन भय का ही दूसरा रूप है।

और यह चलती है समाज की व्यवस्था अंतिम क्षण तक, आखिरी दम तक। तुम जीवन चाहो तो भी तुम स्वतंत्र नहीं; हस्तक्षेप है। तुम मरना चाहो तो भी हस्तक्षेप है। मरने की स्वतंत्रता नहीं है।

यूरोप और अमेरिका में जहां चिकित्सा ने बहुत विकास कर लिया है, लाखों लोग अस्पतालों में पड़े हैं जो मरना चाहते हैं। जो सरकारों को आवेदन करते हैं, कि हम करना चाहते हैं। कोई सौ साल के करीब पहुंच गया है। जीवन जी लिया गया, जो जानना था जान लिया, जो भटकना था भटक लिया, जो देखना था देख लिया, अब न कुछ देखने को बचा, न जानने को। न अब कोई जीने में रस रह गया है।

लेकिन डाक्टरों को आज्ञा नहीं है किसी को मरने में सहायता देने की। ने केवल यही, बल्कि डाक्टरों को आज्ञा है, कि जब तक बन सके आदमी को जिंदा रखने की कोशिश करे। तो लोग टंगे हैं, अस्पतालों में। टांगें बंधी है, हाथ बंधे हैं, आक्सीजन की नली लगी है। ग्लूकोज दिया जा रहा है। न उन्हें ठीक से होश है, न जीवन जैसी कोई चीज बची है। वे मरना चाहते हैं क्योंकि यह पीड़ा है अब। लेकिन मरने की किसी दुनिया के कानून में आज्ञा नहीं है। मरने की भी तुम्हें आजादी नहीं है।

तो पश्चिम में एक नया आंदोलन चल रहा है। आत्म-मरण की स्वतंत्रता का आंदोलन। अथनासिया उसको वे कहते हैं। कि जो लोग मरना चाहते हैं दुनिया में, कोई उन्हें रोकने का किसी को हक नहीं हो। होना भी नहीं चाहिए। जिंदगी मेरी है। मैं मरना चाहता हूं। मरने की आज्ञा नहीं है।

अगर अपने को मरने की कोशिश में कपड़े गए तो सरकार तुम्हें मार डालेगी। मगर तुम्हें आजादी नहीं है। यह बहुत मजे की बात है। अगर मैं चला जाऊं, और पहाड़ से गिर कर मरने की कोशिश करूं, और पकड़ लिया जाऊं तो सरकार मुझे फांसी देगी। क्योंकि मैंने गलत काम करने की कोशिश की। मैं भी यही काम कर रहा था, लेकिन उससे स्वतंत्रता निहित थी। वह आज्ञा तुम्हें नहीं है। वह सरकार करे तो ठीक है। तुम करो, तो नहीं।

क्योंकि अगर मरने की तुम्हें आजादी हो जाए तो तुम जल्दी ही जीने की आजादी भ
ी मांगोगे। वह संयुक्त है। दोनों आजादियां तुम्हें भी नहीं जा सकतीं।
पैदा हुआ बच्चा, कि समाज की पूरी चेष्टा है, कि समाज का अनुकरण करे, अनुसर
ण करे, पीछे चले। हमेशा आगे देख ले कि कोई है या नहीं। अगर कोई पीठ न हो
तो ठिठक कर खड़ा हो जाए। खतरा है। गलत रास्ते पर जा रहा है। जब तक आगे
पीठ दिखाई पड़ती रहे, तभी तक रास्ता ठीक है।
ये कबीर के वचन बड़े अनूठे हैं। कबीर कहते हैं--
पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
समाज यानी लोक; और वेद यानी शास्त्र। दो के पीछे चला जा रहा था। पीठ भर ि
दखाई पड़ रही थी। पीछे से धक्के थे, आगे पीठ थी। एक भीड़ चली जा रही है। ब.
डी भीड़ है। कोई चार अरब आदमी जमीन पर हैं। भारी, भयंकर प्रवाह चल रहा है
। तुम्हारी छोटी-सी लहर की किसको चिंता है। भयंकर तूफान है। बड़ी लहरें उठ र
हे हैं और भागी जा रही हैं। तुम भी पीछे लगे चले जा रहे हो। सोचते हो, कि जब
तक पीठ दिखाई पड़ती है, सब ठीक ही होगा।
मैंने सुना है, कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा पी कर मधुशाला से निकला। ठीक
-ठाक दिखाई नहीं पड़ रहा था कहां जाए। बामुश्किल तो मधुशाला के नौकरों ने उ
से अपनी कार तक पहुंचाया। बामुश्किल आधे घंटे मेहनत करके किसी तरह उसे चा
बी कार में लगाई। फिर किसी तरह गाड़ी को पुरानी आदतवश चला भी लिया। लेि
कन तब सवाल उठा कि जाना कहां है? घर कहां है? यह गांव कौन सा है? बड़े द
ार्शनिक सवाल उठने लगे। तब एक ही उपाय था, कि किसी के पीछे हो लूं। और त
ो कोई उपाय नहीं। जाना कहां है? आ कहां से रहे हैं? कौन हैं? कहां घर है? यही
तो चिंता है सारे मनुष्यों की। सीधा सुगम उपाय है, किसी के पीछे हो लो।
एक कार के पीछे हो लिया। प्रसन्न था। अब सब ठीक है। कहीं जा हरे हैं। और न
केवल धीमी गति से जा रहे हैं, बड़ी तेज गति से जा रहे हैं। चित्त प्रसन्न था। और
क्या चाहिए? गति चाहिए। जरूर पहुंच जाएंगे। क्योंकि इतनी तेज गति से जा रहे
हैं।
और जो होना था, वह हुआ। आखिर में जा कर वह उस कार से टकरा गया। तो
उसने चिल्ला कर कहा, कि क्या मामला है? इशारा क्यों नहीं दिया, कि गाड़ी खड़ी
करते हो? उस आदमी ने बाहर सिर निकाल कर कहा कि अपने ही गैरेज में इशा
रा देने की जरूरत है?
पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
वही गति तुम्हारी है। किसी के पीछे लगे जा रहे हो। पीछे इसलिए नहीं लगे हो कि
जिसके पीछे लगे हो, वह जानता है। पीछे सिर्फ इसलिए लगे हो कि तुम नहीं जान
ते हो कि कहां जाना है। और जब तुम नहीं जानते हो तो तुम किसी के भी पीछे
लगो, कैसे पहुंच जाओगे? और तुम थोड़ा यह भी तो विचार करो, कि वह दूसरा
भी किसी के पीछे लगा है।

तुम अपने पिता की मान रहे हो। तुम्हारे पिता उनके पिता की मानते रहे। उनके पिता उनके पिता की मानते रहे। तुम थोड़ी यात्रा करो पीछे की तरफ। तो तुम पाओगे कि सभी लोग एक दूसरे के पीछे लगे हैं। और कौन कहां पहुंचता है?
इस जगत में थोड़े से लोग कहीं पहुंचते हैं। वे वे ही लोग हैं, जो किसी पीछे नहीं चलते। बुद्ध कहीं पहुंचते हैं क्योंकि लोगों के पीछे नहीं चलते। बेहतर है न चलना। बेहतर है बैठ जाना। बेहतर है निश्चित कर लेना ठीक से, कि जाना भी है या नहीं। साफ है गंतव्य। तो थोड़ी ही यात्रा है मंजिल तक।
गंतव्य का ही पता न हो, अपना भी ठौर-ठिकाना न हो कि कौन हूं! इसका भी कोई पक्का पता न हो कि जाना भी है, या नहीं जाना है? या कहां जाना है? तब तुम किसी के पीछे लग कर कितने ही चलते रहो, तुम्हारी यात्रा कोल्हू के बैल की यात्रा सिद्ध होगी। चलोगे बहुत, पहुंचोगे कहीं भी नहीं। चलोगे बहुत क्योंकि गोल घेरे में चलते रह सकते हो, जितना चलना चाहो। थकोगे रोज, सांझ थक कर फिर गिर जाओगे। सुबह उठ कर फिर लोक वेद के साथ हो जाओगे।
लोक, मौजूद भीड़ है; और वेद, जो भीड़ जा चुकी। मुर्दों की भीड़ है। दो भीड़ें तुम्हें घेरे हुए हैं। जिंदा तो तुम्हें पकड़े ही हुए हैं, जो मर गए उनके हाथ भी तुम्हारी गर्दन पर हैं। वेद का अर्थ है, जो अब नहीं हैं, उनके वचन तुम्हें सता रहे हैं। उनको तुम छाती से लगाए बैठे हो। जरूर उन्होंने कुछ जाना होगा, जरूर उन्होंने कुछ पहचाना होगा।
लेकिन दूसरी की आंख से देखे गुरु दृश्य तुम कैसे देख सकते हो? और दूसरे ने जो भोजन किया है, उससे तुम्हारी भूख की तृप्ति न होगी। और जल की कितनी ही चर्चा चले, इससे कहीं किसी की प्यास बुझी है? कोई तुम्हें बिलकुल लिख कर ही दे दे जल का सूत्र—एच. टू. ओ; तुम उस कागज को लिए जिंदगी भर घूमते फिरो, तो भी कंठ की प्यास उससे न बुझेगी। तुम उस कागज के मंत्र को घोल कर पी जाओ, तो भी तुम्हारी प्यास न बुझेगी। एच.टु. ओ. से प्यास नहीं बुझती।
एच. टू. ओ. यानी वेद। जिन्होंने जाना, उन्होंने सूत्र लिख दिए। लेकिन किसी सूत्र में उनका ज्ञान समाविष्ट नहीं होता। कोई सूत्र जो उन्होंने जाना है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। कोई शब्द सत्य को प्रकट करने में समर्थ नहीं है।
यही फर्क है सदगुरु और वेद में। वेद सदगुरुओं के वचन हैं। लेकिन सदगुरु जा चुका। जब खाली वचन रह गए हैं। ऐसा समझो, कि सांप तो जा चुका, उसकी खोल प. डी रह गई। ऐसा समझो, कि बुद्ध तो जा चुके हैं, उनके चरण चिन्ह रेत पर बने रह गए हैं। तुम उन चरण-चिन्हों पर सिर रखे पड़े हो।
जीवित भीड़ से सावधान होना जरूरी है। जो अब नहीं रहे, उनकी भीड़ से भी सावधान होना जरूरी है। वस्तुतः जो नहीं रहे, उनकी पकड़ और भी गहरी है। क्योंकि वे तुम्हें दिखाई भी नहीं पड़ते। उनसे तुम बचना भी चाहो तो कहां जाओ? वे बाहर नहीं हैं, वे तुम्हारे भीतर हैं।

हिंदू पैदा होते से ही वेद की पूजा में लग जाता है। मुसलमान पैदा होते से ही कुरा न की रटन में लग जाता है। जैन पैदा होते से महावीर को कंठस्थ कर लेता है। अब ये जो लकीरें छूट गई हैं जमीन, पर, ये तुम्हारी आत्मा पर खिंच जाती हैं। इन के कारण तुम की खाली नहीं हो पाते। इनके कारण तुम कभी शून्य नहीं हो पाते इ नके कारण तुम कभी शून्य नहीं हो पाते। इनके कारण कभी तुम ध्यान को उपलब्ध नहीं हो पाते। और मजा यह है, कि ये सभी शास्त्र ध्यान की बातें करते हैं, शून्य की बात करते हैं। तुम भी शून्य और ध्यान की बात करने लगते हो। लेकिन वह बा त ही होती है। बात में से बात निकलती जाती है। लेकिन तुम कोरे के कोरे रह ज ाते हो।

तुम्हारा जीवन तो तभी समृद्ध होगा, जब तुम्हारा वेद तुम्हारे भीतर पैदा हो जाए, वह उधार न हो। उस वेद को ही हम असली वेद कहते हैं, जो तुम्हारे ध्यान में जन् मेगा। निश्चित ही जिस दिन तुम्हारा वेद जन्म जाएगा, उस दिन पुराने वेद को भी तुम अगर पढ़ोगे तो समझोगे कि ठीक है। तुम गवाही हो जाओगे।

इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लेना, क्योंकि नाजुक है। वेद से तुम्हें ज्ञान नहीं मि लेगा। लेकिन ज्ञान अगर तुम्हें अपने ध्यान में मिल जाए, तो तुम वेद के गवाह हो जाओगे कि वह ठीक है। तुमने भी वैसा ही जाना। तुमने भी वही जाना, जो ऋषियों ने कहा है। लेकिन ऋषियों ने क्या कहा है, इसको कंठस्थ कर के कोई कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। ज्ञान को उपलब्ध होकर ऋषियों ने जो कहा है वह ठीक है, सम्यक है, यह प्रतीत आती है। तब सभी शास्त्र सच हो जाते हैं।

और इस फर्क को भी समझ लो। अगर तुमने वेद को कंठस्थ किया तो कुरान गलत रहेगा। सही न हो सकता। क्योंकि सत्य का तो तुम्हें पता नहीं है। तुम्हें शब्दों का पता है। वेद अलग शब्दों का उपयोग करता है, कुरान अलग शब्दों का उपयोग कर ता है। उन शब्दों में मेल न होगा। बाइबिल और अलग शब्दों का उपयोग करती है। तालमुद और अलग शब्दों का उपयोग करता है, उनमें मेल न होगा। तुम पाओगे ि क वेद सही, सब गलत। शेष सब गलत। महावीर सही, तो कृष्ण गलत। कृष्ण सही तो बुद्ध गलत।

सब के सही होने का तुम्हें पता नहीं चल सकता। इसलिए तुम शास्त्र से बंधे रहोगे। जिस दिन तुम्हारा वेद पैदा हो जाएगा, तुम्हारा कुरान भीतर, तुम्हारे प्राण का गी त पैदा होगा, तुम्हारी गीता पैदा होगी, वह भगवदगीता है। जब तुम्हारा भगवान गा उठेगा, तभी भवगदगीता। उस दिन तुम अचानक पाओगे कि वेद ही सही नहीं है, कुरान भी एकदम सही है। बाइबिल, तालमुद सब एक-साथ सही हैं।

सत्य इतना बड़ा है कि सभी शब्दों को समा लेता है। सत्य इतना बड़ा है कि सभी शास्त्र उसके साथ संयुक्त हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। सत्य तो सागर जैसा है जिस में सभी नदियां गिर जाती हैं। गंगा ही गिरती है ऐसा नहीं है, सिंधु भी वहीं गिर ज ाती है। गंगा ही पहुंचती है सागर तक ऐसा नहीं है; गोदावरी भी वहीं पहुंच जाती

है। और गौदावरी, गंगाओं को छोड़ दें, छोटे-छोटे नाले, जिनका कोई नाम भी नहीं, वे भी पहुंच जाते हैं। अनाम भी पहुंच जाते हैं।
सभी जल वहीं पहुंच जाता है, जहां से आता है। सभी अपने मूल रूप को उपलब्ध ह ो जाते हैं--देर अबेर। जिसने सत्य को जाना उसने सभी वेदों की, सभी शास्त्रों की सचाई को जान लिया।
कबीर कहते हैं--
पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
ये जो प्रत्यक्ष लोग हैं उनके पीछे भी चल रहा था, वह जो अप्रत्यक्ष भीड़ है अतीत के लोगों की, उनके पीछे भी चल रहा था। शास्त्र, सिद्धांत, शब्द, मान्यताएं, धारण ाएं--उनसे भरा था। उनके पीछे चल रहा था।
आगे थे सतगुरु मिला, दीपक दिया हाथि।
यह बड़ी ही सूक्ष्म वचन है। कबीर कहते हैं, कि अब तक तो लोगों की पीठ पीछे चल रहा था। गुरु इस तरह नहीं मिलता। गुरु आगे से मिला। आमने-सामने मिला। सम्मुख होकर मिला।
गुरु जब भी मिलता है, आमने सामने मिलता है। और कोई सदगुरु तुम्हें पीछे नहीं चलता। अगर कोई सदगुरु पीछे चलता हो तुम्हें, तो समझ लेना कि वह सदगुरु नहीं । वह फिर लोक वेद ही है। सदगुरु तो आगे से मिलता है। सूफियों में बड़ी प्रसिद्ध कहानी है।
एक सूफी फकीर हज की यात्रा पर गया। बूढ़ा फकीर था, तो शिष्यों ने सोचा कि उसके लिए एक गधा ले आना ठीक है। उन इलाकों में लोग गधों से यात्रा करते। तो गधा ले आए। लेकिन बड़े चकित हुए। क्योंकि फकीर जब उस पर बैठा तो उल टा बैठा। गधे के सिर की तरफ उसने पीठ कर ली और पूंछ की तरफ मुंह कर लि या। शिष्य कुछ कह न सके। क्या कहें? गुरु बहुत मान्य था और वह जो भी करता सदा ठीक ही करता। कोई राज होगा, मगर यह बड़ा बेहूदा लगता है।
वे सब चले। जैसे ही गांव में प्रविष्ट हुए, लोग हंसने लगे। भीड़ लग गई। आवारा ब च्चे पत्थर-कंकड़ फेंकने लगे। लोग बाहर निकल गाए घरों के। बड़ा तमाशा होने ल गा। आखिर शिष्यों को भी बड़ी बेचैनी लगने लगी। वे भी नीचा देख कर चल रहे हैं , कि जिस गुरु के साथ हम जा रहे हैं, वह गधे पर उलटा बैठा हुआ है। बदनामी तो हमारी भी हो रही है। उनकी तो हो ही रही है, मगर हम भी तो उनके पीछे च ल रहे हैं, तो लोग हम पर हंस रहे हैं।
लोग उनसे भी कहने लगे, किसके पीछे जा रहे हो, दिमाग खराब हो गया है? यह हज की यात्रा हो रही है? बहुत यात्राएं देखीं। यह तुम्हारा गुरु गधे पर उलटा क्यों बैठा है?
आखिर उन्होंने कहा कि सुनिए--अपने गुरु को--कि इस बात को आप साफ ही कर दें। राज जरूर होगा। मगर हम बड़े मुश्किल में पड़ गए हैं।

गुरु ने कहा, ऐसा है कि अगर मैं गधे पर सीधा बैठूं, तो मेरी पीठ तुम्हारी तरफ हो गी। और कभी किसी गुरु की पीठ अपने शिष्यों की तरफ नहीं हुई। अगर तुम मेरे पीछे चलो, मैं गधे पर सीधा बैठूं तो मेरी पीठ तुम्हारी तरफ होगी। यह भी हो सक ता है। क्योंकि मैंने सभी विकल्प सोच लिए तुम आगे चलो, मैं गधे पर पीछे बैठक र सीधा चलूं तो तुम्हारी पीठ गुरु की तरफ होगी। जब गुरु की पीठ भी क्षमा योग्य नहीं है कि शिष्य की तरफ हो, तो शिष्य की पीठ गुरु की तरफ हो तो यह तो अ क्षम्य अपराध हो जाएगा। तो यही एक सुगम उपाय है, कि मैं गधे पर उलटा बैठूं, तुम मेरे पीछे चलो। आमने-सामने हम रहे।

कहानी बड़ी प्रीतिकर है। बड़ी रहस्यपूर्ण है।

कबीर कहते हैं, आगे थे सदगुरु मिला।

गुरु सदा आगे से मिलता है। गुरु सदा तुम्हारे आमने-सामने मिलता है। वह तुम्हारी आंखों में आंखें डाल कर देखेगा। वह तुम्हारे हृदय से हृदय की बातें कहेगा।वह तुम् हारे सम्मुख होगा। वह तुम्हें अपने सम्मुख करेगा। यह मिलन सीधा-सीधा है। आमने-सामने है। यह साक्षात्कार है।

तो गुरु की किसी को अनुकरण नहीं करवाता। वह यह नहीं कहता, कि तुम मेरे जै से हो जाओ। तुम हो भी नहीं सकते। तुम्हारे होने की कोशिश में ही तुम भटक जा ओगे। कोई किसी जैसा नहीं हो सकता। परमात्मा एक जैसे दो व्यक्ति बनाता ही न हीं। उसका सृजन अनंत है। वह रोज नए-नए ढंग खोज लेता है। जैसे दो आदमियों के अंगूठे के चिन्ह एक जैसे नहीं होते, ऐसे दो आदमियों की आत्माएं भी एक जैसी नहीं होती।

व्यक्तित्व, मौलिक, अद्वितीय व्यक्तित्व प्रत्येक की संपदा है।

तुम बस, तुम जैसे हो। न तुम्हारे जैसा कोई व्यक्ति कभी हुआ है, न है, न होगा। क योंकि परमात्मा पुनरुक्ति करने मग भरोसा नहीं रखता। पुनरुक्ति तो वही करते हैं जिनकी सृजन की क्षमता क्षीण है। परमात्मा विराट है। वह चुक नहीं गया है कि अ ब फिर से बुद्ध को बनाए, कि फिर से राम को बनाए, और फिर से धनुष पकड़ा दे उनको। यह तो तभी होगा, जिस दिन परमात्मा चुक जाए। अब उसकी बुद्धि में कु छ न आए, अब उसकी प्रतिभा खाली पड़ जाए। तब फिर वह जुगाली शुरू कर दे। तब वह पुराने को दोहराने लगे। मगर उस दिन परमात्मा मर जाएगा। उसके जीवि त होने का अर्थ है, उसके सृजन का जीवित होना है।

मैंने सुना है कि एक मित्र ने, पिकासो के एक मित्र ने उसका एक चित्र खरीदा। पि कासो के चित्र लाखों में बिकते थे। उसने कोई पांच लाख रुपए में वह चित्र खरीदा। महंगा चित्र था। खरीदने के पहले पक्का कर लेना जरूर था, वे वह पिकासो का म ौलिक चित्र है या किसी की नकल है, या किसी और ने बनाया है। संदेह उसे नहीं था। संदेह इसलिए नहीं था, कि जब यह चित्र पिकासो बना रहा था तब वह पिकास ो से मिलने गया था और उसे पक्की तरह याद है कि यह वही चित्र है पिकासो को

बनाते देखा है। लेकिन फिर भी कौन जाने स्मृति भी धोखा देती हो। किसी और अ
ादमी ने ठीक प्रतिलिपि बनाई हो। तो पिकासो से पूछ लेना अच्छा है।
उसने जाकर पिकासो से कहा, कि यह चित्र मैं खरीद रहा हूं। पांच लाख रुपए का
माला है। खरीद लूं यह चित्र? आथेंटिक है, प्रमाणिक है, तुम्हारी ही बनाया हुआ है
? किसी की प्रतिलिपि तो नहीं है? पिकासो ने चित्र देखा और कहा कि नहीं। यह
प्रामाणिक नहीं है। चक्कर में मत पड़ जाना। तब तो वह मित्र बहुत हैरान हुआ। उ
सने कहा, कि तुम मुझे हैरान करते हो। क्योंकि इस चित्र को मैंने तुम्हें बनाते देखा।
पिकासो ने कहा यद्यपि मैंने ही इसे बनाया है, लेकिन यह प्रामाणिक नहीं है। तब
तो बात और उलझ गई। मित्र ने कहा, फिर प्रामाणिक का अर्थ क्या होता है? पिक
ासो ने कहा, प्रामाणिक का अर्थ होता है मौलिक। यह मेरी एक पुराने चित्र की प्रति
लिपि मैंने ही की है, इसलिए प्रामाणिक है एक अर्थ में, कि मैंने ही बनाई है। लेकि
न नई नहीं है। इसलिए इसके साथ मैं अपना नाम नहीं जोड़ना चाहता।
यह भी हो सकता है कि पिकासो का बनाया हुआ चित्र भी मौलिक न हो। क्योंकि ि
पकासो आखिर सीमित है; आदमी है। रोज नए चित्र नहीं बना सकता। लेकिन पुनरु
क्ति पिकासो खुद करे या कोई दूसरा आदमी करे, इससे क्या फर्क पड़ता है? पुनरुि
क्त, पुनरुक्ति है।
परमात्मा जीवित है, क्योंकि अभी वह चुक नहीं गया है। उसने दुबारा राम नहीं बन
ाए। उसने दुबारा कृष्ण नहीं बनाए। उसने दुबारा बुद्ध, महावीर नहीं बनाए। उसने दु
बारा कुछ बनाया ही नहीं। वह रोज नए बनाता है। यहां नितनूतन, चिर-पुरातन जी
वन का जो सृजन है, उसमें तुम किसी और जैसे होने को पैदा नहीं हुए हो। भूल क
र भी उस रास्ते पर मत जाना। तुम स्वयं होने को पैदा हुए हो।
गुरु तुम्हें अपना अनुकरण नहीं करवाता। गुरु तुम्हें साथ देता है, सहयोग देता है ताि
क तुम स्वयं हो जाओ। यही सदगुरु और असदगुरु का लक्षण है।
सदगुरु का अर्थ है, वह तुम्हें सहारा देगा, कि तुम तुम्हीं हो जाओ। तुम जो होने को
पैदा हुए हो वह हो जाओ। तुम्हारी नियति पूरी हो जाए। वह तुम्हें बनाएगा नहीं,
सहारा देगा। वह तुम्हारे ऊपर आरोपित नहीं करेगा। तुम्हारे भीतर जो छिपा है उस
के आविर्भाव में सहयोगी होगा। वह सब भांति तुम्हें साथ देगा, लेकिन किसी भी भां
ति तुम पर आरोपण नहीं करेगा। और जिस दिन तुम अपनी प्रतिभा में खिलोगे--अनू
ठे, उस दिन वह प्रसन्न होगा। अगर तुम एक प्रतिलिप हो गए, एक कार्बन-कापी हो
गए तो जितना दुखी सदगुरु होता है, उतना दुखी कोई और नहीं होता। वह चूक
गया। तुमने फिर मूढ़ता कर ली। तुम फिर लोक वेद के साथ चल पड़े।
...आगे थे सतगुरु मिला।
गुरु सदा आगे से मिलता है।
दीपक दिया हाथि।
और गुरु ने प्रकाश दिया। यह भी बड़ी सूक्ष्म बात है।

एक अंधा आदमी आए मेरे पास, और कहे कि मुझे गांव का नक्शा समझा दें। मैं अंधा आदमी हूं। गली, रास्ते, यहां आश्रम तक आने का मार्ग सब मुझे समझा दें, ताकि मैं भटकूं न, भूलूं न। कितना ही समझा दूं, अंधा धीरे-धीरे कंठस्थ भी कर ले, टटोल-टटोल कर आने लगे। फिर धीरे-धीरे इतना अभ्यासी हो जाए कि टटोलने की भी जरूरत न रहे, पूछने की भी जरूरत न रहे। सीधा चलता हुआ आश्रम आ जाए, तो भी अंधा अंधा ही होगा। और किसी दूसरे नगर में, इस नगर का नक्शा काम न आएगा। और अंधा जहां से आता है इस आश्रम तक अगर उसे किसी और जगह छोड़ दिया जाए तो वहां से इस आश्रम तक न आ सकेगा। उसका आना रूढ़ि बद्ध है।

तो क्या यह उचित होगा, कि अंधे को हम नक्शा दें और समझाएं; या यह उचित होगा कि उसके आंख की चिकित्सा करें? उसकी आंख ठीक हो जाए, फिर किसी नक्शे की कोई जरूरत नहीं। फिर कहीं भी तुम उसे छोड़ दो वह चला आएगा। फिर दूसरे नगर में भी उसकी आंखें काम आएंगी। और जिंदगी का नगर रोज बदल जाता है। प्रतिपल बदल जाता है। सुबह कुछ और है, सांझ कुछ और है। तुम एक ही जगह थोड़ी हो। जीवन की धारा रोज बदलती जा रही है। हर घड़ी सब नया हो रहा है। नदी बहती चली जाती है। एक ही नदी में दुबारा उतरने का कोई उपाय नहीं है। तो आंख ही काम आ सकती है जिंदगी में।

जो सदगुरु है, वह तुम्हें सिद्धांत देता है। जो सदगुरु है, वह तुम्हें दीपक होता है। सदगुरु तुम्हें प्रकाश देता है ताकि तुम जहां भी रहो, देख लो। असदगुरु तुम्हें सिद्धांत देता है। अंधे की लकड़ी की भांति हैं वे सिद्धांत, ताकि तुम टटोल कर अपना रास्ता खोज लो। लेकिन लकड़ी और आंख का क्या मुकाबला?

शास्त्र से तुम्हें अंधे की लकड़ी मिलती है। ताकि तुम थोड़ा टटोल कर रास्ता खोज लो। मुसीबत आए तो तुम शास्त्र में देख लो कि करना है। सदगुरु आंख देता है, दीया देता है, भीतर की रोशनी देता है। तुम्हें जगाता है। जागरण देता है। विवेक देता है, होश देता है; सिद्धांत नहीं देता। क्योंकि होश के लिए किसी सिद्धांत की कोई जरूरत नहीं है। तुम मुझसे पूछो कि क्या करें और क्या न करें, मैं तुम्हें कुछ न बताऊंगा। क्योंकि क्या करें, क्या न करें, सब जड़ जो जाएगा। अगर मैं तुम्हें कहूं कि यह करो, कल स्थिति बदल जाएगी। तब तुम मुश्किल में पड़ जाएगा। अगर मैं कहूं यह मत करो, कल स्थिति बदल जाएगी।

समझो, कि मैं तुमसे कहूं, सत्य बोलो। वेद दे दिया तुम्हें। अब सत्य से बड़ा कोई वेद है? कोई सिद्धांत है? मैंने कह दिया सत्य बोलो। यह सिद्धांत है। तुम्हें सत्य दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारी रोशनी जगी नहीं है। तुम सत्य भी गलत जगह बोल दोगे। जहां नहीं बोलना था, वहां बोल दोगे। और जहां बोलना था, वहां न बोलेंगे। तुम सत्य का भी वही उपयोग कर लोगे, जो अंधेपन में किया जा सकता है। भला मैंने लकड़ी दी थी, कि टटोल कर तुम रास्ता खोज लेना। तुम किसी का सिर खोल दोगे लकड़ी से। वह भी किया जा सकता है। लकड़ी वही है।

तुम ऐसी जगह सत्य बोलोगे जहां सत्य किसी का प्राणघातक हो जाए और तुम कह ोगे, कि सिद्धांत मेरे साथ है। अगर किसी का प्राण जाता हो और तुम्हारे झूठ बोलने से बच जाते हो, तो होशवाला आदमी झूठ बोलेगा। बेहोश आदमी सच बोलेगा। तुम्हारे सत्य का क्या इतना मूल्य है? अकड़ ही है यह भी अहंकार की, कि मैं सत्यवादी रहूंगा चाहे किसी की जान जाती हो।

दूसरे के जीवन का मूल्य बहुत ज्यादा है। और अगर छोटे से झूठ बोलने से किसी का जीवन बचता हो, तो मैं तुमसे कहता हूं कि बुद्ध झूठ बोलेंगे और जीवन बचा लेंगे। तुम सच बोलोगे और उसके हत्या के जिम्मेवार हो जाओगे।

झूठ और सच मुल्यवान नहीं हैं, बोध मूल्यवान है। क्या करना, क्या न करना, मूल्यवान नहीं है, क्या होना! तुम्हारे भीतर की चेतना कैसी हो गई, यह मूल्यवान है। वह चेतना अगर सम्यक है, तो तुम झूठ भी बोलोगे तो सत्य से कीमती होगा। वह चेतना अगर अंधकार में बेहोश है, मुर्दा है, सोई हुई है, अंधी है, तो तुम सत्य भी बोलोगे, तो झूठ से बदतर होगा।

झूठ और सच का सवाल नहीं है। तुम्हारे जागृत होने का सवाल है। और जिंदगी जटिल है। आज तो सच है, कल वह झूठ हो जाता है। अभी जो कहा, वह क्षण भर वाद मौजूं न रह जाए। सब बदलता जाता है। जिंदगी सीधा-सीधा रास्ता नहीं है, बड़ी पहेली है। इसलिए अगर तुम होश में हो तो ही पहली के बाहर आ सकोगे। अगर तुम बेहोश हो, तो कितने ही सिद्धांत तुम्हारे पास हों, सिद्धांत तुम्हारे पैर में जंजीरें बन जाएंगी। तुम्हारे प्राणों के लिए पंख बन सकेंगी।

इसलिए कबीर कहते हैं--दीपक दिया हाथि। नहीं बताया कि क्या करो और क्या न करो। नहीं कहा, कि यह जप करे, यह तप को। नहीं कहा कि यह क्रिया करो, यज्ञ करो, कि मंदिर जाओ, कि मस्जिद जाओ। नहीं कहा, कि व्रत-उपवास करो। दीपक दिया हाथि। सिर्फ ध्यान का दीया दिया। समाधि की रोशनी दी।

और गुरु सामने से मिला। सामने से ही दिया जा सकता है दीया, क्योंकि आंख जब आंख में मिले, प्राण जब प्राण में मिले, जब बुझा दीया जले दीए के करीब आए, आमने-सामने आए, बुझी बाती जली बाती के इतने निकट आ जाए, कि एक छलांग लगे ज्योति की और बुझा दीया जल जाए।

आगे थे सतगुरु मिला, दीपक दिया हाथि,
भगति भजन हरिनाम है, दूजा दुख अपार।

अब उस प्रकाश में जाना। यह गुरु ने नहीं कहा, कि भगति भजन हरिनाम है। नहीं, गुरु ने तो सिर्फ रोशनी दी। गुरु ने तो हिलाया और नींद तोड़ दी। गुरु ने तो जगाया, कि सुबह हो गई। कब तक सोए रहोगे? उठो। बात खतम हो गई। गुरु ने तो थोड़े पानी के छींटे मार दिए आंख पर। कि चाय की एक प्याली लाकर पिला दी। उठो, जाग जाओ, सुबह हो गई। बहुत सो लिए। जन्मों-जन्मों सो लिए। खोलो आंख। सूरज निकला है।

उस खुली आंख में दिखाई पड़ा,

भगति भजन इरिनाम है, दूजा सूख अपार।
सिर्फ परमात्मा का स्मरण, उसकी भक्ति, उसका भजन, उसके नाम का सतत स्मर
ण, उसकी प्रतीति, उसका अहसास। जैसे सब तरफ से वही घेर हुए है।
दूजा दूख अपार।
और सब दुख है। समझें :भक्ति प्रेम का शुद्धतम रूप है। प्रेम की तीन कोटियां हैं।
पहली कोटि, जिससे सौ मैं निन्यानबे लोग परिचित हैं—काम का अर्थ है, दूसरे से ले
ना लेकिन देना नहीं। वासना लेती है, देती नहीं। मांगती है, प्रत्युत्तर नहीं देती। वा
सना शोषण है। अगर देने का बहाना करना पड़े तो करती है। या देने का दिखावा
भी करना पड़े तो भी करती है। क्योंकि मिलेगा नहीं। तो तुम्हारा जो प्रेम है वह दि
खावा है। वस्तुतः तुम देना नहीं चाहते, तुम लेना चाहते हो।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें कोई प्रेम नहीं करता। मैं उनसे पूछता हूं ि
क यह कोई सवाल ही नहीं है, कि तुम्हें कोई प्रेम नहीं करता। सवाल यह है, कि
तुम किसी को प्रेम करते हो?
इसका उन्हें खयाल ही नहीं है। इस पर उन्होंने विचार ही नहीं किया। वे कहते हैं ि
क इस पर हमने सोचा ही नहीं। इसको तो तुम मान ही बैठे हो कि तुम प्रेम करते
हो। कठिनाई यह है कि दूसरा तुम्हें प्रेम नहीं करता। पत्नियां मेरे पास आती हैं वे
कहती हैं कि पति प्रेम नहीं करते, पति आते हैं वे कहते हैं, पत्नियां प्रेम नहीं करत
ीं।
काम-वासना मांगती है। देना नहीं चाहती। काम-वासना कृपण है।इकट्ठा करती है, ब
ांटना नहीं चाहती। शोषण है।
और जब दो व्यक्ति, दोनों ही कामातुर हों, तो बड़ी अढ़न हो जाती है। दोनों ही ि
भखारी हैं। दोनों मांग रहे हैं। देने की हिम्मत किसी में भी नहीं है। और दोनों यह
धोखा देने की कोशिश कर रहे हैं, कि मैं दे रहा हूं। लेकिन यह धोखा कितनी देर
चल सकता है? इसलिए काम-वासना से जुड़े लोगों का जीवन अनिवार्य रूपेण दुखपू
र्ण हो जाएगा। उसमें सुख नहीं हो सकता। उसमें सुख की संभावना ही हनीं है।
जिस ऊर्जा का नाम प्रेम है, उसके तीन रूप हैं। पहला काम, जिसमें तुम मांगते हो
और भिखारी होते हो। और देने से डरते हो, देते नहीं। या देने का का सिर्फ दिखाव
ा करते हो, ताकि मिल सके। अगर थोड़ा बहुत कभी देना पड़ता है तो वह ऐसा ही
जैसा कि मछली पकड़ने वाला कांटे में थोड़ा आटा लगा देता है। वह कोई मछली
का पेट भरने को नहीं। वह कोई मछली को भोजन देने के लिए तैयारी नहीं कर र
हा है। लेकिन कांटा चुभेगा नहीं बिना आटे के। मछली आटा पकड़ने आएगी, कांटे
में फंसेगी।
तुम अगर देते हो तो बस इतना ही, कि आटा बन जाए। दूसरा व्यक्ति फंस जाए तु
म्हारे जाल में। पर मजा यह है, कि दूसरा भी मछलीमार है। उसने भी आटा कांटे
पर लगा रखा है। और जब दोनों के कांटे फंस जाते हैं दोनों के मुंह में, तो उसको
तुम विवाह कहते हो। दोनों ने एक दूसरे को धोखा दे दिया।

इसलिए जीवन भर क्रोध बना रहता है—जीवन भर कि दूसरे न धोखा दे दिया। लेकिन वही पीड़ा दूसरी की भी है। इस क्रोध में कैसे आनंद के फूल लग सकते हैं? असंभव। तुम नीम के बीज बोते हो और आम की अपेक्षा करते हो। यह नहीं होगा। यह नहीं हो सकता है।

दूसरा रूप है, प्रेम का अर्थ है जितना लेना, उतना देना। वह सीधा-साफ-सुथरा सौदा है। काम शोषण है, प्रेम शोषण नहीं है। वह जितना लेता है उतना देता है। हिसाब साफ है। इसलिए प्रेमी आनंद को तो उपलब्ध नहीं होते लेकिन शांति को उपलब्ध होते हैं। कामी शांति को उपलब्ध नहीं होते, सिर्फ अशांति, चित, संताप। प्रेमी आनंद को तो उपलब्ध नहीं हो सकते लेकिन शांति को उपलब्ध होते हैं। एक संतुलन होता है जीवन में। जितना लिया, उतना दिया। जितना दिया, उतना पा लिया, हिसाब-किताब साफ होता है।

प्रेमियों के बीच में कलह नहीं होती। एक गहरी मित्रता होती है। सब साफ है। लेना देना बाकी नहीं है। क्रोध भी नहीं है। क्योंकि जितना दिया, उतना पाया। कुछ विषाद भी नहीं है। न कुछ लेने को है, न कुछ देने को है। हिसाब-किताब साफ है। प्रेमी साफ-सुथरे होते हैं।

ऐसी घटना अक्सर मित्रों के बीच घटती है । इसलिए मित्र बड़े शांत होते हैं मित्रों के साथ। पति पत्नी के बीच कभी घटती है, मुश्किल से घटती है। क्योंकि वहां काम ज्यादा प्रगाढ़ है। लेकिन दो मित्रों के बीच अक्सर घटती है। और अगर दो प्रेमी हो पति पत्नी, तो वे भी मित्र हो जाते हैं। उनके बीच पति-पत्नी का संबंध नहीं रह जाता। एक मैत्री का संबंध हो जाता है, जहां कोई विषाद नहीं है। न कोई मन में पश्चात्ताप है। न यह खयाल है कि किसी ने किसी को धोखा दिया।

प्रेम का तीसरा रूप है, भक्ति। जिसमें सिर्फ भक्त देता है। लेने की बात ही नहीं करता। काम से ठीक उलटी है भक्ति। और काम और भक्ति के बीच में है प्रेम। कामी दुखी होता है। भक्त आनंदित होता है। प्रेमी शांत होता है। इस पूरी बात को ठीक से समझ लेना।

भक्ति काम से बिलकुल उलटी घटना है। दूसरा विरोधी छोर है। वहां भक्त देता है, सब देता है। अपने को पूरा दे देता है। कुछ बचाता ही नहीं पीछे। इसी को तो हम समर्पण कहते हैं। अपने को भी नहीं बचाता। देनेवाले को भी बचाता। उसको भी दे डालता है।

और मांगता कुछ भी नहीं। न बैकुंठ मांगता है, न स्वर्ग मांगता है। मांगता कुछ भी नहीं। मांग उठी, कि भक्ति तत्क्षण पतित हो जाती है। काम हो जाती है। अगर उतना भी दिया जितना परमात्मा देता है, तो भी भक्ति भक्ति नहीं है, प्रेम ही हो जाती है। भक्ति तो तभी भक्ति है जब अशेष भाव से भक्त अपने को पूरा उड़ेल देता है।

ऐसा नहीं है कि भक्त को मिलता नहीं। भक्त को जितना मिलता है उतना किसी को नहीं मिलता। उसी को मिलता है। लेकिन उसकी मांग नहीं है। छिपी हुई मांग

भी नहीं है। वह सिर्फ उड़ेल देता है। अपने को पूरा दे देता है। और परिणाम में पर
मात्मा पूरा उसे मिल जाता है। लेकिन वह परिणाम है। वह उसकी आकांक्षा नहीं है
। वह उसने कभी चाहा न था।
इसलिए भक्त सदा कहता है, कि परमात्मा की अनुकंपा से मिला। अनुग्रह से मिला।
 मैंने कभी मांगा न था। उसने दिया है। मैं अपात्र था। फिर भी उसने भर दिया मुझे
। मेरे पात्र को पूरा कर दिया है। मैं योग्य न था। मेरी क्या योग्यता थी? उसने स्वी
कार किया, यह भी काफी था। वह इनकार भी कर देता तो मैं कहां अपील करने
जाता? कोई अपील न थी। क्योंकि मेरी कोई योग्यता ही नहीं थी। भक्त अपने को
दे देता है। समग्र भाव से, परिपूर्ण भाव से।
और जितना अपने को दे देता है, उतना ही परिपूर्ण परमात्मा उस पर बरस उठता
है। बहुत पा लेता है। अनंत पा लेता है। सब पा लेता है, जो इस अस्तित्व में पाने
योग्य है, जो भी सत्य है, सुंदर है, शिव है, सब उसे मिल जाता है। वह इस अस्ति
त्व का शिखर हो जाता है।
भगति भजन हरिनाम है...
और भजन है, भक्त के अनुग्रह की अभिव्यक्ति। भजन का अर्थ नहीं है, तुम राम-रा
म, राम-राम कर रहे हो। क्योंकि राम-राम, राम-राम तुम कर सकते हो किसी वा
सना से। तुम करते हो ही वासना से। तब तुमने परमात्मा से भी काम का ही, वास
ना का ही संबंध बनाने की कोशिश की। तुम कुछ मांग रहे हो। तुम हिसाब रखते ह
ो, कि लाख दफे नाम लिया।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर का मालिक निश्चित पागल रहा होगा। उसने स
ारे घर को कापियों से भर रखा है—राम-राम, राम-राम। सालों से वह लिख रहा है।
 इतने करोड़ नमा लिख चुका है। उसका हिसाब रखता था, नाम कितने करोड़ लि
ख चुका है। उसकी अकड़ है। वह अगर परमात्मा के समाने जाएगा, अकड़ कर खड़
ा हो जाएगा, कि क्या इरादे हैं? इतने करोड़ नाम लिखे अब इसका क्या फल है?
उसकी आंखों में दिखता है कि वह फूल की मांग खड़ी है। अन्यथा ये कापियां बच्चों
 के काम आ जाती, खबर कर दीं। स्कूल में बहुत बच्चे हैं, जिनके पास कापियां नह
ीं है। उन सज्जन से मैंने कहा कि मत करो खराब। बच्चों को बांट दो। वे नाराज ह
ो गए, कि आप नास्तिक हैं? मैं राम-राम लिख रहा हूं।
नहीं। तुम्हारा राम-राम लिखने, दोहराने का कोई अर्थ नहीं। भजन बड़ी गहरी प्रक्रिय
ा है। आगे कबीर समझाएंगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा।
और न कोई सुन सके, कै सांई के चित्त।
दूसरा सुन ले तो भजन ही न रहा। वह क्या भजन रहा जिसको दूसरे ने सुन लिया?
 तब तुम दूसरे को सुनाने को कर रहे होओगे। या तो तुम्हारी अंतरात्मा जानती है
 या परमात्मा। वह दो के बीच है। तीसरा उसे सुनता ही नहीं। सुन ही हनीं सकता।
 वह इतना सूक्ष्म है। वह एक भाव है। भजन एक भाव है। वह शब्दों की, ध्वनियों
की व्यवस्था नहीं है एक भाव-दशा है। भजन अनुग्रह है। तुम ऐसा भरपूर हो, कि तु

म चलते हो तो तुम्हारे चलने में एक नाच है। तुम्हारे पैर में एक महक, एक दमक है। भरे-पूरे चलते हो।

जैसे कभी किसी को तुमने चलते देखा हो, कोई प्रेमी को, जो किसी के प्रेम में पड़ गया, उसकी चाल बदल जाती है। कल तक वैसे ही—इसी दफ्तर जाता था, उसी रास्ते से गुजरता था, यही पैर थे, लेकिन अब जरा बात बदल गई। अब पैरों में कुछ ऊर्जा और है। पैरों में अब कुछ नाच समा गया। घूंघर न बांधे हों। लेकिन कहीं घूंघर बजते हैं। चलता है, लगता है उड़ता है। जमीन की कोशिश का प्रभाव नहीं पड़ता जैसे। कुछ पा लिया है। जरा एक स्त्री मुस्करा दी।

पहले भी निकलता था यहां से। तब तुम गौर से देखते, तो इसके सिर पर तुम्हें सारी फाईलों का ढेर लगा हुआ दिखाई पड़ता। छाती पर पूरा दफ्तर लिए आता जाता था। घसिटता था। आज एक गुनगुनाहट है। चाहे ओठ कंप भी न रहे हों, लेकिन तुम गुनगुनाहट चेहरे पर देख पाओगे। आज आदमी स्नान किया हुआ मालूम पड़ता है। रोज भी स्नान करके निकलता था, लेकिन फिर भी धूल जमी मालूम पड़ती थी। आज बाल कुछ संवारे हुए हैं। कपड़े साफ-सुथरे हैं। आज कुछ बात हो गई। आज हृदय कुछ भरा है। जरा सी प्रेम की झलक आई है।

तो भक्त की तो क्या कहनी बात! जिसको परमात्मा की झलक आ गई हो, जिसने अपने को समर्पित किया हो और उस समर्पण में परमात्मा से भर गया हो, जिसने अपने को मिटाया हो और परमात्मा को पा लिया हो, उसका उठना, उसका बैठना, उसका चलना, उसका बोलना, न बोलना, उसका सोना, उसका जागना सब भजन है। भजन एक अहोभाव है। तुम उसे देखकर कर कह सकते हो, कि इसने पा लिया। उसका जीवन एक अहर्निश उत्सव है। तुम उसकी आंखों में संदेह न पाओगे। तुम उसकी आंखों में छाया न पाओगे विषाद की, दुख की, चिंता की। तुम उसके चेहरे पर अतीत का बोझ न पाओगे, अतीत की स्मृतियां न पाओगे। तुम उनके चेहरे पर भविष्य की कल्पनाओं का जाल न देख सकोगे। नहीं, न अतीत की छाया पड़ती है, न भविष्य की छाया पड़ती है। यह क्षण पर्याप्त है। आप्तकाम! भरा पूरा! सब मिल गया। चाहा था, जितना, उससे बहुत ज्यादा, अनंत गुना मिल गया। मांगा था जन्मों-जन्मों तक, वह बिना मांगे मिल गया। सदा अपने को बचाने की कोशिश की थी, और कुछ हाथ न लगा था। आज सब डुबा दिया और सब हाथ आ गया।

भजन भाव-दशा है।

और न कोई सुन सके कै सांई के चित्त।

परमात्मा ही पहचानेगा। या तो भक्त का हृदय जानता है, जो गुनगुना रहा है, नाच रहा है। यह पुलक और। यह धड़कन और। यह पुलक सिर्फ खून के और श्वास के द्वारा फेफड़ों में पैदा नहीं हो रही है। फेफड़ों के भीतर छिपे हुए हृदय में एक आविर्भाव हुआ है। नई अवस्था का जन्म हुआ है।

भगति भजन हरिनाम है, दूजा दुख अपार।

और अब भक्त जानता है कि और शेष सब दुख है। अपने को खो देना आनंद है। अपने को बचाना दुख है। काम, सब तरह की काम-वासना, चाहे धन की हो, चाहे शरीर की हो, यश की हो, पद की हो, दुख है। अकाम हो जाना।
और अकाम तुम कब हो सकोगे? जब तक तुम हो, जब तक तुम अकाम न हो स कोगे। तुम तो खाली पात्र हो; तुम कैसे अकाम हो सकोगे? तुम तो भिखारी हो, कै से अकाम हो सकोगे? तुम सम्राट के चरणों में अपने को छोड़ दो। छोड़ते ही तुम अ काम हो जाओगे, और तुम्हारे जीवन में अहर्निश भजन गूंजने लगेगा।
कबीर ने कहा है, कि न तो जाता हूं मंदिर की परिक्रमा करने, उठूं, बैठूं सौ परिक्र मा। अब कहीं और नहीं जाता। उठता बैठता परिक्रमा है। अब तो जो भी करता हूं वही उसकी पूजा और अर्चना है। अब मैं तो बचा नहीं। अब वही मुझसे सांस लेता है, उसी को भूख लगती है। उसी को प्यास लगती है। पानी पीकर वही तृप्त होता है। मैं बीच में नहीं हूं। ऐसी दशा भजन की दशा है।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार।
इसलिए कबीर कहते हैं कि मन से, वचन से कर्म से जीवन की सभी अवस्थाओं से उसका सुमिरन होने लगे, हर घड़ी वही याद आने लगे। भूख लगे तो उसी को लगे, तो सुमिरन हो गया। तुम्हें भूख लगे, प्यास लगे, उसी प्यास लगे। जल पियो, तृप्ति हो, उसी की तृप्ति हो।
तो जीवन का सारा सार एक शब्द में आ जाता है। वह है, सुमिरन। सुमिरन स्मरण शब्द का अपभ्रंश है। और स्मरण से तुम यह मत समझना, कि बैठकर तुम राम-रा म, राम-राम करते रहो। तुम करते रहो—राम-राम, राम-राम। तुम कितना ही राम -राम कहो। कबीर ने कहा है, जीभ तो राम की रटन करती है, मनुआ चहुं दिशि ि फरे। और मन चारों दिशाओं में घूम रहा है। यंत्रवत जीभ करती रहती है। इसका क्या मूल्य है? और अगर मुक्ति भी होगी, तो जीभ की होगी। तुम्हारी कैसे हो जाए गी? तुमने तो कभी सुमिरन किया नहीं।
स्मरण इतना गहरा होना चाहिए, कि तुम्हारे प्राणों का प्राण उससे लिप्त हो जाए, आल्पावित हो जाए। जीभ तो बड़ी बाहर है। शरीर का हिस्सा है। नहीं जीभ से का म न चलेगा।
लेकिन क्या मन में स्मरण करते रहो तो काम चल जाएगा? मन भी तो बहुत गहर ा नहीं है। और जिस मन से तुम स्मरण करते हो, उसी मन से तुमने वासना की है, उसी मन से तुमने धन का लोभ किया है, उसी मन से तुम कचरा इकट्ठा किए हो। उस अपात्र में तुम परमात्मा के अमृत की आकांक्षा करते हो? उस मन से, जो भ्रष ट हुआ सब तरह? जिसमें तुमने अब तक जहर ही रखा था, उसमें तुम अमृत की आकांक्षा मत करो। क्योंकि वह पात्र जहरीला हो गया है।
नहीं, मन से भी न होगा। और गहरे जाना पड़ेगा। वहां जाना पड़ेगा, जहां तुम्हारी कुंआरी आत्मा है। क्योंकि वहीं से भजन होगा। भोजन तो एक कुंआरी घटना है। शु द्ध! किसी वासना से अस्पर्शित। जहां न कभी लोभ उठा, न जहां कभी क्रोध उठा,

जहां तुम्हारा होना है, अंतरतम गर्भगृह में। तुम्हारे भीतर के गहरे से गहरे से गहरे मंदिर में। जहां तुम हो—वैसे जैसे तुम जन्म के पहले थे। वैसे, जैसे तुम मृत्यु के बाद हो जाओगे। वहीं भजन उठेगा, वहीं भाव उठेगा।

तो भजन एक भाव है। न शब्दों में पकड़ आएगा, न कृत्यों की पकड़ में आएगा। जीसस ने कहा है, कि तुम्हारा बायां हाथ जो करेगा वह तुम्हारे दाएं हाथ को पता न चलेगा। इतनी गहरी घटना है। ऊपर-ऊपर होती, तो बायां हाथ दाएं हाथ को देख लेता। पति करेगा, तो जीसस ने कहा है, कि पत्नी को पता न चलेगा। चौबीस घंटे तुम्हारे साथ रहेगी, पता न चलेगा। चलना नहीं चाहिए।

लेकिन तुम तो इतने जोर से करते हो कि पत्नी तो क्या, पड़ोसियों को पता चल जाए। तुम माइक लगा कर करते हो। धर्म का सहज विस्तार कर रहे हो मोहल्ले भर में! और धर्म पर कोई रोक भी नहीं लगा सकता। आधी रात को भी तुम लाउड-स्पीकर लगा कर हरे राम का भजन करने लगो, तो कोई कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि धर्म की तो स्वतंत्रता है। लोगों की नींद हराम कर रहे हो। तुम उन्हें धर्म का दुश्मन बना रहे हो। वे गाली दे रहे हैं तुमको, तुम्हारे हरे राम को, लेकिन अब वे कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि धार्मिक कृत्य में बाधा देना ठीक नहीं। और तुम करुणावश लाउड-स्पीकर का खर्चा उठा रहे हो।

नहीं, आकांक्षा यह है कि दूसरे जार लें, कि तुम कोई साधारण आदमी नहीं हो, ब.डे भगत, बड़े भजन करने वाले, धार्मिक, साधुपुरुष हो। तुम प्रचार कर रहे हो अपना। अन्यथा राम की खबर तो तुम्हारे हाथ को न चलेगी। वस्तुतः जब भाव बहुत गहन होगा, तब तुम्हारे मन तक को पता न चलेगा कि क्या हो रहा है।

लेकिन, मनसा वाचा कर्मना कबीर सुमिरन सार।

तुम्हारे मन में, तुम्हारे वचन में, तुम्हारे कर्म में, सब जगह उसकी छाप पड़ने लगेगी। जिसके पास आंखें हैं, वह देख लेगा। अंधों को दिखाई न पड़ेगा, लेकिन जिसके पास आंख हैं, वह देख लेगा, कि तुम्हारा कर्म अब किसी और रस में डूबा है। कोई और रंग पकड़ गया है तुम्हारे कर्म को। तुम्हारे वचन में कोई नए इंद्रधनुष का जन्म हुआ है। तुम्हारे होने से एक मिठास फैलती है। एक सुस्वादु गंध तुम्हारे चारों तरफ उठती है। लेकिन यह तो उसको दिखाई पड़ेगा, जिसको इसका अनुभव हुआ हो। अंधों के जगत में किसी को पता भी न चलेगा। चलने की कोई जरूरत भी नहीं है।

मेरा मन समरे राम कूं, मेरा मन राम ही आहि,
अब मन राम ही व्है रहया, सीस नवावें काहि।

स्मरण करते करते मैं स्वयं राम हो गया। स्मरण करनेवाला भी न रहा। दूरी मिट गई। द्वैत समाप्त हुआ। अब तो वही है।

...सीस नवावें काहि।

अब किसको सिर झुकाने जाएं? किस मंदिर से सिर पटकें? अब कौन सा शास्त्र पढ़े?

परम भक्त के जीवन से जिसे तुम धर्म कहते हो, ऐसे ही तिरोहित हो जाता है, जैसे सुबह सूरज के उगने पर ओस उड़ जाती है। परम धार्मिक जीवन से जिसे तुम धर्म कहते हो, बिलकुल गिर जाता है—जैसे स्नान के बाद शरीर से धूल झड़ जाती है। इसलिए परम धार्मिक को तुम पहचान न सकोगे। वह करीब-करीब अधार्मिक मालूम होगा क्योंकि धर्म की परिभाषा—रोज मंदिर जाए, पूजा करे, घंटा बजाए, सत्यनारायण की कथा करवाए, मोहल्ले गांव में शोरगुल मचाए, रामलीला करवाए कि रासलीला करवाए। तुम्हारे धर्म की परिभाषा क्रियाकांड की परिभाषा है। धार्मिक व्यक्ति तुम्हें करीब-करीब नास्तिक मालूम पड़ेगा।

कुछ आश्चर्य नहीं, कि हिंदुओं ने महावीर को नास्तिक कहा है, बुद्ध को नास्तिक कहा है। स्वाभाविक लगता है। क्योंकि इन दोनों व्यक्तियों ने सब क्रियाकांड तोड़ दिया। बुद्ध ने तो एक दफे भी भूल कर भगवान का नाम भी नहीं लिया। क्या नाम लेना!

पश्चिम के एक बहुत बड़े इतिहासविद एच. जी. वेल्स ने लिखा है गौतम बुद्ध के संबंध में, कि देअर हैज बीन नेव्हर सच ए गाड-लाइक मैन एंड सो गाडलेस। संसार के इतिहास में गौतम बुद्ध जैसा ईश्वर—विहीन, ईश्वर जैसा व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ है। यही तो परिभाषा है धार्मिक व्यक्ति की। वह ईश्वर जैसा होगा और ईश्वर-विहीन होगा।

जिसको तुम धर्म कह रहो, वह पाखंड है। वह धर्म नहीं है, वह धोखा है। धोखा तो उसके जीवन में नहीं होगा। इसलिए तुम्हारी परिभाषा में वह धार्मिक मालूम न होगा।

जीसस को यहूदियों ने मार डाला क्योंकि अधार्मिक मालूम हुए। अधर्म क्या था? जो बात सबसे बड़ी अधार्मिक हो गई वह थी, कि जीसस को लोगों ने देखा, वे कभी-कभी शराबियों के घर में ठहर जाते, वेश्याओं के घर में ठहर जाते। गांव के पुरोहितों ने पकड़ लिया और कहा, कि यह तो हमने कभी धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं देखा। जो अछूत हैं, छूने योग्य भी नहीं, जिनकी तरफ देखना भी नहीं चाहिए—वेश्याओं और शराब पीनेवालों और चारों के घर में भी तुम्हें ठहरे हुए देखा गया है। तुम किस भांति के धार्मिक आदमी हो?

कहते हैं जीसस ने कहा, कि अगर वेश्या के भीतर परमात्मा रह सकता है, तो मैं उसके घर में क्यों नहीं ठहर सकता? और अगर परमात्मा ने चोर को इस योग्य नहीं छोड़ा कि छोड़ दे, तो मैं कौन हूं?

यह धार्मिक आदमी है। लेकिन तुम्हारे धर्म के क्रिया-कांड के बाहर पड़ रहा है। तुम्हारा धार्मिक आदमी तो चोर की तरफ देखता नहीं। तुम्हारा धार्मिक आदमी चोर और वेश्या को नर्क में सड़ाने का पूरा आयोजन कर रहा है। यहूदियों में प्रथा थी कि; छह दिन परमात्मा ने काम किया, सातवें दिन विश्राम किया; इसलिए सातवें दिन कोई काम न करे। यहूदी सातवें दिन सब काम बंद कर देते थे।

जीसस सातवें दिन मंदिर के पास आए। और अंधा आदमी आया और उस अंधे आद
मी ने प्रार्थना की कि मैंने सुना है, कि तुम अगर छू दो तो मेरी आंख ठीक हो जा।
जीसस ने उसे छू दिया और उसकी आंख ठीक हो गई। पुरोहितों ने कहा, कि यह
तो अधार्मिक कृत्य है।

सोचो! अंधे को आंख देना अधार्मिक कृत्य हुआ, क्योंकि शास्त्र में लिखा है। वेद, य
हूदियों का कहता है कि सातवें दिन कृत्य बंद।

पुरोहित ने पूछा, कि तुमने पाप किया है, सातवें दिन तो सब काम बंद होना चाहि
ए।

जीसस ने पूछा कि सातवें दिन तुम भोजन करते हो या नहीं? और सातवें दिन तुम
आंख झपते हो या नहीं? और सातवें दिन तुम श्वास लेते हो या नहीं? और सात
वें दिन परमात्मा ने माना विश्राम किया, लेकिन विश्राम भी कुछ करना है। वह भी
कृत्य है। और फिर अगर तुम्हारे नियम टूटने से एक आदमी की आंख खुल गई हो
, तो नियम के लिए आदमी है कि आदमी के लिए नियम है? मैं तुमसे पूछता हूं,
उचित है यह कि यह अंधा आदमी आंखवाला हो जाए, या उचित है यह, कि इस
अंधे आदमी को मैं कह दूं कि मैं धार्मिक आदमी हूं, सावें दिन मैं कुछ भी नहीं कर
सकता। क्या भरोसा है कि कल मैं न बचूं? और क्या भरोसा है कि कल यह अंधा
आदमी न बचे? तुम गारंटी देते हो, कि कल हम दोनों रहेंगे? मैं इसकी आंख ठी
क करने और यह आंख ठीक करवाने?

नहीं, धार्मिक आदमी को बात नहीं जमती। उसका तो हिसाब है। वह अपने हिसाब
से जीता है। उससे नियम सख्त हैं। अंधा आदमी है। लकड़ी से टटोलता है। उसके प
ास प्रकाश नहीं

अब मन राम ही व्है रहया, सीस नवावें काहि।

सब रग तंत रबात तन, विरह बजावे नित्त।

शरीर की सारी रगें वीणा के तार हो गई। कबीर कहते हैं तन वीणा हो गया और
एक ही गीत बजता है चौबीस घंटे—विरह बजावै नित्त। एक ही गीत बजता रहता है
, परमात्मा के विरह का।

और न कोई सुन सके कै सांई के चित्त।

और इस विरह गीत को या तो परमात्मा सुन सकता है, या तो साई—या स्वयं।

प्रार्थना तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच का संबंध है। समाज से उसका केई ले
ना-देना नहीं। पूजा तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच का अत्यंत गोपनीय संबंध
है।

जब तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में होते हो, किसी के प्रेम में किसी पुरुष के प्रेम में,
तब तुम एकांत चाहते हो। तुम नहीं चाहते, कि बीच बाजार में बैठकर और प्रेम क
ा रास रचाए, कि लोग देखें। तुम द्वार दरवाजे बंद कर देते हो। तुम प्रकाश तक बु
झा देते हो, ताकि एकांत पुरा हो जाए। ताकि इस आत्मीयता के क्षण में कोई हस्त
क्षेप न हो। ताकि प्रेमी और प्रेयसी बिलकुल अकेले रहे जाएं।

परमात्मा के बीच तो बड़े से बड़े प्रेम का संबंध है। वह तुम्हारे और उसके बीच संबंध है। उससे संसार का कुछ लेना देना नहीं है। भीड़ से उसका कोई नाता नहीं। वह अत्यंत गोपनीय है। जहां तुम हो और वह है। और कबीर कहते हैं कि मेरा पूरा तन तो रबाब हो गया, वीणा बन गया। सब रग तंत--रग-रग, नाड़ी-नाड़ी, रेशा-रेशा शरीर का तार बन गए। और एक ही धुन बज रही है अहर्निश विरह बजावे नित्त।

यह थोड़ा समझने जैसा है।

जितना ही व्यक्ति परमात्मा को पा लेता है उतनी ही विरह की वीणा बजने लगती है। तुम जरा इसे मुश्किल समझोगे। तुम समझोगे कि परमात्मा न मिला हो, तब विरह की वीणा बजनी चाहिए। जब मिल गया फिर विरह की क्या वीणा? यह तुम्हें थोड़ा जटिल लगेगा।

लेकिन जब तक तुमने परमात्मा को जाना ही नहीं, तुम विरह का अनुभव ही न कर सकोगे। विरह तो उसका अनुभव है जिसने मिलने जाना हो। तुम कैसे जानोगे विरह को? तुम कैसे रोओगे परमात्मा के लिए? आंसू कैसे निकलेंगे? उससे तुम्हारी कोई पहचान नहीं, उससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं। एक क्षण को भी तुम्हारी कोई मुलाकात नहीं हुई। परमात्मा बिलकुल अनजान है। ना के बराबर है। है या नहीं, यह भी संदिग्ध है तुम्हें। तुम कैसे उसके लिए रोओगे? कैसे तुम्हारा पूरा तन वीणा बन जाएगा? कैसे तुम्हारे रग-रेशे तार बन जाएंगे? कैसे तुम्हारे हृदय में उठेगा विरह का गीत? मिलन के बाद ही विरह संभव है।

इसलिए भक्त ही जानता है विरह को। तब एक क्षण को भी इस शरीर में होना, एक क्षण को भी इस संसार में होना बड़ी दूरी मालूम पड़ती है। कोई दूरी नहीं बची। अपने को समर्पित किया है भक्त ने। परमात्मा से भर गया है। लेकिन अभी इस शरीर की यात्रा बाकी है। अभी कुछ समय लगेगा। संदेश आ गया। पता-ठिकाना मिल गया। घर की राह मिल गई। थोड़ा सा फासला है।

तुम्हें शायद कभी अंदाज हुआ हो। अगर तुम किसी यात्रा पर गए हो, जब तुम मंजिल के बिलकुल करीब पहुंच जाते हो, तब जितनी दूर मालूम पड़ती है, उतनी दूरी पहले कदम पर भी नहीं मालूम पड़ी थी। जब मंजिल बिलकुल करीब होती है, जब अब मिले, अब मिले, तब क्षण भर का भी फासला अत्यंत कष्टपूर्ण हो जाता है। मंजिल जब बिलकुल आंख के सामने आ जाती है, तब जरा सी भी दूरी खलती है।

भक्त ने सब दे दिया, लेकिन अभी शरीर में है। इसलिए बुद्ध ने मोक्ष के दो भेद किए हैं। जैसा कि भारत में सदा किए गए हैं। मुक्त व्यक्ति को हम जीवित मुक्त कहते हैं। जीवन-मुक्त का अर्थ है--अभी वह जीवित है। शरीर में है। मुक्त हो गया। भीतर से सब बंधन टूट गए, लेकिन शरीर की यात्रा अभी जारी है। शायद कुछ समय और लगेगा जब शरीर भी गिर जाएगा और मिलन परिपूर्ण होगा। इतना सा फासला बाकी है।

ऐसा समझो, कि तुम ऐसे व्यक्ति हो, एक घड़ा है भरा हुआ, घाट पर खा है नदी से दूर। भक्त ऐसा घड़ा है, नदी में आ गया, भीतर भी पानी है। जैसे मिट्टी की जरा सी देह रह गई है। मिट्टी की देह भी पोरस है, छिद्रवाली है। पानी थोड़ा आता जाता है। लेकिन फिर भी देह बाकी है। यही विरह है। नदी में घड़ा है, बाहर जल, भीतर जल। वही जल बाहर, वही भीतर है। फिर भी घड़े की पतली सी मिट्टी की लकीर। मिट्टी की ही लकीर है, लेकिन है। इतना सा फासला रह गया। तब विरह पैदा होता है। तब नित प्रतिपल एक ही विरह रहता है, कि कैसे यह भीतर जाए? कब?

कबीर ने कहा है, कि मरूंगा? कब मिटूंगा, कि पूर्ण परमानंद उपलब्ध हो जाएं? कब मिटीं हों, कब पाहिहों पूरन परमानंद। जरा सी कमी है। बाल भर फासला है। कोई बड़ी दीवाल नहीं। मिट्टी की दीवाल है। वह भी छिद्रवाली है। उससे भी पानी आता जाता है। लेकिन फिर भी है।

ध्यान रखना, जब तक तुम्हें स्वाद नहीं लगा तब तक तुम्हें विरह का पता ही न चलेगा। तब तक तुम्हें मिलन का ही स्वाद नहीं, विरह को तुम जानोगे कैसे? तब तक तुम जी रहे हो। लेकिन तुम्हारे भीतर वह प्यास नहीं उठी, जो तुम्हें विरह से भर दे। विरह की अग्नि नहीं उठी। तुम छोटे बच्चों की भांति हो, जो अभी किसी के प्रेम में नहीं पड़े।

भक्त प्रेमी की भांति है। उसे उसकी राधा मिल गई। लेकिन फासला है। प्रेमी जानते हैं विरह को। जिसने प्रेम नहीं किया वह कैसे जानेगा? जिसको स्वाद ही नहीं लगा उस रस का, वह कैसे जानेगा, कि स्वाद का अभाव क्या है?

प्रेमी जानते हैं, विरह को। और अगर तुम परम प्रेमियों को गौर से देखो, तो जितने ही वे करीब आते हैं, उतना ही विरह बढ़ता जाता है। क्योंकि कितने ही करीब आते हैं, फिर भी लगता है कि बिलकुल एक नहीं हो पाते। कुछ फासला है। शरीर मिल जाते हैं। लेकिन मन अलग हैं। कभी-कभी किसी सहन संभोग के क्षण में मन भी मिल जाते हैं। लेकिन फिर भी चेतनाएं अलग हैं।

प्रेम में पूर्ण मिलन तो हो भी नहीं सकता, भक्ति में ही हो सकता है। लेकिन भक्त को थोड़े दिन की जो शरीर यात्रा बाकी है, यह यात्रा पिछले जन्म से संबंधित है। शरीर के अपने कर्मों का जाल है, वह पूरा होना है। वह पूरा होगा।

तो बुद्ध ने कहा है, कि एक तो निर्वाण है जो जीते व्यक्ति को उपलब्ध होता है और दूसरा महानिर्वाण है, जब शरीर गिर जाता है, तब उपलब्ध होता है। हिंदू कहते हैं, जीवन मुक्त और मोक्ष। जैन कहते हैं, केवल ज्ञान और कैवल्य। ज्ञान तो हो गया, तैयारी पूरी है, बस नाव की प्रतीक्षा है, कब आ जाए। थोड़ी देर तट पर खड़े रहना है। प्रतीक्षा दुर्भर हो जाती है। जैसे-जैसे समय करीब आता है...

तुमने कभी रेलवे स्टेशन पर देखा लोगों को प्रतीक्षा करते? कभी गाड़ी के आने में देर है। वह अखबार पढ़ रहे हैं, गपशप कर रहे हैं, चाय पी रहे हैं, यहां वहां जा रहे हैं। कोई नहीं देख रहा है, कि गाड़ी आ रही है या नहीं। घंटा बजा। एक लहर द

ौड़ गई। लोगों ने अपने सामान संभाल लिए। बैग उठा लिए, कपड़े-लत्ते ठीक कर ि
लए, खड़े हो गए, बातचीत बंद हो गई। गाड़ी जैसे-जैसे आती, स्टेशन वैसे-वैसे आतु
र होता जाता है। लोग बिलकुल तैयार हैं। किस क्षण...एक क्षण भी अब मुश्किल मा
लूम पड़ता है।

ठीक वैसी दशा भक्त की हो जाती है। नाव करीब है। खबर आ गई। संदेश आ गए
हवाओं में। नाव दिखाई भी पड़ने लगी किनारे की तरफ आती। भक्त किनारे पर
खड़ा है।

सब रग तंत रबाब तन, विरह बजावे नित्त,
और न कोई सुन सके, कै सांई के चित्त।
इस तन का दीवा करूं, बाती मूल्यूं जीव,
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देख्यां पीव।

उस प्यारे का मुंह कब देखूंगा? सब करने को राजी हूं। इस तन का दीवा करूं—इस
सारे शरीर को दीया बनाने को राजी हूं।

बाती मेल्यूं जीव—प्राण को बाती बनाने को राजी हूं।

लोही सींचौ तेल ज्यूं—खून को तेल बनाने को राजी हूं।

...कब मुख देख्यौ पीव। कब देखूंगा प्यारे का मुख? कब होगा उससे पूर्ण मिलन? क
ब ऐसे मिट जाऊंगा जैसे बूंद सागर मग खो जाती है, कि रत्ती भर का फासला न
हर जाए, दुई न रह जाए।

जब तक शरीर है, तब तक थोड़ी सी दुई बची रहती है। डूबा रहता है घड़ा पानी
में, लेकिन जरा सा फासला बना रहता है। वह फासला ही विरह की अग्नि है। और
धन्य हैं, वे जो विरह को जान लेते हैं। क्योंकि वे, वे ही लोग हैं जिन्होंने थोड़े से ि
मलन को जाना।

इजिप्त में बड़ी पुरानी उक्ति है, कि तुम परमात्मा को खोजने तभी निकलते हो, ज
ब वह तुम्हें मिल ही चुका होता है। नहीं तो तुम खोजने कैसे निकलोगे? लेकिन तब
विरह बहुत सताता है।

लेकिन उस विरह में आनंद है। उस विरह में परम आनंद है। वह विरह पीड़ा जैसा
नहीं है। वह विरह बड़ा मधुर और मिठास भरा है। तुमने मीठी पीड़ा जानी? वह वि
रह मीठी पीड़ा है। बड़ी मधुरी है पीड़ा। काटती रहती भीतर, लेकिन संगीत की तर
ह।स्वर उसका गूंजता रहता है, लेकिन वीणा के स्वर की भांति।

धन्य हैं वे, जिन्हें थोड़ा सा मिलन का स्वाद मिला और जो महा-मिलन की पीड़ा से
भर गए हैं। जिनका शरीर वीणा हो गया। और उस वीणा पर एक ही स्वर निरंतर
उठ रहा है—विर का स्वर।

मिलन के बाद विरह है और विरह के बाद महा-मिलन।

आल इतना ही

पाइबो रे पाइबो ब्रह्मज्ञान

13 मई, 1975, प्रातः, श्री रजनीश आश्रम, पूना

अब मैं पाइबो रे पाइबो रे ब्रह्मज्ञान।
सहज समाधें सुख में रहिबो, कौटि कलप विश्राम।
गुरु कृपाल कृपा जब कीन्ही, हिरदै कंवल विगासा।
भागा भ्रम दसों दिसि सूझ्या, परम ज्योति परगासा।
मतक उठ्या धनक कर लीये, काल अहेड़ी भागा।
उदया सूर निस किया पयाना, सोवत थें जब जागा।
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहंता कहया न जाई।
सैन करे मन ही मन रहसे, गूंगे जान मिठाई।
पहप बिना एक तरुवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया।
देखत कांच भया तक कंचन, बिन बानी मन माना।
उड़या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलही समाना।
पूजा देव बहुरि नाहिं पूजौ, उन्हाये उदिक न जाऊं।
भागा भ्रम ये कहीं कहता, आये बहुरि न आऊं।
आपै में तब आपा निरख्या, अपन पै आपा सूझ्या।
आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन पै आपै बूझ्या।
अपने परिचै लागी तारी, अपन पै आप समाना।
कहे कबीर जो आप विचारै, मिट गया आवन जाना।

एक ज्ञान है, जो भर तो देता है मन को बहुत जानकारी से, लेकिन हृदय को शून्य नहीं करता।

एक ज्ञान है, जो मन को भरता नहीं, खाली करता है। हृदय को शून्य का मंदिर ब नाता है। एक ज्ञान है, जो सीखने से मिलता है और एक ज्ञान है जो अनसीखने से ि मलता है। जो सीखने से मिले, वह कूड़ा करकट है। जो अनसीखने से मिले, वही मू ल्यवान है। सीखने से वही सीखा जा सकता है, जो बाहर से डाला जाता है। अनसी खने से उसका जन्म होता है, जो तुम्हारे भीतर सदा से छिपा है।

ज्ञान को अगर तुमने पाने की यात्रा बनाया, तो पंडित होकर समाप्त हो जाओगे। ज्ञ ान को अगर खोने की खोज बनाया, तो प्रज्ञा का जन्म होगा।

पांडित्य तो बोझ है; उससे तुम मुक्त न होओगे। वह तो तुम्हें और भी बांधेगा। वह तो गले में लगी फांसी है, पैरों में पड़ी जंजीर है। पंडित तो कारागृह बन जाएगा, तुम्हारे चारों तरफ। तुम उसके कारण अंधे हो जाओगे। तुम्हारे द्वार दरवाजे बंद हो जाएंगे। क्योंकि जिसे भी यह भ्रम पैदा हो जाता है, कि शब्दों को जानकर उसने जा न लिया, उसका अज्ञान पत्थर की तरह मजबूत हो जाता है।

तुम उस ज्ञान की तलाश करना जो शब्दों से नहीं मिलता, निःशब्द से मिलता हैं। ज ो सोचने विचारने से नहीं मिलेगा, निर्विचार होने से मिलता है। तुम उस ज्ञान को खोजना, जो शास्त्रों में नहीं है, स्वयं में है। वही ज्ञान तुम्हें मुक्त करेगा, वही ज्ञान तुम्हें एक नए नर्तन से भर देगा। वह तुम्हें जीवित करेगा वह तुम्हें तुम्हारी कब्र के

ऊपर बाहर उठाएगा। उससे ही आएंगे फूल जीवन के। और उससे ही अंततः परमात्मा का प्रकाश प्रकटेगा।

पंडित जानता है और नहीं जानता। लगता है कि जानता है। ऐसे ही, जैसे बीमार आदमी बजाय औषधि लेने के, चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करने लगे। जैसे भूखा आदमी पाकशास्त्र पढ़ने लगे।

ऐसे सत्य की अगर भूख हो, तो भूल कर भी धर्मशास्त्र में मत उलझ जाना। वहां सत्य के संबंध में बहुत बातें कहीं गई हैं, लेकिन सत्य नहीं है। क्योंकि सत्य तो कब कहा जा सका है? कौन हुआ है समर्थ जो उसे कह सके? इसलिए गुरु ज्ञान नहीं देता, वस्तुतः तुम जो ज्ञान लेकर आते हो उसे भी छीन लेता है। गुरु तुम्हें बनाता नहीं, मिटाता है। तुम्हारी याददाश्त के संग्रह को बढ़ाता नहीं, तुम्हारी याददाश्त, तुम्हारे संग्रह को खाली करता है। जब तुम पूरे खाली हो जाते हो, तो परमात्मा तुम्हें भर देता है। शून्य हो जाना पूर्ण को पाने का मार्ग है।

कोई बीस वर्ष पहले, मैं एक वर्ष तक रायपुर में रहा था। जिस मकान में मैं रहता था, एक बूढ़ा आदमी उसी मकान में पड़ोस में रहता था। वह दांत का मंजन बेचने का काम करता था। जब मेरा उससे परिचय हो गया तो मैंने उससे पूछा, कि दांत तो तुम्हारे एक भी नहीं। तुमसे दांत का मंजन कौन खरीदता होगा? तुम अपने दांत नहीं बचा सके और तुम तख्ती लगाकर बैठते हो बाजार में कि ये मंजन से दांत मजबूत हो जाते हैं, दांत गिरने से बच जात हैं और तुम्हारा एक दांत नहीं है। कौन तुमसे मंजन खरीदता होगा? और किस हिम्मत से तुम मंजन बेच आते हो?

उस बूढ़े ने थोड़ी नाराजगी से कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है? कई लोग पुरुष होते हुए भी चोलियां बेचते हैं, साड़ियां बेचते हैं, चूड़ियां बेचते हैं। मैं उससे राजी हुआ, तो उसने इतनी बात और जोड़ी, और उसने कहा, कि फिर लोग अपने दांतों में उत्सुक हैं।मेरे दांत की तरफ देखते कहां? वस्तुतः उस बूढ़े आदमी ने कहा कि आप मेरे पहले पूछनेवाले हैं, जिसने यह संदेह उठाया। लोग अपने दांत की चिंता कर रहे हैं। दंत-मंजन का डब्बा देखते हैं। मेरे दांत की कौन फिकर करता है?

तुम पंडितों के दांतों की थोड़ी फिकर करो। वे जो बेच रहे हैं, वह उन्हें भी बचा सका। वे जो तुम्हें समझा रहे हैं, उससे उनकी भी समझ नहीं जागी। वे जो तुम्हें दे रहे हैं उससे उन्हें भी कुछ मिला नहीं है। उनके जीवन को थोड़ा परखो। वहां तुम पाओगे। एक रिक्तता पाओगे। भारी तुम पाओगे उन्हें। वजन से दबे हुए पाओगे, लेकिन तुम्हें वह नृत्य वहां न दिखाई पड़ेगा जो कबीर कह रहे हैं--पाइबो रे पाइबो रे ब्रह्मज्ञान।

नाच उठता है हृदय, जब ज्ञान की पहली किरण उतरती है। मोर को नाचते देखा? आषाढ़ के प्रथम दिवसों में आकाश में मेघ घिरने लगते हैं और मोर पंख फैला देते है और नाचता है। वैसा ही ब्रह्मज्ञानी भी नाचता है, जब उसके जीवन में परमात्मा के मेघ घिर जाते हैं। आषाढ़ का दिन आ जाता है। वर्षा होने के करीब हो जाती है। जन्मों-जन्मों की छाती प्यासी थी। मेघ घिर उठे, आषाढ़ का दिवस आ गया। ना

च उठता है मन-मयूर। तुमने कोयल को गाते देखा है? पुकारती है प्यारे को, पुकार
ती रहती है।
विरह की वैसी ही अग्नि खोजी को जलाती है, जब तक कि प्रेमी मिल ही न जाए।
 मिलन पर बड़ी गहन शांति, बड़ा गहन आनंद।
ज्ञानी का अस्तित्व बदलता है। पंडित की केवल स्मृति भरती है। स्मृति तो यंत्र मात्र
 है। उसका कोई मूल्य नहीं। तुम्हारा पूरा अस्तित्व अहोभाव से भर जाए। तुम्हारा र
ोआं-रोआं धन्यवाद देने लगे। तुम्हारे सब द्वार-दरवाजों से उस परमात्मा का प्रकाश
भीतर आ जाए। सब तरफ से तुम्हें आपूर परमात्मा घेर ले। आकंठ तुम भर जाओ।
 बाढ़ आ जाए उसकी, कि तुम समझ ही न पाओ, कैसे धन्यवाद दें। शब्द खो जाएं,
 बोलने का कुछ न बचे। तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही बोलने लगे। वाणी छोटी पड़ जाए
। आनंद लक्षण है। सच्चिदानंद लक्षण है। पंडित के दांत खुद ही टूट हुए हैं। और तु
म उससे सीख ले रहे हो।
आनंद को कसौटी समझो, अन्यथा तुम धोखा खाओगे। शब्दों के धनी बहुत है, आनं
द का धनी खोजो। जिसके जीवन में सब शांति और परिपूर्ण हो गया हो। जिसे कुछ
 पाने को न बचा हो, वही तुम्हें कुछ दे सकेगा। वही गुरु हो सकता है। पंडित तो
तुम्हारे ही साथ है। तुमसे थोड़ा ज्यादा जानता है, तुम थोड़ा कम जानते हो। तुम भ
ी थोड़ी मेहनत करो, तो थोड़ा ज्यादा जान लोगे। पंडित में और तुम में कोई गुणात
मक भेद नहीं है। मात्रा का भले हो, गुण का नहीं है। ज्ञानी और तुम में गुणात्मक
भेद है।
जैसे दो आदमी सोते हों, एक आदमी अपना देखता हो कि चोर है; और एक आदम
ी सपना देखता हो, कि साधु है। क्या तुम सोचते हो, उन दोनों में कोई गुणात्मक
भेद है? दोनों सो रहे हैं। दोनों सपना देख रहे हैं। दोनों के हाथ में सत्य नहीं है। अ
ौर एक तीसरा आदमी जागा हुआ पास ही बैठा है। जागा हुआ है, सपना नहीं देख
रहा है। इस आदमी उन दो सोए आदमियों में गुणात्मक भेद है। इसकी चेतन-दशा
ही अलग है। यह जागा हुआ है।
सपने इसे नहीं सताते हैं। क्योंकि सपने तो गहन तंद्रा में ही आते हैं। जब तुम बेहो
श होते हो, तब ही सपने तुम्हें आते हैं। जागे हुए व्यक्ति को वासना नहीं सताती,
क्योंकि वासना एक स्वप्न है। जागे हुए व्यक्ति को लोभ नहीं सताता, क्योंकि लोभ
एक स्वप्न है। जागे हुए व्यक्ति को पाप नहीं सताता, क्योंकि पाप एक स्वप्न है। औ
र मैं तुमसे कहता हूं, जागे हुए व्यक्ति को पुण्य भी नहीं सताता, क्योंकि पुण्य भी
एक स्वप्न है। अशुभ तो सताता ही नहीं, शुभ भी नहीं सताता। न तो जागा हुआ
आदमी शैतान होने की कामना करता है, और न साधु होने की कामना करता है।
जागा हुआ आदमी, जागा हुआ आदमी है। अब इन स्वप्नों से कुछ लेना-देना नहीं है।

और जब जीवन सारे द्वंद्व के पार जागता है, तभी कोई कबीर की तरह खड़ा हो स
कता है मेघों के नीचे--

पाइबो रे पाइबो रे ब्रह्मज्ञान
यह महानतम तुम्हें आनंद दिखाई पड़े, भला उस आदमी में पांडित्य भी न हो, तो भी तुम पीछे उस आदमी के दौड़ना। उसके पास कोई सुवास है। और भला कोई आदमी कितने ही ज्ञान से भरा हो और उसके चेहरे पर और उसकी आंखों में तुम्हें आनंद की पुलक, रहस्य का भाव, कुछ ऐसे महत्वपूर्ण को पाने की प्रतीति न हो, जो शब्दों में कहा नहीं जा सकता, कुछ ऐसी मूढ़ता का बोध न हो, जो हृदय में तो तलाबल है, लेकिन शब्द उसे बाहर नहीं ला पाते, लेकिन बैठ कर तुम्हें किसी शांत झील का अनुभव हो, जिसके पास आकर तुम्हें सूर्य के प्रकाश का अनुभव हो, जिस के पास बैठ कर तुम्हें चांद की शीतलता मिले, अपरिचित फूलों की गंध ओ, जिसके पास अनजान वीणा बजने लगे, तुम्हारे हृदय के तार भी जिसे दोहराने लगें।
क्या तुम्हें पता है? संगीतज्ञ एक बड़े अनूठे अनुभव को कहते हैं। एक वीणा को रख दिया जाए कक्ष के एक कोने में, कोई छुए भी न; और कुशल संगीतज्ञ दूसरी वीणा पर गीत बजाए, राग उठाए तो तुम्हें पता है, एक अनूठी घटना घटती है--कि पहली वीणा जो कोने में रखी है, धीरे-धीरे उसी धुन को बजाने लगती है।मगर बड़ा कुशल संगीतज्ञ चाहिए। एक वीणा तो वह बजाता है। उससे उठती हुई झंकार दूसरी वीणा के तारों को छूती है। उससे उठती हुई स्वर-लहरी दूसरी वीणा पर चोट करती है। धीरे-धीरे दूसरी वीणा के तार भी कंपायमान होने लगते हैं। एक धीमी सिहरन उनमें दौड़ जाती है। तानसेन या बैजू बावरा जैसे संगतज्ञों के संबंध में कथाएं हैं, कि दूसरी वाणी ठीक वही दोहराने लेती है, जो पहली वीणा कर रही है।
और अब तो इस पर वैज्ञानिक शोध हुई है और पाया गया कि यह सच है। इसे वैज्ञानिक कहते हैं, ला आफ सिंक्रोनिसिटी। अगर एक चीज बज रही हो एक ढंग से, तो सके चारों तरफ तरंगों का एक जाल पैदा होता है। उस जाल में उसके समान-धर्मा कोई भी मौजूद हो, तो उसके भीतर भी उसी तरह की ध्वनि कंपित होने लगती है।
ज्ञानी तो वही है, जिसके पास बैठने से तुम्हारे हृदय की वीणा कंपित होने लगे। उसका स्वर जाग गया। उसकी वीणा बज रही है, अनंत-अनंत हाथों से परमात्मा उसकी वीणा पर खेल रहा है। तुम उसके पा जाओगे, तुम्हारे हृदय के तार झंकृत होने लगेंगे। यह कोई बुद्धि का संबंध न होगा। यह एक हार्दिक संबंध होगा। इसका तालमेल प्रेम से ज्यादा होगा, ज्ञान से कम होगा। इसका तालमेल श्रद्धा से ज्यादा होगा, सोच-विचार से कम होगा। समान-धर्मा तुम्हारी आत्मा भी कंपित होने लगेगी। तुम्हारे भीतर की वीणा भी जागेगी, हिलेगी, उठेगी।
गुरु वही है, जिसके पास शिष्य रूपांतरित होने लगे।
कबीर के इन वचनों को बहुत ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करें।
अब मैं पाइबो रे पाइबो रे ब्रह्मज्ञान।
ये शब्द भी बड़े मिठास से भरे हैं--पाइबो रे! अब मैंने पा लिया! अब मैंने पा लिया!
सहज समाधें सुख में रहिबो कौटि कलप विश्राम।

घट गई वह घटना, जिसे सहज समाधि कहते हैं।
समाधियां दो तरह की हैं। एक तो समाधि है जो चेष्टा से घटती है, प्रयास से घटत
ी है, आयोजन से घटती है, यत्न श्रम से घटती है। ऐसी समाधि को पूरी समाधि न
हीं कहा जा सकता।
क्यों? क्योंकि तुम्हारे प्रयास से जो घटी है उसमें तुम्हारा कुछ न कुछ बाकी रह ही
जाएगा। तुम्हारा प्रयास तुमसे ऊपर कैसे जा सकता है? तुमने जो किया, उसमें तुम्ह
ारी छाया रह ही जाएगी। तुम्हारे हस्ताक्षर उसमें मौजूद रहेंगे ही। तुम्हारा प्रयास तुम्
हीं हों। तो तुम्हारे प्रयास से आई समाधि, तुमसे पार नहीं जा सकती। वह परमात्मा
तक नहीं पहुंच सकती।
एक तो समाधि है, जो प्रयत्न से फलित होती है। हां, तुम थोड़े शांत हो जाओगे।
तुम थोड़े तनाव से मुक्त हो जाओगे। तुम्हें नींद ठीक आने लगेगी। तुम्हारे जीवन में
थोड़ा संतुलन आ जाएगा। भटकाव कम हो जाएगा। व्यर्थ की बातों में तुम कम उ
लझोगे। लोभ, क्रोध तुम्हें कम आकर्षित करेंगे। काम-वासना वैसी प्रगाढ़ न रह जाए
गी, जैसी पहले थी। लेकिन फिर भी माडिफई, थोड़े से रूपांतरित--रहोगे तुम पुराने
ही।
जैसे कोई पुराने मकान को रिनोवेशन कर लेता है। पुराने मकान को थोड़ा टीमटाम
सजा लेता है। जरा जीर्ण मकान को यहां वहां ठीक-ठाक करके, थोड़े नए पत्थर जो.
डकर, थोड़ी दीवालों को नया पोत कर, रंग रोगन लगा कर, नये का ढंग दे देता है
। लेकिन भीतर तो जराजीर्ण मकान, जराजीर्ण ही रहेगा।
यत्न से जो समाधि आती है, वह ऐसी है जैसे किसी ने जराजीर्ण मकान का पुनरुद्धा
र कर लिया। वह नया भवन नहीं है। उसका पुराने से संबंध नहीं टूटा। सातत्य जार
ी रहा। वह पुराने का ही सिलसिला है। उसे तुमने कितना ही संवार लिया हो, भीत
र से वह जीरा जीर्ण ही है।
पुराना बिलकुल टूट जाए और समग्र रूपेण नये का जन्म हो। सिलसिला ही टूट जाए
, सातत्य ही टूट जाए। पुराने और नये के बीच कोई जोड़ ही न बचे। इधर पुराना
गया, उधर नया आया। दोनों के बीच कोई संबंध न हो। तभी समाधि परम होगी।
लेकिन वैसी समाधि तुम कैसे लाओगे? क्योंकि तुम लाओगे, तो तुम्हारा सातत्य जा
री रहेगा। तुम्हारी समाधि, लाई गई समाधि चेष्टित, कितनी ही तुम्हें शांत कर दें,
तुम्हें पुलक और आनंद से नहीं भरी सकेगी। क्योंकि आनंद तो परमात्मा का है। मनु
ष्य की गहनतम से गहनतम संभावना शांत होने की। उससे ऊपर मनुष्य नहीं जा स
कता।
और वैसी शांति कभी भी खंडित हो सकती है। क्योंकि जिसे आनंद न मिला हो, उ
सकी शांति का बहुत भरोसा नहीं है। क्योंकि शांति एक नकारात्मक स्थिति है। अशां
त तुम कम हो गए हो, इसलिए शांत लगते हो। लेकिन प्रकाश नहीं जला है। आनंद
की वर्षा नहीं हुई है।

जिसके जीवन में आनंद की वर्षा हो जाती है, उसके अशांत होने की संभावना समाप्त हो जाती है। और जिसके जीवन में आनंद खिल जाता है वह सिर्फ शांत नहीं होता, क्योंकि शांत तो बड़ी निष्क्रिय अवस्था है। शांत तो नकारात्मक स्थिति है। वह विधायक आनंद से भरा होता है। उसकी समाधि नाचती हुई होती है। उसकी समाधि में एक गीत होता है। एक सतत प्रवाह होता है, एक सृजनात्मक, सक्रिय ऊर्जा होती है। उसकी समाधि अशांति का हट जाना नहीं है, आनंद का उतर आना है। उसकी समाधि बीमारी का मिट जाना नहीं है, स्वास्थ्य का आर्विभाव है।

कवीर कहते हैं--

सहज समाधें सुख में रहिबो, कौटि कलट विश्राम।

वह जो अनंत-अनंत कल्पनाएं थीं, पीड़ाएं थीं, विकल्प थे, सबसे विश्राम हो गया। वे सब जा चुके। अब कोई सताता नहीं। न लोभ द्वार पर दस्तक देता है, न मोह, न राग, न क्रोध--कौटि कलप विश्राम। वे सब विकल्प जा चुके।

सहज समाधें सुख में रहिबो...

और एक महासुख का अवतरण हुआ है। लेकिन वह अवतरण सहज समाधि में होता है। यत्नपूर्वक जो समाधि है वह असहज समाधि है। सहज समाधि का अर्थ : स्वयंस्फूर्त, अपने आप उतर आई।

लेकिन यह कैसे होगा? अपने आप उतर आई तब तो तुम्हारे करने में कुछ बचाव नहीं। क्या करोगे? तुम्हें तो चेष्टा करनी पड़ेगी असहज समाधि की। शांति तो तुम्हें लानी पड़ेगी। आनंद आता है। शांति तो केवल तैयारी है कि आनंद उतर सके। जगह खाली करना है। सारा योग शांत समाधि तक ले जाता है। इसलिए जिन्होंने उस परम समाधि को पाया वह कहेंगे, गुरु कृपा से, प्रभु कृपा से, प्रसाद से। क्योंकि दूसरी समाधि तो तुम नहीं ला सकते। वह तो आएगी।

ऐसा ही, जैसे बाहर सूरज उगा है। तुम द्वार बंद किए भीतर बैठे हो। सूरज भीतर नहीं आ सकता। प्रकृति, परमात्मा आक्रामक नहीं है। वह तुम्हारे द्वार पर दस्तक भी न देगा। बाहर खड़ा रहेगा। उसकी किरणें तुम्हारे द्वार को हिलाएंगी भी न, तुम्हें चेताएंगी भी न, कि मैं आ गया हूं, द्वार खोलो। और द्वार को छेद कर भी सूर्य की किरणें भीतर प्रकाश न करेंगी। अगर तम अंधेरे में रहने को राजी हो, तो यह तुम्हारी स्वतंत्रता है। यह तुम्हारा चुनाव है। जबरदस्ती नहीं की जा सकती।

तुम द्वार खोल देते हो, सूर्य की किरणें भीतर आ जाती हैं। द्वार खोलना यत्नपूर्वक समाधि है। लेकिन सूरज का आना तुम्हारे यत्न से नहीं होता, सूरज अपने आप आता है। तुम थोड़ी किरणों के घसीट कर भीतर लाते हो! तुम थोड़ी बाहर जाकर किरणों को हांकते हो, कि चलो भीतर! तुम थोड़ी बाहर जा कर किरणों को कहते हो कि आओ भीतर, स्वागत है! नहीं, कुछ भी नहीं करना पड़ता है। तुम सिर्फ द्वार खोल दो।

इसका अर्थ हुआ, कि तुम सिर्फ बाधा मत बनो। तुम सिर्फ प्रतिरोध मत खड़ा करो। दरवाजा खोल दो, सूरज अपने से भीतर आता है। आगमन सहज है। तुम्हें उसके लिए कुछ भी न करना होगा।

योग का अर्थ है, यत्नपूर्वक समाधि। इसलिए पतंजलि योगशास्त्र तुम्हें सविकल्प समाधि तक ले जाएगा। निर्विकल्प समाधि तो घटेगी। द्वार खुल जाएगा सविकल्प समाधि से। निर्विकल्प समाधि आएगी। तुम तैयार होते परमात्मा एक क्षण भी देरी नहीं करता। तुमने द्वार खोला, वह मौजूद है। वह भीतर आ जाता है। और जब परमात्मा भीतर आता है तब स्वभावतः तुमने कुछ भी तो नहीं किया था उसे पाने को। तुम कैसे कहोगे, कि यह मेरे कारण भीतर आया? कार्य-कारण की शृंखला टूट जाती है। इसे तुम आगे समझोगे कबीर के वचनों में। कार्य-कारण की शृंखला टूट जाती है। अब तुम यह नहीं कह सकते कि मैंने दरवाजा खोला,इसलिए सूरज भीतर आया। तुम इतना ही कह सकते हो कि मैं दरवाजा न खोलता, तो सूरज भीतर नहीं आ सता था। मेरे दरवाजे खोलने से, दरवाजा ही खुलता है। सूरज का आना, दरवाजे के खुलने से जुड़ा ही नहीं है। सिर्फ अवरोध टूट जाता है। सूरज तो आ ही रहा था, सिर्फ बीच का अवरोध हट जाता है।

तुम भर बीच से हट जाओ। और परमात्मा प्रतिपल बरस रहा है। आषाढ़ की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं, उसके मेघ सदा ही घिरे हैं। वह कोई मौसम नहीं है, कि आता है और चला जाता है। सदा जो मौजूद है, सदा ही उसके मेघ आकाश को घेरे हैं। तुम जिस दिन हृदय पट के द्वार खोल दोगे, उसी दिन सहज समाधि घटित हो जाएगी। लेकिन सहज समाधि के लिए तो कुछ किया नहीं जा सकता।

फिर तुम क्या करोगे?

तुम यत्नपूर्वक शांत होने की चेष्टा करो। ये जो ध्यान के सारे प्रयोग हैं, ये सिर्फ दरवाजा खोलना है। अगर ठीक समझो, तो इनको ध्यान कहना भी ठीक नहीं। इनका तो ध्यान की पूर्व तैयारी कहना चाहिए। जैसे माली घास-पात को उखाड़ता है, जमीन को साफ करता है; लेकिन इसको कोई बगीचा लगाना थोड़े ही कहोगे! क्योंकि यह भी हो सकता है कि माली घास-पात उखाड़ दे, जमीन को साफ कर दे और नये बीज न बोए और बगीचा कभी पैदा न हो। घास-पात उखाड़ कर फेंक देना, जमीन को तैयार कर लेना, कंकड़-पत्थर से मुक्त कर देना, सिर्फ पूर्व तैयारी है। भूमिका है। अब बीज बोने पड़ेंगे। भूमिका तुम तैयार करो, बीज परमात्मा बोता है। तुम हृदय को तैयार करो, वर्षा उसकी तरफ से हो जाती है।

इजिप्त की एक बहुत पुरानी पुस्तक कहती है कि तुम एक कदम चलो, परमात्मा हजार कदम तुम्हारी तरफ चलता है। मगर पहला कदम तुम्हें उठाना पड़ेगा। क्योंकि परमात्मा आक्रामक नहीं है। जब तुम दर्शाओगे प्यास, जब तुम दिखाओगे मुमुक्षा, जब तुम उठोगे और एक कदम चलोगे, तत्क्षण तुम पाओगे, परमात्मा हजार कदम करीब आ गया। इधर तुमने तैयार किया भूमि को, उधर बीज आने शुरू हो गए। इधर तुमने द्वार खोला, उधर प्रकाश आया।

सहज समाधें सुख में रहिबो...
जिसे तुम सुख कहते हो, कबीर उस सुख की बात नहीं कर रहे हैं। क्योंकि उस सुख में रहना हो ही नहीं सकता। वह आया भी नहीं, कि गया हो जाता है। आ भी नहीं पाया, कि जा रहा है। इधर तुम देख रहे थे कि मुंह था अपनी तरफ, तुम ठीक से पहचान भी न पाए थे कि सुख आ रहा था, कि देखा कि पीठ हो गई, जा रहा है।
क्षण भर के सुख में कैसे रहोगे? होश आते ही क्षण खो जाता है। और फिर सुख-जिसे तुम सुख कहते हो—जब आता है, तब भी मन सुख से ही भरा रहता है। क्योंकि तुम जानते हो कि यह टिकेगा नहीं। तब भी भीतर एक गहरी उदासी घेरे रहती है चित्त को। तुम जानते हो भलीभांति, कि यह लहर की तरह आया, और लहर की तरह चला जाएगा। यह लहर तट पर सदा रुकनेवाली नहीं है। जैसी आई है, वैसी चली जाएगी। यह ज्वारा जल्दी ही भाटा हो जाएगा।
स्वभावतः जब सुख आता है, और पता चलता रहता है कि गया...गया...गया। कैसे तुम सुख में रह सकते हो? सुख आता है, तो तुम पकड़ने की कोशिश से भर जाते हो। रहना तो बहुत मुश्किल है, पकड़ते हो। रोक लें थोड़ी देर और, एक क्षण और, उस पकड़ने में ही वह क्षण खो जाता है, जो कि जीने का क्षण हो सकता था। सुख आता है, तब कहीं चला न जाए, यह चिंता मन में व्याप्त हो जाती है। दुख होता है, तब तुम दुख से पीड़ित। दुख होता है, तब तुम चिंता से पीड़ित, कि कैसे जाए। सुख होता है, तो तुम इस चिंता से पीड़ित कि कहीं चला न जाए। कि जब गया—कि अब गया। कैसे बांध लूं।
रह कैसे पाओगे? सुख में रहना तो तभी हो सकता है, जब सुख आए और न। आ गया, फिर जाने को न हो। तुम्हारा स्वभाव हो जाए, चित्त की वृत्ति नहीं। चित्त की वृत्ति तो लहर की तरह आती है और चलती जाती है। तुम जिसको सुख कहते हो, वह चित्त की एक तरंग है। कबीर जिस सुख की बात कर रहे हैं, वह अस्तित्व की अवस्था है। वह आत्मा की भावदशा है। स्वभाव फिर जाता नहीं।
बोधिधर्म चीन गया : एक बहुत महत्वपूर्ण संन्यासी, बौद्ध भिक्षु। चीन के सम्राट ने उससे पूछा, कि क्रोध आता है, लोभ आता है, अशांति आती है, क्या करूं? तो बोधिधर्म ने कहा, आंख बंद कर। मुझे बता, अभी क्रोध है? सम्राट ने कहा, अभी तो नहीं। तो बोधिधर्म ने कहा, जो चौबीस घंटे और सदा नहीं है, वह तेरा स्वभाव नहीं है। आता है, जो चला जाता है, वह तू कैसे हो सकता है? तू तो सदा है। क्या तू यह भी कह सकता है, कि कभी-कभी तू होता है और कभी-कभी नहीं भी हो जाता है? नहीं, सम्राट न कहा, मैं तो चौबीस घंटे में चाहे क्रोध हो, चाहे अशांति हो, चाहे शांति हो, चाहे सुख हो, चाहे नींद हो, चाहे जागरण हो, मैं तो सतत हूं। तो बोधिधर्म ने कहा, वह जो सतत है, उसकी फिकर कर। उसको जान। और जो कभी आता है और कभी चला जाता है, वह तो बाहर की तरंग है। किनारे को छूती है, लौट जाती है। उस पर ज्यादा ध्यान मत दे।

न तो सुख मूल्यवान है तुम्हारा, न दुख मूल्यवान है तुम्हारा। तुमने बहुत ध्यान इन पर दिया, इसलिए तुम बुरी तरह उलझ गए हो। वे ध्यान देने योग्य भी नहीं है। उपेक्षा के अतिरिक्त उनके प्रति दूसरा भाव नहीं चाहिए। सुख आए तो उपेक्षा रखना, क्योंकि वह जाने ही वाला है। दुख आए तो उपेक्षा रखना, कि जानते हो कि कितनी देर टिकेगा! कभी दुख सदा नहीं टिकता। तो फिर क्या इतनी परेशान होने की जरूरत है? रह लेने दो थोड़ी देर।

आ गया है पक्षी उड़कर तुम्हारे कमरे में, दुख का हो या सुख का क्षण भर फड़फड़ाएगा, दूसरी खिड़की से निकल जाएगा। कोई सदा रहने को नहीं है। एक खिड़की से प्रवेश कर जाता है पक्षी, क्षण भर फड़फड़ाता है, दूसरी खिड़की से निकल कर, अनंत यात्रा पर निकल जाता है। तुम तो वह भवन हो, जहां पक्षी थोड़ी देर उड़ा—वह रिक्तता, वह खाली जगह; उसी ससे अपना तादात्म्य करो, तो तुम समझ पाओगे कबीर किस सुख की बात कर रहे हैं! जो आता है, और जाता नहीं। आया कि आया, फिर जाने का नाम नहीं लेता। वह कोई मेहमान नहीं है, वह तुम ही हो। वह कोई अतिथि नहीं है, वह स्वयं आतिथेय है। मेहमान नहीं, मेजबान। वह तुम ही हो। वह कोई किनारे पर आनेवाली तरंग नहीं, वह किनारा ही है।

सहज समाधें सुख में रहिबा, कौटि कलप विश्राम।

गुरु कृपाल कृपा जब किन्हीं, हिरदै कंवल विगासा।

जब गुरु का प्रसाद मिला, जब गुरु की कृपा हुई, जब उसकी अनुकंपा बरसी, तो हृदय का कमल विकसित हुआ।

खुद की चेष्टा से भूमि तैयार होती है। इसलिए जो लोग खुद की चेष्टा को ही सब कुछ समझ लेते हैं, भटक जाते हैं। खुद की चेष्टा ऐसी ही है, जैसे कोई अपने जूतों के बंदों को उठाकर खुद को उठाने की कोशिश करे। थोड़ा-बहुत उछल कूद मचा सकता है। क्षण दो क्षण को, फीट दो फीट छलांग भी लगा सकता है। लेकिन कितनी देर यह छलांग टिकेगी? उछल भी नहीं पाएगा, कि पाएगा कि फिर जमीन पर ख. डा है।

आदमी की सामर्थ्य कितनी! बड़ी छोटी सामर्थ्य है। उस छोटी सामर्थ्य से विराट को खोजने हम जाएं, तो हम विराट को भी रंग डालेंगे। वह विराट भी हम जैसा ही छोटा हो जाएगा, इसलिए तो हमारे सब भगवान छोटे हो गए हैं। छोटे आदमी का भगवान बड़ा कैसे हो सकता है?

तुम राम को बनाओगे, तो अपनी ही शक्ल में बनाओगे। कितने ही धनुष वगैरह दे दो, कितनी ही मूर्ति सुंदर बनाओ, लेकिन होगी आदमी ही मूर्ति। तुम्हारी ही मूर्ति का प्रतिफलन होगा। तुम कृष्ण का जीवन पढ़ोगे, तुम क्या पढ़ोगे? तुम अपने को ही पढ़ लोगे। बुद्ध को तुम, महावीर को, गौर से देखो! या तो तुम्हारे चेहरे उन में प्रकट हुए हैं, या तुम्हारी आकांक्षा—ज्यादा से ज्यादा तुम्हारी आकांक्षाएं, अभीप्साएं, जैसे तुम होना चाहोगे। लेकिन तुमसे बाहर कुछ भी नहीं जा सकता। तुम जो भी करोगे, तुम उसे घेर लोगे। वह तुम्हारी प्रतिध्वनि होगी।

इसलिए कबीर कहते हैं—गुरु कृपाल जब किन्हीं।

गुरु से अर्थ है, जो जाग गया। जो जाग गया, वह तुम्हारे और परमात्मा के बीच क. डी बन सकता है। इसे थोड़ा समझो।

गुरु एक द्वार है; द्वार से ज्यादा कुछ भी नहीं। उस द्वार के एक तरफ तुम हो और दूसरी तरफ परमात्मा है। तुम परमात्मा को समझने में असमर्थ हो। क्योंकि वह भाष ा बिलकुल अपरिचित। वह रूप अनचीन्हा। वह राग अनसुना। तुम्हारे कान उस संगी त के लिए तैयार नहीं है। तुम्हारा हृदय उस स्पर्श के लिए तैयार नहीं। तुम्हारी भूि म घास-पात से भरी है। वे बीज तुममें गिर भी जाएं, तो भी अंकुरित न हो पाएंगे। फिर तुम द्वार की तरफ पीठ किए खड़े हो। परमात्मा की तरफ तुम उन्मुख नहीं हो , परमात्मा से विमुख हो। संसार की तरफ जितनी उन्मुखता होगी, उतनी परमात्मा की तरफ विमुखता होगी, पीठ होगी। तुम मुंह तो एक ही तरफ कर सकते हो—या तो संसार की तरफ या परमात्मा की तरफ।

संन्यासी का इतना ही अर्थ है, जिसने संसार की तरफ पीठ कर ली और मुंह परमात मा की तरफ कर लिया। गृहस्थ का अर्थ है, जिसने पीठ परमात्मा की तरफ की औ र मुंह संसार की तरफ किया। बस, उनके खड़े होने के ढंग का जरा सा फर्क है। ए क जहां पीठ किए है, दूसरा वहां मुंह किए है। बस, इतना ही फर्क है। जरा सा मुड़ ना, एक सौ अस्सी डिग्री घूम जाना—और गृहस्थ संन्यासी हो जाता है। एक क्षण में! संन्यासी गृहस्थ हो सकता है।

मुंह कहां है? प्रभु-उन्मुखता, संन्यास है। लेकिन तुम्हारी पीठ द्वार की तरफ...और उ स द्वार के पार जो अनंत फैला हुआ है, वह तुम्हारी परिभाषाओं में नहीं आता है। तुमने जो भी जाना है, उससे उसका कोई मेल नहीं है। तुम्हारा सब जानना व्यर्थ है। गुरु का अर्थ है, जो कभी तुम जैसा था। पीठ किए खड़ा था द्वार की तरफ। फिर उसने द्वार की तरफ मुंह किया।

गुरु का अर्थ है, जो तुम्हारी भाषा भलीभांति समझता है। जो तुम्हारे बीच से ही पा या है। जिसका अतीत तुम्हारे जैसा ही था। लेकिन जिसका वर्तमान भिन्न हो गया है । जिसके जीवन में परमात्मा की थोड़ी किरण उतर गई है। वह परमात्मा की भाषा को भी थोड़ा समझा है। वह अनुवाद का काम कर सकता है।

गुरु एक अनुवादक है, एक ट्रांसलेटर। वह परमात्मा को समझता है, उसकी भाषा क ो। वह तुम्हें समझता है, तुम्हारी भाषा को। वह परमात्मा को तुम्हारी भाषा में लात ा है। वह परमात्मा को तुम्हारे अनुकूल...जिसे तुम सह सको। वह छानता है तुम्हारे लिए। रस लग जाए, तो तुम छलांग ले लोगे। लेकिन रस इतना बड़ा न हो कि उस आघात में तुम मिट जाओ। वह धीरे-धीरे तुम्हें तैयार करता है।

एक छोटे पौधे को तो सुरक्षा की जरूरत होती है। बड़े हो जाने पर किसी बागुड़ की कोई जरूरत नहीं रहती। वह तुम्हारे छोटे से पौधे को सम्हालता है। छोटे से पौधे पर तो मेघ भी बरस जाए, तो मौत हो सकती है। मेघ से भी बचना पड़े। छोटे पौ धे पर तो सूरज भी ज्यादा पड़ जाए, तो मृत्यु हो सकती है। सूरज जीवनदायी है।

लेकिन छोटे पौधे के लिए मृत्यु हो सकती है। जरूरत से ज्यादा है। छोटा पौधा उतन
ा लेने को, उतना आत्मसात करने को तैयार नहीं।
गुरु की सारी चेष्टा इतनी है है, कि वह परमात्मा को तुम्हारे योग्य बना दे और तुम्
हें परमात्मा के योग्य बना दे। परमात्मा को उसे थोड़ा रोकना पड़ता कि थोड़ा ठहरो
, इतनी जल्दी नहीं। इतनी जोर से मत बरस जाना। वह आदमी मिट ही जाएगा।
और तुम्हें उसे तैयार करना पड़ता है कि घबराओ मत, थोड़ी प्रतीक्षा करो। जल्दी
ही वर्षा होने को है। अगर एक बूंद गिरी है, तो पूरा मेघ भी गिरेगा। घबराओ मत।
तुम्हें तैयार करता है ज्यादा लेने को, परमात्मा को तैयार करना है, कम देने को।
और जब तुम्हारे दोनों के बीच एक संतुलन बन जाता है तो गुरु की कोई जरूरत न
हीं रह जाती।
गुरु तो सिर्फ एक द्वार है। तुम उससे पार हो जाते हो। वह तुम्हें रोकता भी नहीं।
द्वार किसी को कभी रोकता है? तुम उससे पार हो जाते हो। गुरु तो सिर्फ मध्य की
कड़ी है। और अगर तुम गुरु के साथ संबंध न जोड़ पाओ, तो तुम्हारी हालत ऐसी
होगी, कि तम हिंदी जानते हो, दूसरा आदमी जापानी जानता है। वह जापानी बोल
ता है, तुम हिंदी बोलते हो। दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं बनता। एक आदमी
चाहिए, जो जापानी भी जानता है और हिंदी भी जानता हो। जो तालमेल बिठा दे।
गुरु तालमेल बिठा देता है।
पर कबीर कहते हैं—
गुरु कृपाल कृपा जब किन्हीं
पर गुरु की कृपा भी अर्जित करनी होगी। वह भी मुफ्त नहीं मिल सकती। मुफ्त कु
छ मिलता ही नहीं। और जो लोग मुफ्त लेने की चेष्टा में होते हैं, वे सदा भिखारी
रह जाते हैं। मुफ्त कुछ मिलता ही नहीं। धर्म तो कभी नहीं। वहां तो तुम्हें अपने क
ो पूरा ही दांव पर लगाना पड़े, तो ही मिल सकता है।
गुरु की कृपा का क्या अर्थ? जो शब्द उपयोग किए कबीर ने वे बड़े अदभुत हैं। गुरु
कृपाल कृपा जब किन्हीं। कहते हैं, गुरु तो स्वयं कृपा है, वह तो कृपाल है। यह पु
नरुक्ति क्यों? गुरु कृपाल कृपा जब किन्हीं। गुरु तो स्वयं कृपा है, अनुकंपा है, करुणा
है। लेकिन वह करुणा भी तुम पर तभी बरस सकती है, जब तुम तैयार हो जाओ।
वह करुणा तो सदा ही है गुरु की, लेकिन तुम अगर औंधे रखे घड़े हो, तो वह क
रुणा तुम पर बरसती भी रहे, तो भी तुम न भर पाओगे। तुम्हें पता भी नहीं चलेगा
।
बुद्ध ने कहा है, मुझे लोग जब सुनने आते हैं तो मैं जानता हूं कि उसमें कुछ तो ऐ
से हैं, जो उल्टे घड़े की तरह हैं। उन पर कितना ही डालो, उनके भीतर कुछ पहुंच
ही नहीं सकता। क्योंकि उनका मुंह ही जमीन पर टिका है।
कुछ हैं, जो फूटे घड़े की तरह हैं। मुंह उनका चाहे सीधा भी हो, डालो, छू भी नहीं
पाता कि बाहर निकल जाता है।

कुछ हैं, जो डांवाडोल घड़े की तरह हैं—कंपित, चंचल। कुछ पड़ता है, कुछ गिर जाता है, कुछ बचता है। पूरा कभी नहीं बच पाता।

कुछ जो सधे हुए, सीधे घड़े की तरह हैं। न तो फूटे हैं, न उल्टे हैं, न चंचल हैं। उनमें जितना डालो, उतना तो सुरक्षित होता ही है, लेकिन उनके सधे होने के कारण वह बढ़ता है। बीज डालो, अंकुर हो जाता है। जितना डालो, उतना ही नहीं रहता, वह बढ़ता है। घटता तो है ही नहीं; विकासमान होता है।

कबीर कहते हैं, हिरदै कंवल विगासा। हृदय का कमल खिल गया। जब कृपावान गुरु ने कृपा की। गुरु तो कृपावान है। वह तो सदा कृपा कर ही रहा है। लेकिन जब एक शिष्य राजी न हो जाए, तब तक उससे कृपा का संबंध न जुड़ेगा। कृपा बरसती रहेगी, चांद उगा रहेगा, तुम आंख बंद किए बैठे रहोगे।

गुरु की कृपा को पाने के लिए क्या तैयारी करनी होगी? उसको ही समस्त धर्मों ने श्रद्धा कहा है। शिष्य की श्रद्धा और गुरु की कृपा इनका मिलन होता है। जब शिष्य की श्रद्धा पूरी होती है, तब गुरु की कृपा पूरी हो जाती है। एक तरफ श्रद्धा चाहिए, दूसरी तरफ कृपा, तब कहीं हृदय का कमल खिलता है।

श्रद्धा बड़ी दूभर घटना है। बड़ी कठिन है। करीब-करीब असंभव। इसलिए मैं धर्म को असंभव क्रांति कहता हूं। बड़ी मुश्किल से घटती है। क्योंकि इसका मौलिक आधार ही असंभव जैसा मालूम पड़ता है। संदेह तो मन के लिए स्वाभाविक है। श्रद्धा मन के लिए बिलकुल अस्वाभाविक मालूम होती है। संदेह तो सुरक्षा मालूम पड़ता है। श्रद्धा में खतरा मालूम पड़ता है, कि पता नहीं!...और पता तो है नहीं। जिसके साथ जा रहे हैं, वह कहीं ले जाएगा कि भटका होगा जिसका हाथ पकड़ा है, वह हाथ पकड़ने योग्य भी है या नहीं, इसका भरोसा कैसे आए? अनुभव के बिना भरोसा नहीं हो सकता। और धर्म कहता है, श्रद्धा के बिना अनुभव नहीं हो सकता। बड़ी असंभव बात मालूम पड़ती है : कैसे करें श्रद्धा?

और सारा जीवन संदेह का शिक्षण है। जीवन भर हम संदेह सिखाते हैं। क्योंकि संसार में श्रद्धा अगर करोगे तो लुट जाओगे। यहां तो संदेह ही आत्मरक्षा है। यहां तो हर वक्त अपने जेब को पकड़ रहना है। अपनी तिजोड़ी पर ताला डालना है। द्वार पर ताला लगाना है। यहां तो हर आदमी पर संदेह रखना है, कि चोर है। यहां तो हर आदमी को मान कर चलना है, कि दुश्मन है, प्रतिस्पर्धा है, प्रतियोगी है। यहां तो किसी को मित्र नहीं मानना। इस जीवन का तो पूरा शास्त्र ही मैक्वेवली और चाणक्य का है। मैक्येवली ने लिखा है, अपने मित्र का भी इतना भरोसा कभी मत करना, कि उससे सभी बातें कह दो। मित्र से भी इसी तरह बात करना, जैसे वह कभी हो जानेवाला दुश्मन है। कभी भी मित्र दुश्मन हो सकता है। फिर पछताना पड़ेगा। तो मैक्येवली कहता है, कि मित्र से भी ऐसी ही बातें करना, जो तुम अपने दुश्मन से भी कह सकते हो। क्योंकि कल यह दुश्मन हो सकता है। और दुश्मन के भी खिलाफ ऐसी बातें मत कहना, जो तुम अपने मित्र के खिलाफ न कह सको। क्योंकि कौन जाने, कल दुश्मन मित्र हो जाए। फिर पछतावा होगा।

चालाकी शास्त्र है संसार का। दिल्ली के राजनीतिज्ञों ने जो नगरी बसाई है राजनीति ज्ञों की, उसका नाम चाणक्य नगरी रखा है। बिलकुल ठीक रखा है। क्योंकि सारे बेई मान, चोर सब वहां इकट्ठे हैं। वह चाणक्य—नगरी बिलकुल ठीक है। चाणक्य भारती य मैक्येवली है। ये दो आदमी मैक्येवली और चाणक्य वैसे ही हैं संसार के लिए;जैसे बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद धर्म के लिए। ये महर्षि हैं संसार के। किसी पर भरोसा मत करना।

मैक्येवली की किताब द प्रिन्स का इतना प्रभाव पड़ा युरोप में, सभी सम्राट और राज ा उससे प्रभावित हुए। क्योंकि राजाओं के लिए लिखी गई किताब है, राजनीतिज्ञों के लिए। लेकिन प्रभाव इतना पड़ा, कि मैक्येवली को कोई आदमी वजीर बनाने को र ाजी नहीं था। क्योंकि यह आदमी इतना चालाक है और इतना जानकार है। मैक्येव ली गरीब आदमी मरा। उसको नौकरी नहीं मिली। हालांकि कोई भी सम्राट उसको नौकरी देने को उत्सुक हो जाता, क्योंकि वह आदमी सच में चालबाज था।

लेकिन उसकी किताब का तो प्रभाव बहुत पड़ा। किताब तो सबने पढ़ी। लेकिन द्वार पर भी उसने दस्तक दी, लोगों ने कहा क्षमा करो। क्योंकि तुम्हारी किताब से हम सीखे, उसी का उपयोग कर रहे हैं। तुम्हें करीब लेना खतरनाक है। तुम जरूरत से ज्यादा जानते हो आदमी की बेईमानी के संबंध में। तुम्हारा भरोसा नहीं किया जा स कता।

संदेह शास्त्र है संसार का। और मन की तैयारी संदेह के लिए की जाती है। स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी संदेह सिखाते हैं। विश्वास तो कब करना, जब संदेह की कोई ज गह न रह जाए। यह सूत्र है संसार का। लेकिन संदेह की जगत तो सदा रहेगी।

और आत्मा के जगत में तो संदेह की जगह बहुत बड़ी है। वहां तो तुम अनजान रा स्ते पर जा रहे हो। अनुभव तुम्हारा कोई भी नहीं है। और श्रद्धा की मांग है, खतरा है। श्रद्धा तुम कर न सकोगे, अगर संदेह के मन को तुमने जारी रखा।

इसलिए श्रद्धा केवल वे ही लोग कर सकते हैं जो अति दुःसाहसी हैं। साहसी भी नह ीं कहता, अति दुःसाहसी। जिन्होंने जीवन का सब राग-रंग देख लिया। संदेह भी कर के देख लिया और चालाकी भी करके देख ली और पाया, कि हाथ में राख के सिव ाय कुछ भी नहीं लगता। बेईमानी भी करके देख ली, चोरी भी करके देख लीख सा री दुनिया को दुश्मन मान कर भी देख लिया और पाया, कि हाथ में सिवा राख के कुछ भी नहीं लगता। जिनके जीवन का विषाद गहन हो गया है, और जिन्होंने संदे ह की असमर्थता देख ली, और अब जो तैयार हैं श्रद्धा में छलांग लगाने को।

श्रद्धा तो अंधी है। संदेहवाले व्यक्ति को श्रद्धा अंधी दिखाई पड़ेगी। जो कूदने को तै यार है, जो इस बात के लिए राजी है, कि ज्यादा से ज्यादा मौत ही होगी। तो जी वन भी देख लिया, वहां भी मौत के सिवाय कुछ भी न पाया। ज्यादा से ज्यादा मिट जाऊंगा। तो जिंदगी देख ली, वहां मिटने के सिवाय कुछ और न हुआ। बहुत जन्मों से मिट-मिट कर देख लिया जो तैयार है, जो इतना परिपक्व है, कि जो कहता है

मिट जाएंगे, ठीक है। अब अंधे होने की तैयारी। अब आंख से चल कर देख लिया, कहीं न पहुंचे। अब आंख बंद करके भी चल कर देख लें। शायद पहुंच जाए।
और बड़े मजे की बात यह है, कि जो आंख बंद करके चलने को तैयार होता है, उसकी भीतर की आंख तत्क्षण खुल जाती है। श्रद्धा, संदेह से देखने जाने पर अंधी है और अनुभव से देखी जाने पर उससे बड़ी कोई आंख नहीं। वही दृष्टि है। लेकिन वह उसी को मिलती है। जो छलांग लेता है।
तुम्हारी दशा वैसी है, कि तुम नदी के तट पर खड़े हो, और मैं तुमसे कहता हूं कि आओ, उतर आओ। तैरना सीख लो। तुम कहते हो, पहले हम तैरना सीख लेंगे। पानी का क्या पता? खतरा हो, जान चली जाए। बात आपकी ठीक होगी, लेकिन हम पहले तैरना सीख लेंगे, तभी पानी में उतरेंगे।
बात तुम्हारी भी ठीक है। क्योंकि खतरा पानी में उतरने का तभी लेना चाहिए जब तैरना आता हो। संदेह का शास्त्र यही कहता है कि पहले सीख लो, समझ लो, फिर उतरो।
लेकिन तुम तैरना सीखोगे कैसे अगर तुम पानी में उतरने को राजी ही नहीं? तुम्हें पानी में उतरना ही पड़ेगा, बिना तैरना सीखे। क्योंकि तैरना पानी में उतरने से ही जाएगा। धीरे-धीरे उतरो, आहिस्ता, आहिस्ता, उतरो, सम्हाल-सम्हाल कर कदम रखो, पर उतरो। पानी में तुम उतर गए, तैरना सीखने में बहुत कठिनाई नहीं है।
वस्तुतः गुरु कुछ ज्यादा नहीं सिखाता। तुम में साहस हो, तो गुरु की शिक्षा बहुत थोड़ी है। वह तुम्हें तैरना सिखा देता है। तैरना तो सभी को आता है। यह तम जान कर चकित होओगे। तैरना सभी को आता है, तुमने सिर्फ अपनी संभावना की परीक्षा नहीं की। तैरना तो सभी को आता है। सीखना नहीं है, सिर्फ स्मरण करना है। पानी में उतर कर तुम हाथ-पैर फेंकना शुरू कर दोगे। वह तैरना है--थोड़ा अकुशल। दो चार दिन में कुशलता से तुम हाथ फेंकने लगोगे। वह वही का वही है। पहले दिन जो तुमने हाथ फेंके थे, उस हाथ फेंकने में और आखिरी दिन, जिस दिन तुम कुशल तैराने हो जाओगे, हाथ फेंकने में फर्क नहीं है। थोड़ा व्यवस्था का फर्क है।
और वह फर्क भी बहुत गहरा नहीं है। वस्तुतः थोड़ी आस्था का फर्क है। पहले दिन आस्था न थी, घबड़ाहट में फेंके थे। अब तुम आस्थावान हो। जानते हो कि हाथ फेंकने से बच जाते हो। कोई खतरा नहीं, पानी कितना ही गहरा हो। तैरनेवाले को क्या फर्क पड़ता है, कि पानी दस गज गहरा है कि दस मील गहरा है? कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बार कला आ गई, फिर तो हाथ भी फेंकने की जरूरत नहीं रह जाती। आदमी ऐसे ही पड़ा रह जाता है पानी में, तिरता है; तैरता भी नहीं। क्या हो गया? आस्था बड़ी गहन हो गई। अब वह जानता है कि डूब तो सकते ही नहीं।
अब यह बड़े मजे की बात है, कि आदमी जिंदा आदमी हो, तैरना न जानता हो, तो डूब कर मर जाता है। लेकिन जब मर जाता है तो पानी के ऊपर आ कर तैरने लगता है। मुर्दे भी जानते हैं, कैसे तैरना। और जिंदा आदमी डूब जाता है।

मुर्दों को कोई कला आती है, जो जिंदों को नहीं आती। मुर्दे का संदेह समाप्त हो ग या। मुर्दे की घबड़ाहट मिट गई। मुर्दा और क्या होगा? जो होना था, हो चुका। अब यह नदी भी क्या करेगी? अब यह सागर भी क्या मिटना खतम हो गया। तत्क्षण नदी उसे ऊपर उठा देती है।
क्योंकि तुम्हारे शरीर में इतनी वायु है ही, कि तुम पानी में तिर सकते हो। लेकिन तुम्हें सिर्फ स्मरण नहीं है। तुम पानी से हल्के हो। क्योंकि तुम्हारे रोएं-रोएं में वायु भरी है। तुम एक गुब्बारे की तरह हो, जो पानी में तिर जाते है बिना हाथ पैर फड़ फड़ाए। वस्तुतः जो लोग डुबते हैं, वे तैरना न जानने की वजह से नहीं, जरूरत से ज्यादा हाथ पैर फड़फड़ा देते हैं। उसी में डुबकी खा जाते हैं। पानी मुंह में भर जाता है। श्वास अवरुद्ध हो जाती है, प्राण निकल जाते हैं। हर एक तैरना जान कर ही पैदा हुआ है।
यह जो मैं तुमसे कर रहा हूं, इसलिए कि ध्यान को तुम जानते हुए ही पैदा हुए हो। समाधि तुम्हारा स्वभाव है। सिर्फ स्मरण! थोड़ी श्रद्धा करो। और जो समाधि के स ागर में तुम्हें बुला रहा हो, उसके पास जाओ। छोड़ो संदेह, बहुत दिन तक किनारे और संदेह से बंध रहे। उतरो पानी में। उतरते ही श्रद्धा बढ़ेगी। लेकिन उतरने के प हले भी श्रद्धा चाहिए। फिर श्रद्धा प्रगाढ़ होगी। मजबूत होगी। एक घड़ी आती है, तु म हंसोगे। तुम हंसोगे और तुम कहोगे यह तो बिना गुरु के भी हो सकता था।
मेरे गांव में जो व्यक्ति लोगों तो तैरना सिखाते थे, वे कुछ खुद भी बड़े तैराक न थे। उन्होंने ही मुझे भी तैरना सिखाया था। और उनकी कला कुल इतनी थी कि उठा कर बच्चे को फेंक देते थे पानी में। उन्होंने मुझे भी फेंक दिया था। लेकिन वे किना रे पर खड़े हैं, इसलिए कोई डर न था। हाथ पैर फड़फड़ा कर मैं वापिस आ गया। उन्होंने दुबारा फेंका, आस्था बढ़ती गई। वे कभी पानी में उतरे नहीं, कभी उन्होंने मु झे हाथ पकड़ कर सिखाया नहीं। सिर्फ किनारे से मुझे पानी में फेंका। लेकिन घबराह ट में डुबकी खाने में आदमी भागता है वापस किनारे की तरफ।
पर वे खड़े हैं। जरूरत होगी, तो बचा लेंगे। वे खड़े हैं इसलिए कोई चिंता नहीं। उन् होंने सैकड़ों बच्चों को तैरना सिखायें। बहुत छोटे-छोटे बच्चों को तैरना सिखाया। औ र कभी वे नीचे उतर कर किसी को सिखाने नहीं गए। वे किनारे पर बैठे रहते। अ पना कपड़ा धोते रहते, या मालिश करते रहते शरीर की, और उठा कर बच्चे को फेंक देते और देखते रहते, कि बच्चा आ रहा है। बस इतना भरोसा, कि कोई बचा ने को मौजूद है, काफी है।
श्रद्धा भीतर जन्म जाए, तो गुरु की कृपा तो सदा मौजूद है। कृपा और श्रद्धा का ि मलन हो जाए, तो क्रांति की चिनगारी पैदा हो जाती है। असंभव क्रांति भी घटती है। इसलिए मैं असंभव कहता हूं तो यह मत समझना, कि संभव नहीं है। असंभव क हता हूं सिर्फ इसलिए, अति दूभर है, अति कठिन है। करीब-करीब असंभव है। घटत ी तो है, असंभव भी घटता है। असंभव भी संभव है।
गुरु कृपाल कृपा जब किन्हीं, हिरदै कंवल विगासा।

भागा भ्रम दसों दिशि सूझ्या।

एक क्षण में सारा भ्रम टूट गया। दसों दिशाएं सूझने लगीं।

परम ज्योति परगासा—परम ज्योति प्रकट हुई।

एक क्षण में घट जाती है घटना।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, जन्मों-जन्मों का कर्मों का जाल है। आप कहते हैं, एक क्षण में घट जाती है घटना, यह कैसे घटेगा? पाप-पुण्य जो किए हैं, उनका क्या होगा?

वे सब तुमने सपने में किए हैं। वे सब तुमने बेहोशी में किए हैं, उसकी कोई जिम्मेद ारी तुम पर नहीं है। एक आदमी शराब पीकर किसी को मार दे, अदालत भी क्षमा कर देती है। एक आदमी पागल हो, पत्थर फेंक कर किसी की खिड़की तोड़ दे, अ दालत भी माफ कर देती है। छोटा बच्चा चोरी कर ले, अदालत क्षमा कर देती है। बेहोश का भी कोई दायित्व है? और परमात्मा बेहोश को क्षमा न करे, तो अन्याय हो जाए। मैं तुमसे कहता हूं, कि कोई कर्म बाधा नहीं है। एक क्षण में तुम जाग सकते हो।

तुम यह मत कहो, कि मैं रात भर सोया रहा, तो एक क्षण में तुम मुझे उठाओगे कैसे? रात भर सोया रहा, तो उठाने में इतना ही तो वक्त लगेगा, जितना मैं सोया रहा। नींद गहरी हो गई। लेकिन हम जानते हैं कि एक झटके में उठाए जा सकते हैं। नींद बाधा नहीं बनेगी। तुम जन्मों-जन्मों से सोए रहे हो, इससे कोई फर्क नहीं प. डता। सिर्फ तुम राजी हो जाओ, कि कोई तुम्हें हिलाए, तो तुम श्रद्धा से उठ जाओ ।

भागा भ्रम दसों दिशि सूस्या, परम ज्योति परगासा।

एक क्षण में खिल गया हृदय का कमल। परम ज्योति प्रकट हुई। एक क्षण में ही घ ट जाता है। जैसे चकमक को रगड़ो, और एक क्षण में आग पैदा हो जाती है। और यह हो सकता है, कि चकमक के दोनों पत्थर करोड़ों साल से पड़े रहे हों, और अ ाग पैदा न हुई हो। करोड़ों साल से दोनों पत्थर पास ही पास पड़े रहे हों, टकराए न हों, तो क्या तुम सोचते हो, करोड़ों वर्ष ने कोई बाधा डाल दी? अब तुमको करो. डों वर्ष तक रगड़ना पड़ेगा, तब कहीं आग पैदा होगी? आग तो एक क्षण में पैदा ह ो जाएगी। करोड़ों वर्ष तक पैदा न हुई, क्योंकि रगड़ न हुई। श्रद्धा और कृपा की र गड़ हो जाए, बस। वे दो चकमक के पत्थर हैं—तत्क्षण...!

...परम ज्योति परगासा

मतक उठ्या धनक कर लीये..

पर जो कल तक मरा हुआ पड़ा था, वह पुनरुज्जीवित हो गया परम-ऊर्जा से भरा हुआ, धनुष-बाण लिए। जो कल तक मेरा हुआ पड़ा था...

मृतक उठ्या धनक कर लीये, काल अहेड़ी भागा।

ओर उसकी जीवन ऊर्जा को देखकर मृत्यु भाग खड़ी हुई।

उदया सूर निस किया पयाना।

सुबह हो गई सूरज उगा रात्रि भाग गई। रात्रि ने एक क्षण भी रुक कर चेष्टा नहीं की, कि थोड़े पैर जमा कर खड़ी रहे। रात ने यह भी न कहा, कि यह कैसा अन्याय है! सदा से मैं यहां हूं। और अचानक तुम आ गए आज? मेहमान की तरह ठीक, लेकिन मुझे घर से तो मत भगाओ।

मैंने सुना है, बड़ी पुरानी कथा है, कि अंधेरे ने जाकर परमात्मा को कहा कि तुम्हारे सूरज को तुम रोक लो। सदा-सदा से मुझे परेशान करता रहा है। मैंने इससे कभी कोई छेड़छाड़ नहीं की। ऐसा कभी कुछ मेरे ऊपर नहीं, कि मैंने इसे कभी सताया है या परेशान किया है, या कोई दुख दिया। लेकिन मैं सो भी नहीं पाता विश्राम भी नहीं कर पाता और यह सुबह आ कर परेशान कर देता है। और फिर मुझे भगाता रहता है दिन भर।

परमात्मा ने अंधेरे को कहा कि बात ठीक है, लेकिन तुम दोनों का साथ-साथ मौजूद होना जरूरी है; तभी फैसला किया जा सकता है। क्योंकि सूरज की भी तो बात सु ननी पड़ेगी, वह क्या कहता है। रात की सुन ली, अंधेरे की सुन ली, सूरज की भी सुननी पड़ेगी।

कहते हैं, इस बात को कई-कई कल्प, महाकल्प बीत गए, अंधेरा अब तक सूरज क ो लेकर अदालत में मौजूद नहीं हो पाया। क्योंकि यह हो ही नहीं सकता। ये दोनों साथ नहीं हो सकते। इसलिए फैसला अटका है। फाईल में पड़ा है। वह कभी हल नह ीं होगा। वह फाईल में ही रहेगा। वह फाईल दिल्ली की फाईल है। यह हो ही नहीं सकता। कैसे सूरज को अंधेरा लेकर मौजूद होगा? और स्वभावतः जब तक दोनों द ल मौजूद न हों, दोनों पक्ष मौजूद न हों, परमात्मा भी कैसे निर्णय करे? सूरज से भ ी तो पूछना जरूरी है।

ऐसी मैंने सुनी है अफवाह, कि उसने सूरज से कभी एकांत में पूछा, अदालत में मुक दमा है, कभी न कभी मौजूद होना ही पड़ेगा, लेकिन मैं तुमसे निजी एकांत में पूछ ता हूं, कि क्यों अंधेरे के पीछे पड़े हो? क्यों परेशान करते हो? सूरज ने कहा, कौन अंधेरा? मैं तो जानता भी नहीं। मेरा कभी मिलना नहीं हुआ। मेरी पहचान ही नह ीं है, किस अंधेरे की बात कर रहे हैं? मैंने कभी अंधेरे को देखा नहीं। सब जगह घू म आया हूं। अंधेरे से मेरी कोई मुलाकात न हुई। अगर आपकी मुलाकात कभी हो जाए, तो मुझे मिला देना।

परमात्मा भी वह नहीं कर सकता। कहते हैं, परमात्मा सभी कुछ कर सकता है, लेि कन यह तो नहीं कर सकता। कहते हैं, वह सर्व शक्तिशाली है। शक की बात है। यह तो नहीं कर सकता, कि अंधेरे को सूरज के सामने खड़ा कर दे। कौन करेगा? अंधेरा सूरज का अभाव है। तो अभाव और भाव एक साथ तो नहीं हो सकते। मैं य हां हूं, या नहीं हूं। दोनों तो एक साथ नहीं हो सकता इस कुर्सी पर। या हूं और या नहीं हूं। दोनों एक साथ कैसे होंगे? अंधेरा सूरज का अभाव है, गैरमौजूदगी है, अ नुपस्थिति है, एबसेंस है। तो सूरज की मौजूदगी और सूरज की गैरमौजूदगी दोनों तो साथ-साथ नहीं हो सकती।

जैसे ही भीतर का सूरज उगता है, वह जो अंधेरी रात थी जन्मों-जन्मों की, भाग ज
ाती है।
उदया सूर निसा किया पयाना, सोवत थें जब जागा।
जब जगा कि दिया गुरु ने, नींद टूटी, सब अंधेरा, सब रात, सब पाप, सब पुण्य स
ब कर्मों का जाल जा चुका। एक क्षण में सभी दिशाएं दिखाई पड़ने लगी।
अविगत अकल अनूपम देख्या--
जो कभी नहीं देखा था। जिसे कभी जाना न था। अज्ञात, अविगत, जो पूर्ण है, समग्र
है, परिपूर्ण है, अकल्प है, जो अद्वितीय है, बेजोड़ है, उसे देखा।
कहंता कहया न जाई
अब उसे कहना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उस जैसा कोई भी नहीं, जिससे तुलना हो
सके।
तुमको अगर मैं कहूं गुलाब के फूल के संबंध में कुछ। हो सकता है, तुमने गुलाब क
ा फूल न देखा हो, तो मैं किसी और फूल की तुलना कर सकता हूं। लेकिन तुमने
फूल ही न देखें हों, तो फिर गुलाब के फूल को समझाना मुश्किल है।
हो सकता है, तुमने कभी शक्कर न चखी हो लेकिन गुड़ चखा हो, तो समझाया जा
सकता है।, कि शक्कर गुड़ का ही शुद्धतम रूप है। लेकिन तुमने मिठास ही न जा
नी हो, न शक्कर, न गुड़ न मधु, तुमने मिठास ही न जानी हो, तो फिर समझाना
मुश्किल है। परमात्मा अकेला है। जिन्होंने जाना, जाना; और नहीं जाना, नहीं जाना।
दोनों के बीच सब सेतु टूट जाते हैं। भाषा कामन हीं आती। किस ढंग से समझाएं?
कोई उपमा काम नहीं करती। कोई प्रतीक सार्थक नहीं मालूम होता।
अविगत अकल अनुपम देख्या, कहंता कहया न जाई।
सैन करे मन ही मन रहसे, गूंगे जान मिठाई।
गूंगे ने मिठाई खा ली है। हाथ से सैन करता है। मन ही मन स्वाद लेता है। हाथ क
ा इशारा करता है, कि गजब की चीज है। लेकिन सैन से कहीं मिठास का पता चल
ता है? सभी संत सैन करते रहे हैं। इशारा करते हैं, भीतर स्वाद भरा है। सब तर
फ से तुम्हें समझाते हैं। हर तरह से उपाय करते हैं, कि किसी तरह बात तुम तक
पहुंच कर तुम्हारे कान में पड़ जाए। क्योंकि तुम भी तड़फ रहे हो उसी प्यास के लि
ए। वही पानी तुम्हें भी चाहिए। और पानी किसी को मिल गया हो। वह इशारे कर
ता है। गूंगे के इशारे। स्वाद भीतर भरा है, तृप्ति भरपूर है। आकंठ पूरा हो गया है,
लेकिन कैसे तुमसे कहे?
सैन कर करे मन ही मन रहसे। लेकिन जो है वह तो भीतर रह जाता है। सैन में प
हुंच नहीं पाता। उंगली में आ नहीं पाता स्वाद। अनुभव उंगली में उतर ही नहीं पात
ा है।
...गूंगे जान मिठाई।
पहुप बिना एक तरुवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।

बिना फूल के एक वृक्ष में फल आ गए हैं। यह बड़ा रहस्यपूर्ण बचन है। इनको कबीर की उलटबांसिया कहा गया है। ये कबीर के अनूठे शब हैं। इन शब्दों के द्वारा कबीर ने यह कहने की कोशिश की, जो मैं थोड़ी देर पहले तुमसे कह रहा था; कि उस परमात्मा का अनुभव अकारण है। तुम्हारे किसी उपाय से नहीं घटता। कार्य-कारण की शृंखला टूट जाती है।

पहुप बिना एक तरुवर फलिया।

बिना फूल के किसी वृक्ष में फल नहीं लग सकते। क्योंकि फूल पहली अवस्था है। फिर फूल ही तो फूल में रूपांतरित होता है। फूल कारण है, फल कार्य है।

पहुप बिना एक तरुवर फलिया। कबीर कह रहे हैं, यहां सब उलटा हो गया है मामला। यहां बांसुरी उलटी बज रही है। यहां मैंने कुछ किया नहीं। और सब कुछ हो गया है। कारण था नहीं, और कार्य हो गया है। फूल लगे ही हनीं और फल आ गया है।

पहुप बिना एक तरुवर फलिया, बिन कर तूर बजाया

अब कोई तुरही बजाए तो हाथ तो हैं ही नहीं, जिनमें मैं तुरही को पकड़ लूं। मेरे कारण नहीं हो रहा है। मेरे हाथों से नहीं हो रहा है, हो रहा है। मैं ज्यादा से ज्यादा साक्षी हूं। कर्ता नहीं हूं।

नारी बिना नीर घट भरिया।

समझ में आता है, कि नारी एक घट लेकर जाती है, भरती पानी, डुबाती घड़े को पानी में, लेकिन नारी तो चाहिए। कबीर कहते हैं, यहां मैं बड़ी अनघट घटना देख रहा हूं। नारी तो दिखाई नहीं पड़ती, भरनेवाला तो दिखाई नहीं पड़ता और घट भर गया है। कर्ता दिखाई नहीं पड़ता और घटना घट गई है।

सहज समाधें सुख में रहिबो, कौटि कलप विश्राम।

जब बिना कर्ता के समाधि फलित हो जाती है, तब सहज-समाधि। जब तुम्हारे बिना किए हो जाती है।

नारी निबा नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया

अब उसे पा लिया जो सिर्फ सहज रूप से ही मिलता है। क्योंकि वह मिला ही हुआ है। उसे पाने के लिए कुछ भी करना नहीं है। करने की भ्रांति छोड़ देनी है। कर्ता को थोड़ा शांत करना है। बस, इतना ही करना है। कर्ता को कहना है, ज्यादा मत कर। बैठ। तेरे करने से उपद्रव हो रहा है, कर ही मत तू, तू विश्राम कर। थोड़ी देर बिना किए रह जाना है। और जो व्यक्ति भी बिना किए रह जाता है, उसके जीवन में सहज समाधि फलित होने लगती है।

अकर्म ध्यान है। अक्रिया ध्यान है। कुछ न करने की अवस्था को उपलब्ध कर लेना ध्यान है। फिर वर्षा शुरू हो जाती है। मेघ तो घिरे ही थे। आषाढ़ तो सदा से ही था। एक क्षण को भी वे गए न थे। तुम प्यासे थे तो अपने कर्ता के कारण, अहंकार के कारण। तुम करने में लगे थे। तुम परमात्मा के सामने दिखाने में लगे थे, कि मैं

कर के दिखा दूंगा। वहीं भूल हो गई थी। छोड़ो कर्तापन अकर्तापन से राजी हो जा ओ।

देखत कांच भया तन कंचन--

और कल तक जो शरीर कांच का था, इस परम-प्रकाश में अचानक स्वर्ण का हो ग या। अनघट घटने लगा।

बिना बानी मन माना।

और किसी ने समझाया न, किसी ने सांत्वना न दी, किसी ने संतोष न बंधाया, कि सी ने तर्क-विचार न किया, और मन मान गया।

और लाख समझाने वाले मिले, और मन न माना। और मन तर्क उठाए चला गया। और लाख सिद्धांत जांचे, संदेह न मरा। लाख शास्त्र पढ़े, लेकिन भीतर की शंका, दु विधा न गई। और आज कोई समझ नहीं रहे हैं। बस आंख खुल गई, नींद टूट गई। ...बिना बानी मन माना।

उड़या विहंगम खोज न पाया--और पक्षी उड़ गया।

कहां, पता नहीं। किस दिशा में, पता नहीं। क्योंकि यह पक्षी शून्य का है। इस पक्षी में कोई अहंकार नहीं, कोई रूप नहीं, कोई नाम नहीं।

उड़या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलही समाना। जैसे बूंद सागर में गिर गई और एक हो गई; अब कहां खोजूं?

हेरत हेरत हे सखि, रहया कबीर हिराई।

बूंद समानी समुंद में सो कत हेरि जाई।

उड़या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जली ही समाना। परमात्मा हैं घटनाएं--तुम्हा रा खोना, और उसका होना। जब तक तम हो, वह न हो पाएगा। मिटो! वही पा लेने का सूत्र है।

उड़या विहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलही समाना।

पूज्या देव बहुरि नहिं पूजै

बहुत पूजे देवता, मंदिर, मस्जिद,गुरुद्वारे, अब नहीं। अब उसकी पूजा? तो पूज्य और पुजारी दोनों एक हो गए।

...न्हाये उदिक न जाऊं

बहुत तीर्थयात्राएं की। बहुत स्नान किए गंगाओं में। अब कोई जरूरत न रही। परम स्नान हो गया। परम-तीर्थ मिल गया।

भागा भ्रम ये कहीं कहंता--सारा भ्रम, सारा अज्ञान, सारी माया भागी यह कहते हुए --आए बहुरि न आऊं। बहुत आए हम तेरे पास। अब न आएंगे।

भागा भ्रम ये कहि कहंगता, आए बहुरि न आऊं।

अब न आएंगे। बात खतम हो गई। भ्रम भाग गया, यह कहते हुए, कि अब न लौटूं गा।

बुद्ध को ज्ञान हुआ। बुद्ध ने जो पहले वचन कहे वे ये थे--कहा, अपने अज्ञान से, क हा अपनी वासनाओं से, कहां अपने वासना के मूल काम से, कि अब तू विश्राम कर

सकता है। अब तुझे दुबारा आने की जरूरत नहीं। तूने बहुत घर मेरे लिए बहुत ब
ार बनाए। अब तुझे घर बनाने की जरूरत नहीं। अब तू मुक्त है। अब तू जा सकता
है। अब तेरी चाकरी समाप्त हुई। धन्यवाद! तूने बहुत शरीर मेरे लिए धारण किए
और बहुत नामरूप। अब कोई जरूरत न रही।

कबीर दूसरी तरफ से वही बात कह रहे हैं

भागा भ्रम ये कहीं कहंता, आए बहुरि न आऊं।

खुद भ्रम भागने लगा दूर और कहता गया भागते भागते, बहुत बार आए अब न अ
ाऊंगा।

आपै में तब आपा निरख्या, अपन पै आपा सूझ्या

कुछ और बचा नहीं। खुद ही देखनेवाला, खुद ही दिखाई पड़नेवाला, खुद ही दर्पण
के सामने खड़ा, खुद ही दर्पण, खुद ही दर्पण में बनी तस्वीर। बस, खुद के सिवाय
कुछ न पाया। जिस क्षण तुम पा लोगे कि खुद के सिवाय कुछ नहीं, उसी क्षण खुदा
को पा लिया। खुदा शब्द बड़ा प्रतिकार है। कबीर के इस वचन में खुदा की व्याख्या
है। खुदा का अर्थ है, खुदी को इस भांति पा लेना, कि उसके सिवाय कुछ भी न ब
चे। स्वयं को इतना जान लेना समग्रता में, कि उस स्वयं में समा जाए।

आपै में तब आपा निरख्या, अपन पै आपा सुझ्या

आपै कहत सनत पुनि अपना...

अब कोई दूसरा है ही नहीं। खुद रहे हैं, खुद ही सुन रहे हैं।

सैन करे मनहि मन रहसे। गूंगे जानि मिठाई।

आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन पै आपा सूझ्या।

अपने परचे लागी तारी, अपन पै आप समाना।

कहे कबीर जो आप विचोर मिट गया आवन जाना।

और जिसने इस आप को पहचान लिया, इस आत्मा को, उसका आना-जाना मिट ग
या। अपने परचे लागी तारी—

तारी कबीर का बड़ा प्यारा शब्द है और बड़ा सूक्ष्म। बड़ा अर्थपूर्ण, बड़ा रहस्य से भ
रा हुआ। तारी ऐसी नींद का नाम है, जब तुम सोये भी नहीं होते, जागे भी नहीं ह
ोते, तब तारी लग गई। ऐसा कहते हैं। भीतर तुम जागे भी रहते हो। बाहर तुम स
ोए भी रहते हो। शरीर विश्राम में होता है, लेकिन चेतना का दिया जलता रहता है
। तारी, निद्रा और जागरण के ठीक मध्य की अवस्था है। जहां जागरण है पूरा, औ
र निद्रा का विश्राम भी पूरा।

पतंजलि ने योगसूत्रों में कहा, कि समाधि सुषुप्ति जैसी है, नींद जैसी है, सिर्फ एक
फर्क के साथ, कि नींद में बेहोशी है और समाधि में होश है।

तारी, कबीर का शब्द है। तारी का मतलब है, जागे भी पूरे, विश्राम से भरे भी पूरे
। और तारी शब्द में एक तरह की मादकता का भी भाव है। जैसे कोई शराब पी ग
या—परमात्मा की शराब! एक गहन नशा छा गया।

उमर खैयाम की रुबाइयात, कबीर की तारी की पूरी व्याख्या है। जिसमें उमर खैया
म मधुशाला की बात करता रहता है वह सूफी ग्रंथ है। और सारे अनुवादों ने उसे
भ्रष्ट कर दिया है। पश्चिम में फिटजराल्ड ने उसका अनुवाद किया। फिटराल्ड ने सम
झा, कि यह शराब की ही बात है।

यह शराब की बात नहीं है। यह तो परमात्मा के नशे की बात है। और उमर खैया
म एक सूफी फकीर है, जिसने शराब कभी छुई नहीं। लेकिन शब्द भ्रांति में डाल दे
ते हैं। फिर फिटजराल्ड के अनुवाद से सारी दुनिया में अनुवाद हुए। और मधुशाला,
मधुशाला मालूम होने लगी। पियक्कड़ सच में ही पियक्कड़ मालूम होने लगे। लेकिन
बात खो गई। बात कुछ और ही थी।

यह किसी और ही मधुशाला की बात थी। यह किसी और ही मधु और साकी और
किन्हीं और ही पियक्कड़ों की बात थी—परमात्मा के पियक्कड़! कबीर के शब्द तारी
में बड़ा रहस्य है। समाधि! सुषुप्ति जैसी। लेकिन इतना ही नहीं, कि जागरण और
नींद का विश्राम; पर एक मस्ती भी—एक विधायक मस्ती, एक नशा, एक आनंद, ए
क अहोभाव।

अब मैं पाइबो रे पाइबो रे ब्रह्मज्ञान।
अपने परिचै लागी तारी, अपन पै आप समाना।
कहे कबीर जो आप विचारे, मिट गया आवन जाना।

मन रे जागत रहिये भाई

14 मई, 1975, प्रातः, श्री रजनीश आश्रम, पूना

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ बसत मति खोवै।
चोर मुसै घर जाई।
षटचक्र की कनक कोठरी।
बस्त भाव है सोई।
ताला कुंजी कुलक के लागै।
उघड़त बार न होई।
पंच पहिरवा सोई गये हैं,
बसतैं जागण लागी,
जरा मरण व्यापै कछु नाही।
गगन मंडल लै लागी।
करत विचार मन ही मन उपजी।
ना कहीं गया न आया,
कहै कबीर संसा सब छूटा।
राम रतन धन पाया।

मनुष्य चेतना के दो आयाम है : एक मूर्च्छा, एक अमूर्च्छा। मूर्च्छा का अर्थ है सोये-सो
ये जीना; बिना होश के जीना। अमूर्च्छा का अर्थ है, होशपूर्वक जीना; जाग्रत, विवेक

पूर्ण। मूर्च्छा का अर्थ है, भीतर का दीया बुझा है। अमूर्च्छा का अर्थ है, भीतर का दी या जला है।

मूर्च्छा में रोशनी बाहर होती है। बाहर की रोशनी से ही आदमी चलता है। जहां इंि द्रयां ले जाती हैं, वहीं जाता है। इंद्रियों की कामना ही खुद की कामना बन जाती है । क्योंकि खुद का कोई पता ही नहीं। मन जो सुझा देता है, वही जीवन की शैली ह ो जाती है। क्योंकि अपने स्वरूप का तो कोई बोध नहीं। लोग जो समझा देते हैं, स माज जो बता देता है, वहीं आदमी चल पड़ता है क्योंकि न तो अपनी कोई जड़ें हो ती हैं अस्तित्व में, न अपना भान होता है। मैं कौन हूं, इसका कोई पता ही नहीं। तो जीवन ऐसे होता है, जैसे नदी में लकड़ी का टुकड़ा बहता है। जहां लहरें ले जा ती हैं, चला जाता है। जहां धक्के हवा के पहुंचा देते हैं, वहीं पहुंच जाता है। अपना कोई व्यक्तित्व नहीं, निजता नहीं। जीवन एक भटकन है।

निश्चित ही ऐसी भटकन में कभी ंजिल नहीं आ सकती। मंजिल तो सुविचारित कद मों से पूरी करनी पड़ती है। भटकाव बहुत हो सकता है यात्रा नहीं हो सकती। यात्रा का अर्थ है कि तुम्हें पता हो तुम कौन हो; कहां हो! कहां जा रहे हो! क्यों जा र हे हो! होशपूर्वक ही यात्रा हो सकती है। होशपूर्वक ही तीर्थयात्रा हो सकती है। इसि लए ज्ञानियों ने होश को ही तीर्थ कहा है।

अमूर्च्छित चित्त, जागा हुआ चित्त बिलकुल दूसरे ही ढंग से जीता है। उसके जीवन की व्यवस्था आमूल से भिन्न होती है। वह दूसरों के कारण नहीं चलता, वह अपने कारण चलता है। वह सुनता सबकी है। वह मानता भीतर की है। वह गुलाम नहीं होता। भीतर की मुक्ति को ही जीवन में उतारता है। कितनी ही अड़चन हो, लेकि न उस मार्ग पर ही यात्रा करता है जो पहुंचायेगा। और कितनी ही सुविधा हो, उस मार्ग पर नहीं जाता, जो कहीं नहीं पहुंचायेगा।

क्योंकि उस सुविधा का क्या अर्थ? मार्ग कितना ही सुंदर हो, कंटकाकीर्ण न हो, चो र-लुटेरे न हों, मार्ग पर, सब सुरक्षा हो, सुविधा हो लेकिन अगर मार्ग कहीं पहुंचात ा ही न हो, तो उस मार्ग की सुविधा और सौंदर्य का क्या करिएगा? मार्ग कंटकाकी र्ण हो, राह लुटेरों से भरी हो, जंगली जानवरों का भय हो, लेकिन कहीं पहुंचाता ह ो, तो जाने योग्य है।

अमूर्च्छित व्यक्ति का जीवन भटकाव नहीं, एक सुनियोजित यात्रा है। लेकिन वह नि योजन कौन देगा? समाज उस नियोजन को नहीं दे सकता। समाज तो अंधों की भी. ड है। वह तो मूर्च्छित लोगों का समूह है। अगर तुमने समाज की सुनी, तो तुम अंधे रे में ही भटकते रहोगे। भीड़ तो बोधपूर्ण नहीं है। हो भी नहीं सकती। कभी-कभी कोई एकाध व्यक्ति अनेकों में बोध को उपलब्ध होता है। तो भीड़ तो बुद्धों की नहीं है।

अमूर्च्छित व्यक्ति अपने भीतर अपने जीवन की विधि खोजता है। अपने होश में अप ने आचरण को खोजता है। अपने अंतःकरण के प्रकाश से चलता है। कितना ही थोड़ ा हो अंतःकरण का प्रकाश, सदा पर्याप्त है। इतना थोड़ा हो कि एक ही कदम पड़ता

हो, तो भी काफी है। क्योंकि दुनिया में कोई भी दो कदम तो एक साथ चलता नह
ीं।
छोटे से छोटा दीया भी इतना तो दिखा ही देता है, कि एक कदम साफ हो जाए।
एक कदम चल लो, फिर और एक कदम दिखाई पड़ जाता है। कदम-कदम करके ह
जारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
अमूर्च्छित व्यक्ति विद्रोही होता है। अमूर्च्छित व्यक्ति एक-एक क्षण, पल-पल एक ही
बात को साधता है; और वह बात यह है, कि कुछ भी मुझसे ऐसा न हो जाए, जो
मूर्च्छा को बढ़ाए, मूर्च्छा कसे ग्रहण करे। ध्यान रखना, एक-एक बूंद पानी की गिर
ती है, चट्टानें टूट जाती हैं। एक-एक बूंद होश की गिरती है, और तुम्हारी जन्मों-जन
मों की चट्टान हो मूर्च्छा की, निद्रा की टूट जाती है। लेकिन एक-एक बूंद गिरनी चा
हिए।
तो प्रतिपल अमूर्च्छित व्यक्ति की चेष्टा यही होती है, कि हर क्षण का उपयोग एक
ही संपदा को पाने में कर लिया जाए। वह यह, कि मेरे भीतर का विवेक प्रगाढ़ हो,
जागे।
मूर्च्छित चित्त की तीन अवस्थाएं हैं, जिन्हें हम जानते हैं।
एक, जिसे हम जाग्रत कहते हैं; जो कि शब्द उचित नहीं है। क्योंकि मूर्च्छित व्यक्ति
जागेगा कैसे? उसका जागरण नाममात्र का जागरण है। कहने भर का जागरण है।
सुबह सूरज उगता है, पशु-पक्षी जाग आते हैं, पौधे जाग आते हैं, तुम भी जाग जा
ते हो। क्या पशु पक्षी जाग्रत हैं; क्या पौधे जाग्रत हैं? तुम भी नहीं हो। सिर्फ शरीर
का विश्राम पूरा हो गया, इसलिए तुम उठते हो, चलते हो, बैठते हो। ऐसा लगता
है, जैसे जागे हो। लेकिन यह सिर्फ लगना मात्र है। इसका वास्तविक जागरण से को
ई दूर का भी संबंध मुश्किल से बनता है।
मैंने सुना है, कि मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ग्रामीण परिचित ने, किसान ने गांव से
एक मुर्गी भेज दी भेंट में। जो आदमी मुर्गी लेकर आया था, स्वभावतः नसरुद्दीन ने
उसका काफी स्वागत किया। मुर्गी का शोरबा बनवाया। उसे शोरबा पिलाया। वह आ
दमी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने जाकर गांव में खबर कर दी, आदमी बहुत अच्छा है।
और अतिथि को तो बिलकुल देवता मानता है।
फिर तो गांव से लोगों का आना शुरू हो गया। दूसरे ही दिन दूसरा आदमी मौजूद
हो गया। नसरुद्दीन ने पूछा, आप कौन? उसने कहा, कि जिसने मुर्गी भेजी थी, उस
का दूर का रिश्तेदार हूं। उसका भी नसरुद्दीन ने स्वागत किया। घर आया आदमी! ि
फर कितने ही दूर का रिश्तेदार हो, रिश्तेदार ही है उसी का, जिसने मुर्गी भेजी थी
।
लेकिन फिर बात सीमा के बाहर होने लगी। रिश्तेदारों के रिश्तेदार आने लगे। रिश्ते
दारों के रिश्तेदारों के मित्र आने लगे। रिश्तेदारों के रिश्तेदारों के मित्रों के मित्र आ
ने लगे। पत्नी बेचैन हो गई। उसने कहा, यह मुर्गी तो एक अपशगुन सिद्ध हुई। हम
इस इनकार ही कर देते। यह तो पूरा गांव चला आ रहा है। नसरुद्दीन ने बहुत सो

चा। कुछ करना ही पड़ेगा। और दूसरे दिन सुबह फिर एक आदमी खड़ा है। आप क ौन हैं? उसने कहा, कि जिसने मुर्गी भेजी थी, उसके रिश्तेदारों के रिश्तेदारों के मि त्रों का मित्र हूं। नसरुद्दीन ने कहा, आइए। स्वागत है।

लेकिन वह आदमी बड़ा हैरान हुआ, जब भोजन उसे कराया गया तो सिर्फ कुनकुना पानी था शोरबे के नाम पर। उस आदमी ने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन मैं ने बड़ी चर्चा सुनी थी आपके आतिथ्य की। और यह तो कुनकुना पानी है। नसरुद्दीन ने कहा, माफ करिए। कुनकुना पानी नहीं है। मुरगी के शोरबे का शोरबे का शोरबे का शोरबा है।

आपकी जागृति बस मुर्गी के शोरबे का शोरबे का शोबरे का शोरबा है। अगर बुद्धि जागृति जागृति है तो आपकी जागृति रिश्तेदारों के रिश्तेदारों के मित्रों का मित्र है। बहुत लंबा फासला है। बुद्ध को हमने जागृत कहा है। बुद्ध शब्द का अर्थ है—जो जा ग गया। जो होश से भर गया।

अगर बुद्ध मापदंड हों जागरण के, तो तुम्हारा जागरण क्या होगा? एक खोटा सिक का, जो सिक्के जैसा लगता है, लेकिन सिक्का है नहीं। एक झूठ, जा सत्य का दावा करता है, लेकिन सत्य है नहीं। एक मुर्दा लाश, जो ठीक जीवित आदमी जैसी ही मालूम पड़ती है, नाक नक्शा बिलकुल जीवित आदमी जैसा, लेकिन भीतर कोई प्राण नहीं है। एक बुझा हुआ दीया, जिसमें सब हैं; दीया है, बाती है, तेल है लेकिन ज्य ोति नहीं।

मूर्च्छा के तीन रूप हैं। एक, जिसे हम जागृति कहते हैं; जो बिलकुल खोटी है। क्योंि क जागे हुए भी तुम जागे हुए नहीं होते। जागकर भी तुम जो करते हो, वह खबर देता है कि तुम सोचे हुए हो।

तुमने हजार दफे तय किया है, कि अब दोबारा क्रोध नहीं करेंगे। और फिर एक आ दमी अपमान कर देता है, या तुम्हें लगता है अपमान कर दिया। या किसी आदमी का भीड़ में तुम्हारे पैर पर पैर पड़ जाता है—और एक क्षण भी नहीं लगता। एक क्ष ण की देरी भी नहीं होती, और आग उबल उठती है। और तुमने उनके बार तय ि कया है कि अब क्रोध न करेंगे। हजार बार कसमें ली हैं। हजार बार पछताए हो। व ह सब कहां चला गया पछतावा? यह याददाश्त इतनी जल्दी कैसे खो जाती है? हो श होता, तो साथ रहती। बेहोशी में याददाश्त साथ कैसे रह सकती है? क्षण में आ ग जल उठती है। फिर वही क्रोध खड़ा है। फिर तुम पछताओगे घड़ी भर के बाद; लेकिन न तुम्हारे पछतावे का कोई मूल्य है और न तुम्हारे क्रोध का कोई मूल्य है। तुम्हारा पछतावा भी झूठ है। क्योंकि तुम कितनी बार पछता चुके। अब रुकते नहीं। अब रुक जाओ।

एक आदमी मेरे पास आया। और उसने कहा, जिंदगी भर हो गई—उसकी उम्र कोई पैंसठ साल होगी—बस, एक ही चीज मुझे कष्ट दे रही है, मेरा क्रोध। इससे मेरा घ र भर पीड़ित है। मेरे बच्चे, मेरी पत्नी, मेरी जीवन एक कलह की लंबी कहानी है।

मगर यह क्रोध मुझसे नहीं जाता। और अभी भी है मौत करीब आई जा रही है। लेकिन यह क्रोध मुझे आग की तरह कंपाता रहता है।

और मैंने हजार बार पश्चात्ताप कर लिया। कसमें खा ली मंदिरों में जा कर, साधुओं के चरणों में सिर रख कर, कि शायद उनकी कृपा का साथ मिल जाए। भगवान को साक्षी रखकर मंदिरों में कसम खा ली। वह भी काम नहीं आती। जब क्रोध पकड़ता है। तो भगवान की सामर्थ्य भी काम में नहीं आती। उस वक्त मैं सब भूल ही जाता हूं। एक क्षण को मैं होता ही नहीं। कौन आ जाता है मेरे भीतर भूत-प्रेत जैसा, और मैं क्या कर गुजरता हूं, इसका मुझे खुद ही समझ नहीं आता। पीछे लौट कर देखता हूं, तो मानने का मन नहीं होता, कि मैंने ऐसा किया होगा। क्या करूं? आप साक्षी हो जाए। मुझे संकल्प करवाएं।

मैंने कहा, कि मैं वह भूल न करूंगा जो दूसरों ने तुम्हारे साथ की है। तुमसे मैं सिर्फ एक प्रार्थना करता हूं कि तुम पश्चात्ताप का त्याग कर दो। क्रोध तो चलने दो। इतना तो कर सकते हो कि अब क्रोध आएगा। तो पश्चात्ताप न करेंगे।

वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि यह तो मैं कर ही सकता हूं। इसमें क्या अड़चन? उसे पता नहीं, कि जो क्रोध नहीं छोड़ सकता, वह पश्चात्ताप भी नहीं छोड़ सकता। छोड़ना तो होश की बात है। मैंने कहा, तो जिस दिन पश्चात्ताप छूट जाए, तुम आ जाना। उसी दिन क्रोध भी छुड़वा दूंगा।

महीने भर बाद वह आदमी वापिस आया और उसने कहा कि आपने धोखा दिया। पश्चात्ताप भी नहीं छूटता। इसमें तो कोई अड़चन नहीं है। यह तो किसी शास्त्र ने तुमसे कहा नहीं, यह तो छोड़ ही सकते हो। पश्चात्ताप के तो विरोध में कोई भी हनीं है। क्रोध के विरोध में तो सारी दुनिया है। तुम पश्चात्ताप छोड़ दो। उसने कहा, नहीं। बात मेरी समझ में आ गई। आप क्या समझाना चाहते थे, वह मुझे दिखा गया। मैं कुछ भी नहीं छोड़ सकता। मैं हूं ही नहीं।

जब तक तुम जागे नहीं हो, तुम हो ही नहीं। तुम्हारा होना सिर्फ एक भ्रांति है। सिर्फ एक खयाल है। जिसकी कोई जड़ें नहीं है। सिर्फ एक सपना है; जिसकी कोई सार्थकता नहीं और जिसमें कोई पौदगलिकता नहीं; जिसमें कोई पदार्थ नहीं; जिसमें कोई बल नहीं। न तुम पश्चात्ताप छोड़ सकते हो, न तुम क्रोध छोड़ सकते हो। करते जरूर हो। वह भी कहना ठीक नहीं है, कि तुम करते हो। उचित होगा कहना, कि वह भी होता है। तुम यंत्रवत हो। नहीं तो छोड़ देते।

जिस काम को तुम करते हो, उसे तुम छोड़ सकते हो; यह नियम है। जिस काम को तुम करते ही नहीं, उसको तुम छोड़ोगे कैसे? जैसे होता है, उसको तम कैसे छोड़ोगे? बटन दबाते हो, बिजली का बल्ब जल जाता है। क्या बिजली के बल्ब के हाथ में यह बात है, कि वह न जले; या जब चाहे तब जले? या जब उसका भाव न हो, तो कह देस अभी विश्राम कर रहा हूं? नहीं, बटन दबाती है तो बिजली का बल्ब जल जाता है। शायद बिजली का बल्ब भी अपने भीतर सोचता होगा कि मैं जलता हूं, मैं बूझता हूं। वह गलती में है। तुम भी बुझते नहीं, जलते नहीं।

एक आदमी ने गाली दी, बटन दबा दी। जल गए! एक आदमी आया, कहने लगा, कैसे देवपुरुष हो आप! प्रसन्न हो गए! एक आदमी ने कहा, कैसी सुंदर मूर्ति है। औ र भीतर फूल खिल गए। और एक आदमी ने कह दिया, कि जरा देखो भी तो अप ना चेहरा दर्पण में। ऐसी बेहूदी शक्ल कहीं नहीं देखी—कि आग लग गई। बटने हैं। तुम नहीं हो।

बुद्ध के पास एक आदमी आया और उसने कहा, कि मुझे कुछ शिक्षा दें। मैं संसार की सेवा करना चाहता हूं। बुद्ध उदास हो गए। वह आदमी कहने लगा, आप उदास क्यों हो गए हैं? बुद्ध ने कहा कि उदास इसलिए हो गया हूं, क्योंकि तुम अभी हो ही नहीं। संसार की सेवा कौन करेगा? और तुम सेवा के नाम से दूसरों को सताने लगोगे। तुम कृपा करो। तुम पहले अपनी सेवा कर लो। पहले तुम हो तो जाओ।

गुरजिएफ—पश्चिम का एक बहुत बड़ा रहस्यवादी संत इस सदी का—कहता था, कि आत्मा सभी के भीतर नहीं है। उसकी बात में थोड़ी सच्चाई है। क्योंकि आत्मा तो उन्हीं के भीतर है, जो जागे हुए हैं। बाकी तो सिर्फ मिट्टी के पुतले हैं बाकी तो सब पदार्थ हैं। उनके भीतर अभी आत्मा का कोई आविर्भाव नहीं हुआ है।

उसकी बात में सचाई है। क्योंकि आत्मवान होने का एक ही अर्थ होता है, कि तुम अपने मालिक हुए। अब तुम जो चाहो, वही होगा। तुम हवा में कंपते हुए पत्ते नहीं हो, कि जब झोंका आएगा तब कंपोगे और जब झोंका नहीं आएगा तो लाख चाहो, तो कंप सकोगे। अब तुम यंत्रवत नहीं हो। तुम मनुष्य हो। मनुष्य का अर्थ है, कि अब तुम्हारे भीतर से निकलेंगे तुम्हारे कृत्य। बाहर की घटनाओं से पैदा न होंगे। पि रस्थितियां नहीं, अब तम मूल्यवान हो। तभी तो तुम आत्मवान होओगे। अन्यथा आ त्मा है, यह केवल सिद्धांत है।

कभी-कभी किसी व्यक्ति में आत्मा होती है। तुममें आत्मा ऐसे ही है, जैसे बीज में वृक्ष। हुआ न हुआ बराबर। हो सकता है, लेकिन है नहीं। और हो सकता और होने में बड़ा फर्क है। वह केवल संभावना है बीज की, कि अगर ठीक ठीक समुचित भूि म मिले, समुचित खाद मिले, समुचित सुरक्षा मिले, समुचित जल, समुचित सूर्य की किरणें मिलें, सुरक्षा मिले तो संभावना है, कि बीज वृक्ष हो सकेगा। लेकिन बहुत सी शर्तें पूरी हों, तब। अन्यथा बीज बीज की तरह ही मर जाएगा और वृक्ष न हो सकेगा।

अधिकतम लोग शरीर की तरह ही जीते हैं शरीर की तरह ही मर जाते हैं। बीज उनका ऐसे ही खो जाता है। अवसर आता है और जाता है। आत्मवान होने का अर्थ है—होश, विवेक, जागृति। तुम्हारे कृत्य तुम्हारे भीतर से निकलने लगें। अभी तुम्हा रे कर्म, कर्म नहीं हैं, प्रतिकर्म हैं। प्रतिकर्म यानी रिएक्शन। कोई कुछ करता है, उस की प्रतिक्रिया में तुम्हारे भीतर कुछ होता है। अगर कोई प्रेम करता है, तो तुम प्रेम करते हो। और कोई घृणा करता है, तो तुम घृणा करते हो।

जीसस का वचन है, शत्रु को भी प्रेम करो। इसका क्या मतलब हुआ? यह कोई नीि त की शिक्षा नहीं है। जीसस जैसे व्यक्तियों को नीति में क्या उत्सुकता? यह धर्म क

ा गहनतम सूत्र है। जीसस कहते हैं, शत्रु को प्रेम करो। वे यह कह रहे हैं, मित्र को तो प्रेम करना प्रतिक्रिया है, वह तो सभी मरते हैं। शत्रु को घृणा करना भी प्रतिक्रिया है। वह तो सभी करते हैं। जिसने शत्रु को प्रेम कर लिया, वह मालिक हो गया। उसने प्रतिक्रिया तोड़ दी। वह अपने कर्म का खुद मालिक हो गया।

शत्रु को पूरी चेष्टा कर रहा है, कि तुम उसे घृणा करो। लेकिन तुमने उसकी चेष्टा तोड़ दी। वह तो बटन दबा रहा था तुम्हारा क्रोध की लेकिन तुमने प्रेम का प्रवाह पैदा कर दिया। अगर तुम अपने शत्रु को प्रेम कर पाओ तो तत्क्षण तुम यंत्रवत्ता से मुक्त हो गए। तब तुम्हारे प्रतिकर्म खो गए। अब तुम कर्मवान हुए।

और यह बड़े मजे की बात है; प्रतिकर्म बांधते हैं, कर्म नहीं बांधता। असल में प्रतिकर्मों से ही कर्मों की शृंखला बनती है। जब कोई व्यक्ति होशपूर्वक कर्म करता है तो उससे कोई बंधन पैदा नहीं होता।

तुमने कभी जीवन में कोई कर्म होशपूर्वक किया है। होशपूर्वक करने का अर्थ है, तुम्हारे शरीर का यंत्र जो करना चाहता हो वह नहीं; तुम्हारे भीतर का होश जो करना चाहता हो वही तुमने कभी किया है? शरीर कहता था, करो क्रोध, मन कहता था, करो क्रोध। मन में तो गाली उठ आई थी, शरीर ने डंडा उठा लिया था। कभी ऐसा हुआ है, कि डंडा हाथ में रह गया हो, गाली मन में रह गई हो और तुम अछूते, अस्पर्शित भीतर खड़े रहे? तुम्हारी ज्योति पर छांव भी न पड़ी इस डंडे की। तुम्हारी ज्योति पर गाली का दंश भी न आया। तुम्हारी ज्योति निष्कलुष बनी रही—कमलवत। पानी छुआ ही नहीं।

अगर ऐसा तुमने कभी किया है, तो तुम्हें पहली दफा पता चलेगा कि अमूर्च्छा क्या है, जागृति क्या है, होश क्या है! उसी क्षण तुम परम-आनंद से भर जाओगे। तुम मुक्त हो गए। अब तुम्हें कोई चला नहीं सकता। अब तुम्हें कोई धका नहीं सकता। अब तुम अपने मालिक हो। यही तो मालकियत है,जिसकी तलाश चल रही है। अब तुम सम्राट हो गए।

जब तक तुम बंधे हो यंत्रवत्ता से तब तक तुम एक भिखारी हो। तुम्हारा जागरण, नाम-मात्र का जागरण है। खोटा सिक्का है। मूर्च्छा का पहला रूप है—जागरण—सुबह से सांझ तक जिसे तुम जानते हो, वह जागरण ऊपर-ऊपर है। भीतर तो निद्रा बहती रहती है। तुमने कभी खयाल किया? आंखें बंद करके थोड़ी देर बैठ जाओ। तत्क्षण तुम सपना देखने लगोगे। आंख खुली थी, वृक्ष, लोग, रास्ता, दुकान, बाजार दिखाई पड़ रहा था। आंख बंद की—सपना शुरू!

मैंने सुना है, कि मुल्ला नसरुद्दीन को फुटबाल का बहुत शौक था। शौक इतना ज्यादा हो गया था, जैसा कि अक्सर लोगों को हो जाता है। जब बाढ़ आती है तो कोई सीमाओं का खयाल रख कर थोड़ी आती है! क्रिकेट के पागल हैं, कि अगर उनकी टीम हार जाए तो रेडियो, जिसमें वे कामेंन्ट्री सुन रहे थे, उसको पटक देते हैं। हाकी के दीवाने हैं। मुल्ला नसरुद्दीन फुटबाल का दीवाना था।

पत्नी परेशान हो गई थी। क्योंकि वह दिन में बैठकर कुर्सी पर भी लातें फटकारता था। फुटबाल! रात सोता तो भी सपने में लाते फेंकता, और ऊधम मचाता। पत्नी डाक्टर के पास गई और उसने कहा, बहुत हो गया। अब यह फुटबाल का इलाज करना ही पड़ेगा। तो डाक्टर ने उसे दवा दी, कि यह ट्रेंक्विलाइजर है, शामक है। इसे ले जाओ। इसकी एक गोली दे दोगे, तो रात भर मुल्ला शांत रहेगा।

पत्नी घर आई। उसने मुल्ला से कहा कि यह गोली मैं ले आई हूं। तुम शांति से सो सकोगे। रात सोते वक्त इसे लेना है। मुल्ला ने कहा, अगर आज न लूं और कल लूं तो कोई हर्जा? उसकी पत्नी ने कहा, क्यों? आज क्या मामला है? उसने कहा, आज फायनल मैच है—सपने में।

अगर तुम आंख बंद करो तो तुम पाओगे कि कहां न मालूम कितने तरह के मैच चल रहे हैं सपनों के। जरा आंख बंद की, कि सपना दौड़ने लगता है। सपना दौड़ ही रहा था। सिर्फ आंख खुली थी, तुम बाहर उलझे थे, इसलिए खयाल नहीं था। सपना नींद का लक्षण है क्योंकि बिना नींद के सपना हो ही नहीं सकता। इसे तुम सूत्र की तरह याद रखना; सपना नींद का लक्षण है। और अगर जागते-जागते भी तुम्हारे भीतर सपना चलता है तो उसका अर्थ है, तुम्हारे भीतर नींद ही चलती है। ऊपर-ऊपर, सतह पर जरा से तुम जागे हुए लगते हो। भीतर सपना चल रहा है।

तुम रास्ते पर चलते लोगों को देखो। वे उस रास्ते पर चल रहे हैं—ऊपर-ऊपर। भीतर दूसरे ही रास्ते हैं, जिन पर उनका मन चल रहा है। लोगों को खाना खाते देखो। कौर बना रहे हैं, मुंह में खाना डाल रहे हैं। बिलकुल होश में लगते हैं। लेकिन जरा गौर से उनके चेहरे को देखो। भीतर कुछ और चल रहा है। शायद उन्हें पता भी न हो कि वे भोजन कर रहे हैं। वे किसी दूसरे लोक में किसी सपने में संलग्न है। उनके ओठ कंप रहे हैं। बात चल रही है किसी और से, जो वहां मौजूद नहीं है। लोग रास्ते पर चले जा रहे हैं और होंठ हिलते हैं। हाथ में मुद्राएं होती रहती हैं। जैसे वे किसी से चर्चा कर रहे हैं, जो वहां मौजूद है, तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, उनके सपने में मौजूद है।

तुम अपना ही निरीक्षण करो। तुम पाओगे, तुम जो भी करते हो, वह ऊपर-ऊपर है। भीतर कुछ और भी चल रहा है। भीतर सपना चल रहा है। भीतर नींद भरी है। ऊपर जरा सी पतली सतह है जागरण की। वह काम-चलाऊ है। उससे कोई आत्मा की उपलब्धि न होगी और न परमात्मा मिलेगा। वह इतनी धीमी मंदी रोशनी है, कि उससे वह प्रगाढ़ अंधकार न टूटेगा, जो तुम्हारे जीवन के भीतरी तलों को घेरे हुए हैं।

वह ऐसे है, जैसे जुगनू हो। चमकती है जुगनू, लेकिन जुगनू की चमक मग बैठ कर तुम कोई गीता थोड़े ही पढ़ सकते हो! ऐसा ही जागरण है, जुगनू की चमक जैसा। उसमें तुम भीतर के परमात्मा को थोड़े ही देख पाओगे। उसमें कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। उसमें जुगनू तक दिखाई नहीं पड़ती; और तो क्या कुछ दिखाई पड़ेगा। बस, जरा सी चमक। उतना ही तुम्हारा जागरण है। वह भी चमक पल भर की है। जुग

नू के पंख खुले—चमक। पंख बंद हुए—चमक बंद। ऐसे प्रतिपल तुम सोते, जागते हो। होश पकड़ते हो खोते हो।

दूसरी अवस्था है। तुम्हारे स्वप्न की। स्वप्न बड़ी अनूठी घटना है। क्योंकि जो है ही न हीं, वह स्वप्न में तुम्हें वास्तविक मालूम होता है। तुम्हारी तंद्रा कितनी गहरी न होग ी! और तुमने कोई सपना नया नहीं देखा है। तम रोज रात देखते हो। अगर आदमी साठ साल जीएगा तो कम से कम बीस साल सोएगा। आठ घंटे रोज सोएगा। एक तिहाई दिन सोएगा। साठ साल आदमी जिंदा रहेगा, तो बीस साल से ज्यादा सोएगा। रोज तुम सोते हो। रोज रात तुम सपना देखते हो। और रोज रात तुम्हें सपने में सपना सच मालूम होता है। तुम्हारा होश बिलकुल भी नहीं है। हां, पहली दफा तुम ने सपना देखा हो, सच मालूम हो जाए। क्योंकि परिचय न था। लेकिन सुबह हर दि न जागते हो और पाते हो कि सपना झूठ था। बीस वर्ष सोओगे, जाओगे। हर बार पाओगे कि सपना झूठ था। फिर से सोओगे फिर सपना सच मालूम होगा।

तुम्हारा होश कैसा होश है? तुम्हारा अनुभव कैसा अनुभव है? तुम्हारे जीवन में कोई भी संग्रहीत होता है, या नहीं होता? तुम्हारा ज्ञान निर्मित होता है, या नहीं होता ?

एक बच्चा एक बार भूल करे तो हम कहते हैं चलो, माफ कर दो। फिर दोबारा व ही भूल करता है, तो हम कहते हैं चलो बच्चा है। लेकिन तीसरी दफे हम सोचने लगते हैं, कि जब कुछ करना पड़ेगा। लेकिन तुम तो करोड़ों बार वही भूल कर चुके। रोज सांझ सोते हो, तब तुम जानते हो कि रात जो दिखाई पड़ता है, वह झूठा है। सुबह कर जानते हो, कि झूठा है। लेकिन रात के आठ घंटों में सच हो जाता है—तुम्हारे लिए ही। तो तुम्हारा जानना भीतर जाता ही नहीं। कांटा भी ज्यादा चुभ जा ता है, इतना भी तुम्हारा जानना नहीं चुभेगा। जानने की कोई लकीर ही तुम्हारे ऊ पर नहीं बनती।

महाभारत की कथा है, कि पांचों पांसठ वन में भटकते हैं। वे एक झील के किनारे आए हैं। वे प्यासे हैं। छोटे भाई को भेजा है पानी लेने, लेकिन जैसे ही वह झुक कर पानी भरने लगा, एक यक्ष ने, जो झील का मालिक था, उसने आवाज दी कि ठह रो। इस झील का नियम है, कि जो मेरे तीन प्रश्नों का उत्तर देगा वही केवल जल ले सकता है। और शर्त है, कि अगर तुम उत्तर न दे पाए या गलत उत्तर दिए, तो तुम उस झील से जिंदा न लौट सकोगे।

प्यासा था, नकुल, भाई भी प्यासे थे। तो उसने कहा, मैं राजी हूं जवाब देने को। लेकिन जवाब दे न पाया। गिर पड़ा। दूसरा भाई आया, तीसरा भाई आया; चार भाई लौटे नहीं झील से, तो युधिष्ठिर खोजने आए। चारों की लाशें पड़ी हैं किनारे पर। हैरान हुए थक क्या हुआ?

आवाज आई। जैसे ही झुके पानी को, कि ठहरो। जो तुम्हारे भाइयों के साथ हुआ, वही तुम्हारे साथ हो जाएगा। चुनौती है। तीन सवाल है। जवाब दे दो। क्योंकि इन तीन सवालों के जब मुझे जवाब मिल जाएंगे तो मैं इस यक्ष की योनि सु मुक्त होऊं

गा। यह मेरे लिए अभिशाप है। तो मैं खोज रहा हूं जवाब। और जब तक मुझे जवा ब न मिलेगा, मैं पानी न पीने दूंगा। पानी पीया तो मरोगे। बिना जवाब दिए भागने की कोशिश की तो मरोगे। जवाब तो चाहिए ही। जवाब गलत हुए तो मरोगे। युधि ष्ठिर ने कहा, तुम पूछो तो।

उसने पहला ही सवाल पूछा, वह सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। वह उसने पूछा कि मनु ष्य के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बात तुम्हें क्या अनुभव हुई? युधिष्ठिर ने कहा, कि मनुष्य जान कर भी जानता नहीं, सीख कर भी सीखता नहीं। मनुष्य सीखता ही न हीं।

कहते हैं, यक्ष ने स्वीकार कर लिया कि यह मनुष्य के जीवन में सबसे अनूठी घटना है। कितना ही अनुभव हो, अनुभव का सार—नवनीत इकट्ठा नहीं होता।

कितनी बार तुमने सपना देखा,फिर भी तुम धोखा खाओगे? आज रात फिर सपना देखोगे। और जब सपना देखोगे तो झूठ सच मालूम होने लगता है। जिसको झूठ सच मालूम होता हो, हजारों बार जान कर भी उसके होश को होश कहोगे? वह प्रगाढ़ रूप से बेहोश है। सपना बेहोशी का लक्षण है। गहनतम बेहोशी का लक्षण है। सिर्फ मन पर बनी लकीरें और चित्र वास्तविक मालूम होने लगते हैं। असंगत घटनाएं भी सपने में सही मालूम पड़ती हैं।

एक मित्र चला आ रहा है—सपने में। तुम देखते हो, अचानक वह घोड़ा कैसे हो गय ा। तो भी तुम्हारे मन में यह संदेह पैदा नहीं होता, कि जो अभी तक आदमी था, अचानक घोड़ा कैसे हो गया? सपने में संदेह पैदा ही नहीं होता। बड़े से बड़े संदेहवा दी भी सपने में संदेह नहीं करते। और जिसने सपने में संदेह कर लिया,उसका सपना टूट जाता है। वह सपने के बाहर हो जाता है।

सत्य के लिए चाहिए श्रद्धा, और सपने के लिए चाहिए संदेह। सत्य उसे मिलता है, जो श्रद्धा करता है। सपना उसका छूटता है, जो संदेह करता है। तुम उलटा ही क र रहे हो। सत्य पर संदेह करते हो, सपने पर श्रद्धा करते हो।तुम शीर्षासन कर रहे हो।

पैर पर खड़े हो जाओ। सपने पर करो संदेह। और जिस दिन तुम सपने पर संदेह क र लोगे, उसी दिन तुम पाओगे, सत्य पर श्रद्धा करना आसान हो गया। एकदम आ सान हो गया। तुम अपने पैर पर खड़े हो गए। सपने पर संदेह आते ही सपना टूट ज ाता है। इतना भी तुम्हें खयाल आ जाए रात नींद में...कि यह सपना है, उसी वक्त टूट जाएगा। क्योंकि इतना होश भी पर्याप्त है सपने की मौत के लिए। सपना तो झू ठ है।

मूर्च्छित व्यक्ति की दूसरी अवस्था है—स्वप्न। और तीसरी अवस्था है—निद्रा। तुम्हारी जागृति भी झूठी। सपने में तो जरा भी नहीं रह जाती। जागने में थोड़ी सी रहती म ालूम पड़ती है। एक आभास, एक छाया, एक प्रतिध्वनि, लेकिन सपने में बिलकुल न हीं रह जाती। तो निद्रा में तो क्या रह जाएगी, जब सपना भी नहीं रह जाता? तब तो तुम ऐसे हो जाते हो जैसे सड़क पर पड़ी हुई चट्टान। तुम होते ही नहीं।

निद्रा का अर्थ है, स्वप्न शून्य निद्रा। तब तुम होते ही नहीं। तुम्हारा होना बिलकुल ही विलुप्त हो जाता है। दीया बिलकुल ही बुझ गया। अब जुगनू भी नहीं टिमटिमाती। जागने में जुगनू टिमटिमाती थी। सपने में जुगनू थी, पंख बंद थे। टिमटिमाती नहीं थी। निद्रा में समाप्त ही हो गई। बंद पंख की जुगनू भी नहीं है।

ये साधारण चित्त की अवस्थाएं हैं, मूर्च्छित चित्त की।

अमूर्च्छित चित्त की क्या दशा है? अमूर्च्छित चित्त की कोई अवस्थाएं नहीं हैं। क्योंकि अमूर्च्छित व्यक्ति अभी सपना नहीं देखता। अमूर्च्छित व्यक्ति को सपना हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिसको होश है उसे सपना कैसे धोखा दे पाएगा। कैसे झूठ सच मालूम होगा? जैसे प्रकाश के जलने पर अंधेरा खो जाता है, ऐसे ही होश के आने पर सपने खो जाते हैं। अमूर्च्छित व्यक्ति, जागा हुआ प्रबुद्ध व्यक्ति सपने से मुक्त हो जाता है, और निद्रा से भी।

इसका यह अर्थ नहीं, कि वह सोता नहीं। सोता है, लेकिन जागा हुआ सोता है। जैसे तुम जागे हुए भी सोते हो, वैसे वह सोया हुआ भी जागता है।

कृष्ण ने गीता में कहा है कि योगी उस समय भी जागता है, जब भोगी की रात है। जब भोगी सोता है, तब भी योगी जागता है। इसका यह अर्थ नहीं, कि कृष्ण सोते नहीं थे। शरीर तो विश्राम करेगा, शरीर तो यंत्र है। थकेला और विश्राम करेगा। और शरीर के पुनर्जीवन के लिए विश्राम जरूरी है। बस, शरीर ही सोता है लेकिन। भीतर का दीया जलता ही हरता है। शरीर सोया रहता है। भीतर का पुरुष जागा रहता है।

जागृत व्यक्ति की कोई अवस्थाएं नहीं हैं। जागृति ही उसकी अवस्था है। वह जागे में भी जागता है, सोने में भी जागता है। जागना उसका स्वभाव है। और इसलिए समस्त योग एक ही कुंजी में भरोसा करता है। और वह कुंजी है, जाग जाना। जिस दिन जागने की कुंजी तुम्हारे नींद के ताले पर लग जाती है, खुल गए द्वार।

कवीर ने इन वचनों में उसी कुंजी की चर्चा है। इन्हें समझो। मन रे जागत रहिये भाई।

बड़ी गहरी नींद है। जागते-जागते ही टूटेगी। निरंतर निरंतर अभ्यास करने से ही मिटेगी। लड़ते रहने से ही कटेगी। चेष्टा जारी रहे; कितनी ही छोटी हो, तो भी एक दिन बूंद-बूंद गिर कर यह चट्टान टूट जाएगी।

रहीम ने कहा है, रसरी आवत जात है, सिल पर पड़ निशान। रस्सी ताकत क्या? लेकिन चलती रहती है कुएं पर, भरती रहती है पानी को, और मजबूत से मजबूत चट्टान पर निशान बन जाता है। अगर तुम्हें बोध की रसरी सरकती ही रहे तो तुम्हारे जीवन के घाट पर, तो कितनी ही हो, गहरी तंद्रा, आज नहीं कल निशान छूट जाएगा।

मन रे जाग रहिये भाई।

गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई।

असावधान होकर जीओगे, गाफिल होकर जीओगे, बेहोश जीओगे, नशे-नशे में जीओ गे तो वह जो भीतर बसता है, वह जो भीतर का मालिक है, उसका तुम्हें कभी पत ा न चलेगा। वह जो भीतर बसा है तुम्हारे घर में।
संस्कृत में, सांख्य और वैशेषिक शास्त्रों में आत्मा को पुरुष कहा है। पुरुष शब्द.बड़ा प्यारा है। पुरुष शब्द उसी घात से बनता है जिससे पुर बनता है। पुर यानी नगर। कानपुर, नागपुर पुर यानी नगर। और पुरुष यानी जो उस नगर के भीतर रहता है—निवासी।
कबीर उसको कहते हैं बसत—वह जो बसा है। हम कहते हैं न गांव को : बस्ती—वह जो भीतर बसा है।
गाफिल होइ बसत मति खोवै।
अगर बेहोश चले, तो वह जो भीतर बसा है, उसकी जो प्रतिभा है, उसकी जो चम क है, जो आभा है वह खो जाएगी। उसकी मति धूमिल हो जाएगी। उसके ऊपर धू ल जम जाएगी। दर्पण पर धूल जम जाती है, तो दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। ऐ से तुम्हारे भीतर जो बसा है, अगर नींद की पर्त ही पर्त तुम जमाते गए, तो उसकी मति, उसकी प्रतिभा, उसकी चमक खो जाएगी।
गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई।
और जब भीतर का पुरुष, भीतर का दीया अंधेरे से ढंक जाए, गहन रात में खो जा ए, भीतर की प्रतिभा सो जाए, जागी न हो, तो फिर चोर घर में घुसना शुरू हो ज ाता है।
बुद्ध ने कहा है, घर में कोई न भी हो और सिर्फ दीया जलता हो तो भी चोर डरते हैं। घर में कोई न भी हो लेकिन दीया जलता हो, तो भी चोर दूर दूर चलते हैं। क्योंकि दीए के जलने की खबर, शायद घर में कोई हो! जिस दिन भीतर का दीया जलता है, उस दिन प्रवेश नहीं करते।
चोर कौन है? जो भी तुम्हें प्रतिक्रिया में ले जाते हैं, वे सभी चोर हैं।
किसी ने गाली दी और तुम प्रभावित हो गए। चोर भीतर घुस गया। अब यह चोर तुम्हें नुकसान पहुंचाएगा। यह बड़े मजे की बात है; गाली देनेवाला तुम्हें कोई नुकसा न नहीं पहुंचाता था, न पहुंचा सकता था। उसकी कोई सामर्थ्य न थी। चोर बाहर थ ा। क्या करेगा? लेकिन तुमने चोर को भीतर बुला लिया। तुम क्रोधित हो गए। अब नुकसान होगा।
महावीर ने बार-बार कहा है, कि तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र भी नहीं है और तु मसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु भी नहीं है। अगर तुम चोरों को भीतर घुसने दोगे, तो तुम्हीं शत्रु हो। जिसने गाली दी, वह शत्रु नहीं है। क्योंकि इसकी गाली तो बाहर प. डी रह जाती, अगर तुम अक्रोध में रहे आते। अप्रभावित अगर तुम गुजर जाते, तो इसकी गाली भीतर प्रवेश कैसे करती? किसी ने सम्मान किया, सम्मान में कोई ख तरा नहीं है। लेकिन तुम अकड़ गए, अहंकार आ गया। चोर भीतर घुस गया। चोर तुम्हारे कारण भीतर घुसता है, दूसरे के कारण नहीं।

एक सुंदर स्त्री गुजरी। उसे पता भी न होगा, कि आप वहां मंदिर के सामने खड़े क्या कर रहे थे। या मंदिर के भीतर आप तो पूजा कर रहे थे और एक स्त्री भी आकर झुकी। स्त्री को कुछ पता भी न हो, स्त्री का कुछ हाथ भी न हो, चोर आपके भीतर घुस गया। किसी ने गाली दी, तब तो हमें यह भी लगता है कि कम से कम इसने गाली तो दी। कुछ तो इसका हाथ है। लेकिन एक सुंदर स्त्री पास से गुजरी, उसने आपकी तरफ देखा भी नहीं, लेकिन चोर भीतर घुस गया। आपने चोर खुद ही बुला लिया। काम जग गया। वासना जग गई। आप गाफिल हो गए। मुश्किल में पड़ गए। बेचैनी हो गई। एक उत्तप्तता ने घेर लिया। खो दिया केंद्र अपना। सपना जग गया। नींद आ गई।

गाफिल होइ बसत माति खौवे, चोर मुसै घर जाई।

जैसे ही तुम गाफिल हुए, जैसे ही चोर भीतर घुस जाता है। तो तुम्हारी गफलत ही असली कारण है।

बुद्ध एक गांव के पास से गुजरे। लोगों ने गालियां दीं, अपमान किया। बुद्ध ने कहा, क्या मैं जाऊं, अगर बात पूरी हो गई हो? क्योंकि दूसरे गांव मुझे जल्दी पहुंचना है। लोगों ने कहा, यह कोई बात नथी। हमने भद्दे से भद्दे शब्दों का प्रयोग किया है क्या तुम बहरे हो गए? क्या तुमने सुना नहीं।

बुद्ध ने कहा कि सुन रहा हूं। पूरे गौर से सुन रहा हूं। इस तरह सुन रहा हूं, जैसा पहले मैंने कभी सुना ही न था, लेकिन तुम जरा देर तक के आए। दस साल पहले आना था। अब मैं जाग गया हूं। अब चोरों को भीतर घुसने का मौका न रहा। तुम गाली देते हो। मैं देखता हूं, गाली मेरे तक आती है और लौट जाती है।

ग्राहक मौजूद नहीं है। तुम दुकानदार हो। तुम्हें जो बेचना है, तुम ले आए हो। लेकिन ग्राहक मौजूद नहीं है। ग्राहक दस साल हुए मर गया। पीछे के गांव में कुछ लोग मिठाइयां लाए थे। मेरा पेट भरा था, तो मैंने उससे कहा, वापिस ले जाओ। मैं तुम से पूछता हूं, वे क्या करेंगे? किसी ने भीड़ में से कहा, जाकर गांव में बांट देंगे, खा लेंगे।

बुद्ध ने कहा, तुम क्या करोगे? तुम गालियों के थाल सजा कर लाए। मेरा पेट भरा है। दस साल से भर गया। तुम जरा देर कर के आए। अब तुम क्या करोगे? इन गालियों को वापस ले जाओगे, बांटोगे, या खुद खाओगे? मैं नहीं लेता। तुम गलत आदमी के पास आ गए। और जब तक मैं न लूं, तुम कैसे गाली दे सकते हो? देना तुम्हारे हाथ में है, लेने की मालकियत तो सदा से मेरे हाथ में है। देने से ही तो काम पूरा नहीं हो जाता। वह अधूरी प्रक्रिया है।

और मजा यह है, कि अगर तुम लेने को तत्पर हो, तो बिना दिए भी मिल जाता है। कोई आदमी हंस रहा है। वह किसी और कारण से हंस रहा है, तुमको चोट लग गई। तुम समझे, तुम्हारे कारण हंस रहा है। तुम्हारी अकड़ ऐसी है कि तुम सोचते हो, दुनिया में जो भी हो रहा है, तुम्हारे कारण हो रहा है। लोग हंस रहे हैं, तुम

हारी वजह से हंस रहे हैं? लोग धीरे-धीरे घुसपुस करके बातें कर रहे हैं, तो तुम्हार
ी निंदा कर रहे हैं। अन्यथा घुसपुस करके क्यों बातें करेंगे?
जैसे तुम केंद्र हो सारे संसार के, कि जो भी यहां हो रहे, वह तुम्हारी वजह से हो रहा है? फूल खिल रहे हैं, तो तुम्हारे लिए? चांद-तारे उग रहे हैं तो तुम्हारे लिए? गालियां आ रही हैं तो तुम्हारे लिए? लोग हंसते रहे हैं, मजाक कर रहे हैं तो तुम्
हारे लिए। तुमने सारी दुनिया को अपने सिर पर उठा रखा है। जो तुम्हें नहीं दिया गया है, वह भी तुम ले लेते हो।
होशपूर्ण व्यक्ति, बुद्ध जैसा व्यक्ति वही लेता है, जो लेना है। तुम्हारे देने का सवाल नहीं है, तुम्हारे न देने का सवाल नहीं है। बुद्ध मालिक हैं। गुलामी के दिन होते द
स साल पहले, तो पता भी न चलता और गालियां ले ली होतीं

गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसै घर आई।
षटचक्र की कनक कठोरी, बस्त भाव है सोई।

कबीर कहते हैं—यह भीतर का—कबीर का—मनुष्य के अंतस्तल का विश्लेषण है।
योग छह चक्रों को मानता है; जिनके भीतर छिपी है तुम्हारी चेतना। ये छह षटचक्र तुम्हारे इस शरीर के हिस्से नहीं हैं। इस शरीर के भीतर जो छिपा है सूक्ष्म शरीर, उस सूक्ष्म शरीर के हिस्से हैं। यह छह चक्र ऊर्जा के चक्र हैं। इन छह चक्रों के कार
ण ही तुम ऊर्जावान हो। तुम्हें जो जीवन में शक्ति मालूम पड़ती है—उठते हो, बैठते हो, चलते हो, काम करते हो, फिर थक जाते हो फिर शक्ति वापस लौट आती है इन छह चक्रों के, इन छह डायनेमोंज के द्वारा तुम्हारे भीतर ऊर्जा पैदा हो रही है।

जैसे डायनेमो पैदा करता है विद्युत को। जैसे तुम पानी से विद्युत को पैदा होते देखो
? पानी में विद्युत छिपी पड़ी है। लेकिन उसे निकालने के लिए यंत्र चाहिए। पानी में विद्युत का प्रगाढ़ रूप छिपा है। लेकिन यंत्र चाहिए, जिनसे विद्युत बाहर आ जाए और उपयोग में आ जाए।
तुम्हारी आत्मा प्रगाढ़ ऊर्जा है, अनंत ऊर्जा है। जिन्होंने जाना, उन्होंने कहा स्वयं पर
मात्मा से नहीं है। अनंत, अक्षय उसकी शक्ति है। लेकिन उस शक्ति को सक्रिय बना
ने के लिए भीतर छह चक्र हैं। उन चक्रों के घूमने से, निरंतर घूमने से आत्मा की शक्ति शरीर तक प्रवाहित होत है। योग उन छह चक्रों को जगाने की बड़ी चेष्टा क
रती है।
जब वे छह ही चक्र ठीक-ठीक सक्रिय हो जाते हैं, तब जीवन में बड़ी ऊर्जा का आि
वर्भाव आता है। तब तुम अन थके जीते हो। तब तुम्हारे भीतर का एक बाढ़ होती है ऊर्जा की। तुम कितनी ही बांटो, बंटता नहीं। तुम कितना ही लुटाओ, लुटता नहीं
। तुम देते चले जाओ, और बहता चला आता है। तब तुम्हारी अपार क्षमता हो जा
ती है। तब तुम्हारा दान कोई सीमा नहीं जानता। तुम प्रेम बांटो, प्रेम बढ़ता है। तुम ज्ञान बांटो, ज्ञान बढ़ता। तुम जो चाहो। एक बार ये छह चक्र ठीक से चलने लगे, तुम्हारे यंत्र सुनियोजित व्यवस्था से चलने लगे, तो तुम्हारे भीतर कभी भी बाढ़ की

कभी नहीं आती। तब तुम कभी कृपण नहीं होते। इसलिए आज तक कोई भी व्यक्ति, जिसने भीतर की थोड़ी सी गंध पाई हो, कृपण नहीं पाया गया है।
सारी मनुष्यता कृपण है। कृपणता का कारण है, क्योंकि तुम्हें लगा है, चुक जाएगा। जो तुम्हारे पास है, वह इतना थोड़ा है, कि तुम डरे हो। उसे बचाते हो। और बड़ी जटिल बात यह है कि जितना तुम बचाते हो, उतना ही तुम्हारी षटचक्रों की प्रक्रिया कम हो जाती है। क्योंकि जब जरूरत ही नहीं रहती—बांटते हो, तो जरूर पैदा होती है। जरूरत पैदा होती है तो चक्र घूमते है। ज्यादा ऊर्जा को लाते हैं। जब जरूरत ही नहीं रहती, चक्र थिर हो जाते हैं, जंग खा जाते हैं। चलते ही नहीं।
कृपण आदमी कमजोर हो जाता है। कृपण से ज्यादा कमजोर कोई भी नहीं। लोभ कमजोर हो जाता है। दानी फैलता है। लोभी सिकुड़ जाता है। ऐसे ही, जैसे एक कुंआ है; तुम उसमें पानी भर लेते हो रोज, तो कुएं के नीचे झरने हैं, उन झरनों से पानी चला आता है। नया पानी, नये जल के स्रोत खुल जाते हैं। तुम रोज पानी उलीचते जाते हो। नया पानी कुएं में आता जाता है। लेकिन कुएं का तल हमेशा वही रहता है। खींच लो कितना ही पानी, फिर कुएं में पानी भर जाता है; और यह पानी नया होगा। और नये डरने खुल जाएंगे। जितनी जरूरत होगी, उतनी ऊर्जा बहेगी।
लेकिन किसी कुएं में कंजूसी आ जाए, या किसी कुएं के मालिक को कृपणता आ जाए, कि इतना सा पानी है कुल। इसको खींचकर लुटा दिया, तो कुंआ खाली हो जाएगा। कुंआ कोई घड़ा नहीं है, कि तुमने निकाल लिया तो खाली हो जाएगा। कुंआ कोई मुर्दा नहीं है। जीवंत धारा है उसकी। वह नीचे सागर से जुड़ा है। कंजूसी मत करो। नहीं तो कुंआ सड़ेगा उसका पानी पीने योग्य नहीं रह जाएगा। और बढ़ेगा तो नहीं, उसके झरने धीरे-धीरे बंद हो जाएंगे। उनकी जरूरत न रहेगी। उन पर मिट्टी जम जाएगी। कंकड़ बैठे जाएंगे। कुएं का पानी सड़ेगा। और झरने बंद हो जाएंगे। ऐसा ही होता है कृपण आदमी के जीवन में। जिस आदमी के जीवन में थोड़ी सी भी जागृति आती है, वह बांटना शुरू करता है। वह अपने को बांटता है। जितना बांटता है, उतना बढ़ता है। जितना बांटता है, उतने नये स्रोत उपलब्ध होते हैं। जितना बांटता है, उतना ही पाता है, अनंत शक्ति उपलब्ध है। अनंत ऊर्जा उपलब्ध है।
षटचक्र की कनक कोठरी।
तुम स्वर्ण के अंबार हो। तुम्हारी संपदा की कोई सीमा नहीं—इसलिए कनक कठोरी। तुम स्वर्ण के खजाने हो। वह खजाना भी कोई मरा हुआ स्वर्ण नहीं है। जीवंत ऊर्जा है परमात्मा की। लेकिन वह छह चक्रों के द्वारा जुड़ा है।
षटचक्र की कनक कोठरी, बस्त भाव है सोई।
और उस कोठरी के भीतर ही, उस अनंत संपदा के भीतर ही बसा हुआ है पुरुष, तुम्हारी आत्मा। ये छह चक्र सक्रिय होने चाहिए। जितने सक्रिय होंगे, उतना ही भीतर प्रवेश होगा। और ठीक अंतरतम में, ठीक मध्य बिंदु पर, तुम्हारे होने के ठीक केंद्र में परमात्मा छिपा है। वही है असली बसनेवाला। शरीर घर है। मन घर है। और मन से भी गहरा घर षटचक्र है। ताला कुंजी फुलफ के लागै, उघड़ता बार न होई।

बस, ठीक कुंजी तुम्हें मिल जाए, ताले में लग जाए, तो कुंडलिनी जागृत हो जाती है। ऊर्जा जग जाती है। उन छहों चक्रों में एक ही ऊर्जा का प्रवाह हो जाता है। छह चक्रों को जोड़ने वाली ऊर्जा का नाम कुंडलिनी है। चक्र अलग-अलग चलते हैं, तो तुम संसार के काम के योग्य शक्ति पैदा कर पाते हो।

जब छहों चक्र इकट्ठे एक सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं, जैसे कि माला के मनके एक ह ी धागे में बंध जाते हैं। अलग-अलग मनके भी मनके हैं, लेकिन माला नहीं। अलग-चक्र भी चक्र हैं, और उनसे शक्ति पैदा होती है, लेकिन माला नहीं है अभी। जब छ हों चक्र जुड़ जाते हैं एक धारा में, एक लयबद्धता में, छहों एक साथ सक्रिय होते हैं और उन छहों के बीच एक संगीत निर्मित हो जाता है, एक माला अनुस्यूत हो जा ती है, तो उसी का नाम कुंडलिनी है। और जिस दिन कुंडलिनी जग जाती है—उघड़ ता बारत न होई। फिर तुम्हारे परमात्मा स्वरूप के उघड़ने में क्षण भर की भी देर नहीं होती।

पंच पहिरवा सोई गए हैं, बसतैं जागण लागी।

और जैसे ही तुम जागते हो, पांचों इंद्रियां सो जाती हैं। जब तक पांचों इंद्रियां जाग ती हैं, तब तब तुम सोए रहते हो। जैसे जैसे इंद्रियां सोती जाती है, शांत हो जाती हैं, वही ऊर्जा, जो इंद्रियों से प्रवाहित होकर बाहर जा रही थी, वही ऊर्जा अंतर्यात्र ा पर निकल जाती है। उसी से तुम जागने लगते हो।

पंच पहिरवा सोई गए हैं, बसतैं जागण लागी।

वह जो भीतर बसा है, वह जाग गया। वे पांच पहरेदार सो गए।

जरा मरण व्यापै कछु नाही, गगन मंडल लै लागी।

और अब न कोई मृत्यु है, न कोई जन्म। क्योंकि तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह कभ ी जन्मा नहीं, कभी मरा नहीं। मरना और जन्मना उसके बाहर की घटना है। तुम्हा रा शरीर मरा है, जन्मा है, तुम्हारा मन, तुम्हारे रूप, नाम, अनंत अनंत बार बदले हैं। लेकिन वह जो भीतर छिपा है अविनाशी, वह सदा वही का वही रहा है। वह कभी बदला नहीं। न पैदा हुआ, न मरेगा। न वह बनाया गया है और न मिटेगा।

जरा मरण व्यापै कछु नाही...

और जिसने उसकी साक्षात अनुभूति कर ली, उसके लिए मृत्यु का भय मिट जाता है। और जीवन की अभीप्सा मिट जाती है। वह जीवन की जो जिजीविषा है—लस्ट फ ार लाइफ, वह भी मिट जाती है।

...गगन मंडल लै लागी।

अब उसकी तो सारी ज्योति, लौ, लगन शून्य की तरफ लग जाती है। गगन यानी शून्य,

आकाश, निराकार। ब्रह्म कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो। अब तो उसकी सारी ज्योि त शून्य की तरफ प्रवाहित होने लगती है।

तुम्हारी जीवन ज्योति सदा वस्तुओं की तरफ प्रवाहित होती है। आकृति की तरफ, रूप की तरफ, धन की तरफ, शरीर की तरफ, मकान की तरफ, लेकिन सदा वस्तु

ओं की तरफ। इंद्रियां वस्तुओं की तरफ प्रवाहमान हैं। चेतना सदा निर्विकार, निराक ार, शून्य की तरफ प्रवाहमान है।

पंच पहिरवा सोई गये हैं, बसतैं जागण लागी।
जरा मरण व्यापै कछु नाही, गगन मंडल लै लागी।
करत विचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया।

करत विचार--यह सूत्र बड़ा मूल्यवान है। कबीर के एक-एक सूत्र में एक-एक उपनि षद समा जाए।

करत विचार मन ही मन उपजी...

कबीर जिसे विचार कहते हैं, वह तुम्हारा विचार नहीं है। तुमने तो कभी विचार कि या ही नहीं तुम्हारे भीतर विचार तो बहुत हैं, लेकिन तुमने विचार कभी नहीं किया । इस भेद को ठीक से समझ लेना। थाटस--विचारों की तो तुम्हारे भीतर भीड़ है, लेकिन थिंकिंग--विचार की तुम्हारे भीतर बिलकुल संभावना नहीं। विचार तुम्हारे भी तर बहुत हैं, लेकिन तुम्हारा उसमें कौन सा विचार है? सब उधार हैं। तुमने क्या ि वचारा है? बाहर से आ गया है। जो बाहर से आ जाए, उसे क्या विचार कहना! दू सरे का है, बासा है, जुटन है, अच्छिष्ठ है, त्साज्य है। तुम्हारा अपना कोई विचार है ?

जिसको तुम अपना भी कहते हो, वह भी गौर करोगे तो पाओगे किसी और से, कह ीं से पा लिया है। ज्यादा से ज्यादा तुम इतना ही कर पाए होगे, कि किसी एक के ि वचार की टांग और किसी दूसरे के विचार का सिर और किसी तीसरे के विचार के हाथ जोड़ कर तुमने एक प्रतिमा बना ली हो। जो नई लगती हो। लेकिन वह नई है नहीं। वह भी दूसरों के विचारों का जोड़ है। संयोग नया होगा, लेकिन विचार पुर ाना है। उसमें कुछ भी नया नहीं है।

मौलिक विचार तो तुम्हें तभी हो पाएगा, जब ध्यान लग जाए। ध्यान का अर्थ है ज ब विचारों की भीड़ चली जाए। इसलिए असली विचार की क्षमता तो तब आती है, जब विचारों की भीड़ विदा हो जाती है। जब भीतर मन का खुला आकाश रह जा ता है, जिसमें एक भी बादल विचार का नहीं। तब विचार की क्षमता उपजती है। तब तुम विचार करते नहीं। तब तुम सोचते नहीं, तुम्हें दिखाई पड़ता है। तब विचा र दर्शन हो जाता है।

करत विचार मन ही मन उपजी

कबीर उसी विचार की बात कर रहे हैं। कि ऐसे बैठे ध्यान में--शांत! कोई विचार की भीड़ नहीं, शून्य में लगन लगी, शून्य की तरफ भागती लौ जीवन की, ऐसे विच ार के क्षण में--मन ही मन उपती। भीतर यह उठा। भीतर आविर्भूत हुआ यह भाव। यह धारणा जन्मी।

...न कहीं गया न आया।

न तो कहीं गया अब तक, और न कहीं आया अब तक। न कोई जन्म हुआ, न को
ई मृत्यु हुई।

सब सपना था। जन्म और मरना और सारा व्यापार दोनों के बीच—सब सपना था। इ
सलिए हिंदू इस संसार को माया कहते हैं। माया का अर्थ है, जो वस्तुतः जो जागते
हैं, उन्हें दिखाई पड़ता है कि जिसे हम जीवन कहते हैं, वह भी सपना था। न कहीं
गया, न आया। सदा से वहीं हूं, जहां था। शाश्वत, सनातन, नित्य! जरा भी अंतर
नहीं पड़ा।

तुम आते हो, जाते हो। थोड़ा समझो; घर से तुम उठे, यहां चले आए। यहां से उठो
गे, घर जाओगे, दुकान, दफ्तर जाओगे। लेकिन तुम्हारे भीतर जो है, वह कहीं आय
ा? कहीं गया? वह तो वहीं के वहीं है। शरीर डांवाडोल, उठ कर यहां चले आए।
शरीर डांवाडोल, उठकर वापस चले गए। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चितस्वरूपन है
तुम्हारा, वह कहीं आया? कहीं गया? वह तो वहीं की वहीं है।

तुम चाहे लंदन जाओ, चाहे कलकत्ता, चाहे मास्को, चाहे पेकिंग, शरीर ही जाएगा,
आएगा। मन जाएगा। आएगा। तुम तो वहीं के वहीं रहोगे। तुम कहां जाओगे? तुम
कैसे जाओगे? उस परिचित, उप परम-चेतना का कोई आवागमन नहीं है।

इसलिए कबीर अनूठी बात कह रहे हैं...

करत विचार मन ही मन उपजी...

ऐसे शांत शून्य के क्षण में उठी यह बात।

...न कहीं गया न आया।

और जैसे ही यह प्रतीति हुई, कि न कहीं गया न आया—

कहे कबीर संसा सब छूटा...

उसी क्षण सब संशय छूट गए।

...राम रतन धन पाया।

उसी क्षण मिल गई वह संपदा, जो परमात्मा की है, ब्रह्म की है—पाइबो रे पाइबो रे
ब्रह्मज्ञान।

राम रतन धन पाया।

और जब तक रतन का धन न मिल जाए, तब तक जानना कि तुम मूर्च्छित हो। व
ह कसौटी है। वही निकष है।

जैसे सोने को कसते हैं, निकष पर, कसौटी पर, ऐसे ही अमूर्च्छा पर कसे जाओगे तु
म। अगर मूर्च्छित हो, तो तुम मिट्टी हो। अमूर्च्छित हो, तो तुम परमात्मा हो। मूर्च्छि
त, तो तुम मृण्मय। अमूर्च्छित, तो तुम चिन्मय। मूर्च्छा ही तुम्हारे जीवन की टूट जा
ए तो कुछ और तोड़ना नहीं है।

ज्ञानियों ने नहीं कहा, चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, हिंसा मत करो। नहीं। ज्ञा
नियों ने तो इतना ही कहा है, कि मूर्च्छा मत करो, और जिसने मूर्च्छा न की, वह
बेईमानी करेगा नहीं। कर नहीं सकता। चोरी करेगा नहीं। चोरी हो नहीं सकती। हिं
सा असंभव है।

महावीर से कोई पूछता है साधु कौन? असाधु कौन? तो महावीर ने बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र दिया है। महावीर ने कहा, कि जो सोया है, वह असाधु। जो जागा है, वह साधु असुत्ता मुनि। सुत्ता अमुनि।
जैन साधु भी सोच विचार में पड़ेंगे। क्योंकि महावीर को कहना था, जो अहिंसा का पालन करता है वह साधु। जो रात्रि भोजन नहीं करता वह साधु। जो पानी छान कर पीता है वह साधु। लेकिन महावीर ने बात ही नहीं उठाई अहिंसा की। महावीर ने रात दिन की चर्चा ही न की। पानी छानने न छानने की कोई चर्चा ही नहीं उठाई। महावीर उठाते वैसी चर्चा, तो साधारण साधु रहते। महावीर जाग्रत पुरुष हैं—बुद्धत्व को, जिनत्व को उपलब्ध। उन्होंने कुंजी की बात की। सारसूत्र कहा—सुत्ता अमुनि। दो छोटे शब्द!
सोया, वह असाधु। असुत्ता मुनि : जागा, वह साधु।
वही कबीर कह रहे हैं—
मन रे, जागत रहिये भाई।
आज इतना ही।
गगन मंडल घर कीजै
15 मई, 1975, प्रात;, श्री ओशो आश्रम, पूना
अवधु, गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झर सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै।
मूल बांधि सर गगन समाना, सुखमनि यों तन लागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणी जागी।
मनवा आइ दरीबै बैठा, मगन भया रासि लागा।
कहै कबीर जिस संसा नाही, सबद अनाहद बागा।।
मैं देखता हूं तुम्हारे भीतर, कोई बड़ा पहाड़ तुम्हारे और सत्य के बीच नहीं खड़ा है। धुएं; की पतली लकीर है। चाहो तो क्षणभर में मिट जाए, न चाहो तो जन्मों-जन्मों तक चले। तुम्हारे और तुम्हारे स्वरूप के बीच में विचार की पतली सी दीवाल अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। और विचार तो पानी के बुलबुले हैं। उनके होने न होने में कितना फर्क है!
लेकिन उतनी सी दीवाल ने—धुएं की लकीर जैसी है, पानी के बबूले जैसी है—तुम्हें खूब भटकाया है। और अगर तुम्हारी भटकन का हिसाब लगाओ तो ऐसा ही लगेगा, कि कोई हिमालय बीच में खड़ा है।
आंख में छोटा सा रेत का कण है। लेकिन आंख बंद हो गई, तो अस्तित्व दिखाई प. डना बंद हो जाता है। कोई आंख में पहाड़ गिरने की जरूरत नहीं है। जरा सी रेत की किरकिरी—और आंख बंद हो जाती है। तुम्हारी भीतर की आंख पर भी रेत की किरकिरी से ज्यादा नहीं है। सिर्फ भरोसा चाहिए उठने का। सिर्फ साहस चाहिए जागने का। तुम्हारे संकल्प से ही टूट जाएगी धुएं की यह रेखा। शायद कुछ और करना

जरूरी नहीं है। इतना खयाल में आ जाए, कि बाधा बड़ी छोटी है, तुम बहुत बड़े हो। इतना भरोसा ही पैदा हो जाए, तो बाधा टूट जाती है।

लेकिन तुमने मान रखा है, बाधा बहुत बड़ी है और तुम बहुत छोटे हो। और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु भी तुम्हें समझाएं जाते हैं, कि तुम बहुत छोटे हो और बाधा ब हुत बड़ी है। वे तुम्हारे आत्मविश्वास की हत्या कर देते हैं। वे तुम्हें समझाते हैं, कि तुम पापी हो। तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन छीन लेते हैं। वे समझाते हैं, तुम अप राधी हो। वे समझाते हैं, तुम अज्ञानी हो। वे समझाते हैं कि जन्मों-जन्मों का पाप, कर्मों का बोझ। ऐसे कहीं कुछ क्षण भर में होनेवाला है।

बड़ी दूभर यात्रा बताते हैं। करीब-करीब इतना संभव कर देते हैं सारी बात को, कि तुम साहस ही खो देते हो। और जिसने साहस खो दिया, उसके लिए दीवाल बहुत बड़ी हो जाती है।

क्योंकि वह बिलकुल छोटा हो गया।

और तुम्हारा होना तुम्हारी धारणा पर निर्भर है। तुम छोटा समझो तो छोटा हो जा ओगे। तुम बड़ा समझो तो तुम बड़े हो जाओगे। तुम्हारी धारणा ही तुम्हारी सीमा है । तुम अणु समझो तो अणु जैसे हो जाओगे। तुम ब्रह्म समझो तो तुम ब्रह्म जैसे हो जाओगे।

वास्तविक जिन्होंने धर्म को जाना है, वे तो चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि तुम ब्रह्म हो। स्वयं ब्रह्म हो। तत्वमसि। वे तो चिल्ला कर कहते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। वे तो कहते हैं कि तुम्हारी कोई सीमा नहीं, कोई परिभाषा नहीं। तुम अनंत अन ादि हो।

लेकिन पुरोहित है, मंदिर मस्जिद को चलानेवाला, शब्दों के संग्रह पर जीने वाला पंि डत है, वह तुम्हें छोटा करता है। वह तुम्हें हीन बताता है। वह तुम्हारी निंदा करता है। और उसने इतने समय तक तुम्हारी निंदा की है कि जब तुम्हें कोई कहता है, जागो! तुम महान हो, विराट हो; तो तुम्हें भरोसा नहीं आता।

उसकी निंदा के पीछे कारण है। वह तुम समझ लो क्योंकि अगर तुम ब्रह्म हो, तो न तो मंदिर की कोई जरूरत है, न मस्जिद की कोई जरूरत है। क्योंकि तुम्हें मंदिर हो। अगर तुम विराट हो, तो न तो मूर्ति की जरूरत है, न पूजा अर्चना की जरूर त है। तुम स्वयं ही पूज्य हो। तुम ही पुजारी हो। तुम ही पूजा अर्चना हो।

तुम अगर तुम्हारे वास्तविक रूप में ही प्रकट हो जाओ, तो धर्मगुरु कहां खड़ा रहेगा ? उसके व्यवसाय का क्या होगा? तुम्हारी निंदा में ही उसके व्यवसाय का सारा रा ज छिपा है। तुम पापी हो तो पंडित की जरूरत है। तुम पापी हो तो पुरोहित की ज रूरत है। तुम पापी हो तो तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच मध्यस्थों की जरूरत है। अगर तुम स्वयं ब्रह्म हो, तो कौन मध्यस्थ चाहिए? बीच के दलाल अर्थहीन हो जाते हैं।

इसलिए समस्त संप्रदाय तुम्हारी निंदा पर जीते हैं। पहले वह तुम्हें अपराधी घोषित करते हैं, महापापी घोषित करते हैं। पहले तुम्हारे भीतर के प्राणों को संकुचित करते

हैं। और जब तुम इतने संकुचित हो जाते हो, कि तुम त्राहि-त्राहि कर उठते हो अ ौर मांगते हो कि मार्ग दो, राह दो, तब वे तुम्हें विधियां बताना शुरू करते हैं। पहले वे तुम्हारी बीमारी पैदा करते हैं फिर तुम्हें औषधि देते हैं। बीमारी झूठी है इ सलिए औषधि सच्ची नहीं हो सकती। बीमारी ही बुनियाद में नहीं है। इसलिए उपाय सब व्यर्थ हैं, यह बोध कैसे आए? तुम कैसे जागो? तुम क्या करो, कि जागरण हो जाए?

यह पहली बात खयाल में ले लेनी जरूरी है। दीवाल न के बराबर है। बड़ी झीनी है। जैसे घूंघट पड़ा हो नववधू की आंखों की आंखों पर, और उसे कुछ दिखाई न पड़त ा हो। जरा सरका ले, और सब दिखाई पड़ना शुरू हो जाए। लेकिन तुमने मान रखा है कि बहुत कठिन है। तुमने स्वीकार ही कर लिया है। और तुम्हारे स्वीकार के पी छे भी कारण है, पुजारी, पंडित, पुरोहित के पीछे कारण है, क्योंकि वह तुम्हें ब्रह्म घोषित करे, तो वह व्यर्थ हो जाता है। उसका कोई उपयोग नहीं रह जाता। वह तुम् हारी निंदा पर जीएगा।

तुम्हारे पीछे भी मानने का कारण है। तुम्हारे मानने का कारण क्या होगा? तुम अप ने चारों तरफ जो भी देखते हो, अपने ही जैसे लोग देखते हो। क्षुद्र! छोटे! उनको देखकर यह भरोसा गहरा होता है, कि आदमी और परमात्मा के बीच बड़ा फासला है। क्योंकि आदमी में तुम्हें परमात्मा तो दिखाई नहीं पड़ता। शैतान बहुत बार दि खाई पड़ता है। संत तो मुश्किल से दिखाई पड़ता है। और संत अगर हो तो भी दि खाई नहीं पड़ता। क्योंकि पड़ता है। संत तो मुश्किल से दिखाई पड़ता है। और संत अगर हो तो भी दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि शैतान पर भरोसा इतना है कि तुम मा न नहीं सकते कि कोई संत हो सकता है।

फिर तुम्हें अपने भीतर भी सिवाय रोग, व्याधियों के, घृणा, ईर्ष्या, मत्सर, लोभ, क ाम, क्रोध इनके अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम तो स्वयं को दिखाई ही नहीं पड़ते। बस यही चीजें दिखाई पड़ती हैं।

और रोज-रोज इन्हें तुम देखते हो। रोज-रोज इनका अनुगमन करते हो। तो तुम्हारे भीतर का अनुभव भी तुमसे कहता है, कि पुजारी ठीक ही कहता होगा। फिर अगर तुम्हें कोई संत भी मिल जाए तो तुम भरोसा नहीं करते। क्योंकि तुम्हारी आंख वह ी देख सकती है, जो तुमने अपने भीतर देखा है। इस सूत्र को ठीक से खयाल में र ख लो। तुम वही देख सकते हो, जो तुम्हारा अनुभव है। जो तुम्हारा अनुभव नहीं है , वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर संत सरल होगा तो तुम्हें मूर्ख दिखाई पड़ेगा। सरलता नहीं दिखाई पड़ेगी। तुम समझोगे मूढ़ है। क्योंकि मूढ़ता तुम जानते हो, सर लता तुम जानते नहीं।

अगर संत तुम्हें मिलेगा और मौन बैठा होगा, शांत होगा, तो तुम समझोगे कि आल सी है, काहिल है, सुस्त है। क्योंकि तुमने उसी को जाना है, अपने भीतर। जब तुम खाली बैठे होते हो, तब तुम काहिल होते हो, आलसी होते हो, सुस्त होते हो, ताम सी होते हो। तो संत अगर तुम्हें मिलेगा खाली बैठा, कुछ न करता, तो तुम समझो

गे अकर्मण्य है। तुम्हारी भाषा तो तुम्हारी ही रहेगी। उसका मौन तो तुम्हें दिखाई न पड़ेगा। मौन तो तुमने जाना ही नहीं। तुम तो सदा ही शब्दों से भरे हो। तो तुम्हार ा अनुभव ही तुम्हें बनाएगा। तुम अपने को ही फैला कर दूसरों में देखोगे। दूसरे दर्प ण की भांति हैं।

बहुत वर्ष हुए मैं पहली बार ही बंबई आया था। और एक गुजराती के ख्यातिनाम लेखक, बड़े सुसंस्कृत, संभ्रांत परिवार से आते हैं। गहरे रूप से सुशिक्षित व्यक्ति हैं, संस्कारशील हैं। वे मेरे विचारों से प्रभावित थे; तो मुझे भोजन कराने एक होटल में ले गए। मुझे पता नहीं था, कि उनकी आंखें कमजोर हैं। और वे बिना चश्मे के नहीं देख सकते निकट की चीजें। पढ़ नहीं सकते। चश्मा वे घर भूल आए थे। टेबल पर पड़े मेनू को उठाकर थोड़ी देर देखते रहे। मुझे कुछ पता नहीं और मुझे शायद उन्ह ोंने इसलिए नहीं कहा, कि न बताना चाहते होंगे कि उनकी आंखें इतने कमजोर हैं, कि बिना चश्मे के देख नहीं सकते। मैं समझा कि वे पढ़ रहे हैं। तभी बैरा आया प ानी लेकर और उन्होंने उस बैरे से कहा कि जरा इस मेनू को पढ़ दो। उस बैरे ने उ नकी तरफ देखा और कहा, भाई! हम भी तुम्हारी माफिक पढ़े नहीं है।

जो हमारी दशा है, वही हम दूसरे में देख सकते हैं। दूसरे की दशा तो दिखाई नहीं पड़त सकती। उसके देखने का उपाय ही नहीं है। इसलिए बुद्ध पुरुष तुम्हारे भीतर आते हैं, तुम्हारे इतिहास का भी अंग नहीं बन पाते। पुराण-कथाएं बन जाती हैं। श क होता है कि ये लोग कभी हुए?

चंगेजखां हुआ, इस पर कभी शक नहीं होता। नादिरशाह हुआ, इस पर कभी संदेह नहीं होता। हिटलर हुआ इस पर कभी संदेह नहीं होता। लेकिन आज से हजार साल बाद रमण महर्षि हुए या नहीं, यह संदिग्ध होगा। वे इतिहास के हिस्से नहीं बनते। इतिहास तो तुम बनाते हो। इतिहास तो तुम लिखते हो।

तो बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट हुए भी, या सिर्फ कपोल-कल्पनाएं है? अगर तुम ठीक से सोचो, तो तुम्हें कपोल कल्पनाएं ही लगेंगी। ऐसे आदमी हो ही कैसे सकते हैं? क्योंकि आदमी की परिभाषा तो तुम हो। ये भरोसे के नहीं हैं। ये किन्हीं लोगों ने सपने संजोए हैं, कथाएं लिखी है। लेकिन ऐसा यथार्थ में हो नहीं सकता बुद्ध जैसा आदमी। यह कैसे हो सकता है कि जीसस को लोग सूली दें और सूली पर लटका हुआ जीसस परमात्मा से प्रार्थना करे, कि इन सबको माफ कर देना क्योंकि ये जान ते नहीं, ये क्या कर रहे हैं। यह कैसे हो सकता है? ऐसी बात तुम्हारे भीतर कभी उठी, कि जो तुम्हें पत्थर मार रहा हो, गाली दे रहा हो और तुमने प्रार्थना की हो, कि परमात्मा इसे क्षमा कर देना, क्योंकि यह जानता नहीं यह क्या कर रहा है? अ गर ऐसा तुम्हारे भीतर थोड़ा सा भी हुआ हो तो तुम समझ पाओगे कि जीसस भी हो सकते हैं। लेकिन पत्थर मारने में यह नहीं होता, तो फांसी लगाने पर कैसे होगा ?

जो तुम्हारी तरफ मिट्टी का ढेला फेंक, तुम्हारे प्राण उसकी तरफ चट्टान फेंकना चाह ते हैं। जो तुम्हें एक गाली दे, तुम्हारी आत्मा हजार गालियों से उसके लिए भर जा

ती है। जो तुम्हें कांटा चुभाएं उसके लिए प्राणों से में फूल पैदा नहीं होते। और तुम्ह
ीं तो तुम्हारा बांध हो। तो जीसस संदिग्ध हैं। हो नहीं सकते। कहानी होगी। पुराण
कथा है।
पुराण और इतिहास का यही फर्क है। जिन-जिन पर तुम भरोसा नहीं कर सकते, उ
नके लिए तुमने पुराण लिखा है। जिन पर तुम भरोसा करते हो उनके लिए तुमने इ
तिहास लिखा है। इसलिए से यह सिद्ध नहीं होता कि ये लोग हुए। इतिहास से इतन
ा ही सिद्ध होता है कि ये तुम्हारे जैसे लोग हैं। और पुराण से यह सिद्ध नहीं होता
कि ये लोग नहीं हुए; पुराण से इतना ही सिद्ध होता है कि इनसे तुम्हारा कोई ताल
मेल नहीं बैठता। ये तुम्हारी भाषा में नहीं पाते। ये तुम्हारी सीमा के बाहर पड़ जाते
 हैं। तुम अगर मान लेते हो तो भी बहुत गहराई से नहीं। जानते तो तुम यही हो ि
क यह हो नहीं सकता।
इसलिए जब कोई ज्ञानी तुमसे कहता है तुम परमात्मा हो, तो तुम कैसे भरोसा कर
ो? तुम्हें शैतान दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और जब कोई ज्ञानी
 मंसूर जैसा घोषणा कर देता है, मैं स्वयं परमात्मा हूं, तब तो तुम क्रोध से भर जा
ते हो कि यह आदमी अब तो संस्कार की सीमा के भी बाहर जा रहा है। यहां तक
 भी तुम माफ कर सकते थे, कि तुमसे कहता कि तुम परमात्मा हो; लेकिन यह अ
ादमी कहता है कि मैं परमात्मा हूं। अब तुम माफ नहीं कर सकते।
जब मंसूर या उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि मैं परमात्मा हूं, तो तुम्हें लगता है औ
र जानते हो तुम गहरे में कि यह आदमी अहंकारी है। क्योंकि तुम अहंकार को ही
जानते हो। और यह तो हद दर्जे का अहंकार है। तुमने भी अहंकार की घोषणाएं की
 हैं कि मुझसे सुंदर कोई नहीं, कि मुझसे शक्तिशाली कोई भी नहीं, कि मुझसे ज्याद
ा समझदार कोई भी नहीं। लेकिन एक आदमी घोषणाएं कर रहा है कि मैं परमात्मा
 हूं, तुम्हारे सब अहंकार दो कौड़ी के मालूम पड़ते हैं। इसने तो आखिरी घोषणा क
र दी। इतनी हिम्मत तो तुम भी न जुटा पाए। यह आदमी तो महाअहंकारी होना च
ाहिए। जब जीसस ने कहा कि मैं परमात्मा का पुत्र हूं, तो स्वभावतः कठिनाई हुई।
मंसूर को। तो मार डाला मुसलमानों ने। क्योंकि इसने कुफ्र की बात कह दी कि मैं
परमात्मा हूं--अनलहक। वह वही कह रहा था, जो उपनिषद के ऋषियों ने कहा है--
अहं ब्रह्मास्मि। जरा भी भेद न था।
ज्ञानी को तुम न समझ पाओगे।
तो तुम्हें दो काम करने जरूरी हैं। तुम्हें पुरोहित से मुक्त होना है और तुम्हें स्वयं से
 भी मुक्त होना है। पुरोहित से मुक्त होना इतना कठिन नहीं, स्वयं से मुक्त होना
बहुत कठिन है। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम्हें संप्रदाय से मुक्त होना
है। क्योंकि वह तुम्हारा शोषण कर रहा है। और तुम्हें स्वयं से मुक्त होना है, क्योंकि
 वह तुम्हें संप्रदाय के द्वार शोषित किये जाने योग्य बना रहा है। वह एक ही सिक्के
 के दो पहलू हैं।

कहां से शुरू करोगे? अगर तुम संप्रदाय से मुक्त होने की कोशिश करो और स्वयं से मुक्त न हो पाओ, तो तुम एक संप्रदाय से मुक्त नहीं हो पाओगे कि दूसरे में उलझ जाओगे। क्योंकि मूल बीज तो भीतर कायम रहेंगे। वे नहीं शाखाएं भेज देंगे। तो हिंदू ईसाई हो जाता है, ईसाई हिंदू हो जाता है। जैन बौद्ध हो जाते हैं, बौद्ध जैन हो जाते हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमारियों के नाम बदल जाते हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है? कि तुम बीमारी को क्षयरोग कहते हो, कि टुबर कोलोसिस इससे क्या फर्क पड़ता है? बीमारी के नाम से कहीं कुछ भेद होता है?

तुम बीमारी का नाम मुसलमान कहो कि हिंदू कहो, कि जैन कहो कोई फर्क नहीं प. डता। सारी बीमारियां बुनियादी रूप से तुम्हारे इस बोध पर निर्भर हैं, कि तुम शैतान हो। और यही सबसे बड़ी अधार्मिक अवस्था है चित्त की। और इसके लिए बल मिलता है क्योंकि दिखते हो क्रोध, घृणा, वैमनस्य, कठोरता, हिंसा। रोग ही तो दिखाई पड़ते हैं भीतर। इन सबका जोड़ शैतान है।

लेकिन मैं, तुमसे कहता हूं, तुम इन सबको जोड़ नहीं हो। वस्तुतः इनमें से कोई भी तुम्हारा अंग नहीं है। क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर ये तुम्हारे चारों तरफ होंगे, लेकिन तुम नहीं हो।

तुम तो वह हो, जो जानता है। जो जानता है कि क्रोध आया। जो जानता है कि क्रोध गया। जो जानता है कि माया उठी, जो जानता है कि माया तिरोहित हुई। जो जानता है कि कामवासना जगी और जो जानता है कि अब कामवासना जा चुकी। भूख उठी, तृप्ति हुई। प्यास लगी, प्यास बुझी। वह जो जानता है, वह तुम हो। और तुमने अपने को वह समझ लिया है, जो तुम्हारे निकट भला हो लेकिन तुम्हारा स्वभाव या स्वरूप नहीं। बहुत निकट होने से भ्रांति होती है।

ऋषियों ने सदा इस दृष्टांत को लिया है कि अगर कांच के एक टुकड़े को नीलमणि के पास रख दिया जाए, तो कांच का टुकड़ा भी नीलिमा से भर जाता है। प्रतिफलित होने लगती है। मुश्किल होगा तय करना कि कौन नीलमणि है और कांच का टुकड़ा है। पास होने से झांई पड़ने लगती है।

ये सब तुम्हारे बहुत पास हैं। ये सबसे बिलकुल सट कर खड़े हैं। क्रोध, लोभ, मोह, काम, इतने पास हैं, इसके कारण तुम पर भी सांई पड़ती है। और तुम नीलमणि हो। इनकी झांई तुम में पड़ती है। तुम्हारी झांई इनमें पड़ती है। निकटता से एक तादात्म्य पैदा होता है। एक आइडेन्टिटी पैदा हो जाती है। और वही तुम्हें भटका रही है। बस, उस छोटे से तादात्म्य को तोड़ने की जरूरत है। और वह तादात्म्य नींद जैसा है। एक झटके में टूट सकता है। अंधकार जैसा है। एक दिए की लपट में खो सकता है। तुम कभी भी परमात्मा से इंच भर नीचे नहीं रहे हो। यह हो ही नहीं सकता। इसका कोई उपाय नहीं। हालांकि तुमने बहुत उपाय किए। तुमने बहुत उपाय किए कि तुम पशु हो जाओ, लेकिन तुम नहीं हो सकते हो। तुमने बहुत उपाय किए कि तुम शैतान हो जाओ, लेकिन तुम नहीं हो सकते हो।

बुद्ध ने एक हत्यारे को संन्यास की दीक्षा दी थी। शिष्य राजी न थे क्योंकि हत्यारा भयंकर था। उसने हजारों लोग मार डाले थे। उसका एक ही रास था–लोगों को मारना। और बुद्ध ने जब उसे दीक्षा दी तो बुद्ध के निकटतम शिष्यों को भी लगा कि बुद्ध जरा गलती कर रहे हैं। यह आदमी ठीक नहीं है। इससे ज्यादा शैतान पाना मुश्कल है।

तो आनंद ने बुद्ध को कहा कि रुकें। इस आदमी को थोड़े दिन परिचित होने दें। जल्दी न करें। यह आदमी भयंकर हत्यारा है। इसका नाम सुन कर सम्राट भी कंप जाते हैं। बुद्ध ने कहा कि लेकिन मैं जानता हूं कि यह ब्राह्मण है। हत्यारे होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह भीतर का ब्रह्म थोड़े ही स्पर्शित होता है। वह तो सदा शुद्ध है। इसने क्या किया, वह तो सपना है। यह क्या है, वह सत्य है।

तुमसे भी मैं यही कहता हूं। तुमने क्या किया, वह सपना है। तुमने क्या सोचा वह तो सपने में भी सपना है। तुम्हारा ब्रह्मतत्व रत्ती भर कलुषित नहीं होता। उसके कलुषित होने का उपाय नहीं है। उसका कुंवारापन भ्रष्ट नहीं होता। क्योंकि कुंवारापन कोई बाह्य घटना नहीं है। कुंवारापन उसका स्वरूप है। कितने ही तुमने पाप किए हों–अनगिनत।

बुद्ध ठीक कहते हैं, कि यह ब्राह्मण है। और बुद्ध ने ब्राह्मण की क्या परिभाषा की है? तुम सभी ब्राह्मण हो। बुद्ध ने परिभाषा की है कि जिसके भीतर ब्राह्मण है वह ब्राह्मण है। पौधे, पशु, पक्षी सभी ब्राह्मण हैं।

परमात्मा में शूद्र पैदा ही कैसे हो सकता? और अगर परमात्मा में शूद्र पैदा होता हो, तो परमात्मा में शूद्र होना चाहिए। क्योंकि कारण के बिना कैसे फल लगेंगे? शैतान सपना है, ब्रह्म अस्तित्व है। एक भ्रांति की रेखा है।

बुद्ध ने उसे दीक्षा दे दी। सम्राट को खबर मिली। प्रसेनजित सम्राट था उस राज्य का, जहां बुद्ध ठहरे थे उन दिनों। वह भी थक गया था इस हत्यारे से। इस हत्यारे का नमा था अंगुलिमाल...अंगुलिमाल उसका नाम था, क्योंकि वह आदमियों को मारता और उनकी उंगलियों की माला पहनता। एक आदमी मारता, तो उसकी उंगली अपनी माला में डाल देता। उसने एक हजार आदमियों को मारने का व्रत लिया था। जब बुद्ध ने उसे दीक्षा दी, तो केवल एक उंगली की कमी थी। नौ सौ निन्यानबे उंगलियां उसकी माला में थीं। प्रसेनजित भी थक गया था। कोई बस नहीं आता था इस आदमी पर। फौजें थक गई थीं। सैनिक जाने से डरते थे उस इलाके में, जहां खबर मिल जाती कि अंगुलिमाल आ गया।

प्रसेनजित को खबर मिली कि अंगुलिमाल दीक्षित हुआ। बुद्ध का भिक्षु हो गया। संन्यासी हो गया है। तो वह देखने आया इस खतरनाक आदमी को, कि यह आदमी किस तरह का है। उसकी मां तक डरती थी उसके पास जाने में। क्योंकि उसका कोई भरोसा नहीं था। वह उसको भी काट देता।

प्रसेनजित जब आया, तो उसने चारों तरफ नजर साली। वहां तो हजारों भिक्षु थे। वह पहचान भी न पाया। और वह पहचान भी न पाता। क्योंकि अंगुलिमाल ठीक बु

द्ध के पास बैठा था। उसने कहा कि मैंने सुना है कि अंगुलिमाल ने दीक्षा ली और संन्यासी हुआ। भरोसा तो नहीं आता कि यह आदमी और संन्यासी होगा। मैं उसके दर्शन करना चाहता हूं। वह है कहां? बुद्ध ने कहा, तुम उसे अब पहचान न पाओगे। फिर भी प्रसेनजित ने कहा कि मैं उसे जानना चाहता हूं। उसे पता ही नहीं कि अंगुलिमाल बगल में बैठा सुन रहा है। बुद्ध ने कहा, अगर तुम जानना ही चाहते हो, तो यह जो मेरे निकट बैठा हुआ भिक्षु है, यह अंगुलिमाल है।

ऐसा नाम सुनते ही प्रसेनजित के हाथ पैर कंप गए। इतने पास! झपट पड़े, गर्दन काट दे, क्या पता। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं। कथा है कि प्रसेनजित के हाथ पैर कंप गए। पसीना आ गया। और उसने कहा कि यही वह आदमी है? पर बुद्ध ने कहा कि घबड़ाओ मत। अब इसने अपने ब्राह्मणत्व को पुनः उपलब्ध कर लिया है। वह सपना टूट गया।

दूसरे दिन सारे नगर में खबर फैल गई। अंगुलिमाल भिक्षा के लिए गांव में गया तो लोगों ने द्वार दरवाजे बंद कर लिए। भयभीत लोग अपने छतों पर चढ़ गए। और लोगों ने पत्थर मारने शुरू किए छतों से अंगुलिमाल को। अंगुलिमाल ढेर होकर राह पर गिर पड़ा—सब तरफ से लहूलुहान।

कथा है कि बुद्ध आए और उन्होंने अंगुलिमाल को कहा, अंगुलिमाल, तूने सिद्ध कर दिया की तू ब्राह्मण है। तेरे मन में क्या भाव उठा, जब लोग तुझे पत्थर मार रहे थे?

अंगुलिमाल ने कहा, जब से तुमने कहा कि जो तूने किया वह सब सपना है, तब से दूसरे भी जो करते हैं, वह भी सब सपना है।

जिसे तुमने जीवन समझा है, जब तुम सपना समझने लगोगे। तभी तुम्हें उसका पता चलेगा जो सत्य है और अभी सपना हो गया। दृष्टि के बदलने की बात है।

थोड़ा अपने कृत्यों और विचारों से पीछे हटो। नीलमणि बिलकुल पास है। हटने की प्रक्रिया भी सीधी साफ है। कोई जटिलता नहीं है। साक्षी में रमो। देखनेवाले में रमो। जो दिखाई पड़ता है वह पराया है, विजातीय है, बाहर है। तुम द्रष्टा हो। दृश्य में मत उलझो। उसमें ही ठहरो जो देख रहा है, जो द्रष्टा है, साक्षी है।

एक क्षण को भी तुम ठहर जाओ द्रष्टा में, रूपांतरण घटित हो जाते हैं, क्रांति हो जाती है। और एक ही क्रांति है—दृश्य से द्रष्टा पर लौट जाना। बस, एक ही क्रांति है। और फासला न के बराबर है। एक कदम दृश्य से हटना है और द्रष्टा में ठहर जाना है।

मुझे तुम सुन रहे हो। मुझे तुम देख रहे हो। तुम्हारा ध्यान, मैं जो कह रहा हूं, उस पर लगा है। इस ध्यान को जरा सा लौटाना है और उस पर लगाना है, जो सुन रहा है। तुम मुझे देख रहे हो। तुम्हारा ध्यान मेरी आकृति पर लगा है। इस ध्यान को जरा सा हटाना है और उस पर ले जाना है, जो देख रहा है। रत्ती भर का फासला है। धुएं की पतली लकीर है। झीना सा घूंघट है।

इसलिए तो कबीर कहते हैं—घूंघट के पट खोल, तो हे पिया मिलेंगे। जरा सा घूंघट हटाना है। बस घूंघट की ओट में छिपे हैं पिया।
ये कबीर के वचन बड़े महत्वपूर्ण है।
अवधू, गगन मंडल घर कीजै।
इसे समझ लें।
यह आकाश है फैला हुआ। इस आकाश में सब कुछ है। इसी आकाश में पृथ्वियां बन ती है और लीन होती हैं। सूरज निर्मित होते हैं और विसर्जित होते हैं। चांद तारे ज न्मते हैं और खो जाते हैं। सारी सृष्टि आकाश में बनती है और मिटती है। लेकिन आकाश न कभी बनता और न कभी मिटता है।
सब दृश्य उठते हैं आकाश में, सब रंग देखता है आकाश लेकिन किसी दृश्य से रंगत ा नहीं। इंद्रधनुष भी बनते हैं, बादल भी उठते हैं, बिजलियां भी चमकती हैं, लेकिन आकाश अछूता रह जाता है। बिजली के चमक जाने के बाद कोई काली लकीर, कोई जली हुई रेखा नहीं छूट जाती आकाश पर। बादल आते हैं, चले जाते हैं। आ काश जैसा था वैसी ही निर्मल बना रहता है। बादल हों तो, न हों तो।
यह सारी सृष्टि खो जाए, ये सब वृक्ष, पौधे, पशु, पक्षी लीन हो जाएं...होता है, प्रल य में वैसा। सब बीज में समा जाता है। आकाश भर शेष रह जाता है। आकाश सदा शेष रह जाता है। आकाश में सब घटता है। फिर भी आकाश को कुछ भी नहीं घ टता। इसलिए आकाश साक्षी का प्रतीक है। सब कुछ साक्षी के सामने घटता है। लेि कन साक्षी में कुछ नहीं घटता। दृश्य उठते हैं, मिटते हैं। नाटक बनता है, बिखरता है।
तुम जाते हो फिल्म देखने। घड़ी भर को भूल ही जाते हो अपने को। खाली पर्दे पर धूप-छाया का खेल चलता है। लीन हो जाते हो। याद इतनी रह जाती है कि क्या प र्दे पर चल रहा है। अपनी याद नहीं रह जाती। दृश्य सब कुछ हो जाते हैं। यहां त क कि लोग पर्दे को जानते हैं, जब आए थे तो खाली था। क्षण भर बाद भूल जाते हैं। यह भी भली भांति उन्हें पता है कि सब धूप छाया की माया है, कुछ है नहीं व हां।
लेकिन किसी की हत्या की जा रही है और तुम्हें रोमांच हो जाता है। कोई दीन-सु खी, पीड़ित मर रहा है, और तुम्हारी आंखें अश्रुओं से भर जाती हैं। भूल ही जाते हो। ना कुछ प्रभाव करने लगता है। नीलमणि बहुत करीब आ गई। दृश्य सच मालूम होने लगते हैं। अगर चित्र में एक खतरनाक पहाड़ी के कगार से कार तेजी से भाग रही हो, और पुलिस के लोग पीछा कर रहे हो, तो तुम भी सम्हल कर बैठ जाते हो, रीढ़ सीधी हो जाती है। खतरनाक स्थित है। सांस रुक जाती है। पलकें झपना बं द कर देती हैं।
फिर पर्दा, पर्दा हो जाता है। खेल बंद हो गया। इति आ गई। उठकर तुम खड़े हो जाते हो। घर लौट आते हो।

साक्षी पहले था, जब तुम प्रवेश किए थे। साक्षी ही वापस लौटेगा, जब तुम घर की तरफ आओगे। बीच में खेल चला धूप-छाया का। वह जो पर्दे पर हो रहा है फिल्म के, उससे ज्यादा नहीं है संसार। फिल्म बड़ी है, पर्दा बहुत विराट है। तुम ओर-छोर भी न पा सकोगे। दृश्य बहुत हैं, अनगिनत हैं। संख्या का उपाय नहीं है। लेकिन है सब धूप छाया का ही खेल। उससे भिन्न कुछ भी नहीं रहा है।

एक ही चीज सत्य है; वह तुम्हारा देखनेवाला तत्व है। वह आकाश है। अवधू गगन मंडल घर कीजै। उस आकाश को ही अपना घर बना लो।

उससे कम में तुम दुखी रहोगे। उससे कम में तुम पीड़ित रहोगे। उससे कम में नर्क में ही रहोगे। क्योंकि अपने स्वभाव से कम में कोई कभी आनंदित नहीं हो सकता। स्वभाव आनंद है। तब तुम अपने घर लौट आए गगन-मंडल घर कीजै।

और कहीं घर मत बनाना। और अब घर सराय सिद्ध होंगे। रात भर का पड़ाव हो सकता है। सुबह उठकर चल पड़ना पड़ेगा। और किसी संबंध को घर मत बनाना। पत्नी हो, पति हो, बेटे हों, बेटियां हों, मित्र हों—सब क्षण भर का मिलना है। राह पर चलते यात्रियों का अचानक हो गया संयोग है। नदी-नाव संयोग। फिर छूट जाएगा। अनंत की यात्रा में बहुत बार न मालूम कितने घर तुमने बनाए। उनका हिसाब लगाना मुश्किल है। न मालूम कितने प्रेम के संबंध स्थापित किए। उतनी संख्या नहीं है। कितने रोए, कितने हंसे, लेकिन सब पानी के बबूलों की तरह खो गए। सब खो जाता है। सिर्फ एक ही बचता है। उस एक को ही कबीर कहते हैं—अवधू, उस एक को ही घर बना।

गगन मंडल घर कीजै।

और गगन कैसा है? शून्य है। गगन का अर्थ है, परम-शून्यता। तभी तो सब मिट जाता है। गगन नहीं मिटता। शून्य कैसे मिटेगा? जो मिटा ही हुआ है, जो है ही नहीं, वह कैसे मिटेगा? शून्य को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए शून्य अस्तित्व का सार है। वह शाश्वत है। शून्य एकमात्र शाश्वतता है। सब बनेगा और सब मिटेगा। नाम रूप आते और जाते हैं। शून्य बना रहता है।

इसलिए ज्ञानियों ने ब्रह्म की परिभाषा शून्य से की है। शून्य है उसका रूप। इसलिए उपनिषद कहते हैं, नेति नेति। वे कहते हैं, न यह आकार है उसका, न वह आकार है उसका। ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही कह सकते हैं कि कोई आकार नहीं है उसका। निराकार। निराकार यानी शून्य।

बुद्ध ने तो परमात्मा शब्द का उपयोग ही नहीं किया। क्योंकि उससे तुम्हें भ्रांति होती है। परमात्मा शब्द का उपयोग करते ही, तुम्हें धनुषबाण लिए राम याद आते हैं, या बांसुरी बजाते कृष्ण याद आते हैं। परमात्मा का नाम लेते ही कहीं तुम्हारे मन में रूप बनने लगता है। आकार घना होने लगता है। लाख कहो कि परमात्मा निराकार है, लेकिन परमात्मा शब्द ही व्यक्तिवादी होने से रूप देने लगता है। इसलिए बुद्ध ने परमात्मा का उपयोग नहीं किया। बुद्ध ने तो कहा, सिर्फ शून्य। निर्वाण।

निर्वाण शब्द बड़ा मीठा है। निर्वाण शब्द का अर्थ होता है, दीये का बुझ जाना। जब दीया बुद्ध जाता है तो क्या शेष रह जाता है? कहां जाती है ज्योति? कहां खो जाती है ज्योति? खोज न पाओगे अब। ज्योति शून्य में लीन हो गई। तुम्हारा दीया जिस दिन बुझ जाएगा—तुम्हारे दीए का अर्थ है, भ्रांति का दीया। तुम्हारे दीए का अर्थ है अहंकार का दीया। तुम्हारे दीये का अर्थ है अंधकार का दीया। जिस दिन बुझ जाएगा, उस दिन शून्य शेष रह जाता है पीछे। इस शून्यता का ही नाम आकाश है।

अवधू गगन मंडल घर कीजे।

इसका अर्थ हुआ कि शून्य में बसो। शून्य में रमो। शून्यमय एकमात्र ध्यान है। जहां-जहां रूप मिले, वहां से अपने को हटा लो। जहां-जहां आकार मिले, समझो कि बादल बना है, खो जाएगा मैं तो वह हूं, जो देख रहा है। इतने शब्द भी भीतर मत बनाओ कि मैं तो वह हूं, जो देख रहा है। क्योंकि यह भी आकार है। सिर्फ तुम देखने वाले ही रहो।

धीरे-धीरे कोई शब्द न उठेगा। कोई विचार न बनेगा। घूंघट उठ गया। विचार की तो वह पर्त है।उतनी ही तो धुएं लकीर हैं। उतनी ही तो आड़ है। आंख की किरकिरी आंख से गिर गई।

घूंघट के पट खोल, तो हे पिया मिलेंगे।

लेकिन पिया शब्द से फिर भ्रांति हो सकती है। जैसे कोई बैठा है तुम्हारे भीतर प्रतीक्षा करता। नहीं, वह शून्य ही प्यारा है। क्योंकि शून्य के अतिरिक्त हर चीज से दुख मिलता है। इसलिए उस शून्य को पिया कहा है। वही एकमात्र प्रीतम है क्योंकि शून्य में ही सुख झरता है। शून्य के अतिरिक्त दुख ही दुख है।

अमृत झरै, सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै।

एक बार शून्य में घर हो जाए—

अमृत झरै, सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै। और फिर तो सुषुम्ना से पीते रहो उसकी अमृत धार को अनंत तक। वह चुकती ही नहीं। समय की कोई बाधा नहीं है। जब भी तुम शून्य हो जाओगे तभी तुम अचानक पाओगे, कुछ झरने लगा भीतर। कोई निर्झर सक्रिय हो गया। अब तक जैसे स्रोत ढंके थे पत्थरों से। हट गए पत्थर। झरना बहने लगा। चल पड़ी सरिता सागर की तरफ। बूंद का अभियान शुरू हुआ सिंधु में खो जाने के लिए। तत्क्षण अमृत झरने लगेगा।

अभी भी अनजाने भी कभी-कभी जब तुम्हें सुख की थोड़ी सी भनक मिलती है, सुख की पायल बजती है तुम्हारे भीतर; चाहे तुम्हारे जाने, चाहे तुम्हारे अनजाने। वह तभी बजती है, जब तुम किसी कारण संयोगवशात शून्य हो जाते हो।

सुबह तुम खड़े हो, सूरज उगा, और धक! तुम्हारा हृदय क्षण भर को रुक गया उस सौंदर्य को देख कर। क्षण भर को विचार की शृंखला टूट गई। क्षण भर को विचार ना रहे। जरा सी संधि मिल गई शून्य को। झर गया रस। कहोगे तुम, सूरज को देखने से सुख मिला। वह तुम्हारी भ्रांति है। फिर तुम भूल गए। तुम मूल कारण को न समझ पाए। सूरज के कारण सुख मिला, सूरज के कारण संयोग बना। सूरज निमि

त्त हुआ, कि क्षण भर को तुम रुक गए। अवाक रह गए। ऐसी घनी सौंदर्य की प्रतीि त थी उगते सूरज में, जागते प्रकाश में, भागती रात्रि में, सुबह के पक्षियों की गुनगु नाहट में—क्षण भर को तुम खो गए। तुम्हारा अहंकार लीन हो गया। जरा सा द्वार खुला, जरा सा पर्दा हटा, घूंघट जरा सी हिला, भीतर का शून्य क्षण भर को झलका । उस शून्य के कारण ही सुख मिला। लेकिन तुम कहोगे, सूरज को देखने से सुख ि मला।

गये तुम पर्वत पर, पहाड़ों पर। देखे हिमशिखर। ढंके अनंत काल से बर्फ से। चमकत ी उन पर सूरज की किरणें। जैसे सारा पर्वत स्वर्ण हो गया। एक क्षण को हो गया कुछ स्तब्ध। ऐसा कभी जाना न था। ऐसा कभी देखा न था। अनदेखा देखा। अनजाने से परिचय हुआ। अपरिचित से मिलन होता है, क्षण भर को सब रुक जाता है। क योंकि मन सम्हालने में वक्त लगता है। परिचित को देखकर मन नहीं रुकता। जानत ा है, कौन है।...परिचित को देखकर।

मैं काश्मीर में था। मेरे साथ जो मित्र थे, वे वर्षों से प्रतीक्षा करते थे साथ काश्मीर जाने की। रुके रहे थे, नहीं गए थे। वे बड़े आह्लादित थे। डल झील पर हम रुके थे। जिस हाऊस-बोट में थे, उसका मालिक जब थोड़ा परिचित हो गया तो वह कह ने लगा—आखिरी दिन जब हम विदा होते थे, उसने पैर पकड़ लिए और कहा कि ए क ही आशा है, बंबई देखनी है। आपकी कृपा हो जाए। मुझे साथ ले चलें।बस, दो चार दिन में ही तृप्त हो जाऊंगा। लेकिन बिना बंबई देखे नहीं मरना है। डल झील सूनी है।

बंबई के मित्र मेरे साथ थे। वे बंबई से आए थे, डल झील देखने। वह नई थी। वह उन्हें झकझोरती थी। डल झील पर हाऊस-बोट वर्षों से सम्हालने वाला आदमी—डल झील मुर्दा हो गई थी उसके लिए। परिचित हो गई थी।

जो भी परिचित हो जाता है, वह तुम्हें झकझोरता नहीं। इसलिए तो जिस स्त्री पर तुम पहले दिन मोहित होते हो, उस दिन लगता है स्वर्ग बरसा। उसी को विवाह क र घर ले आते हो, नर्क घर आ जाता है। स्वर्ग पता नहीं कहां खो जाता है। अपरि चत में ठिठक है। अवाक हो जाता है आदमी नये को देखकर। तुम्हारा पुराना मन ि हसाब नहीं लगा पाता। इसलिए रुक जाता है। उसे कभी जाना न था। पहली दफा जाना है। अगली बार जब जानोगे तो मन के पास हिसाब होगा कि वही है। पहले दे खा था। दोबारा डी झील देखोगे, कुछ खास न रह जाएगा। तीसरी बार देखोगे, देख ोगे ही नहीं। मन कहेगा, सब देखा हुआ है, परिचित है।

अपरिचित क्षणों में कभी-कभी शून्य झांकता है। इसलिए कोई भी अपरिचित क्षण सु ख की वर्षा कर जाता है। लेकिन अनजान में पकड़े जाना चाहिए। कभी संगीत को सुनकर धुन बंध जाती है। धुन ऐसी बंध जाती है कि विचार रुक जाते हैं। क्योंकि ि वचार अगर रहेंगे तो धुन न बंधेगी।

मैंने सुना है, एक बड़ा संगीतज्ञ हुआ। एक नवाब ने उसे लखनऊ में निमंत्रित किया था। और उस संगीतज्ञ की बड़ी अजीब शर्तें थी। उसकी एक शर्त तो यह थी कि ज

ब मैं बजाऊं वीणा, गाऊं गीत, तो कोई सिर न हिलाए। अगर किसी ने सिर हिलाय ा, तो उसका सिर काट दिया जाएगा। उससे मुझे बाधा पड़ती है।
लखनऊ के नवाब! वैसे ही पागल! वह राजी हो गया नवाब। उसने कहा, इसमें क्या फिकर? इसमें क्या उड़चन? सिर तो हम वैसे ही काटते रहते हैं।
नगर में डुंडी पीट दी कि जो भी आए, सोचकर आए, पीछे पछताना हो। सिर हिला ना सख्त मना है। जो सिर हिलाएगा, उसका सिर काट दिया जाएगा।
सम्राट ने सिपाही नंगी तलवारें लिए खड़े कर दिए लाखों लोग सुनने आए होते; नहीं आए। थोड़े से चुने लोग सुनने आए, जो नहीं रोक सके अपने को। जो जीवन को दांव पर लगाने को तैयार थे। हजार-पांच सौ लोग सुनने आए। वे भी सम्हल कर बै ठे—बिलकुल योगियों की तरह। सिंहासन जमा लिया कि कहीं भूल-चूक से हिल जाए । संगीत के लिए न हिले, मक्खी आ जाए और सिर हिल जाए; और यह नवाब पा गल है। फिर सिद्ध करना मुश्किल होगा कि हमने मक्खी के लिए हिलाया था कि क ोई और कारण से हिल गया। तो सम्हल कर बैठे। सांस रोक कर बैठे। नंगी तलवारें लिए नवाब ने आदमी चारों तरफ खड़े कर दिए भवन में। नोट कर लिया जाए जि सका भी सिर हिले और बाद में काट दी जाए गरदन।
सम्राट भी चकित हुआ। संगीत शुरू हुआ थोड़ी देर में कुछ सिर हिलने लगे। उसने सोचा था, कोई हिलेगा ही नहीं। कोई दस-पंद्रह सिर हिलने लगे। किसी गहरी विवश ता में, असहाय। संगीत पूरा हुआ। वे बारह आदमी पकड़ लिए गए। इसके पहले कि नवाब इतनी गरदन कटवाए संगीतज्ञ ने कहा कि रुको। मैं इन्हीं की तलाश में था। बाकी को विदा कर दो। अब इन्हीं के लिए बजाऊंगा।
सम्राट ने कहा, हम कुछ समझे नहीं।और उन पागलों से पूछा कि तुम क्यों सिर हि लाए? उन्होंने कहा, हमने सिर हिलाया यह कहना उचित न होगा। हम थे ही नहीं। सिर कब हिले, हमें उसका पता नहीं। धुन बन गई। विचार खो गए। और विचार के साथ ही आपकी सूचना भी खो गई, कि सिर काट दिए जाएंगे। हम थे ही नहीं। एक क्षण आया, जब हम मिट गए।
और उस संगीतज्ञ ने कहा, कि इन्हीं के लिए बजाऊंगा अब। क्योंकि जो मिट नहीं सकते, वे संगीत को समझ ही नहीं सकते। क्योंकि संगीत में थोड़े ही असली रहस्य है; मिटने में, शून्य हो जाने में है। संगीत तो निमित्त है।
सारी धर्म की विधियां निमित्त हैं। उनमें धर्म नहीं है। अगर काम कर जाए, तो वह तुम्हारे शून्य में छिपा है।
तो कभी आकस्मिक रूप से प्रेम के किसी क्षण में...अचानक वर्षों का सोया मित्र रास् ते में मिल जाए और विचार ठिठक जाएं तो कैसा आह्लाद भी जाता है हृदय में। आपूर! चाहे आकस्मिक, चाहे नियोजन से, लेकिन जब भी तुम्हारे भीतर जरा सा झ रोखा खुलता है शून्य झांकता है, तभी अमृत की धार शुरू हो जाती है।
इसलिए मैं कहता हूं, संभोग के क्षण में भी कभी अमृत की धार शुरू हो जाती है। क्योंकि संभोग एक इलेक्ट्रिक है। सारे शरीर संस्था को एक भयंकर धक्का है। वह ध

क्का अगर इतना हो, कि तुम उस धक्के में क्षण भर को खो जाओ, तो संभोग भी समाधि की झलक ले आता है।

मृत्यु में भी कभी-कभी झलक मिल जाती है शून्य की। जैसे कि तुम पहाड़ से गिर पड़ो। गिरते ही तुम तो मान ही लिए हो कि मर गए। जैसे ही तुमने मान लिया कि मर गए, विचार बंद हो जाते हैं। क्योंकि विचार तो जीवन का गोरखधंधा है। जब मर ही गए, तो अब क्या विचार करने का समय रहा? किसके लिए विचार करना है? व्यापारी ही टूट जाता है। संबंध ही छूट गया इस संसार से। संसार से संबंध था विचार का। पहाड़ से तुम गिर गए। तुमने मान लिया कि मर गए। क्षण भर की दे र है, कि नीचे दिखाई पड़ रही हैं चट्टानें। टकराए और गए! उस एक क्षण में अगर तुम बच जाओ।

ऐसा कई बार हुआ है, कि कोई लोग पहाड़ों से गिर गए और बच गए। संयोगवशा त! तो उन्होंने कहा कि हमने जीवन का सबसे बड़ा सुख जाना है। क्योंकि उस क्षण में एक ही क्षण है छोटा सा। पहाड़ से गिरने में और खाई में आने देर कितनी? ले किन उस क्षण में विचार बंद हो गए, शून्य का झरोखा खुल गया। अमृत बरसा।

मृत्यु में भी अमृत बरस सकता है, संगीत में भी, संभोग में भी आकस्मिक सौंदर्य में , आकस्मिक घटना में। लेकिन कभी भी आनंद की अनुभूति हो, कारण कुछ भी दि खाई पड़ते हों, मूल कारण एक ही होता है कि शून्य की प्रतीति होती है।

जो यह समझ जाता है, वह फिर संयोगों की फिकर नहीं करता। वह सीधे शून्य की तलाश करता है। वह क्यों पहाड़ से गिरने जाएगा? वह तो बैठे-बैठे शून्य में डूब स कता है। एक बार यह समझ में आ गया, कि शून्य से ही आती है रसधार तो फिर छोटे-छोटे मिमित्तों की कौन फिकर करता है? फिर सीधा ही डूब जाता है शून्य में । वही तो योग है।

इसलिए मैं कहता हूं। योग समस्त भोगियों का सार है। यह तुम्हें कठिन लगेगा। लेकिन भोगियों न जो कण-कण मात्र जाना है, कभी-कभी जिसकी झलक पाई है, वर्षों जिसके लिए तड़फे हैं और कभी छोटी सी रत्ती भर जिसका स्वाद पाया है।

भोगियों के समस्त भोग-अनुभव का सार योग है।

तब योगियों ने जांच परख कर ली और पूरा विज्ञान निर्मित कर लिया, कि असली बात शून्य है। और शून्य में तो सीधे जाया जा सकता है। यह वाया मीडिया, ये माध्यम, इनकी कोई भी जरूरत नहीं। इनमें व्यर्थ ही समय जाया करना पड़ता है। इसलिए योगी सीधे शून्य की तलाश करने लगे।

अवधू गगन मंडल घर कीजै।

अमृत झरै, सदा सुख उपजै।

सदा! वही असली सुख की परिभाषा है। जो कभी-कभी, वह सुख नहीं। जो कभी-कभी, वह शांति नहीं। जो कभी-कभी, वह तो रोग है। उसमें एक तरफ का ज्वर होगा।

तुम देखो; लोगों को तुम सुख में भी उत्तेजित पाओगे। उत्तेजना ज्वर है। उत्तेजना सु
खद नहीं है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है, किसी को लाटरी मिली और वह मर ग
या। इतने उत्तेजित हो गए सुख में। लाटरी के लिए वर्षों से राह देख रहे थे, वह ि
मल गई। सोचा न था कि कभी मिलेगी। कामना करते थे, कि मिल जाए। लेकिन
जानते तो थे, कि मिलने वाली नहीं। यह अपने भाग्य में नहीं है।
लेकिन मिल गई। सम्हाल न सके सुख को। इतनी उत्तेजना हो गई, कि हृदय ने धड़
कना ही बंद कर दिया। विचार ही बंद होते, तो ठीक था। हृदय भी बंद हो गया!
खून की गति बढ़ गई। ब्लड-प्रेशर हो गया कि नसें ही फट गई।
सुख मार डालता है। तो तुम्हारा सुख बहुत सुख मालूम नहीं होता। वह तो तुम्हें र
त्ती-रत्ती मिलता है इसलिए तुम सम्हाल लेते हो। रत्ती-रत्ती जहर तुम खाते रहो रो
ज तो मरोगे नहीं मरोगे भी तो तीस चालीस साल लग जाएंगे रत्ती-रत्ती।
आदमी सिगरेट पीता है। वैज्ञानिक कहते हैं, कि अगर बीस साल में जितनी आदमी
सिगरेट पीता है, अगर छह सिगरेट रोज पीये तो बी साल में जितनी सिगरेट पीएगा
, उनका निकोटिन अगर इकट्ठा दे दिया जाए, तो आदमी मर जाएगा। लेकिन छह ि
सगरेट पीने से मरता नहीं। रत्ती-रत्ती! बल्कि अभ्यासी हो जाता है। अभ्यास से इम्यू
न हो जाता है। तो शुद्ध आदमी, जिसने कभी सिगरेट न पी हो उसको निकोटिन दे
दो, तो जल्दी मर जाएगा, जो अभ्यासी है—हठयोग है एक तरफ का सिगरेट पीना।
धुआं भीतर ले जाना, बाहर लाना—प्राणायाम धुएं का। जो अभ्यासी है, वह ऐसे नहीं
मरेगा।
तुम्हारा सुख रत्ती-रत्ती जहर है। और तुम्हारे हर सुख के पीछे दुख छिपा है। तुम्हार
ा हर सुख दुख अपने साथ ही लाता है। देर अबेर सुख जाएगा, दुख प्रकट होगा। तुम्
हारा सुख सदा नहीं है। जो सुख सदा है, उसी को हमने आनंद कहा है। सदा सुख
उपजै—दो सुखों को बीच में जब दुख नहीं रह जाता, तब सदा सुख उपजता है। तब
तो तुम्हें पता ही नहीं चलता, कि सुख कब आया। आना पता चलता है एक बार;
फिर जाने का तो पता ही नहीं होता। धीरे-धीरे ऐसी अवस्था हो जाती है सदा सु
खी की, कि उसे यह भी पता नहीं चलता कि वह सुखी है।
तुम अगर बुद्ध से पूछो कि क्या आप सुखी हैं? तो वे यह नहीं कह सकते कि मैं सु
खी हूं। क्योंकि मैं सुखी हूं, यह तो उसी का बोध है जो दुखी भी होता है। जैसे सदा
स्वस्थ रहनेवाले आदमी को पता ही नहीं चलेगा कि मैं स्वथ्य हूं। यह तो बीमार क
ो पता चलता है। सदा जो स्वस्थ है, उसे स्वास्थ्य का भी पता नहीं चलता। सदा सु
खी आदमी को सच का भी पता नहीं चलता।
इसलिए तो बुद्ध नाचते हुए दिखाई नहीं पड़ते। सुख इतना सदा है कि अब उसके ि
लए नाचना क्या? वह तो श्वास जैसा है? बह ही रहा है। वह तो स्वभाव में है। व
ह तो बरस ही रहा है। उसके लिए नाचना क्या? उसके लिए हंसना क्या? उसके ि
लए शोरगुल क्या मचाना कि मैं सुखी हूं?

सुख जब सदा होता है, तो शांति में रूपांतरित हो जाता है। आनंद जब परिपूर्ण हो ता है, तो शून्यवत हो जाता है। पूरा घड़ा जैसे भर जाए और आवाज नहीं करता, ऐसे ही पूरा सूख जब हो जाता है, तो कोई आवाज नहीं करता।

अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै।

और पीते जाओ उसके रस को, जितना पीना हो। रस कभी चुकता नहीं। पीनेवाला थक जाए, पिलानेवाला नहीं थकता।

मूल बांधि सर गगन समाना, सुखमनि यों तन लागी।

यह जो महासुख की घटना घटती है, योगी कैसे उसे घटाता है? वह अपने भीतर क्या करता है? वह किस भांति अपने को आकाश में डुबा देता है? मूल बांधि सर गगन समाना—यह उसकी प्रक्रिया है।

जीवन ऊर्जा है। शक्ति है। लेकिन साधारण तुम्हारी जीवन ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवा हित हो रही है। इसलिए तुम्हारी सब जीवन ऊर्जा अनंत काम-वासना बन जाती है। काम-वासना तुम्हारा निम्नतम चक्र है। तुम्हारी ऊर्जा नीचे गिर रही है। और सारी ऊर्जा धीरे-धीरे कामकेंद्र पर इकट्ठी हो जाती है। इसलिए तुम्हारी सारी शक्ति काम-वासना बन जाती है। जितने तुम शक्तिशाली हो जाओगे, उतनी प्रगाढ़ काम-वासना तुममें पैदा होगी

इसलिए तो साधु डर जाते हैं। तो भोजन कम करते हैं। क्योंकि न भोजन लेंगे, न शक्ति पैदा होगी। न शक्ति पैदा होगी, न काम-वासना उठेगी। साधु अपने को सुखाने में लग जाते हैं। साधु धीरे-धीरे ऐसी कोशिश करते हैं, कि इतना ही भोजन लें, ि जतने रोज दैनिक शरीर का काम चल जाए। ऊर्जा बचे न।

मगर यह कोई साधुता हुई? यह तो नंपुसकता हुई। यह कोई साधना हुई? शक्ति न बचे, तो तुम्हारे ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है? क्या मूल्य? कोई सार्थकता नहीं। निर्बल के ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है?

लाखों लोग निर्बलता को ब्रह्मचर्य समझ लेते हैं। रुग्णता को स्वास्थ्य समझ लेते हैं। शरीर को गला लेते हैं। ऊर्जा पैदा नहीं होती, इसलिए कामकेंद्र सूख जाता है। तो वे सोचते हैं कि हम सिद्धावस्था। को उपलब्ध हो गए।

उन्हें ठीक से भोजन दो, एक सप्ताह के भीतर उनकी काम-ऊर्जा भीतर प्रवाहित हो ने लगेगी। फिर वासना जगने लगेगी। यह कोई छुटकारा न हुआ। यह तो धोखा हुआ। यह आत्म-प्रवंचना है। कबीर जैसे ज्ञानी, ऐसी साधुता को दो कौड़ी का भी नहीं मानते।

साधुता का अर्थ ऊर्जा को समाप्त करना नहीं है, ऊर्जा को रूपांतरित करना है। ऊज र् को नष्ट करना, सूखना है, ऊर्जा की दशा बदलनी है। वह जो नीचे की तरफ बह ती है, वह ऊपर की तरफ बहने लगे। अधोगामी शक्ति ऊर्ध्वगमन की तरफ निकल जाए। जो अभी जमीन की तरफ बहती है, वह आकाश की तरफ उठने लगे। जो अ भी पानी की तरह है, वह अग्नि की तरह हो जाए। पानी नीचे की तरफ बहता है। अग्नि सदा ऊपर की तरफ जाती है। जिस दिन तुम्हारी ऊर्जा आग्नेय हो जाएगी,

उसी दिन एक अनूठे ब्रह्मचर्य का जन्म होगा, जो निर्बलता से नहीं, वरन परम-वीर्य से पैदा होती है।

मूल बांधि—वह जो मूलाधार चक्र है, जहां से ऊर्जा काम ऊर्जा बनती है, उसे बांध लेना है। उसे सिकोड़ लेना है। इसलिए योग ने, पतंजलि ने, हठयोग ने बहुत सी प्रक्रियाएं खोजी हैं मूल को बांधने की। मूल जब बंध जाए तो ऊर्जा अपने आप ऊपर उठने लगती है। क्योंकि नीचे द्वार बंद हो जाता है। द्वार अवरुद्ध हो जाता है।

एक छोटा सा प्रयोग जब भी तुम्हारे मन में काम-वासना उठे तो करो, तो धीरे-धीरे तुम्हें राह साफ हो जाएगी।

जब भी तुम्हें लगे, कि काम-वासना तुम्हें पकड़ रही है, तब डरो मत। शांत होकर बैठ जाओ। जोर से श्वास को बाहर फेंको—उच्छवास। भीतर मत लो श्वास को। क्योंकि जैसे भी तुम भीतर गहरी श्वास को लोगे, भीतर जाती श्वास काम-ऊर्जा को नीचे की तरफ धकाती है। जब तुम्हें काम-वासना पकड़े, तब एक्सहेल करो। बाहर फेंको श्वास को। नाभि को भीतर खींचो, पेट को भीतर लोग और श्वास को बाहर फेंको जितनी फेंक सको।

धीरे-धीरे अभ्यास होने पर तुम संपूर्ण रूप से श्वास को बाहर फेंकने में सफल हो जाओगे। जब सारी श्वास बाहर फिंक जाती है, तो तुम्हारा पेट और नाभि वैक्यूम हो जाते हैं। शून्य हो जाते हैं। और जहां कहीं शून्य हो जाता है, वहां आसपास की ऊर्जा शून्य की तरफ प्रवाहित होने लगती है। शून्य खींचता है। क्योंकि प्रकृति शून्य को बर्दाश्त नहीं करती। शून्य को भारती हैं।

तुम नदी से पानी भर लेते हो घड़े में। तुमने घड़ा भर कर उठाया नहीं कि गड्ढा हो जाता है यानी में घड़े से। तुमने पानी भर लिया, उतना गड्ढा हो गया। चारों तरफ से पानी दौड़ कर उस गड्ढे को भर देता है।

तुम्हारी नाभि के पास शून्य हो जाए, तो मूलाधार से ऊर्जा तत्क्षण नाभि की तरफ उठ जाती है। और तुम्हें बड़ा रस मिलेगा। जब तुम पहली दफा अनुभव करोगे, कि एक गहन ऊर्जा बाण की तरह आकर नाभि में उठ गई। तुम पाओगे, सारा तन एक गहन स्वास्थ्य से भर गया। एक ताजगी! यह ताजगी वैसी ही होगी, ठीक वैसा ही अनुभव तुम्हें होगा ताजगी का, जैसा संभोग के बाद उदासी का होता है। जैसे ऊर्जा के स्खलन के बाद एक शिथिल पकड़ लेती है—एक रुग्णदशा, एक विषाद, एक हारापन, एक थकान। तुम सो जाना चाहते हो।

बहुत से लोग संभोग का उपयोग केवल नींद के लिए ही करते हैं। क्योंकि थक जाते हैं। पश्चिम में डाक्टर तो लोगों को सलाह देते हैं, जिन को नींद नहीं आती, कि संभोग उनके लिए उचित है। संभोग कर लोगे, थक जाओगे, टूट जाओगे! नींद अपने आप आ जाएगी। लेकिन वह नींद कोई स्वस्थ नींद नहीं है। वह थकान की नींद है। वह विश्राम नहीं है, थकान है। थकान और विश्राम में बड़ा फर्क है। विश्राम में ऊर्जा पूरी आराम करती है। थकान में ऊर्जा नहीं होती। हारे, थके, टूटे हुए तुम पड़ जाते हो।

संभोग के बाद जैसे विषाद का अनुभव होगा, वैसे ही अगर ऊर्जा नाभि की तरफ उठ जाए, तो तुम्हें हर्ष का अनुभव होगा। एक प्रफुल्लता घेर लेगी। ऊर्जा का रूपांतरण शुरू हुआ। तुम ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा सौमनस्यपूर्ण ज्यादा उत्फुल्ल, सक्रिय, अनथके, विश्रामपूर्ण मालूम पड़ोगे। जैसे गहरी नींद के बाद उठे हो। ताजगी आ गई। इसलिए जो लोग भी मूलाधार से शक्ति को सक्रिय कर लेते हैं, उनकी नींद कम हो जाती है। जरूरत नहीं रह जाती है। वे थोड़े घंटे सो कर भी ही ताजे हो जाते हैं, फिर तो दो घंटे तो कर उतने ही ताजे हो जाते हो जितने तुम आठ घंटे सो कर नहीं हो पाते, क्योंकि तुम्हारे शरीर को तो ऊर्जा को पैदा करना पड़ता, निर्मित करना पड़ता है, भरना पड़ता है। और बड़ा पागलपन है। रोज शरीर भरता है, रोज तुम उसे उलीचते हो। यूं ही उम्र तमाम होती है। रोज भोजन लो, शरीर को ऊर्जा से भरो, फिर उसे उलीचो और फेंक दो।

ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन बड़ा अनूठा अनुभव है। और पहला अनुभव होता है, मूलाधार से नाभि की तरफ जब संक्रमण होता है।

यह मूलबंध ही सहजतम प्रक्रिया है। कि तुम श्वास को बाहर फेंक दो, नाभि शून्य हो जाएगी, ऊर्जा उठेगी नाभि की तरफ, मूलबंध का द्वार अपने आप बंद हो जाएगा। वह द्वार खुलता है ऊर्जा के धक्के से। जब ऊर्जा मूलाधार में नहीं रह जाती, धक्का नहीं पड़ता, द्वार बंद हो जाता है।

मूल बांधि सर गगन समाना...

बस, तुमने अगर एक बात सीख ली कि ऊर्जा कैसे नाभि तक आ जाए, शेष तुम्हें चिंता नहीं करनी है। तुम ऊर्जा को, जब भी कामवासना उठे, नाभि में इकट्ठा करते जाओ। जैसे-जैसे ऊर्जा बढ़ेगी नाभि में, अपने आप ऊपर की तरफ उठने लगेगी। जैसे बर्तन में पानी बढ़ता जाए, तो पानी की तरह ऊपर उठती जाए।

असली बात मूलाधार का बंद हो जाना है। घड़े के नीचे का छेद बंद हो गया, अब ऊर्जा इकट्ठा होती जाएगी। घड़ा अपने आप भरता जाएगा।

एक दिन तुम अचानक पाओगे, कि धीरे-धीरे नाभि के ऊपर ऊर्जा आ रही है। तुम्हारा हृदय एक नई संवेदना से आप्लावित हुआ जा रहा है। तुम कहते हो कि तुम प्रेम करते हो। लेकिन तुम कर नहीं सकते क्योंकि तुम्हारे हृदय में ऊर्जा नहीं है। तुम लाख कहो, कि तुम प्रेम करते हो। तुम प्रेम कर नहीं सकते। क्योंकि प्रेम तभी घटता है, जब हृदय चक्र में ऊर्जा आती है। उसके पहले घटता नहीं। तो तुम समझाते रहे अपने को कि तुम प्रेम करते हो; लेकिन तुमने किसी को प्रेम नहीं किया। न अपनी पत्नी को, न अपने बेटे को। ज्यादा से ज्यादा तुम अपने को प्रेम करते हो। बाकी तुम किसी को प्रेम नहीं करते। और वह भी बहुत कमजोर है। वह भी कोई बड़ा गहरा नहीं है।

जिस दिन हृदय चक्र पर आएगी तुम्हारी ऊर्जा, तुम पाओगे भर गए तुम प्रेम से। तुम जहां भी उठोगे, बैठोगे, तुम्हारे चारों तरफ एक हवा बहने लगेगी प्रेम की। दूसरे लोग भी अनुभव करेंगे कि तुममें कुछ बदल गया है। तुम अब वही नहीं हो। तुम क

ोई और ही तरंग ले कर आते हो। तुम्हारे साथ कुछ और ही लहर आती है, कि उ
दास प्रसन्न हो जाते हैं; कि दुखी थोड़े देर को दुख को भूल जाता है, कि अशांत, श
ांत हो जाता है, कि तुम जहां छू देते हो, जिसे छू देते हो, उस पर ही एक छोटी
सी वर्षा प्रेम की हो जाती है। लेकिन हृदय में ऊर्जा आएगी, तभी यह होगा।
ऊर्जा जब बढ़ेगी, हृदय से कंठ में आएगी तब तुम्हारी वाणी में एक माधुर्य आ जाए
गा। तब तुम्हारी वाणी में एक संगीत, एक सौंदर्य आ जाएगा। तुम साधारण से शब्द
 बोलोगे और उन शब्दों में काव्य होगा। तुम दो शब्द किसी से कह दोगे और तुम
उसे तृप्त कर दोगे। तुम चुप भी रहोगे तो तुम्हारे मौन में भी संदेश छिप जाएंगे। तु
म न भी बोलोगे, तो भी तुम्हारा अस्तित्व बोलेगा। ऊर्जा कंठ पर आ गई।
उपनिषद के गीत तभी तो फूटे होंगे, जब ऊर्जा कंठ पर आ गई होगी। बुद्ध के वच
न तभी तो निस्सृत हुए होंगे, जब ऊर्जा कंठ पर आ गई होगी। कुरान के वचन साध
ारण वचन हैं। लेकिन जब मोहम्मद ने उन्हें कहा था तब उन वचनों में बात ही कु
छ और थी। तब वे किसी और ही लोक से आते थे।
तुम भी उनको दोहरा सकते हो। लेकिन तुम्हारी ऊर्जा जहां होगी, उन शब्दों में वही
 गुणधर्म प्रविष्ट हो जाएगा। अगर काम-वासना से भरा हुआ आदमी कुरान को कित
ने ही तरन्नुम से गाए, तो भी वह कव्वाली ही होगी। वह कुरान हो नहीं सकता। क
योंकि कुरान का संबंध शब्दों से थोड़े ही है! तुम्हारी जीवन ऊर्जा से है। और अगर
मोहम्मद कव्वाली भी गाएं, तो एक कुरान हो जाएगा। उन शब्दों में भी नये भाव
आविर्भूत हो जाएंगे। नई कोंपलें लग जाएंगी। नए फूल लग जाएंगे।
कृष्ण ने गीता कही। वह कंठ से आई ऊर्जा की अभिव्यक्ति है, अभिव्यंजना है। कित
ने लोग गीता को कंठस्थ किए हैं। और कितने लोग रोज उसका पाठ करते रहते हैं।
 कितने हजारों पाठ कर चुके हैं। लेकिन अगर काम-ऊर्जा मूलाधार से गिर रही है,
तो गीत तुम गाते रहो, वह गीता तुम्हारी ही होगी; भगवदगीता नहीं हो सकती। भ
गवदगीता होने के लिए तो चेतना का भागवत ही जाना जरूरी है।
ऊर्जा ऊपर उठती जाती है। एक घड़ी आती है, कि तुम्हारे तीसरे नेत्र पर ऊर्जा का
 अविर्भाव होता है। तब तुम्हें पहली दफा दिखाई पड़ना शुरू होता है। तुम अंधे नहीं
 होते। उसके पहले तुम अंधे हो। क्योंकि उसके पहले तुम्हें आकार दिखाई पड़ते हैं।
निराकार दिखाई नहीं पड़ता। और वही असली में है। सब आकारों में छिपा है निरा
कार। आकार तो मूलाधार में बंधी हुई ऊर्जा के कारण दिखाई पड़ते हैं। अन्यथा को
ई आकार नहीं है।
तुम कहां समाप्त होते हो? कहां तुम्हारी सीमा है? कहां तुम शुरू होते हो? न कोई
 कहीं शुरू होता है, न कोई कहीं समाप्त होता है। सारा जगत संयुक्त है। तुम झाड़
ों से जुड़े हो। पहाड़ों से जुड़े हो। चांद तारों से जुड़े हो। छोटा सा मकड़ी का जाला
जिलाओ, और अनंत आकाश के तारे भी कंप जाते हैं। क्योंकि सारा अस्तित्व एक
है : इसमें दो तो हैं नहीं कहीं; लेकिन तुम्हें अनेक दिखाई पड़ता है। अंधे हो मूलाधा

र अंधा चक्र है। इसलिए तो हम काम-वासना को अंधी कहते हैं। वह अंधी है। उस के पास आंख बिलकुल नहीं है।

आंख तो खुलती है—तुम्हारी असली आंख, जब तीसरे नेत्र पर ऊर्जा आकर प्रकट ह ोती है। जब लहरें तीसरे नेत्र को छूने लगती हैं। तीसरे नेत्र के किनारे पर जब तुम्ह ारी ऊर्जा की लहरें आ कर टकराने लगती हैं, पहली दफा तुम्हारे भीतर दर्शन की क्षमता जगती है।

इसलिए हमने इस देश में विचार की प्रक्रिया को फिलासफी नहीं कहा। हमने विचार की प्रक्रिया को दर्शन कहा। फिलासफी पश्चिम में दर्शनशास्त्र का नाम है। हमने वह नाम पसंद न किया। क्योंकि फिलासफी तो पैदा हो जाती है, मूलाधार में ऊर्जा हो तब भी। लेकिन दर्शन पैदा नहीं होता। और मूलाधार में भटके हुए अंधे कितना ही सोचें, उनके सोचने का क्या मूल्य हो सकता है? वे सोच कर भी क्या सोच पाएंगे। अंधा कितना ही प्रकाश संबंध में विचार करे, सिर पटके, गणित बिठाए, विश्लेषण करे, मीमांसा में उतरे, क्या हल होगा? अंधा जो कहेगा प्रकाश के संबंध में, गलत होगा। अंधे को तो अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता। प्रकाश तो बहुत दूर की बात है। तुम शायद सोचते होगे, कि अंधे को अंधेरा दिखाई पड़ता है तो तुम गलती में हो। अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरा भी आंख का ही अनुभव है। तुम आं ख बंद करते हो, तुम्हें अंधेरा दिखाई पड़ता है क्योंकि आंख खोलकर तुमको प्रकाश का अनुभव है। अंधे को तो अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ सकता। अंधेरा और प्रकाश तो आंख के अनुभव है।

तो अंधे सोच सकते हैं। और बड़े दर्शन शास्त्र खड़े कर सकते हैं। एरिस्टोटल, कांट, हीगल, बर्ट्रेंड रसेल—पश्चिम के बड़े से बड़े विचारक भी दार्शनिक नहीं हैं।

दर्शन एक अनूठी प्रक्रिया है। जिसका संबंध विचार से नहीं, ऊर्जा से है। कवि, कणा द, बुद्ध, महावीर, शंकर, नागार्जुन दार्शनिक हैं, विचारक नहीं हैं। क्योंकि दार्शनिक होने का अर्थ है, जिसकी ऊर्जा की लहरें तृतीय नेत्र के तट से टकराने लगी। अब इ सको दिखाई पड़ता है। यह कोई सिद्धांत नहीं बनाता। इसे जो दिखाई पड़ता है, उ से सिद्धांत में बांधता है। यह टटोलता नहीं है अंधेरे में। इसे जो दिखाई पड़ता है, उसे शब्दों में उतारता है ताकि अंधों तक शब्द पहुंचाए जा सकें।

और तब तुम्हारे जीवन मग आंख आती है, तब सिवाय परमात्मा के कुछ भी हनीं ि दखाई पड़ता। सारा संसार माया हो जाता है। सिर्फ परमात्मा सच होता है। अभी म ाया सच है। परमात्मा एकमात्र असत्य है। तो तुम लाख कहो कि हम मानते हैं। लेि कन तुम जानते हो कि परमात्मा है नहीं। मानोगे तुम कैसे? जिसे जाना नहीं, उसे मानोगे कैसे? जिसे देखा नहीं, से तुम मानोगे कैसे? भीतर तो संदेह बना ही रहता है।

पूजा कर लेते हो मंदिर में जाकर। हाथ जोड़ कर मूर्ति के सामने खड़े हो जाते हो। जरा गौर करना, भीतर तुम संदेह के कीड़े को सरकता हुआ पाओगे। लेकिन झुक जाते हो सर के कारण पता नहीं, हो ही! पीछे पछताना पड़े।

मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र मर रहा था। मित्र एक मौलवी था, पंडित था बड़ा। लेकिन मरते वक्त उसे भी कठिनाई होने लगी। क्योंकि पांडित्य मृत्यु में तो साथ न हीं देता। वह डरा। अब तक तो कहता रहा, कि ईश्वर है, यह है, वह है—सब सि द्धांत। लेकिन अब उसे समझ में न आया कि क्या करें! मौत करीब आ गई। क्षण भर की देरी है, क्या होगा? क्या न होगा?

किसी ने कहा, तुम मुल्ला नसरुद्दीन को क्यों नहीं बुला लेते? वह बड़ा ज्ञानी है। मर ता क्या न करता। डूबते तिनके का सहारा ले लेते हैं। उसने कहा, हां। चलो बुला लो। नसरुद्दीन को संदेह तो था। भरोसा तो था नहीं। लेकिन कोई हर्जा नहीं। नसरुद्दी न आया और उसने कहा, ठीक। तुम प्रार्थना करो, कि हे परमात्मा! हे शैतान! मुझे सम्हाल। उसने कहा, यह किस प्रकार की प्रार्थना है? हे परमात्मा समझ में आता है, लेकिन। नसरुद्दीन ने कहा, कि मरते वक्त खतरनाक लेना उचित नहीं। पता नहीं, परमात्मा हो या न हो। और पता नहीं, शैतान ही हो। तुम दोनों से ही प्रार्थना क र लो। जो भी होगा, सहायता करेगा। इस घड़ी में किसी को नाराज करना ठीक न हीं।

भय के कारण पूजा चलती है, श्रद्धा के कारण नहीं। परमात्मा पर भरोसा तो तभी आता है जब ऊर्जा तीसरे नेत्र में प्रवेश करती है। तुम देखने में समर्थन हो जाते ह ो। तब तक परमात्मा एक झूठ है और माया सत्य है। फिर सारी चीज बदल जाती है। परमात्मा सत्य हो जाता है और संसार झूठ हो जाता है।

दर्शन की क्षमता, विचार की क्षमता का नाम नहीं है। दर्शन की क्षमता देखने की क्ष मता है। वह साक्षात्कार है। जब बुद्ध कुछ कहते हैं, तो देख कर कहते हैं। वह उन का अपना अनुभव है। अनानुभूत शब्दों का क्या अर्थ है? केवल अनुभूत शब्दों में सा र्थकता होती है।

मैंने सुना है, एक छोटे से गांव में मैं ठहरा हुआ था। और शहर से एक डाक्टर आय ा था गांव के ग्रामीणों को समझाने के लिए परिवार-नियोजन के संबंध में। तो जिस घर में मैं ठहरा था, उस घर के सामने के ही आंगन में ग्रामीण इकट्ठे हुए थे और डाक्टर समझा रहा था। तो मैं भी बैठा सुन रहा था। परिवार नियोजन के संबंध में सब बातें उसने समझाई। एक ग्रामीण ने खड़े होकर पूछा, कि आप विवाहित हैं? उ स डाक्टर ने कहा कि नहीं। मैं अविवाहित हूं। वह ग्रामीण हंसने लगा और, और भी हंसने लगा दूसरे ग्रामीण। तो उस डाक्टर ने पूछा, मामला क्या है? तो उस ग्रामीण ने कहा, बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद।

लेकिन जीवन में जिन चीजों का तुम्हें स्वाद नहीं मिला है। उनको भी तुमने मान र खा है। और मानते मानते तुम्हें लगता है, कि तुम्हें भी मिल गया है। गुड़ कभी चख ा नहीं, गुड़ शब्द सुना है। परमात्मा कभी चखा नहीं, परमात्मा शब्द सुना है। जव कभी पीया नहीं, जल शब्द सुना है। परमात्मा कभी पीया नहीं, परमात्मा शब्द सुना है।

ऊर्जा जब तीसरी आंख पर प्रवेश करती है, तो अनुभव शुरू होता है। और ऐसे व्यि
क्त के वचनों में तर्क का बल नहीं होता, सत्य का बल होता है। ऐसे व्यक्ति के व
चनों में एक प्रामाणिकता होती है, जो वचनों के भीतर से आती है। किन्हीं ब्राह्मण
प्रमाणों के आधार पर नहीं। ऐसे व्यक्ति के वचन को ही हम शास्त्र कहते हैं। ऐसे व
यक्ति के वचन वेद बन जाते हैं। जिसने जाना है, जिसने जीया है, जिसने परमात्मा
को चखा है, जिसने पीया है, जिसने परमात्मा को पचाया है, जो परमात्मा के सा
थ एक हो गया है।

फिर ऊर्जा और ऊपर जाती है। सहस्रार को छूती है।

मूल बांधि सर गगन समाना।

सिर यानी सहस्रार।पहला सबसे नीचा केंद्र, चक्र है, मलू बंध : मूलाधार। और सबसे
अंतिम चक्र है, सहस्रार।

उसे हम सहस्रार कहते हैं आखिरी चक्र को, क्योंकि वह ऐसा है, जैसे सहस्र पंखुडियों
वाला कमल बड़ा सुंदर है। और जब खिलता है तो भीतर ऐसी ही प्रतीति होती है
जैसे पूरा व्यक्तित्व सहस्र पंखुडियोंवाला कमल हो गया है। पूरा व्यक्तित्व खिल गया।
जब ऊर्जा टकराती है सहस्र से तो उसकी पंखुड़ियां खिलनी शुरू हो जाती हैं। सहस्र
ार के खिलते ही व्यक्तित्व से आनंद का झरना बहने लगता है। मीरा उसी क्षण लग
ती है। पग घुंघरू बांध मीरा नाची। उसी क्षण चैतन्य महाप्रभु पागलों की तरह उन्मु
क्त होकर नाचने लगते हैं।

मूल बांधि सर गगन समाना, सुखमनि यों तन लगी।

बड़ी अनूठी बात है—यह सुखमनि यों तन लागी। ऐसा सुख पैदा होता है कि आत्मा
तो नाचती ही है, आत्मा तो नाचेगी ही, लेकिन नाच इतना गहन हो जाता है, कि
शरीर तक उस नाच में नाचने लगता है। शरीर तक आनंदित हो जाता है, जो कि
जड़ है।

कबीर यह कह रहे हैं, कि उस क्षण चेतना तो नाचती ही है। उसमें कुछ कहना नह
ीं है लेकिन जड़ शरीर तक चेतना के साथ चैतन्य जैसा हो कर नाचने लगता है। चे
तना तो प्रसन्न होती ही है, रोआं-रोआं शरीर का आनंदित हो उठता है। आनंद की
लहर ऐसी बहती है, कि मुर्दा भी—शरीर तो मर्दा है—वह भी नाचने लगता है।
तुम अभी शरीर के साथ बंधे-बंधे खुद मुर्दा हो गए हो। तब तब धारा उल्टी बहती
है। तुम्हारी चैतन्य की क्षमता के साथ मुर्दा शरीर भी नाचने लगता है। जो तुमने
सुना है, किसी उसकी कृपा से अंधे देखने लगते हैं, लंगड़े चलने लगते हैं, गूंगे बोल
ने लगते हैं, उसका तुम मतलब न समझे होओगे। उसका यही मतलब है।

उस घड़ी जो आदमी सदा गूंगा रहा हो, वह भी बोल उठेगा। इतनी बड़ी घटना घट
ती है, ऐसा उत्सव घटता है कि जो आदमी सदा का बहरा रहा हो, वह भी सुनने
लगेगा। सारा तन जाग उठता है। सारी नींद टूट जाती है। आत्मा की ही नहीं, जड़
शरीर तक में कंपन सुनाई पड़ता है। संगीत वहां तक गुंजायमान होता है। प्रतिध्वि
न वहां भी सुनाई पड़ने लगती है।

मूल बांधि सर गगन समाना, सुखमनि यों तन जागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, जहां जोगणी जागी।
और ऐसी घड़ी में काम और क्रोध जैसे कि कोई बम लगा देता है, उसमें पलीता ल गाता है। पलीते में आग लगती है तो थोड़ी देर में बम फूट जाता है।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, जहां जोगणी जागी।
और उस आनंद की घड़ी में कहां काम, कहां क्रोध! अब जिनको शत्रुओं की तरह जाना था, वे मित्र सिद्ध होते हैं। काम और क्रोध दोनों ही उस परम विस्फोट में पल ीता बन जाते हैं। उन दोनों का भी उपयोग हो जाता है। उनकी आग भी काम में आ जाती है। और एक विस्फोट घटता है--एक एक्सप्लोजन।
मनवा आई दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाही, सबद अनाहद बागा।
और अब...अब मन को मंदिर में बिठाने की कोई जरूरत न रही। अब तो बाजार में भी बैठ जाए।
मनवा आई दरीबै बैठा...
अब कोई चिंता न रही। हिमालय जाने की जरूरत ही न रही। बाजार दरीबा में बैठ जाए, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अब हर जगह हिमालय है। अब बाजार में भी कैलाश है। अब घर में भी काबा है। अब तो शरीर में ही बैकुंठ है।
मनवा आई दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
और मन भी ऐसा मगन हो गया और रस से ऐसा संबंध जुड़ गया, कि अब मन ही संदेह नहीं करता। मन, जिसका स्वभाव संदेह है।
जब ऊर्जा सातवें, आखिरी चक्र को छूती है, तो तुम्हारे शत्रु थे कल तक वे भी मि त्र जो जाते हैं। काम, क्रोध काम में आ जाते हैं। उनकी ऊर्जा, उनकी अग्नि पलीता बन जाती है परम विस्फोट में। तब तुम्हें पता चलता है कि जीवन में कुछ भी व्य र्थ नहीं है। सब सार्थक है देर-अबेर हर चीज का उपयोग होना है। कोई पत्थर यहां फेंके जाने योग्य नहीं। सभी पत्थर मंदिर के निर्माण में काम आ जाएंगे। इसलिए ज ल्दी मत करना फेंकने की। और दुश्मनी मत करना।
परमात्मा ने ऐसा कुछ बनाया ही नहीं, जिसका सदुपयोग न हो। यह हो सकता है, आज तुम्हें कोई उपयोग न सूझे। और आज तुम जिस पत्थर को फेंक दो, कल तुम पछताओगे और कल तुम्हें पीछे जाकर पता चले कि वही पत्थर तो मंदिर की मूर्ति बनने को था। या वही पत्थर मंदिर का शिखर बनने को था।
कुछ भी फेंकना मत। सब सम्हाल कर रखना। रत्ती भर भी तुम ऐसा नहीं है, जो ग लत हो। सभी का उपयोग हो जाएगा। यह हो सकता है, कि आज गलत लगता हो। क्योंकि तुम्हारी ऊर्जा बड़ी नीची है। वहां कोई उपयोग न हो। जब ऊर्जा ऊपर जाए गी, दृष्टि का विस्तार होगा, आंखें खुलेंगी, तब हजार उपयोग निकल आएंगे। मन से भी सभी तो यही लगता है, कि मन संदेह-संदेह करता है। लेकिन कबीर कहते हैं, कि फिर तो मन भी ऐसे रस से भरकर डूब जाता है, ऐसे रस में डूब जाता है, क

है कबीर जिय संसा नाही—कि अब उसमें संदेह नहीं उठता। संदेह तभी तक उठता था, जब तक तुमने पाया था।

तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि मन का संदेह भी मार्ग पर साथी है, सहयोगी है। क्योंकि वह तुम्हें जगाए रखता है। वह कहता है, अभी घड़ी नहीं मानने की। अभी श्रद्धा का समय नहीं आया। अभी अनुभव नहीं हुआ। अभी मंजिल थोड़ी दूर और है। वह तुम्हारे संदेह को जगाए रखता है। और यात्रा को कायम रखता है। लेकिन जब मंजिल आ जाती है, संदेह गिर जाता है। मन कहता है, अब श्रद्धा कर लो। मन भी साथी है। शत्रु तो कोई है ही नहीं।

कहै कबीर जिय संसा नाही, सबद अनाहद बागा।

अब संदेह कैसे करे मन? अब तो नाहत का शब्द भीतर बांग देने लगा। अब तो सत्य खुद बांदे रहा है। आधी रात थी, तब मन संशय करता था कि सुबह होगी या न होगी? अब मुर्गे ने बां दे दी।

...सबद अनाहद बागा।

कबीर कहते हैं, अब भीतर तो सत्य का शब्द ही बांग देने लगा। खुद सत्य बांग देने लगा। खुद परमात्मा बांग देने लगा। अब मन की क्या औकात! अब मन की क्या शंका की सामर्थ्य!

जगती है श्रद्धा। तो दो तरह की श्रद्धाएं हैं। एक: साधक की श्रद्धा, जिसे वह सम्हाल-सम्हाल कर बिठाता है, ताकि यात्रा हो सके। संदेह बना ही रहता है, लेकिन फिर भी वह यात्रा करता है। क्योंकि संदेह अगर अतिशय हो जाए तो यात्रा बंद हो जाए। संदेह अगर इतना हो जाए कि रोक ही दे यात्रा, तो संदेह तो रहेगा ही। श्रद्धा साधक की, कि वह कहता है कि ठीक है, तू भी रह, लेकिन यात्रा मैं करूंगा। श्रद्धा मैं बनाऊंगा। चेष्टा करूंगा। आधी रहेगी, अधूरी रहेगी। लेकिन जितनी है, उतनी ही भली।

एक तो साधक की श्रद्धा है, और एक सिद्ध की श्रद्धा है। सिद्ध की श्रद्धा बड़ी और है। सिद्ध की श्रद्धा का अर्थ है, संदेह जा चुका।

...मगन भया रसि लागा।

कहे कबीर जिय संसा नहीं, सबद अनाहद बागा।

बांग देने लगा परमात्मा भीतर। सुबह आ गई।

यह सुबह बहुत दूर नहीं है। रात तुम्हारी कितनी ही अंधेरी हो, सुबह दूर नहीं है। सच तो यह है, रात जितनी अंधेरी हो, सुबह उतनी ही करीब है। परदा बड़ा झीना। घूंघट उठाने भर की बात है। जाओगे भरोसे को। खड़े हो जाओ अपने पैरों पर। और समय मत गंवाओ। ऐसे भी बहुत समय गंवाया जा चुका है। और मंजिल बिलकुल करीब है। एक कदम—और मंजिल करीब है। और तुम अकारण ही दुख में परेशान हो।

तुम्हारी दशा ऐसी है, जैसे कोई आदमी दुख स्वप्न में दबा हो। खुद के ही हाथ छाती पर रखे हो और सपना लगता है कि पहाड़ के नीचे दबा है। खुद का ही तकिया

ऊपर रख लिया है लगता है कि कोई पहलवान छाती पर, कोई दारासिंह बैठा हुआ है। चिल्लाता है, चीखता है। जितना घबड़ाता है उतनी ही भीतर बेचैनी बढ़ती है। और बेचैनी में आंख नहीं खुलती, हाथ नहीं हिलते।

लगता है। मरे! मारे गए!

फिर दुखस्वप्न टूट जाता है। आदमी आंख खोलता है। फिर अपने पर ही हंसता है, ि क तकिया अपना ही रखे हैं, दारासिंह को नाहक दोष दे रहे हैं। हाथ अपने ही छात ी पर बंध हैं, सोचते हैं, पहाड़ के नीचे दबे हैं।

कोई डरा न रहा था। कोई था नहीं। अकेले ही थे। अपना सपना अपने को ही खाए जा रहा था। बस, तुम्हारा ही सपना तुम्हारी माया है। जागो! दृश्य से द्रष्टा में, सा क्षी में।

अवधू गगन मंडल घर कीजै।

आज इतना ही।

जोगी जग थैं न्यारा

16 मई, 1975, प्रापतः, ओशो आश्रम, पूना

अवधू जोगी जग थैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी नाद न षंडै धारा।।
बसै गगन में दुनि न देखे, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि आकाश आसण नहिं छाड़ै, पीवै महारस मीठा।।
परगट कथा माहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै।
सहंस इकीस छह सै धागा, निश्चला नाकै पोवै।।
ब्रह्म अगनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज सुंनि लौ लागै।।

जीवन मिट्टी का एक दीया है; लेकिन ज्योति उसमें मृण्मय की नहीं, चिन्मय की है। दीया पृथ्वी का, ज्योति आकाश की; दीया पदार्थ का, ज्योति परमात्मा की। दीया एक अपूर्व संगम है।

इसे ठीक से समझ लेना, क्योंकि तुम भी मिट्टी के एक दीए हो। लेकिन वही तुम्हारी परिसमाप्ति नहीं। और अगर तुमने जैसा जाना कि कि तुम बस मिट्टी के ही दीए हो, तो तुम जीवन की सार्थकता और सत्य से वंचित रह जाओगे।

दीया जरूरी है, लेकिन ज्योति के होने के लिए जरूरी है; ज्योति के बिना दीए का क या अर्थ? ज्योति खो जाए, दीए का क्या मूल्य? ज्योति न हो तो दीए का क्या करो गे?

ज्योति की स्मृति बनी रहे, ज्योति निरंतर आकाश की तरफ उठती रहे तो दीया सी. ढी है, और तब तुम दीये को धन्यवाद दे सकोगे। जिन्होंने भी आत्मा को जाना, वे शरीर को धन्यवाद देने में समर्थ हो सके। जिन्होंने आत्मा को नहीं जाना, वे या तो शरीर की मान कर चलते रहे, ज्योति दीए का अनुसरण करती रही और निरंतर ग

हन से गहन अचेतना और मूर्च्छा में गिरते गए। या, जिन्होंने आत्मा को नहीं जाना, उन्होंने व्यर्थ ही शरीर से, दीए से संघर्ष मोल ले लिया। जो साथी हो सकता था, उसे शत्रु बना लिया।

जिन्हें तुम संसारी कहते हो, वे पहले तरह के लोग हैं—जिनके भीतर का परमात्मा जिनके बाहर की खोल का अनुसरण कर रहा है; जिन्होंने गाड़ी के पीछे बैल जोत दिए हैं, और बैल, गाड़ी के साथ घिसट रहे हैं। जिन्होंने क्षुद्र को ओ कर लिया है और विराट को पीछे, उनके जीवन में अगर दुख ही दुख हो तो आश्चर्य नहीं।

ये संसारी लोग हैं जिन्हें तुम भोगी कहते हो। फिर इनके ठीक विपरीत खड़े तथाकथित योगी हैं, धार्मिक लोग हैं। स्मरण रखें, उन्हें मैं तथाकथित कहता हूं, क्योंकि वे नाममात्र के ही योगी हैं। उन्होंने गाड़ी और बैल के बीच संघर्ष कर रखा है, उन्होंने दीये और ज्योति के बीच शत्रुता बांध रखी है; उन्होंने आत्मा और शरीर के बीच एक कलह निर्मित कर रखी है, एक संघर्ष रच रचा है। भोगी तो भ्रांत है ही; तुम्हारा तथाकथित योगी भी भोगी से भिन्न नहीं है। वास्तविक योगी कौन है?

वास्तविक योगी वही है जिसने दिए के सहयोग का उपयोग कर लिया ज्योति को प्रज्वलित करने में; जिसने दिये से शत्रुता न बांधी और न ही दीये का अनुसरण किया; न ही बैल, गाड़ी के पीछे बांधे और न ही गाड़ी और बैल के बीच किसी तरह की कलह पैदा की; वरन सामजस्य साधा, एक सहयोग निर्मिक किया।

निश्चित ही सहयोग अति कठिन है क्योंकि ज्योति जाती है आकाश की तरफ। वह आकाश की है, आकाश की तरफ जाती है। दिया मिट्टी का है, मिट्टी में ही पड़ा रह जाता है। दोनों के आयाम बड़े भिन्न हैं, यात्रा बड़ी अलग है। फिर भी दीये और ज्योति में एक संगम है। वैसा ही संगम साध लेना योग है; शरीर और स्वयं में, मृण्मय और चिन्मय में।

कीचड़ से कमल पैदा होता है। तुम्हारे शरीर की कीचड़ से तुम्हारी आत्मा का कमल पैदा होगा। कीचड़ की दुश्मनी मत करना, अन्यथा कमल पैदा ही न होगा। कीचड और कमल में कितना ही विरोध दिखाई पड़े; भीतर गहरा सहयोग है। कीचड़ कितनी ही कीचड़ लगे; कहां, संबंध भी तो नहीं मालूम पड़ता! कमल—सुंदर, अपूर्व सुंदर, अद्वितीय रेशम सा कोमल! कहां कीचड़ गंदी दुर्गंध भरी! कहां कमल की सुवास! दोनों में कोई तो नाता दिखाई नहीं पड़ता।

और अगर तुम जानते न होओ और कोई कीचड़ का ढेर लगा दे और कमल के फूलों का ढेर, और तुमसे कहे कि इन दोनों में कोई संबंध दिखाई पड़ता है? तो तुम भी कहोगे कि इन दोनों में कैसा संबंध? कहां कीचड़, कहां कमल! लेकिन तुम जानते हो, कीचड़ से कमल पैदा होता है। मृण्मय में चिन्मय का जागरण होता है।

कीचड़ से कमल पैदा होता है, इसका अर्थ ही यह हुआ कि कीचड़ के गहरे में कमल छिपा है, अन्यथा पैदा कैसे होगा? इसका अर्थ यही हुआ कि कीचड़ ऊपर-ऊपर से गंदी दिखाई पड़ती है, भीतर तो कमल जैसी ही होगी। इसका अर्थ हुआ कि दुर्गंध ऊपर का परिचय है; सुगंध भीतर का परिचय है।

शरीर को ही तुमने अगर देखा तो तुम कीचड़ पर रुक गए और कमल से अपरिचित रह गए। अगर तुमने शरीर से शत्रुता की और शरीर को दबाने और गलाने में लग गए, तो भी तुम वंचित रह जाओगे, क्योंकि उस संघर्ष से कमल पैदा न होगा। कमल तो पैदा होता है कीचड़ के सहयोग से।

इस सहयोग का नाम ही योग की कला है। योग अस्तित्व की दुई के बीच एक को खोज लेने की कला है। जहां दो दिखाई पड़ें—अत्यंत, विपरीत, वहां भी एक के ही सेतु को देख लेना एक के ही जोड़ को देख लेना, वही योग की परम दृष्टि है।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, तुम्हारे भीतर छिपा हुआ काम ही तुम्हारे भीतर का राम बन जाएगा। तुम्हारे भीतर संभोग की वासना ही तुम्हारे आत्यंतिक खिलावट के क्षण में तुम्हारी समाधि बन जाएगी। तुम्हारी कीचड़ तुम्हारा कमल होने को है।

लड़ो मत; सम्हालो। अन्यथा तुम काटने पीटने में लग जाओगे। काटना-पीटना एक तरह की हिंसा है। और काटना-पीटना एक तरह का गहन अज्ञान है। क्योंकि अस्तित्व व्यर्थ पैदा ही नहीं करता। कितना ही तुम्हें व्यर्थ मालूम पड़ती हो कोई चीज; अस्तित्व ने व्यर्थ को पैदा करना जाना ही नहीं है। इसलिए तो हम अस्तित्व को परमात्मा कहते हैं। क्योंकि अस्तित्व कोई अंधा संयोग नहीं है; एक सुनियोति यात्रा है। अस्तत्व कोई अंधी दौड़ नहीं; एक नियति है। एक परम ऋतु, एक परम नियम काम कर रहा है। यहां कुछ भी व्यर्थ नहीं है।

तुम्हारा काम, तुम्हारी काम-वासना व्यर्थ नहीं है। जिन्होंने तुमसे कहा है, वे नासमझ हैं। तुम्हारी काम वासना ही तुम्हारा परम जीवन भी नहीं है; उस पर ही रुके तो भी मर जाओगे; उससे लड़े तो भी मिट जाओगे। उससे ऊपर जाना है; और उसको ही सीढ़ी बना कर जाना है। उससे ऊपर जाना है। उसका ही सहयोग लेना है। उसके ही कंधे पर रखना है! निश्चित ऊपर जाना है, पार जाना है, अतिक्रमण करना है; लेकिन संघर्ष से नहीं, अत्यंत प्रेमपूर्ण, अत्यंत कलात्मक विधियों से।

लेकिन तुम्हारी समझ में बहुत बार तुम्हें ऐसा लगेगा : क्रोध का क्या उपयोग है? काट डालो!

अगर तुम शरीरशास्त्रियों से पूछो तो वे भी कहते हैं, कि शरीर में बहुत सी चीजें हैं जिनका कोई उपयोग नहीं। उन्हें भी पता नहीं है। डाक्टर कितनी सरलता से अपेंडिक्स का आपरेशन करता है! टांसिल तो यूं निकला देता है जैसे कि उनकी कोई जरूरत ही नहीं और चिकित्साशास्त्र अभी तक भी खोज नहीं पाया कि इनकी जरूरत क्या है। लेकिन वे हैं तो उनकी जरूरत तो होनी ही चाहिए, अन्यथा अस्तित्व एक दुर्घटना मात्र हो जाएगा। और डाक्टर काटते रहते हैं टांसिल, जिसके टांसिल काट दिए, उसके बेटे को फिर टांसिल परमात्मा पैदा कर दो है। डाक्टर काटते हैं अपेंडिक्स, लेकिन फिर उसके बेटे में अपेंडिक्स आ जाती है।

इतनी व्यर्थ चीज पुनरुक्त हो नहीं सकती थी। जरूर कोई रहस्य होगा जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। जहां तक हमारी समझ है वहां तक व्यर्थ ही मालूम पड़ता है।

डाक्टर के पास जाओ, वह पहले ही देखता है कि अपेंडिक्स निकाल दें, कि टांसिल निकाल दें, कि दांत निकाल दें—कुछ न कुछ निकालने पर लगा है।

जो डाक्टर की मनोदशा है, वही तुम्हारे धर्मगुरु की मनोदशा है। तुम जाओ उसके प ास, वह फौरन बताने को तैयार है कि क्रोध अलग करो, कामवासना का त्याग करो , लोभ छोड़ो, हिंसा छोड़ो—वह भी काटने को लगा है। सर्जरी शरीर पर भी चल र ही है और आत्मा पर भी चल रही है। लेकिन गहरे जाना है, वे इसके विरोध में हैं । इस्लाम शरीर के किसी भी अंग को काटने के विरोध में है, क्योंकि इस्लाम में ए क बड़ी महत्वपूर्ण धारणा है—वह योग की भी धारणा है, शायद इस्लाम तक योग से ही पहुंची होंगी, क्योंकि इस्लाम तो नया है; योग अति प्राचीन है।

इस्लाम की धारणा है कि परमात्मा के पास जब तुम जाओगे तो वह तुमसे पूछेगा ि क तुम पूरे वापस लौटे हो? अगर तुम अधूरे वापस लौटे तो तुम दंडित किए जाओ गे। परमात्मा ने जितना तुम्हें दिया था, कम से कम उतने तो वापस लौटना; ज्यादा न कर सको तो क्षमा मांग सकते हो, लेकिन कम हो कर तो मत लौटना।

इसके अनेक आयाम हैं, इस बात के। निश्चित ही परमात्मा ने जितना तुम्हें दिया है , उतना तो कम से कम लौटा ले जाना। उसको काट मत लेना। उसे बढ़ा सको तो ठीक। बीज दिया था, अगर फूल हो सके तो ठीक; लेकिन कम से कम बीज तो ल ौटा देना।

जीसस की बड़ी प्राचीन कथा है। जीसस निरंतर उसे दोहराते थे कि एक बाप अपने तीन बेटों में संपत्ति बांटना चाहता था, लेकिन निश्चय न कर पाता था कि कौन यो ग्य और कौन सुपात्र है। तीनों ही जुड़वां पैदा हुए थे, इसलिए उम्र से तय न किया जा सकता था। तीनों एक से बुद्धिमान थे। तो उसने एक फकीर से सलाह ली। फकी र ने उसे एक गुर बताया।

उसने बेटो से कहा कि मैं तीर्थ यात्रा पर जा रहा हूं। और बेटों को उसने कुछ बीज दिए—फूलों के बीज—और कहा कि सम्हाल कर रखना; जब मैं लौट आऊं तब मैं तुमसे वापस मांगूंगा।

पहले बेटे ने सोचा कि इन बीजों को कोई बच्चे उठा लिए, कोई जानवर चर गया— तिजोड़ी में बंद कर दें। तिजोड़ी में बंद करके रख दिए। निश्चित हो गया। लोहे कि तिजोड़ी! चोरों का भी क्या डर! और कौन चोर लोक की तिजोड़ी तोड़ कर बीज चुराने आएगा! वह निश्चित रहा। बाप आएगा, लौटा देंगे।

दूसरे ने सोचा कि तिजोड़ी में रखूं, बीज सड़ सकते हैं; और बाप ने ताजा जीवित बीज दिए और मैं सड़े लौटाऊं—यह तो लौटना न हुआ। क्या करूं? बीज जीवित कै से रहें? उसने सोचा बाजार में बेच दूं, तिजोड़ी में रुपए रख दूं। बाप जब वापस आ एगा, बाजार से बीज खरीद कर लौटा देंगे।

तीसरे ने सोचा कि बीज का अर्थ ही होता है, होने की संभावना। बीज का अर्थ ही होता है जो होने को तत्पर है, जिसके भीतर कुछ होने को मचल रहा है। तो बाप ने बीज दिए हैं, मतलब साफ है कि इन्हें इतना ही जिसने रखा, वह नासमझ है। ये

तो बढ़ने को राजी थे, ये तो फूल बनने को राजी थे, और एक बीज से करोड़ बीज पैदा होने को राजी थे। पता नहीं, बाप कब लौटे, तीर्थ लंबा है, यात्रा वर्षों लेगी—उसने बीज बो दिए।

तीन बरस बाद वापस लौटा पिता। पहले बेटे को उसने कहा, उसने तिजोड़ी की चाबी दे दी खोली गई तिजोड़ी, करीब-करीब सी बीज सड़ चुके थे। न हवा लगी, न सूरज की रोशनी लगी और किसी ने उन पर ध्यान ही न दिया तीन वर्ष तक तिजोडी में लोहे की।

बीज कोई लोहे की तिजोड़ियों में बंद करने को थोड़ी ही हैं! उन्हें खुला आकाश चाहिए, हवा की पुलक चाहिए, रोशनी चाहिए, तो वे जिंदा रह सकते हैं। वे सब-सड़ गए थे। और जिन बीजों से फूलों की अपूर्व सुवास पैदा हो सकती थी, उनकी जगह उस तिजोड़ी से सिर्फ दुर्गंध निकली—सड़े हुए बीजों की दुर्गंध!

बाप ने कहा : तुमने सम्हाला तो, लेकिन सम्हाल न पाए। तुम मेरी संपत्ति के अधिकारी न हो सकोगे। तुम नासमझ हो। जितना मैं तुम्हें दे गया था, उतने भी तुम वापस न कर पाए। ये बीज तो समाप्त हो गए। इनमें अब एक भी जीवित नहीं है। अब इनको बोओगे तो कुछ भी पैदा न होगा। यह तो राख है और मैं तुम्हें बीज दे गया था। बीज थे जीवंत, उनमें संभावना थी बहुत होने की। इनकी सारी संभावना खो गई है, सिर्फ राख है, इनसे कुछ भी नहीं हो सकता। ये कब्रें हैं!

दूसरे बेटे से कहा। दूसरा बेटा भागा बाजार रुपए लेकर, बीज खरीद कर ले आया—ठीक उतने ही बीज जितने बाप दे गया था। बाप ने कहा कि तुम थोड़े कुशल हो, लेकिन तुम भी काफी नहीं; क्योंकि जितना दिया था उतना भी लौटाना भी कोई लौटाना है! यह तो जड़ बुद्धि भी कर लेता। इसमें तुमने कुछ बुद्धिमत्ता न दिखाई और बीज का तुम राज न समझे। बीज का मतलब ही यह है कि जो ज्यादा हो सकता था। उसे तुमने रोका और ज्यादा न होने दिया। तुम पहले से योग्य हो, लेकिन पयर्प्ति नहीं।

तीसरे बेटे से पूछा कि बीज कहां हैं? तीसरा बेटा बाप को भवन के पीछे ले आया जहां सारा बगीचा फूलों और बीजों से भरा था। उसके बेटे ने कहा; ये रहे बीज! आप दे गए थे; मैंने कहा इन्हें बच कर रखने में मौत हो सकती है। इन्हें बाजार में बेचना उचित न मालूम पड़ा, क्योंकि आप सुरक्षित रखने को कह गए थे। और फिर आपने चाहा था कि यही बीज वापस लौटाए जाएं। बाजार से तो दूसरे बीज वापस लौटेंगे, वे वही न होंगे। फिर वे उतने ही होंगे जितना आप दे गए थे। तो मैंने तो बीज बो दिए थे। अब ये वृक्ष हो गए हैं। इनमें बहुत बीज लग गए हैं, बहुत फूल लग गए हैं। हजार गुने करके आपको वापस लौटाता हूं।

स्वभावत: तीसरा बेटा बाप की संपत्ति का मालिक हो गया।

इस्लाम कहता है : परमात्मा ने तुम्हें जितना दिया है कम से कम उतना लौटाना। अगर बढ़ा न सको...बढ़ा सको तब तो बहुत..! और इस आधार पर इस्लाम सर्जरी पसंद नहीं करता।

एक बड़ी अनूठी कहानी है मैंने सुनी है; सच न भी हो, फिर भी बड़ी गहराई से स
चाई को छूती है। ब्रिटिश राज्य के जमाने में लाहौर में एक बहुत बड़ा सर्जन था—अं
ग्रेज। और पठान तो आपरेशन के बिलकुल खिलाफ है। अंगुली भी कट जाए तो वे
संभाल कर रखते हैं उसे। जब आदमी मर जाता है। उसकी अंगुली को उसकी अंगुल
ी में जोड़ कर लाश में रखते हैं, क्योंकि परमात्मा कहेगा : पूरा! अंगुली कटी है, अं
गुली कहां गई? जितना दिया था उतना वापस नहीं लाए। अपंग, अधूरे खंडित—तम
किस मुंह से आए हो? अखंड आओ तो ही परमात्मा के द्वार पर स्वीकृत होगी!
पठान तो सीधे-सादे गैर पढ़े लिखे लोग हैं। उन्होंने इसका बिलकुल स्थूल अर्थ अकड़ा
है। तो वे उंगली भी कट जाए, उसको भी सम्हाल कर रखते हैं।

एक पठान का पैर सड़ गया किसी भयंकर बीमारी में और अगर पैर न काटा जाए
तो वह पठान पूरा सड़ जाएगा। सर्जन ने बहुत समझाया लेकिन पठान ने कहा कि न
हीं; मैं मरूंगा फिर अधूरा जाऊंगा, लंगड़ा, तो परमात्मा क्या कहेगा? और बड़ी हंस
ी होगी। और भी पठान वहां मौजूद होंगे कयामत के दिन और वे सब कहेंगे, अरे!
पठान होकर और आधा पैर कहां।

सर्जन ने समझाने को क्योंकि यह पठान तो ना समझ है, इसकी कुछ अकल में नहीं
है; वह मरेगा पूरा—उसने कहा कि तुम ऐसा करो, घबड़ाओ मत, मैं तुम्हारे पैर को
सम्हाल कर रखूंगा। उसने जा कर अपनी प्रयोगशाला में बताया, कई अंग उसने सम
हाल कर रखे थे। पठान को भरोसा आ गया। और पठान ने कहा कि जब मैं मरूं त
ो कृपा करे यह पैर मेरा वापस लौटा दिया जाए। मेरे घर के लोग आएंगे, यह पैर
उन्हें दे दिया जाए, क्योंकि मैं अधूरा न जाना चाहूंगा।

सीधे-सादे पठान! बड़े महत्वपूर्ण विचार को भी उन्होंने अपनी सादगी के ढंग से पक.
डा है। खैर, आपरेशन हो गया। पठान हर वर्ष आता रहा देखने कि पैर सम्हाल कर
रखा गया है या नहीं। पैर सम्हाल कर रखा गया था। और धीरे-धीरे उसकी सरल
ता पर उस चिकित्सा को भी बड़ा प्रेम और करुणा आ गई थी। पहले तो उसने ऐसे
ही कहा था बात-बात में, लेकिन फिर उसने सम्हाल कर ही रखा था।

लेकिन संयोग की बात, उसकी प्रयोगशाला में आग लग गई और सब जल गया।
उसने बहुत कोशिश की कम से कम पठान का पैर बच जाए, क्योंकि वह नासमझ ि
कसी भी दिन खड़ा हो जाएगा। तो मुसीबत खड़ी होगी। लेकिन वह नहीं बच सका।
पैर भी नहीं बच सका, पूरी प्रयोगशाला जल गई।

उसकी रिटायरमेंट का वक्त आ गया, वह रिटायर भी हो गया और लंदन वापस
चला गया। पठान की बात आई गई हो गई, भूल गया। लेकिन, अगर कभी किसी
पठान को रास्ते पर देख लेता तो उसे याद आ जाती। न केवल याद आती, बल्कि
उसके मन में एक पीड़ा भी होती कि पता नहीं, पठान ही सही है और परमात्मा पू
रे आदमी को मांगता हो तो मैं कसूरवार हो गया।

वैज्ञानिक आदमी था; इस पर कुछ भरोसा नहीं था। लेकिन फिर भी अंतःकरण, कि
तने ही तुम वैज्ञानिक हो जाओ अंतःकरण तो मनुष्य का ही होता है। कितना ही त

र्क का जाल फैल जाए, भीतर हृदय तो वैसा ही अनुभव रहताहै जैसा छोटे बच्चों का। उसे चिंता पकड़ती थी। कभी-कभी किसी पठान को देख के, उसे लगता था कि मैंने एक अच्छा काम किया या बुरा काम किया, संदिग्ध है।

एक रात वह सोया था, कोई दो बजे रात अचानक किसी ने उसे हिला कर जगाया। उसने आंख खोली, वह पठान खड़ा है। घबड़ा गया। दरवाजा बंद है! ताले पड़े हैं! पठान कहां से अंदर घुस आया! और पठान बहुत नाराज है और उसने इशारा किया, मेरा पैर! और अपना कटा हुआ पैर बताया।

चिकित्सक को कुछ सूझा नहीं। तभी उसे याद आया कि एक पैर उसकी प्रयोगशाला में जो उसने अभी नई बनाई है, कुछ आठ-दस दिन पहले ही किसी का कटा है, वह वहां है, उससे काम चल जाएगा। उसने पठान का हाथ पकड़ा, वह अपनी प्रयोगशाला में ले गया। उसने जाकर उसको पैर के पास खड़ा कर दिया। पठान का चेहरा प्रसन्न हो गया, वह मुस्कुराया। पैर के पास गया। लेकिन भूल हो गई। उसका दाया पैर कटा था और यह बांया था। जिस कांच के बर्तन में उसने सम्हाल कर रखा था, उसने उठा कर कांच का बर्तन पटक दिया और नाराजगी से, वह घर के बाहर हो गया।

यह डाक्टर तो इतना घबड़ा गया। सुबह इसकी नींद खुली तो इसने सोचा सपना होगा। यह कहीं हो सकता है! लेकिन जब प्रयोगशाला में जा कर देखा और टूटा हुआ जार देखा और नीचे पड़ा हुआ पैर देखा, तब तो यह मुश्किल हो गया तय करना, कि यह सपना हो सकता है।

यह संभव है कि सपने में उसी ने जार पटका है। यह संभव है। इसलिए मैं कहता हूं कि पक्का नहीं, कहानी कहां तक सच होगी, कहां तक झूठ होगी। सपने में खुद ही ने जार पटका हो, यह भी हो सकता है।

और यह दुनिया बड़ी अनुभव है। यह भी को सकता है कि पठान आया हो।

फिर उसने खोजबीन करवाई तो पता चला कि जिस रात उसने पठान को देखा उसी रात पठान की मृत्यु हुई। तो इस बात की पूरी संभावना है कि पठान की चेतना इतना हिवल रही हो अपने पैर को पाने के लिए कि वह मौजूद हो गई हो, उसने जा कर जगा दिया हो चिकित्सक को।

एक बात साफ है कि परमात्मा ने तुम्हारे भीतर कुछ भी अकारण पैदा नहीं किया है। जैसे मेरे अनुभव में कुछ बातें हैं जो मैं तुम्हें कहूं। वे शायद कभी चिकित्सकों के काम पड़ जाएं। क्योंकि, कभी न कभी चिकित्साशास्त्र, सर्जरी, मनुष्य के अंतरतमों का भी स्पर्श करेगी।

जहां तक बोलने का और साधारण आदमी की चेतना का संबंध है, टांसिल्स का कोई उपयोग नहीं मालूम होता। लेकिन जहां तक मौन का संबंध है, टांसिल्स का उपयोग है। और जिस व्यक्ति के टांसिल्स निकल गए हैं, उसे मौन होना मुश्किल हो जाता है, यह मेरा अनुभव है। वह चुप नहीं हो सकता। शायद बोल ज्यादा अच्छी तरह से सकता है, क्योंकि टांसिल्स के अवरोध बोलने में बाधा बनते हैं। सर्दी-जुकाम प

कड़ता है, टांसिल करीब आ जाते हैं, एक-दूसरे से रगड़ खाते हैं, सूजन हो जाती है , बोलने में कष्ट होता है।

लेकिन ठीक इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति मौन में उतरता है तो जिसके टांसिल नहीं है उसको मैंने मौन में उतरते नहीं देखा। जरूर कहीं कुछ गहरे संबंध है कि टांसिल मौन में सहायता देते हैं। और जो व्यक्ति वर्षों तक मौन रहते हैं, उनके टांसिल बिलकुल करीब आ जाते हैं। इतने करीब आ जाते हैं कि अगर वे बोलते होते तो बोलना मुश्किल हो जाता—जैसे मेहरबाबा।

कोई व्यक्ति तीन वर्ष तक अगर मौन रह जाए, बिलकुल मौन, तो टांसिल्स बिलकुल करीब आ जाते हैं। और जो बोलने की ऊर्जा है, जो विचार का प्रवाह है, फिर ऊपर की तरफ नहीं जाता वही बोलने की ऊर्जा हृदय की तरफ गिरने लगती है और टांसिल उसके गिर में सहयोगी होते हैं। किसी दिन शायद सर्जरी जान सके।

जिन लोगों की अपेंडिक्स निकल गई है...और डाक्टर तो बड़े तत्पर रहते हैं निकालने में...।

मैंने सुना है कि एक सर्जन की, बड़े प्रख्यात सर्जन की पत्नी ने एक दिन सुबह उठकर देखा कि उसकी अंग्रेजी की किताब के पन्ने किसी ने फाड़ लिए हैं। तो उसने अपने पति को पूछा कि यहां कोई आया भी नहीं, किसने ये पन्ने फाड़े? उसने कहा : अरे, मुझे क्षमा करना! मैंने देखा, उन पर लिखा है अपेंडिक्स। मैंने जल्दी से बाहर निकाल लिये। खयाल ही न रहा।

डाक्टर तो एकदम तत्पर हैं!

जो लोग, जिनकी अपेंडिक्स निकाल ली गई है, कुछ बातों में उनको कठिनाई शुरू होती है। एक :उनकी आत्मा को शरीर के बाहर ले जाना बड़ा कठिन हो जाता है, जिसको आध्यात्मिक लोग एस्ट्रल—प्रोजेक्शन कहते हैं—शरीर के बाहर निकल कर यात्रा करना। वह अपेंडिक्स जिसकी निकल गई। उसको मुश्किल हो जाता है। वह शरीर के बाहर नहीं निकल पाता। जिसकी अपेंडिक्स स्वस्थ है, वह शरीर के बाहर सुविधा से निकल पाता है। जैसे अपेंडिक्स सूक्ष्म शरीर को बाहर भीतर ले जाने में सहयोगी होती है।

ये सिर्फ संकेत दे रहा हूं, क्योंकि इस संबंध में कुछ बहुत खोजबीन कभी की नहीं गई है। लेकिन मेरे अनुभव में जिनकी अपेंडिक्स निकल गई है, हजारों लोगों ने मेरे करीब ध्यान किया है, उनमें से अनेक लोगों को शरीर के बाहर जाने का अनुभव होता है। जब भी किसी को शरीर के बाहर जाने का अनुभव होता है तब मैं निश्चित पूछता हूं कि उसकी अपेंडिक्स की क्या हालत है? तो मैंने सदा पाया, जिनकी निकल गई, उनको बाहर जाने का अनुभव कभी नहीं होता; जिनकी नहीं निकली है और स्वस्थ है, उनको ही बाहर जाने का अनुभव होता है।

और यह एक बड़ा मूल्यवान अनुभव है। शरीर के बाहर जा कर जो अपने शरीर को पड़ा हुआ देख लेता है, उसकी शरीर-मूर्च्छा सदा के लिए टूट जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपेंडिक्स सेतु है, जोड़ है, और उस जोड़ के गिर जाने पर सूक्ष्म शरी

र का बाहर निकलना, भीतर आना कठिन हो जाता है। इसलिए योग भी शरीर के किसी अंग को काटने के पक्ष में नहीं है।

और जो बात सच है शरीर के संबंध में, उससे भी ज्यादा सच वही बात है मन के संबंध में।

तुमने कभी सुना है कि कोई नपुंसक आदमी ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हुआ हो? मनुष्य जाति का इतिहास लंबा है। कम से कम हजार साल का तो बिलकुल सुनिश्चित ज्ञा त है। इन पांच हजारों सालों में एक भी इंपोटेंट, नपुंसक आदमी परमात्मा को उपल ब्ध नहीं हुआ। इसका क्या अर्थ है, काम और वीर्य ऊर्जा परमात्मा की उपलब्धि में अनिवार्य है। उसके बिना नहीं हो सकेगा?

इसलिए नपुंसक से ज्यादा दीन कोई आदमी नहीं है। उसकी दीनता इतनी ही नहीं है कि वह संभोग न कर सकेगा, उसकी गहरी दीनता यह है कि समाधि को उपलब्ध न हो सकेगा। लेकिन सौभाग्य की बात है कि नपुंसक साधारणतया होते ही हनीं। अगर हजार आदमियों को खयाल हो कि वे नपुंसक हैं तो उनमें से सिर्फ एक नपुंस क होता है, बाकी को सिर्फ खयाल होता है, वहम होता है।

मगर फिर भी नपुंसक होते हैं और वे उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। ऊर्जा ही नहीं है ि जसके सहारे यात्रा हो सके। कीचड़ ही नहीं है, कमल कैसे पैदा हो? दीया ही नहीं है, ज्योति कहां टिके, कहां ठहरे, कहां आवास करे, कहां घर बनाएं?

और मैं तुमसे कहता हूं कि जिन लोगों ने ब्रह्मचर्य को एक तरह की नपुंसकता मान लिया है, वे भी परमात्मा को उपलब्ध नहीं होते। ऊर्जा का गहन प्रवाह चाहिए, उ द्दाम वेग चाहिए, नदी जैसे बाढ़ में हो ऐसे वीर्य की संपदा चाहिए—तभी तुम ऊपर उठ सकोगे। जो नीचे तक नहीं जा सकता, वह ऊपर तक कैसे जाएगा, थोड़ा सोचो ।

नीचे जाने में बहुत शक्ति की जरूरत नहीं है। जैसे पहाड़ से पत्थर को छोड़ दो वह अपने आप गिरता चला आता है जमीन की तरफ। कोई नीचे आने के लिए शक्ति लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। जो नीचे तक जाने में समर्थ नहीं है, नपुंसक है, वह ऊपर कैसे जा सकेगा? नीचे तक जाने में उसे कठिनाई मालूम पड़ती है, उतनी ऊ र्जा भी नहीं है तो प्रगाढ़ और उद्दाम वेग, उत्तुंग लहरें कामवासना की, जिन पर स वार होकर ऊपर जाना है, वह कैसे जा सकेगा?

इसलिए अगर तुम मेरी बात समझ सको तो ब्रह्मचर्य बड़ी विपरीत बात है नपुंसकत ा से। परम वीर्य की उपलब्धि से ब्रह्मचर्य फलित होती है। काटने-दबाने से शरीर को मिटाने से कोई कहीं नहीं पहुंचता। शरीर को जितना तुम स्वस्थ, सम्यक, संतुलित शांत, ओजपूर्ण, ऊर्जा से भरा हुआ, परिपूर्ण बना सको, उतनी ही सुगमता होगी। उ तने ही तुम ऊपर जा सकोगे।

जैसे मैंने कल तुमसे कहा कि जब भी कामवासना उठे, तब जोर से श्वास को बाह र फेंकना, पेट को भीतर जाने देना—मूलबंध लग जाएगा, मूलाधार सिकुड़ जाएगा। मूलाधार के ऊपर शून्य होने से ऊर्जा शून्य में उठ जाएगी। इसे अगर निरंतर करते

रहे, अगर इसे तुमने एक सतत साधना बना ली—और इसका कोई पता किसी को नहीं चलता; तुम इसे बाजार में खड़े हुए कर सकते हो, किसी को पता भी नहीं च लेगा; तुम दुकान पर बैठे हुए कर सकते हो, किसी को पता भी न चलेगा।
अगर एक व्यक्ति दिन में कम से कम तीन सौ बार, क्षण भर को भी मूलबंध लगा ले, कुछ ही महीनों के बाद पाएगा, कामवासना हो गई। कामऊर्जा रह गई, वासना तिरोहित हो गई। और तीन सौ बार करना बहुत कठिन नहीं है। यह मैं सुगमतम म ार्ग कह रहा हूं, ब्रह्मचर्य की उपलब्धि का हो सकता है।
फिर और कठिन मार्ग हैं जिनके लिए सारा जीवन छोड़ कर जाना पड़ेगा। पर कोई जरूरत नहीं है। यह किसी को पता भी नहीं चलेगा कि कब तुमने श्वास बाहर फेंक दी—बाजार में अपनी दुकान पर, कुर्सी पर दफ्तर में बैठे हुए, तब तुमने चुपचाप अपने पेट को भीतर खींच लिया। एक क्षण में ऊर्जा ऊपर की तरफ स्फुरण कर जा ती है। और तुम पाओगे कि उसके बाद घड़ी, आधा घड़ी के लिए तुम एकदम शांत हो गए, हलके हो गए, एक नहीं ताजगी आ गई।
योग कोई आत्महत्या नहीं है; योग एक बड़ी गहन प्रक्रिया है, कह कला है और कद म-कदम अगर तुम चलते रहो तो तुम्हारे भीतर सब छिपा है। तुम सब लेकर ही अ ाए हो; प्रकट करने की बात है। तुम अप्रकट परमात्मा हो; बस जरा प्रकट करने की बात है। सब साज मौजूद है; सिर्फ उंगलियां थोड़ी साधनी हैं और वीणा से स्वर उ ठने शुरू हो जाएंगे। जैसे-जैसे उंगलियां सधेंगी वैसे-वैसे गहनतम संगीत पैदा होगा।
और एक ऐसी घड़ी आती है कि वीणा की जरूरत भी नहीं रह जाती; उंगलियों की भी जरूरत नहीं रह जाती—तब परम संगीत सुनाई पड़ने लगता है जो चारों तरफ मौजूद है। सिर्फ तुम्हारे पास सुनने की क्षमता नहीं है। पुरा अस्तित्व उसकी गूंज से भरा है। उस गूंज को ही हमने ओंकार कहा है।
ओम अस्तित्व की गूंज है। वह कोई शब्द नहीं है, न कोई ध्वनि है; वह अनाहत ना द है। उसको कोई पैदा नहीं कर रहा है; वह अस्तित्व के होने का ढंग है। जैसे पहा ड से नदी बहती है तो कलकल का नाद होता है; जैसे पक्षी गीत गा रहे हैं; हवाएं निकलती हैं वृक्षों से, सराहट पैदा होती है—अस्तित्व के होने का ढंग ओंकार है। उस को कोई पैदा नहीं कर रहा है। उसके पैदा होने के लिए दो चीजों के आघात की ज रूरत नहीं है, इसलिए अनाहत! वह आहत नाद नहीं है। ताली बजाओ—आहत नाद है। दो चीजें टकराती हैं—ध्वनि पैदा हो जाती है। ओंकार कोई टकराहट से नहीं पैद ा हो रहा है। इसलिए ओंकार अद्वैत है। जो टकराहट से पैदा होगा उसमें तो दो की जरूरत है; एक हाथ से ताली नहीं बजती। ओंकार एक हाथ की ताली है।
झेन फकीर जापान में अपने शिष्यों को कहते हैं कि जाओ और खोजो कि एक हाथ की ताली कैसे बजती है? वे ओंकार की खोज के लिए कह रहे हैं। कि जाओ, ओं कार का नाद खोजो। उनके पहने का ढंग है, एक हाथ की ताली कैसे बजती है। ता ली तो सदा दो हाथ से बजती है।

बड़ा मीठी कथा है झेन में, एक छोटा बच्चा एक सदगुरु की सेवा में आया करता था। और भी बड़े साधक आते थे। वह बैठ कर चुपचाप सुनता था।
यहां भी तुमने देखा होगा, एक छोटा-सा सिद्धार्थ है, वह ऐसा ही साधक रहा होगा। वह भी छोटा सिद्धार्थ नियुक्तियां मांगता है।, आकर ठीक व्यवस्था से मुझे नमस्कार करता है, अपनी चटाई बिछाकर बैठ जाता है। जब तक उसका बल रहता है, जागा रहता है फिर सो जाता है; लेकिन आता है दर्शन करन।
छोटे बच्चों को पिछले कैंप में बाहर कर दिया गया था, तो उसने बड़ा विरोध किया। आखिर उसने विरोध मेरे पास भेजा कि यह हमारा घर है और यहां से हमें अलग कोई भी नहीं कर सकता। मजबूरी! उसको भीतर आने की आज्ञा देनी पड़ी। स्वभावतः उसके पीछे और बच्चे भी फिर प्रवेश किए।
वैसा, सिद्धार्थ जैसा वह साधक छोटा-सा बच्चा गुरु के पास आता था। वह बैठता था अपनी चटाई बिछा कर, सुनता था गुरु की बातें—दूसरों से जो गुरु कहता था।
एक दिन वह आया, उसने चटाई बिछाई, गुरु के चरणों से सिर झुका कर कहा कि मुझे भी ध्यान की विधि दें। गुरु थोड़ा हंसा होगा। उस जगत में बड़े-बड़े छोटे बच्चों जैसे हैं। छोटा बच्चा! लेकिन जब इतनी सरलता से पूछा गया है तो इनकार नहीं किया जा सकता। गुरु ने कहा कि तू ऐसा कर, एक हाथ की ताली को सुनने की कोशिश कर।
उसने झुक कर नमस्कार किया विधिवत। वह गया, बड़ी चिंता में पड़ गया। वह बैठा। उसने सब तरफ से सुनने की कोशिश की। सांझ का सन्नाटा था, कौए वापस लौटे थे दिन भर की यात्रा और थकान से और कांव-कांव कर रहे थे। उसने कहा कि हो न हो, यही एक हाथ ही आवाज है।
वह भागा, दूसरे दिन सुबह गुरु के पास आया। उसने कहा पा ली! कौओं की आवाज?
गुरु ने कहा कि नहीं, यह भी नहीं है। और खोजो।
वह गया रात के सन्नाटे में मौन बैठा रहा झींगुर बोलते थे, उसने कहा, हो न हो सन्नाटे की आवाज—यही वह आवाज। दूसरे दिन सुबह वह मौजूद हुआ। उसने कहा : झींगुर की आवाज? गुरु ने कहा कि नहीं, और खोजो। तुम करीब आ रहे हो। मगर थोड़ा और खोजा।
कुछ दिन तक वह नहीं लौटा। बड़ी खोज की, तब एक दिन उसे पता चला, प्राचीन आश्रम के वृक्षों के निकलती हुई हवा, एक जरा सी सरसराहट कि पकड़ में न आए, पहचान में न आए। उसने कहा, हो न हो यही है। वह आया। उसने कहा। वृक्षों से निकलती हुई हवा की आवाज, सरसराहट? गुरु ने कहा कि नहीं। करीब तुम आ रहे हो, लेकिन अभी भी बहुत दूर हो। खोजो।
फिर कुछ महीने तक बच्चा न आया। गुरु चिंतित हुआ, क्या हुआ? गुरु उसकी तलाश में गया। वह एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठा था। उसके चेहरे पर ही साफ

था कि उसने आवाज सुन ली है। सारा तनाव जा चुका था। वह बुद्धत्व था। जैसे हो ही न।

तो गुरु ने उसे उठाया और कहा: क्या हुआ? उस आवाज का?

उस छोटे से बच्चे ने कहा: जब सुन ही ली तो कहना मुश्किल हो गया, बताना मुश्किल। अब मैं यह सोच रहा हूं, बहुत दिन से कि कैसे बताऊं, कैसे कहूं!

गुरु ने कहा: अब कोई जरूरत नहीं!

वह छोटा बच्चा भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया।

ओंकार है वह आवाज। जब तुम बिलकुल शांत हो जाते हो, जब तुम होते ही नहीं, मिट जाते हो, जब तुम्हारा आवास शून्य गगन मंडल में हो जाता है, तब सुनाई प. डती है वह आवाज, तब ओंकार का नाद सब तरफ हो रहा है। वही मूल अस्तित्व है। सभी कुछ उसी मूल से निर्मित हुआ है।

ओंकार की ही पर्त-पर्त जम कर चट्टान बनती है। ओंकार की ही पर्त-पर्त जम कर वृक्ष बनते हैं। ओंकार की ही पर्त-पर्त पक्षियों के कंठ में गीत गाती है। ओंकार की ही पर्त-पर्त तुम हो, वह मूल है! वह मूल धातु है।

जैसे वैज्ञानिक हैं कि विद्युत ऊर्जा से सारा जगत बना, वैसा हम पूरब में कहते हैं कि विद्युत-ऊर्जा सिर्फ ओंकार की ही एक शैली है। वह भी ओंकार का ही एक आघात है।

अस्तित्व विद्युत से नहीं बना है, अनाहत नाद से बना है। विद्युत भी अनाहत नाद का एक ढंग, एक शैली है, एक रूप है। और इस बात की बहुत संभावना है कि वैज्ञानिक आज नहीं कल योगियों से राज हों। इन्हें होना पड़ेगा, क्योंकि उनकी खोज बाहर-बाहर है, योगी की खोज भीतर है। वे परिधि पर खोजते हैं, योगी केंद्र पर खोजता है। उन्हें राजी होना ही पड़ेगा। आज नहीं कल विज्ञान योग के सामने नतमस्तक होगा। कोई दूसरा उपाय नहीं है।

ये कबीर के वचन समझने की कोशिश करें।

अवधू जोगी जग थैं न्यारा।

योगी जरा से बड़ा न्यारा है।

जग में दो के लोग हैं—भोगी, त्यागी। जोगी जग थैं न्यारा—वह भोगी से अलग है, कयोंकि वह शरीर को सब कुछ नहीं मानता; वह त्यागी से अलग है, क्योंकि वह शरीर को इतना मूल्य का भी नहीं मानता कि उसका त्याग करना भी सार्थक हो सके। जिसका मूल्य ही नहीं, उसका तुम कभी त्याग करते हो? क्या तुम रोज कहते हो, घर बाहर जोर से चिल्लाकर कि आज फिर घर के कचरे का त्याग कर दिया। देखो, कैसा महादानी हूं! घर के कचरे का त्याग करते वक्त कोई भी तो घोषणा नहीं करता। तुम घोषणा करोगे तो लोग पागल समझेंगे।

लेकिन, जब कोई त्यागी घोषणा करता है कि मैंने लाखों पर लात मार दी तो वह भोगी ही है। अभी भी लाखों का मूल्य है। अभी भी समझता है इसका कुछ सार है। पहले भोग के लिए पकड़ा था, अब छोड़ा है; लेकिन मूल्य की पकड़ तो नहीं छूटी।

लाखों को लात मार दी जब कोई आदमी कहता है लाखों को लात मार दी तो स
मझ लेना कि लात ठीक से लग नहीं पाई, चूक गई। लग ही जाती तो लाखों का ि
हसाब रखता?
न तो योगी भोगी है और न त्यागी—जोगी अवधू जब थे न्यारा—वह इन दोनों से अ
लग है। वह एक अनूठा ही व्यक्तित्व है। वह कुछ-कुछ भोगी जैसा है, कुछ-कुछ त्या
गी जैसा है। उसने भोग और त्याग के बीच सामजस्य खोज लिया। उसने भोग और
त्याग के बीच संगीत खोज लिया। क्योंकि परमात्मा भोग में भी है और त्याग में भी
! परमात्मा भोग में भी छिपा है और त्याग में भी। उसने यह राज खोज लिया; उ
सने देख लिया कि भोग एक किनारा है और त्याग दूसरा किनारा है, और परमात्मा
तो बीच में बहती हुई नदी की धारा है।
अवधू जोगी जग थैं न्यारा—वह दोनों किनारों से अलग है; वह बीच की धारा है; व
ह मध्य में खड़ा है; उसने संतुलन पा लिया। संतुलन यानी संयम।
भोगी असंयमी है। और मैं तुमसे कहता हूं कि त्यागी भी असंयमी है। असंयम का म
तलब है जो अति पर चला गया; उसके जीवन का संतुलन खो जाता है। संयम का
अर्थ है जो मध्य में खड़ा है, जो बीच की धार है, जो दोनों तरफ देखता है; लेकिन
जिसने शुद्ध मध्य बिंदु खोज लिया। न यहां झुकता है, न वहां झुकता है; न तो श
रीर की मान कर चलता है और न शरीर की हत्या करने में लग जाता है : न तो
सवद के लिए जीता है और न शरीर के ऊपर अस्वाद को थोपता है; वरन स्वाद में
ब्रह्म को खोज लेता है और तब स्वाद और अस्वाद एक ही चीज के दो नाम हो ज
ाते हैं।
योगी जानता है किनारों का कैसे उपयोग करना है। भोगी एक किनारे को पकड़ता
है, त्यागी दूसरे किनारे को पकड़ता है। दोनों की नदी धार अवरुद्ध होती है। कहीं
एक किनारे से धारा चली है? परमात्मा भी एक के किनारे से नहीं चल सकता; उ
सको भी द्वैत की धारा के बीच चलना पड़ता है। तो तुम कैसे चल सकोगे? परमात
मा को भी द्वैत पैदा करना पड़ता है; उन्हीं के बीच अद्वैत की धारा बह रही है।
योगी भी गलती करता है, त्यागी भी गलती करता है। दोनों को चेष्टा यह है कि ह
म तक किनारे से जी लेंगे। यह अहंकार है।
अवधू जोगी जग थे न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति कर सींगी, नाद न पंडै धारा।
वह क्या करता है योगी? क्या है उसकी कला? कबीर यहां सार कह देते हैं; मुद्रा ि
नरति। निरति का अर्थ है जो अति पर नहीं जाता। मुद्रा निरति! निर अति—जो मध
य में खड़ा है, जिसको बुद्ध ने मज्झिम निकाय कहता है, जिसको कन्फ्यूनिशस ने दि
गोल्डन मीन—स्वर्ण मध्य कहा है, जो ठीक बीच में खड़ा है निरति।
मुद्रा निरति—मध्य में खड़ा होना ही उसकी मुद्रा है। और सब मुद्राएं तो बच्चों के खे
ल हैं। और किन्हीं मुद्राओं का बड़ा मूल्य नहीं है। निरति गहरी से गहरी मुद्रा है। व
ह चुनता नहीं, जिसको कृष्णमूर्ति च्वाइसलेसनेस कहते हैं—निरति! वह चुनाव नहीं

करता। वह न तो कहता है इस तरफ, न कहता है उस तरफ। वह कहता है मध्य में—नेति-नेति। वह कहता है, न यह, न वह। या तो दोनों, या दोनों नहीं, मैं मध्य में। यही उसका न्यारापन है।

मुद्रा निरति! वह कभी भी अति पर नहीं आता। न तो वह ज्यादा भोजन करता है और न कम भोजन; वह सम्यक भोजन करता है।

भोगी ज्यादा करता है। जितनी शरीर को जरूरत है उससे ज्यादा खा जाता है। फिर बीमारियां पैदा होती हैं, फिर बीमारियों का इलाज करवाता है। भोगी सम्यक आहा र हनीं करता। त्यागी भी सम्यक आहार नहीं करता। वह कम खाने के पीछे पड़ जा ता है। वह कहता है, एक ही बार भोजन करेंगे। अब एक ही बार भोजन शरीर की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। और अगर एक ही बार भोजन करना हो तो बड़ी जटि लताएं हैं, वे समझनी चाहिए।

एक ही बार भोजन करनेवाले पशु मांसाहारी हैं; जैसे शेर, सिंह, वे एक ही बार भो जन करते हैं चौबीस घंटे में—वे मांसाहारी हैं। अगर बंदर एक ही बार भोजन करे, मरे! बंदर शुद्ध शाकाहारी है!

शाकाहार का मतलब है कि तुम्हें थोड़े-से शाकाहार से काम न चलेगा, क्योंकि उस से उतनी ऊर्जा ही न मिलेगी शरीर को।

इसलिए बंदर दिन भर चबाता ही रहता है। तुम भी जब पान चबाते हो तो तुम डा र्विन के सिद्धांत को सिद्ध कर रहे हो कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। तंबाकू चबा रहे हो! कुछ न हो तो बातचीत ही कर रहे हो। वह भी बंदर की आदत है।

लेकिन आदमी शाकाहारी है; जैसा बंदर शाकाहारी है। और डार्विन की बात में सच चाई है। अब तो शरीरशास्त्री भी राजी होते हैं कि मनुष्य कभी भी मांसाहारी नहीं रहा, क्योंकि उसकी जो अंतड़ियां हैं, वे मांसाहारी पशुओं जैसी नहीं हैं। मांसाहारी प शु की बड़ी छोटी अंतड़ी होती हैं। इसलिए तो तुम सिंह का पेट देखे हो कितना छो टा-सा! मांसाहारी है, खाता डट कर है, लेकिन पेट छोटा-सा! उसकी अंतड़ियां बहुत छोटी है।

पहलवान कोशिश करते हैं सिंह जैसा पेट बनाने की। तो वे जबरदस्ती छाती को फु लाए जाते हैं और पेट को भीतर खींचे जाते हैं। वह एक तरह की हिंसा है, क्योंकि शाकाहारी उतने छोटे पेट का हो ही नहीं सकता। अंतड़ियां बहुत बड़ी हैं शाकाहार ी की। होनी चाहिए, क्योंकि उसे बहुत आहार करना पड़ेगा। उतना आहार संभाल सकें, इतनी लंबी अंतड़ियां चाहिए। कई फीट लंबी अंतड़ियां हैं भीतर गुत्थी हुई पड़ी हैं।

इसलिए बंद धीरे-धीरे खाता रहता है। गाय शाकाहारी है, चरती रहती है। भैंस पर म शाकाहारी है! वह जुगाली करती रहती है। जो चबा लिया उसको भी निकाल क र फिर चबाती रहती है!

अगर आदमी शाकाहारी है तो एक बार भोजन अति है। आदमी अगर शाकाहारी है तो उसे दो-तीन बार, थोड़ा-थोड़ा भोजन करना चाहिए, ज्यादा नहीं।

इसलिए तुम बड़ी हैरानी की बात देखोगे, जैन दिगंबर मुनि हैं, वे एक बार भोजन करते हैं। उनका पेट तुम हमेशा बड़ा देखोगे। अब यह बड़ी हैरानी की बात है, जब भी मैं उनकी तस्वीरें देखता हूं, मैं बहुत हैरान होता हूं कि एक बार भोजन करनेवाले आदमी का पेट इतना बड़ा क्यों? वह ज्यादा खा रहा है, जरूरत से ज्यादा खा रहा है। क्योंकि उसे चौबीस घंटे के भोजन की पूरी चेष्टा एक ही बार में कर लेनी है। तो वह गतिशय बोझ डाल रहा है अंतड़ियों पर। अंतड़ियां बाहर आ गई हैं।

जैन दिगंबर मुनि सुंदर नहीं मालूम पड़ते, बेहूदे मालूम पड़ते हैं; जैसे पेट के किसी रोग से ग्रसित हों, या गर्भवती स्त्रियां हों। शरीर में अनुपात नहीं मालूम पड़ता; एक अति कर रहे हैं।

नियम तो यह है शाकाहारी के लिए कि दो या तीन बार या अगर और थोड़ा-थोड़ा भोजन ले सके तो चार या पांच बार। थोड़ा-थोड़ा! जरा-सा ले लिया, एक फल खा लिया, बात खत्म! तब तब उतना पच जाए, फिर दो घंटे बाद एक फल ले लिया। पेट पर बोझ न पड़े और पेट पर अति न हो, तो सम्यक आहार होगा।

एक बार भोजन तो स्वभावतः तुम इतना खा लोगे जो चौबीस घंटे काम दे सके। मांसाहार तो ठीक है, क्योंकि थोड़े ही मांस से काम चल जाता है। मांस का मतलब है पका हुआ, तैयार भोजन पचा हुआ भोजन। दूसरे जानवर ने तुम्हारे लिए पचा कर तैयार कर दिया।

तुम फल खाओगे, फिर फल को पचाओगे, तब उसे पचे हुए फल में से मांस बनेगा। किसी जानवर ने फल खा कर पचा लिया, मांस तैयार किया, तुमने मांस खा लिया। मांस का मतलब है पचा हुआ भोजन। तुम्हें अब ज्यादा करने की जरूरत नहीं। इसलिए छोटी अंतड़ी काफी है। काम दूसरे कर चुके तुम्हारे लिए, इसलिए मांसाहार शोषण है। क्योंकि दूसरों से काम लेने का क्या हक? जहां तक बने अपना काम खुद कर लेना चाहिए। पचाने का काम भी दूसरे से लेना शोषण है! इसलिए मांसाहार उचित नहीं है। तुम खुद ही कर सकते हो।

मांसाहार भी अति है, क्योंकि तुम्हारी अंतड़ियां बनी नहीं हैं मांसाहार के लिए और तुम्हारा शरीर बना नहीं मांसाहार के लिए4 और अगर तुम मांसाहार करोगे तो तुम मिट्टी से बंध रह जाओगे, क्योंकि मांसाहार इतनी बोझिलता देगा कि तुम आकाश में उड़ने की क्षमता खो दोगे। इसलिए समस्त ज्ञानी मांसाहार के विपरीत हो गए, किसी और कारण से नहीं। कोई ऐसा नहीं है कि तुमने मांसाहार कर लिया तो कोई बहुत महापाप हो गया। आत्मा तो मरती नहीं; तुमने किसी का शरीर ही छीन लिया, जराजीर्ण अवस्था थे, इससे कोई बड़ा भारी महापातक नहीं हो गया। लेकिन विरोध का कारण दूसरा है।

कारण यह है कि तुम न उड़ पाओगे आकाश में; फिर तुम्हें अवधू गगन घर कीजै संभव न होगा, फिर अवधू चारों खाने चित्त जमीन पर पड़े रहेंगे। इतने वजनी हो जाएंगे अवधू कि जड़ न सकेंगे, पंख न लग सकेंगे। शाकाहार पंख देता है। वह किसी दूसरे पर कृपा नहीं है, अपने पर ही कृपा है।

मैं भी पक्ष में हूं कि तुम शाकाहारी होना, लेकिन तुम्हारे कारण! इसलिए नहीं कि पशुओं को बचाना है कि पक्षियों को बचाना है। तुम कौन हो बचाने वाले? जो बनाता है वह बचाएगा; जो बनाता है वह मिटाएगा। तुम कौन हो अकारण का अहंकार बीच में खड़ा करने वाले? नहीं, उस वजह से नहीं।

मैं भी शाकाहार के पक्ष में हूं, तुम्हारी वजह से! नहीं तो तुम कभी आकाश में न उड़ सकोगे। तुम्हारे उड़ने की क्षमता टूट जाएगी। शाकाहार तुम्हें हलका करेगा। सम्यक आहार तुम्हें बिलकुल हलका कर देगा, शरीर का बोझ ही न लगेगा। जैसे अभी पंख मिल जाएं तो तुम अभी उड़ जाओ। जमीन तुम्हें खींचेंगी नहीं, आकाश तुम्हें उठाएगा।

मुद्रा निरति! इसलिए कबीर कहते हैं, मुद्रा तो एक है और वह है निरति। अन-अतिशय, अन-अति, निरति, मध्य में खड़े हो जाना।

न तो ज्यादा भोजन करना, क्योंकि वह भी झुकायेगा एक तरफ; न कम भोजन करना, क्योंकि भूख सताएगी दूसरी तरफ। भोजन भी करता है। भूख मारती है; ठीक मध्य में तृप्ति है। उस तृप्ति पर तुम रुक जाना।

और अपनी तृप्तियों को जो पहचानने लगता है, वही आदमी होश में है; नहीं तो तुम भोजन कर रहे हो, तुम्हें समझ में भी नहीं आता कि कहां रुकें। तुमने होश ही खो दिया; यही पता नहीं चलता, कहां रुकें। जानवर रुक जाते हैं; तुम नहीं रुक पाते। जानवर का पेट भर गया, फिर तुम कितना ही भोजन रख दो, तुम लाख बैंड-बाजे बजाओ, इश्तहार चिपकाओ, कितना ही प्रलोभित करो कि वह भोजन बड़ा पुष्टिदायी है, फिल्म अभिनेत्रियों को लिवा लाओ और उनसे प्रचार करवाओ भैंस न सुनेंगी। बात खतम हो गई। भैंस भी ज्यादा तुमसे होशपूर्ण मालूम पड़ती है।

तुमने देखा, भैंस को अगर छोड़ दो तो वह सभी घास न खाएगी। उसका अपना घास है, वही खाएगी, बाकी घास छोड़ती जाएगी। जो उसका भोजन नहीं है, वह नहीं करेगी। सिर्फ मनुष्य ऐसा है जो सभी चीजें खाता है। कोई पशु सभी चीजें नहीं खाता, क्योंकि पशुओं के सब शरीरों के अपने आयोजन है, कि कौन सी चीज ठीक बैठती है। सिर्फ आदमी सब खाता है, सब।

ऐसी कोई चीज मैंने नहीं देखी, मैं इसकी खोजबीन करता हूं कि क्या कोई ऐसी चीज है दुनिया में जिसको आदमी नहीं खाता? नहीं; सब चीजें चींटी खाने वाले लोग हैं, चींटा खानेवाले लोग हैं, सांप-बिच्छू खानेवाले लोग हैं, कुत्ता खानेवाले लोग हैं। मैं अभी तक पा ही नहीं सका ऐसी कोई चीज, जिसको कही न कही कोई न कोई मनुष्य जाति का अंग न खाता हो; हालांकि दूसरे उस पर हंसते हैं।

चीनी सांप खाते हैं। और चीन में स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजनों में सांप एक है। अफ्रीका में दीमक, चींटी, चींटे लोग इकट्ठे करके रखते हैं बोर भर-भर कर फिर उसको तलते हैं और खाते हैं। बिच्छू खानेवाले लोग हैं; छछूंदर को भी नहीं छोड़ते। कोई ऐसा प्राणी नहीं है जिसको आदमी न खाता हो। कोई ऐसा कल नहीं है जिसको आदमी न खाता हो। कोई ऐसा जहर नहीं है जिसका सेवन आदमी न करता हो। सांपों

को पाल कर रखते रहे हैं लोग। उसको जीभ कटाते हैं, घड़ी दो घड़ी को मस्ती आ जाती है।

आदमी खतरनाक जानवर है। उससे ज्यादा खतरनाक कोई भी नहीं है। और संयमी है; उसने सारा संतुलन खो दिया है। उसे कुछ पता ही नहीं कि क्या भोजन है, क्या खाद्य है, क्या अखाद्य है। छोटे-छोटे जानवर भी अपनी चीज खाते है; आदमी सब खाता है। ऐसा लगता है कि हमें कुछ प्राकृतिक जांच-परख नहीं है लेकिन वैज्ञानिक इसकी खोज करते रहे हैं कि ऐसा क्यों हुआ; क्योंकि किसी जानवर में ऐसा नहीं हुआ, आदमी में क्यों हुआ? और उन्होंने बड़ी गहरी बात खोजी है, और वह यह है कि हम छोटे बच्चों के साथ जबरदस्ती करते हैं। उनको कुछ भी खाने के लिए मजबूर करते हैं, इसलिए यह उपद्रव पैदा हुआ है।

अमरीका में एक युनिवर्सिटी में—हार्वर्ड में, उन्होंने प्रयोग किया छोटे बच्चों पर कि सब भोजन रख दिया और छोटे बच्चों को छोड़ दिया—बिलकुल छोटे बच्चे! कि वे खाएं जो उनको खाना है। यह प्रयोग कोई छह महीने तक चलता था। वे बड़े चकित हुए। बच्चे वही खाते हैं जो खाने योग्य है। तुम हैरान होओगे, क्योंकि कोई स्त्री राजी न होगी कि यह बात सच है, क्योंकि बच्चे आइस्क्रीम मांगते हैं जो खाने-योग्य नहीं है; मिठाई मांगते हैं जो खाने योग्य नहीं है। लेकिन यह बच्चे तुम्हारे इनकार करने की वजह से मांगते हैं। यह बच्चे नहीं मांगते।

हार्वर्ड में जो प्रयोग हुआ वह बड़ा क्रांतिकारी है। छह महीने का अनुभव यह हुआ कि बच्चे वही खाते हैं जो जरूरी है, जो शरीर के लिए उपयोगी है। और यह भी बड़ी अनूठी बात पता चली है कि अगर बच्चा बीमार है तो वह खाता है। मां-बाप जबरदस्ती करते हैं कि खाओ।

कोई जानवर बीमारी में नहीं खाता, क्योंकि बीमारी में उपवास उपयोगी है। शरीर वैसा ही रुग्ण है, उस पर और भोजन का बोझ डालना और पाचन प्रक्रिया पर थोपना अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। वह बीमार आदमी के सिर पर और पत्थर रख कर, उसको ढोने के लिए कहना है।

बीमार आदमी स्वभावतः भोजन लेगा। अगर बच्चों की सुनी जाए तो बच्चे भोजन न करेंगे। बच्चे को सर्दी जुकाम है, वह खाना नहीं चाहता; मां बाप कहते हैं कि खाना पड़ेगा नहीं तो कमजोर हो जाओगे। एक दो दिन नहीं खाने से कोई दुनिया में कमजोर नहीं हुआ। आदमी तीन महीने बिना खाये जी सकता है, मरता नहीं। तीन महीने बाद मौत की संभावना है। तीन महीने लायक सुरक्षित भोजन शरीर में रहता है। कोई जल्दी नहीं है। दो-चार दिन बच्चा भोजन न करे, कोई हर्जा नहीं है। उसको स्वभाव से चलने दो।

तो एक तो उन्होंने यह अनुभव किया कि बच्चे बीमारी में भोजन नहीं करेंगे। दूसरी और भी गहरी बात उन्होंने खोजी, जिसका किसी को कभी सपने में भी अनुमान न था, और वह यह थी कि बच्चे का अगर सर्दी-जुकाम है तो वह वही भोजन करेगा

जिससे सर्दी-जुकाम मिटता है। या बच्चे को अगर मलेरिया है तो मलेरिया में वही भोजन करेगा जिससे मलेरिया का विरोध है।

अब यह बच्चा कैसे जानता है? क्योंकि न तो बच्चे को पता है मलेरिया का, न पत ा है उसे भोजन-शास्त्र का; सिर्फ उसकी शुद्ध प्रकृति, जो ठीक है, सम्यक है, उसकी तरफ ले जाती है।

बच्चे शक्कर की तरफ उत्सुक होते हैं, क्योंकि उनके शरीर को शक्कर की जरूरत है, बहुत जरूरत है। उनकी हड्डियां अभी बन रही हैं। और बच्चे दिन में इतनी दौड़-धूप करते हैं, इतना श्रम उठाते हैं कि कोई आदमी कभी नहीं उठाएगा जिंदगी में। ि फर उतनी शक्कर वे पचा डालते हैं। इसलिए तुम्हें समझ में नहीं आता कि इतनी शक्कर बच्चे क्यों मांग रहे हैं। तुमने कभी खयाल किया, जैसे तुम हिंदुस्तान के एक छोटे गांव में जाओगे उतनी मीठी मिठाई मिलेगी। बंबई की मिठाई में कम से कम शक्कर होगी, कलकत्ते में कम से कम होगी; फिर छोटे गांव की तरफ बढ़ो, मिठाई में शक्कर की मात्रा बढ़ने लगेगी। ठेठ देहात में शक्कर ही रह जाती है, बाकी तो दूसरी चीज बहाना है। यह क्यों होता है? ग्रामीण के लिए ज्यादा शक्कर की जरूरत है। उतना श्रम कर रहा है, उतनी शक्कर पचा लेता है। तुम उतनी शक्कर खाओ गे तो डायबीटीज होगी। ग्रामीण उतनी खाता है तो सिर्फ स्वस्थ रहता है, कोई डाय बीटीज नहीं होती। किसी जानवर को डायबीटीज नहीं होती; हो नहीं सकती क्योंकि वह जितना खाता है उतनी पचा डालता है।

छोटे बच्चे शक्कर खाएंगे; उनको जरूरत है। तुम उनको रोकोगे; तुम रोकोगे, उससे उनका आकर्षण बढ़ेगा। बच्चों को बड़ा क्रोध आता है कि भगवान कुछ उलटी खोप. डी का मालूम पड़ता है; सब अच्छी चीजें खतरनाक हैं—आइसक्रीम, रसगुल्ला—सब अच्छी चीजें जो बच्चे को जंचती हैं; डाक्टर को नहीं जंचती, मां को नहीं जंचती, ब ाप को नहीं जंचती उनमें कुछ खराबी है। और सब बुरी चीजें—साग भाजी—अच्छी हैं , उनमें विटामिन हैं। भगवान रसगुल्ले में भी विटामिन रख सकता था, मगर उलटी खोपड़ी! आइस्क्रीम में विटामिन रखने में क्या हर्जा था?

बच्चों की समझ में नहीं आता; लेकिन बूढ़े जब बच्चों को नियोजित करते हैं, तो बू. ढे अपने ढंग से नियोजित करते हैं। जिससे उनको खतरा है, वे समझते हैं, उससे ब च्चे को खतरा है। यह बात गलत है।

हार्वर्ड के प्रयोग ने एक बात सिद्ध कर दी अगर बच्चों को उनकी नियति, प्रकृति प र छोड़ दिया जाए तो मनुष्य-जाति पुनः स्वस्थ आहार करने लगेगी। हम उनको डग मगा देते हैं। जो वे खाना खाते हैं, खाने नहीं देते। जो वे नहीं खाना चाहते, जबरदस् ती मां डंडा लिए बैठी है कि खाओ। क्योंकि मां ने किताब पढ़ी है पाकशास्त्र, जिसमें लिखा है कि किस सब्जी में कितने विटामिन हैं; वह उस हिसाब से चल रही है!

आदमी भोजन भी पाकशास्त्र के हिसाब से कर रहा है। आदमी प्रेम भी कामशास्त्र के हिसाब से कर रहा है। आदमी की अपनी बुद्धि खो गई है। किताब ही उसकी जै

से बुद्धि है। उसके भीतर की क्षमता देखने की समझने की सब मंदी और धुंधली हो गई है।

मुद्रा निरति! इसलिए योगी की मुद्रा, कबीर कहते हैं, अति से मुक्त हो जाना है। वह न कम भोजन करता, न ज्यादा। वह सम्यक आहार करता है। वह न तो कम सोता, न ज्यादा; वह सम्यक निद्रा लेता है। वह न तो कम बोलता है न ज्यादा; वह सम्यक बोलता है। वह न तो कम श्रम करता है, न ज्यादा, वह सम्यक श्रम करता है।

बुद्ध ने आठ नियम कहे हैं, जिनसे सम्यक जीवन पैदा होता है। वे सारे आठ नियम सम्यक शब्द से शुरू होते हैं। सम्यक का अर्थ है निरति। बुद्ध कहते हैं, व्यायाम, सम्यक आहार, सम्यक ध्यान; ध्यान पर भी सम्यक लगाते हैं। क्योंकि कुछ पगले ऐसे हैं कि वे ध्यान ही ध्यान करने लगे हैं, तो पागल हो जाएंगे। तुम कितना सह सकते हो?

अभी चार-छह दिन पहले ही एक सज्जन आए कि ध्यान करते हैं, तो पैर सुन्न हो जाते हैं।

कितनी देर ध्यान करते हो?

सात आठ घंटे।

पैर सुन्न नहीं होंगे तो क्या होगा? सात-आठ घंटे तुम एक ही मुद्रा में बैठोगे तो पैरों का कसूर है? पैर सात-आठ घंटे एक ही मुद्रा में बैठने को बने नहीं। तो अवधू तो नहीं पहुंच पाते सुन्न गगन में, पैर पहुंच जाते हैं।

सम्यक शक को मंत्र बना लो। तो भी करो, हमेशा ध्यान रखो कि वह अति पर न चला जाए। मन कहेगा, अति पर ले जाओ, क्योंकि मन अति में जीता है। मन अति है। इसलिए मन तुम्हें हमेशा धकायेगा कि अब क्या बैठे हो घंटे भर, अब दो घंटे बैठो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने एक गधा खरीदा। जिससे खरीदा, उससे पूछा कि भाई इसको कितना खाना-पीना देना है? उसने बताया; लेकिन मुल्ला को जरा ज्यादा लगा। उसने कहा कि इतना खाना-पीना गधे के लिए? इतना हम अपने लिए भी नहीं...। यह तो बहुत महंगा है। यह आदमी थोड़ा ज्यादा बता रहा है, बढ़-चढ़ कर बता रहा है, गप्प हांक रहा है। गधे को और इतना खाना-पीना? इतना मैं अपनी पत्नी को भी नहीं देता।

तो उसने कहा कि पहले इसे अपन प्रयोग कर के जांच कर लें, गधा कितने में जी सकता है। तो उसने आधा, जितना बताया था, आधा दिया गया जी गया। उसने कहा कि यह आदमी धोखा दे रहा था। और आधा कर दिया, आधे में से आधा कर दिया। गधा फिर भी जी गया। उसने कहा कि हद हो गई! वह आदमी बिलकुल बेईमान था! अब उसने आधे में से आधे में से आधा कर दिया, यानी अब दो ही आने बचा। उसमें भी गधा जी गया। उसने कहा, हद हो गयी। यह तो आदमी मेरा दिवाला निकलवा देता। उसने और आधा कर दिया—एक ही आना! गधा फिर भी जी ग

या। उसने दूसरे दिन दो पैसा कर दिया। और एक पैसा कर दिया। जिस दिन उसने एक पैसा किया, गधा अचानक मर गया। नसरुद्दीन ने कहा : हद हो गई। इतनी जल दी भी क्या थी? अगर एक दिन और जी जाता तो बिना भोजन के रहने की कला सीख जाता!

बस एक दिन की कमी रह गई थी कि एक महान घटना घट जाती नसरुद्दीन ने कह ा, कि गधा बिना भोजन के जी जाता। वह पहले ही मर गया, प्रयोग पूरा न हो पा या।

नसरुद्दीन जो गधे के साथ कर रहा है, बहुत से लोग अपने साथ कर रहे हैं। लोग न मालूम क्या-क्या उलटा-सीधा करते रहते हैं।

प्रकृति की सुनो, शरीर की सुनो; शरीर फौरन खबर देता है। शरीर बहुत बुद्धिमान है, तुम्हारे मन से ज्यादा। क्योंकि तुम्हारा मन क्या जानता है? शरीर न मालूम कि तने-कितने रूपों में रहा है; उसने बड़ी प्रज्ञा इकट्ठी कर ली है, उसके रोएं-रोएं में प्र ज्ञा छिपी है। तुम शरीर की सुनो।

जब भी शरीर और मन में द्वंद्व हो, तुम शरीर की सुनना। क्योंकि मन तो समाज के द्वारा आरोपित है; शरीर प्रकृति से आया है। तुमने मन की सुनी, तुम अति पर च ले जाओगे। तुमने शरीर की सुनी...शरीर फौरन कहता है। भोजन तुम कर रहे हो, शरीर फौरन कहता है कि बस, रुको। आवाज ही धीमी हो, पर बराबर होती है कि बस रुको। लेकिन जीभ कहती है, मन कहता है, थोड़ा स्वादपूर्ण है भोजन, आज थ ोड़ा ज्यादा कर लिया, क्या हर्ज है?

तुम मन की सुनते हो। मन की सुनोगे, गड्ढे में पड़ोगे। और जब मन तुम्हें ज्यादा खि ला-खिला कर ज्यादा भर देगा, स्थूल कर देगा, चर्बी बढ़ जाएगी, चल न सकोगे, उ ठ न सकोगे तब मन कहेगा, अब उपवास कर लो, उरलीकांचन चले जाओ; प्राकृति क चिकित्सा की जरूरत है। प्राकृतिक बुद्धि की जरूरत है, प्राकृतिक चिकित्सा की नहीं। जिन के पास बुद्धि नहीं उनको फिर प्राकृतिक चिकित्सा की जरूरत पड़ती है। लेकिन कोई चिकित्सक तुम्हें बुद्धि नहीं दे सकता। तुम्हें वापस ला सकता है—उपवास करवा देगा, वाष्प-स्नान करवा देगा, शरीर से पसीना बहा देगा, भूखा मारेगा, कुछ दिन सताएगा, थोड़ा-बहुत रास्ते पर ला देगा। घर पहुंचोगे, चार छह दिन में फिर वापस! क्योंकि बुद्धि कोई प्राकृतिक चिकित्सा तुम्हें नहीं दे सकती। फिर तुम वही ह ो जाओगे।

प्राकृतिक बुद्धि चाहिए! प्राकृतिक बुद्धि का अर्थ है शरीर की सुनने की क्षमता चाहि ए। जब शरीर कहे, जाओ, तब लाख मन कहे कि स्वादिष्ट भोजन है, थोड़ा और क र लो, मत सुनना। अन्यथा यही मन किसी दिन तुम्हें जैन-मुनि बनवा कर रहेगा। ि फर कहेगा, अब उपवास करो। पहले भी तुमने इसकी मान कर भूल की, तब तुम भोगी बन गए, अब तुम फिर इसकी मान कर भूल करोगे, त्यागी बन जाओगे।

अवधू जोगी जग थैं न्यारा!

मुद्रा निरति सुरति करि सींगी

—दो सूत्र कबीर कह रहे हैं: मध्य में ठहर जाना तुम्हारी मुद्रा हो और सुरति तुम्हा रा वाद्य।
सुरति यानी स्मृति। सुरति यानी होश, जागरण, अमूर्च्छा, अवेयरनस। मध्य में ठहर जाना तुम्हारी मुद्रा और होश सम्हाले रखना तुम्हारा वाद्य। फिर जो नाद पैदा होता है, वह जो एक हाथ की ताली बजती है—नाद न षंडै धारा—फिर उसमें खंड नहीं प. डते; फिर नाद अखंड बहता है! फिर वह धारा अजस्त्र बहती है। फिर उसमें खाली जगह नहीं आती! फिर संगीत टूटता नहीं! फिर लय बिखरती नहीं! फिर छंद बंधा ही रहता है! फिर तारी लग जाती है! फिर तुम परम आनंद में सदा-सदा को प्रविष ट हो जाते हो—जहां से कोई लौटना नहीं है।
मुद्रा निरति सुरति करी सींगी, नाद न षंडै धारा
बसै गगन मैं दुनि न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
—और तब तुम चैतन्य में विराज मान हो जाते हो। चेतनि चौकी बैठा, बसै गगन मैं और तब तुम शून्य में प्रविष्ट हो जाते हो,आकाश में! दुनि न देखै—फिर कोई दुई नहीं दिखाई पड़ती। फिर तो दोनों किनारे भी नदी के ही अंग हो जाते हैं। फिर तो अतियां भी मध्य में ही समा जाती हैं। फिर तो विपरीत भी एक के ही दो रूप हो जाते हैं।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा
बसै गगन मैं दुनि न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि आकास आसण नहिं छाड़ै, पीवै महारस मीठा।
और भीतर चेतना आकाश में चढ़ती जाती है और शरीर आसन में जमा रहता। दी या पृथ्वी पर और चेतना आकाश में। दीया जैसे जमा रहता है पृथ्वी पर ऐसा ही श रीर का आसन पृथ्वी पर—सब अर्थों में। शरीर जमा रहता है पृथ्वी पर—सम्यक भोज न करता है, सम्यक निद्रा लेता है सम्यक श्रम करता है, जम जाता है पृथ्वी पर आ सन। चेतना होश से भरती है, और चैतन्य होती जाती है, ज्योति ऊपर उठने लगती है। तुम एक दीया बन जाते हो। पृथ्वी तुम्हारा आधार, आकाश तुम्हारी आत्मा हो जाती।
चढ़ि आकास आसण नहिं छाड़ै, पीवै महारस मीठा
परगट कंथा माहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै।
सहंस इकीस छह सै धागा, निहचल नाकै पोवै।
और फिर ऊपर से चाहे गुदड़ी हो, भीतर हीरा होता है; ऊपर से चाहे फिर कुछ भ ी न हो—परगट कथा माहै जोगी फिर चाहे योगी बाहर से गुदड़ी में लिपटा हुआ जी ए; दिल मैं दरपन जोवै—लेकिन भीतर हृदय का दर्पण स्वच्छ हो जाता है; उसमें पर मात्मा की छांई पड़ने लगती है।
सहंस इसकी छह सै धागा, निहचल नाकै पावै।
इक्कीस हजार छह सौ नाड़ियां है शरीर में। कैसे योगियों ने जाना, यह एक अनूठा रहस्य है। क्योंकि अब विज्ञान है, हां इतनी ही नाड़ियां हैं। और योगियों के पास वि

ज्ञान की कोई भी सुविधा न थी, कोई प्रयोगशाला न थी, जांचने के लिए कोई एक्स-रे की मशीन न थी। सिर्फ भीतर की दृष्टि थी, पर वह एक्स-रे से गहरी जाती मालूम पड़ती है। उन्होंने बाहर से किसी की लाश को रख कर नहीं काटा था, कोई डिस्सेक्शन, कोई विच्छेद करके नहीं पहचाना था कि इतनी नाड़ियां है। उन्होंने भीतर अपनी ही आंख बंद करके, ऊर्जा जब उनके तृतीय नेत्र में पहुंच गई थी और जब भीतर परम प्रकाश प्रकट हुआ था, उस प्रकाश में ही उन्होंने गिनती की थी। उस प्रकाश में ही उन्होंने भीतर से देखा था।

वैज्ञानिक घर के बाहर से झांक रहा है। उसकी पहचान अजनबी की है, बहुत गहरी नहीं योगी ने घर के मालिक की तरह देखा था, भीतर से देखा था। फर्क है। तुम कमरे के बाहर घूम सकते हो, दीवाल की जांच कर सकते हो; लेकिन जो कमरे के भीतर रहता है, वह भीतर की दीवालों को देखता है। योगी ने भीतर के प्रकाश में भीतर जब ज्योति जली, तो भीतर की नाड़ी-नाड़ी को गिन लिया था।

इक्कीस हजार छह सौ नाड़ियां हैं। अभी सब अलग-अलग हैं। अभी तुम ऐसे हो जैसे मनकों का ढेर। अभी तुम्हारे मनके माला नहीं बने, किसी ने धागा नहीं पिरोया; अभी तुम मनकों का ढेर हो। धागा भी रखा है, मनके भी रखे हैं; माला नहीं हैं। इसलिए तो तुम भीड़ हो! तुम एक नहीं हो, अनेक हो। तुम्हारे भीतर पूरा बाजार है; हजारों तरह के लोग तुम्हारे भीतर बैठे हैं। कोई कुछ कहता, कोई कुछ कहता।

एक कहता है चलो मंदिर की तरफ, दूसरा वेश्यालय ले जाता है। जब तुम वेश्या के घर बैठे हो तब भी मन के भीतर कोई राम-राम जपता है। मंदिर के भीतर बैठे हो, राम-राम जप रहे हो; भीतर वेश्या की मूर्ति बनती रहती है। ऐसा तुम खंड-खंड हो, टुकड़े-टुकड़े हो। हजार तरफ तुम बह रहे हो। तुम एक धारा नहीं हो जो सीधी सागर की तरफ जा रही है। तुम मरुस्थल में बिखरे हुए, छितरे हुए हो।

तुम्हारी इक्कीस हजार छह सौ नाड़ियां अभी माला के धागे नहीं बनी, माला नहीं बनी, क्योंकि किसी ने धागा नहीं पिरोया है। वह धागा क्या है? उस धागे का नाम ही सुरति है। जिस दिन तुम सारी नाड़ियों को बोधपूर्वक देख लोगे, सहंस छह सै धागा, निहचल नाकै पोवै। और जिसकी मुद्रा हो गई निरति की और जिसका वाद्य बज गया सुरति का, वह धागे से पिरो देता है सारी नाड़ियों को; वह अखंड एक हो जाता है; उसके भीतर एक का जन्म होता है।

ब्रह्म अगनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।

तब उसकी काया, तब उसकी देह ब्रह्म की अग्नि में जल कर भस्मभूति हो जती है। प्रकृति की अग्नि में तो तुम बहुत बार जल कर भस्मीभूत हुए हो, अनेक बार मरे हो, और देह को चिता पर चढ़ाया है। योगी भी एक चिता पर चढ़ता है, लेकिन वह चिता साधारण अग्नि की नहीं, वह ब्रह्म-अग्नि है!

ब्रह्म अगनि में काया जारै—और ब्रह्म-अग्नि में सब काया, काया की सारी संभावना, बज, सब जल जाते हैं।

त्रिकुटी संगम जागै—यहां काया खोती जाती है, पृथ्वी से संबंध छूटता जाता है, ज्योति उठ जाती है, दीए को छोड़ देती है और भीतर—यह तो बाहर की घटना है; भीतर, त्रिकुटी संगम जागै।
त्रिकुटी योगियों का बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। त्रिकुटी का अर्थ होता है :द्रष्टा, दृश्य और दर्शन-इन तीन धाराओं का मिल जाना। इन्हीं तीन के आधार पर प्रयोग को हमने संगम कहा है, उसको तीर्थ बनाया है। उसको तीर्थ बनाने का कुल कारण इतना है कि वह ठीक इन तीन की तरह की सूचना देता है। सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती; गंगा यमुना दिखाई पड़ती हैं। सरस्वती अदृश्य है! ऐसे ही दृश्य और द्रष्टा दिखाई पड़ते हैं; दर्शन अदृश्य है, वह दिखाई नहीं पड़ता, वह दोनों के बीच में बह रहा है। मैं तुम्हें देखता हूं, तुम भी दिखाई पड़ रहे हो, मैं भी दिखाई पड़ रहा हूं, लेकिन हम दोनों के बीच जो दर्शन की घटना घट रही है, वह नहीं दिखाई पड़ती—वह सरस्वती है। वह अदृश्य धारा है।
और जब इन तीनों का मिलन होता हैं—त्रिकुटी संगम जागै। जब दृश्य, दर्शन और द्रष्टा तीनों एक हो जाते हैं, तब महाजागरण होता है, वही महापरिनिर्वाण है। फिर कोई लौटना नहीं। काया जल जाती है ब्रह्म-अग्नि में। उसका उपयोग पूरा हो गया। अब कोई घर नहीं बनाना पड़ेगा, अब कोई नयी देह लेनी न पड़ेगी, अब कोई नये गर्भ में गिरना न पड़ेगा, अब पृथ्वी की तरफ गिरना बंद हुआ, अब ज्योति मुक्त हो गई दीये से; अब कमल कीचड़ में रहने को राजी नहीं है, अब कमल को कीचड़ में रहने की जरूरत भी नहीं है, अब कमल उठ गया। अब कमल यात्रा पर निकल गया, उसको पंख लग गए!
ब्रह्म अगनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगस्वर, सहज सुंनि लौ लागै।।
अब तो सिर्फ सहज शून्य में ही लौ लग जाती है, अब तो शून्य में ही विलीन होता जाता है!
कहै कबीर सोई जोगेश्वर—वही योगी है!
अवधू जोगी जग थैं न्यारा।
योग महानतम कला है—जीवन की भी और मरण की भी। योग पहले सिखाता है, कैसे जीओ, फिर योग सिखाता है, कैसे मरो।
ब्रह्म अगनि में काया जारै—पहले योग सिखाता है कैसे शरीर का सहारा लो, फिर योग सिखाता है, कैसे शरीर से मुक्त हो जाओ। पहले योग सिखाता है, कैसे जमीन पर आसन को जमाओ, ताकि ज्योति निश्चल उठने लगे, फिर योग सिखाता है, कैसे जमीन को छोड़ दो शून्य गगन में, महाशूय में कैसे खो जाओ!
वह खो जाना ही पा लेना है। वह मिट जाना ही हो जाना है। इधर तुम मिटे उधार परमात्मा हुआ। इधर तुम न रहे, उधर उसके मंदिर का द्वार खुला। तुम ही बाधा हो, झीनी-सी बाधा, पतला-सा घूंघट!
घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे।

आज इतना ही।

बूझै बिरला कोई
17 मई, 1975, प्रातः, ओशो आश्रम, पूना
अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाने सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई।।
गावन हारा कदे न गावै, अनबोल्या नित गावै।
नटवर पेखि पेखना पेखै, अनहद बेन बजावै।।
कहनी रहनी निज तत जानै, यह सब अकथ कहानी।
धरती उलटि आकासहि ग्रासै, यहु परिसा की बाणी।।
बाज पियालै अमृत सौख्या, नदी नीर भरि राख्या।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या।।
जीवन के प्रति एक तो दार्शनिक की दृष्टि है और एक धार्मिक की। दार्शनिक की दृष्टि परिधि को छू पाती है, केंद्र तक उसका प्रवेश नहीं। वह बाहर-बाहर से देखता है। कितना महाशून्य की अवस्था ही जाती है; जहां न कोई विचार है, न विचार की कोई तरंग है। विचार नहीं, केंद्र तक तो केवल ध्यान जाता है। विचार नहीं, केंद्र तक तो केवल समाधि की पहुंच है।
दार्शनिक बहुत सोचता है, सिद्धांत निर्मित करता है, शास्त्र बनाता है, लेकिन उसके सभी शास्त्र अधूरे होंगे। और सभी शास्त्र--उनके शब्द कितने ही गहरे मालूम पड़े, उथले होंगे।
धार्मिक व्यक्ति विचारता नहीं, विचार को छोड़ता है। तर्क नहीं करता, चिंतन-मनन नहीं करता, उन सभी तरंगों को शांत करता है। धार्मिक व्यक्ति केंद्र पर स्थिर होने की चेष्टा करता है। उस स्थिरता में ही जीवन के परिपूर्ण रहस्य का द्वार खुल जाता है। समाधि द्वार है।
और धार्मिक जो जान पड़ता है, वह बड़ा अनूठा है। वह उलटबांसी जैसा लगता है, क्योंकि हम सब दार्शनिक से प्रभावित हैं। इसे तुम ठीक से समझ लो।
हमारे मन दार्शनिक की बड़ी छाप है। विचारशील लोगों ने हमें खूब आक्रांत कर रखा है। स्वभावतः उनके तर्क बड़े प्रभावशाली मालूम पड़ते हैं और उनके तर्क के आधार पर उनके सिद्धांत, हमारे मन पर गहरी लकीरें छोड़ जाते हैं। इसलिए कबीर जैसे व्यक्तियों की वाणी उलटबांसी लगती है, कि क्या उल्टी बातें कह रहे हैं?
वे उलटी लगती हैं, क्योंकि तुम उलटे खड़े हो। जैसे कोई आदमी शीर्षासन कर रहा हो, उसे सारी दुनिया उलटी चलती मालूम पड़ती है। वह हैरान होता है कि सारी दुनिया उलटी क्यों चल रही है? दुनिया उलटी नहीं है। वह स्वयं उलटा खड़ा है। अस्तित्व तो सदा से सीधा-साफ है, तुम तिरछे हो। अस्तित्व तो कहीं भी तिरछा नहीं है। उसकी कहानी तो बड़ी साफ है, सुस्पष्ट है, उसका रहस्य तो बिलकुल खुला रह

स्य है। द्वार-दरवाजे बंद भी नहीं हैं। अगर तुम प्रवेश नहीं कर पा रहे, तो तुम्हारी आंखें ही किन्हीं शब्दों के द्वारा बंद हैं। किन्हीं विचारों, शास्त्रों में दबी हैं।

और विशेष कर इस देश में तो बड़ा दुर्भाग्य घटित हो गया है। हजारों साल का पांडित्य है। उसमें तुम्हें स्पष्ट लकीरें दी हैं। उन लकीरों से भिन्न को तुम मानने को भी राजी नहीं हो सकते। इसलिए पंडितों की नगरी काशी में कबीर उल्टे मालूम पड़ने लगे। लोग कहने लगे, कबीर की बात कर रहे हो? सिर फिर गया है? ये तो उलट बासियां हैं। ये तो पहेलियां हैं, जो सुलझाई नहीं जा सकतीं।

क्या है पहेली कबीर में? क्योंकि कबीर पूरे को देखते हैं। तुम अधूरे को देखते हो। तुम आधे को देखते हो। आधे के आधार पर तुम पूरे की कल्पना करते हो। तुम लकीर के फकीर हो। फिर लकीर का फकीर एक दफा आदमी हो आए, तो उस विस्तार का कोई अंत नहीं है।

मैंने सुना है, एक मजाक मैंने सुनी है। सच न भी हो फिर भी सच मालूम होती है। चूहों की बढ़ती के कारण सरकार बहुत बेचैन और व्यथित हो गई। क्योंकि पांच चूहे उतना भोजन कर जाते हैं, जितना एक आदमी। और आदमी से कहें गुने ज्यादा चूहे हैं। कम से कम पच्चीस गुने ज्यादा चूहे हैं भारत में। तो घबड़ाहट तो स्वाभाविक है। लेकिन चूहे जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा उठाना भी खतरनाक है। क्योंकि इस मुल्क की बुद्धि का कोई हिसाब लगाना मुश्किल है।

तो मैंने सुना है, कि इंदिरा गांधी ने मुल्क के सारे विचारशील नेताओं को इकट्ठा किया, कि पहले हम सोच लें फिर कुछ कदम उठाएं। और इंदिरा ने कहा कि इन चूहों को मार डालना अब एकदम जरूरी है। एक महाअभियान चाहिए कि सब चूहे समाप्त कर दिए जाएं।

तत्क्षण कोलाहल और उपद्रव शुरू हो गया, जैसा कि भारत की सभी संसदों में, विधान-सभाओं में मचता है, वहां भी मच गया। घड़ी दो घड़ी तो पता ही नहीं रहा, कि क्या हो रहा है?

बामुश्किल समझ में आया कि श्री अटल बिहारी बाजपेयी कह रहे हैं कि यह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि चूहा गणेशजी का वाहन है। क्या तुम गणेशजी को वाहन से च्युत करना चाहते हो? बिना वाहन के गणेशजी कैसे चलेंगे? और यह तो सरासर अधार्मिक है। यह तो हिंदू धर्म की हत्या है। तो यह कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता, कि चूहे की हत्या की जाए।

कोई सुझाव मांगा गया, कि फिर कुछ उपाय? तो उन्होंने कहा, जैसा आदमियों के लिए हम कर रहे हैं, परिवार नियोजन का प्रचार किया जाए। हर चूहे के बिल पर लिखा जाए, हम दो, हमारे दो। समझाने बुझाने की जरूरत है। हत्या नहीं हो सकती।

लेकिन तभी जयप्रकाश ने खड़े होकर कहा, कि यह कभी नहीं होगा। गांधी-विनोबा के देश में परिवार-नियोजन? यह तो अनीति का मार्ग है। इससे तो लोग भ्रष्ट होंगे, भ्रष्टाचार फैलेगा। और डर यह है कि तुम चूहों के लिए तो प्रचार करोगे लेकिन ग

णेशजी तक भ्रष्ट हो सकते हैं सुनते-सुनते परिवार-नियोजन। क्योंकि परिवार-नियोजन का अर्थ है, कि स्त्री को बच्चा पैदा होने का भय तो रह नहीं जाता। उसी भय पर तो तुम्हारी सारी सभ्यता खड़ी है। उसी भय पर तो तुम्हारी निति-नियम खड़े हैं। स्त्री पकड़ी जा सकती है, अगर वह किसी दूसरे व्यक्ति से संबंध बनाए। एक बार स्त्री मुक्त हो जाए, भय न रहे तो फिर कौन नियम रोकेगा? चूहे तो बिगड़ेंगे ही, डर यह है कि गणेशजी तक बिगड़ जाएं।

तो जयप्रकाश ने कहा, सर्वोदयी इसको कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे। पूछा गया क्या, किया जाए? तो उन्होंने कहा, बजाय परिवार-नियोजन के अभियान के, ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाए। ब्रह्मचर्य की शिक्षा—गांधी, विनोबा दोनों यही कहते हैं। बजाय तख्तियां लगाने के परिवार नियोजन के, ब्रह्मचर्य के वचन लिखे जाएं, कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

किसी ने डरते-डरते कहा कि लेकिन चूहे अशिक्षित हैं।

तो जयप्रकाश ने कहा कि विस्तार में जाने का मेरा प्रयोजन नहीं। हम केवल लोकनायक हैं, लोकनेता नहीं। हम मार्गदर्शन देते हैं। पूर्ण क्रांति की विस्तार की बातें आप लोग सोचें। यह सरकार का फर्ज है, कि वह पहले उनको शिक्षित करे—चूहों को, फिर उनको ब्रह्मचर्य समझाए। सिद्धांत की बात हमने कह दी। बाकी विस्तार में जाना सरकार का कर्तव्य है। अन्यथा सरकार किसलिए है?

श्री अटल बिहारी बाजपेयी : यह तो हिंदू धर्म पर सीधा आघात है। यह कभी बर्दाश्त न किया जाएगा। हिंदुओं, इकट्ठे हो जाओ! तुम्हारा धर्म खतरे में है।

और तक कम्युनिस्ट नेता श्रीपाद अमृत डांगे ने कहा : प्रश्न चूहों के मारने या न मारने का नहीं है। प्रश्न है कि यह गणेश कौन है जो गरीब सर्वहारा चूहों पर चढ़ा बैठा है? इस गणेश को नीचे उतारना होगा। यह वर्ग-संघर्ष है। गणेश मुर्दाबाद चूहों, विश्व के चूहों, इकट्ठे हो जाओ! तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं सिवाय गणेश के बो के।

श्री जयप्रकाश बोले : मैं पूर्ण क्रांति चाहता हूं। चूहों में ब्रह्मचर्य का व्रत फैलाने से ही यह हो सकेगा। महात्मा गांधी और संत विनोबा के सारे जीवन का संदेश ही ब्रह्मचर्य है। और विस्तार की बातें मुझसे मत पूछो। मैं क्षुद्र बातों में उलझता ही नहीं। मैं तो केवल और केवल पूर्ण क्रांति के पक्ष में हूं।

और तभी लकीरों के फकीरों में मारपीट शुरू हो गई। जूते-चप्पल फेंके जाने लगे। पूर्ण क्रांति का ऐसा शुभ आरंभ देख कर श्री जयप्रकाश अति प्रसन्न हुए। और संपोपा नेता राजनारायण ने बीच में कूद कर, युद्ध शुरू कर दिया।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी सम्मेलन के अपेक्षित अंत को देख कर सभा भवन के बाहर जाने लगी। तभी श्री मोरारजी देसाई की आवाज उन्हें सुनाई पड़ी : मैं अल्टीमेटस देता हूं कि यदि वर्षा के पूर्व महात्मा गांधी के विचारानुसार चूहों में ब्रह्मचर्य और नशाबंदी का प्रचार प्रारंभ न किया तो मैं आमरण अनशन प्रारंभ कर दूंगा।

वह सभा जैसी खत्म हो गई होगी, वैसे ही सब सभाएं इस मुल्क में खत्म होती हैं। लकीरें हैं! एक दफा लकीर को छू दो, फिर होश लोग खो देते हैं। इतना कहना काफी है, कि चूहा गणेशजी का वाहन है; फिर कोई होश की बात नहीं हो सकती। इतना कहना काफी है, कि गांधी-विनोबा क्या कहते हैं, कि यह देश गांधी बिनोबा का है। जैसे यह देश उन्हीं का है। किसी और का नहीं है।

लकीर से बंधकर जीनेवाला व्यक्ति सब भांति अंधा हो जाता है। और सभी लोग विचार की लकीरों से बंधे हैं।

इस देश की सबसे गहरी विचार की लकीर है, कि संसार माया है। यह सच है। यह परम अनुभव है कि संसार माया है। लेकिन यह कोई सिद्धांत नहीं है। यह तो सिद्धावस्था की प्रतीति है। अगर तुमने इसे सिद्धांत की तरह समझा कि संसार माया है तो तुम अड़चन में पड़ोगे। तब तुम लड़ना शुरू कर दोगे। और जिससे तुम लड़ रहे हो, वह स्वयं परमात्मा है। तब तुम्हारा पूरा जीवन उलझ जाएगा।

इस देश के सारे शास्त्र कहते हैं, कि द्वंद्व के ऊपर उठना है। दो के पार जाना है। एक को पाना है। अद्वैत को पाना है। वही परम सत्य है। यह तुम्हारे मन में लकीर की तरह बैठ गई है बात। इसलिए किसी भी चीज की तुम्हें निंदा करनी हो, तो तुम कह दो कि यह तो द्वंद्व के भीतर है। बात निंदित हो गई।

इसीलिए कबीर ने जब ये वचन कहे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या--जिसने पृथ्वी के महारस को चखा, वह महायोगी।

लेकिन तुम्हारे योगी तो कह रहे हैं, कि धरती, धरती का रस, पदार्थ, पदार्थ का रस, शरीर, शरीर का रस सब त्याज्य है। इनको तो छोड़ना है। यह तो माया है। और कबीर कहते हैं, जिसने धरणी का महारस चख लिया, वह कोई बिरला जोगी है। वह कोई अद्वितीय जोगी है।

तुमने सदा सुना है, कि पदार्थ को छोड़ना है और कबीर कह रहे हैं कि पदार्थ में महारस छिपा है। पदार्थ परमात्मा छिपा है। पदार्थ को छोड़ना नहीं है, जानना है। पदार्थ से भागना नहीं है, जीना है। शरीर में अशरीरी छिपा है। शरीर को काटना और गलाना नहीं है, शरीर को मिटाना नहीं है, शरीर तो मंदिर है। वही परमात्मा की प्रतिमा विराजमान है। वह तो सिंहासन है। उस पर प्रभु बैठा है। शरीर को पहचानना है, जानना है, जीना है। शरीर के भीतर गहन में प्रवेश करना है। शरीर की परिधि नहीं, उसका केंद्र भी उपलब्ध हो जाए। जिस दिन तुम शरीर के केंद्र को जान लोगे, कि वह परमात्मा है, उस दिन तुम पाओगे, कि शरीर में भी बड़े रस छिपे हैं। छोड़ने योग्य कुछ भी नहीं है।

स्वाद को छोड़ना नहीं है और अस्वाद को साधना नहीं है। स्वाद को इस परिपूर्णता से जीना है, कि स्वाद में ही छिपा अस्वाद मिल जाए। तब वो अस्वाद जैसा नहीं होता, परम-स्वाद जैसा होता है।

गांधी के आश्रम में ग्यारह नियमों में एक नियम था, अस्वाद। इस तरह भोजन करो , कि उसमें स्वाद न आए। तो भोजन खराब करके करो--नमक मत डालो। और अ गर ज्यादा ही याग सिर पर चढ़ गया, तो थोड़ी सी नीम की चटनी मिला लो, ताि क भोजन भ्रष्ट हो जाए, ताकि स्वाद न आए। गांधीजी नीम की चटनी के बिना भो जन ही नहीं करते थे। वह भोजन को खराब करने की व्यवस्था थी। सोचते थे, यह अस्वाद है।

यह अस्वाद नहीं है, यह केवल जीभ को मारना है। अस्वाद तो उन्हें उपलब्ध हुआ, उन ऋषियों को, जिन्होंने कहा है उपनिषदों में अन्नं ब्रह्म। जिन्होंने जाना है, अन्न में ब्रह्म छिपा है; उन्हें अस्वाद उपलब्ध हुआ। जिन्होंने अन्न को इस परिपूर्णता से इस समाधिपूर्णता से, इस समाधिपूर्वक ग्रहण किया, कि अन्न में छिपे हुए ब्रह्म की जिन्हें झलक मिलने लगी--धरणि महारस चाख्या, वे परमयोगी है। उन्होंने पृथ्वी को छोड़ा नहीं, पृथ्वी के महारस को चख लिया।

क्योंकि जिसने बनाई है सृष्टि, वह बनानेवाले से भिन्न नहीं हो सकती। और शत्रु तो हो ही नहीं सकती। विरोध में तो हो ही नहीं सकती। सीढ़ी ही बनने को बनाई ग ई है। सृष्टि में छिपा है स्रष्टा। कृति में छिपा है कर्ता। काव्यों में छिपा है कवि। नृत्य में छिपा है नर्तक। वह भिन्न नहीं है। परमात्मा यहां पत्ते-पत्ते पर छिपा है। तुमने ि जसे बुरा कहा है, तुमने जिसकी निंदा की है, वह भी परमात्मा है। और परमात्मा की निंदा करके तुम परमात्मा को न पा सकोगे। हां, तुमने एक अपना परमात्मा बन ा लिया है सिद्धांतों का, जिसको तुम मंदिर में पूजा करते हो। असली, जीवंत परमा त्मा की तुम निंदा करते हो। झूठे आदमी द्वारा निर्मित परमात्मा की तुम पूजा करते हो।

तुम कभी किसी हरे वृक्ष के सामने हाथ जोड़ कर झुके हो? कि जब कोई वृक्ष फलों से भरा हो, हवाओं में नाचता हो, तब तुमने घुटने टेक कर कहां प्रार्थना की है? ि क जब आकाश में तारे भरे हों, तब तुम पृथ्वी पर लेट कर उस अनिर्वचनीय के भ जन से भरे हो? तुमने तारों में उसकी आंखों को झलकते देखा? कि फूलों में इसकी सुवास उठते देखी?

नहीं, तुम बिलकुल अंधे हो। तुम भागे जा रहे हो मंदिर--मस्जिद की तरफ। तुम क हते हो, वहां परमात्मा की पूजा करनी है। और यहां कौन है? चारों तरफ कौन है? पक्षियों के कंठों में कौन गा रहा है? वृक्षों में कौन फूल बना है? झरनों में किसका कलकल नाद है? ये उसी एक ओंकार की अनेक-अनेक अभिव्यक्तियां हैं। ये उसी एक के अनेक-अनेक रूप हैं। तुम कहां भागे चले जाते हो? तुम किसी की पूजा कर ने जा रहे हो? तुम जहां हो, वहीं वह मौजूद है। तुम्हारे चारों तरफ उसी ने तुम्हें घेर रखा है।

उपनिषद कहते हैं, वह परमात्मा दूर से भी दूर, और पास से भी पास है। दूर से दू र--अगर मंदिरों में खोजा; पास से पास--अगर आंख खुली, और चारों तरफ देखा। वह परमात्मा निकट से भी निकट है। क्योंकि तुम भी वही हो। श्वास भी वही ले र

हा है तुम्हारे भीतर। मोहम्मद ने कहा है, कि श्वास की नली से भी वह पास है। ए
क बार तुम बिना श्वास के भी जी लो, उसके बिना तुम जी सकोगे। उसके बिना क
ोई जीवन ही नहीं है। वह जीवन का सारभूत है।

तब जीवन की निंदा से कोई उस तक नहीं पहुंच पाएगा। और सभी धर्मों ने जीवन
की निंदा की है। सिर्फ ज्ञानी पुरुषों ने जीवन की निंदा नहीं की है। उन्होंने तो जीवन
का गौरव गाया है। असल में उनके जीवन में गौरव का जो गीत है, वही तो उनक
ी परमात्मा की स्तृति है।

इसलिए अन्नं ब्रह्म है। स्वाद भी उसी का है। शरीर भी उसी का है, काम भी उसी
का है। राम भी वही है। और जिस दिन तुम द्वंद्व खड़ा न करोगे, और तुम्हें दोनों में
वही दिखाई पड़ने लगेगा, उसी दिन अद्वैत उपलब्ध होगा। अद्वैत कोई सिद्धांत नहीं
है, कि तुमने शंकराचार्य के ग्रंथ पढ़ लिए और तुम्हें अद्वैत की समझ आ गई।

अद्वैत तो जीवन को जीने की एक शैली है। इस भांति जीना है, कि दो के बीच वि
रोध खड़ा न हो। दो के बीच दो पन न आए। दो के बीच भी एक ही दिखाई पड़ता
रहे। इसलिए कबीर के वचन उलटबांसी मालूम पड़ते हैं। वह सीधी बांसुरी है।

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाने सब कोई।

यह तो हमें पता ही है कि आकाश बरसता है, मेघ घिरते हैं आषाढ़ में, धरती भीग
ती है, तृप्त होती है। लेकिन यह बात तो अंधे को भी पता है, मूढ़ को भी पता है।
इससे जानने से तुम कोई बहुत समझदार न हो जाओगे। जाननेवाला तो यह कहता
है--

धरती बरसै, अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई।

धरती भी बरसती है। क्योंकि जीवन एक गहन एकात्म है। यहां तुम लेते ही लेते न
हीं चले जा सकते। यहां लेने और देने में एक संतुलन है।

आकाश से तुमने मेघों को बरसते देखा लेकिन तुमने धरती के मेघ आकाश पर बर
सते देखे हैं? ये हरे हो गए वृक्ष! इनसे धरती वापस लौटा रही है जला के। ये मेघ
हैं, जो आकाश में वापस बरस रहे हैं। प्रति पल पत्ते-पत्ते से भाप उठ रही है। अन्य
था आकाश मेघ कहां से जाएगा बरसाने को? नदी-नदी से, झरने-झरने से भाप उठ
रही है। सूरज की किरणों पर चढ़-चढ़ कर जगह-जगह से भाप इकट्ठी हो रही है
आकाश में। धरती वापस लौटा रही है।

इन फूलों की गंध में कौन वापस जा रहा है? इन पक्षियों के कंठ से कौन आकाश
पर बरस रहा है? सब तरफ से पृथ्वी लौटा रही है। और जितना लौटती है, उतना
ही गहन हो कर वापस आता है। एक वर्तुलाकार प्रक्रिया है। आकाश धरती को देता
है, धरती आकाश को देती है। धरती छोटी नहीं है, लेन-देन सदा बराबर है।

संतुलन ही तो जीवन का नियम है। अन्यथा संतुलन टूटता जाएगा। एक लेता जाए,
एक देता जाए, दोनों ही दिन हो जाएंगे अंततः। एक कृपण हो कर मरेगा, एक दरि
द्र हो कर मरेगा। जीवन लेन-देन है। जीवन प्रतिपल संतुलन को बनाए रखता है। ि
जतना आकाश से धरती को मिलता है, उतना ही लौट जाता है।

और यह तो छोटा-सा प्रतिदिन है, जो फूलों में, वृक्षों में, पहाड़ों में, नदी झरनों में, दिखाई पड़ता है। पक्षियों के कंठों में, हवा के झोंकों में जिसकी सरसराहट सुनाई प. डती है। लेकिन जब धरती का कोई बेटा, कोई बुद्ध, कोई कबीर खिलता है, हजार कमलों का कमल खिलता है जब उसके सहस्रार में, और जब उसकी पूरी प्राण-ऊ र्जा आकाश की तरफ प्रवाहित होती है, तब महादान घटित होता है। तब आकाश पर मेघ घिर जाते हैं बुद्धों के। बुद्ध ने तो जो शब्द प्रयोग किया है उस परम अवस्थ ा को, उसका नाम ही मेघ समाधि है। एक बादल की तरह आकाश पर बरस जाती है पृथ्वी।

कबीर कहते हैं, धरती बरसै अंबर भीजै। कबीर कहते हैं, हमने उल्टा भी देखा है। धरती को बरसते और अंबर को भीजते भी देखा है। स्रष्टा ने तो सृष्टि को बहुत कु छ दिया ही है। परमात्मा ने तो सबको बनाया ही है; उसने तो सबको आपूर दिया ही है, लेकिन हमने एक और बात भी देखी है। कि हमने परमात्मा की तरफ सृष्टि से जाते हुए मेघ भी देखे हैं। और हमने पृथ्वी को ही नाचते नहीं देखा है मेघों में ि घरे, हमने परमात्मा को भी नाचते देखा है।

जब बुद्ध का मेघ लौटाता है परमात्मा की तरफ, तब परमात्मा भी नाचता है। वह नटराज है। उसकी प्रसन्नता का क्या कहना उन क्षणों में!

इसलिए बुद्ध के जीवन में कथा है, कि जब बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए, तो असमय ही वृक्षों पर फूल खिल गए। इतनी महान घटना घटी हो, तो परमात्मा भी नाचता है। अगर प्रकृति नाची हो उस क्षण में, तो कुछ अनूठा नहीं है। सूखे वृक्ष हरे हो गए , नई कोंपलें फूट गईं। फूल आने को न थे, यह मौसम न था और फूल खिल गए आधी रात। अभी सूरज भी नहीं उगा था, जब बुद्ध उस परम अवस्था की तरफ धी रे-धीरे बह रहे थे। भोर का आखिरी तारा डूबा और बुद्ध परम मेघ-समाधि को उप लब्ध हुए। उस क्षण पृथ्वी ने जो दान दिया है, वह परमात्मा भी सदियों तक याद र खेगा—रखना ही पड़ेगा।

और अगर गौर से देखा, तो सृष्टि का दाम बड़ा मालूम होगा स्रष्टा के दान से। क्यों कि स्रष्टा ने तो एक साधारण बच्चा ही पैदा किया था। पृथ्वी ने बुद्धत्व दे कर वापि स लौटाया।

अंबर बरसै धरती भीजै, यह जाने सब कोई।

परमात्मा का ऋण चुकाना है। तुमने पितृ-ऋण सुना है। तुमने गुरु-ऋण सुना है। लेि कन तुमने कभी सोचा कि परमात्मा का भी ऋण है—जिसने तुम्हें बनाया है? जिसने सारी प्रकृति बनाई है, जो इस सारे खेल के पीछे छिपा हुआ स्रष्टा है, उसका ऋण भी चुकाना है। कोई बुद्ध इसका ऋण भी चुकाता है। कोई कबीर उसका ऋण चु काता है।

उस घड़ी में, जब महिमा से भरी हुई चेतना वापिस लौटती है परमात्मा की तरफ— धरती बरसै अंबर भीजै। उस दिन आकाश भीग जाता है। आकाश का भीगना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। क्योंकि आकाश तो शून्य है। लेकिन कबीर कहते हैं, शून्

य भी भीग जाता है, आर्द्र हो जाता है। शून्य भी उस क्षण में कठोर नहीं रह जाता, तटस्थ नहीं रह जाता। शून्य भी उस क्षण में कांप जाता है, आप्लावित हो जाता है।

धरती भीगती है, यह तो समझ में आती है। क्योंकि गहन धूप में, सूरज के ताप में धरती फट जाती है, प्यासी हो जाती है। इसलिए जब वर्षा होती है, तो पृथ्वी के रोएं-रोएं प्राण-प्राण में एक तृप्ति समा जाती है। एक सोंधी गंध उठती है तृप्ति की, चारों तरफ फैल जाती है। यह समझ में आता है लेकिन आकाश तो कोई पृथ्वी नहीं है। आकाश में तो कोई दरारें नहीं पड़ सकतीं। आकाश तो महाशून्य है। आकाश तो सिर्फ अवकाश है, रिक्तता है। उसमें कैसी दरारें!

लेकिन कबीर ठीक ही कहते हैं। मैं भी सहमत हूं। आकाश में भी दरारें पड़ जाती हैं। बुद्धत्व की वहां भी प्रतीक्षा होती है। पृथ्वी खिले और बरसे आकाश पर। तभी तो यह खेल चल पाता है। यह खेल एक-तरफा नहीं है। यह द्वंद्व पृथ्वी और आकाश का, शरीर और आत्मा का, पदार्थ और परमात्मा का, सृष्टि और स्रष्टा का। यह द्वंद्व को के बीच विरोध नहीं है, यह दो के बीच एक गहन सामजस्य है।

इसलिए तो हम इसे लीला कहते हैं। एक खेल है। शत्रुता नहीं है। अगर पृथ्वी और आकाश दूर भी जाते हैं, तो करीब आने को। अगर पदार्थ और परमात्मा में भेद भी पड़ता है, तो वह भेद केवल पास आने की प्रतीक्षा है। पास आने की तैयारी है।

तुमने कभी अनुभव किया हो, अगर तुमने कभी प्रेम किया है। इसलिए कहता हूं, कि अगर तुमने प्रेम किया है, क्योंकि बहुत कम लोग प्रेम को उपलब्ध हो पाते हैं। प्रार्थना तो बहुत दूर, जीवन प्रेम से भी वंचित रह जाता है। अगर तुम कभी प्रेम किया है, तो तुम एक लय अनुभव करोगे प्रेमियों में। कि प्रेमी दूर होते हैं, करीब आते हैं—एक छंद है। क्योंकि अगर तुम सदा ही करीब-करीब रहो, तो भी रस जाता है। अगर तुम सदा ही दूर-दूर रहो, तो भी प्रेम टूट जाता है। एक लय बुद्धता है। कि प्रेमी दूर हटते हैं, ताकि पास आ सकें। पास आते हैं, फिर दूर हट जाने को।

अगर तुमने कभी प्रेम किया है, तो तुमने पाया होगा कि प्रतिपल यह यात्रा चलती रहती है, दूर होने की, पास होने की कभी झगड़ते हैं, दूरी बनाने को। कभी क्रोधित हो जाते हैं, ताकि मुख एक दूसरे से फिर जाएं। एक दूसरे की तरफ पीठ हो जाए। लेकिन वह क्रोध उन्हें और भी पास ले आता है। जब क्रोध का तूफान जा चुका होता है, तो पीछे के सन्नाटे का क्या कहना! तब वहां प्रेम की मधुरिमा खिलती है। जब दो प्रेमी लड़ चुकते हैं, झगड़ चुकते हैं, तब उस झगड़े के बाद प्रेम फिर से अभिनव हो जाता है। हर झगड़े के बाद नई सुहागरात है। और हर सुहागरात के बाद फिर नया झगड़ा है। प्रेमी झगड़ते हैं। झगड़े में राज है।

अगर प्रेमी झगड़ते न हों, तो समझना कि प्रेम समाप्त हो चुका है। अब दूर जाने की भी कोई जरूरत न रही क्योंकि पास आने की कोई आकांक्षा न रही। अब प्रेमी एक दूसरे को सहते हैंत्त, झगड़ते नहीं। समझना, प्रेम चुक गया है। जो पति-पत्नी कभी नहीं झगड़ते, समझना कि वहां प्रेम रहा ही नहीं।

हां, जो सतत झगड़ते हैं, वहां भी प्रेम नहीं है। जो चौबीस घंटे झगड़े पर ही उतारू हैं, जिन्होंने उसे कोई युद्ध कर मैदान बना लिया है, जो उसे धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे...! जो उसे समझ रहे हैं कि यही जीवन है, उनका भी प्रेमी नहीं है। प्रेम कीमियां है, रसायन है। झगड़ते हैं, थोड़ा-सा फासला हो जाए। फासले में रस पैदा होता है।
गरमी के उत्तप्त दिनों में जब सूरज आग की तरह बरसता है, पृथ्वी तैयारी कर रही है वर्षा में तृप्त होने की। फिर वर्षा में डूब जाएगी आकंठ। नदियों में पूर आएंगे। झरने बड़े होकर बहेंगे। बाढ़ फैलेगी। रोआं-रोआं सिक्त हो जाएगा जल से। पृथ्वी फिर तैयार हो रही है धूप के लिए। सूखना होगा, गीले होने के लिए। गीला होना होगा, सूखने के लिए।
जिसने जीवन के इस संगीत को समझा, उसके लिए पृथ्वी और परमात्मा का द्वंद्व नहीं है। खेल है। उसे आत्मा और शरीर के बीच कोई संघर्ष नहीं है। सतत पास आना और सतत दूर जाने की छंद-बद्धता है। योग, परम संगीत की कला है। वह कोई दुश्मनी नहीं है इसलिए शरीर से लड़ना मत। पृथ्वी को त्याज्य मत समझना। पदार्थ को असार मत कहना। बाजार को व्यर्थ मत कहना। क्योंकि बाजार और हिमालय के बीच छंद चल रहा है। एक गहरा छंद है।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, कि उन संन्यासियों को कुछ भी उपलब्ध न होगा, जो सदा के लिए हिमालय भाग गए। उन गृहस्थों को भी कुछ उपलब्ध न होगा, जो बाजार में ही खो गए। वहां भी एक छंद चाहिए, कि कभी तुम बाजार में बैठे हो, दूर हो गए मंदिर से बहुत। और कभी तुम मंदिर में बैठे हो, पास हो गए मंदिर के बहुत। दूर हो गए बाजार से बहुत। अगर तुम इस छंद-बद्धता को संभाल लो, तो तुम मेरे संन्यास का अर्थ समझ पाओगे। अन्यथा मेरा संन्यास कबीर की उलटबांसी है।

मेरे पास लोग आते हैं, कि यह कैसा संन्यास है? पत्नी है, बच्चे हैं, लोग दुकान पर बैठे हैं, दफ्तर जा रहे हैं, ये कैसा संन्यास? क्योंकि संन्यास वे जानते हैं, जो सदा के लिए भाग गया, उसको वे संन्यासी कहते हैं। जो सादा के लिए बाजार से में रह गया, उसको वे गृहस्थ कहते हैं। मेरा संन्यासी गृहस्थ और पुराने संन्यास के बीच एक छंद है। कभी वह सब छोड़ कर हट जाता है। ध्यान में लीन हो जाता है। कभी वह फिर बाजार में वापस लौट आता है। बाजार और मंदिर में विरोध नहीं है।
जैसे तुम्हारी श्वास जाती है बाहर फिर भीतर आती है। फिर बाहर जाती है। तुम्हारी श्वास में विरोध नहीं है। तुमने कभी श्वास को संभाल लिया होता अगर शास्त्रों के अनुसार, तो तुम कभी के मर गए होते। श्वास को अगर भीतर ही रोक लोगे, तो भी मर जाओगे। श्वास को अगर बाहर ही रोक दोगे, तो भी मर जाओगे। श्वास को भीतर भी आने दो, बाहर भी जाने दो। श्वास कोई प्रतिबंध नहीं मानती। वह दोनों किनारों पर आती जाती है।
बाहर जाती श्वास संसार है। भीतर आती श्वास संन्यास--पुरानी परिभाषा में। भीतर ही साध लो तो संन्यास, बाहर ही साध लो तो गृहस्थ। लेकिन मैं मानता हूं वे दो

नों मर जाते हैं। पुराना गृहस्थ भी मर चुका है। सड़ रहा है बाजारों में, दुकानों में। उसके जीवन में विपरीत की गंध न रही। वह मर रहा है क्योंकि उसके जीवन में केवल उत्ताप है, ग्रीष्म है। वह केवल पतझड़ जानता है। और पुराना संन्यासी भी सड़ गया है। उसे तुम मंदिर में, आश्रमों में सड़ता हुआ पाओगे। अगर तुम्हारे पास थोड़ी भी सुगंध लेने की क्षमता हो, तो तुम उसकी दुर्गंध को समझ पाओगे। वह सड़ रहा है। क्योंकि उसने भी सांस को रोक लिया है। उसने भी एक किनारे से अपने को बांध लिया है।

वास्तविक संन्यास दोनों के मध्य में है—निरति और सुरति। अतियों पर नहीं है, मध्य में है और होश में है। भागने में नहीं है। परिस्थिति को बदलने में नहीं है, अपने होश को बदलने में हैं। और बड़ा प्यारा संगीत है, जो हिमालय और बाजार के बीच सघ जाए, मंदिर और दुकान के बीज सध जाए। बड़ा प्यारा संगीत है।

दूर होओ, ताकि पास आ सको। पास आओ, ताकि दूर जा सको। तभी तुम इस विराट की लीला के सजीव अंग हो सकोगे। तभी तुम इस वीणा के कंपते हुए तार हो सकोगे। अन्यथा तुम निर्जीव हो जाओगे।

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाने सब कोई।

इसलिए कबीर ने कभी बाजार नहीं छोड़ा कबीर कपड़ा बुनते ही रहे। जुलाहे थे, जुलाहे बने ही रहे। शिष्यों ने बहुत समझाया, कि अब यह शोभा नहीं देता।

तो कहते हैं, कबीर ने कहा, जो परमात्मा को शोभा देता है, वह मुझे शोभा क्यों न देगा? वह बाजार को नहीं मिटा रहा। कभी का मिटा देता चाहता तो। संसार को नहीं मिटा रहा। रोज संसार को बनाए ही चला जाता है। रोज नए बच्चे निर्मित होते चले जाते हैं। नई दुकान खुलती है। नया बाजार बनता है। नया गांव बसता है। मुर्दों को हटाता है। जो सड़ गए उन्हें हटा लेता है। नयों को भेजता है। ताजों को भेजता है। जो फिर से वासना में पड़ेंगे। फिर से महत्वाकांक्षा जागेगी जिनको। जो फिर से धन इकट्ठा करेंगे। लोभ करेंगे, क्रोध करेंगे, प्रेम करेंगे। सारी लीला खड़ी होगी।

और उस लोभ, क्रोध, काम की समझ से ध्यान की तरफ जागेंगे। जीवन का विषाद उन्हें समाधि के आनंद की तरफ ले जाएगा। फिर से संगीत सधेगा। पुरानों को हटा लेता है। समझदारों को हटा लेता है। परमात्मा समझदारों के विरोध में मालूम पड़ता है। नासमझों को भेजता है। समझदारों को हटाता है। क्योंकि समझदार थोड़े ज्यादा समझदार हो जाते हैं। और जीवन का संगीत खोने लगता है। उनकी समझदारी जडता हो जाती है। वे किसी एक से चिपट जाते हैं। या तो गृहस्थ को पकड़ लेते हैं, जोर से, या संन्यस्त भाव को पकड़ लेते हैं जोर से। छोटे बच्चों की तरह सरल नहीं रह जाते।

छोटे बच्चों की सरलता का रहस्य तुमने जाना, क्या है? कभी तुमने छोटे बच्चे को देखा गौर से? अभी देखो, नाराज है। खिलौना टूट गया, चिल्ला रहा है। क्रोध से भर गया है, उत्तप्त है। तब तुम सोच भी नहीं सकते, कि यह बच्चा कभी शांत होगा

। घड़ी भर बाद भूल गया खिलौना। शांत है कोने में बैठा। आंख बंद हो गई। झपकी लग गई। तुम सोच भी नहीं सकते, कि यह बच्चा कभी क्रोधित रहा होगा। इतनी सरलता से डोलता है क्रोध से अक्रोध में, अशांति से शांति में। अभी प्रेमी कर रहा है, कह रहा है, तुम्हारे बिना न रह सकेगा एक क्षण। अभी नाराज हो गया। अब य ह कहता है, तुम मर ही जाओ। तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। क्षण भर बाद क्रो ध जा चुका। घृणा जा चुकी। फिर तुम्हारे गले मिल रहा है।

छोटे बच्चे की सरलता क्या है? क्यों जीसस मोहित हैं छोटे बच्चों पर? क्यों वे कह ते हैं मेरे परमात्मा के राज्य में वे ही प्रवेश कर सकेंगे, जो छोटे बच्चों की भांति हैं ।

जो द्वंद्व के बीच सरलता से गतिमान हो जाए, वही सरल है। तुम्हारे संन्यासी भी ज टल हैं तुम्हारे गृहस्थ भी जटिल हैं। अकड़ गए हैं। एक ने भीतर ही श्वास बांध रखी है। एक ने बाहर ही रोक रखी है। दोनों मर रहे हैं। श्वास को भीतर बाहर आने दो।

यह श्वास बड़ा गहरा प्रतीक है। जिस तरह श्वास भीतर-बाहर आती है, इसी तरह तुम्हारी चेतना भी बाहर-भीतर आए। अब तुम्हारी चेतना भी जीवित होगी। इसलिए जो लोग आंख बंद कर लेते हैं संसार की तरफ और कठोर होकर हठयोग को साध कर, भीतर ही रहने की कोशिश करने लगते हैं, उनका जीवन भी दीन और दरिद्र हो जाता है। तुम उनके जीवन में गरिमा न पाओगे। तुम उनके जीवन में सृजन की क्षमता न पाओगे।

तुमने कभी सुना है, कि इन आंख बंद करनेवाले अंतर्मुखी लोगों ने, इन्ट्रोवर्टस ने दुनिया को कोई सुंदर गीत दिया हो? कि दुनिया को कोई सुंदर चित्र दिया हो, कि क ोई सुंदर मूर्ति बनाई हो कि किसी बीमारी का नया इलाज दिया हो? इन्होंने दुनिया को कुछ दिया है? इनकी सृजनात्मकता क्या है? इनकी क्रियेटीविटी क्या है? ये तो मुर्दा हैं। ये हों या न हों, बराबर है। ये भीतर बंद होकर बैठते हैं। इनका जीवन सड़ जाएगा। ये पोखरे की तरह हो गए। नदी न रही, जो बहती है। बंद हो गए। इ नसे दुर्गंध उठेगी।

भारती अधिकतम दुर्गंध, भारत के जड़ हो गए संन्यासियों के कारण है। और उनकी संख्या बड़ी है; लाखों में है। वे लाखों लोग इस मुल्क की छाती पर बैठे हैं जड़ हो कर। और उनका प्रभाव भारी है क्योंकि वे पूज्य हैं। सदियों से तुमने उन्हें पूजा है। उनके पैर छुए हैं। तुम उनको अब भी पूजे चले जा रहे हो। लाश की पूजा चल रही है। वे तुम्हें भी लाश में रूपांतरित कर देंगे।

पश्चिम का दुर्भाग्य कि वहां लोग बाहर ही बाहर निर्मित कर लेते हैं, लेकिन गीत में बहुत है, लेकिन भीतर की शांति नहीं है। वे गीत तो बहुत निर्मित कर लेते हैं, लेकिन गीत में भीतर का स्वर नहीं आता। वे मूर्तियां बहुत निर्मित कर लेते हैं, लेकिन उनकी मूर्तियां ऐसी गलती हैं जैसे पागलों ने बनाई हों।

पिकासो के चित्र देखो तो ऐसा लगता है, कोई विक्षिप्त आदमी चित्र बना रहा है। कितने ही कलात्मक हों, तो भी सुंदर नहीं हैं। कितना ही श्रम उनमें लगाया गया हो, तो भी उनसे भीतर से कुछ अहोभाव नहीं उठता। कोई आशीर्वाद नहीं बरसता। वे ऐसे हैं, जैसे जीवन की दुखांत कहानी कहते हैं। विषाद भरी! विक्षिप्तता से भरी! पागल आदमी का चित्र प्रकट करते हैं। किसी बुद्धत्व की मूर्ति उनसे प्रकट नहीं होती।

पश्चिम में सृजन बहुत है। चीजें बढ़ती जाती हैं। मकान सुंदर होते जाते हैं। रास्ते अच्छे होते जाते हैं। कपड़े बेहतर होते जाते हैं। मशीनें बनती जाती हैं। लेकिन भीतर बड़ा कोलाहल है। भीतर की कोई शांति नहीं है। पूरब में भीतर की शांति है लेकिन मुर्दा है।

ये दोनों ही अधूरी बातें हैं। और दोनों परमात्मा का विरोध हैं। परमात्मा चाहता है, तुम श्वास भी लो, तुम श्वास छोड़ो भी। तुम आकाश को भी चाहो और तुम पृथ्वी को भी चाहो। और तुम्हारी दोनों चाहों में कोई विरोध न हो। तुम्हारी दोनों चाहे किसी महाचाह का अंग हो जाएं। एक विराट संगीत के दो स्वर हो जाएं। अन्यथा तुम इकट्ठे हो जाओगे और संतुलन खो जाएगा।

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाने सब कोई।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई।।
गावन हारा कदे न गावै, अनबोल्या नित गावै।
नटवर पेखि पेखना पेखै, अनहद बेन बजावै।

गावन हारा बदे न गावै—वह जो असली गीत गानेवाला है वह कभी गाता नहीं। जटिल है बात। इसलिए तो लोग कहते हैं, कबीर की बातें उलटबांसी हैं। जो असली गानेवाला है, वह कभी गाता नहीं। उससे गीत पैदा होता है, वह गाता नहीं। और जब तक तुम गाते हो, तब तक गीत ऊपर-ऊपर होगा। तुम्हारी आत्मा से पैदा न होगा। चीन में एक बड़ी पुरानी उक्ति है, कि जब संगीतज्ञ परिपूर्ण हो जाता है, तो वीणा को तोड़ देता है। क्योंकि वीणा भी सिक्खड़ की खबर देती है। और जब धनुर्धारी परिपूर्ण हो जाता है, तो धनुष को छोड़ देता है।

एक बड़ी पुरानी ताओ कथा है कि एक आदमी बहुत बड़ा धनुर्विद हो गया। सम्राट ने घोषणा की राज्य में, कि इससे बड़ा कोई धनुर्विद नहीं है। अगर कोई प्रतियोगी सोचता हो कि इससे बड़ा धनुर्विद है तो आ कर प्रतियोगिता कर ले। अन्यथा यह आदमी राज्य का सर्वोत्तम धनुर्विद घोषित कर दिया जाएगा। तीन महीने का समय दिया।

दूसरे ही दिन एक बूढ़ा आदमी आया। और उस धनुर्विद से बोला, इस पागलपन में मत पड़ो। क्योंकि मैं एक ऐसे आदमी को जानता हूं, जो तुमसे बड़ा धनुर्विद है। तो उस धनुर्विद ने कहा, तो वह आ जाए और प्रतियोगिता कर ले।

तो वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा, जो जितना बड़ा हो जाता है, उतना प्रतियोगिता के पार हो जाता है। यह तो बच्चों का काम है—प्रतियोगिता, काम्पीटीशन। वह नहीं आएगा। अगर तुम्हें सीखना है तो तुम्हें ले चल सकता हूं।

धनुर्विद हैरान हुआ। क्योंकि उसने सोचा भी न था, कि यह बात भी हो सकती है कि बड़ा धनुर्विद हो, लेकिन बड़े होने के कारण प्रतियोगिता में न उतरे। छोटे उतरते हैं प्रतियोगिता में—स्वभावतः। क्योंकि छोटे ही बड़ा होना सिद्ध करना चाहते हैं। इसलिए प्रतियोगिता में उतरते हैं। ताकि सिद्ध हो सके, हम बड़े हैं। जो बड़ा है। वह बिना किसी प्रमाण के बड़ा है। उसे कोई प्रतियोगिता और किसी सम्राट का सर्टिफिकेट नहीं चाहिए।

मनसविद कहते हैं, सिर्फ हीन ग्रंथि से पीड़ित लोग प्रतियोगिता में उतरते हैं; जिनके मन में इनफिरिआरिटी काम्प्लेक्स है, जो डरे हैं। जो भीतर तो जानते हैं, कि हम योग्य नहीं हैं, लेकिन किसी तरह सिद्ध करना है, तो कैसे सिद्ध करें? जिसकी गरिमा स्वयंसिद्ध है, स्वतः प्रमाण है, तो प्रतियोगिता में तो उतरता नहीं।

बात तो जंची। धनुर्विद ने कहा, मैं आता हूं। वह पीछे उस बूढ़े के गया। वह धनुर्विद को ले गया पास के जंगल में। और वहां एक व्यक्ति था। वह लकड़ी काट रहा था। तो धनुर्विद ने पूछा, यह आदमी धनुर्विद है? कहा, यह आदमी धनुर्विद है। इसका धनुष कहां है? तो उस बूढ़े आदमी ने कहा, कि जो वास्तविक धनुर्विद है, वह धनुष को चौबीस घंटे टांगे हुए नहीं घूमता। पर धनुर्विद ने कहा, अगर ऐसा मौका आ जाए और संघर्ष हो जाएं? उसने कहा, धनुर्विद है। वह तो हाथ से भी तीर चला सकते हैं। तीर की भी जरूरत नहीं।

तो उस धनुर्विद ने दूर से खड़े होकर एक आड़ से और तीर मारा। वह जो लकड़ी काटने वाला लकड़ हारा था, उसने लकड़ी का एक छोटा सा टुकड़ा ले कर तीर पर चोट की, जो तीर आ रहा था। तीर वापस लौट गया। जा कर धनुर्विद की छाती में चुभ गया।

धनुर्विद आया, पैर पर गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे क्षमा करें। मैं तो सोचता था, धनुष के बिना कहीं धनुर्विद्या आई है? मगर तुमने तो अनूठे हो। यह कला मैं कैसे सीख सकूंगा? उसने कहा, मेरे पास रहो, सीख जाओगे।

तीन वर्ष लगे। वह यह कला सीख गया। लौटने लगा सम्राट के महल, तो उस धनुर्विद ने कहा, लेकिन रुको। मैं कुछ भी नहीं हूं। मेरा गुरु अभी जीवित है। मैं तो ऐसे ही लकड़हारा हूं। ऐसा थोड़ा अच्छिष्ट गुरु से पा लिया, वही हूं। क्योंकि जो वास्तविक धनुर्विद है, वह लकड़ी भी क्यों फेंकेगा? उसकी आंख इशारा काफी है। आंश का इशारा भी क्यों? उसके मन की धारणा काफी है। अभी जाओ मत।

यह यात्रा तो लंबी मालूम पड़ी। तीन साल तो इस आदमी के साथ बीत गए। सोचा था कि अब पारंगत हो गया। अब कोई उपद्रव न रहा। इसका गुरु भी है। लेकिन अब लौटने का भी कोई उपाय न था। रस उसे भी लग गया था।

चला इस लकड़हारे के साथ पहाड़ की बड़ी ऊंची चोटियों पर। एक अत्यंत बूढ़े आद
मी को देखा, जिसकी कमर झुकी हुई थी। जो कम से कम सौ के पार कर चुका था
उम्र। उस लकड़हारे ने कहा, यही मेरे गुरु हैं। उसे थोड़ी हंसी आने लगी। इसकी
तो कमर झुकी है, यह तो निशाना भी नहीं लगा सकता। लेकिन अब हिम्मत खो चु
की थी पुराने अहंकार की। उसने कहा, पता नहीं...! उस बूढ़े से कहा, कि हमें भी
सीखना है। तुम्हारे चरणों में आए हैं। उसने कहा, पहले परीक्षा से गुजरना पड़ेगा।
आओ मेरे पीछे।

वह पहाड़ की कगार पर गया। एक भयंकर चट्टान, जो खड्ड के ऊपर दूर तक चली
गई थी और जिसके नीचे हजारों फीट गहरा खड्डा था; जिस पर जरा से चूक गए,
कि मृत्यु सुनिश्चित थी। वह बूढ़ा जा कर उस चट्टान की कगार पर खड़ा हो गया।
आधा पैर खड्डे में झांकता हुआ कमर झुकी हुई, सिर्फ ऐड़ी के बल खड़ा। उसने क
हा, आओ मेरे पास।

उसके हाथ-पैर कंपने लगे। वह उससे दूर ही, उससे चार फीट दूर ही गिर पड़ा घब.
डा कर। जो उसने खड्ड के नीचे देखा, ज्वरग्रस्त हो गया शरीर।

उस बूढ़े ने कहा, तुम कैसे धनुर्विद हो सकोगे? जिसके मन में भय है, उसका तीर ि
नशाने पर कैसे लगेगा? भय तो कांपता ही रहता है। उसका हाथ कंपता रहेगा। अं
धों को न दिखाई पड़े, लेकिन जिसके पास आंख है, वह तो देख ही लेता है, कि ते
रा हाथ कंप रहा है। जहां भय है, वहां कंपन है। अभय ही निष्कंप होता है। तू तो
यहां इतना कंप रहा है कि गड्ढे के पास नहीं जा सकता। तो तू निशाना क्या लगाए
गा? भाग जा यहां से।

उस धनुर्विद ने कहा जाते समय, मैं घबड़ा गया हूं। मेरी हिम्मत नहीं है इस शिक्षा
में आगे उतरने की। मैं पहली परीक्षा में ही सफल हो गया। मैं यह खयाल ही छोड़
देता हूं अब धनुर्विद होने का। आप ठीक कहते हैं, मेरे भीतर कंपन है, डर है घबड़
ाहट है।

और निश्चित ही जब भीतर भय हो, तो हाथ भी कंपेगा। दिखाई पड़े न दिखाई पड़े
। और जब हाथ कंपेगा, तो चाहे दुनिया को दिखाई पड़े कि निशाना लग गया है,
लेकिन उस बूढ़े धनुर्विद ने कहा, हम तो जानते हैं, निशाना चूक गया। निशाना लगा
ने से थोड़े ही लगता है। निशाना वहां थोड़े ही है। निशाना तो भीतर है। अकंप हृद
य चाहिए। बस फिर सब हो जाता है।

ऊपर पक्षियों की एक कतार उड़ रही थी। उस बूढ़े आदमी ने ऐसे हाथ का इशारा
किया और हाथ को नीचे गिराया। पच्चीस पक्षी नीचे गिर गए। सिर्फ इशारे से!
भाव काफी है। अगर अकंप हृदय हो तो जो भाव हो, वह तत्क्षण यथार्थ हो जाता
है। अगर अकंप हृदय हो तो विचार वस्तुएं हो जाते हैं। शब्द घटनाएं हो जाती हैं।
इसलिए तो ऋषियों के आशीर्वाद का इतना मूल्य है। लोग उनके पास सिद्धांत सम
झने थोड़े ही जाते थे; उनकी अनुकंपा लेने। वे आशीर्वाद दे दें। बस, उतना ही काफ
ी है। इसलिए तो ऋषि से अगर अभिशाप निकल जाए, तो उससे बचना मुश्किल है।

इसलिए तो सारी हिंदू कथाएं हैं कि ऋषि ने अगर अभिशाप दे दिया तो जन्मों-जन्म
ों तक पीछा करेगा। हालांकि ऋषि अभिशाप देते नहीं। जो दे, उनके ऋषि होने में
थोड़ा संदेह है। दुर्वासा को ऋषि कहना उचित नहीं है।
अभिशाप ऋषि से निकल कैसे सकता है? वे तो कथाएं हैं। वे तो कथाएं सिर्फ इस
बात की सूचक हैं, कि यदि ऋषि दुर्वासा जैसा हो और अभिशाप दे दे, तो जन्मों-ज
न्मों तक उससे छुटकारा नहीं। क्योंकि उसके शब्द सत्य हो कर रहेंगे। ऋषि तो आ
शीर्वाद ही देता है।
इसलिए दुर्वासा कभी हुए नहीं। वह तो समझाने के लिए है। वह तो समझाने के लि
ए है कि विपरीत भी सच है। होता नहीं, लेकिन अगर हो, तो जन्मों-जन्मों तक उ
ससे छुटकारा नहीं है। ऋषि तो वही है, जिसका प्राण प्रतिपल आशीर्वाद दिए जाता
है। वस्तुतः ऋषि से आशीर्वाद मांगना भी नहीं पड़ता। तुम सिर्फ अपने भिक्षापात्र को
लेकर मौजूद हो जाओ, हृदय को लेकर मौजूद हो जाओ, उसके आशीर्वाद गिर ही
रहे हैं। वह जो कहता है, वह होकर रहेगा। वह जो सोचता है, वह होकर रहेगा।
इसलिए जो लोग ध्यान में उतरते हैं, उनके लिए बुद्ध ने एक नियम बनाया है। ध्या
न के पूर्व उन्हें अपने विचारों पर परिपूर्ण नियंत्रण कर लेना चाहिए। क्योंकि कभी-क
भी ऐसा हो सकता है, कि तुम्हें थोड़े से ध्यान की क्षमता हो जाए और कभी क्षण
भर को तुम मौन होने लगो, और विचारों पर पूरा नियंत्रण न हो और कोई अलग
विचार उस समय तुम्हारे मन के आकाश से गुजर जाए, तो वह पूरा हो जाए।
और गलत विचार तुम्हारे मन में चौबीस घंटे गुजर रहे हैं। जरा किसी ने गाली दे
दी और तुम कहते हो, मर जाओ। अभी कहते हो, कोई हर्जा नहीं। क्योंकि कोई म
रता नहीं। तुम्हारे कहने से क्या होता है? लेकिन अगर ध्यान का क्षण हो, मन थोड़
ा शांत हो, और यह विचार की तरंग दौड़ जाए, वह आदमी मर जाएगा। तत्क्षण
मर जाएगा।
इसलिए समस्त ध्यानियों ने, पतंजलि ने, बुद्ध ने, समस्त ज्ञानियों ने ध्यान के पहले
शील को रखा है। उसका कारण यह नहीं है, कि चरित्रहीन ध्यान को नहीं पा सकत
ा है। चरित्रहीन ध्यान को पा सकता है। लेकिन चरित्रहीन का ध्यान खतरनाक हो
जाएगा। इसलिए शील प्राथमिक है।
इसलिए पतंजलि के आठ नियम हैं। बुद्ध का अष्टांग मार्ग है। महावीर के पंच महाव्र
त है। उनका ध्यान से कोई सीधा संबंध नहीं है। ध्यान उनके बिना हो सकता है। ले
किन तब ध्यान अभिशाप पैदा हो सकता है। तब दुर्वासा पैदा हो सकता है। अगर दु
र्वासा कभी भी हुआ हो, तो शील के नियम छोड़कर उसने ध्यान किया होगा। तब
दुर्घटना घट सकती है।
गावन हारा कदे न गावै...
कवीर कहते हैं, जो असली गायक है, वहां गाता थोड़े ही है। उससे गीत पैदा होता
है। असली गायक स्वयं ही गीत है। वह गाता नहीं। क्योंकि गाना तो कृत्य है। अस
ली गायक की तो आत्मा ही गीत है। उसका होना गीतपूर्ण है। तुम उसके पास जा

कर संगीत सुनोगे। वह चुप बैठा हो, तो भी उसके चारों तरफ मधुर संगीत गूंजता हुआ तुम पाओगे। एक गुनगुनाहट हवा में होगी। एक गीत उसके होने से पैदा रहेगा। एक सन्नाटा—लेकिन संगीतपूर्ण। तुम्हें छुएगा, स्पर्श करेगा, तुम्हें भर देगा।

गावन हारा कदे न गावै।

इसलिए तो परमात्मा का गीत तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता। क्योंकि वह गा नहीं रहा, वह स्वयं गीत है। जब तक तुम परिपूर्ण शून्य न हो जाओ तुम उस गीत को न सुन पाओगे—अवधू, शून्य गगन घर कीजै। जैसे ही तुम शून्य-घर में प्रविष्ट हो जाओगे, वैसे ही वह गीत सुनाई पड़ने लगेगा, जो परमात्मा है।

गावन हारा कदे न गावै, अनबोल्या नित गावै।

बोलता नहीं, फिर भी नित उसका गीत चलता रहता है

नटवर पेखि पेखना पेखै, अनहद बेन बजावै।

और जिसने उसको देख लिया, नाचनेवाले को, उस गानेवाले को, उस नटवर को, उस नटराज को, उसने सब देख लिया। क्योंकि उसका नृत्य ही तो सारा दृश्य जगत है। ये जो तुम्हें फूल-पत्ते, आकाश, वृक्ष, बादल दिखाई पड़ रहे हैं, ये सब उसके नृत्य की भाव-भंगिमाएं हैं। पूरा अस्तित्व नाच रहा है। इसलिए हिंदुओं ने परमात्मा की जो गहनतम प्रतिभा गढ़ी है, वह नटराज है। और सारी प्रतिमाएं फीकी हैं। नटराज बेजोड़ है। नाचनेवालों का राजा! वह दिखाई नहीं पड़ता।

तिब्बत में एक कथा है, कि एक व्यक्ति नाचते-नाचते ऐसी दशा में पहुंच गया कि जब वह नाचता था, तो नाच ही रह जाता था और नाचनेवाला खो जाता था। सभी नर्क उसी दशा में पहुंच जाते हैं। तब उनके जीवन में अनूठी घटनाएं घटती हैं। वह नर्तक इस अवस्था में पहुंच गया वर्षों के नृत्य के बाद। जब वह नाचता था, तो शुरू में तो लोगों को दिखाई पड़ता था। थोड़ी देर में धुंधला हो जाता। और थोड़ी देर में धुएं की रेखा रह जाती और थोड़ी देर में नाचनेवाला खो जाता। कुछ दिखाई न पड़ता। लेकिन जो शांत हो सकते थे, वह उसके नृत्य को पूर शरीर पर स्पर्श होते अनुभव करते। क्योंकि उसके नृत्य से सारी हवा तरंगायित होती।

नटराज का अर्थ है, ऐसा नर्तक, जिसके भीतर नर्तक और नृत्य में भेद नहीं है। जो स्वयं अपना नृत्य है। जो नर्तक भी है और नृत्य भी है। यह सारा अस्तित्व उसका नर्तन है। और इस नर्तन को तुम समझ लो तो नर्तक मिल जाए। नर्तक मिल जाए, तो तुम नर्तक को समझ लो। प्रकृति को तुम ठीक से पहचान लो, तो परमात्मा की प्रतिमा उभर आए। या तो परमात्मा से तुम्हारा मिलन हो जाए, तो प्रकृति तुम्हें उसकी भाव-भंगिमा मालूम होने लगे।

आकाश पर घिरते बादल उसके चेहरे पर ही घिरते हैं। झीलों में चमकती शांति उसकी आंखों में ही चमकी है, उसकी आंखों की ही गहराई है। सब वही है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, सबका सारभूत! इसलिए तुम उसे खोजने जाओ, तो कहीं मिलेगा नहीं। तुम इस भ्रांति में मत रहना कि कहीं किसी दिन पहुंच जाओगे, परमात्म

ा आमने-सामने खड़ा है और तुम जैरामजी कर रहे हो। कभी तुम्हें परमात्मा आमने
-सामने न मिलेगा। वह सब है।
गावना हारा कदे न गावै, अनबोल्या नित गावै।
नटवर पेखि पेखना पेखै,
और जिसने उसे देख लिया, नृत्य के विस्तार को देख लिया। उसने सारा दृश्य समझ
लिया, जिसने द्रष्टा को समझ लिया।
अनहद बेन बजावै—उसकी वीणा तो अनहद बज रही है। तुम्हीं को अपने कान सम्हा
लने हैं। उसकी वीणा तो कभी रुकती नहीं। तुम्हें ही अपने को सम्हाल लेना है, ताि
क तुम वीणा को सुन सको।
कहनी रहनी निज तत जानै, यह सब अकथ कहानी।
धरती उलटि आकासहि ग्रासै, यहु पुरिसा की बाणी।
कहनी रहनी निज तन जानै—
तीन तरह के लोग हैं। एक, जिसको हम असाधु कहते हैं। उसकी कहनी और रहनी
विपरीत होती है। कहता कुछ है, करता कुछ है। कहता कुछ है, होता कुछ है। बो
लता कुछ। कहता पश्चिम जाता, जाता पूरब। उसके कहने में और उकसे होने में ए
क भयंकर अंतराल है। एक विपरीतता है। वह बंटा हुआ है, खंड-खंड है। यही द्वैत
का अर्थ है। असाधु सोचता कुछ बोलता कुछ, कहता कुछ है। तुम उस पर भरोसा
नहीं कर सकते।
दूसरा व्यक्ति है, जिसे हम साधु कहते हैं। वह जैसा बोलता है, वैसे ही रहने की चेष
टा करता है। कहानी और रहनी में एक तारतम्य बिठाता है। जैसा सोचता है, वैसा
ही जीने का उपाय करता है। लेकिन कोई उपाय कभी पूरा नहीं हो पाता।
असाधु से बेहतर। कम से कम उपाय करता है। लेकिन कहनी और रहनी एक हो न
हीं पाती। बड़े से बड़े साधु की भी करनी एक नहीं हो पाती। इसलिए तो साधु को
तुम दुखी देखते हो।
असाधु को तुम दुखी देखते हो, क्योंकि उसके जीवन में इतना विरोध है कि इस वि
रोध के कारण सुख पैदा नहीं हो सकता। तुम उसे कारागृह में देखते हो। अपराध से
भरा हुआ देखते हो। अपराध से घिरा हुआ देखते हो। हजार तरह का समाज उसे
दंड देता है और हजार तरह के दंड वह खुद अपने को देता है। उसका जीवन एक
व्यथा है, पीड़ा है। छूटना भी चाहता है उससे, तो छूट नहीं सकता। उस पर भरोसा
नहीं किया जा सकता। वह खुद अपने पर भरोसा नहीं कर सकता। उसका धोखा
गहरा है, इसलिए वह दुखी है।
साधु भी सुखी नहीं दिखाई पड़ता है। यह बड़ी चमत्कार की बात है। असाधु दुखी है
, समझ में आता है। साधु क्यों सुखी नहीं है? मैं ऐसे साधुओं को जानता हूं जो सा
ठ-साठ वर्ष से साधु रहे हैं। उनकी उम्र अस्सी हो गई। जवान थे, बीस वर्ष के थे, त
ब सक छोड़ दिया था। अब भी दुखी वहीं का वही है। बल्कि और घना हो गया, क

योंकि जैसे-जैसे मौत करीब आती है, वैसे-वैसे विफलता दिखाई पड़ती है। बस असा र हो गया। उनके भीतर भी गहन पीड़ा है। भले लोग! इसका क्या दुख है?
इनका दुख यह है कि ये लाख उपाय करते हैं कहनी और करनी को बिठाने के, वह बैठ नहीं पाती। उसमें भेद बना ही रहता है। अहिंसा सोचते हैं, हिंसा पूरी तरह ख ो नहीं पाती। करुणा सोचते हैं, चेष्टा भी करते हैं, चेहरा भी करुणा का बनाते हैं, आचरण भी सम्हालते हैं, लेकिन क्रोध जाता नहीं। ब्रह्मचर्य साधने की सोचते हैं, निष ठापूर्वक, आग्रहपूर्वक आयोजन करते हैं, लेकिन काम-वासना जाती नहीं। बल्कि कई बार बढ़ती मालूम पड़ती है।
कहनी और रहनी में चेष्टापूर्वक जो भी सामज्य बिठाएगा, वह भी दुखी रहेगा। चेष्टा पूर्वक सामजस्य बैठ ही नहीं सकता।
फिर तीसरा व्यक्ति है, जिसको हम संत कहते हैं, जिसको हम परम साधु कहते हैं, ऋषि कहते हैं—कोई भी नाम दें। इस तीसरे व्यक्ति की रहनी और कहनी में एकत ा होती है। लेकिन यह एकता बाहर से बिठाई नहीं होती। वह निजत्व को जान लेत ा है, इसलिए होती है। वह स्वयं को पहचान लेता है, इसलिए उसके बाएं हाथ के भीतर एक एकता आ जाती है। क्योंकि दोनों उसके ही हाथ हैं।
इस भेद को ठीक से समझ लेना। वह स्वयं को जानता है, पहचान लेता है। उस पह चान के साथ ही उसका कहना, उसको सोचना, उसका आचरण, सब एक हो जाता है। क्योंकि सबके पीछे वह एक को खोज लेता है। यह जो एक की खोज है, यह ि वरोध में सामजस्य बिठाने से कभी हीं आती। यह सीधा एक को खोजने से ही फलि त होता है।
कहनी रहनी निज तत जानै। जिसने निज तत्व को जान लिया, उसकी कहनी और रहनी एक हो जाती है।
यह सब अकथ कहानी।
यह कहानी है, जिसे कहना बहुत मुश्किल। क्यों कहना मुश्किल है? संतों ने सदा क ही है। फिर भी तुम सुन नहीं पाए, इसलिए कहनी मुश्किल है। इसलिए अकथ कहा नी।
संत सदा से कहते रहे हैं कि तुम स्वयं को जान लो तो तुम्हारे आचरण और विचार में एकता आ जाएगी। आत्मा को पहचान लो, तो एकता आ जाएगी। तुम एकता करने की कोशिश करते हो और सोचते हो, एकता आने से शायद आत्मा को जानन ा हो जाएगा। तुम गाड़ी के पीछे बैल जोतते हो।
और तुम्हारा भी कारण है, कि ऐसा तुम क्यों करते हो। वह कारण समझ लेना चा हिए। तुम्हारी भांति के पीछे जरूर कोई बुनियादी आधार है। वह आधार यह है कि संतों को जब भी तुमने देखा है, तो उनकी आत्मा तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती, उन का आचरण दिखाई पड़ता है। आचरण दिखाई पड़ता है, आत्मा तो दिखाई नहीं पड़ ती। इसलिए जो दिखाई पड़ता है वह तुम्हें बहुत मूल्यवान मालूम पड़ता है। और ज ो नहीं दिखाई पड़ता, उसका तो तुम मूल्यवान कैसे समझोगे?

इसको समझो। महावीर को आत्मज्ञान हुआ। आचरण में अहिंसा आ गई। उनका अ ात्मज्ञान तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। उसे तो तुम कैसे देखोगे? तो तुमने आचरण में आई अहिंसा को देखा। वह तुम्हें दिखाई पड़ी। वह महत्वपूर्ण हो गई। तुमने समझ ा कि महावीर अहिंसक हो गए हैं। शायद इसीलिए आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। ब ात बिलकुल उलटी थी। महावीर आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए थे, इसलिए अहिंसा को उपलब्ध हुए थे। तुमने जाना, अहिंसा को उपलब्ध हुए, इसलिए आत्मज्ञान मिला है । आत्मज्ञान तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता।

स्वभावतः दृश्य को तुम आधार बनाते हो, अदृश्य को उसका परिणाम तुम्हारी आंख जो दिखाई पड़ता है उसको पकड़ती है। जो नहीं दिखाई पड़ता, उसको कैसे पकड़ेग ी? तो तुम सोचते हो, मैं भी अहिंसा को उपलब्ध हो जाऊं, तो मुझे भी आत्मज्ञान उपलब्ध होगा। बस, गणित गलत हो गया। यात्रा गलत शुरू हो गई।

अब तुम लाख उपाय करोगे अहिंसक होने के, थोड़े बहुत होते हुए मालूम भी पड़ोगे , लेकिन जितनी ही चेष्टा करोगे, उतनी ही तुम पाओगे कि असंभव है यह होना। हो नहीं पाता। बिठा पाते हो समाज, बिखर जाता है। किसी तरह सम्हाल पाते हो, जरा सी घना मिटा देती है। वर्षों सम्हालते हो, क्षण भर में टूट जाता है। ताश के पत्तों का घर मालूम होता है। जरा सा झोंका हवा का आया कि गया। अहंकार को मिटाने की कोशिश करते हो, मिटता नहीं। क्रोध को हटाने की कोशिश करते हो, ह टता नहीं।

कबीर कहते हैं, यह सब अकथ कहानी। इसे कहना मुश्किल। क्योंकि कहते से ही य ह गलत समझी जाती है। उल्टी समझ लेते हैं लो। हम कुछ कहते हैं, लोग कुछ स मझ लेते हैं। इसलिए अकथ कहानी। इसलिए नहीं, कि यह कही नहीं जा सकती। इ सलिए कि कितना ही कहो, समझी नहीं जाती।

धरती उलटि आकासहि ग्रासै, यहु परिसा की बाणी।

और यही परम-पुरुषों की वाणी है; आप्त पुरुषों की। धरती उलटि आकासहि ग्रासै—ि क तुम जिस जीवन को अब तक समझते रहे हो, उसे ठीक उलटा नियम है। जैसे ध रती उलट कर आकाश को ग्रस जाए, या जैसे बूंद में सागर गिर जाए। तुम जो स मझते हो, उसने उलटा नियम है। तुम्हारी समझ का नियम काम नहीं आएगा। तुम्हा री समझ के नियम के अनुसार तुम चलते रहे हो। वही तुम्हें भटकाया है।

इससे ठीक उलटा नियम है। उलटा क्या है? कि तुम स्वयं को जान लो, सब सध ज ाएगा। और तुम सब साधते रहो, तुम स्वयं को न जान पाओगे। उपनिषदों ने कहा है एक को साधने से सब सध जाता है। महावीर ने भी कहा है, एक को जानने से सब जान लिया जाता है। इक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय। तुम बहुत साध र हे हो। बहुत को साधने की जरूरत नहीं है।

समझो, क्रोध को आदमी साधता है, तो क्रोध को किसी तरह अगर दबा ले, तो उस में कामवासना बढ़ जाएगी। क्योंकि जितनी ऊर्जा क्रोध में जाती थी, उतनी ऊर्जा अ ब दूसरी तरफ से बहने लगेगी। एक आदमी कामवासना को साधता है। वह किसी

तरह ब्रह्मचर्य को बिठा लेता है। जबरदस्ती। कामवासना तो कम हो जाती है, लेकिन जो ऊर्जा कामवासना से निकलती थी, वह क्रोध में निकलने लगती है। इसलिए ब्रह्मचारियों को तुम सदा ही क्रोधी पाओगे। भयंकर क्रोधी। उनके आंख पर ही क्रोध रखा है। यह अकारण नहीं है, वैज्ञानिक है। अगर तुम लोभ को दबाओगे, तो कुछ और बढ़ जाएगा।

लेकिन तुम्हारे जीवन की दशा वही रहेगी। चुकता हिसाब उतना ही रहेगा। उसमें फर्क न पड़ेगा। एक साधे सब सधे। अगर बीमारी को साधने गए, तो कितनी बीमारियां हैं। अनंत बीमारियां हैं। साधते-साधते जनम-जनम बीत जाएंगे। तुम कभी न साध पाओगे। एक तरफ से सम्हालोगे, पाओगे दूसरी तरह से उपद्रव शुरू हो गया है। दूसरी तरफ सम्हालने जाओगे, पाओगे पुरानी तरफ से फिर यात्रा ऊर्जा की शुरू हो गई। तुम पगला जाओगे। तुम विक्षिप्त हो जाओगे। तुम थक जाओगे। तुम हार जाओगे। तुम्हारा आत्मविश्वास खो जाएगा। नहीं, बहुत को साधने में मत पड़ना। कुंजी एक है। उससे सब ताले खुल जाते हैं।

कहनी रहनी निज तत जानै–

वही सूत्र है : स्वयं को जान लेना। इसलिए ध्यान पर इतना जोर है मेरा।

लोग मेरे पास आते हैं। कहते हैं, क्रोधी हैं, क्या करें? उनसे मैं कहता हूं, तुम अलग से मत सोचो। तुम ध्यान करो। उनकी समझ में नहीं आता। वे कहते हैं, क्या ध्यान से क्रोध चला जाएगा?

ध्यान से समझ आएगी; क्रोध नहीं जाएगा। लेकिन समझ आ जाए, तो क्रोध पैदा नहीं होता। ध्यान से बोध बढ़ेगा, क्रोध नहीं जाएगा। लेकिन क्रोध तो उन्हीं को आता है, जो अबोध में हैं। कामी आते है, कहता है, कि बस! पागल हुआ जा रहा है। उससे भी मैं कहता हूं, तुम ध्यान करो। वह कहता है, क्या ध्यान से काम-वासना चली जाएगी? इसको कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता।

नहीं, ध्यान से काम-वासना कैसे जाएगी? लेकिन ध्यान से भीतर तुम सुखी होने लगोगे। जो भीतर सुखी है, वह दूसरे से सुख की मांग नहीं करता। जो स्वयं सुखी है, वह किसी द्वार पर सुख मांगने नहीं जाता। काम भिक्षा है दूसरे से सुख मांगने की। जो भीतर आनंदित है, वह संभोग में आनंद नहीं पाता। जिसको बड़ा आनंद मिल गया, वह छोटे आनंद की क्यों मांग करेगा? जहां रुपये बरस रहे हों, वहां वह कौड़ियां क्यों गिनता फिरेगा? और जहां हीरे-जवाहरात हाथ में आ जाएं, वहां कोई समुद्र के किनारे रंगीन पत्थर, सीप, मोती इकट्ठे करते फिरता है? बात गई!

लोग मुझसे कहते हैं, कि आप तो–हम अलग-अलग बीमारियां लेकर आते हैं, इलाज एक ही बता देते हैं। मैं भी क्या कर सकता हूं? इलाज एक ही है।– लोग चाहते हैं, उनकी बीमारियों की मैं चर्चा करूं। उनकी बीमारियों पर ध्यान दूं। विशिष्टता है, वे अलग बीमारी लाए हैं। बीमारी का कोई मूल्य नहीं है। औषधि तो एक है। औषधि रामबाण है। कोई अलग-अलग इलाज की जरूरत नहीं है।

तुम सबकी बीमारी एक है; वह आत्म-अज्ञान है। बाकी सब बीमारियां उस बीमारी की छायाएं हैं। छायाओं से कौन लड़ेगा? लड़ कर कौन कब जीता है? तुम मूल बीमारी पर चोट कर दो। इसलिए समस्त ज्ञानी कहते हैं, आत्मज्ञान एकमात्र मार्ग है और आत्मज्ञान के लिए ध्यान एकमात्र कुंजी है।

और तब ऐसी घटना घटती है।

धरती उलटि आकासहि ग्रासै—

कि तुम, जो छोटे मालूम पड़ते हो, छोटे हो नहीं। तुमने वामन का अवतार लिया होगा, मगर वामन में भी परमात्मा का अवतार छिपा है। तुम कितने ही छोटे हो, तुम छोटे हो नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक सर्कस आया था और उसने सर्कस में दरख्वास्त दी। कोई और काम मिल नहीं रहा था, उसने सोचा, सर्कस में भरती हो जाएं। दरख्वास्त में उसने लिखा कि मैं दुनिया में सबसे बड़ा ठिगना आदमी हूं। मैनेजर भी थोड़ा चकित हुआ, कि यह किस तरह का आदमी है? सबसे बड़ा ठिगना आदमी? बुलाने योग्य है। क्योंकि सर्कस तो ऐसे करिश्मों में उत्सुक रहते हैं। नसरुद्दीन को बुलाया। जब नसरुद्दीन वहां जाकर खड़े हुए तो मैनेजर भी थोड़ा परेशान हुआ। होंगे कम से कम छह फीट चार इंच। उसने कहा, तुम अपने को ठिगना आदमी कहते हो? उसने कहा, मैंने पहले ही लिखा है, सबसे बड़ा ठिगना आदमी। मुझसे बड़ा कोई ठिगना आदमी नहीं।

तुम कितने ही ठिगने हो, तुम कितने ही वामन हो, कितना ही छोटा रूप रखा हो तुमने, पर पूरा परमात्मा तुममें मौजूद है। रत्ती भर कम नहीं। बूंदें। बूंद में सागर मौजूद है। बूंद में सागर का सारा सार मौजूद है। एक बूंद को समझ लो, सारा सागर समझ में आ गया। अब बचा क्या सागर में समझने को? एक बूंद का सूत्र पकड़ में आ जाए एच. टू. ओ, पूरा सागर पकड़ में आ गया। एक बूंद को तोड़ कर जान लिया, कि उदजन और आक्सीजन की मेल है, पूरा सागर का रहस्य खुल गया। अब कोई हरेक बूंद को थोड़े ही जानना पड़ेगा।

इसलिए कबीर का वचन है, हेरत-हेरत हे सखि, रहया कबीर हिराई। बूंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई। यह पहला वचन है। इसके वर्षों बाद उन्होंने दूसरा वचन भी लिखा। पहले वचन में वे कहते हैं, बूंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई। बूंद समुद्र में खो गई। अब उसे वापस कैसे निकालूं?

कुछ वर्षों बाद उन्होंने पद को फिर से लिखा और लिखा, हेरत हेरत हे सखि, रहया कबीर हिराई, समुंद समाना बूंद में, सो कत हेरी जाई। समुद्र बूंद में समा गया। अब उसको कैसे निकालें? बूंद समुद्र में गिरी थी, तो कोई रास्ता भी तो था निकालने का। छोटी चीज, बड़ी चीज में गिरी थी। खोज लेते। अब तो बड़ी मुश्किल हो गई। समुद्र बूंद में गिर गया। अब कहां खोजूं?

दूसरा पद समाधि का है। पहला पद ध्यान का है। पहले पद में कबीर को ध्यान की पहली झलक मिली होगी। लेकिन जिसको जापान में सतोरी कहते हैं—पहली झलक।

पहली झलक में ऐसे ही लगता है, कि बूंद गिर गई समुद्र में। लेकिन जब ध्यान परिपूर्ण होता है जब ध्यान समाधि बनता है। जब ध्यान से वापस लौटना बंद हो जाता है, जब ध्यान सतत रहता है, अनर्निश बहती है धारा, अखंड होता है, तब दूसरा पद कबीर ने लिखा है। समुंद समाना बूंद में सो कत हेरी जाई। अब और मुसीबत हो गई। बूंद तो खोज भी लेते। किसी तरह निकाल भी लेते। अब यहां समुद्र बूंद में गिर गया है। अब खोजने का कोई उपाय न रहा।

और यह सच है। ध्यान के बाद तो लौटना संभव है। समाधि के बाद लौटना संभव नहीं है। ध्यानी तो वापस लौट सकता है, गिर सकता है। ध्यानी चढ़ता है शिखर पर। किसी क्षण में ध्यान की प्रगाढ़ता होती है। फिर सो जाता है। फिर वापस उतर आता है। फिर अंधेरी गलियों में भटकने लगता है। फिर घाटियों का अंधेरा आ जाता है। पहाड़ का सूरज खो जाता है। शिखर की चमक खो जाती है। फिर चढ़ता है, फिर खोता है। ध्यानी तो बहुत बार लौटता है। इसलिए सतोरी समाधि नहीं है।

समाधि तो ऐसी अवस्था है, जिससे लौटना नहीं होता। बुद्ध ने दो शब्द उपयोग किए हैं। ध्यान को वे कहते हैं, स्रोतापन्न; जो नदी की धारा में उतरा, लेकिन चाहे तो वापस लौट सकता है। किनारा अभी मौजूद है। स्रोतापन्न--स्रोत में उतरा। बस, उतरा ही है अभी। चाहे, तो छलांग लगा कर वापस किनारे पर आ जाए।

समाधिस्थ को बुद्ध कहते हैं अनुगामी; जो फिर नहीं लौट सकता। जैसे नदी सागर में गिर जाए। फिर किनारा बचता ही नहीं है। कबीर का पहला सूत्र तो स्रोतापन्न का है और दूसरा सूत्र अनुगामी का। फिर कोई उपाय नहीं। फिर वह समाधि में ही भोजन करता, समाधि में ही सोता, समाधि में ही चलता, समाधि में ही बोलता। उसका होना समाधिस्थ होगा। सागर बूंद में खो गया।

धरती उलटि आकासहि ग्रासै, यहु परिसा की बाणी।

यह परम-पुरुषों की वाणी है। आप्त पुरुषों की वाणी है। जिन्होंने जाना है, उनकी वाणी है। ऐसी घड़ी आती है कि बूंद ग्रस लेती है सागर को। ऐसा अंश ग्रस लेता है अंशी को। ऐसी घड़ी आती है, आत्मा में परमात्मा लीन हो जाता है। ऐसी घड़ी आती है, कि अणु में विराट छिप जाता है।

बाज पियालै अमृत सौख्या...

उस घड़ी में पानी नहीं पड़ता और अमृत पीया जाता है। प्याली की जरूरत नहीं होती। पीने की जरूरत नहीं होती। बाज पियालै अमृत सौख्या अमृत पीया जाता है। न प्याली की जरूरत होती, न पीने की जरूरत होती।

नदी नीर भरि राख्या--फिर नदी सागर में नहीं गिरती। अब तो सागर ही नदी में गिर गया। फिर तो नदी में ही सागर समा जाता है।

...नदी नीर भरि राख्या।

इसलिए समाधिस्थ व्यक्ति भरा है अनंत सागर से। तुम कितना ही उससे ले लो, चुकेगा न। तुम जितना चाहो, उतना ले लो। तुम लेने में संकोच मत करना। नदी नीर भरि राख्या। अब तो नदी नहीं है यह, कि तुम चुका दो। कि गर्मी के दिन आए

और सूख जाए, रेत रह जाए और कहीं-कहीं डबरों में थोड़ा पानी रह जाए। अब य
ह कोई नदी नहीं है। जिसे सूरज सुखा दे। नदी नीर भरि राख्या—अब तो नदी सागर
को भर ली अपने में। अब यह सूखेगी न। अब कोई सूरज इसे सुखा न सकेगा। अब
कोई ग्रीष्म न आएगी। अब यह सदा भरपूर रखेगी। समाधि सदा हरी अवस्था है।
सदा यौवन।

कहै कबीर ते बिरला जोगी धरणि महारस चाख्या।

उस जोगी को कबीर कहते हैं वह बिरला है।

तीन तरह के लोग मैंने तुमसे कहे। एक असाधु, जो धरती का रस चखने की कोशि
श करते हैं। लेकिन जानते नहीं, कैसे चखें! जानते नहीं, कहां से चखें! असाधु सुख
के पानी की कोशिश करता है। लेकिन जानता नहीं सुख कैसे पाया जाए।

पाने की कोशिश तो असाधु भी सुख की ही करता है, पाता सुख है। आकांक्षा तो सु
ख की है, मिलता दुख है। क्योंकि आकांक्षा पर्याप्त नहीं है। जरूरी है, काफी नहीं है
। फिर मार्ग भी चाहिए फिर विधि भी चाहिए। फिर ठीक-ठीक खोज भी चाहिए। ठी
क खोज के लिए चेतना चाहिए, होश चाहिए। असाधु सुख खोजता है, लेकिन जहां
खोजता है, वहां दुख पाता है।

साधु भी सुख खोजता है। उसके पास थोड़े सूत्र भी हैं, लेकिन उलटे हैं। जैसे चाबी
को कोई उलटा ताले में लगाता हो, तो ताला नहीं खुलता। सिर मारता है साधु। च
ाबी हाथ में है। उलटी पकड़ी है। ताला बिलकुल करीब है। जरा चाबी को ठीक कर
लेने की जरूरत है। लेकिन उलटी चाबी को ताले में डालने की कोशिश करता है।
उससे कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है, कि ताला भी खराब हो जाता है। फिर शाय
द सीधी भी कर लो चाबी, तो भी मुश्किल होती है खोलने में।

फिर संत पुरुष हैं, जो चाबी को सीधा पकड़ते हैं। जो एक को खोजते हैं। एक को
साधते हैं। निज-तत्व को जानते हैं। फिर उनकी कहनी, रहनी एक हो जाती है। ता
ला खुल जाता है।

तुमने लाते देखे हैं, ऐसे ताले, जो पहली की तरह होते हैं? जिनमें चाबी नहीं लगा
नी पड़ती जिनमें कुछ नंबर लगे होते हैं। बहुत बड़े धनी लोग उस तरह के ताले का
उपयोग करते हैं। नंबरो को एक खास ढंग पर बिठाना पड़ता है तो ताला खुल जा
ता है। वह तो कोई जानता है। जो जानता है, वही नंबरो को खास ढंग में बिठा स
कता है। चोर उसकी चाबी नहीं बना सकते। क्योंकि वह तो बड़ा गणित का सवाल
है। वर्षों की मेहनत करके भी कोई उसके ठीक से नहीं जमा सकता। जानता है, त
ो ही ठीक जमा सकता है। क्योंकि अगर तुम ऐसा भूल-चूक के सिद्धांत से जमाने क
ी कोशिश करो, तो लाखों बार जमाओगे तब कहीं एकाध बार जम जाए। वह भी प
क्का नहीं है।

ये कहनी और रहनी अंक हैं उस ताले पर। ये दोनों बिलकुल ठीक जम जाते हैं जब
तुम वही कहते हो, जो तुम हो। जब तुम वही हो, जो तुम कहते हो। जल तुम्हारे
होने में कोई द्वंद्व नहीं रह जाता, एक ही संगीत छा जाता है, तब ताला खुल जात

ा है। संत पुरुष ताले के खोल लेते हैं एक को जानकर। वे दो को जमा लेते हैं। जम ाना पड़ता नहीं, वे अपने आप जम जाते हैं। एक के जानने में दो जम जाते हैं। अद्वैत के जानने में द्वैत जम जाता है।

कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या।

और ऐसा व्यक्ति परमात्मा का ही आनंद नहीं लेता, ऐसा व्यक्ति धरणी के भी महा रस को पाता है। ऐसा व्यक्ति परम तत्व को चखता है, उस परमात्मा को तो पीता ही है, लेकिन इस प्रकृति को भी पीता है। वह फूलों को देखकर भी आनंदित होता है। और तुम इतने आनंदित न हो सकोगे फूलों को देखकर।

सोचा थोड़ा बुद्ध को फूलों के पास से गुजरते! बुद्ध को जैसा आनंद मिलेगा। फूल में, तुम्हें न मिलेगा। क्योंकि असली सवाल फूल हनीं है। असली सवाल तुम हो। बुद्ध अपने आनंद भरे हृदय से फूल की तरफ देखते हैं। फूल अनंत रहस्य से भर जाता है। फूल में तुम वही देखते हो, जो तुम हो। फूल तो दर्पण है। फूल के दर्पण में बुद्ध अपने को ही देखते हैं। इसलिए फूल जो सुवास बुद्ध को देगा, वह तुम्हें न देगा।

जिसने अपन हृदय की कुंजी पा ली, जिसने भीतर का हृदय खोल लिया, उसके हाथ थे मास्टर-की आ गई। उसके हाथ में मूल कुंजी आ गई। वह फूल को भी खोल लेगा। वह झरने को भी खोल लेगा। वह भोजन को भी खोल लेगा। वह प्रेम को भी खोल लेगा। और सब तरफ से उस पर वर्षा हो जाएगी। उसकी संवेदनशीलता अनंत हो जाती है।

ध्यान रखना, महायोगी संवेदनशून्य नहीं होता, महासंवेदनशील होता है। महायोगी अस्वाद में नहीं जीता, परम स्वाद में जीता है। इसलिए परम स्वाद को बनाना अपना व्रत। और महायोगी संसार के विपरीत नहीं होता। संसार से भी परमात्मा के ही रस को पाता है।

एक बार खुद का दीया जल जाए, कि सभी तरफ से आनंद की धाराएं बहनी शुरू हो जाती हैं। इसलिए कबीर उसको महायोगी कहते हैं। विरला योगी कहते हैं।

...धरणि महारस चाख्या।

योगी हैं...जो परमात्मा का रस चखते हैं, वह महायोगी नहीं। उनका परमात्मा अभी आधा है। वे अधूरे योगी हैं, जो आंख बंद करके परमात्मा का रस तो चख लेते हैं, आंख खोल कर प्रकृति का रस चखने में डरते हैं। इनका योग पूरा नहीं है, ये भयभीत हैं। इनका परमात्मा काफी नहीं है। इनका परमात्मा इतना काफी हनीं है, कि ये डरें न।

वास्तविक योगी भीतर आंख बंद कर के परमात्मा को चखता है। आंख खोल कर जगत को चखता है। भीतर चैतन्य को चखता है। बाहर संवेदनाओं को चखता है। बाहर और भीतर खो ही जाता है। बाहर और भीतर एक हो जाते हैं। जो बाहर है, वही भीतर है। जो भीतर है, वही बाहर है। जब तब बाहर भीतर का भेद है, तब तक तुम महायोग को उपलब्ध नहीं हुए। जिस दिन एक ही रह जाता है, क्या बाहर

और क्या भीतर? तुम्हारे घर के बाहर जो आकाश है, वही तुम्हारे घर के भीतर भी। जो तुम्हारे आंगन में समाया है, वही तो परम आकाश में भी फैला हुआ है। आंगन और आकाश में भेद कहां है? एक ही है। एक ही लहरें डोल रही हैं, बाहर और भीतर। बाहर-भीतर दो किनारे हैं। चैतन्य का सागर बीच से बह रहा है।

कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, रस के विरोध में मत जाना। महारस को चखना। जीभ को जला मत लेना। आंख को फोड़ मत लेना। कान को बधिर मत कर लेना। नाक को मार मत डालना—जगाना। उनको संवेदनशील बनाना। घबड़ाना मत।

मैं इस कहानी में भरोसा नहीं करता कि सूरदास ने आंखें फोड़ लीं—इस डर से कि आंखों से देखते हैं, तो सुंदर स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं। अगर उन्होंने ऐसा किया हो त ो सूरदास दो कौड़ी के हैं। मैं नहीं जानता कि ऐसा किया होगा। क्योंकि सूरदास के वचनों में ऐसा रस है। इसलिए मैं कहता हूं कि नहीं किया होगा। वचनों में ऐसा र स है, वह कैसे आंख फोड़ लेगा? यह कहानी नासमझों की गढ़ी होगी। जिसके वचन ों में इतना प्रेम है, वह कैसे आंख फोड़ लेगा? जिसके वचनों में कृष्ण के रूप का ऐ सा वर्णन है, वह कैसे आंख फोड़ लेगा?

नहीं। सूरदास अगर रहे होंगे, तो सुंदर स्त्रियों में भी उन्हें कृष्ण ही दिखाई पड़ें होंगे। सूरदास अगर हरे होंगे, तो सुंदर स्त्री की पायल में उनको कृष्ण की ही झंकार सुन ाई पड़ी होगी। सूरदास अगर रहे होंगे, तो सुंदर स्त्री के रूप में भी उन्होंने उस एक का ही रूप देखा होगा।

मैं तुमसे नहीं कहता। रस को मारना मत, अन्यथा तुम कभी भी पूरे परमात्मा को जानने में समर्थ न हो जाओगे। और अधूरा परमात्मा भी कोई परमात्मा है? अधूरा परमात्मा तो ऐसे ही है, जैसे कोई कहे आधा वृत्त। आधा कहीं वृत्त होता है! वृत्त तो पूरा होता है, तभी होता है। तभी होता है। आधार परमात्मा कहीं परमात्मा हो ता है? यह तो तुम्हारी मन की धारणा होगी, सिद्धांत होगा, शास्त्र होगा।

परमात्मा तो पूर्ण है। प्रकृति उसका अंग है। शरीर उसका घर है। तुम महारस को उपलब्ध हो सको, इसका ध्यान रखना। रूप में अरूप दिखने लगे, आकार को निराक ार दिखने लगे। शुद्ध में विराट की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगे, तब तुम इस अवस्था को उपलब्ध हो जाओगे, जिसको कबीर कहते हैं—

कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या।

आज इतना ही।

प्रीति लागी तुम नाम की

18 मई, 1975, प्रातः, ओशो आश्रम, पूना

प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरे नाही।
नजर करो अब मिहर की, मोहि मिलो गुसाई।।
बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़फे मेरा।

तुम देखन की चाव है, प्रभु मिला सवेरा।
नैना तरसै दरस को, पल पलम न लागे।
दर्दबंद दीदार का, निसि बास जागे।।
जो अब कै प्रीतम मिलें, करूं निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।
प्रेम, जीवन की परम समाधि है। प्रेम ही शिखर है जीवन ऊर्जा का वही गौरीशंकर है। जिसने प्रेम को जाना, उसने सब जान लिया। जो प्रेम से वंचित रह गया, वह स भी कुछ से वंचित रह गया।
प्रेम की भाषा को ठीक से समझ लेना जरूरी है। प्रेम के शास्त्र को ठीक से समझ ले ना जरूरी है। क्योंकि प्रेम ही तीर्थयात्रा है। उससे ही पहुंचनेवाले पहुंचे हैं। और जो नहीं पहुंचे, वे इसलिए नहीं पहुंचे कि उन्होंने जीवन को कोई और रंग दे दिया, जो प्रेम का नहीं था।
प्रेम का अर्थ है, समर्पण की दशा, जहां दो मिटते हैं और एक बचता है। जहां प्रेमी और प्रेम-पात्र अपनी सीमाएं खो देते हैं। जहां उनकी दूसरी समग्र रूपेण शून्य हो जा ती है। यह भी कहना उचित नहीं, कि प्रेमी और प्रेम-पात्र करीब आ जाते हैं; क्योंि क करीब होना भी दूरी है। कहना उचित नहीं, कि प्रेमी-पात्र करीब आ जाते हैं; क योंकि करीब होना भी दूरी है। पास नहीं आते, एक दूसरे में खो जाते हैं। निकटता में भी तो फासला है। प्रेम उतना फासला भी बर्दाश्त नहीं करता। प्रेम दो को एक ब ना देता है। प्रेम अद्वैत है। इस प्रेम को हम थोड़ा समझें।
तुमने भी प्रेम किया है। ऐसा तो व्यक्ति ही खोजना कठिन है, जिसने प्रेम न किया हो। गलत ढंग से किया हो, गलत प्रेम-पात्र में किया है, लेकिन प्रेम किए बिना तो कोई बच नहीं सकता। क्योंकि वह जो जीवन की सहज अभिव्यक्ति है।
तो तीन तरह के प्रेम हैं, वे समझ लें।
पहला, जिसमें सौ में से निन्यानबे लोग उलझ जाते हैं। वह वस्तुओं का प्रेम है—धन का, संपदा का, मकान का, तिजोड़ियों का। वस्तुओं का प्रेम, प्रेम के लिए सबसे बड़ ा धोखा है।
लेकिन उसमें कुछ खूबी है; इसलिए सौ में से निन्यानबे लोग उसमें पड़ जाते हैं। औ र वह खूबी यह है, कि वस्तुओं के प्रति तुम्हें समर्पण नहीं करना पड़ता। वस्तुओं को तुम अपने प्रति समर्पित कर लेते हो। तुम्हारी कार, तुम्हारी कार है। तुम्हारा मका न, तुम्हारा मकान है। तुम समर्पित होने से बच जाते हो। और तुम्हें यह अहसास हो ता है, कि वस्तुएं तुम्हारे प्रति समर्पित हैं। एक तरह का अद्वैत सध जाता है।
तुम हाथ में रुपया रखे हो। रुपए की सीमा और तुम्हारी सीमा मिट गई। रुपया बाध ा नहीं डालता सीमा के मिटने में। और तुम्हें समर्पण करने के लिए मजबूर नहीं कर ता। रुपया समर्पित है। तुम जो चाहो करो, रुपया नानुच नहीं करेगा। तुम चाहे नदी में फेंक दो, तुम चाहे भिखारी को दे दो, तुम चाहे कुछ सामान खरीद लो, तुम च

ाहे तिजोड़ी में सम्हाल कर रखो रुपए की अपनी कोई मनोदशा नहीं है। रुपया पूरा समर्पित है।

तुमने समर्पित कर लिया वस्तुओं को, इससे तुम्हें अहसास होता है कि अद्वैत सध ग या। यह अहसास झूठा है। क्योंकि वस्तुओं के समर्पण का कोई अर्थ ही नहीं होता। व स्तुएं तो चेतन नहीं है। उनका समर्पण, ना समर्पण बराबर है। तुम भ्रांति में हो। रुपया जितना तुम्हारे लिए समर्पित है, उतना ही उस भिखारी के लिए जिसको तुम दे दोगे, उसके लिए भी समर्पित है। नदी में फेंक दोगे, नदी के लिए भी समर्पित है। तिजोड़ी में रख दोगे, तिजोड़ी के लिए समर्पित है।

रुपया तो वेश्या है। उसका कोई समर्पण नहीं है। वह तो जिसके पास है उसके लिए समर्पित है। उसकी कोई आत्मा थोड़ी ही है। लेकिन समर्पित कर लिया किसी को, इससे भीतर एक भ्रांति पैदा होती है कि अद्वैत सध गया।

सौ मैं से निन्यानबे लोग इसी प्रेम में जीते और समाप्त हो जाते हैं--वस्तुओं का प्रेम यह सुविधापूर्ण भी है। क्योंकि रुपया, धन संपदा किसी तरह की कलह की स्थिति पै दा नहीं करते। तुम्हें उनसे लड़ना नहीं पड़ता। कोई संघर्ष नहीं है। बड़ी शांति है। ि तजोड़ी चुप बैठी है। तुम जब आज्ञा दो, सक्रिय हो जाती है। ज्ञान न दो, शांत तुम्हा री प्रतीक्षा करती है। धन परिपूर्ण सेवक है। इसलिए सौ में से निन्यानबे लोग धन पा ने को ही प्रेम समझ लेते हैं।

फिर धन में सुरक्षा है। किसी मित्र से प्रेम करो, पक्का नहीं है कि कल भी प्रेम करे गा। कल का कौन जानता है? क्षण भर में हवा बदल जाती है। मौसम बदल जाता है। क्षण भर पहले जो प्रेमपूर्ण था, क्षण भर बाद प्रेम से भर जाता है, अभी जो मि त्र था, अभी शत्रु हो सकता है।

इसलिए मित्र पर भरोसा नहीं किया जा सकता। पत्नी का क्या भरोसा है? पति का क्या भरोसा है? आज है, कल न हों। प्रेम का भी भरोसा हो, मौत का क्या भरोस ा? धन कभी नहीं मरता। धन अमृत है। व्यक्ति तो मरते हैं।

कल ही एक युवती मुझसे पूछती थी, कि उसको प्रेम किसी व्यक्ति से है। लेकिन दो नों की उम्र में बड़ा फासला है। उसकी उम्र होगी कोई तीस वर्ष। और उस व्यक्ति की उम्र है पचास वर्ष। प्रेम दोनों में गहन है, लेकिन वह भयभीत है। डर है उसे कि कहीं वह व्यक्ति मर न जाए, जल्दी, अन्यथा जीवन का अंत वैधव्य होगा। जीवन का अंत दुख से भर जाएगा। पीड़ा से भर जाएगा। इसलिए अपने को सम्हाले है। रो के हैं।

मौत का डर तो है। व्यक्ति तरे हैं, वस्तुएं कहां मरती हैं? और जब व्यक्ति मरते हैं, तो उनको रिप्लेस नहीं किया जा सकता। कोई दूसरा व्यक्ति उसकी गहन नहीं भर सकता। क्योंकि हर व्यक्ति अनूठा है। एक फियाट कार मर जाए, दूसरी फियाट कार उसकी जगह आ सकती है। कोई अंतर नहीं है। एक तरह की लाखों कारें हैं। लेकिन एक व्यक्ति मर जाए, तो उस जैसा व्यक्ति फिर इस संसार में कहीं भी नहीं है। उसे खो देने पर सदा के लिए ही खो देना होता है। कोई दूसरा उसकी जगह

को भर नहीं सकता। जगह सदा रिक्त रह जाती है। और हृदय में रिक्त जगह खल
ती है, चोट करती है, घाव बन जाती है। खतरा है व्यक्तियों के प्रेम में पड़ना। पचा
स साल के व्यक्ति के प्रेम में तो खतरा है ही, तीस साल के व्यक्ति के प्रेम में भी
खतरा है; क्योंकि तीस साल के व्यक्ति भी मर जाते हैं।
मौत तो सदा मौजूद है। सुरक्षा नहीं है व्यक्तियों के साथ। एक तो व्यक्ति बदल सक
ते हैं; न बदलें, तो भी कर सकते हैं।
और भी बड़ा खतरा है, कि जिन व्यक्तियों से तुम्हें आज प्रेम है, हो सकता है कल
भी तुम्हारे प्रेम में हों, लेकिन तुम उनके प्रेम में न रह जाओ। तब वे बोझ हो जाएं
गे। तब उन्हें उतारना मुश्किल हो जाएगा। तब उनकी जंजीरों को तोड़ना संभव हो
जाएगा। तब उन्हें उतारना मुश्किल हो जाएगा। तब उनकी जंजीरों को तोड़ना असं
भव हो जाएगा। तब कहां भागोगे? कैसे भागोगे? और अपने ही दिए वचन पैर में
मजबूत बेड़ियों की तरह पड़ जाएंगे। अपने ही प्रेम की हवा में गए शब्द गर्दन को ज
कड़ लेंगे। कहां जाओगे? खतरा भारी है।
वस्तुओं के प्रेम में कोई भी खतरा नहीं है। बड़ी सुरक्षा है। न तो वस्तुएं मरती हैं। ि
मट भी जाएं, तो बदली जा सकती हैं। और अगर तुम्हारा प्रेम खो जाए, तो वस्तुएं
जंजीर नहीं बनती। एक कार को तुमने बहुत चाहा था। आज तुम्हारा मन उठ गय
ा। बाजार में बेच आते हो। कार रोती-धोती नहीं। शोरगुल नहीं मचाती, दया की ि
भक्षा नहीं मांगती। चुपचाप मौन बिदा हो जाती है। इसलिए निन्यानबे प्रतिशत लोगे.
..।
समर्पण सुविधापूर्ण है वस्तुओं का। खुद समर्पण नहीं करना पड़ता, अहंकार बचा रह
ता है और वस्तुएं अहंकार को बढ़ाती चली जाती है।
प्रेम में तो अहंकार खोयेगा। वस्तुओं के प्रेम में बचता है, बढ़ता है। जितनी तुम्हारी
संपदा होती है, उतना अहंकार ऊपर उठने लता है। वस्तुओं का प्रेम वस्तुतः प्रेम नह
ीं है, प्रेम का धोखा है। लेकिन वही पहला प्रेम है; जिसमें निन्यानबे प्रतिशत लोग प.
डे हैं। इसलिए बुद्ध तृष्णा के विरोध में हैं। क्योंकि तृष्णा वस्तुओं के प्रेम का नाम है
। महावीर परिग्रह के विरोध में हैं, क्योंकि परिग्रह वस्तुओं के प्रेम का नाम है। समस्
त ज्ञानी संग्रह के विरोध में हैं। क्योंकि संग्रह का अर्थ है, तुम्हारा प्रेम गलत यात्रा
कर रहा है।
ऐसा जो व्यक्ति है, जो वस्तुओं के प्रेम में पागल है। तुमने कृपण को देखा? उसके
चेहरे को कभी अध्ययन किया? अगर तुम खुद कृपण हो, तो कभी आईने में तुमने
अपनी कृपणता की छवि देखी? कृपण आदमी से ज्यादा कुरूप आदमी नहीं होता।
इसलिए कोई तुम्हें कंजूस कह दे तो बड़ी चोट लगती है। भला तुम कंजूस हो, लेकि
न कंजूस कोई कह दे, तो बड़ा आघात लगता है, कंजूस है, कंजूस को भी अलग है
। इससे बड़ी गाली नहीं मालूम होती, कि कोई तुम्हें कृपण कह दे। क्यों?
क्योंकि कृपण का अर्थ है, तुम वस्तुओं के प्रेम में पड़े हो। वस्तुएं तुमसे नीचे हैं। तुम
आत्मवान हो। तुम अपने से नीचे के प्रेम में पड़े हो। और यह बात कोई स्वीकार

करने को राजी नहीं होता कि मैं वस्तुओं के प्रेम में पड़ा हूं। वस्तुओं के प्रेम का अर्थ है कि तुम्हारी आत्मा नीचे झुक रही है। वस्तुओं के प्रेम का अर्थ है कि तुम अपनी आत्मा खो रहे हो। क्योंकि जहां तुम्हारा प्रेम होगा, वहीं तुम्हारी आत्मा होगी। जहां तुम्हारा प्रेम होगा, वहीं तुम्हारा हृदय धड़केगा।

जो व्यक्ति वस्तुओं को प्रेम करता है, वह धीरे-धीरे वस्तुओं जैसा हो जाते है। क्योंकि प्रेम बड़ा रूपांतरण करनेवाला तत्व है। तुम जिसे प्रेम करते हो, उसी जैसे हो जाती हो।

तुमने कभी खयाल किया कि दो व्यक्ति अगर एक दूसरे को प्रेम करते हैं तो धीरे-धीरे उनमें एक दूसरे की छवि दिखाई पड़ने लगती है। अगर एक स्त्री ने किसी पुरुष को एकांत भाव से प्रेम किया हो तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, उसके चलने में, उसकी आंखों में, उसके चेहरे पर उस पुरुष की छाप आने लगती है।

अगर किसी पुरुष ने किसी स्त्री को एकांत रूपेण प्रेम किया हो, तुम पाओगे कि उसकी वाणी में उस स्त्री का माधुर्य समा जाता है। उनके हाव-भाव में, भंगिमाओं में एक दूसरे प्रविष्ट हो जाते हैं। अगर उन्होंने ठीक से प्रेम किया हो, तो तुम उन्हें भीड़ में भी उनको खोज सकते हो कि दोनों एक दूसरे के प्रेमी मालूम पड़ते हैं। क्योंकि एक दूसरे की छवि उनमें धीरे-धीरे प्रविष्ट हो जाती है। प्रेमी धीरे-धीरे एक जैसे हो जाते हैं।

शरीर शास्त्री बहुत चिंतन करते रहे हैं, कि यह कैसे घटित होता है? बच्चा पैदा होता है, तो कभी तो बच्चे में छवि स्त्री की झलकती है, कभी पुरुष की झलकती है। कभी दोनों की नहीं झलकती, कभी दोनों की सम्मिलित झलकती है। कभी बिलकुल ही किसी तीसरे व्यक्ति की छवि झलकती है, जिसका कोई लेना-देना नहीं है।

शरीर-शास्त्री चिंतित रहे हैं, यह कैसे घटित होता है? अगर स्त्री-पुरुष के ही ऊर्जा से निर्माण हुआ है, तो सदा घटना एक सी ही घटनी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता। मनोवैज्ञानिक एक अनूठी बात पर पहुंचे हैं और वह यह है, कि अगर स्त्री पुरुष को ठीक से प्रेम करती हो, पूर्ण प्रेम करती हो, तो ही उसके बच्चों में पति की छवि झलकेगी। क्योंकि वह छवि उसमें लीन हो जाती है। यह उसके रोएं-रोएं में समा जाती है।

अगर स्त्री अपने को ही प्रेम करती हो, पति को प्रेम नहीं करती हो, और पति एक नौकर-चाकर हो, तो स्त्री की स्वयं की छवि ही उसमें प्रवेश होगी। और यह भी हो सकता है कि स्त्री, पत्नी तो किसी और की हो, बच्चा किसी और से ही पैदा हुआ हो, लेकिन भाव किसी और पुरुष का मन में हो, तो उस पुरुष की छवि भी उस बच्चे में प्रवेश कर जाएगी।

क्योंकि छवि तो मन में झलकती है। मन के दर्पण पर बनी हुई छाया है। अगर एक स्त्री किसी व्यक्ति को प्रेम करती है और बच्चा किसी और से पैदा होता है, तो भी जिसको वह प्रेम करती है, वही उस बच्चे में झलक आएगा। तो छवि शरीर से निर्मित नहीं होती, छवि मन से निर्मित होती है।

दो व्यक्ति जब एक दूसरे को प्रेम करते हैं, तो धीरे-धीरे एक जैसे होते जाते हैं। उनके ढंग, उनकी आदतें, उनका व्यवहार। आखिरी क्षणों में जीवन के तुम उन्हें पाओगे, कि वे एक ही हो गए। उनकी दुई खो गई।

वस्तुओं को जो व्यक्ति प्रेम करता है, वह वस्तुओं जैसा हो जाता है। इसलिए कृपण से ज्यादा कुरूप आदमी संसार में दूसरा नहीं। क्योंकि विराट आत्मा थी और क्षुद्र के प्रेम में छोटी हो गई। इसलिए कृपण को तुम हमेशा छोटा पाओगे। हमेशा ओछा पाओगे। वह मनुष्यता की कसौटी पर भी पूरा नहीं उतरता। परमात्मा की कसौटी की तो बात ही अलग है। तुम पाओगे, कि वह पूरा मनुष्य भी नहीं है। उसकी मनुष्यता में भी कुछ कमी मालूम पड़ती है। वस्तुएं ज्यादा हैं उसके ऊपर; चेतना कम है। होश कम है, बोझ ज्यादा है। कृपण आदमी के चेहरे पर तुम्हें धन में जो छिपी हिंसा है, वह दिखाई पड़ती।

धन बड़ी गहरी हिंसा से पैदा होता है। वह गहन शोषण है। धन पर रक्त के चिन्ह तो हैं ही। उससे धन मुक्त हो नहीं सकता। वह किसी से छीना गया है। किसी के साथ जबर्दस्ती की गई है। किसी को मिटाया गया है। चाहे मिटाने के ढंग कितने ही परिष्कृत क्यों न हों। मिटानेवाले को भी पता न चलता हो, मिटनेवाले को भी पता न चलता न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन धन पर खून के धब्बे हैं। इसलिए कृपण के चेहरे पर भी धब्बे आ जाएंगे। और कृपण के चेहरे से तुम लार टपकती हुई देखोगे। वह हमेशा वस्तुओं के लिए दीवाना है, पागल है। उसे वस्तुएं ही दिखाई पड़ती हैं। और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। संसार उसके लिए, व्यक्तियों का महोत्सव नहीं, केवल वस्तुओं का बाजार है। खरीदना है, इकट्ठा करना है, मर जाना है। जीना नहीं है।

कृपण जीता नहीं, केवल जीने की तैयारी करता। है कभी पूरी नहीं होती। जीने का भी मौका नहीं आता। सिर्फ समायोजन करता है कि कभी जीएंगे। जीने को स्थगित करता है, पोस्टपोन करता है। आज कैसे जी सकते हैं, जब तक महल न हो? आज जीना संभव ही कैसे है, जब तक तिजोड़ी भरपूर न हो? जब तक सारे कलों के लिए इंतजाम न कर लिया हो और भविष्य पूरा सुरक्षित न कर लिया हो, तब तक जी कैसे सकता है? मूढ़ जी सकता है, कृपण कहता है, समझदार कैसे जी सकता है? कल की चिंता निश्चिंतता में बदल जाए, तिजोड़ी हो, बैंक-बैलेन्स हो, सब सुख सुविधा हो, फिर मैं जीऊंगा।

ऐसी घड़ी कभी नहीं आती। सिकंदर को नहीं आती, तुम्हें कैसे आ सकती है? किसी को नहीं आती। ऐसी घड़ी आती ही नहीं, जब समायोजन पूरा हो जाए।

जिन्हें जाना है, उन्हें हमेशा आधे समायोजन में ही जीना होता है। जिन्हें जीना है, उन्हें हमेशा आधी तैयारी में ही जीना होता है। उन्हें आज ही जीना होता है। जिन्हें हंसना है, नाचना है, वे इस की बहुत चिंता नहीं करते कि आंगन टेढ़ा है...कहावत है, नाच न आवे आंगन टेढ़ा। जीने की कला नहीं आती और लोग कहते हैं आंगन टे.

ढा है, पहले सीधा कर लें। वह कभी सीधा हुआ मालूम होता नहीं। वे मर जाते हैं, आंगन टेढ़ा ही रहता है।

वस्तुओं को इकट्ठा करनेवाले के चेहरे पर तुम्हें रुपए का घिसापिटापन दिखाई पड़ेगा। जैसे रुपया सरकता है हाथों हाथ। बासा होता जाता है। हर साथ की गंदगी उसमें लगती जाती है। हर प्राण की तृष्णा उसमें भरती जाती है। रुपया सरकता जाता है एक हाथ से दूसरे हाथ हजारों हाथ।

रुपये से ज्यादा जूठा इस संसार में और कुछ नहीं हो सकता। अच्छिष्ठ! कितने हाथों में चलता है। कितनी गंदगियों से गुजरता है। कितनी यात्रा करता है। घिस-पिट जाता है। वैसा ही घिसन और घिसापिटापन तुम्हें कृपण के चेहरे और आंखों पर दिखाई पड़ेगा। वहां तुम्हें ताजगी न दिखेगी। सुबह की ओस की। वहां तुम्हें फूलों की गंध न दिखेगी नये-नये खिले। वहां तुम्हें रुपये का घिसापिटापन दिखाई पड़ेगा।

कृपण कभी मौलिक नहीं होता। हमेशा उधार होता है। उसके जीवन में कभी कोई ऊर्जा सुबह जैसी नहीं होती। हमेशा थकान होती है। वह हमेशा ऊबा हुआ होता है।

स्वाभाविक है कि धन के साथ किसी के जीवन में नृत्य न कभी आया है, न आ सकता है। ऊब आती है। इसलिए धनी आदमी को तुम बोअर्ड पाओगे, ऊबा हुआ पाओगे। तुम उसके चेहरे पर गौर करोगे तो तुम पाओगे, वह थका है। उसे विश्राम चाहिए। वह विश्राम कर नहीं सकता; क्योंकि वस्तुएं अभी बहुत बाकी हैं, जो इकट्ठी करनी हैं।

धीरे-धीरे कृपण व्यक्ति वस्तुओं जैसा हो जाता है। उसमें और उसकी वस्तुओं में बहुत फर्क नहीं रह जाता। उसके और उसके मकान में बहुत फर्क नहीं रह जाता। क्योंकि प्रेमी एक जैसे हो जाते हैं। इसलिए कभी क्षुद्र से प्रेम मत करना। अन्यथा तुम क्षुद्र हो जाओगे। तुम वही हो जाओगे, जिसको तुम प्रेम करोगे।

धन और वस्तुओं का प्रेमी मनुष्यों को घृणा करता है। क्योंकि हर मनुष्य उसके धन के लिए खतरा है। हर मनुष्य और मनुष्य का संबंध उसे भयभीत करता है। क्योंकि मनुष्य के साथ संबंध बनाने का अर्थ होता है, अपने धन में भागीदार खोजना। कृपण, मनुष्यों से बचना चाहता है। मनुष्यों से दूर रहना चाहता है। मनुष्यों से एक फासला रखता है, कि कहीं कोई जेब तक न पहुंच जाए। उसकी तिजोड़ी तक न आ जाए।

कृपण, वस्तुओं को प्रेम करनेवाला व्यक्ति मनुष्यों के प्रति घृणा से भरा होता है, और परमात्मा के प्रति उपेक्षा से। इसलिए वास्तविक नास्तिक कृपण है; वस्तुओं का प्रेमी है। वह चाहे मंदिर में पूजा करते हो, उसकी पूजा के पीछे भी धन की ही मांग छिपी होती है। वह परमात्मा को नहीं मांगता, वह और धन को मांगता है।

परमात्मा अगर मौजूद भी हो जाए, और उससे कहे, तू एक वरदान मांग ले, तो वह परमात्मा को छोड़ कर और सब चीजों की सोचेगा। कि एक रोल्स रायस मांग लूं, कि राष्ट्रपति का पद मांग लूं, कि सारी दुनिया की संपदा मांग लूं। एक बात उसे

याद न आएगी कि परमात्मा को मांग लूं। उस भर को वह सोच भी न सकेगा। व
ह उसकी सीमा के बाहर है।

वस्तुओं से जो घिरा है, वह मनुष्यों से घृणा करेगा, और परमात्मा की उपेक्षा। और
बड़े मजे की बात यह है, कि ये ही तीन लोग तुम्हें मंदिरों, मस्जिदों में बैठे मिलेंगे
। इन्हीं से मंदिर, मस्जिद भरे हैं। इन्हीं के कारण धर्म मर गया। ये वस्तुएं मांगने ही
वहां जाते हैं। इनकी तिजोड़ी और कैसे बड़ी हो जाए! इनका राज्य और कैसे फैले,
उसकी ही मांग करने परमात्मा के पास जाते हैं।

ध्यान रखना, जो परमात्मा के पास परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी मांगने गया, व
ह उसके पास कभी पहुंच ही नहीं पाता। जाननेवाले तो कहते हैं कि उसके पास वे
ही पहुंच पाते हैं, जो उसको भी नहीं मांगते। जो मांगते ही नहीं। जिनकी मांग ही
खो जाती है। जो बिना मांगे उसके द्वार पर खड़े हो जाते हैं। बिना मांगे मोती मिले
। वह बरस आता है उनके ऊपर।

लेकिन वह बहुत दूर की बात है। क्योंकि बुद्ध कभी उसके द्वार पर बिना मांगे खड़ा
होता है। लेकिन तुम जिस जगत में जी रहे हो—भिखारियों के—वहां कम से कम इ
तना तो कर ही सकते हो, कि परमात्मा को मांगो।

इतना ही फर्क है, भक्त और ज्ञानी में। भक्त परमात्मा को मांगता है, ज्ञानी उतना
भी नहीं मांगता। इसलिए ज्ञान से ऊंची भक्ति नहीं है। इसलिए भक्ति द्वार तक पहुं
चा देती है। लेकिन आखिरी क्षण में भक्ति को भी खो जाना पड़ता है। क्योंकि तभी
मिलन पूरा होता है। जब परमात्मा की मांग भी छूट जाती है। क्योंकि उतनी मांग
भी तो परमात्मा और तुम्हारे बीच में बनी रहेगी। उतनी मांग भी नहीं चाहिए।

नास्तिक वही है, जो वस्तुओं से घिरा है। इसलिए पश्चिम नास्तिक है। इसलिए नहीं,
कि वहां लोग परमात्मा को नहीं मानते। तुमसे ज्यादा लोग चर्च जाते हैं। हिंदुओं
के पास तो मंदिर जाने की कोई व्यवस्था ही नहीं है। जाओ, न जाओ। जब मौज हो
, जाओ। लेकिन ईसाइयों में तो व्यवस्था है कि रविवार जाना ही है।

अगर तुम मंदिरों की कोई जांच करें मंगल ग्रह से आकर, तो सदा उनको खाली पा
एगा। या कभी इक्के दुक्के आदमी आते हुए जाते हुए मालूम पड़ेंगे। किसी की पत्नी
बीमार है, आना पड़ा। किसी का दिवाला निकलने के करीब है, आना पड़ा।

लेकिन चर्चा में मरे हुए लोग पाए जाएंगे। क्योंकि रविवार नियम से जाना है। वह
एक सामाजिक औपचारिक है। लेकिन पश्चिम की दौड़ वस्तुओं के लिए है। इसलिए
पश्चिम आस्तिक हो नहीं सकता।

इससे तुम यह मत सोच लेना कि तुम आस्तिक हो। अक्सर ऐसा होता है, कि जब
भी कोई कहता है कि पश्चिम आस्तिक नहीं है, तब तुम बड़े प्रसन्न होते हो। तुम स
ोचते हो, हम आस्तिक हैं। तुम भी आस्तिक नहीं हो।

आस्तिक होना बड़ा क्रांतिकारी घटना है। उसका पूरब-पश्चिम से कोई लेना देना नह
ीं है। वह भूगोल की बात नहीं है। आस्तिक होता है। समाज तो अब तक कोई आस्
तिक नहीं हुआ। न हिंदू समाज, न जैन समाज, न भारतीय समाज, न चीनी समाज।

कोई समाज, कोई राष्ट्र अब तक धार्मिक नहीं हुआ। क्योंकि समूह तो निन्यानवे प्रतिशत लोगों से बना है—वे जो वस्तुओं के प्रेमी हैं।

दूसरा प्रेम है, व्यक्तियों का प्रेम। व्यक्तियों का प्रेम वस्तुओं से ऊपर है। कम से कम तुम समानधर्म, समान व्यक्ति से प्रेम करते हो। कम से कम तुम किसी चैतन्य से प्रेम करते हो। माना, वह भी तुम जैसा अहंकार से भरा है। फिर भी उसकी जागने की संभावना है; जैसी तुम्हारी है। व्यक्तियों का प्रेम, वस्तुओं के प्रेम के ऊपर है। जो व्यक्तियों को प्रेम करता है, उसके जीवन में वस्तुओं के प्रति उपेक्षा होती है। और परमात्मा के प्रति तटस्थता होती है।

इन शब्दों को ठीक से समझ लेना। क्योंकि भाषा-कोष में उपेक्षा और तटस्थता का एक ही अर्थ लिखा है। वह गलत है। जो व्यक्ति, व्यक्तियों को प्रेम करता है, वह वस्तुओं के प्रति उपेक्षा से भर जाता है। वह वस्तुओं को दे सकता है, सहजता से दान कर सकता है। उसकी पकड़ नहीं रह जाती।

क्योंकि जिसने व्यक्तियों को प्रेम कर लिया, जिसने प्रेम के रस को चख लिया, उसे तत्क्षण दिखाई पड़ जाता है कि वस्तुओं से तो कभी कुछ मिलनेवाला नहीं है। व्यक्तियों से मिलनेवाला है। इसलिए व्यक्तियों को वस्तुएं देने में उसे अड़चन नहीं आती। वह बांट सकता है। वह दानी हो सकता है। वह कृपण नहीं रह जाता। कृपणता उसकी खो जाती है। वह जानता है कि व्यक्तियों के प्रेम में सुरक्षा नहीं है। लेकिन व्यक्तियों को प्रेम जीवंत है।

वस्तुओं का प्रेम मुर्दा हैं, वैसे ही प्लास्टिक के फूल में सुरक्षा होती है। मिटने का डर नहीं होता। असली गुलाब का फूल तो सुबह खिलेगा, सांझ मिट जाएगा। डर मिटने का है, लेकिन क्या इसी कारण तुम प्लास्टिक का फूल लिए घूमते रहोगे? जीवन में खतरा है। प्लास्टिक के लिए कोई खतरा नहीं है। वर्षों तक वैसा ही बना रहेगा। जब चाहे तब धूल झाड़ देना, वह फिर ताजा मालूम पड़ेगा।

असली फूल तो खिलते हैं और मिटते हैं। असली फूलों का मजा ही यही है, कि क्षण भर को जीवन और मृत्यु के बीच ऊपर उठते हैं। असली फूलों की असलियत यही है, कि क्षण भर को मृत्यु के ऊपर अतिक्रमण कर जाते हैं। क्षण भर को, चारों तरफ घिरी मृत्यु के बीच भी वे कमल की तरह ऊपर उठ आते हैं। क्षण भर को जीवन का उदघोष होता है।

प्लास्टिक के फूल में यह उदघोष कभी भी नहीं होता। वस्तुओं से प्रेम, प्लास्टिक, के फूलों से प्रेम है। जिसको असली फूल मिल गए, वह प्लास्टिक के फूलों को फेंक आता है कचरे में। उसे वस्तुओं को छोड़ना नहीं पड़ता, व्यक्तियों का प्रेम मिल जाए, वस्तुएं छूटना शुरू हो जाती हैं।

वस्तुओं का प्रेम तो व्यक्तियों के प्रेम का सब्स्टीस्यूट था परीपूरक था।

व्यक्तियों को प्रेम करनेवाला व्यक्ति कृपण नहीं रह जाता। उसके जीवन में ऊब नहीं होती, पुलक होती है। एक उत्साह होता है। पैरों में एक लगन होती है। कंठ में एक छोटा सा गीत उठने लगता है।

ये पक्षियों को तुम गाते देखते हो, ये प्रेम के गीत हैं। आदमी के कंठ को क्या हो ग या? आदमी क्यों कोयल जैसी धुन नहीं उठा पाता? आदमी क्यों पपीहा जैसा पुकार नहीं पाता? आदमी क्यों...? छोटे-छोटे पक्षी गा लेते हैं बिना कहीं सिखे, बिना कि सी संगीत महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए, बिना किसी गुरु के चरणों में वर्षों सेवा किए। पक्षी पा लेते हैं, आदमी के गीत को क्या हो गया है?

आदमियों का गीत वस्तुओं में दबकर मर गया है। आदमियों के कंठ में वस्तुएं भरी हैं। गीत निकल नहीं पाता। व्यक्तियों से प्रेम होता है, कंठ के अवरोध टूट जाते हैं। एक पुलक आती है, एक लगन पैदा होती है। जीवन अर्थपूर्ण मालूम होता है। जीवन से ऊब हटती है और लगता है, जीवन में एक रस है।

लेकिन व्यक्तियों का प्रेम भी कभी पूर्ण प्रेम नहीं हो पाता—हो नहीं सकता। क्योंकि द ो अहंकार कैसे मिट सकते हैं? दोनों की चेष्टा होती है कि दूसरा मिट जाए। प्रेमी चाहता है, कि प्रेयसी का अहंकार टूट जाए और वह मेरे प्रति समर्पित हो जाए। सभी प्रेमी वही कह रहे हैं, जो कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, मामेक शरणं व्रज! सब छोड़कर, तू मेरी शरण में आ जा।

कृष्ण ने कहा था, वह तो सार्थक है। क्योंकि वहां एक निरहंकारी था। वहां एक शून् यवत—महाशून्य था। तो कृष्ण ने कहा, सब छोड़कर मेरी शरण आ जा। इसमें अड़च न नहीं है क्योंकि कृष्ण महाशून्य हैं। अर्जुन डूब सकता है।

लेकिन दो प्रेमी भी यही कह रहे हैं, मामेक शरण्ग्र व्रज। पति पत्नी से कह रहा है, आ, मेरी शरण। पत्नी कह रही है, तुम्हीं आ जाओ। लाख चेष्टाएं चलती है। छुपी, प्रकट, अप्रकट, जाने में अनजाने में कि दूसरा झुक जाए और मिट जाए। इसलिए प्रेम एक संघर्ष हो जाता है। व्यक्तियों से प्रेम एक संघर्ष हो जाता है।

इसलिए तुम कृपण आदमी के जीवन में थोड़ी शांति पाओगे। लेकिन प्रेमी आदमी के जीवन में तुम्हें शक्ति शांति न मिलेगी। पुलक तो मिलेगी, पर पुलक के पीछे अशांि त छिपी होगी। और एक संघर्ष दिखाई पड़ेगा सतत। कौन मिटे? कोई मिटना नहीं चाहता। कोई मिटने की तैयारी में नहीं है। और समर्पण के बिना प्रेम न होगा पूरा। बिना मिटे वह परम अनुभूति न होगी।

और मिटे कोई कैसे? पति पत्नी के लिए मिटे, पत्नी के लिए मिटे? बहुत चेष्टाएं समाज ने कर लीं। लाख समझाया है स्त्रियों को, कि परमात्मा है। पतिया ने ही सम झाया है। पुरुषों ने ही समझाया है कि तुम दासी हो। वे लिखी भी हैं पत्र में, कि तु म्हारी दासी; लेकिन पत्र मग यह भाव नहीं होता। नीचे दस्तखत में होता है सिर्फ। पति को वे कहती भी हैं कि तुम स्वामी हो। लेकिन उनके व्यवहार से कहीं दिखाई नहीं पड़ता। औपचारिकता दिखाई पड़ती है।

पुरुष की चेष्टा रही कि स्त्री झुक जाए, स्त्री की चेष्टा रही कि पुरुष झुक जाए। पुरु ष ने आक्रमण के उपाय किए हैं। स्त्री ने ज्यादा सूक्ष्म उपाय किए हैं। वे आक्रमण के नहीं हैं। वे ज्यादा हन हैं। पुरुष सीधा ही सिर पकड़कर झुकाना चाहता है। स्त्री पैर पकड़कर चाहती है। लेकिन झुकाना चाहती है।

और दोनों में से तब तक आश्वस्त कोई भी नहीं होता, जब तक उसे पक्का भरोसा न आ जाए कि दूसरे को झुका लिया गया है। खतरा यह है, कि अगर दूसरा सच में ही झुक जाए, तो दूसरा वस्तु जैसा हो जाता है। उसमें से व्यक्ति खो जाता है। इसलिए अगर पत्नी तुमसे बिलकुल समर्पण कर दे, तो उसमें तुम्हारा रस चला जाए गा। इसलिए तो पत्नियों में रस चला जाता है। अगर पत्नी बिलकुल ही झुक जाए, सच में ही झुक जाए जैसा तुम चाहते थे, तो वह वस्तु बन जाती है।

इसलिए हिंदुओं ने कहा कि पत्नी संपत्ति है। झुका लिया होगा उन्होंने। जिन्होंने यह लिखा है, उनका अनुभव होगा, कि पत्नी अगर झुक जाए, तो संपत्ति हो जाए। तब यह गाय, बैल की तरह है। बांधो, जो करना है, करो। आज्ञा दो, वह मानती है। और जब मर जाए, तब तुम दूसरी पत्नी ले आओ। परिपूरक हो सकता है, उसका स्थान भरा जा सकता है। वह कार हो गई, मकान हो गई, लेकिन स्त्री न रही। उस का व्यक्तित्व चला गया।

अब यह बड़ी दुविधा है। अगर न झुके, तो कलह है। लेकिन जब तक नहीं झुकती, तब तक आकर्षण है। क्योंकि वह व्यक्ति है, आत्मा है, आत्मवान है, अपना बल है। उसका अपना निजी व्यक्तित्व है। जैसे ही झुकती है, वैसे ही शांति हो जाती है, ले किन मन में दूसरी स्त्रियों का आकर्षण उठने लगता है। और जो स्त्री जितनी ही क ठिनाई पैदा करती है झुकने में, उतना ही चुनौती मालूम पड़ती है।

ऐसा ही पुरुष के संबंध में सच है। अगर पुरुष बिलकुल झुक जाए, स्त्री को वह पुरु ष ही नहीं मालूम पड़ता। उसकी कोई स्थिति न रही। अगर न झुके तो झुकाने का संघर्ष चलता है। क्योंकि जब तक झुक न जाए तब तक उसे भरोसा नहीं आता कि मैं जीत गई। तो एक विजय का संघर्ष है व्यक्तियों के साथ। झुकने से पूरा नहीं हो ता क्योंकि झुकने में व्यक्ति वस्तु हो जाता है। बात ही खतम हो गई। और झुकना न हो तो संघर्ष चलता है, समर्पण नहीं हो पाता।

लेकिन जो व्यक्ति, व्यक्तियों को प्रेम करता है उसकी वस्तुओं के प्रति अपेक्षा हो जा ती है। यह बहुत बड़ी घटना है। वह परिग्रही नहीं होता। और परमात्मा के प्रति उ सकी तटस्थता हो जाती है।

तटस्थता का अर्थ है, वह परमात्मा के प्रति खुला होता है। निर्णय नहीं लिया उसने अभी कि परमात्मा है या नहीं, लेकिन खुला है। जिसको पश्चिम में एगनोस्टिक कह ते हैं—अज्ञेयवादी, अनिर्णीत। उसका निर्णय मुक्त है। वह खड़ा है। वह कहता है कि हो भी सकता है, न भी हो। खोज से पता चलेगा। जाऊंगा। पहचानूंगा जब समय हो गा। यह जरा बारीक बिंदु है, इसे ठीक से समझना।

व्यक्तियों के साथ प्रेम में दो स्थितियां बन रही हैं। एक स्थिति है कि अगर व्यक्ति न झुके तो संघर्ष। अगर व्यक्ति झुक जाए, तो वस्तु हो जाता है। दोनों ही विकल्प चुनने योग्य नहीं हैं। दो घटनाएं होंगी। इसलिए व्यक्तियों को प्रेम करनेवाले लोगों के जीवन में दो घटनाएं घटेंगी।

जवान व्यक्ति व्यक्तियों को प्रेम करेगा। बूढ़े होते-होते उसमें दो घटनाओं में से एक घट गई होगी। या तो उसने व्यक्तियों से हार कर वस्तुओं से प्रेम शुरू कर दिया हो गा। और या व्यक्तियों में जो थोड़ा सा रस पाया, उसकी समझ के आधार पर, उस ने परमात्मा की खोज शुरू कर दी होगी। या तो वह व्यक्तियों के ऊपर बैठकर महा व्यक्ति को, समष्टि को प्रेम करने लगेगा। और या नीचे गिरकर वस्तुओं को प्रेम क रने लगेगा।

ये दो घटनाएं इसलिए घटती है, क्योंकि व्यक्तियों के प्रेम दो विकल्प सदा मौजूद हैं। व्यक्तियों के प्रेम में रस भी मिलता है। और व्यक्तियों के प्रेम में संघर्ष भी मिल ता है। दुख भी मिलता है और सुख भी मिलता है। व्यक्तियों का प्रेम दोहरा है। प्रेम ी सुख भी देते हैं दुख भी देते हैं। तुम सभी जानते हो। अगर कभी किसी को प्रेम ि कया है, तो उससे दोनों चीजें मिलती हैं।

अब यह तुम पर निर्भर है कि तुमने व्यक्ति के द्वारा पाये गए अगर दुख पर बहुत ध्यान दिया, तो धीरे-धीरे तुम वस्तुओं के प्रेम के गिर जाओगे। और अगर व्यक्तिय ों के द्वारा मिले सुख पर ध्यान दिया, तो तुम धीरे-धीरे महा-व्यक्ति की तलाश में ि नकल जाओगे। यहीं गुरु की जरूरत शुरू होती है।

कृपण के लिए तो गुरु किसी काम का नहीं है। कृपण तो गुरु से डरता है। क्योंकि गुरु के प्रति समर्पित करना होगा, और यही तो कृपण का भय है। वह समर्पण कर नहीं सकता। इसलिए कृपण अगर गुरु के पास भी आता है। तो खुद को समर्पित न हीं करता, एक आम ले आता है। एक दो केले ले जाता है। यह तरकीब है बचने की। वह कह रहा है, लोग महाराज, मुझे छोड़ो। इतना काफी है।

गुरु के पास केला लेकर आ रहे हो, कि आम लेकर चले आ रहे हो! कुछ तो सोचो । लाते हो तो अपने को लाओ। अन्यथा मत आओ। उससे कम में न चलेगा। उससे कम में जो गुरु राजी हैं, वे तुम्हारे जैसे ही हैं। वे गुरु है। वे भी तीसरे ही दर्जे के लोग हैं, जो वस्तुओं के प्रेम में पड़े हैं।

गुरु तुम्हें चाहता है। उससे कम काम नहीं चलेगा। अपना सिर ही लेकर आओ। क बीर ने कहा है कि जिसकी हिम्मत हो, आ जाए; सिर रखे और ले जाए सब। लेकि न वह सिर रखना शर्त है।

गुरु एक मृत्यु है क्योंकि एक पुनर्जीवन भी है। मृत्यु के बाद ही पुनर्जीवन होगा। गुरु एक मृत्यु है क्योंकि गुरु एक जन्म भी है। अब केले का क्या कसूर है? केले ने तुम् हारा क्या बिगाड़ा? इसको तुम काहे को चढ़ा रहे हो? आदमी सदा से चढ़ता आया है दूसरी चीजें। कभी पशु चढ़ाता रहा है, कभी फल चढ़ाता रहा, कभी फूल चढ़ात ा रहा। यह सिर्फ अपने को चढ़ाने से बचने की व्यवस्था है।

फिर आदमी ने कई तरकीबें निकाल लीं। नारियल चढ़ाता है। क्योंकि वह आदमी के सिर जैसा लगता है। वह सब्स्टीचूट है, परिपूरक। उसमें आंखें भी हैं, दाढ़ी भी है, मूंछ भी है, सब है। इसलिए तो हिंदी में उसको खोपड़ा कहते है—खोपड़ी! उसको अ ादमी चढ़ाता है जा कर मंदिर में।

अपनी खोपड़ी ले जाओ।

आदमी सिंदूर लगाता है। वह खून का प्रतीक है। अपना खून दो, सिंदूर लगाने से क या होगा?

आदमी प्रतीक खोजता है, अपने को बचाता है।

जो इन प्रतीकों का सम्मान कर रहा है, वह भी तुम्हारे ही जात का हिस्सा है। वह तीसरे दर्जे का प्रेमी है। गुरु और चेला एक ही नाव में सवार हैं। और तुम दोनों डू बोगे: आप डूबते पांडे ले डूबे जजमान। वे डूब ही रहे थे गुरुजी, तुम और चढ़ गए नाव पर!

दूसरे कोटि का व्यक्ति, जो प्रेम करता है व्यक्तियों से, उसके जीवन में गुरु की संभ ावना शुरू होती है। काश, उसे गुरु मिल जाए! अन्यथा डर है कि वह तीसरे प्रेम में नीचे गिर जाएगा। अभी मौका था, कि वह पहले प्रेम की तरफ ऊपर उठ जाए। गु रु उसे सिखाएगा कि यह जो कलह थी, यह कलह प्रेम के कारण न थी। यह कलह अहंकार के कारण थी। प्रेम में जो तुम्हें दुख मिला प्रेयसी से, प्रेमी से जो तुम्हें पीड़ ा मिली, वह पीड़ा प्रेम के कारण न मिली, वह तुम्हें अहंकार के कारण मिली।

प्रेम से तो सुख ही मिला। इतने अहंकार के होते हुए भी थोड़ा सा सुख मिला, यह चमत्कार है। लेकिन प्रेम के कारण कभी दुनिया में कोई दुख किसी को मिला नहीं। अगर तुमने समझा, प्रेम के कारण दुख मिला, तो फिर तुम वस्तुओं के प्रेम में लग जाओगे। क्योंकि वहां फिर कोई दुख नहीं है।

लेकिन अगर तुम्हें यह समझ में आ गया, कि दुख मिला अहंकार के कारण। और अ हंकार कैसे समर्पित करोगे दूसरे अहंकार को? दूसरा अहंकार बांधा देता है समर्पण में। क्योंकि दूसरा अहंकार मांग करता है, समर्पित करो। सिर्फ परमात्मा मांग नहीं करता समर्पण की।

जहां मांग नहीं है, वहां समर्पण आसान है।

प्रेम से थोड़ा सा सुख मिला; अगर तुम पूरा समर्पण कर सको तो अनंत सुख की व र्षा हो जाए। सुख के मेघ कभी घिर आएं--घिरे ही हैं। तुम्हारा हृदय थोड़ा खाली ह ो अहंकार से, कि वर्षा हो जाए।

परमात्मा की तरफ वही व्यक्ति जाता है, जिसने प्रेम में सुख को पहचाना। और यह भी पहचान कि बाधा थी मेरे कारण, अहंकार के कारण। अब मैं वह तलाश करूंग ा उस बिंदु की, जहां मैं अपने अहंकार को छोड़ दूं। व्यक्तियों के साथ कैसे छोड़ा जा सकता है? वे तुम्हारे जैसे ही है। वे उसी तल पर खड़े हैं, जहां तुम खड़े हो।

कोई चाहिए विराट, कोई चाहिए इतना विराट, कि उसके पैरों तक तुम्हारा सिर प हुंचे। उतना भी पहुंच जाए तो बड़ी यात्रा। कोई चाहिए शून्य की भांति, जो मांग न करे, ताकि तुम्हें चुपचाप समर्पण करने की सुविधा मिल जाए। जो कहे ना कि झुक ो। क्योंकि जब भी कोई कहता है, झुको, तभी तुम्हारा अहंकार बाधा डालने लगता है। वह कहता है, मत झुको।

जब कोई कहता है झुको, तो अहंकार में अकड़ जाती है। वह कहता है, क्यों झुकें? क्यों झुकें, यह झुकनेवाला कौन है? मैं क्यों किसी के सामने झुकूं? अहंकार की म जबूती बढ़ती है। प्रतिशोध बढ़ता है। परमात्मा तुमसे नहीं कहता कि झुको। वह मह ाशून्य है, पह आकाश है। तुम झुक जाओ, तुम्हारी मर्जी। और अहंकार को झुकने में सुविधा होती है, वहां, जहां कोई झुकनेवाला नहीं होता।

तीसरे तरह का प्रेम है, परमात्मा की तरफ प्रेम। वह प्रेम है। क्योंकि तुम झुक जाते हो। कोई झुकनेवाला पहले से ही नहीं है। परमात्मा है थोड़े ही! होता, तो आदमी कभी भी न झुक पाता। परमात्मा नहीं होने का नाम है। परमात्मा की कोई मौजूदगी थोड़ी ही है। अगर मौजूदगी होती, तो अड़चन पड़ती। परमात्मा एक गैर-मौजूदगी है। परमात्मा उपस्थिति नहीं है, परमात्मा परम-अनुपस्थिति है—एबसोल्यूट एबसेन्स। इसलिए तो तुम उसे खोज नहीं पाते। लाख भागो, दौड़ो, हिमालय पर जाओ, कैला श चढ़ो, मानसरोवर में खोजो, कहीं नहीं मिलता। परमात्मा एक महान गैर-मौजूदग ी है, अनुपस्थिति है।

वह ऐसे है, जैसे न हो। उसका होना, न होने जैसा है। इसका होना शून्यवत है। वह आकाश जैसा है।

इसीलिए कबीर आकाश शब्द का प्रयोग बार-बार करते हैं। वह परमात्मा का स्वभा व है। शून्य उसका स्वभाव है। वह तुम्हें झुकाता नहीं। तुम झुक रहे होओगे, तो वहां कोई मुस्कुराता नहीं है। क्योंकि उतनी मुस्कुराहट भी तुम्हें रोक देगी। तुम झुक रहे होओगे तो कोई तुम्हारी पीठ थपथपाता नहीं। क्योंकि उतने में ही अकड़ लौट आए गी, कि अरे! यहां भी कोई मौजूद है। तुम्हारी अकड़ वापस आ जाएगी। संघर्ष शुरू हो जाएगा।

परमात्मा से लड़ने का उपाय नहीं है। क्योंकि वह इतना छिपा हुआ है कि तुम कैसे लड़ोगे? परमात्मा को पाने का भी उपाय नहीं है। सिर्फ अपने को खोने का उपाय है । जो खो देते हैं, वे पा लेते हैं। जो पाने निकलते हैं, वे कभी नहीं खोज पाते।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें ईश्वर खोजना है। मैं उनसे कहता हूं कि तु म खोजो। बाकी तुम्हें मिलेगा नहीं। वे कहते हैं, क्यों? क्या गलती?

सवाल गलती का है ही नहीं। खोजनेवाले को कभी मिलता ही नहीं। जो खोने को तै यार है, उसको मिलता है। खोना ही उसे पाने का ढंग है। क्योंकि वह खुद खोया हु आ है। तुम भी वैसे ही हो जाओ, तत्क्षण मेल हो जाता है। तुम अनुपस्थित हो जा ओ। तुम्हारा अहंकार चला जाए। तुम न रहो। तुम ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं, तत्क्षण मेल हो गया। भीतर का आकाश बाहर के आकाश से मिल गया।

और तब प्रेम का परम प्रकाश प्रकट होता है। तब प्रेम का गौरीशंकर उठता है, प्रेम , मोक्ष है। क्योंकि प्रेम तुमसे ही मुक्ति है। प्रेम परम प्रकाश है। क्योंकि तुम्हारे अहं कार के अतिरिक्त और कोई अहंकार नहीं है। सब तरफ सूरज उगा है। एक तुम अ ांख बंद किए बैठे हो। आंख खुली प्रकाश ही प्रकाश।

ऐसी जिसे प्रतीति होने लगे—ऐसी प्रतीति कब होती है? जब तुमने व्यक्तियों का प्रेम जाना हो और उस प्रेम की विफलता भी। जब तुमने व्यक्तियों के प्रेम का सुख जाना हो और उसकी पीड़ा भी। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, प्रेम करा। क्योंकि उस प्रेम के बिना तुम परमात्मा की तरफ जाओगे कैसे? वही प्रेम तुम्हें रस लगाएगा परमात्मा की तरफ जाने का। वही प्रेम तुम्हें व्यक्तियों से मुक्त होने की सुविधा भी देगा। प्रेम बड़ी अनूठी कला है।

लेकिन वस्तुओं से प्रेम मत करना, अन्यथा तुम अटके रह जाओगे व्यक्तियों से प्रेम करना। क्योंकि व्यक्तियों का प्रेम तुम्हें तृप्ति भी देगा और तृप्ति होने भी न देगा। यह खूबी है। व्यक्तियों का प्रेम तुम्हारे कंठ को भिगाएगा और प्यास को बुझाएगा भी नहीं। बल्कि प्यास और प्रज्वलित हो कर जलने लगेगी।

व्यक्तियों का प्रेम एक ऐसी दुविधा देगा, ऐसे दोराहे पर खड़ा कर देगा, जहां से एक रास्ता तो वस्तुओं के प्रेम की तरफ जाता है, जहां परिग्रही गिरता है और भटकता है; वही नर्क है। और जहां से दूसरा रास्ता स्वर्ग में जाता है, परमात्मा की तरफ जाता है।

मैंने निरंतर अपने साधकों को कहता हूं कि एक बात ध्यान रखना, प्रार्थना शुरू नहीं होगी, जब तक तुम्हारा प्रेम पक न जाए; जब तक तुम प्रेम को न जान लो, और प्रेम को जानने का अर्थ है, प्रेम का नर्क भी जानना और प्रेम का स्वर्ग भी। प्रेम का नर्क तुम्हें व्यक्तियों के प्रेम से ऊपर उठाएगा और प्रेम का स्वर्ग तुम्हें परमात्मा के प्रेम में ले जाएगा।

अब हम कबीर के इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें।

प्रीति लगी तुम नाम की, पल बिसरे नाही।

जब व्यक्तियों के प्रेम के ऊपर कोई उठता है और परमात्मा का प्रेम जगता है, तब प्रीति लागी तुम नाम की। नाम का ही पता है; अभी उसका तो कुछ पता नहीं। अभी उस प्रेमी को देखा भी नहीं है। अभी वह प्रेमी मिल जाए तो पहचान भी न सकेंगे। प्रत्यभिज्ञा भी न होगी। अभी तो उस प्रेमी की खबर मिली है। एक हवा का झोंका आया है। प्रीति लागी तुम नाम की। अभी तो नाम सुना है। एक भनक पड़ी है। यह कैसे लगती है नाम की प्रीति? क्योंकि जिसे देखा नहीं, जिसे जाना नहीं, जिसे पहचाना नहीं, जिसे कभी आलिंगन नहीं किया, जिसका कभी स्पर्श नहीं हुआ, उसकी प्रीति कैसे लगती है?

व्यक्तियों के जगत में, नंबर दो के प्रेम में तो जिस स्त्री को तुमने देखा हो, पहचाना हो, स्पर्श किया हो, उसकी ही प्रीति जाती है। कोई अपरिचित स्त्री, जो कहीं तिब्बत में हो, जिसका कुछ पता ही नहीं, न जिसकी तस्वीर देखी हो, या न कभी जिसे फिल्म में देखा हो, उससे तुम्हारा प्रेम होता है? कैसे होगा? नाम भी कोई बता दे, तो भी क्या सुन कर प्रेम हो जाएगा?

फिर परमात्मा का प्रेम कैसे लता है? प्रीति लागी तुम नाम की—यह घटना घटती है? यह अनघट घटना कैसे घटती है? इसका राज है। यह गुरु के कारण घटती है।

कबीर के गुरु थे रामानंद। कबीर उनको नाचते देखते। तंबूरा बजता है, रामानंद नाचते हैं। कबीर उनके पास बैठते हैं। उनसे बहते आनंद के झरने का स्पर्श होता है। उनकी मस्ती, उनकी समाधिस्थ आनंद की दशा, सोते-जाते रामानंद को सब रूपों में देखते हैं। उस रूप में धीरे-धीरे अरूप की भनक पड़ने लगती है। रामानंद के पास होते-होते राम के पास होने लगते। क्योंकि रामानंद यानी राम को पा कर मिला आनंद।

यह नाम बड़ा प्यारा है कबीर के गुरु का—रामानंद। जिसको मिल गया और जो उस के आनंद से भरा है। राम का पता नहीं है कबीर को, लेकिन रामानंद में घटे आनंद का पता है। वह घट रहा है। वह प्रतिपल बरस रहा है। वहां मेघ गरज ही रहे हैं। चहुं दिस दमके दामिनी। वहां तो बिजली चमक रही है। वह रामानंद के पास रोग लगता है। रामानंद संक्रामक बीमारी हो जाते हैं।

जैसे बीमारियां पकड़ती हैं, वैसे स्वास्थ्य भी पकड़ती है। और जैसे बीमारियां पकड़ती हैं और बीमारियों के कीटाणु होते हैं, वैसे ही स्वास्थ्य के भी कीटाणु होते हैं और वैसे ही परमात्मा की धुन भी पकड़ती है। क्योंकि वह परम स्वास्थ्य है।

रामानंद के पास एक नई पुलक उठने लगी। एक नई पुकार! कोई दूर से बुलाता है। पहचाना नहीं, जाना नहीं, लेकिन हृदय आंदोलित होता है। प्रीति लागी तुम नाम की। अभी तुम्हारा कुछ पता नहीं। अभी सिर्फ नाम सुना है। वह भी रामानंद से सुना है। लेकिन रामानंद में ऐसा घट रहा है, कि भरोसा आ रहा है कि वह नाम जरूर किसी का होगा। उसकी खोज करनी पड़ेगी।

बुद्ध से कोई पूछता कि क्या आपको सुन कर ज्ञान हो जाएगा? क्या आपको समझ कर ज्ञान हो जाएगा? बुद्ध कहते नहीं। बुद्धों को सुन कर तो केवल प्यास लगती है। ज्ञान तो परमात्मा के मिलने से होगा; सत्य के मिलने से होगा। बुद्धों के पास पीड़ा जगती है, विरह उठता है। हृदय रुदन से भर जाता है। आंखों में आंसू झलक आते हैं। कोई अनजानी पुकार, कोई आवाज, जिसकी दिशा भी पहचानी नहीं, जहां कभी पैर भी नहीं चले, ऐसा कोई रास्ता, ऐसा कोई मार्ग बुलाने लगता है। और ऐसे उठती है पुकार—पल बिसरे नाही। कि एक क्षण भी भूलती नहीं।

प्रीति लागी तुम नाम की पल बिसरे नाही,
नजर करो अब मिहर की, मोहे मिलो गुसाई।

अब बहुत हो चुका। अब थोड़ी कृपा इस तरफ भी हो जाए। नजर करो मेहर की। अनुकंपा मुझ पर भी हो जाए। अब मिला गुसाई। अब बहुत विरह हो गया।

जिस दिन पहली दफा विरह का भाव उठता है। विरक के भाव का अर्थ है, लगता है कि परमात्मा को पाए बिना कुछ भी सार्थक नहीं है। लगता है सब कुछ दांव पर लगा देने जैसा है, लेकिन परमात्मा को पाना है। लगता है अपने को खोने को तैयार हूं, लेकिन तुम्हें अब और खोए रहने को तैयार नहीं। सब चुकाने को राजी हूं, लेकिन तुमसे मिलना होना ही चाहिए, जिस दिन सारा जीवन-मरण दांव पर लगता है

, जिस दिन हम जीते हैं तो उसके लिए, और मरते हैं तो उसके लिए, उस दिन ि फर पल भर भी उसकी याद नहीं भूलती।
सोते जागते भी प्रेमी प्रेयसी की ही याद करता है। गालिब का कोई पद है, कि रात आंख नहीं झपकाता; क्योंकि पता नहीं उसी क्षण तुम्हारा आना हो जाए। पता नहीं मैं सोया रहूं, तुम द्वार पर दस्त दो और लौट जाओ।
बड़ी बेचैनी की दशा हो जाती है की। पत्ते खड़खड़ाते हैं, लगता है, प्रेयसी आई कि प्रेमी आया। हवा का झोंका गुजरता है वृक्षों से, प्रेमी द्वार खोल कर देखता है, शाय द आना हो गया। राहगीर गुजरते हैं, पदचाप सुनाई पड़ती है, प्रेमी भागा द्वार के प ास पहुंच जाता है कि शायद आ गए।
प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरे नाही।
एक क्षण को भी भूलती नहीं याद। और तभी याद, याद है। जो भूल भूल जाए, जि से सम्हाल-सम्हाल कर लाना पड़े, वह भी कोई याद है?
कबीर कहते हैं, जैसे पनघट से कोई, पानी भरकर चलती है नारी, गपशप करती, गीत गुनगुनाती, सखियों से बात करती हंसी ठिठोली होती, लेकिन उसकी याद तो सिर पर रखे घड़े पर लगी रहती। है। यह सब चलता है बारह-बाहर। वह हाथ से भी नहीं सम्हालती घड़े को। घड़ा सम्हला रहता है। याद सम्हाले रहती है। बात चल ती, चर्चा होती, हंसती, गीत गाती, हजार गपशप होती, लेकिन यह सब बाहर-बाह र का व्यापार होता है। केंद्र पर एक सुरति बनी रहती है, एक स्मृति बनी रहती है घड़े को सम्हालने की।
जब विरह की अग्नि पहली दफा उठती है, तो गुरु से उठती है। गुरु के बिना नहीं उठ सकती। जब तक तुमने ऐसा आदमी ने देखा हो, जिसके जीवन से मिलने की सु वास उठ रही हो, जिसके भीतर तुम्हें अहसास होने लगे कि गुसाईं का आना हो गय ा; जिसके पदचापों में तुम्हें किसी तरह उस अज्ञात परमात्मा की ध्रुन सुनाई पड़े जि सके पदचिन्हों में उसके ही पदचिन्ह हों, परमात्मा के भी पदचिन्ह मालूम पड़ने लगे। इसलिए तो हमने बुद्धों के पैर बचा के रखे हैं, क्योंकि वे सिर्फ गौतम सिद्धार्थ नाम के आदमी के पदचिन्ह नहीं है। अन्यथा कौन फिकर करता है? कितने लोग इस पृथ वी पर चलते हैं और जाते हैं। उन पैरों में, जो लोग निकट थे, उन्होंने किसी और पैर को भी देखा है। उस बुद्ध की मूर्ति की मूर्ति में सिर्फ शुद्धोधन के बेटे गौतम सि द्धार्थ की प्रतिमा को हमने निर्मित नहीं किया है; उस प्रतिमा में कुछ अप्रतिम है जो किसी प्रतिमा में बांधा नहीं जा सकता; कोई मूर्ति जिसे सम्हाल नहीं सकती, वह अमूर्त झलका है। उस बूंद में हमने सागर को देखा है। उस पत्ते में हमें पूरे वृक्ष की खबर मिली है। उस मिट्टी में हमने सारे आकाश को देखा है। हम किसी को कह भी नहीं सकते, समझा भी नहीं सकते।
इसलिए शिष्य की बड़ी सुविधा है। शिष्य अपने गुरु के संबंध में किसी को कुछ नहीं समझा सकता। क्योंकि जो उसने देखा है, वह उसने देखा है। समझाने का कोई उप ाय नहीं है। प्रमाण देने का कोई मार्ग नहीं है।

कौन प्रेमी अपनी प्रेयसी के संबंध में समझा पता है? तुम लाख कहो कि तुम्हारी प्रेय सी विश्व सुंदरी होने के योग्य है, कोई सुनता नहीं। विश्व सुंदरियों के चित्र छपते हैं , तुम देखते हो, तुम ऐसा फेंक देते हो, कि कुछ नहीं; मेरी पत्नी के मुकाबिले क्या ? या मेरी प्रेयसी के मुकाबिल क्या? और पड़ोसी विचार में पड़ते हैं, कि तुम इस स्त्री के पीछे दीवाने क्यों हो? क्या देख लिया तुमने? दिमाग खराब हो गया? माथा बिगड़ गया है? सम्मोहित हो? उस स्त्री ने कुछ खिला-पिला दिया? कोई ताबीज बांध दिया? मामला क्या है? इसमें हमको तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

शिष्य भी गुरु के संबंध में कुछ नहीं समझा पाता। कोई प्रमाण नहीं दे सकता। कुछ अप्रमाण उसे घटा है। कुछ बिना प्रमाण के घटा है। कुछ देखा है, बस देखा है। उस देखने में वह मोहित हुआ है। परमात्मा के प्रति विरह जगता है, जब तुम गुरु के पा स आते हो।

जैसे-जैसे गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे परमात्मा की तरफ विरह बढ़ता है—य ह सूत्र है।

यह सार समझ लेना। जैसे-जैसे गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे परमात्मा के प्रि त विरह की अग्नि जलती है। धीरे-धीरे गुरु तुम्हें तड़फा देता है। गुरु तुमसे सब छी न लेता है, जो कल तुम्हारा सुख था। सब छीन लेता है, जो कल तक तुम्हारा प्रेम था। सब छीन लेता है। तुम्हारी नींद छीन लेता है, तुम्हारा चैन छीन लेता है। जैसे-जैसे गुरु के प्रति प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे परमात्मा की विरह जगती है। एक अनूठी प यास कंठ को पकड़ लेती है। प्राण जकड़ जाते हैं।

अब तुम तड़फते हो, जैसे मछली तड़फती है। पानी से निकाल ली किसी ने मछली को और डाल दी रेत पर; और तड़फती है। ऐसा गुरु तुम्हें पहली दफा तुम्हें तुम्हारे गलत प्रेम से निकाल कर ठीक प्रेम की रेत पर डाल देता है। तुम तड़फते हो। पह ली दफा विरह की अग्नि पैदा होती है।

प्रीति लागी तुम नाम की, पल बिसरे नाही।
नजर करो अब मिहर की, मोहि मिलो गुसाई।।
बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़फे मेरा,
तुम देखने की चाव है, प्रभु मिला सबेरा।।
विरह सतावै मोहि को, जिव तड़फे मेरा—

प्राण तड़फते हैं तुम्हारे लिए। श्वास चलती है तुम्हारे लिए। पलभर को भी विश्राम नहीं है। याद चुभती है कांटों की तरह; जैसे हृदय में कांटा लगा हो। एक मीठी पी. डा जो घेर लेती है; जिससे बाहर होने का कोई उपाय नहीं सूझता। क्या करे विरह का मारा हुआ? रोता है, गाता है। उसके रोने में तुम गीत पाओगे, उसके गीत में तुम रोना पाओगे। हंसता है, उसके हंसने में तुम आंसू पाओगे। आंसू टपकते हैं। उस के आंसू में तुम मुस्कुराहट पाओगे।

क्योंकि एक तरह से तो वह बड़ा प्रसन्न है कि विरह पैदा हो गया। क्योंकि आधा मि लन हो गया। विरह यानी आधा मिलन। सौभाग्य है कि विरह जग गया। कम से क

म यात्रा शुरू तो हो गई। राह पर तो आ गए। मंदिर कितनी ही दूर हो, लेकिन शि
खर दिखाई पड़ने लगा। अभी मंदिर की प्रतिमा नहीं दिखी, लेकिन आकाश में चमक
ता हुआ स्वर्ण शिखर दिखाई पड़ने लगा। आशा बंधती है, भरोसा आता है। भक्त दौ.
डने लगता है।

बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़फे मेरा।

तुम देख की चाव है—

बस, एक ही चाह बनी। सब चाहे एक चाह में गिर गई। जैसे सभी नदियां एक ही
सागर में गिर जायें। वह है, तुम देखने की चाव।...प्रभु मिला सवेरा।

सुबह हो गई। अब अंधेरा नहीं है। अब दिखाई पड़ता है। बस अब एक ही चाह है ि
क उस रोशनी में तुम भी दिखाई पड़ जाओ।

यह ध्यान की अवस्था है। अब रोशनी तो हो जाती है, लेकिन समाधि नहीं फलती।
जब प्रकाश तो हो जाता है, सुबह तो हो गई, लेकिन अभी सूरज नहीं निकला है। र
ात जा चुकी, अंधेरा अब नहीं है, सुबह हो गई—सबेरा; लेकिन सूरज अभी नहीं नि
कला है। अभी सूरज के दर्शन नहीं हुए।

वह जो मध्यकाल है, रात्रि के जाने और सूरज के आने के बीच में जो संध्याकाल है
, उसको ही हिंदुओं ने अपनी प्रार्थना का समय बनाया। क्योंकि वही ध्यान है। वही ध
यान का प्रतीक है। इसलिए हिंदू प्रार्थना को संध्या कहते हैं। संध्यान का अर्थ है, सुब
ह। रात गई, दिन अभी आया नहीं। वह जो मध्यकाल है संध्या या—सांझ। सूरज जा
चूका, रात अभी आई नहीं वह भी संध्या है। ध्यान, संध्या की अवस्था है। इसलिए
हिंदुओं ने ध्यान का नाम ही संध्या रख लिया। ठीक किया। वह प्रतीक बिलकुल स
ही है। ध्यान की अवस्था में प्रकाश तो हो जाता है, लेकिन प्रभु का दर्शन नहीं होता
। सूरज अभी निकला नहीं है।

कबीर कहते हैं—

बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़फे मेरा।

तुम देखने की चाव है, प्रभु मिला सबेरा।।

सुबह हो गई। अब तो दिखाई पड़ जाओ।

नैना तरसै दरस को, पल पलक न लागे।

दर्दबंद दीदार का, निसि बास जागे।।

अब आंखों में बस एक ही तड़फ, एक ही तरस है—नैना तरसै दरस को। तुम्हारे दर्श
न हो जाएं। तुम दिखाई पड़ जाओ। जन्मों-जन्मों से भूखी आंखें तृप्त हो जाएं। ये जन
मों-जन्मों से तड़फीं आंखें तुम से भर जाए। तुम्हें समा लें अपने भीतर।

पल पलक न लागे—

इस डर से पलक नहीं झपकता कि पता नहीं, इधर पलक झपके, उधार तुम आओ।
अवसर चूक जाए। पलक झपकाने से ही डर लगता है। एक क्षण...कौन जाने वही
क्षण मिलने का क्षण हो।

दर्द बंद दीदार का...

वह जो देखने के लिए दीवाना है, वह जो देखने के लिए पीड़ा से भरा है, निसि बा स जागे। वह सोता ही नहीं। सोने की सुविधा उसे नहीं। वह जागता है—दिन भी औ र रात भी। कौन जाने कब उसका आगमन हो! कब उसका रथ रुक जाए आकर द्वा र पर! कहीं ऐसा न हो, कि वह मुझे सोया हुआ पाए।

ध्यान की अवस्था सतत जागरण की अवस्था है। सतत चेष्टा है, कि जागा रहूं।

जो अब कै प्रीतम मिलें, कूः निमिख न न्यारा।

अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।

जो अब कै प्रीतम मिलें...

ये शब्द बड़े अनूठे हैं। इनका अर्थ...

कबीर कहते हैं, जो अब कै प्रीतम मिलै। वे कहते हैं कि मिले तो तुम पहले भी हो ओगे। मेरे अनजाने मिले। मिलते तो तुम पहले भी रहे होओगे, क्योंकि तुम्हारे बिना जीवन कहां? बहे तो तुम पहले भी मेरी सांसों में होओगे, लेकिन मैं सोया था। आ ए तो तुम बहुत बार मेरे द्वार पर होओगे, क्योंकि कैसे तुम मुझे भूल सकते हो? मैं तुम्हारा ही हूं। कितना ही दूर भटक गया होऊं, तुमने छाया की तरह मेरा पीछा िकया होगा। लेकिन मुझे तुम्हारी पहचान न थी। न मालूम कितने रूपों में तुम आए होओगे। मैंने रूप तो देखे, लेकिन तुम्हें न देख पाया। फूल में तुम हंसे होओगे। मुझे दिखाई न पड़ा मैं अंधा था। वृक्ष में तुम खिले होओगे, मैं गाफिल था। मनुष्यों की आंखों में तुमने झांका होगा मेरी तरफ, लेकिन मैंने सिर्फ समझा कि मनुष्यों की आं खें हैं। इसलिए कबीर कहते हैं, जो अब कै प्रीतम मिलें।

वे यह नहीं कहते कि यह मिलन कोई पहली दफा होने वाला है। वे यह नहीं कहते कि यह मिलन नया है। हम हो ही नहीं सकते बिना परमात्मा के। हमारा होना वही है। जैसे मछली नहीं हो सकती बिना सागर है। पैदा होती सागर में, जीती सागर में, मिटती सागर में, ऐसे हम परमात्मा के सागर में हैं। चेतना की मछली, परमात् मा का सागर। चेतना हो ही नहीं सकती परमात्मा के बीना। हम चेतन हैं।

तो यह तो नहीं कहते कबीर कि यह पहली दफा मिलना हो रहा है। वे कहते हैं कि मिलना तो बहुत बार हुआ होगा, लेकिन मैं बेहोशी में सोया, मैं गाफिल, मैं नशे में धुत पड़ा रहा। तुम आए होओगे। क्षमा करो उन भूलों को।

जो अब कै प्रीतम मिले—

लेकिन अब एक बात पक्की है, कि इस बार अगर मिलना हुआ, अगर अब तुम्हें प हचान पाया, कहीं भी किसी भी चांद तारे के पास तुम्हारी छाया दिख गई, तो पक. ड लूंगा। अब न छोडूंगा।

...करूं निमिख न न्यारा।

अब एक क्षण को भी तुमसे अलग न हो सकूंगा। अब मैं तुम्हें अलग न करूंगा। अब मैं तुम्हारी छाया बन जाऊंगा।

अब कबीर गुरु पाइया

और अब भरोसा है क्योंकि गुरु मिल गया। अब डर नहीं है। अब तुम ज्यादा दिन न बच सकोगे। अब तुम कितने ही छिपो, छिपा न पाओगे। कितने ही अवगुंठन धरो, कितने ही घूंघट पहनो, अब कबीर गुरु पाइया। अब मैं अकेला नहीं हूं। अब कोई है, जो तुम्हें पहचानता है और साथ है। और कोई है, जिसकी भली भांति पहचान है और जिसे तुम धोखा नहीं दे सकते, और जिससे तुम छिप नहीं सकते। अब वह सा थ है, अब मेरा हाथ किसी के हाथ है।

अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।

अब तुम कितनी देर बचोगे? गुरु के मिलने में तुम मिल ही गए। करीब-करीब मिल गए। यात्रा पूरी होने की करीब है। अब गुरु पाइया मिला प्राण पियारा। अब प्राण-प्यारा मिल ही गया। समझो कि मिलन हो गया।

गुरु मिल गया कि परमात्मा का द्वार मिल गया। गुरु मिल गया कि गुरुद्वारा मिल गया; गुरु मिल गया सहारा मिल गया। अब हाथ किसी ने सम्हाल लिया। अब तुम अंधेरे में नहीं भटक रहे हो। अब तुम यूं ही अंधेरे में नहीं टटोल रहे हो। कोई है जिसकी आंख खुली है। और जो परिपूर्ण रोशनी में जी रहा है।

जो अब कै प्रीतम मिले, करूं निमिख न न्यारा।

अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्राण पियारा।

गुरु को पा लिया, सार में परमात्मा को पा लिया। इसलिए तो गुरु की इतनी चर्चा इस देश में चलती रही है। जैसे गुरु के बिना कुछ भी न हो सकेगा। जैसे गुरु के बिना कोई उपाय नहीं है।

गुरु इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है इस देश में? जिन्होंने भी पाया, सदा गुरु के द्वार से पाया। गुरु की आंखों से झांक कर पाया। गुरु के हाथा से छू कर पाया। गुरु के हृदय में धड़क कर पाया।

जो अब कै प्रीतम मिलें, करूं निमिख न न्यारा

अब कबीर गुरु पाइया, किला प्राण पियारा।

आज इतना ही।

अंधे हरि बिना को तेरा

10 मई, 1975, प्रातः, श्री ओशो आश्रम, पूना

अंधे हरि बिना को तेरा, कबन्सु कहत मेरी मेरा।

तति कुलाक्रम अभिमाना, झूठे भरमि कहा भुलाना।।

झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमिख माहि जर जाई।

जब लग मनहि विकारा, तब लग नहिं छूटे संसार।।

जब मन निर्मल करि जाना, तब निर्मल माहि समाना।

ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिना और न कोई।।

जब पाप पुण्य भ्रम जारि, तब भयो प्रकाश मुरारी।

कहे कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।

भूले भरम मरे जिन कोई, राजा राम करे सो होई।

मैं यदि पूछूं, तुमसे, कि संसार कहां है? तो तुम दसों दिशाओं को बताओ। लेकिन संसार वहां है नहीं। वहां तो परमात्मा है। तो शायद तुम भीतर बताओ। ग्यारहवीं दिशा में बताओ। वहां भी संसार नहीं है। वहां भी परमात्मा है। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है।

फिर संसार कहां है? बाहर और भीतर के मध्य। जिसे हम मन कहते हैं, सारा संसार वहीं है। मन तो बाहर है, और मन न भीतर है। मन बाहर और भीतर के मध्य खड़ी दीवार है। और सारा संसार मन का विस्तार है।

जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, वह वही नहीं जो है, तुम्हें वही दिखाई पड़ता है, जो तुम्हारी कामना, तुम्हारी वासना चाहती है। तुम्हारी चाह में सब रंग जाता है। तुम्हारा राग में सब रंग जाता है। और तुम वही देख पाते हो, जो तुम्हारी भीतर की कामना तुम्हें दिखाती है। तुम्हारा देखना शुद्ध नहीं है। दृष्टि निर्मल नहीं है। विकास से भरी है।

विकार का इतना ही अर्थ, कि तुम दर्पण की तरह खाली नहीं हो कि वही दिख जाए, जो है। तुम्हें वही दिखाई पड़ता है जो तुम प्रक्षेप करते हो। कहीं सौंदर्य दिखाई पड़ता है, कहीं तुम्हें कुरूपता दिखाई पड़ती है। कहीं तुम्हें लाभ दिखाई पड़ता है। कहीं तुम्हें हानि दिखाई पड़ती है, ये सब तुम्हारी धारणाएं हैं। ये तुम्हारी वासनाएं हैं। शुद्ध सत्य सब तरह मौजूद है—बाहर और भीतर। पर मन सबको रंग डालता है।

मैंने सुना है। कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दफ्तर में नौकर था। बूढ़ा आदमी, सत्तर साल, उम्र! लेकिन पुराना नौकर, इसलिए दफ्तर ने उसे जारी रखा। बहुत लोग थे दफ्तर में काम करने वाले। पुरुष थे, स्त्रियां थीं। और स्त्रियों के संबंध में पुरुषों में अक्सर मजाक चलता रहता है।

एक सुंदरतम स्त्री थी दफ्तर में। सावन का महीना आया, तो उसने मुल्ला नसरुद्दीन को कहा कि मुल्ला साहब! यहां और तो कोई दिखाई नहीं पड़ता, जिसे मैं राखी बांधूं। और मेरा कोई भाई नहीं है। बस, आप ही एक सरल मूर्ति दिखाई पड़ते हैं। तो परसों राखी का त्योहार आता है। मैं आपको राखी बांधूंगी। लेकिन ध्यान रहे, इक्कीस रुपये और साड़ी आपको देनी पड़ेगी।

नसरुद्दीन थोड़ा चिंतित हुआ। माथे पर चिंता की रेखा आई। तो शायद उस स्त्री ने सोचा, कि इक्कीस रुपया और साड़ी महंगी मालूम पड़ती है। तो उसने कहा कि नहीं नहीं, उसकी फिक्र मत करिये। वह तो मैं मजाक कर रही थी। नसरुद्दीन ने कहा, सवाल नहीं है आप गलत समझीं। इक्कीस की जगह बयालीस रुपये ले लेना। एक साड़ी की जगह दो साड़ी ले लेना, लेकिन कम से कम रिश्ता तो मत बिगाड़ो!

भीतर मन है। उसके अपने राग हैं, अपने रंग हैं। दूसरे को तो दिखाई नहीं पड़ते, तुम्हीं को दिखाई पड़ते हैं। तुम्हारा मन दूसरों को दिखाई कैसे पड़ सकता है? तुम किस दुनिया में रहते हो वह किसी को भी पता नहीं चलता। तुम थोड़े से भरो, तो तुम्हें को पता चलना शुरू होगा।

और तुम्हारा मन सारी चीजों को रंग डालता है। किसी को तुम कहते हो मेरा, अप ना। किसी को कहते हो पराया। किसी को मित्र, किसी को शत्रु। कौन है मित्र? कौ न है शत्रु? जो तुम्हारे वासनाओं के अनुकूल पड़ जाए, वह मित्र। जो तुम्हारी वासन ाओं के प्रतिकूल पड़ जाए, वह शत्रु। कोई अच्छा लगता है, कोई बुरा लगता है। कि सी के तुम पास होना चाहते हो। किसी से तुम दूर होना चाहते हो। यह सब तुम्हारे मन का ही खुल है।

चेखोव रूस का एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। उसने अपने संस्मरणों के आधार पर ए क कहानी लिखी। उसके मित्र का लड़का कोई दस साल पहले घर से भाग गया। मि त्र धनी था। लेकिन जैसे अक्सर धनी होते हैं, महा-कृपण था। और लड़के को बाप के साथ रास न पड़ी। तो लड़का घर छोड़ कर भाग गया। एक ही लड़का था। जब भागा था तब तो बाप में अकड़ थीं, लेकिन धीरे-धीरे अकड़ कम हुई। मौत करीब आने लगी। दस साल बीत गये। लड़के के लौटने के कोई आसार न मालूम पड़े। खोजने वाले भेजे। थोड़ा झुका बाप। क्योंकि वही तो मालिक है सारी संपदा का। औ र मौत कभी भी घट सकती है। कोई पता न चलता था लेकिन एक दिन एक पत्र आया, कि लड़का बहुत मुसीबत में है और पास के ही शहर में है। पिता को बुलाय ा है। और कहा है, कि अगर आप आ जाएं तो मैं घर लौट आऊंगा। अपने से मेरी आने की हिम्मत नहीं होती। शर्मिंदा मालूम पड़ता हूं। अपराधी लगता हूं।

तो बाप गया शहर। एक शानदार होटल में ठहरा। लेकिन रात उसने पाया, कि होट ल के कमरे के बाहर कोई खांसता, खंखारता...तो दरवाजा खोलकर उस आदमी से कहा कि हट जाओ यहां से। सोने दोगे या नहीं? लेकिन रात सर्द। और बर्फ पड़ रह ी है। और वह आदमी जाने को राजी नहीं है। तो उसने धक्के देकर उसे बरामदे के बाहर कर दिया। फिर जाकर वह आराम से सो गया।

सुबह होटल के बाहर मैदान में भीड़ लगी पाई। कोई मर गया है। तो वह भी गया देखने। कपड़े तो वही मालूम पड़ते हैं, जिस आदमी को रात उसने बरामदे के निका ल दिया था। भीड़ में पास जाकर देखा, तो चेहरा पहचाना हुआ मालूम पड़ा। यह त ो उसका लड़का है!

अपने ही लड़के को रात उसने बाहर निकाल लिया। मन को पता न हो कि वह अप ना है, तो अपना नहीं है। मन को पता हो कि अपना है, तो अपना है। सारा खेल मन का है। क्षण भर पहले कोई मतलब न था। यह आदमी मरा पड़ा था। भीड़ लग गयी थी। लेकिन क्षण भर बाद अब बाप छाती पीट कर रो रहा है कि मेरा लड़का मर गया है। और अब यह पीड़ा जीवन भर रहेगी क्योंकि मैंने ही मारा।

खेल सारा मन का है। और अभी सिद्ध हो जाए, कोई दूसरा आदमी आ जाए और कहे कि यह लड़का मेरा है, तुम्हारा नहीं। तुम भूल में पड़ गए। आंसू सूख जाएंगे। प्रफुल्लता वापिस लौट आएगी। क्षण भर में सब बदल जाता है। मन का भाव बदला कि सब बदला।

चेखोज ने एक और कहानी लिखी है, कि दो पुलिसवाले एक राह से गुजर रहे हैं अ ौर एक कुत्ते ने एक आवारा आदमी को काट लिया है। कुत्ता भी आवारा है। और उस आदमी ने उसकी टांग पकड़ ली है। और होटल के पास भीड़ लगी है। और लो ग कहर हे हैं इसको मार ही डालो। यह दूसरों को भी सता चुका है। पता नहीं, पा गल हो। यह कुत्ता एक उपद्रव हो गया है इस इलाके में।

पुलिसवाले भी दोनों उस भीड़ में खड़े हो गए। उनमें से एक बोला कि खतम ही क रो, क्योंकि हमको भी रास्ते पर चलने नहीं देता। कुत्ते कुछ सदा के खिलाफ हैं संन्य ासियों, पुलिसवालों, पोस्टमैन...जो भी किसी तरह का यूनिफार्म पहनते हैं, उनके वे खिलाफ हैं। वे एकदम नाराज हो जाते हैं। हमको भी रात चलने नहीं देता। भौंकता है, उपद्रव मचाता है। मार ही डालो।

तभी दूसरे पुलिसवाले ने गौर से कुत्ते को देख कर कहा, कि सोच कर करना। यह तो पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल का कुत्ता मालूम पड़ता है। आवारा नहीं है। मैं भलीभांि त पहचानता हूं।

सब रंग बदल गया। वह पुलिसवाला जो कह रहा था कि मार डालो, झपटा उस आ वारा आदमी पर और कहा, कि तुमने उपद्रव मचा रखा है। ट्रैफिक को रोक रखा है ? छोड़ो इस कुत्ते को। जानते हो, यह कुत्ता किसका है? कितना मूल्यवान है? कुत्ते को उठा कर उसने कंधे पर रख लिया। और उस आवारा आदमी का हाथ पकड़क र कहा कि चलो पुलिस-थाने।

तभी दूसरे पुलिसवाले ने फिर कहा कि नहीं, नहीं भूल हो गई। यह कुत्ता इन्स्पेक्टर जनरल का नहीं है, सिर्फ मालूम पड़ता है। क्योंकि उसके तो माथे पर काला चिन्ह है, इसके माथे काला चिन्ह नहीं है।

कुत्ता फेंक दिया, उस पुलिसवाले ने नीचे और कहा कि कहां का आवारा कुत्ता और मैंने उठा लिया उसको! और उस आदमी से कहा कि पकड़ उसको। खत्म कर इस को। उस आदमी ने फिर उस कुत्ते को उठा लिया। उसका टांग पकड़ ली और पछा. डने जा ही रहा है। जमीन पर, कि दूसरे पुलिसवाले ने फिर कहा कि नहीं। संदेह हो ता है कि हो न हो, कुत्ता तो वही है क्योंकि बिलकुल वैसे ही मालूम हो रहा है। ि फर बात बदल गई। फिर दोनों झपट पड़े उस आदमी पर कि तुझे लाख दफे कहा ि क यहां पर उपद्रव मत कर। छोड़ इस कुत्ते को। फिर कुत्ता कंधे पर है।

ऐसी वह कहानी चलती है। वह कई दफा बदलती है।

और सारी जिंदगी ऐसी कहानी है। मेरा--तो सब बदल जाता है। तेरा--सब बदल जा ता है। और जगत वही का वही है। न आकाश तुम्हारा है, न तारे तुम्हारे हैं, न नद ी पहाड़ तुम्हारे हैं, न व्यक्ति तुम्हारे हैं। भला तुमसे पैदा हुए हों, तो भी तुम्हारे नह ीं हैं। न कोई अपना है, न कोई पराया है। अगर सब हैं तो परमात्मा के हैं। अगर सब में कोई है, तो परमात्मा है। मेरा और तेरे का सारा मन का है। और मन संसा र बनाता है।

फिर ध्यान रखना, तुम सोचते हो शायद कि एक संसार है, जिसमें हम सब रहते हैं ; तो तुम गलती में हो। यहां जितने मन हैं, उतने ही संसार हैं। यहां जितने लोग हैं , उतने ही संसार हैं।
और एक-एक आदमी के भीतर भी एक ही मन होता तो आसानी थी। एक-एक आदमी के भीतर अनेक मन हैं। सुबह तुम्हारा मन कुछ और है, दोपहर कुछ और है। सुबह तुम अपनी पत्नी के लिए मरने के लिए तत्पर थे, कि तेरे बिना क्षण भर न जी सकूंगा। दोपहर कहते हो कि तेरे साथ न जी सकूंगा। सांझ फिर हवा बदल जाएगी। मौसम बदल जाएगा। सांझ फिर तुम बड़े प्रेम से पत्नी के पास बैठे हो। जैसे पुलिस वाला तुम्हारे कान में बार-बार दोहराए जा रहा है, कि यह अपनी है। फिर कहता है कि नहीं, अपनी नहीं है, दुश्मन है।
इससे तो उपद्रव खड़ा हो गया है। पूरे वक्त तुम्हारा मन कुछ न कुछ कहे जा रहा है। और मन भी एक नहीं है तुम्हारे भीतर, अनेक हैं। महावीर ने कहा है, मनुष्य बहुचित्तवान है, पोली साइकिक है। एक ही मन होता तो भी हल कर लेते। हजार मन हैं। इसलिए तुम्हें कुछ भी भरोसा नहीं है कि तुम किसकी मान कर चलो। तुम्हारे भीतर कोई एक आवाज नहीं है, हजार आवाजें हैं। सभी का मिश्रित कोलाहल है। एक बाजार हो तुम, एक भीड़ हो।
तो एक-एक आदमी के भी बहुत से संसार हैं। और फिर इतने लोग हैं जमीन पर, इन सब के संसार हैं।
सत्य दिखाई पड़ेगा, तो एक होगा। असत्य व्यक्तिगत होते हैं। सत्य सार्वजनिक होता है। सत्य युनिवर्सल है, सार्वभौम है। तुम्हारा सत्य और मेरा सत्य अलग नहीं हो सकता। तुम्हारा असत्य तुम्हारा, मेरा असत्य मेरा। असत्य निजी होता हैं--प्रायव्हेट। सत्य तो निजी नहीं होता। सत्य तो सार्वभौम होता है। इसलिए जहां भी तुम पाओगे, कि तुम्हारे सत्य में किसी तरह का निजीपन है, वहीं संदिग्ध हो जाना। सत्य कहीं निजी हुआ है? सत्य तो सबका है। सत्य में सब हैं।
इसलिए अगर तुम कहो, कि मेरा धर्म हिंदू है तो संदिग्ध हो जाना। तुम्हारा धर्म तुम्हारे मन का खेल होगा। क्योंकि वह मुसलमान के विपरीत है। तुम्हारा धर्म अगर जैन है, तो वह हिंदू के विपरीत है। तुम्हारा धर्म अगर सिक्ख है, तो वह जैन के विपरीत है। और धर्म तो सत्य का होगा तुम्हारा और पराये का नहीं। मेरा और तेरा नहीं। जिस दिन व्यक्ति धार्मिक होता है, उस दिन उसके धर्म में सब लीन हो जाते हैं। सब कुरान, सब बाइबिल, सब वेद। उस दिन उसके पास सार्वभौम सत्य होता है।

लेकिन यह तभी हो पाता है, जब मन खो जाता है। मन तो सार्वभौम में उठने न देगा। मन संसार है। अमन संसार के पार हो जाना है। मन से मुक्त होना, संसार से मुक्त होना है। और तब तुम्हारा सत्य तुम्हारा न होगा, सभी का होगा। आदमियों का ही हनीं, वृक्षों का भी होगा, पत्थरों का भी होगा, चांद तारों का भी होगा। क्य

ोंकि सत्य तो एक है। सत्य तो अस्तित्व का प्राण है। वह कोई मन की धारणा नहीं है। वह तो जीवन की धारा है।

इसलिए शुद्ध धर्म सिर्फ धर्म होगा, न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई। हिंदू, मुसलमान, ईसाई मन के खेल हैं। चर्च, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वार मन की बनावटें हैं। वह मन का ही जाल है।

तुमने धर्म तक को मन से देखा है। इसलिए धर्म भी बंट गया। मन से तुम जो भी चीज देखोगे, वह तत्क्षण बंट जाएगी।मन बांटने की प्रक्रिया है। मन तोड़ने का ढंग है। तुमने कभी कांच का टुकड़ा देखा हो, प्रिज्म कहते हैं। उसमें से सूरज की किरण िनकालो, वह सात रंगों मग टूट जाती है। इंद्रधनुष बन जाता है। टुकड़े के पहले, कांच के टुकड़े से गुजरने के पहले तो किरण एक थी, शुभ्र थी, श्वेत थी। टुकड़े से गुजरते ही सात हिस्सों में टूट जाती है। सतरंगा जाल फैल जाता है। इंद्रधनुष बन जाते हैं।

मन कांच का टुकड़ा है, प्रिज्म है। जीवन-चेतना की किरण कांच के इस टुकड़े में से निकल कर सात रंगों में टूट जाती है। उसका श्वेतपन खो जाता है। उसकी निर्दोषता, सरलता, कुंवारापन खो जाता है। फिर सात रंग हो जाते हैं। संसार यानी सात रंग। संसार यानी मन के द्वारा देखा गया सत्य। संसार यानी धारणाओं, वासनाओं, कामनाओं के पद के पीछे से झांका गया परमात्मा।

मन भ्रांति है। और मन की भ्रांति से संसार की विराट भ्रांति पैदा होती है।

मन न तो भीतर है क्योंकि भीतर तो परमात्मा है; और मन न बाहर है,, क्योंकि बाहर भी परमात्मा है। तो मन दोनों के बीच में है।

मन को हम क्या कहें? हिंदुओं ने माया कहा है। माया शब्द समझने जैसा है। माया का मतलब झूठ नहीं होता, माया का मतलब भ्रम नहीं होता, माया का मतलब होता है, सच और झूठ के बीच। भ्रम और यथार्थ के बीच।

मन को बिलकुल झूठ भी तो नहीं कह सकते, क्योंकि है। और कितने जन्मों से तुम्हें भटका रहा है। झूठ कैसे भटका सकता है? अगर होता ही नहीं, बिलकुल न होता, तो इतना विराट संसार जो तुम अपने चारों ओर निर्मित कर लेते हो कैसे निर्मित कर लेते? मन है तो। नहीं है, ऐसा कहना तो उचित न होगा। लेकिन परमात्मा जैसा है, ऐसा कहना भी उचित न होगा क्योंकि शाश्वत नहीं है, क्षणभंगुर है। बनता है, मिटता है। फिर बनता है फिर मिटता है।

सागर की तरह नहीं है, बुलबुले की तरह है। बुलबुला उठता है, फूटता है। बनता है, मिटता है। और बुलबुले से अगर तुमने संसार को देखा, तो तुम न तो बाहर जीते हो, न भीतर जीते हो। वह तो एक ही चीज है बाहर और भीतर। तुम मध्य में जीने लगते हो।

यह जो मध्य की दशा है, सपने जैसी है।सपना होता तो है, अन्यथा तुम देखते कैसे रात? किसी रात सुबह उठ कर तुम कहते हो, कि आज कोई सपना नहीं देखा और किसी रात कहते हो आज सपने देखे। सपना था तो! देखा है, याद भी करते हो।

बता भी सकते हो। थोड़ी याददाश्त है कि ऐसा-ऐसा हुआ सपने में। है तो, लेकिन सुबह जागकर यह भी पता चलता है कि नहीं भी है।

सपना बड़ी बेबूझ पहले है। है कहो, तो गलत। नहीं है कहो, तो गलत। कुछ ऐसा है कि जैसा भी; और कुछ ऐसा है कि नहीं है जैसा भी। मध्य में है। आधा-आधा है। आधा सच है, आधा झूठ है। थोड़े से गुरु उसमें सच्चाई के हैं, क्योंकि देखा गया। और थोड़े से गुड उसमें असत्य के हैं, क्योंकि पाया नहीं गया।

देखा गया और पाया नहीं गया—यह सपना है।

देखी गई और पाई नहीं गई—यह माया है।

देखा गया और कभी उपलब्ध न हुआ—यह संसार है।

हमेशा लगा कि है; और जब भी पास गए, तो पाया कि नहीं है। दूर से मालूम पड़ा। पास आ कर खो गया। इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है। तुम जरा पास जाने की कोशिश करो। जैसे-जैसे तुम पास जाओगे, इंद्रधनुष खोने लगेगा। अगर तुम ठीक वहीं पहुंच जाओ जहां इंद्रधनुष था, इंद्रधनुष खो जाएगा। दूर से ही दिखाई पड़ता है। दूसरी चाहिए। पास आने से मिट जाता है।

सपना तुम मूर्च्छित रहो, तो दिखाई पड़ता है। होश आ जाए, तो टूट जाता है। इतना भी होश आ जाए कि मैं सपना देख रहा हूं, सपना टूट जाता है।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, कि जब तक तुम सपना न तोड़ पाओगे, तब तक तुम माया भी न तोड़ पाओगे। और वह ठीक कहता था। और उसने बड़ी अनूठी प्रक्रिया खोजी थी। वह कहता था कि तुम संसार को न तोड़ पाओगे न संसार से मुक्त हो पाओगे अभी तुम सपने से नहीं मुक्त हो सके। संसार से मुक्त होना तो बड़ी दूर की बात है। संसार तो बहुत विराट सपना है, जिसे तुमने जन्मों-जन्मों से देखा है। इतनी बार देखा है कि वह तुम्हारे देखने-देखने से सत्य हो गया है। इतनी परतें जम गई हैं तुम्हारे अनुभव की संसार के साथ, कि आज बिलकुल असंभव है। मानना कि नहीं है। पहले तुम सपना तोड़ो।

तो गुरजिएफ कहता था, अपने साधकों को, वह मैं तुमसे भी कहता हूं, बड़ा कीमती प्रयोग है। करो, तो बड़े परिणाम हो सकते हैं।

सोते वक्त रोज पांच-सात मिनिट, जैसे ही तुम्हें लगे कि अब नींद आने के करीब है, पांच-सात मिनट में आ जाएगी, तुम एक बात भीतर स्मरण रखने की कोशिश करो, कि जो भी मैं देखूंगा, जानूंगा कि यह सपना है...जो भी मैं देखूंगा, जानूंगा कि यह सपना है।

तीन महीने तक कोई परिणाम नहीं होंगे। तीन महीने तक तुम दोहराओगे, लेकिन रात सपने में भूल जाओगे। सुबह उठकर याद आएगी कि सोचा था कि जो भी देखूंगा, स्मरण रखूंगा कि सपना है; लेकिन स्मरण न रहा। सपने में पकड़ लिया।

लेकिन तीन महीने के बाद धीरे-धीरे थोड़ी थोड़ी भान की अवस्था आनी शुरू होगी। थोड़ा सा शक पैदा होना शुरू होगा। थोड़ा सा संदेह सरकेगा। सपना भी चलेगा और थोड़ी सी भीतर बेचैनी मालूम होती कि कुछ गड़बड़ है। अभी साफ नहीं होगा कि

सपना है। लेकिन एक बेचैनी, कुछ है जो ठीक नहीं मालूम हो रहा, कुछ गड़बड़ है। कुछ उलझ रहा हूं जाल में। ऐसा एक धीमा-धीमा बोध उठना शुरू होगा।
अगर तुमने सतत प्रयास जारी रखा तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, छह महीने पूरे होते-होते किसी दिन अचानक ठीक बीच सपने में, नींद न टूटेगी और तुम जाग जाओगे। क्योंकि नींद टूट जाए, फिर तो कोई मतलब नहीं।
नींद टूट जाए, तब तो किसी को भी पता चल जाता है कि सपना था, लेकिन वह पता चलता है सपने में संबंध में जो जा चुका है। उसका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य तो वर्तमान का है। अभी इस क्षण का है। एक दिन तुम पाओगे, तीन और छह महीने के बीच किसी दिन अचानक तुम पाओगे कि नींद तो लगी है, तुम भीतर जाग गए। तुम देख रहे हो कि यह सपना है। जैसे ही तुमने देखा है कि यह सपना है, सपना तिरोहित हो जाता है। खाली जगह छूट जाती है। और कहां से सपना तिरोहित होता है और वह जो खाली जगह छोड़ जाता है, वही अ मन है। वह पहली झलक है नो माइंड की। मन के न होने की पहली झलक है।
फिर इसको तुम बढ़ाए चले जाओ। धीरे-धीरे यह रोक का क्रम हो जाएगा। जैसे ही सपना पकड़ेगा, क्षण भी न बीतेगा कि तुम जाग जाओगे। सपना टूट जाएगा। नींद जारी रहेगी। और तुम पाओगे कि नींद में अगर सपना टूट जाता है, तो जागने में विचार टूटने लगते हैं। जैसे ही तुम जागने में विचार करोगे, अचानक भीतर कुछ होश से भर जाएगा और कहेगा कि ये विचार हैं, यह भी सपना है। विचार भी रुक जाएगा।
अगर नींद में सपना टूट जाए, जागने में विचार टूट जाए, तो तुम्हारा संसार छूट गया।
संसार छोड़ने के लिए हिमालय जाने से कुछ भी नहीं होता; घर छोड़ कर विरागी हो जाने से कुछ भी नहीं होता। क्योंकि घर थोड़े ही संसार है! पत्नी, बच्चे, पति थोड़े ही संसार हैं! संसार तो तुम्हारे भीतर देखने के ढंग में छिपा है। मूर्च्छा में छिपा है। तो तुम जहां जाओगे, क्या फर्क पड़ता है? तुम हिमालय चले जाओगे। तुम एक वृक्ष के नीचे कुटी बना लोगे, वह कुटी तुम्हारी हो जाएगी, जैसे महल तुम्हारा था। अब अगर कोई आकर उस कुटी पर अड्डा करने लगेगा, झगड़ा खड़ा हो जाएगा। मार-पीट हो जाएगी। वहीं फौजदारी हो जाएगी। कोई अदालत की थोड़े ही जरूरत है फौजदारी के लिए; कि शहर की जरूरत है, कि कानून की जरूरत है। तुम लड़ पड़ोगे कि यह झाड़ मेरा है। मैं पहले से ही यहां हूं। हटो यहां से। मेरा वही पकड़ लेगा। कोई तुम्हारे पैर दबाने लगेगा। वह तुम्हारा सपना हो जाएगा, वह बीमार होगा, तो तुम दुखी होने लगोगे। वह मरेगा तो तुम रोओगे। घर बस गया। गृहस्थी पैदा हो गई।
एक संन्यासी मरण शैया पर पड़ा था। और उसके शिष्यों ने पूछा कि हमारे लिए कोई आखिरी संदेश? तो उसने कहा कि जो मेरे गुरु ने मुझसे कहा था और मैंने नहीं माना, वही मैं तुमसे कहता हूं। तुम कोशिश करना मानने की। मैं असफल रहा।

सब जाग कर बैठ गए कि कोई बहुत महत्वपूर्ण बात, जो गुरु ने उसको कही थी अ ौर वह भी न मान पाया। और वह हमसे कह रहा है। उसने कहा कि तुम बिल्ली क भी मत पालना। शिष्य थोड़े हैरान हुए, कि यह कौन सा ब्रह्मज्ञान? वेद में भी इसक ा उल्लेख नहीं, कुरान में भी नहीं, बाइबिल में भी नहीं, यह कौन सा धर्म? क्या म रते वक्त तुम्हारा दिमाग गड़बड़ हो गया? सन्निपात में हो? हम पूछ रहे हैं कि को ई कुंजी दे जाओ—सूत्र, और आप बता रहे हैं कि बिल्ली मत पालना। सठिया गए ह ो?

उसने कहा कि नहीं; यही मेरे गुरु ने कहा था और मैं न मान पाया मैं तुम्हें अपनी कहानी कहे देता हूं। तुम याद रखना।

गुरु ने करते वक्त—यही मैंने उनसे कहा था, कि क्या करूं? कोई संदेश, सारसूत्र? उन्होंने कहा कि बिल्ली मत पालना। मैंने भी समझा कि सठिया गए। दिमाग खराब हो गया मरते वक्त। उम्र भी ज्यादा हो गई थी। कोई नब्बे वर्ष थी उम्र। अब दिमाग ठीक काम नहीं कर रहा है। बिल्ली पालने से क्या संबंध? लेकिन वहीं भूल हो गई । मैंने समझा कि दिमाग खराब है, वहीं चूक गया।

फिर बरसों बीत गए। मैं सब छोड़ कर जंगल में रहने लगा। साधना करता था। शास्‍ त्र पढ़ता था। मनन, ध्यान में लगा था। कुछ पास न था, बस दो लंगोटियां थीं। लेि कन चूहे झोपड़ी में थे और लंगोटी काट जाते। तो मैंने गांव के लोगों से कहा—जो आते थे कभी-कभी भोजन लेकर, फल लेकर—कि क्या करूं? उन्होंने कहा कि एक ि बल्ली पाल लो।

और मुझे याद भी न आई कि मरते वक्त गुरु कह गया कि बिल्ली मत पालना। बा त कुछ कठिनाई की भी न लगी। सीधी-साफ थी, निर्दोष थी। बिल्ली पालने में झंझट भी क्या? बिल्ली कोई गृहस्थी है? कोई ज्ञानी नहीं कह गया कि बिल्ली में गृहस्थी है। ज्ञानियों ने कहा कि पत्नी मत पालना, पत्नी मत पालना। बिल्ली मत पालना, ि कसी ने कहा है? और बिल्ली से अपना क्या लेना-देना? चूहों और बिल्ली का निपट ारा हो जाएगा।

बात जंच गई। बिल्ली पाल ली। लेकिन बड़ी कठिनाई। बिल्ली को कभी चूहे मिलते, कभी नहीं भी मिलते। बिल्ली भूखी रहती, तो उस को भी पीड़ा होती। उसने गांव के लोगों से कहा कि क्या करूं? उन्होंने का कि ऐसा करो, एक गाय ठीक रहेगी। आपके भी काम आ जाएगा दूध। और बिल्ली के भी काम आ जाएगा। स्वभावतः गा य पाल ली गई।

अब गाय के लिए घास चाहिए थी। कभी गांव के लोग लाते, कभी न भी लाते। तो उसने कहा कि अब यह बड़ी मुसीबत हो गई। अब गाय की चिंता करनी पड़ती है घास चाहिए, भोजन चाहिए, पानी चाहिए। उन ने कहा कि आप ऐसा करो कि बै ठे-बैठे कुछ काम भी तो नहीं है। थोड़ा घास के बीज बो दो, थोड़े गेहूं भी डाल दो। आपके भी काम आएंगे, बिल्ली के भी काम पड़ेंगे। गाय के भी काम पड़ेंगे।

रास्ता खुल गया बिल्ली से। गाय आई। खेत लग गया। लेकिन कभी संन्यासी को, तबियत ठीक न होती तो भी मजबूरी से खेत पर का करना पड़ता। पानी देना है, या बीज बोने का वक्त आ गया। धीरे-धीरे खेती महत्वपूर्ण हो गई। ध्यान धारणा कोने में पड़ गए। समय ही न मिलता। कभी वर्षा न होती तो पानी खींचना पड़ता। लोगों से पूछा कि अब क्या करना? मैं बूढ़ा भी हुआ जाता हूं। लोगों ने कहा कि ऐसा करें, गांव में एक लड़की है, उम्र भी ज्यादा होगी। विवाह होता नहीं। उसको आपकी सेवा में छोड़ देते हैं।

कोई खतरा दिखाई नहीं पड़ा। लड़की सेवा में आ गई। लड़की खेत भी सम्हालने लगी। बिल्ली की भी देखभाल करती। गाय की भी देखभाल करती। सेवा वही करती। थक जाता तो पैर भी दबाती, दवा भी देती। धीरे-धीरे मोह जगा। प्रेम बना। बिल्ली सब ले आई। पूरा संसार ले आई।

आखिर एक दिन गांववाले खुद ही आ गए कि अब यह ठीक नहीं है। क्योंकि आप राग बन गया और यह जरा अनैतिक है। तो आप शादी ही कर लो, जब राग ही बन गया है।

संन्यासी ने कहा कि बात भी ठीक है। शादी हो गई। बच्चे हो गए। मरते वक्त उसे याद आया कि गुरु ने कहा था, बिल्ली मत पालना।

उसने कहा कि मैं तुमसे भी कहता हूं कि बिल्ली मत पालना और ध्यान रखना कि मैंने भी यही भूल की थी। समझा था कि गुरु सठिया गया। डर है कि तुम भी यही सोचोगे और बिल्ली पाल लोगे।

असल में गुरु ने जरा गलत बात बताई। अगर मैं होता, तो उससे कहता कि लंगोटी मत रखना। क्योंकि बिल्ली तो जरा दूर का मामला है। लंगोटी हो तो चूहे आएंगे। चूहे हों तो बिल्ली आएगी। वह लंगोटी से असल में झंझट शुरू हुई। तुम अगर किसी को समझाओ, तो लंगोटी का बताना। बिल्ली का मत बताना। वह सूत्र काम नहीं पड़ा।

असल में कोई भी एक चीज सब ले जाएगी। क्योंकि संसार का सवाल नहीं, मन का सवाल है। तुम कहां भाग कर जाओगे? तुम जहां भी जाओगे, कम से कम तुम तो रहोगे। तुम्हीं लंगोटी हो। और अगर तुम हो तो सब है। तुम हो तो लंगोटी आ जाएगी। लंगोटी चूहे ले जाएगी, चूहे बिल्लियां, बिल्लियां, गाएं; और संसार बढ़ता जाता है।

तुम्हें पता भी नहीं चलता, एक-एक कदम बढ़ता है। इतना आहिस्ते-आहिस्ते बढ़ता है कि तुम्हें पता भी नहीं चलता कि कोई बढ़ती हो रही है। कभी एकदम से तो संसार तुम्हारे ऊपर झपटता नहीं। अगर लंगोटी से सीधी पत्नी आई होती तो दिखाई पड़ जाता। क्योंकि बीच में एक छलांग होती। सीढ़ियां थीं।

संसार सीढ़ियों में आता है और परमात्मा छलांग से। संसार के आने का ढंग क्रम है। और परमात्मा के आने का ढंग अक्रम है। संसार धीरे-धीरे आता है क्योंकि अगर

छलांग से आएगा तो सोए हुए लोग भी जग जाएंगे। परमात्मा छलांग से आता है क
योंकि सोयों को जगाना ही है। सोयों को सुलाए नहीं रखना है।
इसलिए जीवन की जो परम धन्यता है, वह एक छलांग में हो जाती है। और जीवन
का जो रोग है, नर्क है, वह इंच-इंच आता है। धीरे-धीरे आता है। वह इतने चुपच
ाप आता है कि उसकी पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती। कहां से आता है, यह भी स
मझ में नहीं आता।
लंगोटी मत पालना। लेकिन अगर तुम हो तो लंगोटी पालनी पड़ेगी। इसलिए अगर
ठीक से समझो तो तुम ही लंगोटी हो। जब तक तुम न मिट जाओगे तब तक संसार
नहीं मिट सकता। तुम यानी तुम्हारा मन। तुम यानी तुम्हारा अहंकार। तुम यानी
तुम्हारा यह भाव कि मैं हूं। जहां मैं है, वहां संसार है। जहां मैं नहीं वहां संसार नहीं
।
इसलिए ध्यान रखो, जिन-जिन चीजों से तुम्हारा मैं बढ़ता हो, जिन-जिन चीजों से
तुम्हारे मैं को शक्ति मिलती हो, अहंकार पुष्ट होता हो, उनसे सावधान भर सकता
है। सावधान होना।
तुम्हारे पास लाखों रुपए हैं, वह तुम्हारी अकड़ है। तुम छोड़ दो लाखों रुपए, तुम्हार
ी नई अकड़ पैदा हो जाएगी कि मैंने लाखों छोड़ दिए। और दूसरी अकड़ पहले से ज
यादा होगी। क्योंकि लाखों तो कई के पास हैं, लेकिन लाखों छोड़नेवाले कई नहीं हैं।
वे तो बहुतों के पास हैं, उस अकड़ में कोई जान नहीं है। लेकिन लाखों छोड़नेवाले
तो विरले हैं। तब अकड़ और बढ़ जाएगी।
ध्यान रखना, अगर तुमने अहंकार के प्रति जागरण न सम्हाला, तो तुम जो करोगे
वह अहंकार से ही होगा। भोग भी, त्याग भी, संसार भी, वैराग्य भी। और तुम्हारा
अहंकार तो पुष्ट होता चला जाएगा। शरीर को हो सकता है तुम मार डालो बिलकु
ल, लेकिन मन तुम्हारा बढ़ता जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत मोटी थी। डाक्टरों से सलाह ली। तो डाक्टर ने कहा
कि घुड़सवारी ठीक होगी। तो रोज सुबह घुड़सवारी पर जाए। महीने भर बाद नस
रुद्दीन को डाक्टर ने पूछा, राह पर मिला; क्या हाल है? क्या खबर? कुछ हुआ?
नसरुद्दीन ने कहा, बेचारी सूख कर कांटा हो गई। डाक्टर ने कहा, मैंने पहले ही का
था--प्रसन्न होकर कहा। नसरुद्दीन ने कहा, आप समझे नहीं। पत्नी नहीं, घोड़ी! पत्न
ी तो और मुटा रही है।
घोड़ी को मत सुखा डालना। शरीर घोड़ी है। उसको कितना ही उपवास करवाओ,
कुछ हल न होगा। पत्नी तो मुटाती चली जाएगी। वह अहंकार है तुम्हारे भीतर।
तो जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे शरीर को मार डालते हैं। कम खाते हैं कम सो
ते हैं, भूख ताप सहते हैं, लेकिन भीतर का अहंकार बढ़ता जाता है। जितना वजन
शरीर में कम होता है उतना वजन अहंकार में बढ़ता जाता है। इसलिए त्यागी-तपस्
वियों से ज्यादा अहंकारी आदमी तुम्हें कहीं भी न मिलेंगे। वे तो अहंकार के शुद्ध शि
खर हैं। अगर शुद्ध अहंकार देखना हो, तो त्यागी में।

भोगी में अशुद्ध होता है। वह चमक नहीं होती। क्योंकि भोगी को खुद ही लगता है, गलत कर रहा हूं। इसलिए भोगी थोड़ा सा डरा होता है। भोगी को लगता है, ठीक ही नहीं हो रहा है। इसलिए अहंकार की प्रगाढ़ता से प्रकट नहीं होता। थोड़ा झुका-झुका रहता है। भोगी थोड़ा विनम्र रहता है। क्योंकि अपराध का भाव रहता है। त्यागी का सब अपराध भाट मिट जाता है। त्यागी अकड़ कर चलता है। त्यागी की पताका उड़ती रहती है। त्यागी भयंकर अहंकार से भर जाता है।

भोगी का भी संसार है, त्यागी का भी संसार है। क्योंकि अहंकार है वहां संसार है। जिस दिन मैं भाव गिरता है, उसी दिन सब सपने गिर जाते हैं। यह बड़ा संसार सपना है। खुली आंखों का सपना। दो तरह के सपने हैं। एक, जो तुम बंद आंख से देखते हो। वे इतने खतरनाक नहीं क्योंकि रोज सुबह टूट जाते हैं। एक सपना है, खुली आंख का सपना—यह जो विराट तुम्हें चारों तरफ समझ में आता है, यह बड़ा खतरनाक है। क्योंकि जन्मों-जन्मों तुम जन्मते हो, मरते हो और नहीं टूटता। जिसने इसे तोड़ लिया वह परम धन्यभागी है।

यह कैसे टूटेगा? कबीर के ये सूत्र उसके तोड़ने की तरफ इशारे हैं।

अंधे हरि बिन को तेरा।

कबीर कहते हैं, अगर अपना ही मानना हो तो हरि को छोड़कर और किसी को मत मानो।

एक दिन तो हरि भी छूट जाएगा। क्योंकि वह भी खयाल, कि हरि मेरा है, आखिरी सपने का हिस्सा है। लेकिन जो सपने में है जिसको सपने का कांटा लगा है, उसे दूसरे कांटे से निकालने की जरूरत है। दूसरा कांटा उतना ही कांटा है, जितना पहला।

राह तुम चलते हो, कांटा लग गया। तत्क्षण तुम दूसरा बबूल का कांटा उठा लेते हो, पहले कांटे को निकालते हो दूसरे कांटे से। फिर दोनों को फेंक देते हो।

संसार कांटा है; धर्म भी कांटा है। अभी पत्नी मेरी, पति मेरा, बेटा मेरा, मकान मेरा, धन मेरा, इज्जत मेरी, पद मेरा—यह कांटा है। हरि मेरा—यह दूसरा कांटा है, जिससे बाकी सब कांटे निकल जाएंगे। फिर इस दूसरे कांटे को सम्हाल कर घाव में मत रख लेना। नहीं तो तुम मूर्ख साबित हुए, मूढ़ साबित हुए। सब मेहनत व्यर्थ गई। तुमने सब गुड़गोबर कर दिया। दूसरा भी कांटा है। उसकी उपयोगिता थी।

इसलिए पतंजलि ने योग सूत्रों में ईश्वर को भी एक विधि माना है; कि वह भी संसार से मुक्त होने की विधि है। बड़ी हैरानी की बात है। और मनुष्य जाति के इतिहास में इतना स्पष्ट रूप से ईश्वर को विधि कहनेवाला दूसरा व्यक्ति नहीं पैदा हुआ। पतंजलि ने साफ कहा कि यह भी एक विधि है। इस विधि से रोग मिट जाएगा। जब रोग मिट जाए तो औषधि को फेंक देना। औषधि को ढोते मत रहना।

बुद्ध ने कहा है कि तुम नाव से नदी पार करते हो। नाव नदी पार करने के लिए है। फिर जब तुम नदी पार हो जाते हो, नाव को भूल जाते हो। नदी में ही छोड़ जा

ते हो। उसको फिर सर पर लेकर मत चलना। फिर यह मत कहना गांव में जाकर नगरों में, कि कैसे छोड़े इस नाव को! इसने नदी पार करवाई।

तब तुम मूढ़ हो। तब तो बेहतर था कि तुम नदी ही पार नहीं करते। अब यह और उपद्रव हो गया। उसी किनारे रहते, वह बेहतर था। कम से कम सिर पर नाव का बोझ तो न था। अब तुम यह सिर पर नाव लेकर चल रहे हो।

बहुत लोग शास्त्रों को पकड़ लेते हैं, सिद्धांतों को पकड़ लेते हैं। बहुत से लोग परमात्मा को भी पकड़ लेते हैं। तब परमात्मा ही लंगोटी बन जाता है। फिर उसी लंगोटी से सारा संसार वापस निकट जाएगा।

अंधे हरि बिन को तेरा।

यह तो कांटा समझा रहे हैं कबीर; कि अभी तू एक बात समझ कि हरि के बिना तेरा कोई भी नहीं। न पत्नी तेरी है, अब अजनबी हैं। राह पर मिलन गए। राह पर थोड़े से भ्रम पैदा कर लिए।

कभी तुम सोचते हो, कि जिनको तुम अपना कहते हो, कैसे उन्हें मिल गए? तुम्हारे पिता एक ज्योतिषी के पास चले गए तुम्हारी जन्म-कुंडली लेकर। किसी स्त्री की जन्म-कुंडली लेकर एक दूसरे सज्जन ज्योतिषी के पास चले गए। उन्होंने जन्म-कुंडली मिला ली, गणित बैठ गया। लक्षण पूरे हो गए। बैंड-बाजे बज गए। तुम्हें सात चक्कर लगवा दिए। यह पत्नी अपनी हो गयी।

कल तक यह अपनी न थी। संयोग है। नदी-नाव संयोग! यह किसी और की भी हो सकती थी। कोई अड़चन नहीं थी। किसी और की भी हो सकती थी। और तव भी इसी भ्रम में होती कि यह मेरा पति है। तुम्हारी पत्नी कोई और भी हो सकती थी। तब भी तुम इसी भ्रम में होते कि यह मेरी पत्नी है। दूसरी पत्नी से दूसरे बच्चे पैदा होते। तब वे तुम्हारे होते। अभी वे तुम्हारे नहीं हैं। अभी वे किसी और के घर में खेल रहे हैं।

संयोग को सत्य मत मान लेना। राह पर मिल जाते हैं दो लोग। साथ हो लेते हैं। गपशप करते हैं। फिर राह अलग-अलग हो जाती है। विदा हो जाते हैं। लेकिन हम बड़ी भ्रांति पैदा करवाते हैं।

इसलिए तो विवाह का इतना आयोजन करना पड़ता है। उस आयोजन के पीछे बड़ा मनोविज्ञान है। मेरे लोग आते हैं। वे कहते हैं, क्या जरूरत कि घोड़े पर सवारी निकले दूल्हे की? कि इतने बैंड-बजें, फूल झड़ी छूटें, बरात में खर्च हो? इतने लोग आएं, जाएं? इस सब की क्या जरूरत है? क्या सीधा-साधा विवाह नहीं हो सकता? हो सकता है। लेकिन भ्रम पैदा होना मुश्बित होगा। सीधा साधा बिलकुल हो सकता है। कोई जरूरत नहीं है। तुम एक स्त्री को मिल गए। लेकिन तुमको भी शक रहेगा कि ऐसे में यह अपनी हो कैसे गई? उतना उपद्रव चाहिए भरोसा दिलाने के लिए, कि भारी कुछ हो रहा है। कुछ ऐसा महत्वपूर्ण हो रहा है, जो दोबारा नहीं होगा। अब घोड़े पर तुम जो रोज तो बैठते नहीं। एक दफा बैठेगा। इसलिए दूल्हा राजा। दूल्हा को हम कहते हैं दूल्हा राजा। उसे राजा बना देते हैं। एक दिन के राजा हैं वे।

और कैसी फजीहत पीछे होनेवाली है, कुछ पता नहीं। मगर बैठे हैं अकड़ कर। कटा री वगैरह लटका रखी है। मुकुट वगैरह पहन रखा है। उधार कपड़े हों, कोई हर्जा न हीं। लेकिन आज डट कर साज—सामान किया है। और बराती चल रहे हैं। फौज-फा टा है। बड़े-बड़ों को नीचे चला दिया है। सब नीचे चल रहे हैं। और दूल्हा राजा हो गया एक दिन के लिए।

यह उसके मन पर एक छाप बिठानी है। एक कंडीशनिंग है, एक संस्कार है। बड़े कु शल लोग थे पुराने लोग। उन्होंने पूरा हिसाब रखा है कि उसको यह भ्रांति पक्की हो जाए कि कोई गाढ़ संबंध पैदा हो रहा है। और ऐसा अनूठा हो रहा है, फिर यही घटना दोबारा नहीं घटनेवाली।

इसलिए पूरब के लोग तलाक के विपक्ष में हैं। क्योंकि पूरब के लोग ज्यादा चालाक हैं, पश्चिम अभी बचकाना है। उसे अभी अनुभव नहीं है आदमी के मन का। पूरब को हजारों साल का अनुभव है। क्योंकि अगर तलाक संभव है, तो विवाह कभी पूरा हो ही न पाएगा।

अगर इस बात की संभावना है कि हम अलग हो सकते हैं, तो मिलता कभी भी पक का नहीं हो पाएगा। जिससे अलग हो सकते हैं उससे मिलना ऊपर-ऊपर ही रहेगा। संसार बसेगा नहीं।

भीतर बना ही रहेगा...कि भीतर बना ही रहेगा, कि कल चाहें तो अलग हो सकते हैं। यह कोई अपनी पत्नी है, ऐसा कोई जरूरी नहीं। यह किसी और की भी हो सक ती है। कोई और पत्नी हमारी भी हो सकती है। किसी और से हमारे बच्चे पैदा हो सकते हैं। हमारे बच्चे का कोई मामला नहीं है बड़ा।

पश्चिम में उपद्रव पैदा हो गया है। संसार डगमगा गया है। मैंने सुना है, एक अभिने ता हालीवुड में अपनी पत्नी के साथ बैठा है और उनके बच्चे खेल रहे हैं। पत्नी ने कहा कि देखो, मैं हजार बार कह चुकी कि कुछ करना होगा। तुम्हारे बच्चे और मे रे बच्चे, हमारे बच्चों को मार रहे हैं।

पश्चिम से संभव हो गया है। पति के बच्चे हैं किसी और पत्नी से। पत्नी के बच्चे हैं किसी और पति से। फिर दोनों के बच्चे हैं। तुम्हारे बच्चे और मेरे बच्चे मिल कर हमारे बच्चों को मार रहे हैं। इसको रोकना होगा। मगर जहां तुम्हारे बच्चे, हमारे ब च्चे और मेरे बच्चे—वहां हमारे का भाव अपने आप क्षीण हो जाएगा। क्या मेरा है? सब रेत का घर मालूम पड़ता है। यहां कुछ मजबूत नहीं है। यहां कुछ पक्का नहीं है।

एक अभिनेत्री से एयरपोर्ट पर पूछा गया, विवाहित या अविवाहित? उसने कहा : दो नों; कभी-कभी! कभी विवाहित, कभी अविवाहित। दोनों; कभी-कभी। जहां ऐसी रेत जैसी स्थिति हो जाए...।

पूरब के लोग चालाक हैं। उम्र चालाकी लाती है, बूढ़े बेईमान हो जाते हैं, होशियार हो जाते हैं। बच्चे निर्दोष होते हैं। उनको पता नहीं, जिंदगी का राग-रंग क्या है।

तो पूरब ने पूरी व्यवस्था की, कि संबंध ऐसे मजबूती से बनाए जाए, कि पक्की भ्रांति हो जाए कि यह पत्नी मेरी है। और पूरब में समझा जाता है कि ऐसा कोई एक ही जन्म का मामला नहीं है। पति-पत्नी तो एक दूसरे का पीछा जन्म-जन्मांतर तक करते रहते हैं। पत्नियां तो इससे बड़ी प्रसन्न होती हैं। पति जरा डरते हैं कि जन्म-जन्मांतर तक? एक तक ही काफी है। एक...मगर अगल जन्म में भी इसी देवी से मलना होगा? लेकिन पत्नियां इससे बड़ी प्रसन्न होती हैं कि भाग कर जाओगे कहां? कोई छुटकारा नहीं है।

ये प्रतीतियां बिठाई गई हैं। मानव शास्त्र की प्रतीतियां हैं। इससे तुम्हें लगता है, मेरा।

बच्चा तुमसे पैदा होता है। तुम सोचते हो मेरा। तुमसे क्या पैदा हो रहा है? तुम केवल प्रयोगशाला हो। तुम्हारा शरीर केवल बच्चे के आगमन के लिए मार्ग हैं, इससे ज्यादा नहीं हैं। और अब तो विज्ञान भी कहता है, कि टेस्ट-ट्यूब में बच्चा पैदा हो सकता है। कोई मां के गर्भ की जरूरत नहीं।

और विज्ञान कहता है कि अब तो आर्टिफिशियल इनसेमीनेशन की सुविधा है। तो हजारों साल तक व्यक्ति का वीर्ण-कण सुरक्षित बचाया जा सकता है बर्फ में ढांककर। तुम मर जाओगे, हजार साल बाद तुम्हारा लड़का पैदा हो सकता है। तुम्हारा वीर्ण-कण बचा लिया जाएगा। तो तुमसे संबंध रहा? दस हजार साल बाद तुम्हारा लड़का पैदा हो सकता है। और तुम मर चुके दस हजार साल पहले। तुम्हारी रग-रग मिट्टी में खो गई। फिर भी तुम्हारा बच्चा पैदा हो सकता है। तो तुमसे क्या संबंध रहा? क्या लेना-देना है?

तुम केवल मार्ग थे। अपना यहां कोई भी नहीं। यहां तुम अजनबी हो। यहां अपने का भरोसा करके राहत मिलती है, यह सच है। क्योंकि अगर तुम्हें यह पक्का पता चल जाए कि तुम बिलकुल अकेले हो, तो तुम घबड़ा जाओगे। बेचैन हो जाओगे। हाथ पैर काटने लगेंगे।

रात अंधेरी है। रास्ता बीहड़ सुनसान है। कुछ आगे का पता नहीं, कुछ पीछे का पता नहीं, कुछ अपना पता नहीं। किसी का हाथ, हाथ में लेकर थोड़ा भरोसा आता है कि कोई साथ है। माना कि वह भी अंधा है, हम भी अंधे।

मैंने सुना है कि एक शिकारी भटक गया जंगल में। चार दिन का भूखा-प्यासा अफ्रीका के घने भयंकर बीहड़ जंगल में। आशा छोड़ दी जीवन की। कोई लक्षण ही न दिखाई पड़े आदमी का कहीं कि पूछ ले, कि पता लगा ले, कि किसी के पीछे हो जाए। बिलकुल अकेला हो गया। चौथे दिन आशा छोड़ ही रहा था, सांझ सूरज ढल ही रहा था, कि उसके एक वृक्ष के नीचे एक दूसरे शिकारी को बंदूक लिए बैठे देखा। दौड़ा आनंद से। उसके आनंद की तुम कल्पना कर सकते हो। मौत से बस गया। जीवन का वरदान मिला। खुशी में नाचने लगा। उस आदमी को जाकर छाती से लगा लिया।

पर उस आदमी ने कहा कि भाई थोड़ा ठहर। मैं आठ दिन से भटका हुआ हूं। तू इ
तनी खुशी मत मना। हमको मिलने से कुछ हल नहीं होता।
लेकिन राहत मिलती है। अंधे के पीछे भी तुम चलते हो तो राहत मिलती है कि क
ोई आगे है। इसलिए तो अंधों के पीछे अंधे कतारबंद चलते रहते हैं। बिना इसकी ि
फकर किए कि आगे कोई अंधा है। तुम जैसा ही अंधा है। अंधे अंधों को सलाह देते
 रहते हैं। साथ देते रहते हैं। मित्रता बनाए रखते हैं।
अगर कभी अंधेरी गली में कोई साथ भी न मिले तो तुम खुद ही जोर-जोर से गीत
 गाने लगते हो। अगर अधार्मिक ढंग के आदमी हुए, तो फिल्मी गाना गाते हो। औ
र धार्मिक ढंग के हुए, तो हनुमान चालीसा पढ़ते हो। लेकिन फर्क कोई नहीं है। अप
नी ही आवाज सुनकर ऐसा लगता है कि कोई अकेले नहीं। अपनी ही आवाज से भ
रोसा लेते हैं। थोड़ी हिम्मत आ जाती है।
तुमने देखा, नदियों में तीर्थयात्रा सर्दियों के दिन में स्नान करने जाते हैं। तो बड़े जो
र-जोर से हरे राम, हरे कृष्ण—पानी में डुबा मारते जाते हैं और राम का नाम लेते
जाते हैं। वे कोई राम का नाम नहीं लेते। वह सिर्फ राम की चिल्लाहट में ठंड ज्याद
ा नहीं लगती। पता नहीं चलता, मन यहां लगा है। हरे राम, हरे राम—जल्दी पानी
लिया।
क्योंकि मैंने अपने गांव में देखा, कि पुरुषोत्तम का महीना आता है—तो मेरा घर नदी
 के किनारे ही है, पास ही है—तो स्त्रियां स्नान करने आती हैं। जल्दी सुबह आती हैं
 पांच बजे ब्रह्म मुहूर्त में। उन स्त्रियों को मैं भलीभांति जानता हूं। जिनके मुंह से क
भी हरे राम नहीं सुना गया वे भी पानी में आकर एकदम हरे राम, हरे राम करने
लगते हैं। तो मुझे लगा, कि यह पानी बड़ा रहस्यपूर्ण मालूम पड़ता है। उन स्त्रियों
को मैं भलीभांति जानता हूं। इनमें से कोई हरे राम वाली नहीं है।
यह अचानक क्या हो जाता है इनको, पानी में उतरते ही से? तब मैंने पानी में उत
रकर देखा पांच बजे। तब समझ में आया। नास्तिक भी कहेगा। ठंडा पानी! घबड़ाहट
 छूटती है। उस घबड़ाहट में कुछ भी बको, रात मिलती है। अंधेरे में कुछ भी गुनगु
नाने लगो, भरोसा आता है।
अंधे अंधों का हाथ पकड़ लेते हैं; लेता है, कोई है; अकेला नहीं हूं।
इसलिए तो तुम समूह में जीते हो। इसलिए तो तुम समूह बना कर जीते हो। अकेले
 में डर लगने लगता है। समूह में निश्चित हो जाते हो। इतने लोग हैं। ठीक ही होग
ा। जहां भीड़ जाती है, वहां जाते हो। अकेला खड़ा होने की किसी की हिम्मत नहीं
है। क्योंकि अकेले में पता चलता है, यहां कोई भी मेरा नहीं है। भयाक्रांत हो जाओ
गे। आत्मा कंपेगी। उस कंपन में जी न सकोगे।
इसलिए जिसने भी अकेलेपन को जान लिया, वह परमात्मा की खोज में लग जाता
है। जो समाज में समझता है, कि सब पा लिया, वह परमात्मा से वंचित रह जाता
है। जो अकेला हो गया, वह खोजेगा ही। क्योंकि अकेला कोई भी नहीं रह सकता।
परमात्मा की खोज करनी ही पड़ेगी। कोई साथी चाहिए। असली संगी चाहिए।

अंधे हरि बिना को तेरा, कबन्सु कहत मेरी मेरा।
और तू किन-किन से कह रहा है, कि तुम मेरे हो, तुम मेरी हो। किस-किस से तू कहता फिरा। और जिनसे तू कह रहा है, वे भी तेरे पास इसलिए आ गए हैं कि अ केले होने में डर लगता है। एकांत में घबड़ाहट होती है।
तो बीमारी को सहारा दे रहे हैं। अंधे, अंधों को मार्ग दे रहे हैं। नासमझ, नासमझों को समझदारी दे रहे हैं।
कबन्सु कहत मेरी मेरा।
तजि कुलाक्रम अभिमाना, झूठे भरमि कहा भुलाना।
छोड़ ये कुल, वंश, परिवार, समाज समूह की बातें। तति कुलाक्रम—छोड़ यह अभिम ान। क्योंकि जब भी तुम किसी चीज को कहते हो मेरा, तो उससे तुम्हारा मैं निर्मि त होता है।
थोड़ा सोचो; अगर तुम्हारा कुछ भी न हो मेरा जैसा कुछ भी न हो, क्या तुम अपने मैं को सम्हाल पाओगे? मैं गिर पड़ेगा तत्क्षण। उसको बैसाखियां चाहिए। मेरे की इसलिए जितना तुम्हारा मेरे का विस्तार होता है, उतना ही सुदृढ़ तुम्हारा मैं होता है। अगर तुम्हारे पास बड़ा राज्य हो, तो तुम्हारे पास मैं मजबूत होता है। छोटी सी खोपड़ी हो, तो उतना ही बड़ा मैं होता है। बड़ा महल हो, तो उतना ही बड़ा मैं हो ता है। दो-चार दस रुपयों की पूंजी, तो उतना ही मैं होता है। करोड़ों की पूंजी, तो उतना मैं होता है।
इसीलिए तो लोग विस्तार की तरफ दौड़ते हैं। कोई भी चीज हो, विस्तार होता चल ा जाए। फिर विस्तार किसी भी ढंग का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हर विस्ता र के पीछे मैं की भूख है। क्योंकि मैं बिना विस्तार के नहीं रह सकता।
यह हो सकता है कि तुम धन इकट्ठा न करो, ज्ञान इकट्ठा करो। तुम्हारे पास बड़ी जानकारियां हों, ऐसी कि किसी के पास नहीं; उससे भी काम चल जाएगा। यह भी हो सकता है, कि तुम जानकारी भी इकट्ठी न करो, तुम त्याग करो। तुमने इतने उ पवास किए, जितने किसी ने कभी नहीं कर किए, उससे भी काम चल जाएगा। यह भी हो सकता है कि उपवास भी मत करो, शिष्य इकट्ठे कर लो। तो जितने तुम्हारे शिष्य हैं, उतने किसी के भी नहीं। तो भी काम चल जाएगा। नेता बन जाओ, मत इकट्ठे कर लो कि कितने वोट तुम्हें मिले। उससे भी काम चल जाएगा।
एक बात ध्यान रखना। मैं विस्तारवादी है। अहंकार साम्राज्यवादी है, वह इम्पिरियलि स्ट है। वह विस्तार में जीता है। अगर तुमने विस्तार न किया, तो वह सिकुड़ने लग ता है। और अगर तुम सारा मैं का भाव छोड़ देना चाहते हो तो मेरा का भाव छो. ड दो। वह भोजन है। वह नहीं मिलता तो मैं अपने आप गिर जाता है।
न पत्नी तुम्हारी, न बेटा तुम्हारा, न मकान तुम्हारा, न जमीन तुम्हारी, कैसे खड़े र होगे? मैं को कहां सम्हालोगे? बैसाखी चाहिए। मैं तो बिलकुल लंगड़ा है। अपने से तो चल ही नहीं सकता। मेरे की बैसाखियां सम्हाले रखती हैं। हटा लो सब बैसाखिय ां, और तुम पाओगे, पूरा भव गिर गया।

तजि कुलाक्रम अभिमाना...।
छोड़ यह अहंकार मेरे का।
...झूठे भरमि कहा भुलाना।
झूठी बातें हैं मेरे की। कौन यहां किसका है? यहां तुम अपने ही हो जाओ, तो काफ
ी है। यहां कौन किसका है?
झूठे तक की कहां बड़ाई, जे निमिख माहि जर जाई।
और इस शरीर की क्या तू प्रशंसा करता रहता है? और इस शरीर की क्या तू स्तुि
त गाता रहता है? इस शरीर को क्या लेकर फूला-फूला फिरता है? इस शरीर को
लेकर क्या तू अकड़ा-अकड़ा फिरता है? क्षण भर में जल जाएगा। राख हो जाएगा।

और इसी शरीर के आधार पर तो तेरे, मेरे-तेरे के संबंध हैं। तू कहता है कि यह
मेरी मां, क्योंकि इससे तेरा शरीर पैदा हुआ। तेरे शरीर की क्या कीमत है! तू कह
ता है, ये मेरे पिता क्योंकि इनसे मेरा शरीर पैदा हुआ। तू कहता है, यह मेरा बेटा,
क्योंकि यह मेरे शरीर से पैदा हुआ।
...जे निमिख माहि जर जाई।
क्षण भर न लगेगा। लपटें उठाएगी चिता की और सब राख हो जाएगा। सारे संबंध
इस क्षण भर में जल जाने वाले शरीर के संबंध हैं।
झूठे तन की कहा बड़ाई।
तू क्यों इस स्तुति में फूला फिरता है?
...जे निमिख माहि जर जाई।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे कि जा कर वहां रहो, देखो, क्या घटता है
तन को। रोज लाशें चली आती हैं।
और तब तो बिजली से जलाने के साधन न थे। तब भी निमिख माहि जर जाई! त
ब तो घड़ी दो घड़ी लगती थी। लेकिन अब तो कबीर का वचन बिलकुल ही सच ह
ो गया। अब तो बिजली से जलते हैं। निमिख मात्र में ही जलते हैं। बिलकुल शब्द स
ही है।
भिक्षुओं को बुद्ध कहते थे, बैठो चिताओं के पास। ध्यान करो। उस ध्यान से बहुत
कुछ मिलेगा। रोज भिक्षु देखता रहता; चिंताएं जलतीं। लोग चढ़ा दिए जाते। क्षण
भर में सब राख हो जाता। लोग वापस लौट जाते। मित्र, प्रयोजन, अपने—जिन्हें सदा
अपना माना, जिनके लिए सादा यह आदमी जीया; उनमें से कोई इसके साथ नहीं
जाता। उनमें से कोई इसके साथ घड़ी भर रहने को राजी नहीं।
लाश आ जाती है घर में, आदमी मर गया, तो घर के लोग उतावले होते हैं कि ि
जतनी जल्दी ले जाओ। क्योंकि जितनी देर लाश रह जाएगी उतनी देर घाव मालूम
पड़ेगा। उतनी देर आंसू कैसे सूखेंगे? पत्नी भी पति मर जाए तो उसकी लाश के
साथ रात में घर में रहने को राजी नहीं होती।

अभी यहां कुछ दिन पहले पूना में एक स्त्री की हत्या कर दी गई। तो पति ने, जब पति आया, घर नहीं ठहर सका, जिस कमरे में हत्या की गई है। होटल में जा कर ठहरा। डर लगता है। घबड़ाहट होती है उस कमरे में जाने में। जहां उसने बहुत राग-रंग पत्नी के साथ देखे होंगे, सोचे होंगे बहुत सुख के क्षण, सपने संजोए होंगे, वहां घबड़ाहट होती है। मरते ही कोई व्यक्ति तुम्हें डराने लगता है।

एक मित्र मेरे पास आए। और उन्होंने कहा कि मेरी पत्नी मर गई है। तो वह ठीक स्थान पर स्वर्ग इत्यादि पहुंच गई है, या नहीं? मैंने पूछा, तुम्हें फिकर पड़ी है? पहुंच ही गई होगी। क्योंकि सभी लोग मरते हैं तो स्वर्गीय हो जाते हैं, नर्क तो कोई जाता दिखाई पड़ता नहीं क्योंकि जो भी मरा, उसी को हम कहते हैं स्वर्गीय हो गया। राजनीतिज्ञ नेता तक मर कर स्वर्गीय हो जाते हैं तो बाकी का तो कहना ही क्या? नर्क तो कोई जाता मालूम नहीं पड़ता। तुम घबड़ाओ मत, पहुंच ही गई होगी।

उसने कहा नहीं, जरा मुझे...अब आपसे क्या छिपाना! रात में मैं सोता हूं तो मुझे लगता है, कि वह कुछ खटरपटर जैसे करती—जैसी उसकी पहले भी आदत थी। देर तक उसका नींद नहीं आती थी तो कहीं कपड़ा निकाले, कहीं रखे, कहीं सामान बदले, कहीं फर्नीचर को फिर से जमाए। मुझे रात में ऐसा लगता है कुछ खटर-पटर घर में होती क्योंकि यह डर लगता है कि कहीं प्रेत तो नहीं हो गई? तो मैं, आज तीन महीने से उस कमरे सो नहीं रहा हूं।

तुम्हारी पत्नी थी, प्रेम-विवाह किया था। अब मर गई तो इतना क्या घबड़ाते हो? इतना क्या डर? और तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि प्रेत हो गई तो फिर मौजूद है कमरे में। कहने लगे क्षमा करो। ऐसा शब्द मत कहो। मैं घर छोड़ दूंगा। वैसे ही नहीं जा रहा हूं। ताला चाबी मार रखी है। लेकिन कभी भी जाता हूं, तो मुझे शक होता है कि कमरे में कुछ हो रहा है।

जिनको तुमने अपना माना, अगर तुम आत्मा हो कर उनके पास जाओगे तो वे घर छोड़ देंगे। शरीर से ही सारा संबंध था। आत्मा का कोई संबंध ही नहीं है। और शरीर का ही सारा संसार है।

झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमिख माहि हर जाई।

जब लग मनहि विकारा, तब लग नहिं छूटे संसारा।

और तब तक मन में विकार है अहंकार का, मन में विकार है वासना का, मन में विकार है, तब तक संसार है। मन का विकार ही संसार है। और मन की विकृत दशा तुम्हारे संसार का मूल आधार है। संसार का छोड़ कर मत भागना। विकार को त्याग देना।

जब मन निर्मल करि जाना, तब निर्मल माहि समाना।

और जब मन निर्मल हो जाता है, कोई स्वप्न नहीं रह जाता मन में। स्वप्न ही मन है। कोई विचार नहीं रह जाते; विचार ही विकार है। तब मन ही नहीं रह जाता। तब तो निर्मल आत्मा रह जाती है।

मन का संबंध संसार से है, आत्मा का संबंध परमात्मा है। मन रहेगा। तो संसार तुम्हारे चारों तरफ। आत्मा तुम हुए, मन न रहा, परमात्मा चारों तरफ। तुम जैसे हो, वैसे ही संबंध हो सकेगा। क्योंकि समान का मिलन होता है।

जब निर्मल करि जाना, तब निर्मल माहि समाना।

ब्रह्म अगनि, ब्रह्म सोई...।

तब तुम्हारे भीतर की छोटी सी अग्नि, छोटा सा दीया की महाअग्नि में खो गया।

...अब हरि बिन और न कोई।

अब हरि के बिना कोई भी न बचा। तुम भी न बचे। अब सिर्फ परमात्मा का होना रह गया। जब पाप पुण्य भ्रम जारि, जब भयो प्रकाश मुरारी।

यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है। कबीर कहते हैं, जब पाप और पुण्य भ्रम मिट जाते हैं। दोनों जल जाते हैं। पाप भी, पुण्य भी। तब भयो प्रकाश मुरारी। तभी मुरारी के दर्शन होते हैं। तभी परमात्मा की झलक आती है।

पाप और पुण्य दोनों के भीतर छिपा हुआ रोग है। वह रोग है, कर्ता का भाव। अहंकार। पापी कहता है, मैंने पाप किए। पुण्यात्मा कहता है, मैंने पुण्य किए। लेकिन दोनों में एक बात समान है—मैं।

और पापी तो थोड़ा डरता है घोषणा करने में कि मैंने पाप किये। छिपाता है; पता न चल जाए। लेकिन पुण्यात्मा घोषणा करता है। बैंड-बजवाता है। डुंडी पिटवाता है, कि मैंने इतने पुण्य किए। पुण्यों का लेखा-जोखा रखता है। पापी तो भूल भी जाए, पुण्यात्मा नहीं भूलता। इसलिए पुण्यात्मा का बड़ा सूक्ष्म अहंकार होता है।

इस बात को खयाल में रख लो। नीति समझाती है पाप छोड़ो पुण्य करो। धर्म समझाता है, दोनों छोड़ो। क्योंकि जब तक कर्ता है, तब तक कुछ भी न छूटेगा। नीति कहती है, पाप त्याज्य है, पुण्य करणीय है। इसलिए नीति का धर्म से बहुत गहरा संबंध नहीं है। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। सोवियत रूस भी नैतिक है, और शायद तुम आस्तिकों से ज्यादा नैतिक है।

क्योंकि नीति का कोई संबंध परमात्मा से नहीं है। न नीति का कोई संबंध धर्म से है। नीति तो समाज व्यवस्था का अंग है। नीति का संबंध तो सामाजिक चेतना से है। तुम अच्छा करो, बुरा मत करो। क्योंकि तुम बुरा जिनके साथ करते हो, वे भी बुरा करेंगे। तुम अच्छा करोगे, वे भी अच्छा करेंगे। अच्छा करने से अच्छे करने संभावना बढ़ेगी। बुरा करने से बुरे करने की संभावना बढ़ेगी। धीरे-धीरे अगर सभी लोग बुरा करने लगें, तो तम भी बुरा न कर पाओगे।

तुम मुश्किल में पड़ जाओगे।

इसलिए नीति का सूत्र है, कि तुम वही करो दूसरों के साथ जो तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। इसका परमात्मा, मोक्ष, ध्यान से कोई संबंध नहीं। यह सीधी समाज व्यवस्था है।

धर्म नीति से बहुत ऊपर है। उतने ही ऊपर है, जितना अनीति से ऊपर है। अगर तुम एक त्रिकोण बनाओ, तो नीचे के दो कोण नीति और अनीति के हैं और ऊपर

का शिखर कोण धर्म का है। वह दोनों से बराबर फासले पर है। इसलिए धर्म महाक्र ांति है। नीति तो छोटी सी क्रांति है, कि तुम पाप छोड़ो। धर्म महाक्रांति है, कि तुम पुण्य भी छोड़ो। पाप तो छोड़ना ही है, पुण्य भी छोड़ना है। क्योंकि जब तक पकड़ है, तब तक तुम रहोगे। पकड़ छोड़ो। कर्ता का भाव चला जाए।

जब पाप पुण्य भ्रम जारि...

जब पाप और पुण्य दोनों के भ्रम जल गए, तब भयो प्रकाश मुरारी। तभी कोई पर मात्मा को उपलब्ध होता है।

कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।

यह बड़ा अनूठा वचन है। इसे तुम्हारे हृदय में गूंज जाने दो। क्योंकि इससे महत्वपूर्ण परिभाषा परमात्मा की कभी नहीं की गई। हजारों लोगों ने परिभाषा की है, परमा त्मा कैसा। लेकिन कबीर की परिभाषा बड़ी-बड़ी ठीक है, एकदम है। परिभाषा अगर कोई परमात्मा के करीब पहुंचाती है, तो कबीर की पहुंचाती है।

कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।

क्या मतलब हुआ इसका? यह तो बड़ी बेबूझ मालूम पड़ती है—जहां जैसा, तहां तैसा ।

जब मन मिट जाता है, तो तुम पाओगे कि फूल में परमात्मा फूल। पत्थर में पत्थर, वृक्ष में वृक्ष, सरितामें सरिता, सागर में सागर।

कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।

तो कोई परमात्मा ऐसा खड़ा नहीं हो जाएगा, हाथ में मुरली लिए, मोर मुकुट बांधे ! ऐसा कोई सजा-सजाया परमात्मा तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो जाएगा। खड़ा हो ज ाए तो सावधान रहना कोई धोखा दे रहा है। पुलिस को खबर करना कि कोई चाल बाज मुरारी बन कर खड़ा है। कोई परमात्मा धनुष-बाण लेकर खड़ा न हो जाएगा तुम्हारे सामने।

और अब धनुष-बाण का फायदा भी क्या? अब एटमबम की दुनिया में धनुष-बाण ि लए खड़े हैं रामचंद्रजी। जंचेंगे भी नहीं। और एटमबम हाथ में लिए खड़े हों, तो औ र भी बेहूदा लगेगा।

आदमी की कल्पनाएं हैं। इनसे परमात्मा का कुछ लेना देना नहीं है। जब मन गिरता है, तो मन के राम, मन के कृष्ण भी खो जाते हैं। वह मन में बने रूप भी खो जा ते हैं। परमात्मा तो है ही। सब रूपों में छिपा अरूप। गुलाब के फूल में हुआ है गुला ब का फूल। पत्थर में है, पत्थर। कहीं कुछ बदलने की जरूरत नहीं। जहां पाओगे, वही मौजूद है। वही सिर झुका लेना। और तुम्हारे भीतर भी वही है। सिर न झुकाय ा तो भी चलेगा। क्योंकि कौन किसके लिए झुकेगा।

जिसको कृष्णमूर्ति कहते हैं...कृष्णमूर्ति से लोग पूछते हैं, व्हाट इज ट्रुथ। सत्य क्या है ? तो कृष्णमूर्ति कहते है—देट व्हिच इज जो है। कबीर को दुहरा रहे हैं। उसको पता भी न हो। क्योंकि कृष्णमूर्ति को रस नहीं है कबीर को या उपनिषदों को, या वेदों को पढ़ने में। कोई जरूरत भी नहीं है। अपना-अपना ढंग है। लेकिन अगर कृष्णमूर्ति

कबीर को पढ़े होते हो वे पाते कि कबीर कह रहे हैं—देट व्हिच इज, जहां जैसा तहां तैसा।

कुछ और नया न हो जाएगा। यही जो चारों तरफ मौजूद है, एक नये रूप में प्रकट होगा। इसकी व्याख्या बदल जाएगी, अभी तुम्हें लगता है, यह प्रकृति है, तब तुम्हें लगेगा, परमात्मा है। अभी तुम्हें लगता है, ये लोग बैठे हैं चारों तरफ। तब तुम्हें ल गेगा, कि कृष्ण बैठे हैं चारों तरफ।

तुमने चित्र देखा होगा : पुराने घरों में टंगा रहता था। अब तो धीरे-धीरे खो गया। कृष्ण का एक चित्र, जिसमें सोलह हजार गोपियां नाच रही हैं। और सभी गोपियों को लग रहा है, कि कृष्ण उनके साथ नाच रहे हैं।कृष्ण सोलह हजार हो गए हैं। जहां तुम पाओगे, पाओगे, कृष्ण तुमसे लिपट कर नाच रहे हैं। हवा के झोंकों में उन की ही भाव-भंगिमा है। फूल की गंध में उन्हीं का आना हुआ है। पक्षी के कंठ से उन्होंने पुकार दी है नदी के कलकत्ता नाद में उन्हीं की पग ध्वनि सुनी है। हर गोपी प ाएगी, कि सब तरफ से कृष्ण उसको घेर कर नाच रहे हैं। वह चित्र बड़ा प्यारा है।

एक और चित्र है, जिसमें कृष्ण वृक्ष के नीचे बांसुरी बजा रहे हैं। लेकिन गाय खड़ी है, तो गाय में भी हैं। वृक्ष के पत्ते-पत्ते में हैं, फूल फूल में हैं। सब तरफ वही मौजूद हैं।

जो है, वह परमात्मा है। जिस दिन तुम्हारा होना मिट जाएगा, उस दिन वह प्रकट हो जाएगा।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा अस्तित्व है। परमात्मा का कोई नाम-धाम, ठिकाना नहीं है। क्योंकि परमात्मा सभी कुछ है। सभी कुछ का होना, सभी कुछ के भीतर छिपा हुआ जो सार-गुण है होने का, वही परमात्मा है—है पन।

इसे समझो। गुलाब का फूल लाल है, सुर्ख है। गेंदे का फूल पीला है, स्वर्ण जैसा। गुलाब का फूल किसी सुंदर स्त्री के ओंठ जैसा। बड़े अलग हैं। वृक्ष अलग अलग हैं। सब की हरियाली अलग है। सब का गीत, सबका नृत्य अलग है। ये पास में खड़े गुलमोहर के फूल लाल हैं। लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल। और वहां दूर ख. डे अमतलाश के वृक्ष में फूल स्वर्ण जैसे हैं, पीत हैं। कोई तालमेल नहीं। अमलताश के पत्ते अलग, गुलमोहर के पत्ते अलग। लेकिन दोनों में एक चीज समान है। अमलताश है, गुलमोहर है, गुलाब है, मैं हूं। तुम हो, पत्थर हैं चट्टान है आकाश है। है-पन समान है। और सब चीजें अलग हैं।

यह जो है पन, इजनेस—वही परमात्मा है।

इसलिए कबीर कहते हैं कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा।

मत जाना मंदिर। जहां हरि को जैसे पाओ, वहां हरि को कैसे ही मना लेना। फूल में दिखे तो उसी से बात कर लेना। उसी के पास थोड़ी देर बैठ जाना। एक गीत गुनगुना लेना। आकाश में दिखाई पड़े, उसी में झांक लेना। चांद-तारों में दिखाई पड़े,

उन्हीं से थोड़ी गुफ्तगू कर लेना। नदी की कलकल में सुनाई पडे तो नदी में कूद जा ना, जरा तैर लेना परमात्मा में।

जब तक तुम मंदिरों मस्जिदों में देखोगे, तब तक तुम आदमी के बनाए गए परमात मा से उलझ रहोगे। वह मन का ही खेल है। तुम्हारे मंदिर-मस्जिद सब संसार में हैं, परमात्मा में नहीं। क्योंकि वे मन का विस्तार हैं।

मैं कलकत्ते में एक घर में मेहमान होता था। पड़ोस में एक पुर्तगीज चर्च था। बड़ा सुंदर चर्च था। पर जिस घर में मैं ठहरता वह जैन घर था। मैं सुबह उठकर चर्च के बगीचे में चला जाता। एक दिन घर के मेजबान को पता चला। वे आए और बड़े नाराज हुए और कहा कि आपको पता नहीं, यह चर्च है। अगर आपको मंदिर ही ज ाना है, तो मुझसे कहिए। मैं जैन मंदिर ले चलूं।

मैं उनसे कुछ बोला न। नासमझों से बहुत बार न बोलना ही समझदारी है। चला आ या चुपचाप उनके घर। उन्हें बड़ा जघन्य अपराध मालूम पड़ा, कि मैं और चर्च गया । और न केवल गया, वहां शांति से बैठा था।

फिर कुछ वर्ष बाद संयोग की बात, उनके घर फिर मेहमान हुआ। और उन्होंने क हा कि आपको एक खुश-खबरी सुनाएं। वह पुर्तगीज चर्च बिक गया और हम लोगों ने खरीद लिया पुर्तगीज लोग छोड़कर चले गए। वह चर्च बिक गया और हमने खरी द लिया। अब तो जैन मंदिर हो गया। आइए, आपको दिखाऊ। वही चर्च! अब वह जैन मंदिर है। तख्ती बदल गई।

वृक्ष वही है। परमात्मा अब भी वही है कहै कबीर हरि ऐसा। लेकिन उनका परमात मा बदल गया। वृक्ष वही है। फूल अब भी वहां वैसे खिलते हैं। अब वे कुछ ज्यादा रं ग रौनक से नहीं खिलते क्योंकि यह जैनियों का मंदिर हो गया। पहले कोई ज्यादा रं ग-रौनक से नहीं खिलते थे। क्योंकि यह ईसाइयों का चर्च था।

फूलों को पता ही नहीं है, कि आदमियों की कैसी मूर्खताएं हैं। फूलों को, वृक्षों को, पता ही नहीं चला होगा कि तख्ती बदल गई। तख्ती भर बदली और कुछ न बदला। तख्तियां में परमात्मा नहीं है। वे आदमियों की हैं। तुम्हारे लेबलों में परमात्मा नहीं है; वे तुम्हारे हैं।

अब वे बड़े प्रसन्नता से मुझे ले गए। सब कुछ वही है। दीवालें वही हैं। संगमरमर व ही है। पर मैंने उनसे कुछ कहा न। नासमझों से न कहना ही कुछ समझदारी है। वे बड़े प्रसन्न हैं। अब मंदिर है।

आदमी कैसा मूढ़ है! तुम परमात्मा को चाहते हो तो आदमी की मूढ़ता से बचना। और आदमी की मूढ़ता बड़ी शास्त्रों से आवेष्ठित है। बड़ी पांडित्यपूर्ण है। इसलिए तु म पहचान भी न पाओगे।

भूले भरम मरे जिन कोई, राजा राम करे सो होई।

यह सूत्र अहंकार के ऊपर अंतिम आघात है।

भूले भरम मरे जिन कोई–

और जिसने भी इस भ्रम में जीवन को जीया कि मैं कुछ कर लूंगा, वह व्यर्थ ही मर जाता है। भूले भमर मरे जिन कोई। इस भ्रम से जो जीता है कि मैं कुछ कर लूंगा, वह यूं ही मर जाता है।

—राजा राम करे सो होई।

परमात्मा जो करता है, वही होता है। जिसको यह बात खयाल में आ गई, कि परमात्मा ही सब तरफ है, वही सब कुछ है। मेरे किए क्या होगा? मैं तो एक छोटी लहर हूं। इतनी छोटी तरंग हूं कि मैं कोई दिशा दे सकूंगी। सागर को? क्या यह संभव होगा कि मैं जिस तरफ जाऊं, सागर वहां जाए? यह तो असंभव है। सागर के साथ ही मैं हो लूं, तो ही गंतव्य मिल सकेगा।

जब सभी तरफ परमात्मा है; जहां जैसा तहां तैसा, कहै कबीर हरि ऐसा। जब वही वही है, जब वही तड़फ रहा है, वही नाच रहा है, जब वही पीड़ित है, वही आनंदित है—और मैं छोटी सी तरंग हूं। मुझमें भी वही सांस ले रहा है। मुझमें वही जी रहा है। जन्म लिया मुझमें, वही मृत्यु भी लेगा। मुझमें वही यात्रा कर रहा है। मैं तो उसी यात्री का एक कदम हूं। जिसने जैसा जाना, उसका यह भ्रम छूट जाता है, कि मेरे किए कुछ होगा।

...राजाराम करे सो होई।

वह जो करता है, वही होगा।

तब परम संतोष आ जाता है। तब परितोष बरस जाता है। तब सब तरफ से फूल बरस जाते हैं संतुष्टि के। तब तुम्हारे जीवन में कोई असंतोष नहीं रह जाता। मन असंतोष है। आत्मा परम संतोष है, तृष्टि है। जहां कोई रेखा ही हनीं बचती अभाव की।

इसलिए दो बातें खयाल मग रख लेनी जैसी हैं। कर्ता के भाव से बचना। चाहे पुण्य हो चाहे पाप मेरे के भाव से बचना। चाहे सांसारिक बातें हों, चाहे धार्मिक। मत कहना, मेरा मंदिर क्योंकि मेरी दुकान और मेरे मंदिर दोनों में कोई फर्क नहीं। वह मेरा दोनों को ही नष्ट कर रहा है। और मत कहना कि मैंने पुण्य किया, पाप नहीं। क्योंकि किया वही पाप है। कर्ताभाव पाप है और मेरा भाव संसार है। दो चीजों से गिर जाना।

कैसे गिरोगे?

धीरे-धीरे मैं के सहारे छोड़ो। और आखिरी सहारा तब छूट जाता है मैं का, जब पता चलता है कि उसके ही करने से सब होगा। तुमने जन्म लिया? तुम्हें जन्म दिया गया है। तुमने लिया नहीं। इसमें तुम्हारा कर्तृत्व क्या है? तुम जवान हुए। तुमने किया क्या है? तुम्हारा कर्तृत्व क्या है? जवानी आई। तुम श्वास लेते हो—तुम श्वास लेते हो? अगर तुम श्वास लेते हो, तब कोई मरेगा ही नहीं। क्योंकि मौत आ जाए और तुम लिए चले जाओ। मौत क्या करेगी? तुम श्वास लेते नहीं, श्वास चलती है। लेने जैसा कुछ भी नहीं है। श्वास ही तुमको ले रही है। तुम श्वास को नहीं ले रहे हो।

जीवन को थोड़ा गौर से पहचानो और तुम पाओगे, सब हो रहा है। जो तुम करते हो, वह भी हो रहा है। यह तुम्हारा खयाल, कि मैं जा रहा हूं, यह भी खयाल हो रहा है। यह खयाल कि मैं जा रहा हूं, यह भी खयाल हो रहा है। जब कोई व्यक्ति जीवन को समझाना शुरू करता है तो कर्तापन विसर्जित हो जाता है।

...रामाराम करे सो होई।

तब समष्टि चल रही है। हम उसके अंग हैं। करने का बोझ उतर जाता है। तुम मुक्त और तुम परितृप्ट। और जब हृदय में गूंज उठती है परितोष की, वीणा बजती है परितोष की, वही परमानंद है; वही सच्चिदानंद है।

आइ इतना ही।

एक ज्योति संसारा

20 मई, 1975, प्रातः, ओशो आश्रम, पूना

हम तो एक एक करि जाना,
दोई कहै, तिनही को दोजख, जिन नाहिन पहचाना।
ऐकै पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।
एक हि खाक घड़े सब भाड़े, एक ही सिरजनहारा।
जैसे बाढ़ी काष्ठ ही काटे, अगनि न काटै कोई।
सब घटि अंतर तू ही व्यापक, धरै सरूपे सोई।
माया मोहे अर्थ देखि करि काहे कू गरबाना।
निर्भय भया कछु नहीं व्यापै, कहै कबीर दीवाना।।

धर्म है, असीम की खोज, अनादि की खोज। जो न कभी प्रारंभ हुआ और न कभी समाप्त होगा, उस अजस्त्र जीवन-धारा की खोज।

अस्तित्व तो अखंड है। लेकिन आदमी का छोटा सा मन उस अखंड को देख नहीं पाता। और आदमी जितना देख पाता है वह सदा ही खंड होगा। अखंड को जानने के लिए तो हृदय शून्य चाहिए। देखनेवाला बिलकुल ही मिट जाए, तो ही दर्शन शुद्ध होगा। जब तक देखनेवाला बना है, भीतर कोई देखने की दृष्टि है, तब तक दृष्टि ही चौखटा बन जाएगी।

जैसे कोई खिड़की से झांक कर पूर्णिमा की रात्रि को देखे। खिड़की का चौखटा चांद पर जड़ा हुआ मालूम पड़ता है। चांद पर कोई चौखटा नहीं है, कोई फ्रेम नहीं है, आकाश असीम है। लेकिन खिड़की के भीतर से कोई खड़े होकर देखे तो जितनी खिड़की, उतना ही बड़ा आकाश दिखाई पड़ता है।

इंद्रियों के भीतर से खड़े होकर जो भी देखा गया है, उस पर इंद्रियों का चौखटा जड़ जाता है। जितनी बड़ी इंद्रिय है, उतना ही बड़ा दर्शन है। फिर दृष्टियां हैं भीतर। हर दृष्टि खंड करती है, तोड़ती है। और जो है वह अखंड है। इसलिए जो भी हम इंद्रियों से जानेंगे, वह सत्य न होगा; और जो भी हम मन से जानेंगे, वह पूर्ण न होगा। मन खुद अपूर्ण है।

इसलिए जिन्होंने सोच-विचार कर के जगत के संबंध में कुछ कहा है, उनके कहने में समग्र सत्य नहीं समाता। उन्होंने जो कहा है, वह सत्य के संबंध में कम बताता है, उनके संबंध में ज्यादा बताता है।

इसलिए लाओत्से जैसे ज्ञानी ने कहा है कि सत्य कहा नहीं जा सकता है। और कहते से ही झूठ हो जाता है। क्योंकि शब्द का चौखटा बड़ा छोटा है। सत्य का विस्तार अनंत है। क्षुद्र शब्द के भीतर समाने की कोशिश में ही सत्य जड़ हो जाता है। मर जाता है।

यह ऐसे ही है जैसे कोई मिट्ठी में आकाश को भरने चले। कैसे तुम मुट्ठी में आकाश को भरोगे? मुट्ठी स्वयं आकाश में है। तुम मुट्ठी में कैसे आकाश को भरोगे? और जितने जोर से तुम मुट्ठी बांधोगे, यह सोचकर कि कहीं आकाश हाथ से

निकल न जाए, मुट्ठी न खुल जाए, उतना ही कम आकाश तुम्हारी मुट्ठी में रह जाएगा। जितनी जोर से बंधी मुट्ठी होगी, उतनी ही खाली होगी। उसमें आकाश नहीं होगा। आकाश को मुट्ठी में बांधने का एक ही ढंग हैं, कि मुट्ठी को तुम बांधना ही मत। खुली मुट्ठी में आकाश होता है।

ऐसे ही खुले मन में सत्य होता है। जहां सब चौखटे गिरा दी गई, द्वार, दरवाजे खिड़कियां हटा दी गई। जहां तुम खुले आकाश के नीचे खड़े हो गए, वहां तुम सत्य में होते हो। ध्यान रखना, इसे मैं फिर दोहराता हूं। सत्य को तुम अपने में न समा सकोगे, वह तुमसे बड़ा है। बहुत बड़ा है। अगर चाहते हो कि सत्य के साथ संबंध बन जाए, तो तुम्हें ही सत्य मग समा जाना होगा।

इसलिए कबीर कहते हैं...अवधू गगन-मंडल घर कीजे। उस शून्य में घर बना लो। तुम ही आकाश में रहने लगो। खोल दो मुट्ठी। आकाश तुम्हारे भीतर भी है, बाहर भी है। तुम बंद न रहो।

तुम जब खुले हो, मुक्त हो, वही अवस्था ध्यान की है। जब मन किसी दृष्टि से नहीं देखता, जब मन किसी धारणा से नहीं देखता, जब मन पहले से ही लिए गए किसी निष्कर्ष की आड़ में खड़ा नहीं होता, जब मन और अस्तित्व के बीच में शास्त्र नहीं होते।

धर्म तो है असीम। और जहां-जहां सीमा पाओ, वहां-वहां राजनीति है। धर्म तो जोड़ता है। राजनीति तोड़ती है। इसलिए धर्म का वास्तविक शत्रु विज्ञान नहीं है, धर्म का वास्तविक शत्रु राजनीति है।

विज्ञान तो आज नहीं कल धार्मिक हो सकता है। हो ही जाएगा। अगर सत्य की ही खोज है, तो आज नहीं कल धर्म से कितनी देर तक दूर रहा जा सकेगा! और विज्ञान रोज धर्म के निकट आता गया है। जैसे-जैसे विज्ञान ने जाना है, वैसे वैसे उसे भी प्रतीति हुई है, कि धर्म के सत्यों में कुछ है। और विज्ञान चाहे आज करीब न भी हो, जो महान वैज्ञानिक हैं, उनके हृदय में तो वही धुन बजने लगी है, जो महान संतों के हृदय में बजी है।

कबीर के हृदय में जो गूंज है, वही आइंस्टीन के हृदय में है। मरते समय आइंस्टीन ने कहा है कि जैसे-जैसे मैंने जाना, वैसे वैसे संसार का सत्य पदार्थ में समाप्त मालूम नहीं होता। परमात्मा की छाप जगह-जगह दिखाई पड़ती है।

एक दूसरे बड़े वैज्ञानिक एडिंगटन ने लिखा है, कि जब मैंने अपनी विज्ञान की यात्रा शुरू की थी तो मैं सोचता था पदार्थ ही सब कुछ है। और मैं सोचता था, कि विचार भी पदार्थ का ही एक रूप है। लेकिन अब जब मैं जीवन की अंतिम पड़ाव पर पहुंच रहा हूं, तो दृष्टि पूरी बदल गई है। अब मैं सोचता हूं कि पदार्थ भी विचार का ही एक रूप है। चैतन्य का ही एक ढंग है। और वस्तुएं मुझे अब वस्तुएं नहीं मालूम पड़ती। विचार के सघन रूप मालूम पड़ती है।

आज नहीं कल विज्ञान तो धर्म के करीब आ जाएगा। शत्रुता है राजनीति से। वह कभी धर्म के करीब नहीं आ सकती। क्योंकि राजनीति का सारा ढंग तोड़ना है। पृथ्वी तो एक है। कहीं पृथ्वी पर चिन्ह हैं, जहां भारत समाप्त होता हो और पाकिस्तान शुरू होता हो? कहीं तुम पृथ्वी की जांच परख करने उस जगह पहुंच जाओ, जहां तुम कह सको कि यहां भारत समाप्त हुआ और पाकिस्तान शुरू हुआ?

नहीं, पृथ्वी की जांच परख से पता न चलेगा। पृथ्वी तो अखंड है। अगर तुम्हें जांच करना हो, तो राजनीतिकों के बनाए नक्शे देखने पड़ेंगे। वे झूठे हैं। वे आदमी-निर्मित हैं। पृथ्वी पाकिस्तान में प्रवेश किया हुआ है, पाकिस्तान हिंदुस्तान में प्रवेश हुआ है। सारी पृथ्वी इकट्ठी है।

पृथ्वी ही इकट्ठी है, ऐसा नहीं है। पृथ्वी, चांद-तारों से जुड़ी है। अकेला तो इस संसार में कुछ भी नहीं है। सब इकट्ठा है। दस करोड़ मील दूर है सूरज पृथ्वी से, लेकिन फूल में तुम जो रंग देखते हो, वह सूरज की किरण का है। अगर सूरज न हो, तो पृथ्वी से रंग खो जाएं। पृथ्वी में तुम जहां भी रंग देखते हो, जीवन देखते हो, प्राण देखते हो, वह सब सूरज का है। दस करोड़ मील दूर है। किरण को आने में दस मिनट लग जाते हैं।

और किरण की बड़ी तीव्र गति है। प्रति सेकेंड एक लाख छिपायी हजार मील चलती है। सूरज से आने में दस मिनट लग जाते हैं। बड़ा फासला है। लेकिन सूरज तो बहुत करीब है। और तारे हैं। निकटतम तारा है, उससे पृथ्वी तक आने में चार वर्ष लगते हैं किरण को। वही दफ्तर—एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड।

उसके बाद तारे हैं, जिससे सौ वर्ष लगते हैं किरण को पृथ्वी तक आने में। सौ वर्ष लगते हैं, हजार लगते हैं दस हजार वर्ष लगते हैं, करोड़ वर्ष लगते हैं, अरब वर्ष लगते हैं। वैज्ञानिक उन तारों तक की खोज कर लिए हैं, जो तारों से किरण चली थी जब पृथ्वी नहीं बनी थी और अभी तक पहुंची नहीं है। पृथ्वी को बने चार अरब वर्ष हो गए।

और यह भी अंत नहीं है। उनके पार भी जगत है। अस्तित्व फैला ही है। फैलता ही चला गया है। इसलिए तो हिंदुओं ने अस्तित्व को ब्रह्म का नाम दिया है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है, जो फैलता ही चला गया है। जिसका विस्तार होता ही चला गया है। जहां तुम कभी भी ऐसी जगह न आ सकोगे कि दो कि विस्तार पूरा हुआ।

ब्रह्म से ज्यादा सुंदर शब्द अस्तित्व के लिए दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। क्योंकि ब्रह्म का अर्थ ही है विस्तीर्ण...और विस्तीर्ण...और विस्तीर्ण। जो विस्तीर्ण होता ही चला गया है। और कहीं कोई सीमा नहीं आती। सब जुड़ा है, संयुक्त है।

तुम्हें दिखाई न पड़े, तुम सूरज से जुड़े हो। अगर सूरज बुझ जाए तुम बुझ जाओगे। ये सब दीए, जो तुम्हारी आंखों में जल रहे हैं, तत्क्षण बुझ जाएंगे। क्योंकि सूरज के बिना पृथ्वी पर जीवन नहीं हो सकता। सूरज के बिना पृथ्वी पर कुछ भी नहीं हो सकता। सिर्फ महामृत्यु होगी। फूल नहीं खिलेंगे, फल नहीं लगेंगे, पक्षी गीत नहीं गाएंगे, आंखों के दीए बुझ जाएंगे। एक महान मरघट होगा।

तो सूरज से हम एक क्षण भी दूर नहीं रह सकते। उसकी रोशनी हमें जीवन दे रही है। वह तुम्हारे रोएं-रोएं से जुड़ी है। तुम कहां समाप्त होते हो? तुम सोचते हो चमड़ी पर, तो तुम गलती में हो। क्योंकि सूरज के बिना तो तुम नहीं हो सकते। अगर तुम्हें चमड़ी ही समझनी है, कि तुम्हारी कहां है, तो कम से कम सूरज के पास समझो। वहां तक तुम्हारी चमड़ी जुड़ी है।

तुम्हारी चमड़ी से तुम प्रतिक्षण श्वास ले रहे हो। हजारों छिद्र हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, कि तुम नाक से ही श्वास नहीं ले रहे हो, रोएं-रोएं से श्वास ले रहे हो। अलग में रोए छिद्र हैं श्वास लेने के लिए। अगर तुम्हें नाक से श्वास लेने दिया जाए और पूरे शरीर पर रंग रोगन पोत दिया जाए, कि सब छिद्र बंद हो जाए, तो तुम तीन घंटे में मर जाओगे। नाक खुली रखी जाए, तुम श्वास जितनी चाहे लेते रहो नाक से लेकिन रोएं श्वास न लें तो तीन घंटे में मौत हो जाएगी।

कहां है तुम्हारी चमड़ी की सीमा? हवा के बिना तो तुम क्षण भर न हर सकोगे। हवा तो तुम्हारे जीवन को जगाए हुए हैं। और हवा का विस्तार पृथ्वी के दो सौ मील चारों तरफ है। अगर तुम्हें अपनी सीमा ही खोजनी है, तो हवा में खोजो। लेकिन तब तुम पृथ्वी से बड़े हो जाते हो।

लेकिन वह हवा भी प्राणवायु से भरी है। क्योंकि सूरज की किरणें प्रतिपल प्राणवायु पैदा कर रही हैं। तो अगर सीमा बनानी है, तो सूरज को बनाओ। लेकिन सूर्य खुद महासूर्यों पर निर्भर है। उनसे अगर उसे ज्योति न मिले तो वह भी कभी का बुझ जाएगा।

एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात समझ लेना चाहिए। तीन तरह की चेतना की अनुभूतियां हैं। एक—जब आदमी स्वतंत्र अनुभव करता है, इण्डिपेन्डेन्ट अनुभव करता है। और तीसरी, जो कि श्रेष्ठतम है, जब आदमी परस्पर—निर्भर, इंटरडिपेन्डेन्ट अनुभव करता है। वह श्रेष्ठतम अवस्था है।

जब तुम परतंत्र अनुभव करते हो, तब तुम दूसरों के साथ राजनीतिज्ञ के संबंध में जुड़े हो। दूसरा दुश्मन है। जब तुम स्वतंत्र अनुभव करते हो, तब तुम दूसरे के बगावत कर दिए हो। स्वतंत्रता हो गई हो, लेकिन मैत्री नहीं हो पाई है। और दोनों ही अवस्थाएं गलत हैं। क्योंकि न तो कोई परतंत्र है और न कोई स्वतंत्र है। वास्तविकता है—परस्पर-तंत्रता; इंटरडिपेन्डेंस। हर चीज एक-दूसरे पर निर्भर है।

तुम्हारे बिना वृक्ष न हो सकेगा, वृक्ष के बिना तुम न हो सकोगे। तुम दिन भर श्वास लेते हो। आक्सीजन तुम पी जाते हो और कार्बन-डाइआक्साइड तुम हवा में छोड़ देते हो। वृक्ष कार्बन-डाइआक्साइड पीते हैं और आक्सीजन को छोड़ते हैं। इसलिए तो वृक्षों के पास बैठ कर तुम्हें ताजगी मालूम पड़ती है।

और इसलिए तो तुम्हारे सीमेंट कांक्रीट की वस्तुएं मरघट जैसी मालूम पड़ती हैं, जिनमें वृक्ष खो गए हैं क्योंकि वहां कोई जीवन देने वाला नहीं है। वहां परस्पर संबंध टूट गया। सीमेंट की सड़क श्वास वापस नहीं लौटाती। सीमेंट कांक्रीट की आकाश छूती मंजिलें, भवन, कुछ भी नहीं लौटाते। मुर्दा हैं।

वृक्ष से लेन-देन है। इधर तुम छोड़ते हो श्वास, वृक्ष पी जाता है। तुम्हारी कार्बनसाइआक्साइड। जो तुम्हारे लिए विषाक्त है, वह वृक्ष के लिए जीवन है। जो वृक्ष के लिए व्यर्थ है आक्सीजन है, वह तुम्हारे लिए जीवन है। इसीलिए तो वृक्षों के पास बैठकर लगता है कि जीवन में एक बाढ़ आ गई। पहाड़ों पर जाकर लगता है कि जीवन में एक ऊर्जा आ गई। तुम नये हो गए, ताजे हो गए। हरियाली को देखकर ही कुछ भीतर ठंडा हो जाता है, शीतल हो जाता है। तुम्हारी आंखें हरियाली की प्यासी हैं। और आज नहीं कल विज्ञान यह भी खोज लेगा कि हरियाली तुम्हारी आंखों की प्यासी है। क्योंकि अस्तित्व परस्पर निर्भर है। जब तुम किसी वृक्ष की तरफ भरे प्यार की आंखों से देखते हो, तो वृक्ष में भी कुछ कंपित होता है।

इसकी खोजबीन शुरू हो गई है। पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक और वैज्ञानिक बैंकर—उसने पौधों पर बड़े प्रयोग किए हैं। और वह कहता है कि जब पौधों के प्रति कोई प्रेम से भर कर आता है, तो पौधा तन प्राण से नाच उठता है। और इसकी वैज्ञानिक परीक्षा के उपाय हैं।

जैसे तुम्हारा कोई कार्डियोग्राम लेता है डाक्टर, तो तार जोड़ देता है। मशीन ग्राफ बनाती है कि तुम्हारा हृदय कैसा धड़क रहा है। ठीक धड़क रहा है, नहीं ठीक धड़क रहा है? स्वस्थ है, या अस्वस्थ है? तुम प्रसन्न हो या दुखी हो? तुम जीवन से भरे हो या मृत्यु की तरफ डूब रहे हो? सारी खबर ग्राफ पर आ जाती है।

ठीक वैसे ही ग्राफ बैंकर ने बनाए हैं वृक्षों के। वृक्षों में तार जोड़ देता है। फिर वृक्ष को प्रेम करने वाला व्यक्ति आया और तार खबर देने लता है, ग्राफ बनाने लगता है कि वृक्ष बहुत प्रसन्न है। बहुत आनंदित है। स्वागत से भरा है। तुम्हारी भाषा नहीं बोलता। अपनी ही भाषा में स्वागत से भरा है। उसका रोआं-रोआं कंप रहा है, पुलकित है, आनंदित है।

और फिर आया एक आदमी, जो वृक्ष का दुश्मन है। कि खाली भी घास पर बैठा हो, तो घास को उखाड़ता रहेगा अकारण।

इधर मेरे पास लोग मिलने आते हैं, मुझे बैठना बंद कर देना पड़ा लान में। क्योंकि जो भी लोग वहां लान पर बैठकर जिन को मैं मिलता था, उनको पूरे वक्त यही काम कि वे घास को उखाड़ रहे है। किसलिए उखाड़ रहे हैं? उन्हें होश ही नहीं है, वे क्या कर रहे हैं। एक बेचैनी है भीतर जो किसी भी चीज को नष्ट करने में उत्सुक है। उनको रोक भी दो, तो थोड़ी देर में वे फिर शुरू कर देंगे। घास उखाड़ने से उन्हें प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन भीतर की बेचैनी जीवन को नष्ट कर रही है। वे सीमेंट के फर्श पर ही बैठने की योग्यता रखते हैं। घास जैसी जीवंत जगह वे खतरनाक है।

अगर ऐसा आदमी वृक्ष के पास आता है, तो वृक्ष के प्राण कंप जाते हैं कि दुश्मन आ रहा है। घबड़ाहट शुरू हो जाती है। ग्राह पर खबर आ जाती है कि वृक्ष बहुत डरा हुआ है। घबड़ा रहा है। परेशान है कि दुश्मन मौजूद है आसपास। तुम जब भरी प्रेम की आंख से वृक्ष को देखते हो, तो तुम ही हरे नहीं हो जाते, वृक्ष को भी तुम हरियाली दे रहे हो। जीवन का दान दे रहे हो।

सब जुड़ा है, संयुक्त है। कहीं कोई अंत नहीं आता। तुम्हारे होने का। तुम उतने ही बड़े हो, जितना यह बड़ा अस्तित्व है। इससे रत्ती भर कम नहीं। इससे रत्ती भर भी तुमने अपने को कम जाना, तो तुम दुखी रहोगे और नर्क में रहोगे। क्योंकि असत्य में कोई कैसे सुख को उपलब्ध हो सकता है? असत्य दुख है, लेकिन सारी राजनीति तुम्हें तोड़ती है।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, मैं हिंदू। आदमी होना काफी था। पर्याप्त तो नहीं था बहुत; लेकिन फिर भी बेहतर था हिंदू होने से। हिंदू तो बीस ही करोड़ हैं। आदमी कम से कम चार अरब। थोड़े तो बड़े होते! लेकिन अगर वह आदमी से खोजबीन करो तो वह कहता है कि हिंदू भी मैं राम को माननेवाला हूं। कृष्ण को नहीं मानता।

राजनीति ने और काटा। अब वह पूरा हिंदू भी नहीं है। बीस करोड़ लोगों के साथ भी उसका तादात्म्य नहीं है। अब दस करोड़ के साथ ही उसका तादात्म्य रह गया है। ऐसा आदमी टूटता जाता है। और फिर हजार पंथ हैं। घर-घर पंथ हैं, संप्रदाय हैं। और आदमी छोटा होता जाता है।

कम से कम आदमियत से जुड़ो। आदमियत कोई बहुत बड़ी घटना नहीं है; क्योंकि पृथ्वी बड़ी छोटी है। सूरज इससे साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज...बहुत मध्यवर्गीय अस्तित्व है उसका। उससे हजारों गुने बड़े सूरज हैं। पृथ्वी का तो कहीं

कोई पता नहीं है।

और पृथ्वी पर भी आदमी केवल चार अरब हैं। थोड़ा मच्छरों की सोचो; कितने अरब हैं। आदमी चार अरब हैं। फिर और कीड़े—पतंगों की सोचो। क्या आदमी की हैसियत है? तुम नहीं थे, तब भी मच्छर थे। तुम नहीं रहोगे—अगर राजनीतिज्ञों की चली तो तुम ज्यादा नहीं रह पाओगे। इस सदी के पूरे होते—होते सब समाप्त हो ही जाएगा। मच्छर फिर भी रहेंगे। उनका गीत गूंजता ही रहेगा। कितने प्राणी हैं!

अगर थोड़े बड़े होना है...और छोटे होने से तुम्हें पीड़ा हो रही है फिर भी तुम बड़े होना चाहते। क्षुद्र होने से तुम्हें कष्ट हो रहा है। ऐसे जैसे बड़े आदमी को छोटे बच्चे के कपड़े पहना दिए जाएं, ऐसी तुम्हारी तकलीफ हो रही है। छोटे बच्चे का जांघिया पहने खड़े हो। पीड़ा हो रही है, बंध हो, कसे हो, लेकिन और छोटे होने की आकांक्षा बनी है।

सब संप्रदाय राजनीति हैं क्योंकि तोड़ते हैं। हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई सब राजनीति हैं, क्योंकि तोड़ते हैं। धर्म तो जोड़ता है। तो पहले तो धर्म तुम्हें जोड़ेगा मनुष्यता से; फिर जोड़ेगा प्राण से। प्राण से जुड़ो। और फिर जोड़ेगा अस्तित्व से। जब तुम अस्तित्व से जुड़ जाओगे, तभी तुम ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हुए। तब तुम उतने ही बड़े हो जाओगे जितना बड़ा यह सारा होना है। इससे तुम रत्ती भर छोटे न रहोगे।

तभी तो उपनिषद के ऋषियों ने कहा है—अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूं। यह कोई अहंकार की घोषणा नहीं है, यह तो निरहंकार की परम उदघोषणा है। मैं हूं ही हनीं जब ऋषि ने कहा—अहं ब्रह्मास्मि। उसने मैं की बात ही नहीं की। मजबूरी है; तुम्हारी भाषा का उपयोग करना पड़ता है। इसलिए अहं शब्द का उपयोग किया—मैं ब्रह्म हूं। अन्यथा मैं तो वह है ही नहीं। जब तक मैं है तब तक तो ब्रह्म का अनुभव हो ही नहीं सकता। अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ है—मैं नहीं हूं, ब्रह्म है।

मैं तो रहूंगा तो छोटा ही रहूंगा तुम्हारी कोई न कोई सीमा रहेगी। तुम कहीं न कहीं समाप्त होओगे। तुम्हारी कोई न कोई परिभाषा होगी। अब अपरिभाष्य के साथ, असीम के साथ एक हो जाना ही परम आनंद है। सारे ज्ञानी एक ही इशारा कर रहे हैं, कि तुम छोटे से पोखरे हो गए हो। छोटी सी तलैया हो, सड़ रहे हो नाहक, जब कि सागर की तरफ बह सकते हो। तो पहला काम है, बहो; और दूसरा काम है, सागर में डूब जाओ।

और इसकी पीड़ा तुम्हें भी अनुभव होती है। तुम समझ पाओ, न समझ पाओ यह दूसरी बात है। छोटा होना किसे अच्छा लगता है? छोटे-छोटे बच्चों को भी अच्छा नहीं लगता। वे भी बाप के पास कुर्सी पर खड़े हो जाते हैं और जब उनका सिर बाप के ऊपर होता है तो वह कहता है, मैं तुमसे बड़ा छोटा होना किसे अच्छा लगता? छोटे होने में बड़ी पीड़ा है। तुम गरीब हो, अच्छा नहीं लगता। अमीर होना चाहते हो। क्या कारण है?

थोड़े बड़े होना चाहते हो। थोड़ा इंकम का ब्रेकेट बड़ा हो जाए। दस हजार रुपए साल कमाते हो, दस लाख कमाने लगे। थोड़ा तो बड़प्पन आए। एक छोटे से झोपड़े में रहते हो, बड़े महल में रहना चाहते हो। तुम समझ नहीं पा रहे हो, तुम्हारे भीतर के प्राण क्या कह रहे हैं? वे यह कह रहे है कि थोड़ी जगह चाहिए। थोड़ा बड़ा स्थान चाहिए। थोड़ा फैलने की सुविधा चाहिए। वे यह कह रहे हैं, कि छोटे होने में तकलीफ है।

लेकिन तुम समझ नहीं पा रहे हो। क्योंकि कितना ही धन कमा लो, छोटे तुम रहोगे। कितना ही धन पा लो, सीमा बनी रहेगी। सीमा छोटी हो या बड़ी, सीमा सीमा है। सीमा का कष्ट है। दस हजार की सीमा हो या दस लाख की, कोई फर्क नहीं पड़ता। दस लाख की सीमा बन जाएगी, मन कहेगा दस करोड़। थोड़े बड़े हो जाओ। थोड़ा फैलो।

सब तरफ तुम फैलने की कोशिश कर रहे हो। बिना समझे हर आदमी धार्मिक है। कुछ लोग समझ से धार्मिक हैं, कुछ नासमझी से। जो नासमझी से हैं वे भटकते जरूर हैं, पहुंचते कहीं भी नहीं। जो समझदारी से चलते हैं, वे भटकते नहीं, पहुंच जाते हैं। उतनी ही शक्ति भटकने में लगती है, जितनी पहुंचने में लगती है। शायद कम शक्ति से पहुंच जाते हैं। क्योंकि व्यर्थ रास्तों पर नहीं जाते।

अगर तुम अपनी वासनाओं में ठीक से झांकोगे तो तुम पाओगे कि सारी वासनाओं का सार एक है कि तुम छोटे नहीं होना चाहते। कोई अगर तुम्हारे पैर पर पैर रख दे तो तुम अकड़ कर खड़े हो जाते हो। रीढ़ सीधी हो जाती है। जब तुम अपनी पूरी ऊंचाई को प्राप्त कर लेते हो, कहते हो, जानते हो कि मैं कौन हूं? तुम बता रहे हो कि मैं इतना छोटा नहीं, कि हर कोई

पैर पर पैर रख कर चला जाए।

तुम यह बताना चाहते हो कि तुम—दूसरे ने तुम्हें जरा ज्यादा छोटा समझ लिया। इतने छोटे तुम नहीं हो। तुम कहते हो, जानते हो मैं कौन हूं? अकड़ कर चलते हो तुम।

जो तुम नहीं हो वह भी दिखलाते हो तुम। जितना धन तुम्हारे पास नहीं है उतनी तुम अफवाह उड़ाते हो कि तुम्हारे पास है। घर में मेहमान आ जाता है, पड़ोसी का सोफा मांग लाते हो। जो तुम्हारे पास नहीं है वह तुम दिखलाते हो, कि मेरे पास है। घर में रोज रूखा-सूखा खाते हो, मेहमान आता है तो हलवा पूड़ी बनाते हो। यह कोई मेहमान के लिए नहीं है। मेहमान को तो तुम गाली दे रहे हो भीतर कि कहां से आ गया! जिसको तुम गाली दे रहे हो उसको हलुवा पुड़ी क्यों खिलाते हो? नहीं, तुम दिखलाना चाहते हो कि बड़ी मौज चल रही है। आनंद में जीवन है। बड़ा फैलाव है। कोई कमी नहीं है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने घर मेहमान आया एक। पत्नी नाराज। मुल्ला भी दुखी; लेकिन हलवा पूड़ी तो बनाना ही पड़ा। फिर मेहमान को आग्रह कर करके खिलाना भी पड़ा और भीतर तो गालियां चल रही हैं कि दुष्ट खाता जा रहा है। ना भी नहीं कर रहा है। आखिर मुल्ला ने फिर कहा कि एक पूड़ी और? उस आदमी ने कहा, अब काफी हो गयी। अब बस। मुल्ला ने कहा, कहां काफी है? और गिनती कौन कर रहा है? अभी तो बारह ही तो खाई हैं। और गिनती कौन कर रहा है।

मन गिन भी रहा है। मन दिखलाना भी चाह रहा है, कि कोई गिनती नहीं कर रहा है। चाहते हो तुम्हारी सारी वासनाओं में तुम एक बात, कि तुम बड़े हो। और हर जगह तुम मुश्किल पाते हो। बड़े हो नहीं पाते। सब जगह सीमा आ जाती है।

धन की एक सीमा है। कितना कमाओगे सत्तर साल में? कितना ही कमा लो, इस जमीन के सब से बड़े धनी आदमी ने मरते वक्त जो कहा वह याद रखना।

अमेरिका का बहुत बड़ा धनी आदमी हुआ, एंडरू कार्नेगी। दस अरब नगद रुपया छोड़कर मरा। इतनी नगद संपदा किसी के पास न थी। मरते वक्त किसी ने एंड्रू कार्नेगी को पूछा कि तुम तो संतुष्ट मर रहे होगे? इतनी विराट संपत्ति, धन छोड़ कर जा रहे हो। एंड्रू कार्नेगी ने आंख खोली और कहा, संतुष्ट? मेरे इरादे पूरे सौ अरब रुपए छोड़ने के थे। मैं एक हारा हुआ आदमी हूं। पराजित।

एंड्रू कार्नेगी गरीब घर में पैदा हुआ। अपनी ही जिंदगी में उस अकेले आदमी ने अपनी ही मेहनत से दस अरब रुपए इकट्ठे किए। लेकिन संतोष नहीं, पीड़ा है। क्योंकि दस अरब भी तो सीमा बन जाएगी। दस रुपए से भी सीमा बनती है, दस अरब से भी सीमा बनती है। थोड़ी बड़ी हुई तो क्या, लेकिन जब तक सीमा है तब तक तुम छोटे ही मालूम पड़ोगे। तब तब पीड़ा जारी रहेगी।

एक ही घड़ी है, जब तुम्हारी पीड़ा बिलकुल बिदा हो जाती है—जिस दिन तुम विराट के साथ एक हो जाते हो। जिसकी कोई सीमा नहीं, वही धर्म में जागरण है। वह ब्रह्म में प्रवेश है। वही खो जाना है सरिता का सागर में।

कबीर उसकी तरफ ही सब तरफ से इशारा कर रहे हैं।

हम तो एक एक करि जाना।

कबीर कहते हैं हमने तो एक को एक करके जान लिया। दुई मिटा दी। अब हम दो नहीं हैं। भक्त जब तक भगवान न हो जाए तब तक दुई बनी रहती है। भक्त चाहे भगवान के चरणों तक भी पहुंच जाए, तो भी तृप्ति नहीं होती।

सच तो यह है, अतृप्ति और बढ़ जाती है चरणों के पास आकर। विरह और गहरा हो जाता है। संताप और गहरा होने लगता है, कि इतने करीब होकर अब और क्या बाधा है, कि छलांग क्यों नहीं लग जाती कि परमात्मा हो जाऊं?

इसलिए हिंदू धर्म जिन ऊंचाइयों को छूता है, उन ऊंचाइयों को इस्लाम, ईसाइयत, यहूदी धर्म नहीं छू पाते। एक कदम पीछे रह जाते। ईसाइयत या इस्लाम परमात्मा के चरणों तक तो लाते हैं। लेकिन आखिरी छलांग की हिम्मत नहीं हो पाती। आखिरी छलांग की हिम्मत है, परमात्मा हो जाना। उससे कम में राजी मत होना। उससे कम में राजी रहोगे, दुखी रहोगे। परमात्मा के चरणों में रहोगे, लेकिन नर्क में रहोगे। क्योंकि सीमा बनी रहेगी। जब तक तुम परमात्मा ही न हो जाओगे तब तक पीड़ा की रेखा बनी रहेगी।

हम तो एक एक करि जाना।

कबीर कहते हैं कि हमने तो एक को एक कर के जान लिया। अब कोई दुई न बची। अब हम कोई अलग नहीं हैं। अब तू कोई अलग नहीं है।

सूफियों की बड़ी पुरानी कथा है। उस कथा में मैंने थोड़ा सा जोड़ा है। कथा है कि जलालुद्दीन रूमी एक गीत में, कि प्रेमी ने प्रेयसी के द्वारा पर दस्तक दी आधी रात।

प्रेयसी ने भीतर से पूछा कौन है?

प्रेमी ने कहा, मैं हूं तेरा प्रेमी। मेरी पगध्वनि नहीं पहचानी? मेरी आवाज नहीं पहचानी?

भीतर सन्नाटा हो गया। कोई उत्तर न आया। प्रेमी बेचैन हुआ। उसने कहा, क्या कारण है? द्वार क्यों नहीं खुलते?

प्रेयसी ने कहा, इस घर में दो के लायक जगह नहीं है। या तो मैं, या तू। प्रेम के घर में दो के लिए जगह नहीं है। यह द्वार बंद ही रहेगा। जब तक तुम एक होकर न आओ।

प्रेमी वापस चला गया। दिवस आए गए, ऋतुएं आई गइ, वर्ष बीते। बड़ी साधना की उसने। बड़ा अपने को निखारा। शुद्ध किया, आग से गुजरा। कंचन हो गया, फिर एक रात पूर्णिमा की उसने द्वार पर दस्तक दी।

वही सवाल, कौन हो?

प्रेमी ने कहा, तू ही है।

रूमी कहता है, द्वार खुल गए। हिंदू राजी न होंगे। इस्लाम राजी है। यहां तक कहानी जाती है, ठीक है।

इस्लाम कहता है, भक्त कह दे परमात्मा से, कि बस तू ही है, मैं नहीं हूं। यात्रा पूरी हो गई।

लेकिन अगर थोड़ा गौर से देखोगे तो जब तक तू का भाव है, तब तक मैं का भाव मिट नहीं सकता। क्योंकि तू का अर्थ ही क्या है अगर मैं नहीं? तू में सारा अर्थ ही मैं के कारण है। तू के पहले मैं है। और जब प्रेमी ने कहा तू ही है, तब कौन कह रहा है? और तब भीतर तो वह जानता है कि मैं कह रहा हूं। मैं ही तो तू कहेगा। मैं न होगा, तो तू भी कौन कहेगा?

इसलिए रूमी की तो कविता पूरी हो जाती है, कि द्वार खुल गए। लेकिन मैं थोड़ी दूर द्वार और बंद रखना चाहूंगा। अगर रूमी मिल जाए तो मैं कहूंगा, कविता को थोड़ा और चलने दो। कहलाओ प्रेयसी से कि जब तक तू है, तब तक मैं भी मौजूद है। और दो के लिए द्वार न खुल सकेंगे और प्रेमी तो लौटा दो। अभी कचरा जब गया, कंचन बचा; अब कंचन को भी मिट जाने दो। अशुद्धि गई, शुद्धि बची; अब शुद्धि को भी जाने दो। पाप गया, पुण्य बचा; अब पुण्य को भी जाने दो। और तब मैं कहता हूं, प्रेमी को आने की जरूरत नहीं, प्रेयसी ही आएगी। तब उसे वापस दोबारा लाने की जरूरत नहीं दरवाजा के खटखटाने के लिए। दो दफा काफी खटखटा चुका। अब प्रेमी न लौटेगा। तब प्रेमी जहां होगा, मगन होगा। अब प्रेयसी ही उसे खोजती हुई आएगी। प्रेयसी ही उसे आकर आलिंगन कर लेगी।

जिस दिन भक्त बिलकुल मिट जाता है, भगवान आता है। और मैं तुमसे कहता हूं, कि भक्त कैसे भगवान तक पहुंच सकता है? न तो तुम्हें पता है उसका मालूम, न ठिकाना मालूम। पाती भी लिखोगे तो कहां? जाओगे तो कहां? तुम उसे खोजोगे कैसे? वह मिल भी जाए, तो प्रत्यभिज्ञा जैसे होगी? रिकग्नीशन कैसे होगा कि यही है? क्योंकि पहले तो कभी जाना नहीं।

नहीं, तुम न जा सकोगे। तुम मिट जाओ, वह आता है। वह तुम्हारे हृदय के द्वार पर खुद ही दस्तक देता है। वह खुद ही आता है। जिस दिन भक्त तैयार है, उस दिन भगवान उसे खोजता चला आता है। क्योंकि भगवान तो सदा मौजूद ही था। तुम्हारे आसपास ही था। तुम्हें घेरे था। तुम्हारा परिवेश था। तुम्हारी श्वास था। तुम्हारा प्राण था। तुम भरे थे अपने से इतने ज्यादा, कि भीतर कोई जगह न थी। अवधू गगन मंडल घर कीजै।

जब तुम शून्य हो जाओगे, वह उतर आता है। शून्यता में पूर्णता ऐसी ही उतर आती है, जैसे बूंद सागर में खो जाए। तुम शून्य हुए कि पूर्ण होने के अधिकारी हुए। तुम मिटे, कि परमात्मा हुआ।

प्रेयसी खुद ही खोजती हुई पहुंची होगी। किसी वृक्ष के नीचे बैठा देखा होगा प्रेमी को। नाची होगी उसके चारों तरफ। आलिंगन किया होगा। कहा होगा कि मैं आ गई। अब तो तुम बिलकुल मिट गए। न तू बचा, न मैं बची। दोनों साथ

बचती हैं, साथ जाती हैं। क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तू का क्या अर्थ है, अगर मैं नहीं? मैं का क्या अर्थ है,अगर तू नहीं?

कबीर कहते हैं,

हम तो एक एक करि जाना।

न वहां कोई मैं है, न वहां कोई तू है। हमने तो एक को बस, एक ही तरह जाना।

दोई कहै, तिनही को दोजख

जिन्होंने दो कहा, वे नर्क में।

दोई कहै, तिनही को दोजख...

वह नर्क में है। दो यानी नर्क, एक यानी स्वर्ग।

...जिन नाहिन पहचाना।

वे ही दो कहते हैं जिन्होंने पहचाना नहीं। और जो दो कहते हैं, वे गहन नर्क में पड़े रहते हैं।

सीमा नर्क है। बंधे हुए अनुभव होना पीड़ा है। सब तरफ से दबे होना दुख है। कुछ बचा है पाने को। नर्क है, जब तक सभी न पा लिया गया हो। कुछ भी न बचे बाहर। तुम ऐसे फैल जाओ कि आकाश जैसे ढाक लो सारे अस्तित्व को। कि फूल तुममें खिलें, चांद-तारे तुममें चलें।

स्वामी राम कहा करते थे कि मैंने ही चांद-तारे बनाए। वह मैं ही था। जिसने चांद-तारों को पहले छुआ उंगली से और जीवन दिया और गति दी। और चांद-तारे मुझमें ही घूमते हैं। तो लोग समझते थे कि पागल हैं। ज्ञानियों को सदा लोगों ने पागल समझा है। बात ही पागलपन की लगती है।

जब स्वामी राम अमेरिका गए और उन्होंने ये ही बातें वहां कहीं—तो हिंदुस्तान तो पागलों से बहुत परिचित है। यहां चल जाती हैं बातें। हजारों साल से पागलों को सुनते-सुनते जो पागल नहीं हैं, वे भी कम से कम उनकी भाषा से परिचित हो गए। मानते हैं कि सधुक्कड़ी भाषा है। अपनी नहीं; साधुओं की है। कुछ दिमाग फिरे लोगों की है। तभी तो कबीर को कहना पड़ता है, कहै कबीर दीवाना। दीवानों की है पागलों की है, मस्तों की है। मगर हमने इतने दिनों से सुनी है और हमने इतने मस्त पुरुष देखे हैं कि हम नासमझी में भी चाहे स्वीकार न करें, लेकिन अस्वीकार भी नहीं करते।

पर अमेरिका की तो हालत बड़ी और है। जब वहां लोगों ने स्वामी राम को कहने सुना, कि मैंने ही चांद तारे चलाए तो लोगों ने समझा यह आदमी बिलकुल पागल है। तो लोग पूछने लगे, आपने? और आपमें ही चांद तारे घूम रहे हैं? तो इस तरह के लोगों को तो पश्चिम में लोग मनोवैज्ञानिक के पास भेज देते हैं चिकित्सा के लिए।

कल ही सांझ एक इटालियन साधिका मुझसे कह रही थी, कि जब से उसने ध्यान शुरू किया है, शरीर में एक ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। और जब भी कोई ध्यान की बात उठती है, या परमात्मा की चर्चा उठती है, या जब भी कभी वह मुझे मिलने आती है, या किसी ऐसे आदमी से मिलना हो जाता है जिसके भीतर जीवन के फूल कुछ खिलने शुरू हुए हैं या खिल रहे हैं, तो उसका सारा शरीर एक झटके से भर जाता है, जैसे बिजली की कौंध दौड़ गई। उसने कहा, यहां तो सब ठीक था। लोग समझते थे, कुंडलिनी का जागरण हो रहा है। इटली में क्या करूंगी? अगर वहां यह हुआ तो वे मुझे मनोचिकित्सक के पास भेज देंगे। वे मेरा इलाज करवा देंगे। हो सकता है, बिजली का शाक दिलवा दें। दवा तो वे करवाएंगे ही, कि कुछ गड़गड़ हो गया।

यहां हम परिचित हैं, अमेरिका तो बहुत नया है। बच्चों जैसा देश है। राम ने जब ये बातें कहीं तो लोगों ने समझा कि यह पागल है। और जब राम कहते, तो वे हमेशा अपने लिए बादशाह शब्द का उपयोग करते थे। वे कभी और तरह नहीं बोलते थे। वे कहते थे, बादशाह राम। उन्होंने किताब लिखी तो उन्होंने उस किताब को नाम दिया बादशाह राम के छह हुक्मनामे। सिक्स आर्डर्स फ्राम एम्परर राम। हुकमनामे। बादशाह।

खुद अमेरिका का प्रेसिडेंट, बादशाह राम से मिलने आया था और उसने कहा, और सब तो ठीक है, अगर आप यह बादशाह क्यों कहते हैं? आपके पास दिखाई कुछ भी नहीं पड़ता। राम ने कहा, पहचान लिया बिलकुल। इसीलिए अपने

को बादशाह कहता हूं मेरे पास कोई सीमा नहीं, कुछ भी नहीं। असीम! चांद-तारे मुझ में घूमते हैं। क्योंकि मैं कहीं समाप्त ही नहीं होता। यही मेरी बादशाहत है। बिलकुल ठीक पहचाना।

अमरीका प्रेसिडेंट कह रहा था, बादशाह वह अपने आपको कहे, जिसके पास कुछ हो। हमारी परिभाषा अलग है। हम कहते हैं जिसके पास कुछ नहीं, उसके पास सब है। जिसने छोड़ा आंगन, आकाश उसका हुआ। जिसने छोड़ा एक घर, सब घर उसके हुए। जिसने यहां गिराई अपनी अस्मिता, सब के भीतर सब के प्राण के ही प्राण हो गए।

रामकृष्ण परमहंस को मरने के पहले गले का कैंसर हो गया। तो बड़ा कष्ट था। और बड़ा कष्ट था भोजन करने में, पानी भी पीना मुश्किल हो गया था। गले से कोई भी चीज ले जाना कष्ट था। घाव था।

तो विवेकानंद ने एक दिन रामकृष्ण को कहा, कि इतनी पीड़ा शरीर को हो रही है। आप जरा मां को क्यों नहीं कह देते? जगत जननी के जरा कह दो। तुम्हारा वह सदा से सुनती रही है। इतना ही कह दो, कि गले को इतना कष्ट क्यों दे रही हो? फिर भोजन की असुविधा हो गई है।

रामकृष्ण ने कहा, तू कहता है तो कह दूंगा। मुझे खयाल ही न आया।

घड़ी भर बाद आंख खोली और खूब हंसने लगे और मां ने कहा, पागल! कब तक इसी कंठ से बंधा रहेगा? सभी कंठों से भोजन कर। बात समझ में आ गई। रामकृष्ण ने कहा, यह कंठ अवरुद्ध ही इसलिए हुआ था कि सभी कंठ मेरे हो जाए। अब मैं तुम्हारे कंठों से भोजन करूंगा।

एक कंठ अवरुद्ध होता है, सभी कंठों के द्वार खुल जाते हैं। यहां एक अस्मिता बुझती है और सार अस्तित्व की अस्मिता, सारे अस्तित्व का मैं भाव—वही तो परमात्मा है। वही अस्तित्व अस्मिता तो कृष्ण से बोली है, सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब धर्म छोड़ कर तू मेरी शरण आ। यह कौन बोला है? यह कौन है मेरी शरण? यह कोई कृष्ण नहीं हैं, जो सामने खड़े हैं। यह सारे अस्तित्व की अस्मिता, यह सारे अस्तित्व का मैं बोला है। तुम्हारा मैं बाधा है क्योंकि उसके कारण तुम सारे अस्तित्व के मैं के साथ एकता न साध पाओगे।

रवींद्रनाथ ने अपना एक संस्मरण लिखा है, जो मुझे बड़ा ही प्रीतिकर रहा है। ऐसी पूर्णिमा की रात थी एक, रवींद्रनाथ बजरे में थे नदी में। एक छोटा सा दीया जला दिया था। और किताब पढ़ रहे थे। बड़ी टिमटिमाती रोशनी थी। छोटा सा दीया था। और बाहर पूरा चांद खिला था पूर्णिमा का रोशनी रोशनी थी। लेकिन कमरे के भीतर दीया टिमटिमाता था। उसकी गंदी सी रोशनी सारे कक्ष को गंदा कर रही थी। आधी रात तक पढ़ते रहे। थक गए। दीये को फूंक मार कर बुझा कर किताब बंद की।

चौंक गए। खड़े हो गए। नाचने लगे। अनूठा घटा। सोचा भी न था, ऐसा घटा। अब तक पीला सा प्रकाश भरा था कमरे में। दीये के बुझाते ही द्वार से, खिड़कियों से, रंध्र-रंध्र से बजरे की, चांद भीतर आ गया और नाचने लगा। रवींद्रनाथ नाच उठे।

उस रात उन्होंने अपनी डायरी में लिखा, मैं भी कैसा पागल! पूरा चांद बाहर खड़ा था। अनूठी सुंदर रात बाहर प्रतीक्षा कर रही है। चांद द्वार पर खड़ा है, खिड़की पर खड़ा है, रंध्र-रंध्र के पास खड़ा है, रह देखता है कब बुझाओगे भीतर का दीया, कि मैं भीतर आ जाऊं। और छोटा सा दीया बाधा बना है और उसकी वजह से भीतर गंदा प्रकाश भरा है जिसमें आंखें थकती हैं, शीतल नहीं होतीं। दीए के बुझते ही सब तरफ से रोशनी दौड़ पड़ी। भीतर जगह खाली हो गई। शून्य हो गई। चांद आ गया नाचता हुआ।

रवींद्रनाथ ने कहा, उस दिन मेरे मन में एक द्वार खुल गया, कि जब तक मेरे भीतर अहंकार का दीया जल रहा है, तब तक परमात्मा की रोशनी बाहर ही खड़ी रहेगी। जिस दिन यह दीया मैं फूंक मार कर बुझा दूंगा, उसी दिन वह नाचता भीतर आ जाएगा। फिर नाच ही नाच है। फिर उत्सव ही उत्सव है। फिर इस उत्सव का कोई अंत नहीं आता।

हम तो एक एक करि जाना।

दोई कहे तिनहीं को दोजख, जिन्ह नाहिन पहिचाना।

जिन्होंने दो कहा, वे नर्क में है। कबीर का यह वचन पश्चिम का आधुनिक विचारक ज्या पाल सार्त्र अगर पढ़े तो राजी

होगा। ज्या पाल सार्त्र का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है, जिसमें उसने कहा है—द अदर द हेल। दूसरा नर्क है। उसके प्रयोजन हैं। लेकिन बात तो उसने भी पकड़ ली। दूसरा नर्क है। दूसरे की मौजूदगी नर्क है।

तो क्या करें? क्या अकेले में भाग जाएं? एकांत में हो जाए, जहां दूसरा न हो? न पत्नी हो, न पति हो, न बेटा हो। बहुतों ने यह प्रयोग किया है। भागे हैं हिमालय की कंदराओं में ताकि अकेले हो जाए। क्योंकि दूसरा नर्क है। लेकिन तुम भाग कर भी अकेले न हो पाओगे। क्योंकि तुम्हारा मैं तो तुम्हारे साथ ही चला जाएगा। तू यहां छोड़ जाओगे, मैं तो साथ चला जाएगा। और ध्यान रखो, जहां मैं हूं, वहां तू है। वह सिक्का इकट्ठा है। तुम आधा-आधा छोड़ नहीं सकते। अगर मैं तुम्हारे साथ गया तो तू तुम्हारे साथ गया। जल्दी ही तुम अपने को ही दो हिस्सों में बांट कर चर्चा करने लगोगे।

अकेले में लोग अपने से ही बात करने लगते हैं। मैं और तू दोनों हो गए। अकेले में लोग ताश खेलने लगते हैं। खुद ही दोनों तरफ से बाजी बिछा देते हैं। उस तरफ से भी चलते हैं, इस तरफ से भी चलते हैं। इतना ही नहीं, उस तरफ से भी धोखा देते हैं, इस तरफ से भी धोखा देते हैं। किसको धोखा दे रहे हो?

अकेले में लोग कल्पना की मूर्तियों में जीने लगते हैं। उनसे चर्चा करते हैं, बात करते हैं, तू मौजूद हो जाता है।

भीड़ तुम्हारे हाथ ही आ जाएगी अगर मैं तुम्हारे साथ गया। क्योंकि मैं तो केंद्र है सारी भीड़ का। भीड़ तो परिधि है। तुम जहां पाओगे, तुम भीड़ में रहोगे। तुम अकेले नहीं हो सकते। हिमालय का एकांत शून्य न बनेगा। अकेलापन रहेगा ही। और अकेलापन और एकांत में बड़ा फर्क है। अकेलेपन का अर्थ है, लोनलीनेस और एकांत का अर्थ है अलोननेस। अकेलेपन का अर्थ है, कि दूसरे की चाह मौजूद है। इसलिए तो तुम अकेलापन अनुभव कर रहे हो कि मैं अकेला...मैं अकेला। दूसरे की चाह मौजूद है। दूसरे की वासना मौजूद है। तुम चाहते हो कोई आ जाए।

तुम अपनी हिमालय की गुफा के बाहर बैठकर भी रास्ते पर नजर लगाए रखोगे कि शायद कोई यात्री मानसरोवर जाता गुजर जाए। शायद कोई मनुष्य थोड़ी खबर ले आए नीचे के मैदानों की, कि क्या हुआ? जयप्रकाश नारायण की पूर्ण क्रांति हो पाई कि नहीं? शायद कोई अखबार का एक टुकड़ा ही ले आए और तुम वेद वचनों की तरफ अखबार को पढ़ लो। मन तुम्हारा नीचे ही भटकता रहेगा मैदानों में, जहां भीड़ है।

रामकृष्ण कहते थे, एक बार बैठे थे मंदिर के बाहर दक्षिणेश्वर में, तो देखा कि एक चील मरे हुए चूहे को ले उड़ी है। अब चील कितने ही ऊपर उड़े, नजर तो उसकी नीचे कचरे-घर में लगी रहती है जहां मरे चूहे पड़े हों, मांस का टुकड़ा पड़ा हो, फेंकी गई मछली पड़ी हो। उड़ती है आकाश में, नजर तो घूरे पर लगी रहती है। तुम हिमालय पर बैठ जाओ। कोई फर्क न पड़ेगा। नजर घूरे पर लगी रहेगी दिल्ली में। नजर मरे चूहों पर लगी रहेगी। तुम अपने को तो साथ ही ले जाओगे। तुम ही तो तुम्हारे होने का ढंग हो।

रामकृष्ण ने देखा कि वह चील उड़ रही है चूहे को लेकर। और बहुत सी चीलें उस पर झपट्टा मार रही हैं। कौवे दौड़ गए हैं। बड़ा उत्पात मच गया है आकाश में। वह चील बचने की कोशिश कर रही है। लेकिन और गिद्ध आ गए हैं। और सब तरफ से उसको टोचे जा रहे हैं। वह भागती है, बचना चाहती है। उसके पैरों पर लहू आ गया है। तब क्रोध की अवस्था में वह भी किसी गिद्ध पर झपटी और मुंह से चूहा छूट गया। चूहे के छूटते ही सारा उपद्रव बंद हो गया। कोई वे चील के पीछे पड़ने ही थे। बाकी गिद्ध और चीलें और कौवे...वे चूहे के पीछे पड़े थे। जैसे ही चूहा छूटा, वे सब चले गए। वे चूहे की तरफ चले गए। अब वह थकी चील वृक्ष पर बैठ गई। रामकृष्ण कहते हैं कि मुझे लगा, शायद थोड़ी उसे समझ आई होगी। चूहा सारी भीड़ को ले आया था।

तुम्हारा मैं...तुम हिमालय चले जाओ, कोई फर्क न पड़ेगा। सब भीड़ आ जाएगी। तुम्हारा मैं भीड़ को खींचता है। तुम मैं को छोड़ दो। बाजार में बैठे रहो, वहीं हिमालय हो जाएगा। तुम्हारी दुकान तुम्हारी गुफा हो जाएगी तुम्हारा दफ्तर तुम्हारा मंदिर हो जाएगा। मैं का चूहा भर छूट जाए। फिर कोई चील हमला नहीं करती। फिर कोई सिद्ध तुम पर आकर हमला नहीं करता। तुमसे किसी का कुछ लेना-देना नहीं है। वह तुम्हारा मैं ही तुम्हारे उपद्रव का कारण है।

तुम्हें कभी किसी ने धक्का मारा? नहीं तुम्हारे मैं को धक्के मारे गए हैं। किसी ने तुम्हें कभी नीचा दिखाया नहीं। तुम्हारे मैं को नीचा दिखाया गया है? किसी ने कभी तुम्हें गाली दी? नहीं। तुम्हारे मैं को गाली दी गई है। किसी ने कभी तुम्हारी

स्तुति की? नहीं। तुम्हारे मैं की स्तुति की गई।

जैसे ही मैं गया, सारी भीड़ गिर जाती है नींद को की, स्तुति करनेवालों की, मित्रों की, शत्रुओं की, अपनों की, परायों की। द अदर इज हेल। सार्त्र कह रहा है—दूसरा नर्क है। लेकिन अगर बहुत गौर से सोचो और थोड़ा गहरे जाओ तो दूसरा इसीलिए है, कि तुम हो। द इगो इज द हेल। गहरे पर विश्लेषण करने पर तो पता चलेगा कि दूसरा तो तुम्हारे कारण है। इसलिए दूसरे को क्या नर्क कहना। वह नर्क मालूम पड़ता है। वस्तुतः मैं ही नर्क है। अहंकार ही नर्क है।

दो कहै तिनही को दोजख, जिन नाहिन पहिचाना।

एक पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।

एक ही पवन है; चाहे कैलाश में, चाहे काबा में। एक ही पानी है; चाहे गंगा में, चाहे तुम्हारे घर रखे गंगोदक में।

एक पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।

और चाहे छोटे से मिट्टी के दीए मग और चाहे महासूर्यों में; एक ही ज्योति है। इस एक को पहचानो। इस एक को जीओ। इस एक में रमो। एक को ही गुनो। इस एक को साधो। इस एक को ही ध्यान बनाओ।

एक पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।

एक ही खाक घड़े सब भांड़े, एक ही सिरजनहारा।

और एक ही मिट्टी है; जिससे सब तरफ के घड़े गढ़े गए हैं। कुम्हार चक्के पर रखता जाता है वही मिट्टी। अलग-अलग रूप देता चला जाता है। रूप का भेद है। नाम का भेद है। मूल का तो जरा भी भेद नहीं है। अस्तित्व का तो जरा भी भेद नहीं है। कोई स्त्री है, कोई पुरुष है। भीतर सब एक है। कोई गोरा है, कोई काला। भीतर सब एक है। कोई हिंदू है, कोई तुर्क है। भीतर सब एक है।

एकहि खाक घड़े सब भांडे।

और एक ही सिरजनहारा। और एक ही है जो सृज रहा है, एक ही रच रहा है।

जैसे बाढ़ी काष्ठे ही काटे, अगिनी न काटें कोई।

यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है। उन दिनों, कबीर के दिनों तक भी लकड़ी को रगड़ कर अग्नि पैदा की जाती थी। वही एक उपाय था। लकड़ी में अग्नि छिपी है। काष्ठ में अग्नि छिपी है। जब बढ़ई काटता है लकड़ी को, तो लकड़ी ही कटती है, अग्नि नहीं कटती।

कबीर यह कह रहे हैं, ऐसे ही तुममें वह एक छिपा है। जब मौत तुम्हें मारती है, तो लकड़ी ही कटती है, अग्नि नहीं कटती। जब बीमारी तुम्हें पकड़ती है, तो लकड़ी को ही पकड़ती है, अग्नि नहीं कटती। जब बीमारी तुम्हें पकड़ती है, तो लकड़ी का ही पकड़ती है, अग्नि को नहीं पकड़ती। जब जवान बूढ़ा होता है तो लकड़ी ही बूढ़ी होती है, अग्नि बूढ़ी नहीं होती।

वह जो तुममें छिपा है, चाहे तुम्हें पता न हो। क्योंकि तुमने रगड़ा ही नहीं कभी अपने को कि पता हो जाए। जिन्होंने रगड़ा, उन्होंने जाना। रगड़ने का अर्थ है, जिन्होंने थोड़ा साधा, उन्होंने जाना। जिन्होंने भीतर के रूप को बाहर प्रकट कर के देखा, उन्होंने जाना। उन्होंने भीतर की अग्नि को पहचान लिया और तब वे जानते हैं, कि सभी लकड़ियों में एक ही अग्नि छिपी है। लकड़ी के रूप अलग-अलग, अनेक होंगे। आग का रंग-ढंग एक। आग का स्वभाव गुण एक। जिसने ऊपर-ऊपर से भांडों को पहचाना वह शायद सोचता हो, सब अलग-अलग हैं। जिसने भीतर से पहचाना, ये एक ही मिट्टी के बने हैं। और मिट्टी के भीतर छिपा हुआ जो घड़ा है, वह थोड़ा समझने जैसा है। लाओत्से ने उसकी बहुत चर्चा की है। लाओत्से कहता है, घड़ा क्या है? मिट्टी की दीवाल घड़ा है, या मिट्टी की दीवाल के भीतर छिपा हुआ शून्य घड़ा है; घड़ा क्या है? मिट्टी की दीवाल तो घड़ा नहीं है क्योंकि मिट्टी की दीवाल में तुम क्या भरोगे! वहां तो पहले से ही भरा हुआ है। घड़े की उपादेयता तो उसके भीतर छिपे शून्य में है।

लाओत्से कहता है, मकान पर दरवाजा लगा है। दीवाल मकान है या दीवाल के भीतर जो खाली जगह है, वह मकान है। क्योंकि दीवाल में तो कैसे रहोगे! रहता तो आदमी खाली जगह में है, भीतर की रिक्तता में है। दीवाल तो केवल रिक्तता

के चारों तरफ खड़ी है सुरक्षा की तरह।

रहता तो आदमी आकाश में है; चाहे बाहर रहे, चाहे भीतर रहे। आकाश एक ही है। बाहर भी वही, भीतर भी वही। क्या तुम्हारे घर के आकाश का रूप बदल गया, क्योंकि तुम्हारे घर के ढांचे में समा गया? क्या झोपड़ी का आकाश गरीब होता है और महल का आकाश अमीर? क्या झोपड़ी के आकाश और महल के आकाश में गुणधर्म में कोई भेद होता है? हां, भेद दीवाल का है। यहां घास-फूस की दीवाल हैं, वहां पत्थर की दीवाल है महलों में। दीवाल का फर्क होगा, लेकिन भीतर के शून्य का तो फर्क नहीं। भीतर का शून्य तो एक है।

तुम्हारी नजर अगर रूप पर लगी है तो फर्क दिखाई पड़ेगा। तब तक तुम राजनीति में जीओगे और राजनीति में मरोगे। अगर तुम्हारी नजर भीतर गई तो अरूप दिखाई पड़ेगा।

मैं अमेरिका के एक नीग्रो विचारक की पुस्तक पढ़ रहा था। बड़ा हैरान हुआ मैं। बीसवीं सदी में ऐसी घटनाएं घटती हैं। यह नीग्रो विचारक जेल में बंद पड़े रहना...पड़े रहना। और फिर राजनीतिज्ञ था। कोई संत तो था नहीं कि ध्यान करे। अन्यथा जेल मंदिर हो जाता। राजनीतिज्ञ था। अकेला पड़ा पड़ा बेचैन हो गया। मन में वासनाएं उठतीं। तो किसी दूसरे कैदी ने एक फिल्म अभिनेत्री का चित्र दे दिया। उसने अपनी दीवाल पर चिपका लिया। ऐसा कभी-कभी उसे देखता। सुंदर स्त्री का चित्र। ऐसा सभी कैदी लगाए रखते हैं।

कैदियों को हम छोड़ दे, लोग अपने घरों में लगाए हुए हैं। जिनको हम सज्जन कहें, वे भी फिल्म अभिनेत्री-अभिनेताओं के चित्र घर में लगाए हुए हैंः सज्जन, तो दुर्जन का तो कहना ही क्या!

लेकिन कठिनाई तो आई तब, जब पहरेदार ने, संतरी ने आकर उसका दरवाजा ठोका और कहा कि हटाओ यह चित्र। यह दीवाल पर नहीं लगा सकते। वह हैरान हुआ। उसने कहा, लेकिन क्यों? क्योंकि सभी कैदी लगाए हुए हैं किसी के दीवाल पर से नहीं हटाया जा रहा है। उस सैनिक ने कहा, यह सवाल नहीं है। अगर तुम लगाना चाहो, तो किसी नीग्रो अभिनेत्री का चित्र लगा सकते हो, गोरी औरत का चित्र नहीं लगा सकते।

चित्र गोरी और का अलग, काली औरत का अलग! काले हो कर और गोरी औरत का चित्र लगाए हो? अलग कर उसको। यह गोरे लोगों का अपमान है। तुम्हें अलग लगाना है, तो किसी काली औरत का चित्र लगा लो। चित्र में भी फर्क है। कागज का टुकड़ा। थोड़ी सी स्याही उस पर पड़ी है। कोई गोरी स्त्री बन गई, कोई काली स्त्री बन गई है। चित्र में भी भेद है। मूढ़ता की सीमा नहीं है। मूढ़ता भी बड़ी असीम है। जगत में दो ही चीजें असीम मालूम पड़ती हैं; एक परमात्मा का विस्तार और एक मूढ़ता का विस्तार।

अगर तुम रूप देखोगे तो कोई गोरा है, कोई काला है, कोई सुंदर है, तो कोई कुरूप है, कोई जवान है, कोई बूढ़ा है। लेकिन अगर तुम अरूप देखोगे तो वह तो एक ही है।

जैसे बाढ़ी काष्ठ हि काटे, अगनि न काटे कोई।

जैसे बढ़ाई लकड़ी को तो काट सकता है ऐसे ही मौत तुम्हें भी काट सकती है, तुम्हारे रूप को; तुम्हारे अरूप को नहीं।

सब घटि अंतर तू ही व्यापक, धरे सरूपे सोई।

और सभी घड़ों के भीतर, सभी घंटों के भीतर तू ही व्यापक है। शून्य आकाश की तरह तू ही छाया हुआ है। तूने ही सब रूप घेरे। सब तेरी लीला है। कितने ढंग की लहरें उठती है सागर में। कभी हिसाब लगाया? छोटी, बड़ी, विराट, उत्तुंग, कितने ढंग, कितने रूप! लेकिन एक ही सागर सब रूप धरता है। लहरों को देखकर भ्रांति पैदा होती तुम्हें। एक ही सागर छोटी लहर में, बड़ी लहर में। एक ही परमात्मा गरीब में, अमीर में। एक ही परमात्मा सुंदर में कुरूप में। एक ही परमात्मा छोटे में, बड़े में। एक ही परमात्मा बुद्धिमान में, बुद्धू में। एक ही परमात्मा पुण्यात्मा में, पापी में...धरे स्वरूपे सोई।

माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कू गरवाना।

माया का अर्थ है, असीम को सीमित जानना। सत्य को बंधा हुआ जानना, सत्य को सिद्धांत की तरह जानना। अरूप को रूप की तरह जानना, बाहर की परिधि को भीतर के केंद्र की तरह जानना, माया है। माया का अर्थ है, लहरों को सागर समझ लेना।

माया मोह अर्थ देखि करि, काहे कू गरवाना।

और फिर तुम इतने अकड़े फिर रहे हो, इतने फूले-फूले फिर रहे हो, कुछ हाथ नहीं सिवाय राख के। अकड़ने योग्य कुछ भी नहीं है। पास कुछ भी नहीं। भिखारी हो बिलकुल। लेकिन भिखारी के पात्र में भी पड़े दस-पांच पैसे बजते रहते हैं। उन पर ही वह अकड़ता है। वह भी समझता है, मैं कुछ हूं।

क्या है तुम्हारे पास? अगर तुम रूप से ही बंधकर जीओगे और नाम से ही बंधकर जीओगे, तुम्हारा सब गर्व व्यर्थ है। गर्व-योग्य कुछ भी नहीं।

अब यह बड़े मजे की बात है। तुम्हारे पास गर्व-योग्य कुछ भी नहीं है और तुम भयंकर गर्व से भरे हो। जिनके पास गर्व-योग्य कुछ है, जो परमात्मा को पा लेते हैं, वे बिलकुल ही गर्व-शून्य हो जाते हैं। यह बड़ा विरोधाभास है। जिनके पास कुछ नहीं है, वे अकड़े फिर रहे हैं और जिनके पास सब कुछ है, वे विनम्र हो जाते हैं। मगर इस विरोधाभास का भी विज्ञान है। और वह विज्ञान समझ लेने जैसा है। यह विरोधाभास बड़ा महत्वपूर्ण है। जिनके पास कुछ नहीं, वे क्यों गर्व से अकड़े फिरते हैं! इस गर्व में ही वे अपनी दीनता को छिपाते हैं। इस अकड़ में ही वे अपने को रमाते हैं, भुलाते हैं कि है।

मुल्ला नसरुद्दीन मेरे साथ एक यात्रा पर था। अचानक वह चौंककर खड़ा हो गया और उसने कहा, मालूम होता है मेरा टिकट खो गया। और न केवल टिकट खो गया है मेरा, पैसे जिसमें मैंने रख छोड़े थे, वह मनीबेग भी खो गया। टिकट और पैसे सब साथ ही साथ था। मैंने कहा कि पहले ठीक से तुम अपन कपड़ों में देख लो।

उसने बहुत खीसे बना रखे हैं भिन्न-भिन्न तरह की चीजें रखने के लिए। सब खीसे देख डाले एक दफा दो दफा। लेकिन मैंने गौर किया, कि एक खीसा जो उसके कोट के ऊपर छाती पर है, वह उसको छोड़ रहा है। वह उस तरफ जाता ही नहीं। दूसरे खीसे दो-दो तीन बार! तो मैंने कहा, नसरुद्दीन, तुम इसे क्यों भूल जा रहे हो!

उसने कहा, कि इसकी बात ही मत उठाओ। भूल नहीं रहा हूं। भली तरह याद है। तो मैंने कहा, उसको क्यों नहीं देख लेते! उसने कहा, उसी का तो सहारा है। एक आशा! अगर उसको भी देखा और न पाया... मारे गए! उसको सम्हाले हूं। उसको मैं न देख सकूंगा। उसमें हिम्मत नहीं पड़ती देखने की। उसी में आशा का एक सेतु बचा है। एक खयाल-शायद उसमें हो। अगर पक्का हो गया कि उसमें भी नहीं है तो गए!

यह ठीक कह रहा है। यही मनुष्य का मनोविज्ञान है। तुम्हारे पास है नहीं। गर्व में तुम छिपाये हो। इसे बात को तुम सूत्र समझ लोग, कि आदमी जिस बात का गर्व करता हो, उसी बात में हीन। होगा। वही उसकी हीनता की ग्रंथि है, वही उसकी इन्फीरियारिटी है। अगर एक आदमी अकड़ कर चलता है कि उसके पास बड़ी सुंदर देह है। तो तुम पक्का समझ लेना उसको शक है। और उसको भीतर भय है, कि उसके पास सुंदर देह है नहीं। और इसके पहले कि कोई कहे, वह घोषणा कर देना चाहता है। इसके पहले कि कोई घाव छू दे, वह पहले ही घोषणा कर देना चाहता है, कि मैं एक सुंदर आदमी हूं।

जिसके पास डर है कि बुद्धि नहीं है, अपनी वह बुद्धि को दिखाता फिरता है। कंठस्थ कर लेता है कुछ बातें। उनको दुहरा देता है चार आदमियों के सामने रोब बन जाए, कि कुछ जानता है। उसको जानने में शक है। उसका ज्ञान सुनिश्चित नहीं। उसने जाना नहीं हैं। वह केवल जानने को ढोंग कर रहा है।

कुरूप स्त्रियां ज्यादा गहने पहने हुए मिलेंगी। सुंदर स्त्री को गहने की कोई जरूरत नहीं। कुरूप स्त्री अपनी कुरूपता को ढांक रही है गहनों से। कुरूप स्त्रियां वस्त्रों में ढकी हुई मिलेंगी। हीरे-जवाहरात में ही ढांकर वे अपने को किसी तरह सुंदर होने की भ्रांति दिला पाती हैं। सुंदर स्त्री को कोई जरूरत नहीं है। सुंदर स्त्री को पता ही नहीं होता, कि सौंदर्य की घोषणा करनी है। घोषणा तो गरीब करता है। जिसके पास है, वह तो चुप रहता है। जो जानते हैं, वे जान लेंगे। जो नहीं जानते, वे घोषणा से भी नहीं जानेंगे। घोषणा करनी है? ज्ञानी विनम्र हो जाता है। पंडित गरूर से भर जाता है। धनी सादगी से जीने लगता है। गरीब सादगी से नहीं जी सकता। सिर्फ धनी सादगी से जी सकता है।

मैंने सुना है हेनरी फोर्ड इंग्लैन्ड आया। तो उसके आने के पहले अखबारों में फोटो छपे थे। तो हर कोई उसे जानता था। जगत विख्यात आदमी था। उसने आकर एअरपोर्ट के इनक्वायरी दफ्तर में पूछा, कि यहां सस्ते से सस्ता होटल कौन सा

है? उस आदमी ने गौर से देखा कि आदमी तो वही मालूम पड़ता हैं। सुबह ही तो अखबार में फोटो देखी है, हेनरी फोर्ड की। उसने कहा, माफ करिए। क्या आप हेनरी फोर्ड हैं! सुबह आपका अखबार में फोटो देखा। उसने कहा कि जी! उस आदमी ने कहा, कि हेनरी फोर्ड हो कर आप सस्ता होटल खोज रहे हैं! तो उसने कहा, क्योंकि मैं हेनरी फोर्ड हूं, सस्ते में रहूं कि महंगे में, कोई फर्क नहीं पड़ता। हेनरी फोर्ड हेनरी फोर्ड है। सारी दुनिया जानती है।

उस आदमी ने का कि आपके लड़के आते हैं। वे हमेशा ऊंचा होटल खोजते हैं। उसने कहा, उनको भी भरोसा नहीं है। मैं आश्वस्त हूं। उनको कभी भी भरोसा नहीं। कमाया मैंने है। वे तो मुफ्तखोर हैं। आश्वस्त हो भी कैसे सकते हैं? कमाई बाम की है। कमाई जिसकी है, उसका बल है। तो वे दिखलाना चाहते हैं। बड़े से बड़ा होटल! अमीर आदमी सादगी से रहने लगता है।

मैंने सुना है कि ऐसा हुआ, कि हेनरी फोर्ड और फायर स्टोन कंपनी का प्रथम मालिक फायर स्टोन, दोनों; और एक कवि हेनरी वैलेस तीनों एक पुरानी हेनरी फोर्ड की पुरानी कार में एक यात्रा पर गए थे। बीच में एक गांव पर पेट्रोल भरवाने के लिए रुके। तो हेनरी फोर्ड खुद ही गाड़ी चला रहा था। पीछे फायर स्टोन बैठा था वालेस बैठा था, जो कवि था। तीनों की बड़ी दाढ़ी और तीनों बड़े संभ्रात व्यक्ति।

हेनरी फोर्ड ने ऐसे ही बात की बात में, जो आदमी पेट्रोल भरने आया उससे कहा, कि तुम सोच भी नहीं सकते कि तुम किसकी गाड़ी में पेट्रोल भर रहे हो? मैं हेनरी फोर्ड हूं। हेनरी फोर्ड यानी सारी दुनिया की मोटरों का मालिक।

उस आदमी ने ऐसे ही गौर से देखा और कहा हूं। उसको भरोसा नहीं आया, कि हेनरी फोर्ड यहां क्या मरने आएंगे, इस छोटे गांव में? और अगर हेनरी फोर्ड ही है, तो बताने की क्या जरूरत? वह अपना पेट्रोल भरता रहा। हेनरी हुई, कि उसने कुछ भी नहीं कहा। उसने कहा, शायद तुम्हें पता न हो कि मेरे पीछे जो बैठे हैं वे फायर स्टोन हैं—फायर स्टोन टायरों के मालिक। उस आदमी ने पीछे भी गौर से देखा और जोर से कहा हूं! और जैसे ही हेनरी फोर्ड ने कहा कि तुम्हें शायद कल्पना भी नहीं हो सकती कि तीसरा आदमी कौन है।

इस आदमी ने नीचे पड़ा लोहे का डंडा उठाया और कहा कि तुम मुझसे यह मत कहना, कि ये ही परमात्मा है जिन्होंने दुनिया बनाई। सिर खोल दूंगा। सभी मौजूद हैं! एक परमात्मा ही भर मौजूद नहीं है समझो।

हेनरी फोर्ड करना सादा आदमी था, कि उसके कपड़े देख कर कोई पहचान नहीं सकता था कि हेनरी फोर्ड हैं; न उसकी का देखकर। क्योंकि वह पहला माडल—टी माडल; जो उसने बनाया था, उसीमें यात्रा करता रहा जिंदगी भर। अच्छे माडल बने, अच्छी कारें आई लेकिन हेनरी फोर्ड अपने टी माडल में चलता रहा।

और साधु जैसा गलता था। इसलिए तो भरोसा नहीं आया कि हेनरी फोर्ड इस गांव में क्या करेंगे? और फिर यह वेशभूषा। सांताक्लाज हो सकते हैं लेकिन हेनरी फोर्ड?

सीधा आदमी था। धनी आदमी सादगी से भर जाता है। कुछ आश्चर्य नहीं, कि महावीर, बुद्ध राजपुत्र हो कर भिखारी हो गए। सिर्फ राजपुत्र ही भिखारी हो सकते हैं। भिखारी तो राजपुत्र होना चाहता है। जो तुम नहीं हो, वह तुम होना चाहते हो। जो तुम हो, वह होने की आकांक्षा चली जाती है। आदमी इसीलिए तो इतना गर्वाया फिरता है; कि जो-जो उसमें नहीं है, वह उसी कह खबर देता है। और उसके भीतर घाव छिपे हैं गर्व के।

जिस चीज में आदमी गर्व करे, तुम समझ लेना कि वही उसकी हीनता की ग्रंथि है। उसको तुम जरा छुओ तुम पाओगे, भीतर से घाव निकल आया, मवाद बहने लगी। वह क्रोधित हो जाएगा। पंडित के ज्ञान पर शक मत करना; अन्यथा वह झगड़ने को तैयार हो जाएगा, विवाद पर उतारू हो जाएगा। गरीब आदमी के धनी होने पर संदेह मत उठाना, मान लेना। शिष्टाचार वही है। चुपचाप कह देना, कि निश्चित। आप जैसा धनी और कौन?

जो तुम्हारे पास है, तुम उसकी घोषणा नहीं करते। माया मोहे अर्थ देखि करि काहै कू गरवाना। भयभीत आदमी बहादुरी की बातें करता है। भयभीत आदमी हमेशा दावेदारी करता है कि मैं बड़ा वीर पुरुष हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत भयभीत आदमी है। अंधेरे में जाने में डरता है। अंधेरे में भी जाए तो पत्नी को लालटेन लेकर आगे कर लेता है। घर में उसके चोरी हुई। तो चोर की शिनाख्त करनी थी। तो अदालत में मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम

जाग गए थे जब चोरी हुई? तो उसने कहा कि बिलकुल जाग गया था।
तुम सीढ़ियां से नीचे उतर कर देखने आए थे कि नीचे चोर क्या कर रहा है?
बिलकुल आया था।
तुम उसको चेहरा पहचान सकते हो?
नसरुद्दीन ने कहा, बिलकुल नहीं।
तुमने उसको देखा था?
नसरुद्दीन ने कहा, कि देख नहीं पाया।
तुम जागे तुम नीचे आए; उस वक्त यह आदमी मौजूद था?
था।
तो मजिस्ट्रेट ने कहा, यह तो बड़ा तुम पहले बात रहे हो।
तुम देख क्यों नहीं पाए? लालटेन पास थी। लालटेन भी थी। तो उसने कहा, लालटेन मेरी पत्नी के हाथ में थी। मैं पत्नी के पीछे था इसलिए देख नहीं पाया।
यह डरा हुआ आदमी है। एक होटल में लोग बैठकर गपशप कर रहे थे। और एक सिपाही, जो अभी-अभी युद्ध से लौटा था, वह कह रहा था कि मैंने इस युद्ध में न मालूम कितने अनगिनत आदमी मार डाले। मैंने गाजर मूली की तरह गरदन काटी। नसरुद्दीन ने कहा, ठहरो, ऐसा एक समय मेरे जीवन में भी आया था। आज से बीस साल पहले जब मैं जवान था, मैं भी युद्ध में गया था और एक दिन गिनती मैं भी नहीं बता सकता, न मालूम कितने लोगों के पैर मैंने काट दिए बिलकुल घासपात की तरह।
उस सैनिक को वैसे ही क्रोध आया था। बीच में उसने टोका और अपनी बहादुरी बताने लगा उसने कहा कि पैर? हमने बहुत बहादुरी के किस्से सुने हैं। मगर लोग सिर काटते हैं, पैर नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, सिर तो पहले ही कोई काट चुका था। जो मिला, हमने गाजर मूली की तरह काट दिया।
लेकिन भयभीत आदमी हिम्मत की बातें करता रहता है। यह हिम्मत वह अपने को दिला रहा है। तुम भ्रांति में मत पड़ना। वह तुम्हें कुछ नहीं कर रहा है। वह सिर्फ अपने को छिपा रहा है। वह अपनी नग्नता को ढांक रहा है। वह अपनी नग्नता पर वस्त्र रख रहा है। वह अपने घावों को छिपा रहा है। इसलिए तो जो तुम्हारे पास नहीं उसका तुम गर्व करते हो। और जिसके पास अब है, उसका गर्व खो जाता है। घोषणा क्या करनी है? किसकी घोषणा करनी है? और जो है, वह इतना बड़ा है कि सब घोषणाओं से छोटा पड़ेगा। परमात्मा को पानेवाला गर्व करे, समझ में आता है। लेकिन वैसा आदमी बिलकुल विनम्र हो जाता है। और जिसके पास कुछ नहीं, जो भिखारी हैं उनके गर्व की कोई सीमा नहीं।
निर्भय भया कुछ नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवाना।
और जिसने एक को एक करके जान लिया वह निर्भय हो जाता है। उसे फिर कोई चीज नहीं व्यापती। मौत भी उसके द्वार पर खड़ी रहे, तो अंतर नहीं पड़ता। सारे संसार की संपदा उसे लुभाये तो लोभ पैदा नहीं होता। मौत खड़ी हो, भय पैदा नहीं होता। सारा संसार निंदा करे, अपमान करे तो क्रोध पैदा नहीं होता। और सारा जगत स्तुतियों से भर जाए, आरती उतारे तो भी उसमें गर्व की धारणा पैदा नहीं होती। अहंकार निर्मित नहीं होता।
निर्भय भया कुछ नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवाना।।
और कबीर पागल कहता है कि हम तो एक एक करि जाना। और उसको जान कर हम निर्भय हो गए। सारा भय मिट गया।
भय क्या है? अगर भय के भू में उतरो तो एक ही भय है कि तुम्हें मिटना पड़ेगा। और तो कोई भय नहीं है। दूसरे भय भी इसी भय की छायाएं हैं।
दिवाला निकल जाए, तो भय लगता है दिवाले के साथ तुम मिटोगे। पत्नी छोड़कर चली जाएगी तो भय लाता है क्योंकि पत्नी तुम्हारा आधा जीवन हो गई। तुम टुट जाओगे आधे। लड़का मर जाएगा। तो भय लगता है क्योंकि उसके सहारे तो

भविष्य की महत्वाकांक्षा खड़ी है। लड़का मर जाएगा तो भविष्य मिट जाएगा तुम्हारा। वही तुम्हारा सेतु है। आगे यात्रा तुम उसी के कंधों पर करनेवाले हो। भयभीत हो।

लेकिन सारा भय एक ही भा का विस्तार है। अलग-अलग छबिया हैं लेकिन एक ही का विस्तार है। वह भय है मृत्यु का। तुम मरोगे, मिटोगे। मृत्यु एक मात्र भय है।

जिसने एक को जान लिया उसकी मृत्यु समाप्त हो गई। क्योंकि वह एक कभी मिटता ही नहीं। लहरें मिटती है। सागर कभी मिटता नहीं। नदियां खो जाती हैं, सागर कभी खोता नहीं। वृक्ष आते हैं, पशु-पक्षी पैदा होते हैं, मनुष्य निर्मित होता है; सब होता है। जो आते है। जो आते हैं विदा हो जाते हैं। लेकिन जीवन की धारा अखंड अजस्र बही जाती है।

तुम मिटोगे, जीवन कभी नहीं मिटता। तुम मरोगे, जीवन कभी नहीं मरता। अगर तुमने अपने को इतना ही समझा जितना तुम दिखाई पड़ते हो दर्पण में, तो तुम डरोगे। क्योंकि यह तो मिटेगा, जो दर्पण में दिखता है। यह तो बढ़ाई काट देगा। यह कष्ट है। दर्पण में आग तो दिखाई नहीं पड़ती जो काष्ठ में छिपी है। उससे तो तुम रगड़ोगे ध्यान में, समाधि में, तो प्रकट होगी। और जिस दिन तुम्हें भीतर की लपट दिख जाएगी, तब तुम कहोगे चलाओ कितने ही आरे, लकड़ी कटेगी, मैं नहीं कटूंगा।

इसलिए तो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, ना हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर कटेगा। फिर भी वह नहीं कटता। नैनं छिंदति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न तो मुझे शस्त्र छेद सकते है और न मुझे आग जला सकती है। शरीर ही कटेगा, मैं नहीं कटता हूं। अर्जुन, तू भी नहीं कटता है। शरीर ही कटेगा। ये जो युद्ध के मैदान में आकर खड़े हो गए लोग हैं, इनकी काष्ठ की देह कटेगी; अग्नि नहीं कटती।

जैसे बाढ़ी काष्ठ ही काटे अगनि न काटे कोई।

सब घट अंतर ही व्यापक, धरे सरूपे सोई।

निर्भय भया कुछ नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवाना।

और जब तुम्हें यह दिख गया कि भीतर ज्योति अखंड है, भीतर के प्राण शाश्वत सनातन हैं। दीया मिट जाएगा, ज्योति नहीं मिटेगी। शरीर गिरेगा, अशरीरी सदा रहेगा। तुम्हारी सीमा खो जाएगी, लहर की सीमा खोयेगी ही लेकिन लहर में छिपा सागर सदा है...सदा है...सदा है।

जिसने इसे पहचान लिया, जिसे थोड़ी भी भनक मिल गई इस भीतर की छिपी अग्नि की, उसका भय मिट गया। मौत को आलिंगन कर लेगा खुद ही। वह मौत को बुला लाएगा घर कि आ जाओ। क्योंकि कष्ट ही कटेगा, शरीर ही मिटेगा; मेरा अब कोई मिटना नहीं है। मौत जब उसका आलिंगन करेगी तब भी वह अमृत ही अनुभव करेगा। मौत की घड़ी में भी अमृत की रसधार बरसती रहेगी। उसके अमृत को नहीं छीना जा सकता।

जीवन अजस्र अखंड गंगा है। वह बहती ही रहती है। घाट बदल जाते हैं, तीर्थयात्री बदल जाते हैं, मंदिर बनते हैं तट पर, गिर जाते हैं; खंडहर शेष रह जाते हैं। कितने लोग आए और गए, गंगा बहती रहती है। जीवन, गंगा की धारा है। तुम को अलग करके जानोगे, भयभीत रहोगे। तुम उसे एक के साथ अपने को एक जान लोगे, अभय फलित हो जाएगा।

ब्रह्मानुभव की छाया है अभय। और ब्रह्म के अनुभव के बिना अभय कभी पैदा नहीं होता तुम कितनी ही घोषणा करो अपने निर्भय होने की, तुम डरे हुए हो। कायर की तरह तुम भीतर कंप रहे हो। तुम कितने ही खड्ग, कृपाण हाथ में रखो, तुम्हारे भय ने ही उन्हें संभाला है।

जैसे ही तुम जान लोगे मृत्यु मिटाती नहीं; कुछ मिटाता ही नहीं। जीवन मिट कैसे सकता है? जो है, वह है। वह नहीं कैसे हो सकता है? रूप मिटते हैं। आप रूप आते जाते हैं। नाम बदल जाते हैं। सत्ता बनी रहती है।

हम तो एक एक करि जाना।

निर्भय भया कछु नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवाना।।

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

करो सत्संग गुरुदेव से

1 जून, 1975, प्रातः, ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पूना

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।
गुरुदेव बिन जीव की भला नाहिं।।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासै नहिं।
समझि विचार लै मन माहि।।
रहा बारीक गुरुदेव तें पाइये।
जनम अनेक की अटक खोलै।।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।
करो सतसंग गुरुदेव से चरन गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।
सील औ सांच संतोष आवै दया।
काल की चोट फिर नाहिं लागै।।
काल के जाल में सकल जीव बांधिया।
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा।।
कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।
पारस परस पद होय न्यारा।।

अंधेरा नया नहीं, अति प्राचीन है। और ऐसा भी नहीं है कि प्रकाश तुमने खोजा न हो। वह खोज भी उतनी ही पुरानी है, जितना अंधेरा। क्योंकि यह असंभव ही है कि कोई अंधेरे में हो और प्रकाश की आकांक्षा न जगे। जैसे कोई भूखा हो और भोजन की आकांक्षा पैदा न हो। नहीं, यह संभव नहीं है।

भूख है तो भोजन की आकांक्षा जगेगी।

प्यास है तो सरोवर की तलाश शुरू होगी।

अंधेरा है तो आलोक की यात्रा पर आदमी निकलता है।

अंधेरा भी पुराना है, आलोक की आकांक्षा भी पुरानी है; लेकिन आलोक मिला नहीं। उसकी एक किरण के भी दर्शन नहीं हुए। भटके तुम बहुत, खोजा भी तुमने बहुत, लेकिन परिणाम कुछ हाथ नहीं आया। बीज तो तुमने बोये, लेकिन फसल तुम नहीं काट पाये।

क्योंकि अंधेरे में चलनेवाले आदमी को प्रकाश का कोई भी तो पता नहीं। उसने प्रकाश कभी जाना नहीं। वह उसे खोजेगा जैसे? वह किस दिशा में यात्रा करेगा?

और अगर अपने से ही पूछता रहा मार्ग, तो भटकेगा ही। उसकी भटकन वर्तुलाकार हो जायेगी। चलेगा बहुत, पहुंचेगा कहीं भी नहीं।

किसी से पूछना पड़ेगा। अपने से थोड़ा ऊपर उठना पड़ेगा। किसी से पूछना पड़ेगा, जिसने प्रकाश जाना हो, जिसने जीया हो उस अनुभव को; जिसके जीवन में वह अमृत-धार बही हो।

गुरु का इतना ही अर्थ है। जो तुम खोज रहे हो, वह उसे मिल गया। जिसे तुम चाहते हो, वह उसकी संपदा हो गई। जो

तुम होओगे, वह हो चुका है।

तुममें और गुरु में इतना सा ही फासला है। बीज हो, वह वृक्ष है। तुम संभावना हो, वह समाप्ति है। तुम प्रारंभ हो, वह अंत है। जरा सा ही फासला है। शायद एक कदम का फासला है।

लेकिन अपने से बाहर उठे बिना मार्ग न मिलेगा। तुम ही खोजोगे, तुम्हारी खोज तुम्हारे अंधकार की ही खोज होगी। तुम ही सोचोगे, तुम्हारा सोचना तुम्हारे अनुभव के पार न जायेगा।

और बहुत-बहुत बार एक ही उलझन में उलझे रहने से अनेक परिणाम होते हैं। या तो उलझन दिखाई ही पड़ना बंद हो जाती है, तुम आदी हो जाते हो। बहुत लोग आदी हो गये हैं अंधकार के। उन्होंने खोज ही बंद कर दी।

या तुम्हारे जो ढंग, अनेक बार प्रयोग तुमने किए हैं, वे इतने थिर हो जाते हैं, कि तुम उनका अंधा अनुकरण किए चले जाते हो। यांत्रिक ढंग से दोहराये चले जाते हो। फिर तुम यह भी नहीं सोचते कि कोई निष्कर्ष हाथ आता है या नहीं आता है?

मैंने सुना है, एक सूफी फकीर के आश्रम में प्रविष्ट होने के लिये चार स्त्रियां पहुंचीं। उनकी बड़ी जिद थी, बड़ा आग्रह था। ऐसे सूफी उन्हें टालता रहा, लेकिन एक सीमा आई कि टालना भी असंभव हो गया। सूफी को दया आने लगी, क्योंकि वे द्वार पर बैठी ही रहीं—भूखी और प्यासी; और उनकी प्रार्थना जारी रही कि उन्हें प्रवेश चाहिए।

उनकी खोज प्रामाणिक मालूम हुई तो सूफी झुका। और उसने उन चारों की परीक्षा ली। उसने पहली स्त्री को बुलाया और उससे पूछा, 'एक सवाल है। तुम्हारे जवाब पर निर्भर करेगा कि तुम आश्रम में प्रवेश पा सकोगी या नहीं। इसलिए बहुत सोच कर जवाब देना।'

सवाल सीधा-साफ था। उसने कहा कि एक नाव डूब गई है; उसमें तुम भी थीं और पचास थे। पचास पुरुष और तुम एक निर्जन द्वीप पर लग गये हो। तुम उन पचास पुरुषों से अपनी रक्षा कैसे करोगी? यह समस्या है।

एक स्त्री और पचास पुरुष और निर्जन एकांत! वह स्त्री कुंआरी थी। अभी उसका विवाह भी न हुआ था। अभी उसने पुरुष को जाना भी न था। वह घबड़ा गई। और उसने कहा, कि अगर ऐसा होगा तो मैं किनारे लगूंगी ही नहीं; मैं तैरती रहूंगी। मैं और समुद्र में गहरे चली जाऊंगी। मैं मर जाऊंगी, लेकिन इस द्वीप पर कदम न रखूंगी।

फकीर हंसा, उसने उस स्त्री को विदा दे दी और कहा, कि मर जाना समस्या का समाधान नहीं है। नहीं तो आत्मघात सभी समस्याओं का समाधान हो जाता।

यह पहला वर्ग है, जो आत्मघात को समस्या को समाधान मानता है। तुम चकित होओगे, कि तुममें से अधिक लोग इसी वर्ग में हैं। हर बार जीवन में वही समस्याएं हैं, वही उलझने हैं, और हर बार तुम्हारा जो हल है, वह यह है कि किसी तरह जी लेना और मर जाना। फिर तुम पैदा हो जाते हो।

इस संसार में मरने से तो कुछ हल होता ही नहीं। फिर तुम पैदा हो जाते हो, फिर वही उलझन, फिर वही रूप, फिर वही झंझट, फिर वही संसार; यह पुनरुक्ति चलती रहती है। यह चाक घूमता रहता है। तुम्हारे मरने से कुछ हल न होगा। तुम्हारे बदलने से हल हो सकता है। मरने से हल नहीं हो सकता। मर कर भी तुम, तुम ही रहोगे। फिर तुम लौट आओगे। और अगर एक बार आत्मघात समस्या का समाधान मालूम हो गया तो तुम हर बार यही करोगे। तुम्हारे मन में भी अनेक बार किसी समस्या को जूझते समय जब उलझन दिखाई पड़ती है और रास्ता नहीं मिलता, तो मन होता है, मर ही जाओ। आत्महत्या ही कर लो। यह तुम्हारे जन्मों-जन्मों का निचोड़ है। पर इससे कुछ हल नहीं होता। समस्या अपनी जगह खड़ी रहती है।

दूसरी स्त्री बुलाई गई। वह दूसरी स्त्री विवाहित थी, उसका पति था। यही सवाल उससे भी पूछा गया, कि पचास व्यक्ति हैं, तू है; नाव डूब गई है सागर में, पचास व्यक्ति और तू एक निर्जन द्वीप लग गये हैं। तू अपनी रक्षा कैसे करेगी?

उस स्त्री ने कहा, इसमें बड़ी कठिनाई क्या है? उन पचास में जो सबसे शक्तिशाली पुरुष होगा, मैं उससे विवाह कर लूंगी। वह एक, बाकी उनचास से मेरी रक्षा करेगा।

यह उसका बंधा हुआ अनुभव है। लेकिन उसे पता नहीं, कि परिस्थिति बिलकुल भिन्न है। उसके देश में यह होता रहा

होगा, कि उसने विवाह कर लिया और एक व्यक्ति ने बाकी से रक्षा की। लेकिन एक व्यक्ति बाकी से रक्षा नहीं कर सकता। एक व्यक्ति कितना ही शक्तिशाली हो, पचास से ज्यादा शक्तिशाली थोड़े ही होगा। रक्षा असल में एक पति थोड़े ही करता है स्त्री की! जो पचास की पत्नियां हैं, वह उन पचास को सीमा के बाहर नहीं जाने देतीं।

इसलिए वह जो उसका अनुभव है, इस नई परिस्थिति में काम न आयेगा। वह एक आदमी मार डाला जायेगा, वह कितना ही शक्तिशाली हो। उसका कोई अर्थ नहीं है। पचास के सामने वह कैसे टिकेगा?

पुराना अनुभव हम नई परिस्थिति में भी खींच लेते हैं। हम पुराने अनुभव के आधार पर ही चलते जाते हैं, बिना यह देखे कि परिस्थिति बदल गई है और यह उत्तर कारगर न होगा।

फकीर ने उस स्त्री को विदा कर दिया और उससे कहा, कि तुझे अभी बहुत सीखना पड़ेगा, इसके पहले कि तू स्वीकृत हो सके। तूने एक बात नहीं सीखी है अभी, कि परिस्थिति के बदलने पर समस्या ऊपर से चाहे पुरानी दिखाई पड़े, भीतर से नई हो जाती है। और नया समाधान चाहिये।

लेकिन अनुभव की एक खराबी है, कि जितने अनुभवी लोग होते हैं, उनके पास नया समाधान कभी नहीं होता। छोटे बच्चे से तो नया समाधान मिल भी जाये, बूढ़े से नया समाधान नहीं मिल सकता। उसका अनुभव मजबूत हो चुका होता है। वह अपने अनुभव को ही दोहराये चला जाता है। वह कहता है, मैं जानता हूं, जीया हूं, बहुत अनुभव किये हैं; यह उसका सारा निचोड़ है। उसका मस्तिष्क पुराना, जरा-जीर्ण हो जाता है, बासा हो जाता है।

यह स्त्री बासी हो चुकी थी। इसके उत्तर खंडहर हो चुके थे। इसको यह बोध भी न रहा था, कि हर पल जीवन नई समस्या खड़ी करता है। और हर पल चेतना को नया समाधान खोजना पड़ता है। इसलिए बंधे हुए समाधान, लकीरें, और लकीरों पर चलनेवाले फकीर काम के नहीं हैं। रूढ़िबद्ध उत्तर काम नहीं देंगे। यहां तो सजगता चाहिये। सजगता ही उत्तर हो सकती है। वह स्त्री भी अस्वीकार दी गई।

तुममें से बहुतों के उत्तर बंधे हुए हैं। कोई हिंदू घर में पैदा हुआ है, कोई मुसलमान घर में पैदा हुआ है, कोई जैन घर में पैदा हुआ है। तुम्हारे पास बंधे हुए उत्तर हैं। जैन का एक उत्तर है, मुसलमान का एक उत्तर है, हिंदू का एक। तुम उन बंधे उत्तरों को खोजे जा रहे हो!

महावीर को विदा हुए पच्चीस सौ साल हो गये। पच्चीस सौ सालों में सारी समस्याएं बदल गई, संसार बदल गया, आदमी के होने का ढंग बदल गया, आदमी की चेतना बदल गई। तुम पुराना उत्तर पीटे चले जा रहे हो! तुम यह भूल ही गये हो, कि अब वह समस्या ही नहीं है, जिसके लिये तुम्हारे पास समाधान है। समस्या समाधान में कोई तालमेल नहीं रहा।

वेद बड़े प्राचीन हैं। हिंदू अघाते नहीं यह घोषणा करते, कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है। लेकिन जितनी पुरानी किताब उतनी ही व्यर्थ! पुरानी किताब का मतलब ही यह है, कि अब वह दुनिया ही नहीं रही, जब किताब लिखी गई थी। अब वे प्रश्न नहीं रहे, अब वे उलझनें नहीं रहीं। जिंदगी रोज नये ढांचे लेती है, नये रूप, नये रंग!

गंगा रोज नये किनारे को छूती है, पुराने किनारे छूट गए। और तुम पुराने नक्शे लिये घूम रहे हो। तुम्हारा गंगा से मिलन नहीं होता। क्योंकि गंगा नई होती जा रही है, तुम्हारे पास पुराने नक्शे हैं। गंगा ने जिन जमीनों पर बहना छोड़ दिया, तुम वहां के नक्शे लिये हो। और गंगा जहां बह रही है अभी, इस क्षण, वहां तुम्हारे नक्शे की वजह से तुम नहीं पहुंच पाते। कभी-कभी बिना नक्शे का आदमी भी पहुंच जाये, पर पुराने नक्शों को लेकर चलने वाला कभी नहीं पहुंच सकता। उसके लिये तो भारी अड़चन है।

वह दूसरी स्त्री विदा कर दी गई। तीसरी स्त्री बुलाई गई, वह एक वेश्या थी। और जब फकीर ने उसे समस्या बताई कि समस्या यह है, कि पचास आदमी हैं, तुम हो, नाव डूब गई, एकांत निर्जन द्वीप होगा, तुम अकेली स्त्री होओगी। समस्या कठिन है; तुम क्या करोगी?

वह वेश्या हंसने लगी। उसने कहा, मेरी समझ में आता है कि नाव है, पचास आदमी हैं, एक स्त्री मैं हूं। फिर नाव डूब गई है, पचास आदमी और मैं किनारे लग गये, निर्जन द्वीप है, समझ में आता; लेकिन समस्या क्या है? वेश्या के लिये

समस्या हो ही नहीं सकती! इसमें समस्या कहां है, यह मेरी समझ में नहीं आता। और जब समस्या ही न हो, तो समाधान का सवाल ही नहीं उठता।

बहुत से लोग हैं तीसरे वर्ग में, जो कहते हैं समस्या कहां है? परमात्मा है कहां, जिसको तुम खोज रहे हो? ध्यान होता कहां है, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो? प्रार्थना, पूजा बकवास है। मोक्ष, निर्वाण सपने हैं। समस्या है कहां? तुम क्यों व्यर्थ पालथी मार कर बैठे हो? क्यों लगा रखा है यह सिद्धासन? किसके लिए आंख बंद किये बैठे हो? कोई आनेवाला नहीं है। कहां जा रहे हो मंदिर-मस्जिदों में? वहां कोई भी नहीं है। सब पुरोहितों का जाल है। शास्त्रों को पढ़ रहे हो? सब कुशल लोगों की उक्तियां हैं। चालाकों का खेल है। मत पड़ो उलझन में; समस्या कोई है ही नहीं। इसलिए समाधान की चिंता मत करो। किस गुरु के पास जा रहे हो, किसलिए जा रहे हो? प्रश्न ही नहीं है, पूछना क्या है?

तीसरे वर्ग के लोग भी हैं। वे इतने दिन तक समस्या में रह लिए हैं, कि समस्या दिखाई पड़नी ही बंद हो गई। जब तुम बहुत किसी चीज के आदी हो जाते हो, तो तुम्हारी आंखें धुंधली हो जाती हैं। फिर वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। अगर तुम्हारे घर के सामने ही कोई वृक्ष लगा हो, तो वह तुम्हें दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। तुम उसे रोज देखते हो, वह दिखाई पड़ना बंद हो जाता है।

कभी तुमने सोचा एकांत में बैठ कर, कि तुम्हारी पत्नी का चेहरा कैसा है? आंख बंद करके सोचो, पत्नी का चेहरा अपनी आंख में न ला सकोगे। तुमने उसे इतना देखा है, कि तुमने देखना ही बंद कर दिया। उसका चेहरा भी उभरता नहीं, साफ नहीं होता, रूपरेखा कैसी है! तुमने कई सालों से उसे देखा ही नहीं है। वर्षों पहले तुम उसे घर ले आये थे, तब शायद एकाध बार देखा होगा शुरू में; फिर तुमने देखा ही नहीं है। तुम भूल ही गये हो। सड़क से निकलने वाली नई अपरिचित स्त्री का चेहरा शायद तुम्हें याद भी रह जाये, लेकिन पत्नी का भूल जाता है, पति का भूल जाता है, मित्र का भूल जाता है! जिस चीज के साथ तुम धीरे-धीरे रम जाते हो, उसकी चोट पड़नी बंद हो जाती है। जीवन बहुतों के लिये समस्या ही नहीं है। वे चकित होते हैं दूसरों को जीवन का समाधान खोजते हुए देखकर। वे हैरान होते हैं। उनकी नजरों में ये खोजनेवाले पागल हैं, दीवाने हैं। इनके दिमाग में कुछ खराबी हो गई हे; अन्यथा दुनिया सब ठीक है।

'समस्या कहां है?' वेश्या ने पूछा।

वेश्या भी विदा कर दी गई। क्योंकि जिसके लिए समस्या ही नहीं है, उसे समाधान की यात्रा पर कैसे भेजा जा सकता है?

चौथी स्त्री के सामने भी वही सवाल फकीर ने रखा। उस स्त्री ने सवाल सुना, आंखें बंद कीं, आंखें खोलीं और कहा, 'मुझे कुछ पता नहीं। मैं निपट अज्ञानी हूं।'

वह चौथी स्त्री स्वीकार कर ली गई।

ज्ञान के मार्ग पर वही सकता है, जो अज्ञान को स्वीकार ले।

स्वाभाविक है यह बात। क्योंकि अगर तुम्हारे पास उत्तर है ही, तो फिर किसी उत्तर की कोई जरूरत न रही। उत्तर है ही, इसका अर्थ है तुम स्वयं ही अपने गुरु हो; किसी गुरु का कोई सवाल न रहा। गुरु की खोज वही कर पाता है, जिसके पास कोई उत्तर नहीं है।

समस्या है! विराट समस्या है। समाधान का कोई ओर-छोर नहीं मिलता।

जीवन एक पहेली है। सुलझाने की कोई कुंजी हाथ नहीं। जितना ही जीवन को देखते हैं, उतनी ही उलझन बढ़ती है, रहस्य बढ़ता है। कल तक जिन बातों को जानते थे कि जानते हैं, वे भी अनजानी हो जाती हैं। उनके भी धागे हाथ से छूट जाते हैं।

जैसे-जैसे समझ बढ़ती है, वैसे-वैसे अज्ञान की स्पष्ट प्रतीति होती है। और जिसको अज्ञान का अहसास होता है, वही केवल गुरु के द्वार पर दस्तक देने में समर्थ है। और जो परम-अज्ञान को अनुभव करता है, वही केवल गुरु के चरणों में झुक पाता है।

ज्ञानी तो झुकेगा कैसे? जो जानता ही है, उसे जनाने का उपाय न रहा। जो सोचता है कि मैं जागा ही हुआ हूं, उसको जगाने की क्या संभावना है? और मजा यह है कि तुम अपनी गहरी नींद में भी सपना देख सकते हो, कि तुम जागे हुए हो। जागे

हुए होने के भी सपने आते हैं। जब आदमी नींद में देखता है कि मैं जाग गया, तब ऐसे आदमी को जगाना बड़ा मुश्किल है।

अज्ञान में भी ज्ञान के सपने आते हैं। न मालूम कितने अज्ञानी हैं, जो अपने को पंडित समझते हैं! पंडित है ही उस अज्ञानी का नाम, जिसने अपने को ज्ञानी समझ लिया है। जिसने अपने अज्ञान को ढांक लिया है शास्त्रों से लिए गए उधार शब्दों में।

इसलिए ध्यान रखाना, वास्तविक अज्ञान का बोध तो व्यक्ति को गुरु के चरणों में ले जाता है और ज्ञान का अहंकार शास्त्रों में। तब आदमी शास्त्र खोजता है, गुरु नहीं। क्योंकि शास्त्रों में समर्पण करने की कोई जरूरत नहीं है। शास्त्र तो निर्जीव हैं। उन्हें तुम चाहो जैसा उनका अर्थ कर लो।

गुरु को तो तुम न बदल सकोगे। शास्त्र को तुम बदल सकते हो। गुरु तुम्हें बदलेगा। और गुरु की बदलाहट का पहला सूत्र तो यही है, कि पहले वह तुम्हें जगाएगा और बताएगा, कि तुम गहरी नींद में सोए हुए हो। वह पहले तुम्हें इस होश से भरेगा कि तुम अज्ञानी हो, निपट अज्ञानी हो। वह पहले तुम्हारी आंखें अंधकार के प्रति खोलेगा। क्योंकि अंधकार के बाद ही प्रकाश की संभावना है। गिरा हुआ ही उठ सकता है। और जो सोचता है, मैं उठा ही हुआ हूं, शिखर पर विराजमान हूं, उसको उठाने के सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। कोई ज्ञानी उसको उठाने की झंझट में पड़ता भी नहीं।

अब हम कबीर के इन वचनों को समझने की कोशिश करें। इस कहानी के संदर्भ में बहुत सी बातें साफ हो जायेंगी।

'गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।'

सूत्र है इस सारी वचनावली का—'कल्पना'।

अज्ञानी कल्पना में जीता है। कल्पना का अर्थ है कि झूठा जगत, जो उसने अपने मन से बना लिया है; जो है नहीं, पर जो उसने आरोपित कर लिया है। एक काल्पनिक जगत में जीता है अज्ञानी। जहां मित्र नहीं हैं, वहां सोच लेता है, मित्र हैं। जहां अपना नहीं है कोई, वहां सोच लेता है अपने हैं। जहां जीवन प्रतिपल मृत्यु के कगार पर खड़ा है, वहां सोच लेता है, कि सदा जीना है! जहां धन धोखा है, वहां उसी को सब कुछ मान कर जी लेता है। जहां देह आज है और कल नहीं होगी, उस देह के साथ ऐसा रससिक्त हो जाता है, कि जैसे यही मैं हूं! जहां विचार हवा की तरंगों से ज्यादा नहीं हैं, उन्हीं विचारों में इतना लीन हो जाता है, जैसे कि शाश्वत, नित्य हैं! जहां अहंकार एक झूठी मान्यता है, उस झूठी मान्यता पर सब निछावर कर देता है; मरने-मारने को राजी, उतारू हो जाता है।

कल्पना अज्ञान का सूत्र है, सत्य ज्ञान का।

सत्य का अर्थ है, जो है, उसे वैसा ही देख लेना; और कल्पना का अर्थ है, जो है उसे वैसा देखना, जैसा तुम चाहते हो। सत्य को देखने के लिए बड़ा साहस चाहिए क्योंकि जरूरी नहीं है कि सत्य तुम्हारी आकांक्षा से राजी हो। जरूरी नहीं है, कि सत्य तुम्हारी आकांक्षा के अनुकूल हो। जरूरी नहीं है, कि सत्य तुम्हारे सपनों की पूर्ति करे। उलटा ही ज्यादा जरूरी है, कि सत्य तुम्हारे सपनों को तोड़ दे।

कहावत है कि डूबता तिनके का सहारा ले लेता है। लेकिन उसे तिनके में नाव दिखाई पड़ती है। और अगर तुम उससे कहो, कि उससे कहो, कि यह तिनका है, इसको पकड़कर तुम बचोगे न, तो वह तुम पर नाराज हो जाएगा। क्योंकि तुम जो कह रहे हो, उसका मतलब यह हुआ कि तुम उसकी मौत की घोषणा कर रहे हो। वह तिनके को नाव मानकर आंख बंद किए बह रहा है। सोचता है, बच जाऊंगा। बड़ी आशा जगाए हुए है।

यूनान में एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। तुमने भी सुनी होगी। एक पुरानी कथा है, कि देवता नाराज हो गए एक व्यक्ति पर। उसका नाम था प्रोमोथियस। वे उस पर नाराज हो गए, क्योंकि उसने देवताओं के जगत से अग्नि चुरा ली और आदमियों के जगत में पहुंचा दी।

और अग्नि के साथ आदमी बड़ा शक्तिशाली हो गया। उसका भय कम हो गया, उसका भोजन पकने लगा, उसके घर में गर्मी आ गई, जंगली जानवरों से रक्षा होने लगी। और जितना आदमी मजबूत हो गया, उतनी उसने देवताओं की फिक्र करना बंद कर दी। प्रार्थना, पूजा क्षीण हो गयी।

प्रोमोथियस पहला वैज्ञानिक रहा होगा, जो अग्नि को पैदा किया। देवता बहुत नाराज हो गए, क्योंकि उनकी पूजा-पत्री में बड़ा भग्न हो गया। सारी व्यवस्था टूट गयी। आदमी डरे न, कंपे न। उसके पास अपनी आग हो गई बचाने के लिए।

तुम सोच भी नहीं सकते कि आदमी आग के बिना कैसा रहा होगा। बड़ा भयभीत! रात सो नहीं सकता था क्योंकि जंगली जानवर! रात भयंकर अंधकार था। सिवाय भय के और कुछ भी नहीं। रात में ही बच्चे जंगली जानवर ले जाते, आदमियों को ले जाते, पत्नियों को ले जाते; सुबह पता चलता। रात बड़ी भयंकर थी।

उसका भय अभी भी आदमी के मन में मौजूद रह गया है। करोड़ों साल बीत गए, लेकिन भय अभी रात में सरकने लगता है फिर से। तुम्हारे अचेतन मन में तुम अब भी वही आदमी हो, जिसके पास अग्नि न थी।

फिर अग्नि ने बड़ी सुरक्षा दी। अग्नि सबसे बड़ी खोज है। अभी तक भी अग्नि से बड़ी खोज नहीं हो पाई। एटम बम भी उतनी बड़ी खोज नहीं है।

प्रोमोथियस पर देवता नाराज हुए। उन्होंने उसे स्वर्ग से निष्कासित कर दिया, जमीन पर भेज दिया। फिर उसे कष्ट देने के लिए, उसे पीड़ा में डालने के लिए उन्होंने एक स्त्री रची। पिंडोरा उस स्त्री का नाम है। उसको उन्होंने बड़ा सुंदर रचा। सौंदर्य के देवता ने उसको सौंदर्य दिया, बुद्धि के देवता ने उसे प्रतिभा दी, नृत्य के देवता ने उसको पदों में नृत्य भरा, संगीत के देवता ने उसके कंठ को संगीत से सजाया; ऐसे सारे देवताओं ने मिलकर पिंडोरा बनाई। पिंडोरा जैसी कोई सुंदर स्त्री नहीं हो सकती; क्योंकि सारे देवताओं की सारी सृजनशक्ति उस पर लग गई।

वह प्रोमोथियस को भ्रष्ट करने के लिए उन्होंने पृथ्वी पर भेजी। और उसके साथ चलते वक्त उन्होंने एक पेटी दे दी—एक संदूकची, जो बड़ी प्रसिद्ध हैः 'पिंडोरा की मंजूषा' और कहा, कि इसे खोलना मत। कभी भूलकर मत खोलना।

देवता चाहते थे, कि वह खोले। इसलिए उन्होंने कहा कि इसको खोलना मत, भूलकर मत खोलना। इसको खोलना ही नहीं है, चाहे कुछ भी हो जाये! स्वभावतः देवता कुशल हैं, चालाक हैं, जिस चीज को खुलवाना हो, उसके लिए यह जिज्ञासा भर देनी, कि खोलना मत, उचित है। अगर वे कुछ न कहते तो शायद पिंडोरा भूल भी जाती उस संदूकची को। लेकिन उस दिन से उसको दिन रात एक ही लगा रहता मन में, कि उस संदूक में क्या है?

बड़ी सुंदर संदूक थी, हीरे-ज़वाहरातों से जड़ी थी। आखिर एक दिन उससे न रहा गया। आधी रात में उठकर उसने संदूक खोलकर देख ली।

संदूक खोलते ही वह घबड़ा गई। उसमें से भयंकर मनुष्य जाति के दुश्मन निकले—क्रोध, लोभ, मोह, काम, भय, ईर्ष्या, जलन! एकदम पिंडोरा की संदूकची खुल गई और उसमें से निकले ये सारे भूत-प्रेत और सारी पृथ्वी पर फैल गए। घबड़ाहट में उसने संदूकची बंद कर दी, लेकिन तब तक देर हो चूकी थी। सब निकल चुके थे, संदूकची में जो-जो थे, सिर्फ एक तत्व रह गया; उस तत्व का नाम हैः आशा। बाकी सब निकल गए, संदूक बंद हो गई। सिर्फ आशा, होप भीतर रह गई।

कहानी का अर्थ है, कि लोभ, काम, क्रोध सब तुम्हें बाहर से सताते हैं। आशा तुम्हें भीतर से सताती है।

आशा यानी कल्पना! सपना! इंद्रधनुष! जैसा है नहीं, उसकी कामना। उसका भरोसा, जैसा कभी नहीं होगा। तुम भी अपने यथार्थ क्षणों में जानते हो, ऐसा कभी नहीं होगा, लेकिन सपना तुम्हें पकड़ता है तो तुम भी मानने लगते हो, कि ऐसा ही होगा। वह पिंडोरा की संदूकची में आशा भीतर बंद है—कल्पना, आशा का जाल।

कबीर कहते हैं,

'गुरुदेव बिना जीव की कल्पना ना मिटै।

बिना उस आदमी से मिले, जिसकी कल्पना मिट गई हो, और जिसने सत्य को जाना हो, जिसने सत्य को रंगने-पोतने की व्यवस्था छोड़ दी हो, जिसने सत्य को वैसा ही जाना हो जैसा है, जिसने यथार्थ में अपनी आंखों से कुछ भी उड़ेलना बंद कर दिया हो, जिसने अपने मन के जाल को बाहर फैलाने से रोक लिया हो, जिसने मन ही तोड़ दिया हो, जो अ-मन हो चुका हो। जब तक वह तुम्हें न मिले जाये, कौन तुम्हें तुम्हारी कल्पना से जगाए?

कल्पनाः माया। कल्पना—नींद में आंख बंद आदमी का सपना। कितना ही सुंदर हो, लेकिन झूठा।

और हमारी तकलीफ यह है, कि हम झूठ को भी मान लेते हैं, सुंदर होना चाहिए। और सत्य कठोर है। ऐसा नहीं, कि वह सुंदर नहीं है, लेकिन उसके सौंदर्य में एक कठोरता है—होगी ही। वह तुम्हें मालूम पड़ती है कठोरता, क्योंकि तुम सपनों के सौंदर्य में धीरे-धीरे इतने आदी हो गए हो, कि यथार्थ की सख्ती और यथार्थ का यथार्थ तुम्हारे सपनों को तोड़ता मालूम पड़ता है। तुम सपनों के साथ-साथ धीरे-धीरे बहुत कमजोर हो गए हो। इसलिए सत्य को झेल नहीं पाते।

तुम सत्य को भी झेलना चाहो, तो उसके ऊपर झूठ की थोड़ी सी पर्त चाहिए। तुम सत्य को सीधा-सीधा साक्षात नहीं कर पाते। तुम घबड़ाते हो, कि कहीं तुम मिट न जाओ, कहीं तुम टूट न जाओ। तुम कमजोर हो गए हो कल्पना के साथ। कल्पना ने तुम्हें शक्ति तो नहीं दी, तुम्हारी सारी शक्ति छीन ली है।

गुरु का अर्थ है, जो तुम्हें धीरे-धीरे, कदम-कदम, हाथ पकड़ कर ले चले सत्य की तरफ। जो धीरे-धीरे तुम्हारी कल्पना से तुम्हें छुड़ाए।

एक बहुत बड़ा झेन साधक हुआ, लिंची। वह अपने गुरु के पास था। और जब आया था तो गुरु ने उससे निर्वाण की और मोक्ष की और बुद्धत्व की बड़ी मीठी बातें की थीं। और एक सपना पैदा कर दिया था। और लिंची कठोर साधना में लग गया—बुद्धत्व पाना है।

कुछ वर्षों की निरंतर साधना, गुरु के सहवास, सत्संग का परिणाम यह हुआ ध्यान लगने लगा। बुद्धत्व करीब मालूम होने लगा। एक दिन ऐसी घड़ी आ गई, कि लिंची को लगा, कि बस अब एक छलांग और-और मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाऊंगा।

वह गया अपने गुरु के पास, चरण छूकर उसने गुरु से कहा, 'बस एक छलांग और! जरा-सा धक्का चाहिए, मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाऊंगा।

गुरु ने कहा, 'कैसा बुद्धत्व! कैसा मोक्ष! कैसा निर्वाण! सब बकवास है।

लिंची तो घबड़ा गया। उसने कहा, 'क्या आप कहते हैं? मैं तो इसी आशा में सारी साधना में लगा हूं।

उसके गुरु ने कहां, 'बच्चों को हम मिठाई देते हैं, ताकि वे स्कूल चले जायें। कोई मिठाई देने के लिए मिठाई नहीं देते, स्कूल भेजने के लिए मिठाई देते हैं। फिर जैसे-जैसे बच्चे को स्कूल में रस आने लगेगा, मिठाई कम होने लगती है। फिर एक दिन मिठाई बंद कर देनी होती है। बुद्धत्व? जब तक पाने की कोई भी आकांक्षा है, तब तक कल्पना काम कर रही है। आज उसे भी छोड़। अब कुछ पाना नहीं है। अब जो है, उसे जानना है।'

लिंची ने लिखा है, मेरा रोआं-रोआं कंप गया। संसार छोड़ना था, बुद्धत्व को छोड़ना! और उसके गुरु ने जो वचन कहा, वह चीन और जापान में बड़ी महत्वपूर्ण उक्ति हो गया है। और झेन साधक उस पर ध्यान करते हैं।

लिंची के गुरु ने कहाः इफ यू मीट द बुद्धा ऑन द वे, इमिजियेटली किल हिम।

अगर बुद्ध तुम्हें कहीं मार्ग पर मिल जायें तो तत्क्षण उनको कत्ल कर देना। एक क्षण रुकना मत।

क्योंकि कहीं ऐसा न हो, कि बुद्धत्व का मोह तुम्हें पकड़ ले। फिर संसार खड़ा हो जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कि तुम सपना धन के संबंध में देखते हो या धर्म के संबंध में। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम सपना इस जगत में एक सुंदर मकान बनाने का देखते हो, या उस जगत में, स्वर्ग में एक सुंदर मकान पाने का; कोई फर्क नहीं पड़ता। सपना, सपना है।

और सब सपने छूट जाने चाहिए। जब सब सपने गिर जाते हैं, जैसे सांप सरक जाता है अपनी पुरानी केंचुली के बाहर और पीछे लौटकर भी नहीं देखता, ऐसे जिस दिन तुम अपने कल्पना के बाहर निकल आते हो उसी दिन सत्य का साक्षात है। उसी दिन मुक्ति है।

वह मुक्ति तुम्हारी आकांक्षाओं की मुक्ति नहीं है। वह मुक्ति तुम्हारे सपनों में सोची गई मुक्ति भी नहीं है। वह निर्माण तुमने जैसा सोचा था, वैसा बिलकुल नहीं है; वह बिलकुल अन्यथा है। लेकिन उसके संबंध में आज तुम कुछ सोच भी नहीं सकते। उसे तो तुम जानोगे, तभी जानोगे। उसका तो तुम अनुभव करोगे, तभी करोगे। वह रस ही ऐसा है। उसका तुम स्वाद लोगे, तभी लोगे।

कबीर कहते हैं,

'गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।'

अगर तुम अकेले अपने ही सहारे चलोगे तो ज्यादा से ज्यादा यह कर सकते हो कि संसार की कल्पनाएं छोड़ कर तुम मोक्ष की कल्पनाएं करने लगोगे। ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है; और यह कुछ भी नहीं है। इसका कोई भी मूल्य नहीं है। तुम यहां पत्नी को छोड़ोगे तो तुम स्वर्ग में किसी अप्सरा को पाने की कल्पना करने लगोगे। तुम यहां शराब छोड़ोगे तो तुम्हारे स्वर्ग में शराब के चश्मे बहने लगेंगे। तुम यहां तप करोगे, घर की छाया छोड़ोगे, तो तुम्हारा स्वर्ग वातानुकूलित, एअर-कण्डीशण्ड होगा।

होना ही चाहिए। सभी तपस्वी उसी स्वर्ग की कामना कर रहे हैं, जो बिलकुल वातानुकूलित है, शीतल है। शास्त्रों को एअर-कण्डीशनिंग शब्द का पता नहीं था, इसलिए वे कहते हैं, शीतल है, मंद-मंद बयार बहती है, सुबह जैसी शीतलता दिन भर बनी रहती है। उस वक्त तक वातानुकूलित शब्द उन्हें अंदाज में नहीं था, अब है। अब उसे सुधार कर देना चाहिए।

लेकिन तुम ध्यान रखना, ये सारी कल्पनाएं अलग-अलग जातियों की स्वभावतः अलग-अलग होंगी, क्योंकि अलग-अलग जातियों का अनुभव अलग-अलग है।

तिब्बत के शास्त्रों में नहीं लिखा है कि स्वर्ग ठंडा और शीतल है। तिब्बती ठंड और शीत से इस बुरी तरह परेशान हैं। उनका नर्क ठंडा है। वहां बर्फ जमी रहती है, वह कभी नहीं पिघलती। उनके स्वर्ग में तो सूरज सदा निकला रहता है—ऊष्ण, तप्त! कभी बादल नहीं घिरते और कभी बर्फ नहीं जमती।

हिंदू और तिब्बती बहुत दूर नहीं हैं। लेकिन हिंदुओं के स्वर्ग में शीतल मंद बयार बहती है! तिब्बतियों के स्वर्ग में सूरज सदा निकलता रहता है और उत्तप्त बना रहता है! हिंदुओं के नर्क में लपटें जलती हैं और लोग कड़ाहों में डाले जाते हैं—उबलते हुए तेल में। तिब्बतियों के नर्क में लोग ठंडे बर्फ में फेंक दिए जाते हैं, जो वहीं सड़ते हैं।

अब यह जरा सोचने जैसा है, कि क्या सब जातियों के लिए अलग-अलग स्वर्ग और नर्क हैं? क्या तिब्बतियों के लिए कोई विशेष इंतजाम है, हिंदुओं के लिए कोई विशेष?

नहीं! लेकिन हर जाति की कल्पना अपने अनुभव से निकलती है। जैसी जाति होगी, उसकी कल्पना उसके अनुभव से निकलेगी। मुसलमानों का स्वर्ग और ढंग का होगा, हिंदुओं का स्वर्ग और ढंग का, ईसाइयों का स्वर्ग और ढंग का। नर्क भी भिन्न भिन्न होंगे।

क्योंकि हमारी कल्पनाएं हमारे जीवन के अनुभव के विपरीत होती हैं। जो-जो जीवन में हम चूक गए हैं, वह हम स्वर्ग में रख लेते हैं। जो-जो मिल गया है, उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं।

ध्यान रखना, बिना गुरु के तुम्हारी कल्पना न मिटेगी। कल्पना का रूप भर बदल सकता है, ढंग भर बदल सकता है, कल्पना जीवित रहेगी।

कल्पना तो उसी के सहवास में मिट सकती है, जिसके भीतर सत्य का अभ्युदय हुआ हो।

'गुरुदेव बिन जीव का भला नाहिं।।

गुरुदेव बिना जीव का तिमिर नासै नाहिं।'

वह अंधकार नहीं मिटता।

'समझि विचार लै मन माहि।।'

कबीर कहते हैं, ठीक से इस बात को विचार कर ले। इसके पहले, कि तू उस अनंत की यात्रा पर निकले, इसका ठीक से विचार कर ले; कि अनंत की यात्रा पर अगर तू अकेला ही गया तो वह यात्रा तेरे मन से बाहर की न होगी। कोई चाहिए, जो मन के बाहर गया हो, जो तेरा हाथ पकड़ ले और यात्रा पर ले जाए।

जैसे छोटे बच्चे को कोई प्रौढ़ चाहिए, जो हाथ का सहारा दे दे, भरोसा दे दे, श्रद्धा को जन्मा दे और बच्चा उठे और चलने लगे। कोई हाथ चाहिए, कोई सहारा चाहिए।

'समझि विचार लै मन माहि।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।'
बहुत बारीक है राह। बड़ी सूक्ष्म और नाजुक। जीसस का वचन हैः 'स्ट्रेट इज द वे, बट नैरो।' सीधा है मार्ग, पर बड़ा संकीर्ण।
राह बारीक! राह इतनी बारीक है, कि तुम अपने विचार से उसे देख ही न पाओगे, क्योंकि तुम्हारा विचार इतना बारीक नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लो।
तुम्हारा विचार बहुत स्थूल है। विचार मात्र स्थूल होते हैं। सिर्फ ध्यान बारीक होता है। तुम कभी सोचो, तुम कितने ही सूक्ष्म विचार करो, विचार में सूक्ष्मता होती ही नहीं। विचार तो मोटी चीज है, स्थल चीज है। कितना ही बारीक विचार तुम करो, विचार का स्वभाव ही बारीक होना नहीं है।
जब सब विचार खो जाते हैं, सिर्फ निर्विचार दशा रह जाती है, तभी तुम्हारे जीवन में पहली दफा बारीक का बोध होता है।
इसे तुम ऐसा समझो कि बाजार में तुम बैठे हो, बड़ा शोरगुल है बाजार का, कहीं कोई एक पक्षी गीत गा रहा है, क्या तुम्हें सुनाई पड़ेगा? असंभव! बाजार में तो बाजार का शोरगुल, उपद्रव इतना है कि किसी कोयल की धीमी सी आवाज कहां सुनाई पड़ेगी? उसका 'कुहू, कुहू,' खो जाएगा उपद्रव में।
फिर तुम एकांत में बैठे हो एक पहाड़ के, बाजार का शोरगुल नहीं है, 'कुहू, कुहू' सुनाई पड़ती है। लेकिन वहां भी तुम एक बात ध्यान करना, अगर तुम्हारे भीतर बहुत विचार चल रहे हों, तो उतनी देर को सुनाई पड़ना बंद हो जाएगा। कभी-कभी विचार का क्षण न होगा, तो आवाज सुनाई पड़ेगी। कभी-कभी विचार भीतर शुरू हो जाएंगे, आवाज सुनाई पड़नी बंद हो जायेगी। क्योंकि फिर भीतर बाजार खड़ा हो गया। विचार यानी भीतर का बाजार।
फिर तुम हिमालय पर बैठे रहो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर भीतर विचार का कोलाहल है, तो वह जीवन का सूक्ष्म संगीत बज रहा है, वह तुम्हें सुनाई न पड़ेगा। वह बहुत बारीक है। वह कोयल की आवाज से भी बारीक है। उससे बारीक कुछ भी नहीं, क्योंकि वह अनाहत नाद है। उसी को हम ओंकार कहते हैं। 'ओम् तत् सत्' उसी का नाम है।
लेकिन वह इतना बारीक है, इतना बारीक है, कि तुम्हारे विचार जब तक बिलकुल ही न खो जायें, जब तक शून्य न हो जायें भीतर, तब तक तुम्हें उसकी प्रतीति और अनुभूति न होगी।
कबीर कहते हैं,
'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।'
और वह बारीक इतनी है, कि तुम्हें उसका कोई अनुभव नहीं। तुम उस राह पर जाओगे कैसे?
बहुत लोग परमात्मा के संबंध में भी सोचते रहते हैं। अब परमात्मा का सोचने से कुछ लेना-देना नहीं। जब तक सोच है, तब तक परमात्मा नहीं। वे बैठकर सोचते रहते हैं!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, वर्षों से हम ध्यान कर रहे हैं। मैं पूछता हूं, ध्यान में तुम करते क्या हो? वे कहते हैं, बैठकर परमात्मा का चिंतन-मनन करते हैं। अब परमात्मा का चिंतन-मनन क्या होगा?
यह तो ऐसे ही हुआ कि कोयल तो गीत गा रही है आम के वृक्ष में छिपी, और तुम उसी के नीचे बैठकर कोयल के गीत के संबंध में सोच रहे हो। और तुमने कभी कोयल का गीत सुना नहीं, तुम सोचोगे कैसे? जो जाना ही नहीं है, उसका विचार कैसे करोगे? और जिसने जान लिया है, वह कहीं विचार करता है? जब कोयल ही गा रही हो, तो तुम्हारे विचार करने की, उधार होने की क्या जरूरत है? सीधा कोयल का गीत बरस रहा है, तुम खुले हो जाओ, बरसने दो इस गीत को। परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है, तुम सोच क्या रहे हो? किसके संबंध में सोच रहे हो? तुम सोच रहे हो, वह परमात्मा नहीं हो सकता। वह तुमने जो, परमात्मा के संबंध में जो तुमने शास्त्रों में पढ़ा है, तुम वही सोच रहे हो। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है।
परमात्मा शब्द ही नहीं है, वह एक अनुभव है। तुम जब असोच में होते हो, सब सोच बंद हो गया होता, तब तत्क्षण

उसके द्वार खुल जाते हैं।

'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।'

और क्या मिल सकता है गुरु के पास? विचार नहीं, सिर्फ ध्यान। और ध्यान का अर्थ है, एक ऐसी चित्त की दशा, जब तुम जागे हुए पूरे हो और विचार के बादल तुम्हारे भीतर के आकाश में बिलकुल नहीं। सूरज पूरी तरह निकला है होश का, और बदलियां बिलकुल छट गई हैं—नीला आकाश! तुम्हारे होश को छोड़ने के लिए, रोकने के लिए कोई भी अवरोध नहीं है। अबाध बहती है होश की धारा। आकाश पूरा खाली है।

इस सोच-शून्य अवस्था का नाम ही वह बारीक दशा है, जिसे ध्यान कहो। प्रारंभ जब होता है तो ध्यान, जब यह अवस्था पूर्ण हो जाती है तो समाधि।

'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।'

कौन तुम्हारे विचार को धीरे-धीरे तुमसे छीनेगा?

गुरु का अर्थ समझ लेना। हमारे पास दो शब्द हैं, दुनिया के किसी भाषा में वैसा नहीं है। क्योंकि दुनिया की किसी जाति का वैसा गहन अनुभव नहीं है। हमारे पास एक शब्द तो है, शिक्षक; और एक शब्द है, गुरु।

शिक्षक का अर्थ है : जो तुम्हें सिखाए, शिक्षा दे। गुरु का अर्थ है? जो तुमसे छीन ले, तुमने जो सीखा है। जो तुम्हें मिटाए, जो तुम्हें खाली करे। तो गुरु सिखाता नहीं, अनसिखाता है। गुरु तुम्हें कुछ देता नहीं, लेता है। गुरु तुम्हें खाली करता है, शिक्षक तुम्हें भरता है।

धर्म के जगत में भी तुम शिक्षकों से बचना, क्योंकि वे तुम्हें भरेंगे। वे गुरु नहीं हैं। और बड़ी कठिनाई हो जाती है, क्योंकि तुम ही अपने को भरने को आतुर होते हो, इसलिए तुम अक्सर उनके चरणों में चले जाते हो जो तुम्हें भरें। वे अपना ज्ञान तुममें उंडेल देंगे। तुम जानकर हो जाओगे। शायद धीरे-धीरे तुम भी पंडित हो जाओगे। शायद धीरे-धीरे ऐसा मौका आ जाएगा कि तुम भी शिक्षक हो जाओगे और दूसरों को सिखाने लगोगे।

लेकिन गुरु बड़ी अनूठी घटना है। गुरु का मतलब है, जो तुम्हें खाली करे, जो तुम्हें मिटाए, जो तुम्हारी स्लेट पर लिखे हुए को पोंछ दे, जो तुम्हें फिर से कोरा कागज करे।

ऐसी महाराष्ट्र में कथा है। निवृत्तिनाथ एक बड़े अदभुत फकीर हुए। उन्होंने एक पत्र लिखा एक दूसरे संत को। खाली कागज भेज दिया। गुरु लिखे भी तो क्या लिखे? खालीपन ही लिख सकता है। संत को खाली कागज मिला। कहते हैं, संत ने खाली कागज पढ़ा; गौर से पढ़ा। लिखा हुआ हो तो गौर की बहुत जरूरत भी नहीं, लिखोगे क्या? लिखे हुए में पढ़ने-योग्य भी क्या होता है? लेकिन अनलिखा था। बड़ी बारीक बात लिखी थी। शब्द में नहीं आती, वह लिखा था। 'अक्षर' ही लिखा था—जो कभी क्षय नहीं होता। अक्षर है। हाथ से बनाए हुए अक्षर बनते हैं, मिटते हैं, इनको क्या लिखाना! असली अक्षर लिखा था, शाश्वत लिखा;इसीलिए तो दिखाई नहीं पड़ता था। जैसे परमात्मा छिपा है, ऐसा पत्र भी छिपा था—कोरा कागज था।

गौर से पढ़ा, बार-बार पढ़ा, क्योंकि कुछ चूक न जाए, कुछ छूट न जाए। पास बैठे लोग जरा चिंतित हुए। कि वह एक आदमी तो पागल मालूम होता ही है, जिसने लिखा है, कोरा कागज भेजा है; और यह आदमी उससे भी ज्यादा पागल मालूम पड़ता है, जो पढ़ रहा है। और एक बार नहीं पढ़ रहा है, बार-बार पढ़ रहा है। और सब तरफ से पढ़ रहा है। क्योंकि लिखे कागज को तुम एक ही तरफ से पढ़ सकते हो, कोरे कागज को तुम सब तरफ से पढ़ सकते हो।

कई तरह से पढ़ा, आगे से पढ़ा, पीछे से पढ़ा, सीधा करके पढ़ा, उलटा करके पढ़ा। मग्न हो गया पढ़कर। फिर उसकी बहन बैठी थी, वह भी एक संतत्व को उपलब्ध महिमा थी। फिर उसने अपनी बहन को कहा, कि तुम पढ़ो। उसकी बहन ने भी पढ़ा। और बहन ने कहा, कि निवृत्तिनाथ पा लिया। मिल गया उसे। क्योंकि कोरापन तो वही दे सकता है, जिसको मिल गया हो।

गुरु तुम्हें कोरापन देगा। इसलिए बहुत बार तुम गुरु के पास जाने से डरोगे, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो भरा है, उसे तुम संपत्ति समझ रहे हो। वह कूड़ा करकट है। वह कचराघर में डाल देने जैसा है—तुम्हारे सब विचार। लेकिन उनको तुमने

बड़ी संपत्ति की तरह संजोया है! तुम कहते हो, मैं हिंदू, मैं मुसलमान, मैं जैन! मैं शास्त्र का ज्ञाता! गीता मुझे कंठस्थ! कि मैं चतुर्वेदी—चारों वेद का जानने वाला; कि त्रिवेदी—तीन वेद का जाननेवाला! जानकारी तुम्हारी संपत्ति मालूम होती है। गुरु के पास जाते तुम डरोगे। पंडित कंपता है गुरु के पास जाते। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, कभी-कभी पापी भी पहुंच जाते हैं गुरु के पास, पंडित नहीं पहुंच पाता है। पापी को बहुत डर भी नहीं है। गुरु छीन ही लेगा, पाप ही तो पास में है, कुछ और है भी नहीं! पंडित बहुत डरता है, उसके पास संपत्ति है। कहीं छीन न ली जाए!

और ध्यान रखना, जब तक तुम्हारा भरा हुआ मन खाली न किया जाए, जब तक तुम्हारा पात्र खाली करके मांजा न जाए, तब तक उसमें परमात्मा के अमृत को तुम न ले पाओगे, न झेल पाओगे। तुम्हारा पात्र खाली किया जाना जरूरी है, आग से निकाला जाना जरूरी है, ताकि शुद्ध हो जाए।

'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये'—

शिक्षक नहीं दे सकेंगे वह बारीक राह। वे तुम्हें ज्ञान दे सकेंगे, ध्यान न दे सकेंगे।

गुरु वही है, जो ध्यान दे।

ज्ञान तो विश्वविद्यालयों में मिल जाता है। उसके लिए आश्रमों की जरूरत नहीं। उनके लिए गुरुकुलों की जरूरत नहीं है। ज्ञान तो सस्ता है; मिल जाता है कहीं भी। बाजार-बाजार में उपलब्ध है।

ध्यान कठिन है। और कठिनाई यह है, कि ज्ञान तो तुम जैसे हो, वैसे को ही मिल जाता है। ध्यान तो तभी मिलता है, जब तुम मिटने को परिपूर्ण रूप से तैयार होते हो। ध्यान पहले तुम्हें मिटाता है, मरता है। इसलिए पुराने शास्त्रों में एक अदभुत वचन है। वह वचन है: 'आचार्यो मृत्युः', आचार्य मृत्यु है। गुरु मृत्यु है। उसके पास जाकर तुम मरोगे। मरना ही पड़ेगा। उसके पास जाकर मिटोगे, मिटाना ही पड़ेगा। क्योंकि मिट कर ही तुम हो सकोगे। तुम्हारा असली स्वरूप तभी प्रगट होगा, जब तुम्हारा कल्पना का स्वरूप गिर जाए और मिट जाए।

'जनम अनेक की अटक खोलै।'

'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।

जनम अनेक की अटक खोलै।।'

कितने जन्मों से तुम अटके हो!

तुम्हारी 'अटक'—यह शब्द बड़ा प्यारा है। यह अटक ऐसी है, जैसे कभी-कभी ग्रामोफोन में सुई अटक जाती है। फिर वह वही का वही दुहराती रहती है, जैसे जप कर रही हो! जहां अटक गई, उसी का जप जारी रहता है। अटक शब्द बड़ा प्यारा है।

तुम एक ही जगह अटके हो। बार-बार वहीं अटक जाते हो, वहीं आ जाते हो। फिर मर जाते हो, फिर पैदा हो जाते हो, फिर वहीं आ जाते हो। सुई अटकी है ग्रामोफोन की। और इतनी बार अटक चुकी है, कि अब वहां गड्ढा हो गया है। अब वहां से आगे सुई जा नहीं सकती, अब तक कि कोई उठाकर ही सुई को आगे न रख दे।

'जनम अनेक की अटक खोलै।'

कोई चाहिए जो तुम्हें उठाकर तुम्हारी अटक के बाहर ले जाए। तुम अपने से न जा सकोगे। थोड़ा सोचो, कि ग्रामोफोन की सुई अपने से कैसे अटक के बाहर जा सकेगी? हां, कोई भूकंप हो जाए, और उपद्रव हो जाए और सब हिल-डुल जाए और शायद सुई झटक जाए। तो कभी-कभी ऐसा भी हुआ है, करोड़ में एकाध आदमी संयोगवशात अटक के बाहर हो गया है। लेकिन संयोग को नियम नहीं बनाया जा सकता। और संयोग अपवाद है। उसके आधार पर चलकर कोई जीवन में क्रांति नहीं ला सकता। जीवन में क्रांति तो नियम से होगी।

'कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।

जीव और सीव तब एक तोलै।।'

जब पूर्ण गुरु मिलता है तो जीव में और शिव में, आत्मा में और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता। अब यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है।

'कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।'

यह गुरु की लक्षणा है, कि गुरु पूर्ण है या नहीं। पूर्ण गुरु की यह लक्षणा है, यह क्राइटेरियन है, यह निकष, कसौटी है कि वह तुममें और परमात्मा में जरा फर्क न पाएगा। वह तुम्हें और परमात्मा को एक सा ही तौलेगा।

शिक्षक तुम्हारी निंदा करेगा और परमात्मा की प्रशंसा। वह तुम्हारे और परमात्मा के बीच फासला बताएगा, कि कितनी दूरी है। तुम पापी, तुम नारकीय! वह तुम्हारी निंदा करेगा और परमात्मा की स्तुति करेगा। वह शिक्षक है।

पूर्ण गुरु वही है, जो तुम्हारी सारी निंदा के जाल को तोड़ दे, जो तुम्हारी सारी आत्मग्लानि को तोड़ दे, जो तुम्हारे भीतर गहरे अपराध के भाव को तोड़ दे, जो तुम्हें तुम्हारे पाप की कल्पना के ऊपर उठाए और तुमसे कहे—'तत्वमसि श्वेतकेतु'। तुम वही हो। वही परमात्मा तुम हो। रत्ती भर भी फर्क नहीं है। जो तुम्हें तुम्हारे परमात्मा होने की तरफ जगाए।

इसलिए गुरु के पास तुम निंदा न पाओगे, स्वीकार पाओगे। इसलिए गुरु की आंख में तुम जरा भी तुम्हें अपराधी सिद्ध करता हुआ कोई भाव न पाओगे। गुरु की आंख में तुम तुम्हारे भीतर छिपे परमात्मा की स्तुति ही पाओगे।

पर तुम भी अपनी निंदा पसंद करते हो! यह बड़े मजे की बात है। साधारणतः हम सोचते हैं कि लोग निंदा क्यों पसंद करेंगे? कोई निंदा पसंद नहीं करता। लेकिन तुम निंदा पसंद करते हो। कारण हैं उसके; क्योंकि तुम खुद ही मानते हो, कि तुम परमात्मा हो नहीं सकते। तुम्हें खुद भी भरोसा नहीं है। तुम सोचते हो चोर हो तुम, बेईमान हो तुम, धोखेबाज हो तुम, कैसे तुम परमात्मा हो सकते हो? इसलिए जब कोई तुम्हारी निंदा करता है, तब तुम सिर हिलाते हो। तुम भी हां भरते हो। तुम भी कहते हो, बात ठीक है।

तुम्हारे इस अनुभव के कारण तुम्हारी निंदा करने वालों का एक जाल पलता है। वे जितनी तुम्हारी निंदा करते हैं, उतने ही वे तुम्हें प्यारे मालूम पड़ते हैं। लगता है, कि यह आदमी बिलकुल ठीक कह रहा है, क्योंकि यही तुम्हारा अनुभव भी है।

इसलिए तुम देखोगे, संन्यासी समझाते रहते हैं लोगों को। गालियां देते रहते हैं चोरी को, झूठ को, क्रोध को, लोभ को। और सब चोर, लोभी, क्रोधी बैठे हुए बड़े प्रसंन होते रहते हैं। ताली भी बजाते हैं, सिर भी हिलाते हैं।

क्या कारण होगा? तुम्हारे अनुभव से मेल खाता है। गुरु की बात तुम्हारे अनुभव से मेल न खायेगी। वह उसके अनुभव से मेल खाती है, तुम्हारे अनुभव से नहीं। गुरु कहता है: 'तुम परमात्मा हो।' तुम सुन लेते हो, सोचते हो, शायद! पता नहीं। मगर भरोसा नहीं आता। क्योंकि तुम अपने को भलीभांति जानते हो। और तुमने जैसा अपने को जाना है अपनी नींद में, वह तुम्हारा सच्चा स्वरूप नहीं है।

तुम्हारी हालत ऐसी है, जैसे किसी ने सपने में जाना हो कि वह हत्यारा है; और हम उसे जगा कर कहें कि तू हत्यारा नहीं है; और वह कहे कि मैं कैसे मानूं? अभी-अभी तो हत्या की, हाथ अभी-अभी तो सुर्ख खून से भरे थे। अभी तो किसी का गला दबाया, मैं कैसे मानूं?

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि सभी गुरु यही कहते रहे हैं कि तुमने जो भी किया है बुरा और भला; सब सपना है। तुम उसके बाहर हो। जागते ही तुम उससे मुक्त हो जाओगे।

'कहे कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।
करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।

'करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि'—

सत्संग शब्द समझने जैसा है। यह भी भारत का अपना शब्द है। सत्संग का अर्थ होता है, गुरु के साथ होना—सिर्फ साथ होना, गुरु के पास होना। एक समीपता, आत्मीयता! बस, इतना काफी है।

जैसे वैज्ञानिक कहते हैं, कैटलिटिक एजेंट होता है, जिसकी मौजूदगी में घटनाएं घट जाती हैं बिना उसके सहयोग के। गुरु कुछ करता नहीं। अगर तुम उसकी मौजूदगी में मौजूद हो जाओ, अगर तुम उसके आभा-मंडल में स्नान कर जाओ, अगर

तुम उसके पास आ जाओ, और उसकी तरंगों में लीन हो जाओ, वह जिस जगत में बह रहा है, अगर क्षण भर को तुम अपनी नौका उसके जगत में छोड़ दो और उसके साथ बह जाओ; अगर तुम थोड़ी देर उसके तीर्थ में स्नान कर लो, तो सब हो जाता है।

लेकिन गुरु के पास होना बड़ी कला है। बड़ा धैर्य चाहिए, बड़ा संतोष चाहिए। जल्दबाजी काम न आएगी। मांग से तुम गुरु से दूर हो जाओगे। बिना मांगे उसके पास रहो। तुम यह भी मत कहो, कि कब घटेगी घटना? तुम सिर्फ प्रतीक्षा करो और प्रेम करो और प्रार्थना करो।

सत्संग का अर्थ है: मांगो मत, सिर्फ मौजूद रहो।

जब भी तुम पूरे होओगे, जब भी घड़ी पकेगी, जब भी मौसम आएगा—और हर चीज का मौसम है; और हर बात की घड़ी है; और हर चीज के पकने का समय है—जब भी पकोगे, गुरु की नजर तुम पर पड़ेगी।

वह सदा मौजूद है, तुम भर मौजूद हो जाओ। जब तुम्हारी दोनों की मौजूदगियां मिल जाएंगी; जैसे एक बुझा हुआ दीया जले हुए दीये के करीब—और करीब, और करीब आता जाए और एक क्षण में लपट छलांग ले ले; जलता हुआ दीया झपटे और बुझे हुए दीये में ज्योति पकड़ जाए।

मजा यह है कि जलते हुए दीये का कुछ खोता नहीं, उसकी ज्योति में कोई कमी नहीं आती। हजार दीये जल जाएं उससे, तो भी उसकी ज्योति 'उसकी ज्योति' बनी रहती है। कोई फर्क नहीं पड़ता। बुझे हुए दीयों को बहुत मिल जाता है और जले हुए दीये का कुछ भी नहीं खोता।

सत्संग की कला जले हुए दीये के करीब सरकने की कला है।

मांगो मत। क्योंकि मांगने का कोई सवाल नहीं है। करीब होने का एक क्षण है, एक खास दूरी है, एक खास समीपता है, तब छलांग अपने से लग जाती है।

क्या करते हो, जब तुम बुझे दीये को जलाते हो जले के पास लाकर? दोनों को पास लाते हो। फीट भर दूर रखोगे, कितना ही शोरगुल मचाओ, लपट नहीं उठेगी। पास लाओ, पास लाओ—एक खास क्षण है, जब तुम्हारे बिना कहे छलांग लग जाती है।

'करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि।'

और सत्संग का एक ही उपाय है, कि तुम समर्पित हो जाओ। तुम छोड़े दो। तुम उसी पर छोड़ दो अपना भविष्य भी, अपने होने की संभावना भी। तुम अपने को पकड़े मत रहो, क्योंकि तुम्हारी पकड़ गुरु को मौका न देगी कि तुम्हारे भीतर जा सके। तुम बंद रहोगे।

'करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।

उसके दर्शन से ही भ्रम भाग जाता है, बस तुम पास आओ। तुम गुरु को ठीक से देख लो।

क्या होता है दर्शन से?

गुरु को ठीक से देखने में ही पता चलता है, कि तुमने अपने को भी देख लिया। गुरु तो एक दर्पण बन जाता है। उसमें तुम अपनी ही छाया देख लेते हो।

गुरु तो स्वयं मिट चुका है, इसलिए गुरु है। अगर 'है' तो उसके तुम कितने ही पास आओ, तुम अपने को न देख पाओगे। तुम गुरु को ही देख पाओगे। गुरु तो वही है, जो मिट चुका है, शून्य हो गया। वह तो एक ऐसी झील है, जिसकी सब तरंग खो गई। अब वह दर्पण है। तुम जैसे-जैसे करीब आओगे, तुम्हें गुरु नहीं मिलेगा, तुम ही मिलोगे। तुम्हें अपनी ही झलक दिखाई पड़ेगी। तुम एक दिन पाओगे, कि गुरु दर्पण हो गया। उसने तुम्हें तुम्हीं को बता दिया।

'जासु के दरस तें भर्म भागै।
सील और सांच संतोष आवै दया।
काल की चोट फिर नाहिं लागै।'

जिसको अपना आत्मबोध हो जाता है गुरु के पास, फिर शील, आचरण, सत्य, संतोष, दया सब अपने से चले आते हैं।
जब तक आत्मज्ञान नहीं हुआ, तब तक तुम्हें शील लाना पड़ता है, चेष्टा करनी पड़ती है। सम्हालो आचरण को, साधो अहिंसा को; करुणा, दया, दान—प्रयत्न होते हैं। प्रयत्न के कारण ही बहुत गहरे नहीं होते, ऊपर-ऊपर होते हैं।
अपनी छवि जिस दिन तुमने देख ली गुरु के दर्पण में, उस दिन...
'सील और सांच संतोष आवै दया।
'काल की चोट फिर नाहिं लागै।।'
और मृत्यु उसी दिन मिट जाती है, जिस दिन तुमने गुरु के दर्पण में अपने को देख लिया। उसी दिन गुरु की जरूरत भी मिट जाती है। वह तो बहाना था अपने को देख लेने का। अब अपने को देख चुके, अब दर्पण की कोई जरूरत न रही।
जिसने अपने को देख लिया, उसका आचरण रूपांतरित हो जाता है। उससे असत्य ऐसे ही गिर जाता है, जैसे सुबह सूरज के उगने पर ओस कण विलीन हो जाते है। उससे हिंसा ऐसे ही खो जाती है, जैसे दीये के जलने पर अंधेरा खो जाता है।
दो मार्ग हैं। एक है आचरण का मार्ग; उसको मैं नीति कहता हूं। साधो सत्य को, अहिंसा को, दया को, करुणा को। और एक है धर्म का मार्ग। साधो केवल समाधि को और शेष सब अपने से चला आता है।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है, कि पहले तुम परमात्मा को खोज लो, शेष सब अपने से चला आता है।
नीति और धर्म में बड़ा भेद है। नीति तो ऐसे है, जैसे अंधा आदमी लकड़ी टटोल-टटोल कर रास्ता खोजता है। धर्म ऐसे है, जैसे आंखवाला आदमी लकड़ी को फेंक कर मस्ती से चलता है। चाहे तुम नाच कर भी निकले दरवाजे से, तो कोई हर्ज नहीं।
'काल की चोट फिर नाहिं लागै।
और जिसने अपने को देखा, उसने यह भी देख लिया कि मृत्यु नहीं है। जिसने अपने को नहीं देखा, उसी को लगता है, मृत्यु है। तुम्हारा जो भीतर स्वरूप है, है वह अमृत है।
'काल की चोट फिर नाहिं लागै।
काल के जाल में सकल जीव बांधिया।।
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा।
कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।।
पारस परस पद होय न्यारा।।'
जैसे ही दिखाई पड़ती है, कि मैं कौन हूं; तब परमात्मा में, आत्मा में कोई फर्क नहीं रहा। मृत्यु खो गई। अमृत उपलब्ध हुआ। तब गाने लगता है तुम्हारा प्राण—'पायो री, राम रतन धन पायो।'
कबीर कहते हैं 'चहुं दिशि दमके दामिनी।' अब चारों तरफ प्रकाश चमकता है।
दयाबाई, सहजोबाई या दादू, सभी के पदों में एक पद तुम्हें बार-बार मिलेगा; वह है, 'सब तरफ रोशनी चमकती है, आकाश में बादल घिरे हैं, अमृत बरसता है—अमीरस बरसे। सहजोबाई ने कहा है, 'बिन घन परत फुहार।' कहीं मेघ भी नहीं दिखाई पड़ते और अमृत की फुहार पड़ रही है।
तुम हो जब तक अहंकार, तब तक मृत्यु है। तुम जिस दिन हो जाओगे स्वरूप, उसी दिन मृत्यु खो जाती है। मृत्यु तुम्हारी नहीं है, तुम्हारे भ्रांतियों की है, तुम्हारे भ्रमों की है।
'कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।'
और फिर लौटता नहीं कोई। फिर वापस इस संसार में नहीं आता कोई। फिर अमृत के लोक का वासी हो जाता है।
'पारस परस पद होय न्यारा।'
जिसने छू लिया उस अमृत-ज्ञान के पारस को, उसका पद ही न्यारा हो जाता है। फिर वह संसार की भीड़ में नहीं उतरता। फिर इस संसार में उसे सीखने को कुछ भी न बचा। सीख लिया! जो जानने योग्य था, जान लिया। जो पाने योग्य था, पा लिया।

इस संसार में तो उन्हीं को वापस आना पड़ता है, जिनका अनुभव आधा रह गया, कच्चा रह गया। यह संसार तो विद्यापीठ है। यहां विद्यार्थी जो अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, वे ही वापस लौट आते हैं। जो उत्तीर्ण हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। उन उत्तीर्ण पुरुषों को ही हमने बुद्ध, सिद्ध, जिन कहा है।

लेकिन तुम अपने ही सहारे अपने अंधेरे के बाहर न आ सकोगे। खोजो कोई हाथ, जो तुम्हें खींच ले अंधकार से बाहर। खोजो कोई व्यक्ति, जो तुम्हारी निंदा न करे। खोजो कोई, जो तुम्हें अपराध से न भरे। खोजो कोई, जो तुम्हारे परमात्मा का बोध तुम्हें दे। जो तुम्हारे भीतर की परम सत्ता—जो सदा अकलुषित है, सदा कुंआरी है, जो सदा ताजी और पवित्र है, जिसके अपवित्र होने को कोई उपाय नहीं, उसकी तुम्हें स्मृति जगाए। जो तुम्हें तुम्हारे ही स्मरण से भर दे।

खोजो गुरु। और गुरु के पास कुछ बहुत करने को नहीं है। गुरु के पास सिर्फ तुम मौजूद हो जाओ—खुले, उन्मुक्त! द्वार-दरवाजे बंद मत रखो। उसकी रोशनी तुम्हारे भीतर के बुझे दीये को जला सकती है।

'गुरुदेव बिन जीव कल्पना ना मिटै।
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहिं।।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासै नहिं।
समझि विचार लै मन माहि।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।
जनम अनेक की अटक खोलै।।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।
करो सत्संग गुरुदेव से चरन गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।
सील औ सांच संतोष आवै दया।
काल की चोट फिर नाहिं लागै।।
काल के जाल में सकल जीव बांधिया।
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा।।
कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।
पारस परस पद होय न्यारा।।'

आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

गुरु मृत्यु है

प्रश्नसार

सूत्रों की अपेक्षा हमारे प्रश्नों के उत्तर में आपके प्रवचन अधिक अच्छे लगते हैं। ऐसा क्यों?

झटका क्यों, हलाल क्यों नहीं?

शिक्षक देता है ज्ञान और गुरु देता है ध्यान। ध्यान देने का क्या अर्थ है?

आपके सतत बोलने में मिटाने की कौन-सी प्रक्रिया छिपी है?

आपने कहा, शिष्य की जरूरत और स्थिति के अनुसार सदगुरु मार्ग-दर्शन करता है। आपके कथन में आस्था के बावजूद मार्गनिर्देशन के अभाव की प्रतीति।

आशा से आकाश टंगा है। क्या आशा छोड़ने से आकाश गिर न जाएगा?

क्या ब्राह्मणों ने जातिगत पूर्वाग्रह के कारण कबीर को अस्वीकार कर दिया?

पहला प्रश्न : आप जब किन्हीं सूत्रों पर बोलते हैं, तो उससे भी ज्यादा अच्छा लगता है, जब आप हमारे प्रश्नों के उत्तर देते हैं। ऐसा क्यों?

स्वाभाविक है। अर्जुन का प्रश्न हो, कृष्ण का उत्तर हो, तुम्हारा उससे क्या लेना-देना? बड़ा फासला है। जिज्ञासा हो सकती है, आत्मीयता नहीं हो सकती। वह प्रश्नोत्तर शास्त्रीय हो गया, जीवंत न रहा। जब तुम पूछते हो, तो तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारा हृदय धड़कता है। तुम उसमें मौजूद होते हो। वह तुम्हारी जरूरत है। तुम्हारी भूख, तुम्हारी प्यास उसमें छिपी है।स्वभावतः तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हें एक तृप्ति देता है। वैसी ही तृप्ति अर्जुन को भी हुई होगी कृष्ण के उत्तर से। तुम्हारा प्रश्न होता और कृष्ण उत्तर देते तो अर्जुन की भी तृप्ति न होती।अपना प्रश्न खोज लेना बहुत जरूरी है।मुझे कोई भेद नहीं पड़ता। क्योंकि मैं देखता हूं कि अर्जुन का जो प्रश्न है, वह कभी न कभी तुम्हारा भी बन जाएगा। इसीलिए सूत्रों पर भी बोलता हूं, अन्यथा बोलूं ही नहीं। आज तुम्हें भी पता न हो, कि कल तुम्हारा प्रश्न क्या बन जाने वाला है। लेकिन शास्त्रों का निर्माण ही इसलिए किया गया है। वे बड़ी गहन खोज-बीन से निर्मित हुए हैं। वह खोज-बीन यह है, कि जो व्यक्ति भी मार्ग पर चला है सत्य को खोजने, आज नहीं कल अर्जुन के प्रश्न उसके मन में उठेंगे ही।उन्हीं सारभूत प्रश्नों के उत्तर गीता में दिए हैं। या उन्हीं सारभूत प्रश्नों के उत्तर बाइबिल में हैं, कुरान में हैं, जो हर खोजी को उठेंगे ही।लेकिन फिर भी जब तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे वास्त्रों में और तुम्हारे शब्दों में आता है, तो संवाद की संभावना बढ़ती है। अन्यथा सब उधार मालूम पड़ता है, वह तुम्हारे सिर पर से निकल जाता लगता है, जैसे तुमसे कुछ लेना-देना न था।मैंने सुना है, एक आदमी बहुत परेशान था। उसका बेटा विवाह करने को राजी नहीं होता था। बहुत समझाया-बुझाया, उम्र भी बीतने के करीब होने लगी। बहुत आग्रह किया तो बामुश्किल वह राजी हुआ। लेकिन उसने एक ऐसी लड़की चुन ली पड़ोस में, कि बाप राजी न था उस लड़की से। और बेटा जिद पकड़ गया कि अब शादी करूंगा तो इसी से; नहीं तो नहीं करूंगा। आप ही पीछे पड़े थे, शादी करो, शादी करो; अब लड़की मैंने चुन ली, तो आपको एतराज है! एतराज क्या है? कारण बताओ।लड़की सुंदर थी, शिक्षित थी, सुसंस्कृत थी। और लड़के ने कहा, अगर कारण नहीं बता सकते तो यह शादी की बात सदा के लिए भूल ही जाओ; या कारण बता दो।मजबूरी में बाप को कारण बताना पड़ा। बाप ने कहा तू मानता नहीं तो तुझसे कहता हूं कि वह लड़की तेरी बहन है। वह मुझसे ही पैदा हुई है, इसलिए उससे विवाह ठीक न होगा।बहुत धक्का लगा बेटे को। बाप पर सारी श्रद्धा भी खो गई। बड़ा आघात था, एक घाव बन गया हृदय में। किसी और से तो न कह सका, लेकिन अपनी मां से तो कहा। और मां बहुत प्रसन्न थी, कि उसने लड़की चुन ली है और जल्दी ही विवाह होगा। मां से उसने कहा, कि ऐसी-ऐसी बात है। अब असंभव है। मां ने कहा, तू बिलकुल घबड़ा ही मत। तू जा और शादी कर। चिंता की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि तू तेरे बाप से पैदा ही नहीं हुआ है।न लड़की अपने बाप से पैदा हुई है, न लड़का अपने बाप से पैदा हुआ है।न प्रश्न तुम्हारा है, न उत्तर तुम्हारे हृदय के पास पहुंच पाएगा। सब उधार रह जाएगा। इस प्रश्न और उत्तर का विवाह न हो सकेगा, संवाद न हो सकेगा। मेल न हो सकेगा।इसलिए सवाल यह नहीं है कि प्रश्न मूल्यवान है या नहीं, गहरे में सवाल यही है कि वह तुम्हारा है या नहीं। किसी और ने गहरे से गहरा सवाल पूछा हो, वह तुम्हारे लिए छिछला है। क्योंकि गहराई तो तुम्हारे प्राणों से आती है, किसी के पूछने से नहीं आती। और तुमने छोटा-सा सवाल पूछा हो, दुनिया नासमझी का कहे; लेकिन तुम्हारे प्राणों से आया है, तुमने न मालूम कितने दिनों तक उसको अपने हृदय में सम्हाला है, सोचा है, गुना है, सपनों में वह प्रश्न तुम्हारे गूंजा है, तो तुमने उसे पाला-पोसा है। वह तुम्हारे गर्भ में निर्मित हुआ है। वह तुम्हारी संतान है। उससे तुम्हारा एक संबंध है, गहरा संबंध है। उस प्रश्न के द्वारा तुम ही प्रकट हुए हो।इसलिए जब मैं उसे उत्तर देता हूं, तब तुम्हारे कंठ में एक संतोष मालूम पड़ता है और प्राणों में एक तृप्ति। कुछ हल होता है, कोई गांठ खुलती है; इसलिए।

दूसरा प्रश्न जब गुरु शिष्य की मौत ही है, तो झटके से क्यों नहीं मार डालते? हलाल क्यों करते हैं? कारण है। एक छोटी कहानी से कहूं।एक आदमी दांत के डाक्टर के पास गया। उसका दांत निकाला गया। लेकिन उसने इतना शोरगुल मचाया

और इतनी हुल्लड़ की कि बाकी मरीज जो आए थे, वे सब भाग गए। जब डाक्टर ने उसको अपना बिल दिया, तो वह बिल साधारण से आठ गुना ज्यादा था। उस आदमी ने कहा, क्या मजाक कर रहे हो? कभी सुना है, एक दांत निकालने का इतना पैसा? यह तो आठ-दस गुना ज्यादा मालूम पड़ता है।उस डाक्टर ने कहा, कि नहीं, वे जो आठ मरीज भाग गए, उनका पैसा कौन देगा?तुम्हें एक झटके से तो मार डालूं, मगर और मरीज भाग जाएंगे। ऐसे धीरे-धीरे हलाल करना पड़ता है। और जैसे-जैसे तुम तैयार होते हो, वैसे-वैसे ही मारे जा सकते हो। क्योंकि मृत्यु कोई साधारण घटना नहीं है।गुरु के पास जो मृत्यु घटित होती है, वह तो परम घटना है। वह तो परम जीवन का द्वार है। उसकी तुम्हारी तैयारी भी तो होनी चाहिए। वह कोई आत्महत्या थोड़े ही है, कि जिसने चाहा, उसने कर ली। आत्महत्या के लिए कोई गुणधर्म तो नहीं चाहिए। कोई भी कूद पड़े पहाड़ से मर जाएगा। पानी में गिर पड़े, डूब जाएगा। कुएं में गिर जाए, मर जाएगा। जहर खा ले।आत्महत्या तो नहीं है, गुरु के पास जो घटना घटती है, वह तो परम-मृत्यु है। उसको ही तो हमने समाधि कहा है।यह हमारा शब्द 'समाधि' बड़ा बहुमूल्य है। जब संन्यासी मरता है तो उसकी कब्र को भी हम समाधि कहते हैं। और जब कोई व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध होता है तब भी उसको हम समाधि कहते हैं। वह भी एक कब्र बन गई।पुराना तो गया, नहीं बचा; नए का जन्म हुआ। रात टूट गई, सुबह हुई। अब सुबह का रात से क्या लेना-देना? सुबह का सूरज और सुबह पक्षियों के गीत और आकाश में फैला किरणों का जाल, इससे क्या संबंध है उस अंधेरी रात का, जो अभी-अभी थी? रात तो मर गई। रात में और दिन में कोई सिलसिला थोड़े ही है! राम और दिन किसी एक ही चीज का फैलाव थोड़े ही मालुम होते हैं। दोनों के बीच एक अंतराल है। रात रात है, दिन दिन है। जब ध्यान गहरा होगा तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारा जो कल तक था, तुम्हारा अतीत, वह ऐसे ही चला गया, जैसे सुबह रात खो जाती है। और एक नए व्यक्तित्व का जन्म हुआ, एक नई आत्मा बिलकुल कुंआरी और ताजी पैदा हुई; जिससे तुम अपरिचित थे, जिसे तुमने कभी जाना ही न था। यह द्वार भी है तुम्हारे भीतर। यह तुमने कभी खोला ही न था।और इस द्वार के भीतर परमात्मा विराजमान है सिंहासन पर। इसकी तुम्हें कभी भनक भी न पड़ी थी। तुम तो अपने घर के बाहर-बाहर जी लिए थे। तुम तो भीतर कभी आए ही न थे। यह जो भीतर आया है, वह बिलकुल नया है। मृत्यु का यही अर्थ है।गुरु मृत्यु है; इसका अर्थ है, कि गुरु के पास तुम्हारा अतीत, तुम्हारा जराजीर्ण, तुम्हारा पुराना मरेगा; अभिनव का, अलौकिक का, अज्ञात का जन्म होगा।यह आत्महत्या होती तो एक क्षण में भी हो जाती। तैयार होना पड़ेगा। यह मृत्यु तुम्हारी तैयारी से आएगी। यह तो तुम्हें अहंकार को छोड़ने की क्षमता आएगी, तभी हो सकती है। यह गुरु के हाथ में नहीं है, कि वह तुम्हें हलाल कर दे या झटके से मार डाले। धीरे-धीरे मारे, या जल्दी मार डाले; यह तुम्हारे हाथ में है। अगर तुम राजी हो, तो एक क्षण में भी गुरु मार डाल सकता है। गुरु को क्या अड़चन है? तुम्हारी देर से ही देर होती है। लेकिन तुम राजी नहीं हो, इसलिए गुरु तुम्हें लुभाता है, समझाता है, बुझाता है, राजी करता है। हजार बातें समझाता है, जिनके बिना समझाए चल जाता। लेकिन तब तुम भाग खड़े होते। तब तुम डर जाते। तब तुम भयभीत हो जाते।क्योंकि तुम तो मृत्यु का अर्थ एक ही जानते हो—मर जाना, मिट जाना। वह दूसरा अर्थ, कि मृत्यु के बाद एक पुनरुज्जीवन है, वह तो तुम्हें पता नहीं है। वह गुरु को पता होगा, लेकिन उसका पता होना तुम्हारे काम नहीं आ सकता। तुम तो उसके हाथ में छुरी देखकर घबड़ा जाओगे।तो वह छुरी छिपाकर रखता है। फूलों में ढांकता है। शब्दों और सिद्धांतों में रखता है। शास्त्रों में दबा देता है। वह तुम्हें देखने नहीं देता। वह तुम्हें उसी दिन देखने देगा, जिस दिन तुम्हें इस बोध की थोड़ी सी भनक पड़नी शुरू हो जाएगी, कि मरे बिना महाजीवन नहीं मिलता। मिटे बिना परमात्मा होने का कोई उपाय नहीं। खोना ही पाना है।जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, जैसे सागर में नदी खोने को राजी हो जाती है, गिर जाती है, तो खोती थोड़े ही है! पूरा सागर उसका अपना हो जाता है।लेकिन उसके लिए तो नदी को भी बड़ी लंबी यात्रा करनी पड़ती है। गंगोत्री से लेकर समुद्र तक आते-आते गंगा को कितनी यात्रा करनी पड़ती है! अगर गंगोत्री पर ही सागर कहता, कि सुन, गिर जा मुझ में; तो गंगा राजी नहीं हो सकती।गंगा भी कहती, अभी तो हुई भी नहीं। यह तो गर्भपात हो जाएगा। इस सागर से तो गंगा घबड़ाती। लेकिन सागर बड़ा दूर है, उसका पता ही नहीं। गंगा उसी को खोजती हुई अनंत यात्रा करती है। उसी गंगा के किनारे तीर्थ बनते चले जाते हैं।हमने क्यों नदियों के किनारे तीर्थ बनाए हैं? कारण है। क्योंकि नदियां सागर की तरफ जा रही हैं, खोने की तरफ जा रही हैं, मिटने की तरफ जा

रही हैं। तीर्थ तो वही है, जहां तुम्हें खोने का बोध मिले, जहां शून्य होने की सामर्थ्य मिले। इसलिए गंगा पर हमने तीर्थ बनाए हैं।वह गंगा जा रही है सागर की तरफ। शायद उसे भी पक्का पता न हो। तुम मेरे पास आ गए हो, शायद तुम्हें भी ठीक-ठीक पता न हो, तुम क्यों आ गए हो। अनंत-अनंत कारण ले आते हैं, संयोग ले आते हैं, जन्मों-जन्मों की यात्रा ले आती है। तुम्हें पता भी नहीं हो सकता।कल रात एक युवक ने संन्यास लिया। वह मुझे जानता भी नहीं था। एक सप्ताह पहले वह अ179ीका से भारत आया। भारत घूमने आया था। मेरा तो उसे सपने में भी कोई खयाल न था। लेकिन भारत आकर उसको पता चला कि उसकी कोई पुरानी मित्र, एक युवती यहां मेरी संन्यासिनी है, तो सोचा एक दिन के लिए उससे मिल जाए। उससे आठ वर्ष से मिला भी नहीं। तो उसे मिलने आ गया। उस युवती में अंतर देखे, जैसा वह जानता था, वैसी वह नहीं रही है। और जैसा उसने सोचा भी नहीं था, कभी उसके जीवन में घटेगा, उसकी उसे झलक मिली। वह रुका रहा तीन दिन के लिए। ध्यान करने लगा। फिर सात दिन के लिए रुक गया। फिर कल संन्यस्त हो गया; अब तो जैसे रुक ही गया।वह कल मुझे कहने लगा कि आया था मैं भारत की यात्रा पर और क्या हो गया? यह तो मैंने सोचा ही न था। मैंने उससे कहा कि यही है भारत की यात्रा। तुझे भारत मिल गया।उसे अपने जन्मों का पिछले जन्मों का कोई हिसाब भी तो पता नहीं है। कौन सी आकांक्षा उसे भारत ले आई है। कौन से अनजाने सूत्र उसे भारत ले आए। क्यों आ गया है? कैसे संयोग बनते चले गए हैं। और अब तो जीवन वही न होगा।अब वह कल कहने लगा, मेरी पत्नी का क्या होगा? मेरे बच्चों का क्या होगा? यह तो उसने कभी सोचा ही न होगा, कि मैं संन्यस्त हो जाऊंगा। इसका मुझे भी कभी सपना न था। और मैं कभी ध्यान करूंगा इसका भी मुझे खयाल न था। और अब जो हो गया है, इससे पीछे लौटने का उपाय नहीं है।जीवन, तुम जैसा सोचते हो, कि तुम्हारे जाने-जाने चल रहा है, ऐसा नहीं है। तुम्हारे जाने-जाने तो बहुत थोड़ा सा हिस्सा चल रहा है, जहां टिमटिमाती रोशनी है। अधिक हिस्सा तो अचेतन के अंधकार में दबा है।तुम आ गए हो। अब तुम्हें खयाल भी नहीं है कि तुम मरने को आ गए हो, मिटने को आ गए हो। तुम शायद कुछ लेने को आए हो। शिष्य और गुरु का गणित अलग-अलग है। शिष्य कुछ लेने आता है। और गुरु उसे समझाता है देंगे, बैठो; और फिर छीन लेता है।शिष्य आता है सुखी होने, और गुरु जानता है, जो भी सुखी होने आया है, वह दुःख से न बच सकेगा। इसलिए गुरु कहता है, देंगे सुख। समझाता सुख है, देता शांति है। शांति सुख से बड़ी अलग बात है। शांति का अर्थ है, जहां न दुःख रह जाता है, न सुख। लेकिन वही महासुख है।निश्चित ही, तुम्हें मैं चाहूं तो अभी मार डालूं; लेकिन उससे तुम्हारा पुनर्जन्म न होगा। सिर्फ मैं अदालत के चक्कर में फंस जाऊंगा। तुम नाहक मुझे उलझा दोगे, तुम तो सुलझ न पाओगे।नहीं, धीरे-धीरे, क्रमशः आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हें राजी करना पड़ेगा। जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, उसी दिन घटना घट जाएगी। क्योंकि यह मृत्यु कोई शरीर की मृत्यु थोड़े ही है, यह मृत्यु तो तुम्हारे अहंकार की मृत्यु है।और इस जगत में सबसे बड़ी कुशलता चाहिए अहंकार को मार डालने के लिए, क्योंकि अहंकार बहुत कुशल है। वह सब तरह से बच जाता है। तुम उसे एक जगह से मारोगे, वह दूसरी जगह खड़ा हो जाएगा। तुम उसका एक सिर काटोगे, नया सिर पैदा हो जाएगा।रावण की हमने कथा लिखी है, कि उसके दस सिर हैं। एक काटो, प्रतिक्षण दूसरा पैदा होता चला जाता है। उसे मारना मुश्किल है। रावण की कथा अहंकार की कथा है। अहंकार को मारना बहुत मुश्किल है। तुम इधर काटते हो, वह उधर से खड़ा हो जाता है। इधर मारते हो, वहां बन जाता है। लेकिन वह अपने को बचाए जाता है। बड़ी सूक्ष्म उसकी गतिविधि है। उसे मारने के लिए बड़ा होश चाहिए। इतना होश, कि तुम्हारे भीतर के घर में कहीं भी कोई अंधेरा कोना न रह जाए, जहां वह खड़ा हो जाए और बच जाए।जिस दिन तुम्हारे भीतर का दीया पूरा जलता है, रोशन होते हो तुम, कहीं कोई अंधेरा नहीं होता, उसी दिन अहंकार मर पाता है। जिस दिन गुरु देखता है कि अब घटना घट गई, उस दिन वह कह देता है, छोड़ दो, अब इस कचरे को मत ढोओ। और तब एक बूंद भी खून नहीं गिरता और तुम मर जाते हो।अगर एक बूंद खून भी गिर जाए तो गुरु, गुरु न था; सिक्खड़ ही रहा होगा। गुरु की गुरुता यही है कि एक बूंद खून न गिरे और तुम मर जाओ। जरा सी चोट न लगे और सब विसर्जित हो जाए। गंगा सागर में गिर जाए, कहीं शोरगुल न हो।तुमने कभी पक्षियों को पर तौलकर आकाश में उड़ते देखा? कहीं कुछ पता भी नहीं चलता। जरा सा पंख खुल जाते हैं और पक्षी आकाश में उड़ जाता है।तुमने कभी चीलों को तिरते देखा आकाश में—कि पंख भी नहीं हिलते?ठीक ऐसी ही जीवनदशा

है, जहां जरा सा भी शोरगुल नहीं होता, एक बूंद खून नहीं गिरता, जरा सी चोट नहीं लगती और सब सुलझ जाता है—सब! सारी गांठें खुल जाती हैं। तुम निग्रथ हो जाते हो।गुरु के पास जो मृत्यु घटित होती है, वह महाजीवन है। उसके लिए तैयार होना जरूरी है। तुम्हारा इतने कहने से कि तुम मरने को तैयार हो, काफी नहीं है। तुम्हें जीने के लिए तैयार होना जरूरी है।और मैं तुमसे जो आखिरी बात इस संबंध में कहना चाहूंगा, वह यह है कि दुनिया में बहुत लोग हैं, जो मरने को तैयार हैं। दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो जीने को तैयार हैं। अगर तुम्हें चाहिए हों मरने के लिए लोग, तो बहुत मिल जाते हैं। शहीद होने के लिए बहुत पागल तैयार हैं।हिंदू धर्म खतरे में है, बहुत से नासमझ मरने को तैयार हो जाएंगे। इस्लाम खतरे में है, बहुत से नासमझ कूद कर मर जाएंगे। भारत पर हमला हो जाए, पाकिस्तान से झगड़ा हो जाए, चीन से हो जाए, मरने को लोग तैयार हैं।मरना तो बिलकुल आसान मालूम पड़ता है। क्यों?क्योंकि तुम्हारा जीवन इतने दुःख से भरा है। इस दुःख में तुम जी ही नहीं पा रहे हो। इसलिए तुम कोई भी बहाना खोज कर मरने के लिए तैयार हो जाते हो। जरा सी बात हो जाती है—दिवाला निकल गया; क्या हुआ है दिवाला निकल जाने में? जो रकम के आंकड़े तुम्हारे नाम लिखे थे बैंक में, अब नहीं लिखे। जो कागज के टुकड़े तुम्हारी तिजोड़ी में थे, अब नहीं हैं। दिवाला निकल गया, जान खोने को तैयार हो! कूद पड़े बड़े मकान से! आग लगा ली!पत्नी मर गई, मरने को तैयार हो। जिसके जीने से कभी कोई रस न पाया था, उसके लिए मरने को तैयार हो! बच्चा मर गया! जिस बच्चे के चेहरे को देखने की तुम्हें कभी फुरसत न मिली थी, उसके लिए मरने को तैयार हो!ऐसा लगता है, तुम बहाना ही खोज रहे हो, कि कोई बहाना मिल जाए कि हम मर जाएं। जीना तो बोझ है।नहीं, असली शहीद मैं उन्हें कहता हूं, जो जीने की हिम्मत रखते हैं। मरते तो कायर हैं। चाहे वे शहीदगी का बाना ओढ़ लें, शहीदों के कपड़े ओढ़ लें; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। राष्ट्र, धर्म—हजार तरह के पागलपन हैं, जिनके लिए आदमी मर सकता है।जीना असली सवाल है। जीना कठिन है। और जो आदमी जी सकता है, वही परमात्मा तक पहुंचता है।इसलिए गुरु को जो हम मृत्यु कहते हैं, वह सिर्फ इस अर्थ में कहते हैं कि तुम जैसे हो, वैसे मरोगे। तुम मरोगे नहीं, वस्तुतः तो तुम और भी पुनरुज्जीवित हो जाओगे। तुम क्षुद्र की तरह मरोगे और विराट की तरह हो जाओगे।तो गुरु मृत्यु भी है और जन्म भी। अंधकार की मृत्यु और प्रकाश का जन्म। लेकिन अंधकार तभी मिट सकता है, जब प्रकाश के जलने की घड़ी करीब आ जाए। और तो अंधकार मिटाने का कोई उपाय नहीं है।तो तुम जल्दी मत करो। तुम्हारा मन बड़ा बेचैन है और जल्दी चाहता है; सब चीजें जल्दी हो जाएं। लेकिन कुछ चीजें हैं, जो समय मांगती हैं। और जितनी बड़ी चीजें हैं, उतना ही ज्यादा समय मांगती हैं।अगर तुम्हें मौसमी फूल लगाने हैं, तो आज बो दो; तीन-चार सप्ताह में फूल आने शुरू हो जाएंगे। लेकिन अगर तुम्हें ऐसे वृक्ष लगाने हैं, जो हजारों साल तक रहें, और जिनके नीचे लाखों लोगों को विश्राम और छाया मिले, तो तीन सप्ताह में आने वाले नहीं हैं; तो वक्त लगेगा। तो हो सकता है, तुम्हें पूरा जीवन लगा देना पड़े, तब ऐसे वृक्ष तुम पैदा कर पाओ।अमरीका के जंगलों में ऐसे वृक्ष हैं, जिनकी उम्र पांच हजार साल है। पांच हजार साल जो वृक्ष जीता है, उसको एक आदमी अपने जीवन में, एक जीवन में नहीं लगा पाता। उसको लगाने के लिए अनेक लोगों के अनेक जीवन लग जाते हैं।तुम जिस वृक्ष की खोज में हो—आत्मा का, परमात्मा का, मोक्ष का, वह कोई तुम जल्दी में न लगा पाओगे। इधर तुमने चाहा, उधर लग गया, ऐसा न होगा। वह कोई कल्पना का वृक्ष नहीं है। वह कोई कल्पवृक्ष नहीं है, कि तुमने चाहा और हो गया।तुम्हें बड़ी साधना से गुजरना पड़ेगा, निखरना पड़ेगा, शुद्ध होना पड़ेगा। जिस दिन तुम परम रूप में आ जाओगे, उसी क्षण वह घड़ी घटेगी। उसी क्षण मिलन होगा। उसी क्षण परमात्मा का बीज तुम्हारे भीतर पड़ता है। तुम मर जाते हो और परमात्मा हो जाता है।थ्ङ-एऊ॒ श्प्तीसरा प्रश्न ः ण आपने कहा कि शिक्षक देता है ज्ञान और गुरु देता है ध्यान। ध्यान देने का क्या अर्थ है?ज्ञान और ध्यान बड़े संयुक्त हैं। ज्ञान का अर्थ है, जानकारी और जानकारी से भरा हुआ चित्त। और ध्यान का अर्थ है, जानकारी से शून्य चित्त।जैसे एक कमरे में फर्नीचर भरा है—यह ज्ञान की अवस्था। फिर फर्नीचर कमरे के बाहर निकाल दिया, कमरा बिलकुल खाली—यह ध्यान की अवस्था। ध्यान उसी का अभाव है, ज्ञान जिसका भाव है। ज्ञान में जो कूड़ा-करकट तुम इकट्ठा कर लेते हो—शब्द, सिद्धांत, शास्त्र; ध्यान में वे सब छोड़ देने होते हैं।शिक्षक देता है ज्ञान और गुरु देता है ध्यान; इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक जो देता है, गुरु वह छीन लेता है। तो तुमने जो भी सीखा है जीवन के विद्यालय में, जो भी अनुभव,

जो भी ज्ञान तुमने अर्जित किया है विश्वविद्यालयों में, अध्यापकों और शिक्षकों से, शास्त्रों-सिद्धांतों से, तुमने जो-जो संगृहीत किया है, गुरु सब छीन लेगा। वह सब में माचिस लगा देगा। वह सबको जला देगा।वह तुम्हारे मन के पूरे फर्नीचर से तुम्हें खाली कर देना चाहता है। उस खालीपन में ही तुम्हें पहली बार अपने विस्तार का पता चलता है। उस खालीपन में ही तुम्हें पहली दफा शांति की किरण उतरती मालूम होती है। उस खालीपन में ही तुम्हें पता चलता है, कि अहंकार नहीं है, परमात्मा है। तुम नहीं हो, वह है। 'ओम् तत् सत्' का बोध उसी क्षण में होता है।तो ध्यान और ज्ञान की प्रक्रियाएं बिलकुल अलग हैं। ध्यान भूलने का नाम है, खाली होने का नाम है।जैसे स्लेट पर बच्चे ने कुछ लिखा है और फिर पोंछ डाला है, ऐसे संसार ने जो-जो तुम्हारे मन पर लिख दिया है, उसे पोंछ डालने का नाम ध्यान है। ध्यान को केवल वे ही लोग उपलब्ध हो सकते हैं, जो ज्ञान से बहुत परेशान हो गए हों। अगर तुम अभीं ज्ञान से परेशान नहीं हुए, तो तुम ध्यान को उपलब्ध न हो सकोगे। और जहां ध्यान की वर्षा हो रही होगी, वहां से भी तुम कुछ सीख कर लौट आओगे।ऐसा हुआ, कि उन्नीस सौ पचास में एक किताब मेरे हाथ आई। एक जैन साध्वी ने योगशास्त्र पर एक किताब लिखी थी। जैनों में एक अदभुत योगी हुआ, हेमचंद्राचार्य। तो हेमचंद्र के सूत्र पर उसने वह किताब आधारित की थी। हेमचंद्र के सूत्र बड़े अनूठे हैं। जैसे पतंजलि के सूत्र अनूठे हैं, ऐसे हेमचंद्र के हैं। पतंजलि की कोटि का आदमी है हेमचंद्र ।तो हेमचंद्र के सूत्रों से संबंध जोड़कर उस महिला ने किताब लिखी। किताब उसने बड़ी बढ़िया लिखी थी। लेकिन मैं बड़ी उलझन में पड़ा, क्योंकि सब ठीक था, लेकिन कुछ-कुछ गलत था; जो कि नहीं हो सकता। अगर उसने अनुभव से लिखा हो, ध्यान का उसे अनुभव हो, तो जो भूलें उसने कीं थीं, वे नहीं हो सकतीं। परेशानी मेरी यह थी, कि जो भी उसने लिखा था, वह बहुत साफ-सुथरा और ऐसा लगता था, जैसे किसी ने अनुभव से लिखा हो। लेकिन कुछ भूलें भी थीं, जो बताती थीं कि अनुभव वाला आदमी वे भूलें नहीं कर सकता।खैर! बात आई-गई हो गई। मैं उस किताब को भूल गया। कोई पंद्र ह साल बाद, उन्नीस सौ पैंसठ में मैं राजस्थान के दौरे पर था, एक गांव में वह साध्वी मुझसे मिलने आई। नाम मुझे कुछ पहचाना हुआ मालूम पड़ा, तो मैंने उससे पूछा कि क्या हेमचंद्र के ऊपर योगशास्त्र तुम्हीं ने लिखा?उसने कहा, मैंने ही लिखा।तो मैंने उससे पूछा, तुम मेरे पास किसलिए आई हो?उसने कहा, ध्यान सीखने आई हूं।तुमने तो ध्यान और योग पर इतनी अच्छी किताब लिखी।उसने कहा, वह बस, शास्त्र को पढ़कर लिखी है। जानकारी मुझे कुछ भी नहीं है। अपनी जानकारी नहीं है। खुद नहीं जाना है। और अब मैं उस किताब को लिखकर बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। लोग मेरे पास पूछने आते हैं। और मैं उनको बताती हूं, कि कैसे ध्यान करो। अब यह तो आपसे मैं निजी, एकांत में कह रही हूं मुझे ध्यान का अ, ब, स भी नहीं आता। आप मुझे सिखाएं।यह चल रहा है। बहुत जोर से चल रहा है। सदा से चलता रहा है एक अर्थी में।अगर ज्ञान की जानकारी से अभी तृप्ति न हो गई हो, तो जहां ध्यान की वर्षा हो रही है, वहां भी तुम ध्यान के संबंध में कुछ सीखकर लौट जाओगे, ध्यान न सीख पाओगे। क्योंकि ध्यान के संबंध में जानना, ध्यान जानना नहीं है। ध्यान जानना तो एक बड़ी क्रांति है। ध्यान जानने का तो अर्थ है, तुम्हारा आमूल रूपांतरण। वह तो एक अनुभव है। महा अनुभव है। उस अनुभव में तो जानकारी बिलकुल मिल जाती है। तुम ही बचते हो खालिस। सोना ही बचता है, कूड़ा-करकट जल जाता है।गुरु देता है ध्यान, इसका अर्थ है कि गुरु छीन लेता है ज्ञान। और जहां तुम्हें ऐसा गुरु मिले, जो तुमसे ज्ञान छीनता हो, वहां हिम्मत करके रुक जाना। क्योंकि वहां से भागने का मन होगा। क्योंकि यहां हम तो कुछ लेने आए थे, उल्टा और गंवाने लगे।आदमी लेने के लिए घूम रहा है। कहीं से भी कुछ मिल जाए तो थोड़ा और अपनी सम्पत्ति बढ़ा ले। अपनी तिजोड़ी में थोड़ी जानकारी और रख ले, थोड़ा और पंडित हो जाए।एक जर्मन खोजी रमण के पास आया और उसने कहा, कि मैं आपके चरणों में आया हूं कुछ सीखने। आप मुझे सिखाएं। रमण ने कहा, तुम गलत जगह आ गए। अगर सीखना है, तो कहीं और जाओ। अगर भूलना है, तो हम राजी हैं।रमन के वचन हैं, इफ यू हैव कम टु लर्न देन यू हैव कम टु दि रांग परसन। इफ यू आर रेडी टु अनलर्न देन आई एम रेडी टू हेल्प यू।अनलर्न! अगर अन-सीखने को राजी हो अगर सीखने को आए हो—कहीं और । खोजो कोई शिक्षक। अगर अन-सीखना करने आए हो, सीख चुके बहुत, थक गए, अब इस कचरे से छुटकारा पाना है—तो गुरु राजी है।ध्यान, जो तुमने जाना है अब तक, उसके भूल जाने का नाम है। अब यह बड़े मजे की बात है। जिस दिन तुमने जो-जो जाना है, उसे तुम बिलकुल विस्मरण कर दोगे,

उस दिन तुम्हें आत्मस्मरण आएगा। क्योंकि वह जो तुमने जाना है, उसी के कारण तुम्हें अपना पता नहीं चल पा रहा है। तुम्हारे और तुम्हारे जानने के बीच में तुम्हारी जानकारी की दीवाल खड़ी हो गई है।अगर तुम्हें स्वयं को जानना है, तो और सब जानने के वस्त्र उतारकर रख दो। स्वयं का जानना तभी घटता है, जब और कोई जानने का भीतर उपद्रव नहीं रह जाता। सब जानना शून्य हो जाता है, तब आती है आत्म-स्मृति; कबीर उसको 'सुरति' कहते हैं। तब होता है आत्म-स्मरण। तब आदमी स्व-विवेक से भर जाता है, आत्मज्ञान से।आत्मज्ञान कोई जानकारी नहीं है। क्योंकि वह तो तुम हो ही। तुम्हारी जानकारियों के पर्दे जरा हट जाएं, थोड़ा तुम घूंघट के पट खोलो, तो दुलहन तो भीतर छिपी है—वह तुम्हीं हो। लेकिन घूंघट के पट बहुत ज्यादा घने हो गए हैं। तुम घूंघट का पट डाले हुए दर्पण के सामने खड़े हो, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जरा घूंघट का पट खोलो, तुम्हें अपनी छवि दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी।यह सारा अस्तित्व दर्पण है। जिस दिन तुम्हारी आंख पर घूंघट नहीं होता, उस दिन तुम्हें अपनी छवि सब जगह दिखाई पड़ने लगती है। चांद-तारे तुम्हीं को गुंजाते हैं। पक्षी तुम्हारा ही गीत गाते हैं। झरने तुम्हारा ही कल-कल नाद करते हैं। फूल तुम्हीं को खिलाते हैं। तुम ही इस अस्तित्व में फूले-फूले समाए हुए होते हो।लेकिन एक शर्त अनिवार्य है; कि सब जानकारी हटा कर रख दी जाए। सत्य तक जाना हो, तो निर्वस्त्र जाना होगा। सत्य तक जाना हो, तो जानने के सारे वस्त्र छोड़ देने होंगे। सत्य तक कोई नग्न होकर, शून्य होकर ही पहुंचता है। शून्यता यानी ध्यान।थ्व्ऊ-एऊ॰ श्च्चौथा प्रश्न ः ण आपने कहा, कि गुरु सिखाता नहीं, मिटाता है। लेकिन आप तो प्रति दिन बोल-बोल कर हमें सिखाते ही चले जाते हैं। आपके सतत बोलने में मिटाने की कौन सी प्रक्रिया छिपी है?मेरे बोलने से दोनों बातें हो सकती हैं। अगर तुम कुछ सीखने आए हो, तुम सीखकर लौट जाओगे। अगर तुम कुछ भूलने आए हो, तुम भूलकर रुक जाओगे। मेरे बोलने से, तुम्हारे ऊपर निर्भर है, कि क्या तुम करोगे।जो पंडित ढंग के लोग हैं, वे भी यहां मौजूद हैं। वे मेरी बातों को कंठस्थ कर लेंगे। वे तोते हो जाएंगे। वे तोते होकर लौट जाएंगे। वे जाकर जो उन्होंने सीख लिया है, वह दूसरों को सिखाने लगेंगे। वे चूक गए। वे मेरे पास आए ही नहीं। जो वे लेकर गए, वह तो कहीं और भी ले सकते थे। वह पानी इस कुएं का पानी ही न था। वे प्यासे ही लौट गए। या कुएं की तस्वीर लेकर लौट गए। या कुएं पर जो पीनेवालों की भीड़ थी, उनकी बातचीत सुनकर ही लौट गए। या कुएं से जो तृप्त हो गए थे, उनकी तृप्ति की बात सुनकर, इकट्ठा करके लौट गए। लेकिन उन्होंने खुद कुएं का पानी नहीं पीया। पानी के संबंध में जानकर लौट गए—पंडित हो जाएंगे।लेकिन जो भूलने आए हैं, मेरा रोज का सुनना उनके ज्ञान को काटता चला जाएगा। मैं बोलता हूं तुम्हें सिखाने को नहीं, तुम्हें भुलाने को ही। और अगर तुम मुझे गौर से सुनोगे, तो जल्दी ही तुम पाओगे, सब मैंने काट डाला।इसलिए तो तुम्हें इतने विरोधाभास मुझमें दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि आज मैं कुछ कहूंगा, कल मैंने कुछ कहा था, परसों कुछ और कहूंगा। अगर तुम मुझे सुनते ही रहे तो मैं इतना विरोधाभासी हूं, इतना कंट्राडिक्टरी हूं कि तुम मुझे कुछ भी न पकड़ पाओगे। तुम्हारे हाथ से सब छूट जाएगा। अगर तुम्हें मुझे पकड़ना है, तो तुम्हारे हाथ से सब छूट जाएगा।अगर मुझे तुम्हें कुछ सिखाना होता तो मैं विरोधाभासी नहीं हो सकता था। फिर तो मुझे संगत होना चाहिए, ताकि रोज-रोज मैं तुम्हें सिखाता जाऊं और रोज-रोज मकान बनता जाए ज्ञान का तुम्हारे भीतर। मेरा काम ऐसा है, कि आज मैं एक [illegible] रखता हूं, कल खींच लेता हूं। मकान मैं कभी बनने न दूंगा।तुम अगर मुझे सुनते ही रहोगे तो, और तुमसे कोई किसी दिन पूछेगा कि मैंने क्या सिखाया, तो तुम मौन खड़े रह जाओगे। तुम कहोगे, कहना मुश्किल है। क्योंकि मैंने जो भी सिखाया, जल्दी ही उसे मिटा भी दिया। मैंने लकीर खींची और मिटाई। इसके पहले कि तुम पकड़ लेते, मैं मिटा देता हूं।अंततः तो तुम खाली मेरे पास खाली रह जाओगे। तुम पर निर्भर है। और ऐसा कुछ मेरे पास हो रहा है ऐसा नहीं; ऐसा सदा होता रहा है। महावीर, बुद्ध जो बोले उसमें से कुछ तो ध्यान को उपलब्ध हो गए सुननेवाले, कुछ पांडित्य को उपलब्ध हो गए। जो पांडित्य को उपलब्ध हो गए, उन्होंने ही जैन धर्म बनाया। क्योंकि जो ध्यान को उपलब्ध हो गए, वे कहां फिक्र करते हैं! जिसने रस पी लिया, मगन हो गया, वह कहां फिक्र करता है संप्रदाय खड़े करने की, धर्म खड़े करने की? बात खत्म हो गई। कबीर ने कहा है, मन जब मगन भया तब क्यों बोले? फिक्र ही छोड़ दी उन्होंने।लेकिन जो पंडित थे, उन्होंने शब्द-शब्द संगृहीत कर लिया। अब यह बड़े मजे की बात है, कि महावीर के जो ग्यारह गणधर हैं, वे ग्यारह ही ब्राह्मण पंडित हैं। खुद महावीर क्षत्रिय हैं। खुद महावीर की सारी चिंतना और देशना

वेदों के विपरीत है। लेकिन महावीर के जो ग्यारह, जिन्होंने महावीर के धर्म को स्थापित किया है, जैन धर्म का निर्माण किया है वे ग्यारह ही ब्राह्मण पंडित हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है।बुद्ध क्षत्रिय हैं, लेकिन जिन्होंने बुद्धधर्म बनाया, वे सब ब्राह्मण पंडित हैं। तुम जरा गौर करो, कृष्ण क्षत्रिय हैं, राम क्षत्रिय हैं लेकिन राम और कृष्ण का धर्म जिन्होंने खड़ा किया, वे सब ब्राह्मण पंडित हैं! पंडित शब्दों को संगृहीत करता है। उन पर भवन निर्मित करता है। ज्ञानी से तो धर्म का जन्म होता है, पंडित संप्रदाय बनाता है।तुममें से भी कुछ मेरी बातों को सुन कर संग्रह इकट्ठा करेंगे। हालांकि मैं सब तरह की अड़चन पैदा कर रहा हूं। वह तुम कर न पाओगे। और तुम करोगे, तो लोग तुम्हें मुश्किल में डालेंगे। क्योंकि मैं इतनी विरोधी बातें कह रहा हूं कि कोई पंडित समर्थ नहीं हो सकता समझाने में, कि इन विरोधी बातों में क्या संबंध है?महावीर की बातों में विरोध नहीं है। महावीर की वाणी एक संगति से भरी है। पंडित उसे समझा सकता है। बुद्ध की वाणी में विरोध नहीं है; उसमें एक संगति है। जान कर मेरी वाणी में मैंने संगति नहीं रखी है, क्योंकि उसी से संप्रदाय पैदा होता है।तो मेरे पास से, जो पंडित है, भला पंडित होकर लौट जाए, खुद को ही नुकसान पहुंचा सकता है; किसी और को नहीं।तुम पर निर्भर है। मैं रोज इसलिए बोल रहा हूं, कि मैं तुम्हारे मन को खाली कर दूं। मेरा बोलना तुम्हें कुछ देने को नहीं है, मेरा बोलना ऐसे ही है, जैसे रोज सुबह हम घर में बुहारी लगाते हैं सफाई के लिए। तुम चौबीस घंटे में इकट्ठा कर लेते हो, रोज सुबह मैं फिर बुहारी लगाता हूं, कि थोड़ी सफाई हो जाए।थ्ध्ऊ-एऊ॒ श्घ्पांचवां प्रश्न ः ण आपने कहा, कि सदगुरु जानते हैं कि कब शिष्य को क्या कहा जाए। और शिष्य की जरूरत और स्थिति के अनुसार उसे मार्ग-निर्देशन दिया करते हैं। शिष्य को बताने और मांगने और पूछने की जरूरत नहीं है।मुझे अनेक बार आपके मार्ग-निर्देशन का अभाव प्रतीत होता है और आपके पास दर्शन में आने का मन भी होता है, लेकिन उपरोक्त कथन में भी आस्था होने के कारण मैं धैर्य और प्रतीक्षा का सूत्र अपना लिया करता हूं।यह आस्था पक्की न होगी। नहीं तो यह प्रश्न कैसे उठता?अगर यह आस्था पक्की है, कि गुरु जब जरूरत होगी, बुला लेगा, जब जरूरत होगी कहेगा, जो जरूरत होगी वह निर्देश दे देगा, तो फिर अभाव कैसे पता चलता है? और फिर साथ में आस्था का क्या अर्थ रह जाता है?यह आस्था बड़ी नपुंसक है। यह झूठी है। कुछ कारण और होगा न आने का। अहंकार कारण होगा—कि कैसे जाएं पूछने? मैं और जाऊं पूछने, कि मार्ग-निर्देशन चाहिए?कठिनाई होती है। पूछने में पता चलता है कि तुम्हें पता नहीं है; तो आदमी पूछने से बचना चाहता है। उस कारण रुक रहे होओगे।लेकिन अगर आस्था पक्की है—और आस्था कच्ची होती ही नहीं। आस्था का मतलब ही पक्का होना होता है। कच्ची आस्था का मतलब? कोई मतलब ही नहीं होता कच्ची आस्था का। आस्था यानी आस्था। फिर यह सवाल कैसे उठेगा? फिर प्रतीक्षा करने में और धैर्य रखने में कठिनाई क्या आएगी? फिर एक जन्म भी गुरु न बुलाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। कभी न बुलाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हो सकता है, न बुलाना ही उसका निर्देश हो। हो सकता है धैर्य रखो, अनंत धैर्य रखो, यही उस की व्यवस्था हो तुम्हारे लिए।लेकिन हमारा मन बड़ा दुविधा में रहता है सदा। न तो आस्था पूरी रहती है, न संदेह पूरा रहता है। न घर के न घाट के। मन की अवस्था बिलकुल धोबी के गधे की है—न घर का न घाट का।संदेह भी होता है. . .वह भी पूरा नहीं है, नहीं तो पूछने आ जाओ। फिर रुको मत।आस्था है . . .वह भी अधूरी, लंगड़ी है।रुकते हो, तो पूरे ही रुक जाओ। पूछते हो, तो पूरा ही पूछ लो। या तो धैर्य रख लो—पूरा धैर्य। या फिर अधैर्य कर लो—पूरा अधैर्य।ध्यान रखना, पूरे से मुक्ति होती है। पूरा संदेह भी बेहतर है, अधूरी श्रद्धा से। पूरी नास्तिकता बेहतर है आधी आस्तिकता से। पूरा तनाव, पूरी अशांति बेहतर है आधी शांति और विश्राम से। क्योंकि पूरे से क्रांति घटित होती है। जहां पूरा हो जाता है, वहां से पार जाना ही पड़ेगा। वहां से पार जाना ही पड़ेगा। वहां से ऊपर उठना ही पड़ेगा। पूरे का अर्थ ही यह होता है, कि अब इसमें और कोई गति के लिए सुविधा न रही। अब कुछ करना ही पड़ेगा। आखिरी पड़ाव आ गया है।आधे-आधे लोग मरते हैं। व्यर्थ ही मरते हैं और व्यर्थ ही जीते हैं। एक में से कुछ तय कर लो। अपने मन की ठीक जांच करो।अगर ऐसा लगता हो, कि धैर्य करना मुश्किल है तो पूछने चले जाओ। अगर ऐसा लगता हो, कि धैर्य संभव है, आस्था पूर्ण है, तो फिर यह प्रश्न भी मत पूछो।इसलिए मैंने सूचना दी है, कि हर व्यक्ति अपने प्रश्न में अपना नाम भी लिखे। कुछ लोग प्रश्न में नाम नहीं लिखते। उसमें भी अहंकार को बचाने की कोशिश करते हैं, कि मुझे यह पता न चल जाए कि प्रश्न किसका है। ऐसे तुम अपने अहंकार को बचा-बचा कर कहां पहुंच

पाओगे?प्रश्न है, तो है। उसे पूछना है, और हल करना है और उसके पार जाना है। यह तो ऐसे ही होगा कि जैसे कोई चिकित्सक से अपनी बीमारी छिपाए। चिकित्सक को तो बीमारी बता ही देनी पड़ेगी। नहीं तो निदान ही न हो पाएगा। और तब बिना निदान के दी गई औषधि और नुकसान करेगी। इससे बिना औषधि के रह जाते वह अच्छा था। गलत औषधि मिल जाएगी तो भयंकर हानि होगी क्योंकि सभी औषधियां जहर हैं। वह ठीक बीमारी हो तो जहर काम का हो जाता है। ठीक बीमारी पर न लगे तो जहर नुकसान का हो जाता है।तो गुरु के पास होने का अर्थ, अग्नि के पास है। वहां थोड़ा सोच समझकर, साफ-सुथरा होकर रहना। रहना हो तो ही रहना, नहीं तो भाग जाना।प्रश्न पूछना हो तो ईमानदारी से प्रश्न कर लेना। श्रद्धा करनी हो, तो ईमानदारी से श्रद्धा कर लेना—और साफ होना एकदम जरूरी है। बंटा-बंटा होना तुम्हें कहीं न ले जाएगा। तुम ऐसे ही त्रिशंकु के भांति लटके रह जाओगे।थ्ठ्ऊ-एऊ॒ श्छ्ठवां प्रश्न ः ण आशा से आकाश टंगा है। क्या आशा छोड़ देने से आकाश गिर न जाएगा?आकाश न गिरेगा, आशा ही गिरेगी। कोई आकाश आशा से टंगा भी नहीं है। लेकिन आदमी इसी तरह सोचता है, जैसे तुमने उस छिपकली के संबंध में सुना हो; कि छिपकलियों में कहीं कोई विवाह था। और एक महल की छिपकली को भी निमंत्रण मिला। निश्चित ही सबसे पहले मिला, क्योंकि वह महल में रहती थी। उसने कहा, मैं आ न सकूंगी। क्योंकि अगर मैं आ गई तो छप्पर गिर जाएगा महल का। मैं ही तो सम्हाले रहती हूं।छिपकली सोचती है, कि महल के छप्पर को सम्हाले हुए है। अगर चली गई, महल गिर जाएगा!तुमने उस बूढ़ी की कहानी सुनी है, जो सोचती थी कि उसका मुर्गा बांग देता है, इसलिए सुबह सूरज उगता है। लेकिन गांव के लोग हंसते थे। उसका तर्क भी ठीक था क्योंकि ऐसा कभी न हुआ था। जब भी मुर्गा बांग देता तभी सूरज उगता था। गांव के लोग हंसते थे, कि बूढ़ी तू पागल हो गई है।एक दिन वह नाराज होकर अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। और उसने कहा, कि अब रोओगे, अब भटकोगे। अब खोजोगे मुझे और तड़पोगे, पछताओगे, कि क्या गंवा दिया! अब कभी सूरज न उगेगा। मुर्गा मैं लिए जा रही हूं। और दूसरे गांव में जब मुर्गे ने बांग दी, तब वहां सूरज निकला। उसने कहा, अब रो रहे होंगे नासमझ! सूरज यहां निकला है। जहां मुर्गा है, वहां सूरज है।आशा से कुछ भी नहीं टंगा है। आशा ही तुम्हें भटका रही है। फांसी लगी है आशा से ही। इसे थोड़ा समझो।आशा के कारण ही तुम जीवन में कुछ भी नहीं सीख पाते। एक आदमी दस हजार रुपए कमा लेता है। सोचता था पहले, कि दस हजार हो जाएंगे, सब ठीक हो जाएगा। दस हजार हो गए, कुछ ठीक नहीं हुआ। आशा कहती है कि दस लाख हो जाएं तो सब ठीक हो जाएगा। वह बिलकुल भूल ही जाता है कि यही आशा पहले कहती थी कि दस हजार हो जाएं तो सब ठीक हो जाएगा।इसकी पहले मानकर चले, कुछ ठीक न हुआ। अब भी यह आशा कहती है, दस लाख हो जाएं तो सब ठीक हो जाएगा। फिर दस लाख भी हो जाते हैं, फिर भी कुछ ठीक नहीं होता। बल्कि जो ठीक था, वह भी गड़बड़ हो जाता है। आशा अब भी कहती है, कि दस लाख में क्या होगा? यह भी कोई संपत्ति है? दस करोड़! ऐसे आशा से आकाश टंगा है। आकाश क्या है ये। भ्रातिं, भ्रम, मृग-मरीचिका—सपने टंगे हैं।आदमी दौड़ता चला जाता है। आशा अनुभव को पराजित कर देती है और तुम्हें कुछ सीखने नहीं देती।एक स्त्री से तुम्हारा प्रेम होता है या एक पुरुष से प्रेम होता है—बड़ी आशा से, उमंग से भरे बैंड-बाजे बजाकर शुरुआत करते हो। बड़े फूल बिछाकर, बड़े सुगंध छिड़ककर यात्रा शुरू होती है। जल्दी ही सब दुग␣ध हो जाता है। जल्दी ही सब कलह हो जाती है, विषाद हो जाता है, दुःख हो जाता है।आशा फिर भी छोड़ती नहीं पीछा। वह कहती है, यह स्त्री गलत है, यह पुरुष गलत है। दूसरी स्त्री—अगर पड़ोस की स्त्री मिल जाती तो सब ठीक हो जाता। मैंने चुनाव में भूल की।तो पश्चिम में उन्होंने चुनाव की सुविधा बना ली है। ऐसे लोग हैं, जिन्होंने दस-दस बार जीवन में तलाक दिए। और अभी भी आशा कर रहे हैं, कि ग्यारहवीं पत्नी से सब ठीक हो जाएगा, या ग्यारहवें पति से सब ठीक हो जाएगा!अनुभव पर जीत हो जाती है आशा की। आशा के कारण ही अनुभव से तुम कुछ निचोड़ नहीं पाते सार। तुम्हारा जीवन नहीं बदल पाता। फिर तुम वही भूल करते हो, फिर वही भूल करते हो! और आशा कहे चली जाती है, कि इस बार हो गई, कोई बात नहीं! अगली बार सब ठीक हो जानेवाला है। आशा भटकाती है, सम्हालती नहीं है।अगर तुम्हारे जीवन में से आशा हट जाए, मैं यह नहीं कह रहा हूं, कि तुम निराश हो जाओ—इसे थोड़ा समझ लेना। क्योंकि निराशा भी आशा का ही निषेधात्मक रूप है। वह भी आशा ही है हारी हुई। वह भी आशा का ही पराजित रूप है, लेकिन है आशा

ही।जब तुम एक आदमी को देखते हो, बिलकुल निराश होकर बैठा है—तो क्या हुआ है? यह कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो गया। आशा अभी भी है, लेकिन परास्त हो गया, अब दौड़ने की हिम्मत छूट गई। आशा तो अभी भी है, कि ताकत होती शरीर में, अगर धन पास होता, अगर सुविधा होती, अगर मौका मिल जाता, अवसर बन जाता; भाग्य, भगवान अगर साथ दे देता तो करके कुछ दिखा देते। अभी भी आशा तो जगी ही है भीतर।लेकिन बाहर थक गया और हार गया, टूट गया; इसलिए निराश है। निराश के भीतर आशा का दीया तो जलता ही रहता है। सिर्फ चारों तरफ से अंधेरा घिर जाता है।आशा से मुक्त का अर्थ होता है, आशा-निराशा दोनों से मुक्त। ऐसा व्यक्ति, जो भविष्य में जीता ही नहीं। ऐसा व्यक्ति, जो अनुभव को खुली आंख से देखता है, आशा के माध्यम से नहीं। और जो जीवन की सचाई को उसके रूखे-सूखेपन में पहचानता है, आशा की आर्द्रता के माध्यम से नहीं। जो वासना, तृष्णा, कामना के सपने लगाकर जीवन के सत्यों को नहीं देखता, उघाड़ कर नग्न सत्यों को देखता है। न तो वह आशावान है, न निराशावान है। आशा-निराशा दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उसने वह सिक्का ही फेंक दिया। अब वह यथार्थ में जीता है। और जो यथार्थ में जीता है, वही रोज-रोज यथार्थ होता चला जाता है। जीवन रोज-रोज सत्य के करीब आने लगता है।सत्य में जीने की क्षमता बड़ा साहस है। आशा तो कोई भी कर लेता है। कमजोर से कमजोर आदमी भी पहलवान होने की आशा करता है। गरीब से गरीब सम्राट होने की आशा करता है। भोगी से भोगी त्यागी होने की आशा करता है। आशा में तो कोई अड़चन ही नहीं है। आशा तो कोई भी कर सकता है। आशा तो मुफ132त मिलती है। इसलिए मैं कहता हूं, आशा के अतिरिक्त इस संसार में मुफ132त कुछ भी नहीं मिलता। सत्य तो मिलता ही नहीं; बस आशा मिलती है—कोरी आशा!मैंने सुनी है, एक बहुत पुरानी कहानी है। एक आदमी ने परमात्मा की बड़ी प्रार्थना पूजा की। परमात्मा प्रसन्न हुआ। और जिस शंख को बजाकर वह आदमी पूजा करता था, परमात्मा ने कहा, अब यह शंख तेरे लिए वरदान है। तू इसे सम्हाल कर रख। और तुझे जो भी इससे मांगना हो, मांग लेना, वह तुझे मिल जाएगा।वह आदमी घर आ गया। पहले तो बड़ा उत्तेजित रहा। घर आते ही द्वार-दरवाजे बंद करके उसने शंख से कहा, कि एक महल मिल जाए; महल मिल गया। हीरे बरस जाएं घर में, हीरे बरस गए। एक सुंदर स्त्री आ जाए, सुंदर स्त्री आ गई। फिर धीरे-धीरे, जब सभी होने लगा, तो बड़ा निराश हो गया। कुछ बचा ही नहीं करने को। आशा करने को नहीं बचा। वह जो आशा से आकाश टंगा था, बिलकुल गिर गया, ऐसा लगा। अब जो कहे, वह हो जाता है। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आदमी आशा में जीनेवाला था। सत्य में तो जी नहीं सकता था।अब यह जो शंख था, यह हर चीज को सत्य बना देता था। सपने को भी सत्य बना देता था। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। बड़ी ऊब आने लगी। सबसे सुंदर स्त्री भी ऊब देने लगी। हीरे-जवाहरात पड़े रहते। कौन सम्हाल कर रखें? क्या करे? महल बड़ा था, सब कुछ था। जो चाहता, सब उसी वक्त हो जाता।एक दिन एक संन्यासी घर में मेहमान हुआ। रात उस संन्यासी ने कहा, कि मेरे पास एक शंख है। यह शंख बड़ा अदभुत है। इससे तुम मांगो दस हजार, यह फौरन कहता है, 'दस हजार क्या करोगे? बीस हजार ले लो।' यह बड़ा अदभुत शंख है।वह आदमी बड़ा उत्सुक हुआ इस शंख में। क्योंकि उसकी तो आशा मर गई थी। वह जो शंख उसके फास था, यथार्थ का, वह हर चीज को सत्य बना देता था। उसकी आशा मर गई थी। उसने कहा, 'शंख एक मेरे पास भी है, जिससे मैं बड़ा ऊब गया हूं। ऐसा करो, हम बदल लें।' शंख बदल लिए गए। वह संन्यासी आया ही शंख बदलने था। संन्यासी आते ही इसलिए हैं गृहस्थ के घर, शंख बदलने। नहीं तो किसलिए आएगा? संन्यासी को हिमालय पर रहना है। उसको घर आने की गृहस्थ के क्या जरूरत? शंख बदलने आता है। कुछ है गृहस्थ के पास, जो उसके पास नहीं है।संन्यासी तो लेकर शंख चलता बना। इसने अपना नया शंख रखा, फिर से बड़े उत्साह से कहा, 'दस करोड़ रुपए दे दे'। उसने कहा, 'दस करोड़ में क्या होगा? बीस करोड़ ले ले।' वह बड़ा प्रसन्न हुआ, कि यह शंख तो! उसने कहा, 'अच्छा बीस करोड़ दे दे।' उसने कहा, 'बीस करोड़ में क्या होगा? चालीस करोड़ ले ले'।वह महाशंख था। वह सिर्फ बोलता ही था। तुम जितना कहो, वह उसका दोगुना करके बोलता था। थोड़ी देर में तो उसने छाती पीट ली, कि यह तो मारे गए। यह शंख देता तो कुछ भी नहीं है।वह कहता, कि 'पचास मंजिल का मकान'; वह कहता, 'क्या करोगे? सौ मंजिल का मकान ले लो।' तुम कहो सौ, वह कहता है दो सौ!वह शंख आशा का शंख था, कामना का, तृष्णा का। तृष्णा दुष्पूर है। वह कभी भरती नहीं। तुम जो मांगो, उससे दोगुना सपना

दिखाती है। वह कहता, एक स्वर्ग? दो स्वर्ग ले लो। एक परमात्मा चाहिए? हम दो दिए देते हैं। मगर देना-लेना कुछ भी नहीं, सिर्फ कोरी बातचीत थी। छाती पीटता, लेकिन अब देर हो चुकी थी।तुमने भी—सभी ने, जीवन के यथार्थ को छोड़कर आशा का शंख पकड़ लिया है। जीवन का यथार्थ तो देने को तैयार है वह सब, जिससे तुम्हारी तृप्ति हो सकती है, लेकिन तुम्हारी आशा मानने को राजी नहीं है : और ज्यादा—और ज्यादा। आशा का अर्थ है : 'और-और-और।' जितना हो, उससे ज्यादा। जो हो, उससे ज्यादा। कुछ भी मिल जाए, आशा तृप्त नहीं होती। आशा अतृप्ति का सूत्र है। इसलिए जब मैं कहता हूं, आशा छोड़ दोगे, तभी तुम जीवन के सत्य के साथ एक हो पाओगे; तो मैं बहुत सी बातें कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं, भविष्य की चिंता छोड़ो; वर्तमान पर्याप्त है। जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी फिक्र मत करो। जो तुम्हारे पास है, वह जरूरत से ज्यादा है, जरा उसे भोगो। सपने मत फैलाओ। सत्य काफी है; काफी से ज्यादा है।सपने फैला-फैलाकर ही तुम सत्य से वंचित हुए हो। तुम मांगो मत, जो मिला है, तुम उसके लिए अनुगृहीत हो जाओ।और तुम्हारी आशा मिटते ही निराशा भी मिट जाएगी। क्योंकि वह उसी की संगी-साथिन है, वह जोड़ा है। आशा पति हो, तो निराशा पत्नी है। वे साथ-साथ हैं। उनको अलग कभी किया नहीं जा सकता। उनमें कभी तलाक हुआ ही नहीं है।तो जब तुम किसी आदमी को निराश देखो, तो यह मत समझ लेना कि यह कोई त्याग को उपलब्ध हो गया है। इसने अति आशा की और वह पूरी नहीं हुई, इसलिए वह परेशान बैठा है, दुःखी बैठा है। यह फिर आशा से भर जाएगा। जल्दी ही यह फिर भूल जाएगा अपनी निराशा को। फिर नई आशा की उमंग ले लेगा।जो व्यक्ति वैराग्य को उपलब्ध होता है, उसकी आशा-निराशा दोनों जा चुकीं। उसने एक निर्णय उपलब्ध किया है। एक सार जीवन का निचोड़ लिया है, कि आज और अभी है सब; कल, कल व्यर्थ है। कल कभी आता नहीं।इस क्षण तुम पूरे जी लो, इस क्षण से बाहर जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। इस क्षण में सभी कुछ मौजूद है। पूरा अस्तित्व इस क्षण में ही मौजूद है। इस क्षण में ही सारा विराट मौजूद है, सारा ब्रह्म मौजूद है। इस क्षण में ही सारे अस्तित्व की सरिताएं गिर रही हैं। यह क्षण ही सागर है। तुम इसको पूरा जी लो। इस जीने से ही तुम्हारा दूसरा क्षण भी निकलेगा। इस जीने के ऊपर ही उभरेगा। इस जीने से विराट होगा, बड़ा होगा, गहरा होगा।लेकिन आशा के कारण नहीं; जीकर उसे निकलने दो।दुनिया के दो ढंग हैं : या तो तुम जीयो, और या तुम केवल सपने देखो। अधिक लोग सपने देखते हैं। और उनसे अगर कहो कि सपने छोड़ दो, तो वे कहते हैं 'आशा से आकाश टंगा है।' निश्चित, उनका आकाश सपनों से ही टंगा है। अगर वह गिर गया तो वे कहीं के न रह जाएंगे। वे सोच-सोच कर ही जीते हैं।उनकी हालत ऐसी है, जैसे किसी आदमी को भूख लगी हो, और वह भोजन तो न करता हो; राजमहल में भोज चल रहा है, उसके सपने देखता हो। यह मरेगा। क्योंकि चाहे राजमहल का सपना देखो, चाहे कितने ही सुस्वादु भोजन का सपना देखो, उससे खून नहीं बनेगा, उससे हड्डी नहीं बनेगी। उससे ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि मुंह की लार गतिमान हो जाए; और कुछ भी न होगा। लार के गतिमान होने से कोई पेट नहीं भरता, और भूख बढ़ती है।सूखी रोटी भी पास हो, तो सपनों के महोत्सव से और सपनों के भोज से बेहतर है। सूखी रोटी को भी ठीक से पचा लेना। उससे खून बनेगा, हड्डी बनेगी।अस्तित्व को वासना के माध्यम से मत जीयो—इसे ही मैं संन्यास कहता हूं।मैं यह नहीं कहता कि भाग जाओ संसार छोड़कर। संसार को पूरी तरह जीयो। ध्यान के माध्यम से जीयो, वासना के माध्यम से मत जीयो। वासना का माध्यम आशा के द्वारा चलता है। और ध्यान का माध्यम, ' जो है', बस उसको ही पर्याप्त मानता है।ध्यान संतोष है, संतुष्टि है।आशा असंतोष है, अधैर्य है।थ्ध्ऊ-एऊ्र श्य्सातवां प्रश्न ःण आप कहते हैं कि कबीर परमज्ञानी थे; लेकिन उनका प्रभाव केवल तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों में दिखाई पड़ता है। क्या ब्राह्मणों ने जातिगत पूर्वाग्रह के कारण उन्हें अस्वीकार कर दिया? बहुत कारण थे।एक तो, कबीर की जाति-पांति का कुछ पता नहीं। शायद मुसलमान घर में पैदा हुए थे और हिंदू घर में पले। तो न तो मुसलमान पूरी तरह से आश्वस्त थे, न हिंदू। दोनों संदिग्ध थे। और ऐसे यह बड़ा प्रतीकात्मक है। कोई भी संत न तो हिंदू होता, न मुसलमान। हो नहीं सकता। संत और हिंदू और मुसलमान? बात ही बचकानी लगती है। पर कबीर के जीवन का तो वह बिलकुल यथार्थ था।अनचाही संतान थे। शायद अविवाहित व्यक्तियों की संतान थे, नाजायज थे। मां-बाप तालाब के किनारे छोड़कर चले गए थे सुबह के अंधेरे में। एक हिंदू संन्यासी रामानंद सुबह स्नान करने सरोवर पर गए थे, उनके पैर की चोट बच्चे को लग गई, वह बच्चा रोने लगा।

उन्होंने उसे उठा लिया। वे उसे घर ले आए। रामानंद ने ही बड़ा किया। तो पले तो हिंदू घर में, शायद जन्मे थे मुसलमान घर में, ऐसी लोकोक्ति है।तो हिंदू, मुसलमान समझते थे, मुसलमान हिंदू समझते थे। स्वभावतः स्वीकार करने के लिए कोई भी समाज राजी न था।दूसरी बात ः अत्यंत दीन दरिद्र थे। अगर बुद्ध भी भिखारी के घर पैदा हुए होते तो यही गति हुई होती। अगर महावीर भी भिखारी के घर पैदा हुए होते तो यही गति हुई होती।जैनों के चौबीस ही तीथ[?]कर राजपुत्र हैं। हिंदुओं के सब अवतार राजा हैं। बुद्ध राजपुत्र हैं। भारत ने जितने धर्म पैदा किए, उनके सब अवतारी पुरुष राजवंशों से आए हैं। इसके पीछे कुछ कारण होना चाहिए।तुम्हारी धन के प्रति पूजा इतनी गहरी है कि तुम त्यागी को भी तभी पूजते हो, जब तुम्हें पक्का पता चल जाए, त्याग कितने का किया? त्याग के नापने का भी एक ही ढंग है तुम्हारे पास, कि छोड़ा कितना? तुम भोगी को भी नापते हो कि इसके पास दस करोड़ रुपए हैं; तुम त्यागी को भी नापते हो, इसने दस करोड़ छोड़े। तुम्हारा तराजू एक है।अगर त्यागी ने कुछ भी नहीं छोड़ा तो तुम कहोगे छोड़ा क्या ? कबीर तो गरीब हैं। छोड़ने को कुछ भी नहीं। इसलिए जो लोग धन को छोड़ने को त्याग समझते हैं, उनको कबीर में कोई त्याग न दिखाई पड़ा होगा। त्याग करने को कुछ है ही नहीं। तो यह परम संन्यासी हमारी आंखों से ओझल हो गया।मैं तुमसे कहता हूं कि बहुत और भी लोग बुद्ध की हैसियत के हुए हैं, बहुत और भी लोग महावीर की हैसियत के हुए हैं। लेकिन उनको कोई स्वीकार न कर पाया क्योंकि लोगों ने कहा, था ही क्या? नंगा नहाएगा, निचोड़ेगा क्या? तुम पर कुछ था ही नहीं और त्याग कर दिया! त्याग में मतलब ही क्या है? त्याग है महावीर का—देखो, कितने घोड़े, कितने हाथी, कितने रत्न!जैनियों की किताबें पढ़ो; तो वे इतना विस्तार करते हैं, हाथी, घोड़े, रथों का कि जो संदिग्ध मालूम पड़ता है। क्योंकि महावीर कोई बहुत बड़े सम्राट के लड़के नहीं थे। छोटी सी जमींदारी थी। ज्यादा से ज्यादा जिसको आज हम एक जिला कहते हैं, बस उतनी हैसियत रही होगी। डिप्टी कलेक्टर की हैसियत थी बाप की, इससे ज्यादा नहीं। बहुत छोटी सी जायदाद थी। लेकिन जैनियों के शास्त्र में इतने हाथी घोड़े हैं, कि अगर इतने थे तो पूरी जमीन पर वे ही खड़े रहे होंगे; और कोई जगह ही न बची होगी।फिर भक्त बढ़ाते चले जाते हैं। क्योंकि भक्तों को ऐसा लगता है, कि थोड़ा और अगर दान किया होता तो महावीर और बड़े हो जाते। और थोड़ा दान बढ़ा दो। अब तो कोई अड़चन नहीं है। किताब में लिखना है। संख्याएं बढ़ाते चले जाओ, शून्य पर शून्य रखते चले जाओ।अब कोई दावा भी नहीं कर सकता, कोई झंझट भी नहीं कर सकता; और अगर कोई झंझट भी करे, कोई लिखे भी कि यह बात ठीक नहीं है तो फौरन तुम अदालत में ले जा सकते हो कि हमारे धर्म की हानि हो गई; कि हमारे धर्म पर शक पैदा कर दिया। तो कोई किसी के धर्म के संबंध में कुछ कह ही नहीं सकता। सच झूठ जो भी चलता है, चलता है।बहुत महावीर के हैसियत के लोग हुए, लेकिन वे तीथ[?]कर की तरह स्वीकार न हो सके। तुम तीथ[?]कर तो उसी को मानोगे, जिसके पास धन रहा हो—चाहे छोड़ दिया हो अब!बड़ी मीठी कहानी है—मीठी भी, कड़वी भी। मीठी इसलिए कि आदमी के बुद्धि के संबंध में खबर देती है। कड़वी इसलिए, कि यह बुद्धि आदमी की रुग्ण मालूम होती है।कहानी है कि महावीर वस्तुतः तो एक ब्राह्मणी के गर्भ में पैदा होने वाले थे। गर्भ भी ले लिया था एक ब्राह्मणी के पेट में। लेकिन कहीं कोई तीथ[?]कर गरीब ब्राह्मणों के घर में पैदा हुआ है? यह बात कभी हुई नहीं। जैन शास्त्र कहते हैं, कि तीथ[?]कर तो सदा राज-घर, क्षत्रिय के घर में पैदा होता है।तो क्या करना? देवता बड़े चिंतित और परेशान हो गए कि यह तो अनघट घटा जा रहा है। महावीर ने जन्म ले लिया, वे जाकर गर्भ में प्रविष्ट हो गए हैं। तो छः महीने का जब गर्भ था, तब देवताओं ने साजिश की। करनी जरूरी थी, क्योंकि शास्त्र सही होना ही चाहिए। शास्त्र को सही सिद्ध करने में देवता तक बेईमानी कर रहे हैं!उन्होंने ब्राह्मणी के पेट से महावीर को निकाल लिया—यह पहली सर्जरी है। और त्रिशला, जिनके कि महावीर बाद में बेटे हुए—महारानी त्रिशला—उसके पेट से भी गर्भ निकाल लिया। उसके गर्भ को ब्राह्मणी के गर्भ में रख दिया और ब्राह्मणी के गर्भ को त्रिशला के गर्भ में रख दिया; तब देवताओं को शांति मिली, कि अब शास्त्र के अनुसार सब हो रहा है!इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है आदमी को, कि कहां पैदा होना है! वह भी शास्त्र के अनुसार! जिंदा रहना शास्त्र के अनुसार, मरना शास्त्र के अनुसार! शास्त्र तो फांसी मालूम होती है।तो महावीर पैदा हुए क्षत्रिय घर में। ऐसे बेटे वे ब्राह्मण ही थे, लेकिन गरीब ब्राह्मण! और ब्राह्मण तो गरीब होगा ही। ब्राह्मण धनी नहीं हो सकता, क्योंकि धन के लिए जितनी हिंसा चाहिए, जितना व्यवसाय, चालबाजी, बेईमानी चाहिए, वह ब्राह्मण

के पास नहीं है। वे क्षत्रिय घर में पैदा हुए।कबीर की तकलीफ यह है कि देवताओं ने कुछ इंतजाम न किया! एक तो घर का ठिकाना नहीं—लावारिस। बिलकुल शास्त्र से असम्मत। या तो देवता सो गए कबीर के पैदा होते वक्त, या तब तक देवता बचे नहीं, या कलियुग में सोचा होगा कि अब चलने दो, जो चल रहा है; होने दो, जो हो रहा है।न केवल गरीब के घर में पैदा हुए हैं, नाजायज भी हैं। नहीं तो क्यों मां-बाप छोड़ जाते सरोवर के तट पर? किसी कुंआरी लड़की के बेटे होंगे।तो कुछ पता-ठिकाना नहीं। बिलकुल लावारिस हैं। फिर दीन-हीन रहे। कौन स्वीकार करे? कौन उन्हें पूजे भगवान की तरह? कौन घोषणा करे कि वे बुद्ध हैं?और बुद्ध से रत्ती भर कबीर कम नहीं हैं। किसी महावीर से उनकी महिमा में जरा भी कमी नहीं है। लेकिन संयोग कबीर के विपरीत है। इसलिए मैं तो तुमसे कहता हूं कि यह भी आश्चर्य है कि कबीर का नाम बच गया। हमारे जैसे अंधे लोगों के समाज में, जहां धन की ही पूजा होती हो, पद की ही पूजा होती हो, जहां सिंहासन ही दिखाई पड़ता हो, और कुछ दिखाई ही न पड़ता हो, जहां कुल और गोत्र की पूजा होती हो, वहां एक नाजायज बेटा, जिसके मां-बाप का कोई ठिकाना नहीं —अनाथ, उसका नाम भी बच गया और थोड़े से लोग उसे प्रेम करनेवाले भी बच गए, यह भी चमत्कार है।बुद्ध के पीछे अगर राज्य की शक्ति न होती—और ध्यान रखना, उनके पीछे राज्य की शक्ति है। बुद्ध संन्यास तो ले लिए, लेकिन राज्य की शक्ति का तो पूरा उपयोग साथ चलता रहा जीवन भर। महावीर के पीछे राज्य की शक्ति है। महावीर संन्यास तो ले लिए लेकिन जिस राज्य में प्रवेश करेंगे, उसी राज्य का राजा सम्मान करेगा। क्योंकि वे सब संबंधित हैं। कोई भाई है, कोई भतीजा है, कोई ममेरा है, कोई चचेरा है। सब राजाओं के संबंध। क्योंकि राजा गैर राज-परिवारों में तो विवाह करते नहीं। तो सब संबंधी हैं। तो जहां भी महावीर जाएंगे, वहां राजा सम्मान करेगा। जब राजा सम्मान करेगा तो वजीर सम्मान करेंगे, जब वजीर सम्मान करेंगे तो और नासमझ, भीड़, कतार चली आएगी।तुम सोच लो कि अगर तुम्हारे गुरु को मिलने राष्ट्रपति आ जाए तो सब नालायक पीछे चले आएंगे। जब राष्ट्रपति जा रहा है, तो ठीक ही है।कबीर को तो मिलने कोई राजा कभी आया नहीं। कोई वजीर कभी द्वार पर दस्तक न दिए। तो भीड़ तो कभी आएगी नहीं। भीड़ तो राजा से चलती है।तो बुद्ध और महावीर को जो प्रतिष्ठा मिली, उसमें बुद्ध और महावीर की गुण-गरिमा नहीं, क्योंकि वैसी गुण-गरिमा तो कबीर में भी है, दादू में भी है, फरीद में भी है।गुण-गरिमा की तो कोई महिमा ही नहीं है। महिमा तो किसी और बात की है। नाते-रिश्तेदारी की है, सम्राटों की है। जहां बुद्ध जाते हैं, वहीं सम्राट आकर चरणों में झुकता है। और सम्राट समझाता है कि लौट जाएं घर। आपके पिता दुःखी हैं। अनेक सम्राटों ने कहा, आपको अपने घर न जाना हो, हमारे घर आ जाएं; यह भी राज्य आपका है। मैं अपनी पुत्री को ब्याह देता हूं। यह सारी संपत्ति तुम सम्हालो।तो इस सुविधा में बड़े फर्क हैं। फिर बुद्ध का जो इतना प्रचार हुआ सारे संसार में, उसका मूल आधार अशोक है। बुद्ध की गरिमा से वह नहीं पहुंच सकता था। यह जो प्रभाव है, उसके पीछे अशोक है, उसकी राज्यसत्ता है। अशोक ने भेजे संन्यासी, भिक्षु—चीन, जापान, लंका, बर्मा, स्याम, अनाम। सारे एशिया को भर दिया। और जब अशोक जैसा सम्राट भेजा, तो दूसरे सम्राटों ने भी अहोभाग्य से स्वीकार किया। यह धन्यभाग्य थे कि अशोक जैसा सम्राट छोटे-छोटे राज्यों को भिक्षु भेज रहा है। और अपने बेटे, बेटी तक को भेजा भिक्षु बना कर।अशोक ने फैलाया बुद्धधर्म।कबीर को कोई सम्राट नहीं मिला। काशी में नरेश थे, लेकिन वे कभी आए नहीं। क्योंकि कौन जाए इस लावारिस के पास?फिर कबीर के जीवन-ढंग की व्यवस्था बड़ी भिन्न है। उन्होंने सब तरह से शास्त्र तोड़ा है। वे परम संत हैं। बुद्ध ने भी शास्त्र तोड़ा है, लेकिन पूरी तरह नहीं। महावीर ने भी शास्त्र तोड़ा है लेकिन पूरी तरह नहीं। महावीर ने शास्त्र का उतना ही हिस्सा तोड़ा है, जो तोड़ा जा सकता है। लेकिन जो अपरिहार्य है, वह तो बचा लिया है।जैसे, शास्त्र कहते हैं, गृहस्थ अलग, संन्यासी अलग—इसको तो बचा लिया है। तो महावीर संन्यासी हैं, उनके गृहस्थ हैं। तो उन्होंने चार तीर्थ बनाए: साधु, साध्वी; श्रावक, श्राविका। वह भेद तो बहुत पुराना है, वह उन्होंने कायम रखा है। बुद्ध ने भी कायम रखा है।कबीर ने सब तोड़ दिया। कबीर साधु हैं कि गृहस्थ? कबीर गृहस्थ संन्यासी हैं, या संन्यासी गृहस्थ हैं? पत्नी है, बच्चे हैं, कबीर काम करते हैं और संन्यस्त हैं! यह बड़ी अपूर्व घटना है।इसलिए कौन इनको पूजेगा? संन्यासी समझते हैं भ्रष्ट; गृहस्थ समझते हैं पागल। क्योंकि गृहस्थों में भी ठीक नहीं बैठता यह आदमी; संन्यासी है।ऐसे ही संन्यासी मैं बना रहा हूं। वे कहीं भी ठीक न बैठेंगे। गृहस्थ कहेंगे, कुछ गड़बड़ हो गए, दिमाग फिर गया है। ये गेरुए कपड़े पहन लिए? यह क्या

भजन-कीर्तन और पूजन में और ध्यान में लगे हो? घर-द्वार सम्हालो। और संन्यासी कहेंगे, ये भ्रष्ट हैं। क्योंकि पत्नी बच्चे संन्यासी को कैसे हो सकते हैं? और तुम दुकान करते हो? ऐसा कभी सुना है कि संन्यासी—और दुकान करता है!कबीर ऐसे संन्यासी थे, जिनको मैं संन्यासी कह रहा हूं। कबीर दुकान भी करते, कपड़ा भी बुनते। जुलाहे थे, जुलाहे ही रहे। बहुत लोगों ने कहा बाद में, बहुत शिष्य भी हो गए, कि आप यह बंद कर दें, तो कबीर कहते कि नहीं; जो परमात्मा ने चाहा है, वह होने दो। मैं बंद करने वाला कौन? और जब तक हाथ चलते हैं, तब तक करूंगा भी क्या? बुनते रहने दो। और फिर बहुत 'राम' हैं, जो बाजार में मेरे कपड़ों की प्रतीक्षा करते हैं1तो वे कपड़ा बुनते; नाचते, बाजार जाते। क्योंकि उनके लिए तो सभी राम थे। और ग्राहक जब आता, तब उससे कहते, राम थोड़ा सम्हालकर पहनना। बड़े प्रेम से बुना है :

झीनी झीनी बीनी रे चदरिया।

राम-रस भीनी रे चदरिया।। चादर बुनते रहते और राम की धुन चलाते रहते। कबीर ने जो कपड़े बुने, वे अनूठे हैं। उनमें राम का रस डूबा हुआ है। और कबीर ने कहा कि ज्यों कि त्यों धर दीन्हीं चदरिया. . .खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया। तो कबीर कहते हैं कि ओढ़ी तो, पर खूब जतन से ओढ़ी।संन्यासी वह है, जो ओढ़े ही न। क्योंकि ओढ़ने में डर है, कहीं चदरिया खराब न हो जाए! और गृहस्थ वह है, जो डट कर ओढ़े; चाहे फटे, चाहे गंदी हो, कुछ भी हो जाए। और कबीर ने ओढ़ी—खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया!लेकिन 'जतन' से ओढ़ी। यह जतन शब्द बड़ा अदभुत है। कृष्णमूर्ति जिसको अवेयरनेस कहते हैं, वही है जतन। बड़े होश से, बड़े प्रयत्न से, बड़ी जागरुकता से ओढ़ी। और 'ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया'। और जब परमात्मा के पास वापस लौटने लगे, तो उसे वैसी ही लौटा दी जैसी उसने दी थी—और ओढ़ी भी। ऐसा भी नहीं, कि बिना ओढ़े, नंगे बैठे रहे। कबीर यह कह रहे हैं कि गृहस्थ भी रहे और संन्यस्त भी रहे। रहे संसार में और अछूते रहे—कमलवत।बहुत मुश्किल है। इसलिए कबीर को ऊपर की जातियों का तो कोई सम्मान न मिल सका, क्योंकि उनको डर लगा जाने में। अपनी से छोटी जाति के पास कौन जाना चाहे? ब्राह्मण डरता है अगर क्षत्रिय ज्ञानी हो जाए तो उसके पास जाने से। क्षत्रिय डरता है अगर वैश्य ज्ञानी हो जाए, उसके पास जाने से। वैश्य डरता है अगर शूद्र ज्ञानी हो जाए, उसके पास जाने से।चमार रैदास के पास कोई भी न गया। सेना नाई के पास कोई भी न गया। जुलाहे कबीर के पास कोई भी न गया। वे आखिरी हैं। उनके पास ऊंची श्रेणी के लोग भयभीत होते हैं।स्वभावतः वे ही लोग गए, जो उसी श्रेणी के थे। इसलिए कबीर को मानने वालों की संख्या निम्न वर्ग के लोगों में मिलेगी। निम्न वर्ग के लोगों के पास न तो धन है, न पद है, न प्रतिष्ठा है। वे किसी को ऊपर आकाश में उठाना भी चाहें तो नहीं उठा सकते। सच तो यह है, उन के कारण ही कोई आकाश में हो तो वह भी जमीन पर उतर आएगा। उनके पास कुछ भी तो नहीं है। इसलिए कबीर के माननेवाले कबीर को तो ऊपर नहीं उठा सके। कैसे उठाते? कोई उपाय न था। कोई सीढ़ियां न थीं उनके पास। बल्कि उनके मानने के कारण—चमार, भंगी, और शूद्र और हरिजन कबीर को मानने लगे; उस कारण और भी अड़चन हो गई पंडित को, ब्राह्मण को, क्षत्रिय को, वैश्य को आने की।ऐसा हुआ कि मैं एक गांव में था। और वहां रैदास की जयंती मनाई जा रही थी। रैदास तो चमार थे। गांव के चमार मेरे पास आ गए और उन्होंने कहा कि आप भी चलें और रैदास पर दो शब्द कह दें। मैं राजी हो गया। मैं जिनके घर में मेहमान था, वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए, जैन घर था, बड़े सम्पन्न व्यक्ति थे। उनको जरा बेचैनी मालूम होने लगी। सांझ को उन्होंने कहा, ऐसा है कि मुझे जरूरी काम है। अच्छा तो नहीं मालूम पड़ता कि आपको अकेला भेजूं—क्योंकि चमारों की सभा! अब उसमें गांव का प्रतिष्ठित श्रेष्ठ, श्रेष्ठि नगरसेठ, वह कैसे जाए चमारों की सभा में? और मैं तो कल चला जाऊंगा और यह झंझट सदा के लिए पीछे बंध जाएगी, कि चमारों की सभा में गए थे।तो उन्होंने कहा, 'मुझे जरा जरूरी काम आ गया है। आना तो आपके साथ था।'मैंने कहा, 'आप बिलकुल फिक्र न करें। जरूरी काम मुझे पता है, नहीं आया है, मगर कोई चिंता की बात नहीं, मैं अकेला ही जाऊंगा। आपको आने की कोई आवश्यकता भी नहीं।'नहीं', उन्होंने कहा, 'आप बुरा न मानें। आप ठीक कहते हैं, कोई काम नहीं आया है। आप से क्या झूठ बोलना! लेकिन डर लगता है चमारों की सभा—और आप भी न जाते तो अच्छा था।मैंने कहा, 'मैं तो जाऊंगा। किसी और की होती तो मना भी कर देता। चमार आए, उनको मना करना भी ठीक नहीं। कोई वहां जाने को राजी

भी नहीं है।'सेठ तो गए नहीं, वह तो ठीक ही है; ड्राइवर भी मुझे छोड़कर दूर गाड़ी खड़ी करके अपनी कार में बैठा रहा। कोई घर से मेरे साथ न गया। वे सब जगह मेरे साथ जाते थे पत्नी, बच्चे, सब क्योंकि और जगह जाने से मेरे साथ प्रतिष्ठा मिलती थी। जहां भी जाते, मंच पर बैठते। चमारों की सभा में मंच पर भी बैठने में डर! ड्राइवर भी मेरे पास नहीं खड़ा रहा। वह भी दूर कार खड़ी करके खड़ा रहा। मैंने उससे पूछा, कि तू सुनने नहीं आया? तू हमेशा गाड़ी बंद करके और सभा में आकर बैठता है। बोला, 'जरा चमारों में बैठना ठीक नहीं। फिर जो सेठ ने किया—सेठ क्यों नहीं आए आपको पता है? वही कारण मेरा भी है। मैं ब्राह्मण हूं। सेठ तो वैश्य हैं। अगर वैश्य नहीं आ सकता, तो मैं तो ब्राह्मण हूं। और ब्राह्मण भी कोई साधारण नहीं, कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूं।'पागलों की दुनिया है। तरह-तरह के पागल हैं—कान्यकुब्ज, देशस्थ, कोंकणस्थ—तरह-तरह के पागल हैं। चमारों की सभा में कौन जाए! चमार बड़े प्रसन्न हुए, बड़े आनंदित हुए। उन्होंने कहा, हम सदा बुलाते हैं, निमंत्रण देते हैं। कोई आता ही नहीं। कबीर के पास कौन जाए?जबलपुर में जहां मैं रहता था वर्षों तक, वहां नाई 'सेन उत्सव' मनाते हैं सेना नाई का। कोई जाने को राजी नहीं। मैं जब बोलता था तो मुझे कोई दस हजार, पंद्रह हजार लोग सुनने आते थे। यह सोच कर सेना के भक्तों ने सोचा, कि अगर मैं बोलूं सेना नाई पर तो दस-पंद्रह हजार आदमी सुनने आएंगे। सेना नाई की बड़ी ख्याति होगी। मैंने उनको कहा, 'तुम गलती में हो। वे जो मुझे सुनने आते हैं दस-पंद्रह हजार लोग वे जब मैं तुम्हारे सेना नाई पर बोलूंगा तो नहीं आएंगे।'उन्होंने कहा, 'आप बात छोड़िए। वे आपको प्रेम करते हैं, सेना नाई से क्या लेना-देना? आप जिस पर भी बोलते हैं, वे सुनने आते हैं। गीता पर बोलते हैं, तो सुनने आते हैं, महावीर पर बोलते हैं तो सुनने आते हैं, बुद्ध पर बोलते हैं तो सुनने आते हैं।'मैंने कहा, 'वह ठीक है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, वह सभी सवर्णों की दुनिया है। मगर तुम नहीं मानते तो मैं आऊंगा।मैं गया। कोई नहीं आया। पंद्रह हजार तो दूर, पंद्रह चेहरे न दिखे मुझे, जिनको मैं पहचानता था। सिर्फ नाई दिखाई पड़े। और बेचारे बड़ी राह देखते रहे, कि कोई आए। बस, पंद्रह-बीस नाई! वह भी एक नाईबाड़े के सामने उन्होंने मुझे बिठा दिया। उन्होंने बड़ी आशा की थी, बड़ा इंतजाम किया था, पंडाल बिछाया था, लगाया था—कोई नहीं आया!मैंने उनसे कहा, वे नहीं आएंगे। सेना नाई पर मुझे सुनने नहीं आ सकते तो सेना नाई के पास तो कैसे होंगे? असंभव!और भारत तो बहुत ही ज्यादा अहंकारी मुल्क है। तुम कहते इसको धार्मिक हो, यह धार्मिक है नहीं। इससे ज्यादा अहंकारी समाज खोजना संसार में कठिन है। मैं तुमसे कहता हूं, भारत के बाहर ही यह घटना घटी है, जिनको तुम धार्मिक नहीं कहते।जीसस बढ़ई थे, फिर भी 'ईश्वर के पुत्र' की घोषणा हो सकी। मुहम्मद किसी बहुत ऊंचे वर्ण से नहीं आते थे। भेड़ों को चराने और भेड़ों के बाल काटने का धंधा करते थे, फिर भी पैगंबर हो सके। भारत के बाहर ही यह अनूठी घटना घटी है कि मुहम्मद जैसा अपढ़, गरीब, शूद्र वर्ग से संबंधित, जीसस जैसा अपढ़ शूद्र वर्ग से संबंधित व्यक्ति जीवन के उच्चतम शिखर पर विराजमान हो सका है। भारत तो बहुत अहंकारी है। अगर यहां क्राइस्ट पैदा होते भूल से, तो उनकी वही गति होती, जो कबीर की हुई। अगर यहां मुहम्मद पैदा हो जाते तो वही गति होती, जो कबीर की हुई; कोई फर्क न पड़ता।भारत बहुत अहंकारी है। यहां धर्म भी अहंकार का हिस्सा हो गया है। और धार्मिक अहंकार! पवित्र अहंकार और भी खतरनाक हो जाता है—पवित्र जहर जैसा खतरनाक : क्योंकि जहर में अगर थोड़ा कुछ और मिला हो तो जहर जरा कम जहरीला हो जाता है।मुल्ला नसरुद्दीन मरना चाहता था। तो बाजार गया, जहर खरीद लिया, रात को खाकर सो गया। कई बार उठ-उठ देखा, अभी तक मरे नहीं? सुबह भी हो गई। आंखे बंद किए थोड़ी देर पड़ा रहा, कि शायद मर गए हों। दूधवाले की आवाज सुनाई पड़ने लगी, घर में बरतन-भांडे बजने लगे—क्या मामला है? आंखें खोलकर देखा, सब वैसे ही है, मरे नहीं। सोचता था शायद नरक में पहुंचे कि स्वर्ग में —क्या हुआ? लेकिन मरे ही नहीं!भागा हुआ दुकान पर पहुंचा जहर के और कहा 'हद हो गई! तुमने धोखा दिया।' उसने कहा, 'भई, मैं भी क्या कर सकता हूं? सभी चीजों में मेल चल रहा है।' जहर भी शुद्ध कहां है आज? दूध ही अशुद्ध नहीं मिल रहा, जहर भी अशुद्ध है। उसको भी खाकर पक्का भरोसा नहीं कर सकते, कि मर ही जाओगे।शुद्ध जहर तो बहुत खतरनाक हो जाता है। और धार्मिक व्यक्ति का अहंकार शुद्ध जहर है। उसमें से सब अशुद्धि बाहर निकाल दी गई। धनी आदमी के अहंकार में थोड़ी अशुद्धि है। वह अशुद्धि यह है, कि धन खो जाए तो अहंकार को गिरना पड़ेगा। पहलवान के अहंकार में थोड़ी अशुद्धि है, शरीर कल बीमार पड़ जाए—और पहलवान अक्सर बीमार

पड़ते हैं। भयंकर बीमारियों से मरते हैं। क्योंकि पहलवानी शरीर के साथ ज्यादती है। वह प्राकृतिक है। इसलिए गामा हो, कि कोई भी हो, कैंसर, क्षयरोग, खतरनाक बीमारियों से मरते हैं—मरेंगे ही! क्योंकि शरीर के साथ जबरदस्ती कर रहे हैं। पहलवानी कोई स्वास्थ्य नहीं है।तो एक दिन शरीर मरेगा, टूटेगा, खराब होगा; तब अकड़ चली जाएगी। आज पद पर हो, मिनिस्टर हो कि चीफ मिनिस्टर हो, कल नहीं रहोगे। फिर भीख मांगते वोट की फिरोगे। इसलिए वह अकड़ भी शुद्ध नहीं है।लेकिन धार्मिक आदमी की अकड़ बिलकुल शुद्ध है। उसको तुम छीन नहीं सकते। वह चरित्रवान है। चरित्र को कैसे छीनोगे? वह राम- चदरिया ओढ़ता है, राम-राम जपता है; उसको कैसे छीनोगे? वह मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है, यज्ञ-हवन करता है; उसको कैसे छीनोगे?उसका अहंकार छीनना मुश्किल।भारत महा-अहंकारी है। उसने अपने अहंकार को बड़े आभूषणों से सजा लिया है। और इसलिए बहुत से परम-ज्ञानियों से देश लाभ लेने से वंचित रह गया। बहुत पैदा हुए हैं इस मुल्क में, जिन्होंने परम सत्य को जाना है।इसलिए मैं एक तरफ उपनिषदों पर बोल रहा हूं, कृष्ण पर बोल रहा हूं, लेकिन कबीर को भूलता नहीं। बीच-बीच में कबीर को भी ले आता हूं। किसी तरह राजपुत्रों को और शूद्रों को करीब लाना है। किसी तरह सिंहासन और भिखारी को पास लाना है। ताकि हम यह समझ सकें, कि सत्य को पाने का कोई भी संबंध न तो जाति से है, न वर्ण से है, न धर्म से है, न कुल से है, न गोत्र से है। सभी के लिए खुला आकाश है सत्य का। जो भी आने का राजी है, उसका ही स्वागत है।

आज इतना ही।

तेरहवां प्रवचन

पिया मिलन की आस

आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव। .
लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौं पीव।।
सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।
नैन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसुवार।
पपिहा ज्यों पिउ फिउ रटै, पिया मिलन की आस।।
कबीरा वैद बुलाइया, पकरि के देखो बांहि।
वैद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।।

प्रभु की खोज बड़ी अनूठी है। क्योंकि जिसे हम खोजते हैं उसका कोई पता नहीं, कोई ठिकाना नहीं। वह है भी, यह भी पक्का नहीं। कोई मंजिल है, तब तो मार्ग पर चलना आसान हो जाता है। लेकिन मंजिल दिखाई भी नहीं पड़ती, होगी इसका भी संदेह बना रहता है, कोई नक्शा हाथ नहीं, कोई दिशा-संकेत कोई मार्ग पर लगे मील के पत्थर नहीं।खोज बड़ी अनूठी है। इसलिए बहुत कम लोग तो खोज ही शुरू करते हैं। इतने अनूठे अभियान में जाने का साहस कम लोगों का होता है। और जो खोज शुरू भी करते हैं, उनमें से भी बहुत ही कम पहुंच पाते हैं।चार तरह के लोग हैं। उन्हें हम ठीक से समझ लें। पहला वर्ग है, सरल-चित्त लोगों का; जिनके जीवन में श्रद्धा स्वाभाविक है। जिन्होंने संदेह जाना ही नहीं। जिन्होंने उस घाट का पानी ही नहीं पिया। जो किसी भांति बच गए। जो छोटे बच्चे की भांति ही हैं। जो सिर्फ भरोसा करना जानते हैं। उन्हें भरोसे का भी पता नहीं। क्योंकि भरोसे का भी पता उसे ही होता है, जिसने संदेह किया हो। उनकी सरलता ऐसी स्वाभाविक है, कि उसका बोध भी नहीं हो सकता।ऐसे लोग तो परमात्मा को उपलब्ध ही हैं। आंख भर खोलने की बात है। द्वार खटखटाने की भर जरूरत है। शायद एक कदम भी उन्हें चलना नहीं, वे जहां हैं, वहीं उनका परमात्मा प्रकट हो जाए।कभी पृथ्वी ऐसे वर्ग से भरी थी। लेकिन धीरे-धीरे वह वर्ग कम होता गया है। उसके भी कारण हैं। क्योंकि तब संदेह की कोई शिक्षा-दीक्षा न थी। सारा जीवन ही एक ही पाठ पढ़ाता था, वह श्रद्धा का था। सब तरफ प्रकृति से एक

ही खबर मिलती थी, वह श्रद्धा की थी। चांद-तारे श्रद्धा से घूमते मालूम पड़ते। सुबह रोज सूरज उग आता है समय पर, कभी नानुच नहीं करता। ऋतुएं एक वर्तुलाकार परिधि में घूमतीं—एक शांत नियम से। बच्चा जवान होता है, बूढ़ा होता है—सब व्यवस्थित है। और सब किसी गहरे अनुशासन में बंधा है।उन दिनों, जब श्रद्धावाले वर्ग का प्राबल्य था, कोई शिक्षा न थी संदेह की, कहीं से उसका पाठ न मिलता था। बचपन से लेकर—जब आंख खुलती, मृत्यु के क्षण तक, जब आंख बंद होती—सारा जीवन एक ही बात सिखाता था, वह भरोसा था।अब वह वर्ग ना के बराबर है। लाओत्से का बड़ा प्रसिद्ध वचन है, कि जब धर्म मिट गया, तब लोगों ने धर्म का चिंतन शुरू किया। वह पहले तरह के लोगों का धर्म रहा होगा। धर्म था ही नहीं। इसे थोड़ा समझ लेना।धर्म की जरूरत ही नास्तिक को है। धर्म की जरूरत ही संदेहवाले को है। धर्म की आवश्यकता ही रुग्ण को है, क्योंकि धर्म औषधि है। अगर तुम बीमार ही नहीं हो, तो धर्म का क्या सवाल?लाओत्से कहता है, याद करो उन प्राचीन दिनों को, जब धर्म का किसी को पता ही न था। क्योंकि लोग सहज ही धार्मिक थे। लोग स्वस्थ थे, औषधि का कोई चिंतन न था। लोग नैतिक थे, नीति की कोई विचारणा न थी। लोक सहज ही स्वभाववश धार्मिक थे। न मंदिर था, न मस्जिद थी, न गुरुद्वारे थे; न वेद था, न कुरान थी, न बाइबिल थी। ये सब तो रोग की दुनिया के हिस्से हैं।यह तुम्हें जानकर थोड़ी हैरानी होगी, चिकित्सा का शास्त्र बीमार जगत का हिस्सा है। किसी दिन, तुम थोड़ा सोचो, अगर सारे लोग स्वस्थ हो जाए, बीमारी तिरोहित हो जाए, तो चिकित्सक विदा हो जाएगा। चिकित्सा का शास्त्र लोग धीरे-धीरे भूल जाएंगे।कानून की जरूरत है, क्योंकि लोग चोर हैं, बेईमान हैं। अगर लोग ईमानदार हों, तो कानून की कोई जरूरत न होगी। अदालत चाहिए, क्योंकि आदमी का आदमी पर भरोसा नहीं है। आदमी का आदमी पर भरोसा हो, अदालत विदा हो गई। इसलिए मैं कहता हूं,

कानून चोरों पर जीता है। न्यायाधीश के पैर के नीचे बेईमानों की जमात है। अदालतें अनीति पर खड़ी हैं, अन्यथा खो जाएंगी।खलील जिब्रान की एक बड़ी मीठी कहानी है। एक रात एक शराबघर में एक व्यक्ति अपने मित्रों को लेकर आया और उसने खूब शराब पी, पिलाई, खूब लुटाई। ऐसे भी जो अनजान लोग बैठे थे शराबघर में, उनको भी बांटी। शराबघर का मालिक तो बड़ा प्रसन्न हुआ ऐसे दानी ग्राहक को पाकर।आधी रात तक शोरगुल मचता रहा, शराब बहती रही। और लोग जब विदा हुए तो उसने अपनी पत्नी से कहा, कि ऐसे ग्राहक रोज आएं तो हमारा धन्यभाग! उस आदमी ने विदा होते वक्त, जब वह बिल चुका रहा था, यह बात सुनी, तो उसने कहा, कि तुम प्रार्थना करो कि हमारा धंधा ठीक से चलता रहे। तो रोज क्या, हम तो यहीं बने रहें, आने का सवाल ही नहीं।उस आदमी ने पूछो, तुम्हारा धंधा क्या है?उसने कहा, यह मत पूछा! मैं मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करता हूं। मुर्दे रोज आते रहें, लकड़ी बिकती रहे, हम यहीं जमे रहेंगे। कभी मुर्दे आते हैं, कभी नहीं आते। भगवान से प्रार्थना करो हमारा धंधा ठीक चले, हम रोज आते रहेंगे।अब जो आदमी मरघट पर लकड़ी बेचता है, उसकी सारी प्रार्थनाएं यही हैं कि कोई मरे। जल्दी करो, मरो! कोई तो मरो!तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, चिकित्सक की प्रार्थना यही है कि कोई तो बीमार हो जाओ। न्यायाधीश की प्रार्थना यही है, कोई तो चोरी करो, कोई तो हत्या करो।एक नया-नया आदमी न्यायाधीश हुआ था। दिन भर कोई मुकदमा न आया, तो उसने अपने क्लार्क से बड़ी उदासी हालत में कहा—क्योंकि वह बिलकुल तैयार आया था—नया न्यायाधीश! जैसा नया मुल्ला मसजिद जाता है, वैसा नया न्यायाधीश नियुक्त हुआ था। सब कानून वगैरह याद करके व्यवस्था से आया था, कि इस ढंग से शुरुआत करनी है। लेकिन कोई मुकदमा ही न आया! उसने क्लार्क से कहा, कि बड़ी निराशा होती है, कोई मुकदमा ही न आया।

उसने कहा, आप घबड़ाएं मत, मुझे आदमी के चरित्र पर पूरा विश्वास है। शाम तक रुकें। जरूर कुछ न कुछ होगा ही। मुझे आदमी के चरित्र पर पूरा विश्वास है। कोई न कोई चोरी होगी, कोई हत्या होगी, कहीं छुरा चलेगा, कहीं आग लगेगी; आप घबड़ाएं मत। आप चिंतित मत हों। मेरी जिंदगी इस अदालत में बीत गई। ऐसा कभी होता ही नहीं कि दिन खाली चला जाए। आदमी के चरित्र पर मुझे पूरा विश्वास है! कोई आता ही होगा, रास्ते पर ही होंगे।कैसा चरित्र है यह आदमी का, जिस पर अदालत जीती है!और अगर लोग धार्मिक हों, तो पुरोहित न बचेगा। पुरोहित भी जीता है अधार्मिक आदमी के आधार पर। और अगर लोग साधु-चरित्र हों, तो तुम्हारे साधुओं का क्या होगा? वे खो जाएंगे। वे असाधुओं

के आधार पर जीते हैं। साधु का मूल्य है, क्योंकि लोग असाधु हैं। अगर लोग साधुता से भरे हों, साधु का क्या मूल्य?इसलिए लाओत्से कहता है, धन्य थे वे दिन, याद करो वे पुराने दिन, प्राचीन पुरुषों का समय, जब धर्म की कोई बात ही न करता था, क्योंकि लोग सहज ही धार्मिक थे। तब नीति के कोई नियम न थे, क्योंकि नियम किसी ने कभी तोड़े ही न थे।तोड़नेवाले से नियम बनते हैं। बिगाड़नेवाला व्यवस्था को सख्त करता है। हिंसक अहिंसा के शास्त्र को जन्म देता है। हिंसकों के समाज में 'अहिंसा परमो धर्मः' यह सूत्र हो जाता है।वह पहले तरह का व्यक्ति तो कम होता गया। उस तरह के व्यक्ति से कभी धर्म का जन्म नहीं होता, वैसा व्यक्ति धार्मिक होता है। और वैसे व्यक्ति की तुम्हें कभी कोई खबर भी न मिलेगी। अगर वह होगा भी, तो उसकी तुम्हें कोई खबर नहीं मिलेगी। क्योंकि उसके जीवन में कोई उपद्रव ही न होगा। उसके जीवन में कोई क्रांति ही न होगी। शांति तो सघन होगी, क्रांति न होगी। और जब तक क्रांति न हो, तब तक तुम्हें खबर नहीं मिल सकती। वह ऐसे होगा, जैसे है ही नहीं।ऐसे धार्मिक व्यक्तियों का उल्लेख किसी शास्त्र में नहीं है; हो नहीं सकता। तुम जानकर हैरान होओगे कि बुद्ध, महावीर, कबीर या मैं पहले वर्ग के लोग नहीं हैं। पहले वर्ग के आदमी का तो पता ही नहीं चल सकता। तुम मेरे पास आते कैसे? पहले वर्ग को तो
खुद ही पता नहीं चलता कि वह धार्मिक है, दूसरे को कैसे पता चलेगा?वह सहज ही चुपचाप जी लेता है। उसके जीवन में एक सुगंध तो होती है, लेकिन वह सुगंध ऐसी होती है, जैसे निर्जन में कोई फूल खिलता है। उसके जीवन में महिमा तो होती है, लेकिन उस महिमा को देखने शायद ही कोई कभी आता है। पता ही नहीं चलता।वैसे व्यक्ति के जीवन में परमात्मा की खोज ही पैदा नहीं होती। वैसा व्यक्ति परमात्मा में ही जीता है। पैदा उसी में होता है, जीता उसी में है, सांस उसी में लेता है, उसी में डूब जाता है। वैसे व्यक्ति का अपना होना अलग नहीं होता। ऐसा व्यक्ति न तो किसी साधना की जरूरत अनुभव करता है, न किसी साध्य की। ऐसे व्यक्ति का साधन और साध्य अलग-अलग नहीं होते। ऐसा व्यक्ति चुपचाप जी लेता है। उसकी श्वास-श्वास में अहोभाव होता है, उसके रोएं-रोएं में प्रार्थना होती है, लेकिन उसे भी पता नहीं होता।क्योंकि प्रार्थना जब पता चलने लगे, तब दूसरी तरह का व्यक्ति है, पहली तरह का व्यक्ति नहीं। दूसरी तरह का व्यक्ति ठीक विपरीत है पहली तरह के व्यक्ति से। पहले तरह के व्यक्ति के लिए श्रद्धा स्वाभाविक है। उसे संदेह पैदा ही नहीं होता। उसे शक आता ही नहीं। वह उसकी लक्षणा है—श्रद्धा। वह उसके जीने का ढंग है। जैसे वह सांस लेता है, ऐसे ही वह श्रद्धा लेता है।दूसरे तरह का व्यक्ति संदेह में निष्णात है। संदेह ही उसकी एकमात्र श्रद्धा है। वह संदेह करना ही जानता है। संदेह में ही जीना है। संदेह को उसकी पराकाष्ठा पर ले जाता है। बुद्ध, महावीर, कबीर सब दूसरे वर्ग के लोग हैं। इसलिए इनसे विराट धर्म का जन्म होता है।जब दूसरे व्यक्ति का संदेह पराकाष्ठा पर पहुंचता है, तब वह अपने ही संदेह से दबकर, परेशान होकर, पीड़ित होकर संदेह को छोड़ता है और श्रद्धा को उपलब्ध होता है। वह संदेह में जलता है। जैसे कोई धूप में जलता हो भरी दुपहरी और फिर धूप में चल-चल कर थक जाए, पसीना-पसीना हो जाए, शरीर टूटने लगे, कदम उठाना मुश्किल हो जाए, तब एक वृक्ष के नीचे छाया में विश्राम करे।संदेह में चलता है ऐसा व्यक्ति, लेकिन संदेह में चल-चल कर टूटता है, थकता है।टूटेगा ही, थकेगा ही, क्योंकि संदेह जीवन नहीं है। संदेह तो विषाक्त है। जिसको भी उसकी आदत लग गई। वह उसे मिटाता है, आत्महत्या करवाता है।संदेह सिकोड़ता है, मारता है।श्रद्धा फैलाती है, बड़ा करती है।इसीलिए तो श्रद्धा अंततः परमात्मा बनाती है तुम्हें। और संदेह अंततः तुम्हें सिर्फ एक क्षुद्र अहंकार में सीमित कर देता है। अगर संदेह के मार्ग से तुम चले, तो इस जगत में जो क्षुद्रतम वस्तु है अहंकार, वही तुम्हारी संपदा रह जाएगी। 'मैं' के अतिरिक्त कुछ भी न बचेगा।अगर तुम श्रद्धा से चले, तो 'मैं' भर न बचेगा, और सब बचेगा। विराट बचेगा, तुम खो जाओगे। संदेह से चले तो बूंद रहेगी, सागर का कोई पता न रह जाएगा। श्रद्धा से चले तो सागर ही रहेगा, बूंद को खोजना ही मुश्किल हो जाएगा।दूसरा वर्ग संदेह से चलनेवाले लोगों का है, विचारकों का है, दार्शनिकों का, चिंतकों का, जिनको हम मनीषी कहते हैं, मनीषियों का। सोचते हैं; सोचने का मतलब ही संदेह होता है।पहला वर्ग सोचता ही नहीं। वह तुम्हें भोला-भाला लगेगा। ऐसा भी हो सकता है, कि तुम्हें थोड़ा बुद्धू मालूम पड़े। उसकी श्रद्धा तुम्हें ऐसी लगेगी कि थोड़ी सी मूढ़ता जैसी है। समझ नहीं है, हृदय ही हृदय है; बुद्धि बिलकुल नहीं है। कोई भी उसे धोखा दे सकता है। लेकिन कितना ही तुम उसे धोखा दो, तुम उसे संदेह नहीं दे सकते। तुम उसे धोखा दिए चले

जाओ, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। वह कोई रास्ता निकाल लेगा अपनी श्रद्धा को बचाने का। तुम उसकी श्रद्धा को नष्ट नहीं कर सकते। वह तुम्हें थोड़ा सा सरल भी मालूम पड़ेगा, भोला भी मालूम पड़ेगा, थोड़ा बुद्धू भी मालूम पड़ेगा।इसलिए तो जगत से वह धीरे-धीरे मिट गया। क्योंकि तुम जहां, जिस जगत में जीते हो, उस संघर्ष में खड़े होने में उसके बचने की संभावना ही नहीं है। वह इतना शुद्ध है कि वह खो जाएगा। जैसे सोने का आभूषण बनाना हो तो थोड़ी अशुद्धि मिलानी पड़ती है। अगर सोना बिलकुल शुद्ध हो, तो आभूषण नहीं बन सकता। क्योंकि थोड़ी अकड़ चाहिए।इसलिए श्रद्धा संसार से खो गई है। या कभी कोई आदमी होता भी है, तो उसका पता नहीं चलता। वह इतना शुद्ध सोना होता है कि तुम्हें उसके जीवन में कोई आभूषण न दिखाई पड़ेंगे। तुम उसे बुद्ध की महिमा से भरा हुआ न पाओगे।दूसरा वर्ग है संदेह करनेवाले लोगों का, जो हर चीज पर संदेह करते हैं। जो संदेह को उसकी अंतिम सीमा तक ले जाते हैं। जो अति पर ले जाते हैं। जो संदेह से ही घिर जाते हैं। जिनके चारों तरफ संदेह का अंधकार ही बचता है। जो संदेह की पीड़ा से गुजरते हैं, संताप को भोगते हैं, संदेह का नरक देखते हैं।अगर कोई व्यक्ति, यह दूसरे वर्ग का व्यक्ति जब तक पूर्ण संदेह से न भर जाए, तब तक इसके जीवन में क्रांति घटित नहीं होती। जब इसका संदेह इतना ज्यादा हो जाता है, कि यह संदेह पर संदेह करने लगता है—वह आखिरी घड़ी आ गई; अब संदेह मरने की घड़ी में आ गया, जब संदेह पर संदेह होता है।इस घड़ी तक बहुत कम लोग पहुंचते हैं। जो पहुंच जाते हैं, उनके जीवन में बुद्धत्व का जन्म हो जाता है। संदेह पर संदेह करते ही संदेह गिर जाता है। और तब एक श्रद्धा का आविर्भाव होता है।यह श्रद्धा तुम्हें दिखाई पड़ेगी। पहले वर्ग की श्रद्धा तुम्हें दिखाई न पड़ेगी, क्योंकि उसमें विपरीत बिलकुल नहीं है। वह सफेद दीवाल पर खींची गई सफेद लकीर है। बुद्ध काले ब्लैक-बोर्ड पर खींची गई सफेद लकीर हैं। वे तुम्हें दिखाई पड़ेंगे, सदियों तक दिखाई पड़ेंगे। वे अनंत काल तक दिखाई पड़ते रहेंगे। उनकी महिमा का गुणगान जारी रहेगा।दूसरे वर्ग का व्यक्ति अगर अपने संदेह में पूरा-पूरा चला जाए— और वह चला ही जाता है—तो वह नास्तिक होकर आस्तिक होता है। इसलिए उसकी आस्तिकता में पहली आस्तिकता से ज्यादा महिमा दिखाई पड़ती है। क्योंकि उसके जीवन में एक क्रांति घटती है, एक रूपांतरण होता है। अचानक अंधकार प्रकाश बनता है। अचानक संदेह श्रद्धा बन जाता है। वही ऊर्जा, जो संदेह बनती थी, श्रद्धा बन जाती है। वही ऊर्जा, जो विचार बनती थी, ध्यान बन जाती है। वही ऊर्जा, जो समस्याओं में उलझी थी, समाधि बन जाती है।उसके जीवन में इतनी बड़ी क्रांति होती है कि जैसे पत्थर अचानक उठकर चलने लगे। सारी दुनिया को दिखाई पड़ेगा। उसके पीछे हजारों लोग चलेंगे, लाखों लोग चलेंगे। उसके पीछे धर्म निर्मित होंगे।

व्यक्ति अपने को सत्य में ही पाता है।इसलिए हम पहले व्यक्ति की चर्चा न भी करें, तो भी चलेगा। क्योंकि उसको कोई जरूरत भी नहीं है। उसका कोई प्रयोजन नहीं। वह तो, गणित तुम्हें पूरा समझ में आ जाए, इसलिए मैंने पहले की भी बात की, ताकि तुम दूसरे को ठीक से समझ लो। अन्यथा दूसरे को समझना मुश्किल होगा।कबीर और बुद्ध बड़े तार्किक हैं। महावीर से बड़ा तार्किक खोजना मुश्किल है। लेकिन उनका तर्क श्रद्धा के लिए समर्पित हो गया है। कभी वह तर्क श्रद्धा के विपरीत लड़ा था, खूब लड़ा था, आखिरी दम तक लड़ा था। जब तक जीतने की कोई भी आशा बची थी, तब तक लड़ा था। जब सब आशा खो गई, और जीतने के सब उपाय खो गए, तभी उसने शस्त्र डाले।यह दूसरा व्यक्ति—पहला व्यक्ति तो आस्तिक है ही; उसे पता भी नहीं, कि वह आस्तिक है। दूसरा व्यक्ति आस्तिक है और उसे पता है, कि वह आस्तिक है क्योंकि वह नास्तिकता से गुजरा है। पहला व्यक्ति ऐसा है, जो कभी बीमार ही नहीं पड़ा, सिर में दर्द ही नहीं हुआ, वह जानता ही नहीं कि बीमारी क्या है; वह जानता ही नहीं कि स्वास्थ्य क्या है, क्योंकि बीमारी के बिना स्वास्थ्य को कैसे जानोगे?दूसरा व्यक्ति बीमार रहा, अस्पतालों में रहा, हजार तरह की दवाइयों का कष्ट झेला, हजार तरह की चिकित्सकों से गुजरा, फिर स्वस्थ हुआ।पहला व्यक्ति जागा, तब सुबह ही थी। दूसरा व्यक्ति जब जागा तब आधी रात थी। रात में भटका, अंधेरे में ठोकरें खाइ, फिर सुबह हुई। पहले व्यक्ति ने जब आंख खोली, तब वह मंदिर में ही था। दूसरे ने जब आंख खोली, तब उसने अपने को बाजार में पाया और यात्रा की, और मंदिर तक पहुंचा।पहला व्यक्ति तीर्थ में ही पैदा होता है। दूसरा व्यक्ति तीर्थयात्रा करके तीर्थ पहुंचता है। स्वभावतः दूसरे व्यक्ति की घोषणा दूर-दूर तक सुनी जाती है। दूर दिगंत तक उसका नाम गूंजता है। उसके शब्दों का मूल्य होता है। उसके शब्दों पर विचार करना पड़ता

है।फिर तीसरी कोटि है। तीसरी कोटि उन लोगों की है, जो सदा डांवाडोल हैं। न तो उनकी श्रद्धा पूरी है, न संदेह। न तो वे आस्तिक हैं पहले तरह के और न उन्होंने दूसरी तरह की नास्तिकता जानी है। वे अधूरे-अधूरे हैं, आधे-आधे हैं, फिफटी-फिफटी हैं।एक क्षण आस्तिक, एक क्षण नास्तिक; उनका मन बड़ा डांवाडोल है। वे दो नावों पर एक साथ सवार हैं। उनकी दुविधा तुम समझ सकते हो। उनका कष्ट भारी है। वे तय ही नहीं कर पा रहे हैं कि कहां जाना है! वे चौराहे पर ही खड़े रहते हैं। कभी एक रास्ते पर दो कदम चलते हैं, फिर दूसरे रास्ते पर दो कदम चलते हैं, फिर चौराहे पर लौट आते हैं।यह दुनिया में सबसे बड़ा वर्ग है। पहला वर्ग तो वर्ग कहना कठिन है। इक्के दुक्के लोग होते हैं। उस तरह के लोगों का कभी किसी को पता नहीं चलता। इतिहास में उनकी कोई स्मृति नहीं छूटती। उन्हें हम छोड़ सकते हैं। उनका विचार करना अर्थपूर्ण नहीं है। उनके कोई पदचिन्ह नहीं छूटते। क्योंकि वे कोई यात्रा ही नहीं करते तो पदचिन्ह कैसे छूटेगा? वे मंदिर में ही अपने को पाते हैं। उन्हें हम छोड़ दें। वे हमारे किसी काम के भी नहीं हैं।क्योंकि तुमने अपने को मंदिर में पाया होता तो तुम यहां होते ही नहीं। तुमने नहीं पाया अपने को मंदिर में, तुमको दूसरा आदमी कुछ काम का हो सकता है। अगर तुम्हारे भीतर संदेह प्रगाढ़ हो—लेकिन उतना संदेह को प्रगाढ़ करने के लिए भी बड़ा साहस चाहिए। बड़ा डर लगता है संदेह करने में, कि कहीं परमात्मा हो ही न! फिर क्या होगा? भय लगता है, घबड़ाहट होती है। तो तुम आधी श्रद्धा और आधा संदेह . . . और यह सबसे बड़ी दुर्गति है। क्योंकि यह मेल होता ही नहीं। पानी और दूध तो मिल जाते हैं, लेकिन श्रद्धा और संदेह नहीं मिलते, वे पानी और तेल जैसे हैं। उनका मिलना होता ही नहीं। पानी भी खराब हो जाता है, तेल भी खराब हो जाता है।पर यह बड़े से बड़ा वर्ग है दुनिया में। और इस वर्ग की तकलीफ यह है कि वह सदा कुनकुना रहता है, उबलता नहीं। या तो संदेह ही पूरा कल लो, या श्रद्धा ही पूरी कर लो। यह तो मैं जानता हूं, कि श्रद्धा तुम पूरी न कर सकोगे, क्योंकि वह तो पहले वर्ग के व्यक्ति की लक्षणा है।दूसरा व्यक्ति तुम बन सकते हो तीसरी कोटि से। तुम संदेह ही पूरा कर लो। तुम खूब विचार में लग जाओ। तुम सोच ही लो। जल्दी भी नहीं है कुछ निर्णय लेने की। संदेह को पूरा कर लो, ताकि संदेह का सांप अपना फन झुका ले। तुम गुजर जाओं उस यात्रा से—इनकार की यात्रा से, नकार की यात्रा से, 'नहीं' की यात्रा से—गुजर जाओ! क्योंकि जरा सा भी 'नहीं' अगर भीतर बचा रहा, तो 'हां' कहने में असुविधा आएगी। और जब तक तुम परिपर्ण हृदय से 'हां' न कह सकोगे, तब तक तुम्हें परमात्मा की कोई झलक न मिल सकेगी।गुजरो! दुविधा में मत रहो। संदेह को चुनो, ताकि तुम कम से कम दूसरी कोटि के व्यक्ति हो जाओ। दूसरी कोटि से मार्ग पहली कोटि का खुलता है। और तीसरी कोटि से पहली कोटि में जाने का कोई सीधा उपाय नहीं है। संदेह करते तुम कैसे पूरी श्रद्धा कर सकते हो? इसे थोड़ा समझ लो।जरा सा भी संदेह भीतर रहेगा, श्रद्धा अधूरी रहेगी। और अधूरी श्रद्धा अश्रद्धा से बदतर है। उसका कोई मूल्य ही नहीं है। वह जब होती है पूरी, तभी होती है। वह जब होती है पूरी, तभी उसकी गरिमा है। वह जब होती है पूरी, तभी तुम्हें रूपांतरित करती है और बदलती है।जैसे सौ डिग्री गर्मी पर पानी भाप बनता है, वैसे ही सौ डिग्री संदेह पर तुम्हारी जीवन-ऊर्जा श्रद्धा बनती है; उससे कम में नहीं बनती। तो तुम दूसरी कोटि में जाओ, ताकि पहली कोटि का द्वार खुल जाए।फिर एक चौथा वर्ग है, वह सबसे बड़ा वर्ग है। उसको न तो श्रद्धा है, न संदेह है। उसके जीवन में सवाल ही नहीं उठा। उसे प्रश्न ही नहीं उठे। उसके लिए कबीर कहते हैं, 'सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।''वह चौथा वर्ग है। वे खाते हैं, सोते हैं, और बड़े सुखी हैं। क्योंकि यात्रा हो तो थोड़ा कष्ट भी होता है—चलना पड़े, कहीं जाना पड़े। खाना है, सोना है, मर जाना है, वहीं सड़ जाना है। जहां आए थे, वहीं से मिट जाना है। उनके जीवन में कोई उपक्रम नहीं है, कोई अभियान नहीं है, कोई खोज नहीं है, कोई यात्रा नहीं है। यह सबसे बड़ा वर्ग है। एक तरह की उपेक्षा है, इनडिफरेंस है।इस वर्ग को हैरानी होती है, कि क्या कर रहे हो मंदिर में? किसलिए जाते हो? क्या पढ़ रहे हो उपनिषद में? क्यों समय खराब करते हो? इतनी देर खाओ, पियो, सोओ।ऐसा वर्ग अत्यंत सतह पर जीता है। न तो संदेह है उसे, न श्रद्धा है। ऐसा वर्ग सबसे ज्यादा कठिन है। ऐसा वर्ग धर्म की यात्रा पर कैसे जाए? अगर बुद्ध भी निकल जाएं, कबीर भी चिल्लाते निकल जाएं तो ऐसे वर्ग के कान में आवाज नहीं पड़ती। वह समझता है, कोई पागल होगा। किसी का दिमाग खराब हो गया है। अन्यथा चुपचाप खाओ और सोओ। संसार में आए हो, भोग लो। जो है, उससे पार देखने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। वह अंधे से अंधा वर्ग है।इस चौथे वर्ग से ही धनपति पैदा होते हैं, धन की

दौड़ वाले लोग पैदा होते हैं, राजनीतिक पैदा होते हैं, पद की दौड़ वाले लोग पैदा होते हैं। इस चौथे वर्ग से ही मनुष्य समाज का बहुजन हिस्सा बना है। पत्थर जैसा पड़ा है।इसे तो कबीर के वचन समझ में भी न आएंगे। लेकिन ऐसा आदमी समझने भी नहीं आता। इस चौथे वर्ग में से एक भी आदमी यहां नहीं है। वह इतनी दूर भी नहीं आएगा। वह हो सकता है, यहां पड़ोस में ही रहता हो। उसको सिर्फ हैरानी होती है कि इतने लोग सुबह-सुबह यहां क्यों आते हैं? इतने समय का कुछ उपयोग कर लो। क्यों असार जीवन गंवा रहे हो?जिस जीवन को वह जीता है, वही उसके लिए सार है। उसको कल्पना भी नहीं है, कि इससे पार जीवन हो सकता है। संवेदना भी नहीं है उसमें, कि इससे भिन्न भी कुछ हो सकता है, इससे श्रेष्ठ भी हो सकता है, इससे सुंदर भी हो सकता है। वह सोचता है, जो है, बस, यहीं सब समाप्त है। दृश्य पर सब समाप्त है, उसके पीछे कुछ भी छिपा नहीं है।ऐसे आदमी के जीवन में रहस्य का कोई अनुबोध नहीं होता। रहस्य की कोई पुकार नहीं उठती। ऐसा आदमी जीता कम है, मरता ज्यादा है। ऐसे आदमी के दिन नींद से भरे दिन हैं। वह मूर्च्छित है।मोहम्मद ने ऐसे व्यक्तियों के लिए कहा है, कि अगर पहाड़ मोहम्मद के पास न आएगा तो मोहम्मद पहाड़ के पास जाएगा। पहाड़ आता ही नहीं मोहम्मद के पास। यह चौथे वर्ग के लिए मोहम्मद ने कहा है, कि अगर तुम न आ सकोगे तो मैं तुम्हारे पास आऊंगा। लेकिन इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। मोहम्मद भी जाए, तो ऐसा आदमी दरवाजा बंद कर लेता है और कहता है, आगे; कहीं और जाओ, यहां नींद खराब मत करो। हम शांति से सो रहे हैं। और सपना बहुत अच्छा चल रहा था। मोहम्मद के जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। पहाड़ पहाड़ ही है। इसके भीतर कोई चेतना ही नहीं जगी है।इस चौथे तरह के व्यक्ति में तो जीवन की कोई घटना ही ऐसी घट जाए, जो उसे तिलमिला दे। कोई ऐसी घटना घट जाए, जो उसको चोट दे दे, और सपने को थोड़ा झकझोर दे। कोई ऐसी घटना घट जाए, जो उसे सोचने को विवश कर दे। किसी स्त्री को वह प्रेम करता हो और वह स्त्री मर जाए, तो शायद एक क्षण को उसे खयाल उठे, कि यह जीवन सार है? जिस बच्चे को उसने बहुत साज-सम्हाल से पाला हो, बड़ा किया हो, बड़ी महत्त्वाकांक्षाएं संजोई हों, जिसके आसपास बड़े इंद्र धनुष बांधे हों, वह अचानक समाप्त हो जाए, या धोखा दे दे, या घर छोड़ कर चला जाए, तो उसे धक्का लगता है। या दिवालिया हो जाए, पद खो जाए, प्रतिष्ठा चली जाए, तो शायद!ऐसे व्यक्ति के लिए जब तक जीवन में कोई ऐसी दुःखांत घटना न घट जाए, जो सारी अतीत की व्यवस्था को तिलमिला दे, तब तक उसके जीवन में धर्म की कोई किरण नहीं आती, विचार ही नहीं आता। ऐसे व्यक्ति के लिए दुःख की घटना ही एकमात्र उपाय है।इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, दुःख को सदा दुःख मत मानना, कभी वह आशीष भी है। चौथे वर्ग के लिए निश्चित वही एकमात्र आशीष है, वही एकमात्र वरदान है, क्योंकि उसीसे उसकी यात्रा शुरू हो सकती है। अन्यथा वह दबा ही रहेगा अपने अंधकार में।यह चौथा वर्ग ही बाजारों में बैठा है, दुकानों पर बैठा है। सब तरफ फैला हुआ है। यह चौथा वर्ग ही दुनिया को व्यवस्था दे रहा है, क्योंकि उसकी बड़ी संख्या है। मत उसका है। वह चाहे अपने को हिंदू कहे, चाहे मुसलमान कहे, चाहे ईसाई कहे, ये सब बातें निष्प्रयोजन हैं। उसे इनमें कोई सार नहीं है। वह सिर्फ कहने को कह रहा है। यह लोकोपचार है, व्यवस्था का अंग है। तो कहता है, हिंदू हूं, ईसाई हूं, मुसलमान हूं। फर्क उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता, कि इनमें कोई फर्क है। कोई फर्क नहीं है। रस उसका किसी में भी नहीं है। वह बाइबिल घर में रखे रहता है, सिर्फ धूल जमती है।मैंने सुना है कि एक व्यक्ति ने एक द्वार पर दस्तक दी। महिला ने द्वार खोला। उस व्यक्ति ने कहा, कि मैं शब्दकोष बेचता हूं, डिक्शनरी बेचता हूं। और एक नया शब्दकोष आया है; आप लेना पसंद करेंगी?महिला ने उसे टालने के लिए कहा, कि शब्दकोष तो हमारे पास है। टेबिल पर रखी हुई किताब बता दी दूर से। उस आदमी ने कहा कि वह शब्दकोष नहीं हो सकता, वह बाइबिल है।वह महिला बड़ी हैरान हुई, वह बाइबिल थी! वह तो सिफ बहाना थ कि शब्दकोश है—टालने के लिए बात की थी। उसने कहा कि हैरानी की बात है। तुमने कैसे जाना, कि वह बाइबिल है?उसने कहा, जमी धूल बता रही है। शब्दकोष तो कोई कभी-कभी देखता भी है, उस पर इतनी धूल नहीं जम सकती। सिर्फ बाइबिल पर, वेद पर ऐसी धूल की पर्तें गमती हैं। कोई कभी उठा कर भी देखता है?अब हिंदू कहे चले जाते हैं, कि वेद भगवान है; उनमें से एक उठाकर नहीं देखता, कि वह भगवान कैसा है!और तुम देखोगे तो बहुत हैरान होओगे। वेद के सौ वचनों में एकाध वचन ही वेद जैसा है। बाकी तो बिलकुल साधारण हैं। तुम खुद ही हैरान होओगे। मगर तुमने देखा ही नहीं है, इसलिए भगवान है। वेद भगवान चलता

चला जाता है। अगर तुम अपने शास्त्र देखोगे तो नब्बे प्रतिशत पर तो तुमको भी हैरानी होगी यह इसमें क्यों है?अब वेद में कोई किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है, कि मेरे खेत पर ज्यादा पानी बरसा देना और मेरे शत्रु के खेत पर कम! अब वेद भगवान है, इसमें इसके होने की क्या जरूरत? और यह भी कोई बात हुई! यह धार्मिक आदमी का लक्षण हुआ! कि मेरे शत्रुओं की गायों का दूध खो जाए! यह भी संयुक्त वेद में इकट्ठा है। पर उसे तुमने कभी देखा ही नहीं है। अच्छा ही है, नहीं तो तुम्हें शक पैदा होते।यह जो चौथे तरह का व्यक्ति है, मंदिर भी चला जाता है, मगर वह सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा है, वह इसकी प्यास नहीं है। इसके कंठ में कोई प्यास नहीं है। यह पानी पर प्रवचन सुन लेता है, लेकिन पानी पीने की इसकी कोई उत्कंठा नहीं है। जब यह मंदिर जाता है तो सरोवर की तलाश में नहीं जाता। भीड़ जा रही है, इसे भी जाना उचित है, क्योंकि भीड़ के साथ रहना सुविधापूर्ण है। भीड़ के विपरीत चलना असुविधापूर्ण है। भीड़ पसंद नहीं करती कि कोई भीड़ से अलग चले। क्योंकि उस से भीड़ के अहंकार को चोट पहुंचती है।तो सब निभा लेता है—पर निभा रहा है। इसके अंतः प्राणों में कहीं कोई वीणा नहीं बजती। मंदिर के घंटे बजते रहते हैं, इसके भीतर कोई ध्वनि प्रवेश नहीं करती। पूजा होती रहती है मंदिर में, अर्चना के दीप जलते रहते हैं, इसके भीतर कोई किरण नहीं पहुंचती। धूप जलती है, सुगंध उठती है, पर इसके भीतर सब निर्जन है। वहां कोई सुगंध का प्रवेश नहीं होता। वहां इसकी अपनी जीवन की जो दुग□ध है, वही आवास किए रहती है।ये चार तरह के लोग हैं। पहले तरह के लोगों में इतनी सरलता होगी कि उनकी सरलता के कारण ही उनकी कोई रेखा जीवन पर नहीं छूटेगी। उनका पता ही नहीं चलेगा। हवा के झोंके की तरह वे आएंगे और चले जाएंगे। उनमें से बड़े प्यारे लोग होंगे। वे अपनी पत्नी को प्रेम करेंगे, अपने बच्चों को प्रेम करेंगे। उनके निकट जो आएगा, उसे प्रेम देंगे, श्रद्धा देंगे। लेकिन वे मनुष्यता को प्रेम करने की बात नहीं करेंगे। न ही वे कहेंगे, कि राष्ट्र के लिए कुरबान हो जाओ। न ही वे कहेंगे, कि धर्म खतरे में है। वे जी लेंगे धर्म को। धर्म उनका जीवन होगा, श्वास-श्वास होगा, उनका वक्तव्य नहीं होगा। इसलिए उनका तुम्हें कोई पता नहीं चलेगा।लाओत्से का एक बड़ा पुराना वचन है कि परम संतों का पता ही नहीं चलता। कैसे चले पता? हो सकता है, तुम्हारे पड़ोस में ही कोई रहता हो। और यह भी हो सकता है कि तुम्हारे घर में हीत कोई रहता हो। हो सकता है तुम्हारा पति, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा बेटा उस परम अवस्था में हो, लेकिन पता नहीं चलेगा। वह बात इतनी शांत है, वह बात इतनी मौन है, वह घटना इतनी अदृश्य है . . .दूसरा वर्ग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है, क्योंकि वह नास्तिकता से गुजरता है, पीड़ा से गुजरता है, नरक से गुजरता है और फिर होती है सुबह। अंधकार के बाद उगता है सूरज। बड़े संताप के बाद स्वर्ग की प्रतीति होती है, वह नाच उठता है। यह दूसरा वर्ग संदेह कर-कर के एक दिन उस अवस्था में पहुंचता है, जहां कंठ में प्यास जगती है; जहां वह पुकारता है; जहां परमात्मा और इसके बीच अनंत दूरी मालूम पड़ती है और परमात्मा के साथ एक हो जाने का भाव और अभीप्सा पैदा होती है।ये कबीर के वचन उस दूसरे व्यक्ति के ही वचन हैं। दूसरी कोटि के वचन हैं। दूसरी कोटि से ही बड़े दार्शनिक पैदा होते हैं, अगर वे संदेह में ही रह जाएं। बड़े विचारक—प्लेटो, अरस्तू, कांट, हीगेल, रसेल। अगर वे संदेह में ही रह जाएं तो बड़े दार्शनिक पैदा होते हैं। अगर वे संदेह का अतिक्रमण कर जाएं तो बड़े रहस्यवादी संत पैदा होते हैं—लाओत्से, कृष्ण, बुद्ध, कबीर।इसी दूसरे वर्ग से महान कवि पैदा होते हैं। अगर वे संदेह में ही रह जाएं तो उनकी कविताएं संसार से संबंधित होती हैं, काम-वासना से प्रेरित होती हैं। तो उनकी कविताएं तृष्णा को ही रूप देती हैं, वासना की ही मूर्तियां निर्मित करती हैं।और अगर वे संदेह के पार हो जाएं तो उपनिषद के ऋषि पैदा होते हैं, कवि पैदा होते हैं, व्यास पैदा होते हैं, रवींद्रनाथ पैदा होते हैं, खलील जिब्रान पैदा होते हैं। तब-तब उनकी कविताओं में उनकी श्रद्धा का आविर्भाव होता है। तब उनकी कविता से उनकी श्रद्धा बहती है।यह दूसरा वर्ग सबसे ज्यादा पोटेंशियल, सबसे ज्यादा संभावनाओं से भरा हुआ वर्ग है। और अगर तुम अपने को दूसरे वर्ग में पाते हो, तो जितनी जल्दी हो सके, संदेह की यात्रा पूरी कर लो। और अधूरा मत छोड़ना संदेह को, अन्यथा वह सदा तुम्हारा पीछा करेगा।ध्यान रखना इस सूत्र को, कि जिस अनुभव को भी तुमने आधा छोड़ दिया, वह सदा तुम्हारे सिर के आसपास मंडराएगा, वह तुम्हारा आभा-मंडल बन जाएगा। वह तुम्हारा पीछा न छोड़ेगा। वह तुम्हारे सपनों में छाया डालेगा, वह तुम्हारी वासनाओं में उतरेगा, वह तुम्हारी कामनाओं में चित्र निर्मित करेगा। वह तुम्हें डगमगाएगा, वह तुम्हें पीछे खींचेगा, वह तुम्हें आगे न जाने देगा। वह तुम्हारे पैर में जंजीर

होगा।पूरा कर लेना। बिना पूरा किए कोई भी चीज आगे नहीं जा सकती। पक जाने देना संदेह को। पका हुआ संदेह का फल जैसे ही जमीन पर गिरता है, वैसे ही वृक्ष श्रद्धा को उपलब्ध हो जाता है। अगर तुम पाओ कि तुम दूसरे वर्ग में नहीं हो, तीसरे वर्ग में हो, जिसकी संभावना बहुत है—कि तुम डांवाडोल हो, कि न तुम श्रद्धा कर सकते, न तुम संदेह कर सकते, तो दो संभावनाएं हैं।अगर तुम पंडितों और पुजारियों की सुनोगे तो वे कहेंगे, छोड़ो संदेह और श्रद्धा को पकड़ लो। मैं तुमसे वह न कहूंगा, क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा तब बिलकुल झूठी होगी। और तुम्हारी श्रद्धा के भीतर संदेह की आग जलती रहेगी। तुम ऊपर-ऊपर से श्रद्धा को ओढ़ लोगे वस्त्रों जैसा, लेकिन तुम्हारी आत्मा संदेह की रहोगी। और अंतिम रूप से निर्णायक तुम्हारे भीतर जो है, वही है। तुम्हारा बाहर निर्णायक नहीं है। वस्त्रों से कहीं कोई निर्णय होता है? तुम सुंदर वस्त्र पहन कर सुंदर नहीं हो जाते, सुंदर हृदय चाहिए। न ही तुम सुंदर आभूषण पहन कर सुंदर हो जाते हो, सुंदर आत्मा चाहिए।नहीं, ऊपर से ओढ़ी श्रद्धा कुछ काम न आएगी। राम चदरिया तुम मत ओढ़ना। उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। राम जब तक हृदय में ही न उतर जाए, तब तक कुछ सार नहीं है।तो अगर तुम तीसरी कोटि में अपने को पाते हो, तो तुम संदेह को बढ़ाओ, ताकि तुम शीघ्र ही दूसरी कोटि में प्रवेश कर जाओ। फिर तुम संदेह को पूरी तरह जी लो, ताकि तुम पहली कोटि में प्रवेश कर जाओ।और मैं नहीं सोचता कि चौथी कोटि का कोई व्यक्ति यहां होगा। वह इतना भी श्रम नहीं करता। लेकिन अगर वह तुम्हें कहीं मिल जाए, तो उसके साथ तुम व्यर्थ सिर मत तोड़ना। वह पहाड़ है। उसके साथ तुम शक्ति मत गंवाना। उसके लिए तुम सिर्फ प्रार्थना कर सकते हो कि परमात्मा उसे कोई जीवन की ऐसी घड़ी दे, जहां उसकी नींद टूट जाए।बुद्ध ने कहा है कि जब भी तुम प्रार्थना करो, तब उस विराट बहुजन समाज के लिए प्रार्थना करना, जो सोया है। हर प्रार्थना के बाद तुम उसका स्मरण करना कि उसकी नींद टूट जाए। तुम्हारी प्रार्थना ही उसके लिए सहयोगी हो सकती है, तुम्हारा विवाद नहीं, तुम्हारा प्रवचन नहीं, तुम्हारे वचन नहीं।तुम चौथे को समझा न पाओगे। उसे प्रयोजन ही नहीं है। वह ऐसा ही है, जैसे कोई छोटे से बच्चे को काम वासना के संबंध में समझाए, और वह बच्चा कोई रस न ले; क्योंकि अभी काम वासना जगी ही नहीं। तो तुम चाहे वात्स्यायन का कामसूत्र समझाओ, चाहे फ्रायड का मनोविश्लेषण समझाओ, वह बच्चा कहेगा, बंद करो बकवास। यह तुम क्या कह रहे हो? अभी काम वासना उठी नहीं, थोड़ा उसे प्रौढ़ होने दो।तो चौथे वर्ग के साथ बड़ी प्रतीक्षा चाहिए। कई बार लोग उसके साथ सिर खपाते हैं—व्यर्थ! उसका कोई सार नहीं है। तुम प्रतीक्षा करो, पकने दो उसे। वह अपने से ही एक घड़ी आएगी उसके जीवन में, तब यात्रा शुरू हो सकती है।ध्यान रखना, पहले के लिए सिर्फ प्रार्थना की जा सकती है। दूसरे को सहारा दिया जा सकता है। तीसरे को बड़े दूर तक यात्रा करवायी जा सकती है। और चौथे को जरूरत ही नहीं है।ये चार वर्ग हैं। इसमें तुम कहां हो, उस पर ही निर्भर करेगा, कि कबीर के वचन तुम्हारे भीतर क्या अर्थ लेते हैं।इसलिए ज्ञानियों के हर वचन के चार अर्थ होंगे। कभी-कभी मैं सोचता हूं कि चारों अर्थ करूं, लेकिन तब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। बहुत उलझन हो जाएगी। इसलिए मैं तीसरे व्यक्ति का अर्थ करता हूं। तुम वैसे ही उलझे हो, और न उलझ जाओ। 'आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार। जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।। इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव। लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौं पीव।। सुखिया सब संसार है, खायै अरु सौवे। दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै। नैन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसुवार। पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस।। कबिरा वैदा बुलाइया, पकरि के देखी बांहि। वैद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।। जिसका संदेह गिर गया, उसके जीवन में प्यास का आविर्भाव होता है। जब तक संदेह है, तब तक तो प्यास हो ही नहीं सकती। जब तक तुम्हें यह भरोसा ही नहीं आ गया कि परमात्मा है, तब तक तुम कैसे पुकारोगे? तब तक कैसे 'जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि!'पागल हो तुम, कि जीभ पर छाले पड़ जाएं, इतना तुम राम को पुकारोगे, जिस राम पर श्रद्धा ही नहीं! तब तुम यह करोगे कि पुजारी रख लोगे, तनखा दे दोगे कि तू 'राम राम' पुकार। जीभड़िया छाला पड़े, तो तेरी जीभ पर पड़े। हम उसका पैसा दे देते हैं।तो तुम पुरोहित को बुला लेते हो यज्ञ करने। धनपति मंदिर बना देते हैं घर में, और एक पुजारी रख देते हैं। और पुजारी क्यों जीभ पर छाला डालेगा? पैसे के लिए कोई जीभ पर छाला डालता है? वह भी धीरे-धीरे राम-राम कहता है। वह भी देख लेता है। जब मालिक गुजरता है मंदिर के पास से, तो वह जोर-जोर से 'राम राम' कहने लगता है। वह राम को नहीं पुकार रहा है, वह मालिक के कानों को समझा रहा

है। उसका क्या लेना-देना? उसका प्रयोजन है पैसे से। तनख्वाह मिल जाती है, बात खतम हो गई। कोई राम तो तनख्वाह देते नहीं!तो पुजारी हैं, पंडित हैं, जीवन भर राम पुकारते रहते हैं। न तो जीभ पर छाले पड़ते हैं, न आंख में झांई पड़ती . . . व्यवसाय है!पंडित भी जीवन भर चिल्ला-चिल्ला कर व्यर्थ ही चिल्लाता रहता है। वह पैसे ले लेता है, निपटारा हो गया। और जिसके लिए चिल्ला रहा है, उसको क्या खाक मिलेगा कुछ!क्या तुमने कभी नौकर रखा है अपनी पत्नी के पास जाकर प्रेम प्रकट करने को? पैसा हो, तो रख लेना चाहिए एक मुनीम। वह जाए, पत्नी के सामने हाथ जोड़ कर और प्रार्थना और प्रेम प्रकट कर आए, और तुम्हारी झंझट बच जाए!किसी दिन धनपति रखेंगे। क्योंकि यह भी उपद्रव मालूम पड़ता है। और जो नौकर से निपट जाए काम, उसे खुद करने में क्या सार है? इतनी देर में तुम हजार दूसरे काम कर सकते हो।लेकिन इसमें तुम्हें हंसी आती है पत्नी के पास नौकर भेजने में, लेकिन परमात्मा के पास भेजने में? तो तुमने परमात्मा को पत्नी से भी गया-बीता समझा? प्रेम कहीं नौकर को भेज सकता है? प्रेम तो स्वयं जाएगा। प्रेम कहीं नौकर से कहेगा, कि तू पुकार, मेरा काम तू निपटा दे, मैं जरा दूसरे जरूरी काम में उलझा हूं? प्रेम सब काम छोड़ देगा और परमात्मा को पुकारेगा।यह तीसरी दशा है आदमी की, जब संदेह गिर जाता है। और कबीर यद्यपि सुशिक्षित नहीं हैं, लेकिन बड़े तर्कनिष्ठ हैं। कबीर के तर्क का क्या कहना! उन्होंने किसी विश्वविद्यालय में तर्क नहीं पढ़ा है। विश्वविद्यालय में पढ़ने से तो तर्क में एक तरह की सूक्ष्मता भी आ जाती है, कबीर का तर्क तो जैसे सिर पर कोई सीधा डंडा मार दे, वैसा तर्क है। मगर तर्क बड़ा प्रगाढ़ है।सुबह-सुबह मसजिद में कोई अजान पढ़ रहा है और कबीर कहते हैं, क्या बहरा हुआ है खुदा? क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है, जो इतनी जोर से चिल्ला रहा है? हृदय की गूंज सुनी जाती है। इतनी जोर से चिल्लाने की क्या जरूरत? और मीनार पर चढ़कर चिल्लाने की क्या जरूरत?बहुत तर्कनिष्ठ हैं। संदेह किया होगा खूब! अब संदेह से पीड़ित हो गए हैं। ध्यान रखना, संदेह ऐसा है, जैसे हाथ में कोई अंगारा रख ले। जलाता है खुद को, घाव कर देता है। जब समझ में आता है, तब पता चलता है कि संदेह से तुम परमात्मा को तो न मिटा पाए, अपने को मिटा दिए। संदेह से तुम यह तो सिद्ध न कर पाए कि परमात्मा नहीं है, सिर्फ इतना ही सिद्ध हुआ कि तुम्हारा जीवन व्यर्थ गया।परमात्मा है क्या?तुम्हारे जीवन की मूल्यवत्ता है।परमात्मा का अर्थ क्या है?उसका इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे जीवन में अर्थ है। और तो कोई अर्थ नहीं है। परमात्मा का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारा जीवन यूं ही नहीं है, संयोग नहीं है; एक संयोजन, एक संगीत है। तुम्हारा जीवन ऐसे ही हो गया और समाप्त हो जाएगा ऐसा नहीं—सकारण है, योजना है, पीछे कोई हाथ है।जैसे किसी चित्रकार ने किसी चित्र को बनाया हो, ऐसा है तुम्हारा जीवन—कोई सजीव हाथ, कोई चेतना! ऐसा नहीं है कि हवा का झोंका आया और रेत पर चिन्ह बन गए। ऐसा नहीं है तुम्हारा जीवन। एक दुर्घटना मात्र नहीं है, संयोग मात्र नहीं है। एक सुनियोजित इशारा है पीछे। ऐसा नहीं है, कि बंदर बैठ गया टाइपरायटर पर और उसने ठोक दिया और कुछ शब्द आ गए! ऐसा नहीं है।ऐसा है, जैसे किसी कवि ने गीत को गाया। अब लाख बंदर को तुम बिठाए रखो लाखों साल तक और अच्छे से अच्छा टाइपरायटर दे दो, और बंदर ठोकता रहे; क्या तुम सोचते हो कभी गीतांजलि संयोगवशात पैदा हो जाएगी ठोकते-ठोकते?जो लोग कहते हैं, ईश्वर नहीं है, वे यही कह रहे हैं कि अगर बंदर को भी समुचित समय दिया जाए, अच्छा टाइपरायटर दिया जाए और वह बैठा-बैठा ठोकता रहे—क्योंकि वह ठोकता ही रहेगा, बंदर बैठ नहीं सकता खाली! बस इतना उसको पता चल जाए, कि इसे ठोकने से कागज सरकता है, कुछ-कुछ अक्षर बनते हैं, तो वह ठोकता ही रहेगा।क्या तुम सोचते हो कभी गीतांजलि पैदा हो जाएगी? या जीसस का सरमन आन द माऊंट, या कृष्ण की गीता? असंभव! कितने ही संयोग होते रहें!एक चैतन्य चाहिए। ईश्वर को इनकार जब तुम करते हो तो तुम यह कह रहे हो, कि तुम्हारा जीवन एक व्यर्थता है। इसे तुम कितनी देर झेल पाओगे? तुम व्यर्थ अपने को मानकर कैसे जी पाओगे? तुम्हारा अर्थ खो जाएगा तो तुम्हारे रहने का कारण खो जाएगा, तुम्हारे होने का कारण खो जाएगा। तब तुम घसीटोगे। तब तुम सिर्फ मौत की प्रतीक्षा करोगे, कि कब आ जाए और छुटकारा हो जाए।जिनके जीवन में परमात्मा नहीं, उनके जीवन में मौत के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। और मौत भी कोई आशा करने जैसी बात है? प्रतीक्षा करने जैसी?कबीर ने किया है संदेह। संदेह से जले हैं। गिर गया संदेह। अब एक नए जीवन का सूत्रपात हुआ है।आंखरिया झांई पड़ी . . . अब प्रतीक्षा शुरू हुई है। प्रतीक्षा तभी शुरू होती है, जब श्रद्धा शुरू हो। कोई आने को है—कोई अतिथि। और तुम

आतिथेय बनने को है, तुम द्वार खोलकर बैठे हो।'आंखरिया झांई पड़ी पंथ निहार निहार'अब तुम राह देख रहे हो। अब आने वाले पर ही सब निर्भर है। अगर वह आएगा, तो ही तुम्हारे जीवन में अर्थ गूंजेगा। अगर वह आएगा तो ही तुम्हारे जीवन की वीणा बजेगी। अगर वह आएगा तो ही तुम नाचोगे। अगर वह आएगा तो ही कुछ सार है। अगर वह न आया तो सब व्यर्थ है, सब असार है। हुए, न हुए बराबर है। अगर वह न आया तो तुम मिट्टी हो, अगर वह आया तो तुम स्वर्ण हो जाओगे।उसके पदचिन्ह, उसकी पदचाप, उसकी द्वार पर दस्तक!.75‚ 'आंखरिया झांई पड़ी पंथ निहार निहार' कोई भक्त ही राह देखता है।और फर्क यहां समझ लेना। योगी तो खोजने निकल जाता है, भक्त राह देखता है। यह फर्क है।योगी तो खोज में निकल जाता है, कि परमात्मा को खोजना है। तो हिमालय जाता है, साधता है, यह क्रिया, वह क्रिया—हजार उपाय करता है, साधन करता है।भक्त क्या करे? क्योंकि भक्त कहता है, मुझे पता ही नहीं कि तू कैसे सधेगा? तेरा ही मुझे पता नहीं। तू किस बात से राजी होगा, यह मैं कैसे जानूं? क्योंकि तेरा मुझे कुछ पता नहीं। मेहमान पता हो, तो तुम उसके लिए बिस्तर लगा रखते हो, गरम पानी कर रखते हो, भोजन बना रखते हो, क्योंकि तुम्हें पता है, कौन मेहमान है; उसकी क्या पसंद है, क्या नापसंद है!मैं एक ऐसे मेहमान को खोजने में लगा हूं, भक्त कहता है, जिससे कभी मेरा मिलना तो हुआ नहीं। मैं कैसे करूं? क्या तैयारी करूं?कबीर कहते हैं, आंख बंद करूं? नाक रूंधू? शीर्षासन करूं? पता नहीं ये तुझे राजनी पड़ेंगे, न पड़ेंगे! तो भक्त कहता है, मैं तो इतना ही कर सकता हूं कि आंख खोलकर द्वार पर बैठा तेरी प्रतीक्षा करूं।भक्त की सारी साधना प्रतीक्षा है।और प्रतीक्षा से बड़ी कोई साधना नहीं है, क्योंकि प्रतीक्षा सबसे कठिन है।साधना में कुछ तो करने को रहता है। तो तुम व्यस्त रहते हो। माला जप रहे हो, बैठे हो, पूजन कर रहे हो। बैठे हो आसन जमा कर, प्राणायाम कर रहे हो। कुछ करने को रहता है, मन उलझा रहता है, आलंबन रहता है। मन लगा रहता है।भक्त सिर्फ प्रतीक्षा करता है।प्रतीक्षा का अर्थ है, मन शून्य हो, तो ही प्रतीक्षा हो सकती है।विचार बीच में न हो; अन्यथा मेहमान आएगा और अगर विचार बीच में रहे, तो तुम देख न पाओगे। तो भक्त निर्विचार होकर प्रतीक्षा करता है। सब हटा देता है विचार। बस, उसकी राह देखता है।.75‚ 'आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार' वह कहता है, आंखें थक गइ, बूढ़ी हो गइ। झांई पड़ गई आंखों में। पलक भी नहीं झप सकता, पता नहीं तू कब आ जाए! कबीर ने कहा है, आंख नहीं झप सकता क्योंकि पता नहीं, वही पल तेरे आने का पल हो; और मैं फिर चूक जाऊं। तो आंखें खोले बैठा हूं।'पंथ निहार निहार—'राह पर आंख टिकाए हूं, कि तू आता होगा। कि बस अब तू आता होगा। कि अब मेरी प्रतीक्षा का अंत करीब आता है।'जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।'और तुझे पुकारता हूं कि शायद तू मेरी आवाज सुन ले।'इस तन का दीवा करौं'—तैयार हूं, तेरी राह देख रहा हूं, तू आ भर जाए।'इस तन का दीवा करौं'—तो इस शरीर को मैं दीया बना दूंगा।'बाती मैल्यूं जीव' और अपने प्राणों की बाती लगा दूंगा।'लोही सीचैं तेल ज्यूं'—और अपने खून से दीये को भर दूंगा, जैसे तेल से भर दिया हो।बस, एक ही आशा है। यह सब करने को तैयार हूं।

कब मुख दैख्यौं पीव' बस, कब तेरा चेहरा देख लूं।

'सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।' बड़ा अदभुत वचन है!ऊपर से देखने पर कबीर पागल और दुःखिया है, क्योंकि दिन-रात रो रहा है, दिन-रात चिल्ला रहा है। उसकी वही हालत है, जो मजनू की हालत थी लैला के लिए।गांव भर हंसता था मजनू पर। गांव भर को दया भी आती थी, कि यह पागल हो गया है। कितना दुःख भोग रहा है! और ऐसा भी क्या रखा है उस लड़की में। साधारण सी लड़की थी लैला। साधारण से भी साधारण थी। मजनू ने उसे लैला बना दिया।गांव का सम्राट तक चिंतित हो गया। यह मजनू चिल्लाता फिरता है, 'लैला—लैला—लैला'। यह बड़ी अनूठी कहानी है। सम्राट ने बुलाया मजनू को और कहा, बहुत हो गया। रात नहीं, दिन नहीं, चैन नहीं! न दिन देखता, न रात देखता! ये बारह लड़कियां खड़ी हैं! उसने महल की सब से सुंदर लड़कियां खड़ी कर दीं और कहा 'इनमें से तू जिसको चाहे चुन ले। इनके मुकाबले लैला कुछ भी नहीं है। इनके पैर की धूल भी नहीं है। मैंने भी तेरी लैला देखी है, साधारण सी सांवली लड़की! इन लड़कियों में से कोई भी चुन ले। ये हीरे जवाहरात हैं।मजनू ने तो लड़कियों की तरफ देखा ही नहीं। उसने

सम्राट से कहा, 'लैला आपने देखी? नहीं, आप पहचान नहीं पाए। क्योंकि लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। मेरी आंख से देखो, अगर लैला को देखना हो। और इनको मैं देखता हूं, मुझे तो सिर्फ लैला ही दिखाई पड़ती है। कोई स्त्री मुझे दिखाई नहीं पड़ती। और वह राजमहल से लैला को पुकारता हुआ चला गया।खबर मिली मजनू को—क्योंकि लैला का बाप परेशान हो गया। यह जरा अशोभन हो गया था मामला। वह समृद्ध था और मजनू आवारा था। और यह मामला जरा जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ गया। गांव भर में चर्चा थी। विवाह भी वह मजनू के साथ नहीं कर सकता था, क्योंकि उसकी कोटि का न था। और भरोसे योग्य भी नहीं मालूम होता था, कि यह पगला विवाह के योग्य भी है, कि यह सम्हाल भी पाएगा?यह 'लैला-लैला' चिल्लाना एक बात है, घर बसाना बिलकुल दूसरी बात है। कविता करना एक बात है, गृहस्थी बनाना बिलकुल दूसरी बात है। प्रेमी होना एक बात है, पति होना बड़ी मुश्किल बात है। प्रेमी तो कोई भी हो जाता है—आवारा। क्योंकि कुछ करना नहीं है। तो बाप . . . और बाप यानी सोच-विचार करे, हिसाब लगाए, लड़की की चिंता करे। उसने गांव ही छोड़ दिया।मजनू को खबर मिली कि वह रात गांव छोड़कर जा रहा है। वह गांव के बाहर एक वटवृक्ष के नीचे छिपकर खड़ा हो गया कि आखिरी बार लैला को देख ले। वह काफिला निकल गया, उसने लैला को आखिरी बार देख लिया। लेकिन फिर उसकी गांव आने की इच्छा न रही।यह कहानी बड़ी अनूठी है। फिर वह कभी गांव वापस न आया। और कहानी यह कहती है, कि वह उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा, कि कभी तो लैला वापस लौटेगी। और वह 'लैला-लैला' पुकारता रहा। धीरे-धीरे ऐसा हुआ, कि उसका शरीर वृक्ष से जुड़ गया। उसी जगह टिके-टिके पीठ और वृक्ष की छाल एक हो गए। उसी जगह टिके-टिके वह वृक्ष के साथ एक हो गया।वर्षों बाद लैला लौटी उसे खोजती। तो गांव में उसने पूछा; उन्होंने कहा, कि जब से तू गई है, वह एक झाड़ के नीचे खड़ा रहा है। और अब तो उसका पता भी नहीं चलता। बस, कभी-कभी रात के सन्नाटे में उस वृक्ष से 'लैला' की आवाज उठती है। क्योंकि वह मजनू वृक्ष के साथ इतना एक हो गया कि अब वह वृक्ष भी 'लैला-लैला' चिल्लाने लगा।लैला उसे खोजने आई, उसने सब तरफ देखा, मजनू कहीं दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन 'लैला' की आवाज गूंजती है!भक्त भगवान के लिए वैसा ही पागल हो जाता है, जैसा प्रेमी प्रेयसी के लिए पागल हो जाता है। और प्रेयसी तो कहीं होगी, आवाज भी पहुंचाई जा सकती है; परमात्मा कहां है, यह कुछ पता नहीं। फिर भी चिल्लाता है कि शायद सुन ले।।

जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।

इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव।

लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख दैख्यौं पीव।। सुखिया सब संसार है—और ऐसा भक्त बड़ा दुःखी दिखाई पड़ता है। सदा उसकी आंखों में विरह और सदा उसकी आंखों में आंसू!रामकृष्ण के साथ ऐसा हो जाता था। उनको रास्ते से लेकर निकलना मुश्किल हो जाता था। क्योंकि कोई कह दे, 'जय राम जी'। और वे वहीं खड़े हो गए! वहीं भटक गए बीच रास्ते पर। राम की स्मृति आ गई। आंखों में आंसू बहने लगे। हाथ-पैर अकड़ जाएं, जैसे गहरी मूर्छा में चले गए। वहीं गिर पड़े।तो भक्त बड़े डरते थे, कि कहीं उनको ले जाना हो तो बड़ा इंतजाम करना पड़ता था। क्योंकि कौन जाने, कौन क्या कह रहा है?एक बार कहीं से लेकर भक्त उनको निकलते थे, घर के अंदर किसी झोपड़े में कोई बात कर रहा था। और किसी ने भगवान का नाम ले लिया बातचीत में। रामकृष्ण वहीं गिर पड़े। छह घंटे तक बेहोश रहे।किसी विवाह में निमंत्रण दे दिया भक्तों ने, कि आप जरूर आएं। रामकृष्ण के शिष्यों ने तो कहा, कि मत उपद्रव करो, क्योंकि पता नहीं क्या हो जाए। कोई कुछ कह दे! नहीं माने, रामकृष्ण गए। वह सब उपद्रव हो गया वहां। किसी ने नाम ले लिया परमात्मा का। और इस मुल्क में तो नाम ही नाम हैं। आदमियों के नाम सभी परमात्मा के नाम हैं। एक हजार नाम हैं परमात्मा के विष्णु-सहस्रनाम में। करीब-करीब सब आदमियों के नाम में कहीं न कहीं परमात्मा है। फोटो लगे हैं, मूर्तियां रखी हैं घर-घर में। और बिना परमात्मा के तो कुछ है ही नहीं।वह बारात संकट में पड़ गई, वह विवाह दुविधा में पड़ गया, क्योंकि रामकृष्ण बेहोश हो गए। लोग दूल्हे को भूल गए, दुलहन को भूल गए। रामकृष्ण दूल्हा हो गए! वे केंद्र हो गए। तीन दिन तक होश न आया।तो भक्त तो हमें दुःखी दिखाई पड़ेगा। भक्त तो हमें परम दुःखी दिखाई पड़ेगा। उससे तो हमें लगेगा, कि संसार के लोग ही सुखी हैं, वे चौथी कोटि के लोग ही सुखी हैं। होटलों में देखो, कैसा हंस रहे हैं, मुसकुरा

रहे हैं! रास्ते पर मिलते हैं लोग, एक-दूसरे से पूछते हैं, कैसे हो? वे कहते हैं, बड़े मजे में हैं। सब मजे में हैं, सब कुशल हैं। हंस रहे हैं, आनंद ले रहे हैं, मजाक कर रहे हैं, प्रफुल्लित दिखाई पड़ते हैं। सारा जगत सुखिया मालूम पड़ता है।कबीर कहते हैं, 'सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।'बस, लोग खा-पी लेते हैं, सो जाते हैं। बड़े सुखी मालूम पड़ते हैं। कोई दुःख नहीं उनके जीवन में।दुःख तो वरदान है। ऐसा दुःख, जैसे दुःख से कबीर दुःखी हुए, वह तो परम आशीर्वाद है। क्योंकि उस दुःख के बाद ही परम सुख की संभावना है। उस दुःख से ही द्वार खुलता है आनंद का।तुम सोए रहोगे, उठोगे, खा लोगे, पी लोगे; तुम्हारी हंसी, तुम्हारी खुशी सब छिछली है। उसमें कोई गहराई नहीं है। वह सब बहाना है समय गुजारने का, उससे ज्यादा नहीं। ऊपर से तुम सुखिया दिखाई पड़ते हो, सुखिया तुम हो नहीं। तुम ही असली दुःखिया हो।और कबीर ऊपर से दुःखिया दिखाई पड़ते हैं, पर कबीर ही असली सुखिया हैं। उनके भीतर ही सुख का बीज अंकुरित हो रहा है।

'सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।' उनका काम है संसारियों का, कि खा लें और सो जाएं।और भक्त का काम है : कि जागे और रोए। जागे—अपलक! पलक भी न झपे, क्योंकि पता नहीं प्रियतम कब आ जाए! कौन घड़ी आए! कोई पहले से खबर भी तो नहीं आती।परमात्मा अतिथि है। हमने सबसे पहले परमात्मा के लिए अतिथि शब्द का प्रयोग किया। फिर दूसरे मेहमानों के लिए अतिथि शब्द का प्रयोग किया। अतिथि शब्द बड़ा मूल्यवान है। इसका मतलब है, जो बिना तिथि बतलाए आ जाए। इसलिए अंग्रेजी में 'गेस्ट' है, उर्दू में मेहमान है, लेकिन वह मजा नहीं। अतिथि तो बात ही अलग है। अतिथि का मतलब है, बिना तिथि बतलाए जो आ जाए।तो आजकल तुम्हारे घर में जो अतिथि आते हैं टेलीग्राम करके, वे अतिथि न रहे। भाषा के हिसाब से वे अतिथि नहीं हैं; मेहमान होंगे। जब टेलीग्राम ही कर दिया तो अतिथि कैसे रहे? बता दिया कि कल फलानी ट्रेन से आ रहा हूं। बात ही खतम हो गई।परमात्मा लेकिन अभी भी अतिथि है।

न कोई टेलीग्राम आता, न कोई संदेशवाहक आता, न कोई डाकिया आता और कहता, कि बस आ रहा है। जब भी आता है, अचानक! अनायास! तुम्हें खबर भी न थी, कि यह घड़ी वह चुनेगा। और अचानक द्वार पर खड़ा हो जाता है। सब बंद द्वार खुल जाते हैं। सब जीवन का अंधकार खो जाता है। अचानक सुबह हो जाती है।कबीर कहते हैं, जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ उग जाएं।

'दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।' जागता है, रोता है। जागता है, क्योंकि प्रतीक्षा करनी है, सो नहीं जाना है। रोता है, क्योंकि रोने के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है?इसे थोड़ा समझ लेना।योगी बहुत कुछ कर सकता है, भक्त सिर्फ रो सकता है। उसके आंसू ही उसका योग हैं। उसका विरह और उसकी पीड़ा ही उसकी प्रार्थना है। जार-जार उसका रोना, उसके हृदय का उसकी आंखों में भर जाना, उसकी आंखों से उसके हृदय का झर जाना ही उसकी एकमात्र साधना है। वही प्रार्थना, वही पूजा, वही अर्चना है।रामकृष्ण पूजा करते थे। पुजारी थे दक्षिणेश्वर में। उनको पुजारी रखकर बड़ी भूल हो गई। क्योंकि वे ठीक पुजारी थे, और ठीक पुजारी की मंदिरों में क्या जरूरत? मंदिर तो नौकर-चाकर चाहते हैं, पेशेवर पुजारी चाहते हैं। वे पुजारी थे। पेशेवर नहीं थे, वही अड़चन हो गई। जब उनको रख लिया था, तब तो किसी को अंदाज न था कि कितना बड़ा आविर्भाव होने वाला है इस आदमी में। रखकर बड़ी झंझट हो गई। जिसने रखा था उनको दक्षिणेश्वर के मंदिर में, वह रानी रासमणि थी। बड़ी धनाढ्य महिला थी। रानी का उसे पद था, लेकिन शूद्र थी। इसलिए कोई ब्राह्मण मंदिर में पुजारी बनने को राजी न था। सिर्फ रामकृष्ण राजी हो गए। भक्त को क्या शूद्र, क्या ब्राह्मण! और भगवान भी कहीं शूद्र और ब्राह्मण के अलग होते हैं! और मंदिर भी कहीं शूद्र और ब्राह्मण का होता है! मंदिर भगवान का। कोई ब्राह्मण राजी न था। क्षुद्रतम ब्राह्मण राजी न थे। ऐसे ब्राह्मण भी राजी न थे, जो मरघट में मुर्दों के कपड़े भी स्वीकार कर लेते हैं, वे भी राजी न थे। शूद्र का मंदिर! उसमें कौन पूजा करेगा? कौन भ्रष्ट होगा?इसलिए रामकृष्ण जब राजी हो गए तो रानी रासमणि ने स्वीकार कर लिया। कुछ ढंग के तो नहीं मालूम पड़ते थे। कुछ खोए-खोए लगते थे। आंखें कहीं और थीं। बात यहां करते, चित्त कहीं और था। मगर कोई मिलता नहीं था। सोचा, थोड़ा पगला है, जैसा है, काम चलेगा। मंदिर बिना पुजारी के तो हो नहीं सकता।फिर रानी रासमणि खुद पूजा नहीं कर सकती थी, शूद्र थी। तो

रामकृष्ण पुजारी हो गए। कुल चौदह रुपए महीने उनकी तनख्वाह थी, लेकिन अड़चन शुरू हो गई, ट्रस्टी मुश्किल में पड़ गए। जल्दी ही ट्रस्टियों को बैठक बुलानी पड़ी, कि यह तो भूल कर ली, इससे तो खाली मंदिर बेहतर!क्योंकि कभी तो पूजा दिन भर चलती और कभी दो मिनट में पूरी हो जाती! कभी मिनट नहीं लगता, और कभी पूजा होती ही नहीं! कभी दिन बीत जाते और रामकृष्ण का कोई पता ही नहीं! और कभी-कभी दिन भर! सुबह से शुरू होती तो रात हो जाती है, घंटा बजता ही रहता, वे नाचते रहते, पूजा ही करते रहते!रामकृष्ण से कहा, यह क्या मामला है? उन्होंने कहा, पूजा भी कोई नियम थोड़े ही है! कोई व्यवस्था से पूजा होती है। पूजा प्रेम है। जब आता है, आता है। यह तो हवा का झोंका है; आया, आया। लाने का क्या उपाय है? जब आ जाता है, जितनी देर टिकता है, टिकता है। हटाने का भी क्या उपाय है? कोई घड़ी से चल सकती है पूजा कि घंटा हो गया! पुरोहित, व्यवसायी पुरोहित घंटे से चलता है, घड़ी से चलता है, हृदय से तो नहीं।रामकृष्ण कहते, जब आती है तो आती है। नहीं आती, नहीं आती।फिर तो और अड़चन आनी शुरू हुई। इस तक के लिए भी वे राजी हो गए, क्योंकि कोई दूसरा ब्राह्मण मिलता नहीं था। कम से कम कभी-कभी तो होती है! और फिर यह आदमी इकट्ठा भी कर लेता है। एक दिन इतनी कर देता है कि समझो सप्ताह भर न भी करे तो चलेगा।लेकिन फिर अड़चन हुई, क्योंकि पता चला कि यह जो भोग लगाता है, पहले खुद अपने को लगा लेता है। पहले मिठाई खुद चख लेता है, फिर प्रतिमा को रख देता है। यह तो बड़ा जघन्य पाप है। परमात्मा को जूठा भोजन चढ़ाना! पहले परमात्मा को चढ़ाओ, फिर अपने को ले सकते हो।कहा रामकृष्ण से; तो रामकृष्ण ने कहा, सम्हालो तुम्हारी नौकरी। हम से न होगी। मुझे पता है, मुझे प्रेम के शास्त्र का पता है। मेरी मां मेरे लिए जब भी कुछ देती थी तो पहले चखकर देती थी। मेरी मां तक को इतना पता है, तो क्या मुझे कुछ पता नहीं? बिना चखे मैं नहीं दे सकता। पता नहीं देने योग्य हो भी, या न हो? बिना चखे पक्का क्या है, कि ये देने योग्य था? भगवान को दे रहा हूं, चखकर ही दूंगा।दुनिया में ऐसा पुजारी न तो पहले हुआ, न फिर पीछे हुआ। यही पुजारी है लेकिन। यह जो धुन है . . .और रामकृष्ण जब पूजा करते तो रोते। रोना ही पूजा है। भक्त कुछ जानता नहीं।रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को कहा है, क्या करोगे तुम साधना? जब छोटा बच्चा जोर से रोता है, तो मां भागी चली जाती है। बस, तुम रोना सीख लो। जब तुम रोओगे, वह भागा चला आएगा। न आए तो समझना, कि रोना अभी पूरा नहीं हुआ। अभी तुम ऐसे ऊपर-ऊपर से रो रहे हो। अभी तुम्हारे प्राण का संयोग नहीं मिला। अभी तुम रोना ही नहीं हो गए हो। रुदन तुम्हारी आत्मा नहीं बना है।छोटा बच्चा भी जानता है बिना सिखाए। कहीं योग सीखने जाता है छोटा बच्चा, कि जब मां को बुलाना है तो क्या करना? चीखता है, चिल्लाता है, रोता है, आंसू बहने लगते हैं। मां भागी चली आती है। हजार काम छोड़कर चली आती है।परमात्मा को होंगे हजार काम, रामकृष्ण कहते, तुम रोओ भर, उसको आना ही पड़ेगा।कुछ और करने की भक्त को जरूरत नहीं। भक्ति कठिन है और सरल भी। कठिन इसलिए कि रोने को तुम साध तो नहीं सकते। आएगा तो आएगा, कठिन इसलिए। सरल इसलिए कि सिर्फ रोने से सब हो जाता है। पतंजलि के योगशास्त्र की जरूरत नहीं। बस, आंसुओं का शास्त्र तुम समझ लो, सब हो जाता है।

'सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै।।

नैन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसुवार।' जैसे कुएं पर रहट चलती रहती है दिन-रात, पानी बहता रहता है, ऐसी आंखों से झड़ी लगी है। 'पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस।' ऐसे ही मैं भी पागल रटता रहता हूं--'पिया पिया'। जैसे पपीहा रटता रहता है, और प्यारे के मिलने की आस लगी रहती है।

'कबीरा वैद बुलाइया . . .' शायद घर के लोगों ने, शायद मित्रजनों ने, शायद प्रियजनों ने वैद्य को बुला लिया ऐसा दुःखी देख कर, कि क्यों रोता है यह आदमी? क्या हो गया इसे? क्या बीमारी है? क्या तकलीफ है इसकी?

'कबीरा वैद बुलाइया, पकरि के देखो बांहि।' तो वैद्य ने नाड़ी देखी।

'वैद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।' यह बेचारा वैद्य क्या समझेगा, कि बीमारी हृदय की है! यह जो पीड़ा है, हृदय की है, इसका शरीर से कुछ लेना-देना नहीं। नाड़ी की जांच से यह पकड़ में न आएगी।मगर इस 'वैद्य' शब्द को थोड़ा गौर से समझ लो। यह बड़ा कीमती शब्द है।हमारे पास कुछ शब्द हैं--वेद, विद्या, विद्वान, वैद्य, वेदना; ये सब एक ही धातु

से बने हैं। वैद्य का मतलब है, ज्ञानी। असल में भारतीयों ने आयुर्वेद को पांचवां वेद कहा है। इसलिए तो 'वेद', 'आयुर्वेद'; उसको जो जानने वाला है, वह वैद्य। वैद्य शब्द डाक्टर से ज्यादा कीमती है। डाक्टर का तो मतलब होता है, सिर्फ पंडित। जो डाक्ट्रिन को जानता है, वह डाक्टर। जो सिद्धांत को समझता है, वह डाक्टर।वैद्य का अर्थ है, जो न केवल सिद्धांत को समझता है, बल्कि सिद्धांत के प्रयोग को भी; जिसको हम फिजिशियन कहते हैं। न केवल जो चिकित्सा के शास्त्र को जानता है, बल्कि चिकित्सा की विधि को भी। अनुभोक्ता है जो। जो किसी कालेज में सिर्फ प्रोफेसर नहीं है, जो किसी अस्पताल में मरीजों की चिकित्सा भी करता है।असल में डाक्टर शब्द का प्रयोग सिर्फ होना चाहिए उस डाक्टर के लिए, जो कालेज में पढ़ाता हो चिकित्सा के शास्त्र को; वही डाक्टर है। सभी डाक्टर नहीं हैं, क्योंकि बाकी तो फिजिशियन हैं, बाकी तो वैद्य हैं। वैद्य शब्द बड़ा कीमती है क्योंकि यह वेद से ही बना है।तो इस वचन में इसके कई अर्थ हो सकते हैं--'कबीरा वैद बुलाइया' इसका सीधा तो अर्थ यह है, कि किसी चिकित्सक को बुलाया, बांह पकड़ी चिकित्सक ने, नाड़ी जांची। लेकिन कबीर मन ही मन हंसे होंगे और सोचा होगा, 'वैद न वेदन जानई।' इसको वेदना का कुछ पता नहीं! यह शरीर का ही जानकार है।'करक कलेजे मांहि'--वह जो पीड़ा है, वह तो कलेजे में है। उसका इसे कुछ भी पता नहीं।दूसरा अर्थ, जो और भी गहरा है, वह है . . . 'कबीरा वैद बुलाइया'--उसको बुलाया, जो वेद का जानकार है। लेकिन वेद का जानकार भी हृदय की पीड़ा को नहीं जानता। वह भी शास्त्र को समझता है। शास्त्र यानी शरीर; सत्य यानी आत्मा। पीड़ा तो सत्य के लिए है और आत्मा में है; सिद्धांत के लिए नहीं है और
शरीर में नहीं है। शास्त्र को समझने से पीड़ा मिटने वाली नहीं है। यह तो प्रेमी से ही मिलन हो जाए तो ही मिटेगी।तो जो वेद को जानता है, उसे बुलाया उसने भी शब्द पकड़े, सिद्धांत पकड़ा शास्त्र पकड़ा--'पकरी के देखो बांहि'--उसने भी ऊपर-ऊपर जांच की।'वैद न वेदन जानई।'यह वेद का जानकार भी वेदना को नहीं जानता।वेदना शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ तो दुःख है, और एक अर्थ ज्ञान है। क्योंकि वह भी वेद से ही बना शब्द है।संस्कृत एक अर्थ में बड़ी अनूठी भाषा है। उसमें बड़ी गुत्थियों में गुत्थियां हैं और शब्दों के बड़े खेल हैं। वेद से ही बनता है वेदना, वेद से ही बनता है विद्या; विद्, विद्वान, जानना, ज्ञान, ज्ञान का शास्त्र।क्या संबंध है दोनों में? जब तुम्हें पीड़ा होती है, तभी तुम्हें ज्ञान होता है। पीड़ा और ज्ञान संयुक्त है; जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू हों। थोड़ा सोचो, तुम्हारे सिर में दर्द है, तभी तुम्हें सिर का ज्ञान होता है। अगर सिर में दर्द ही न हो, तो सिर का पता ही न चलेगा।इसलिए स्वस्थ आदमी की परिभाषा आयुर्वेद में--सिर्फ आयुर्वेद में ही स्वस्थ आदमी की परिभाषा है। वह परिभाषा यह है कि जब शरीर का पता न चले। जब पता चले तो बीमारी है। जब ज्ञान हो शरीर का, तो बीमारी है। जब पेट में तकलीफ होती है, पेट का पता चलता है। पैर में कांटा गड़ता है, पैर का पता चलता है। सिर में दर्द होता है, सिर का पता चलता है।जहां पीड़ा होती है, जहां वेदना होती है, वहीं ज्ञान होता है, वहीं बोध होता है। जब शरीर में कोई पीड़ा नहीं होती तो शरीर का कोई पता नहीं चलता। स्वस्थ का वही अर्थ है, जो विदेह का। जब देह का कोई पता न चले, तो आदमी स्वस्थ हो गया; स्वयं-स्थित हो गया। अब देह का पता भी कैसे चलेगा?स्वस्थ शब्द भी बड़ा कीमती है। उसका मतलब है स्वयं में स्थित हो जाना, स्वयं में ठहर जाना। जब भी पीड़ा होती है, तब तुम स्वयं में नहीं ठहर सकते। तब पीड़ा तुम्हें खींचती है अपनी तरफ और ज्ञान पीड़ा की तरफ भागता है। क्योंकि पीड़ा को मिटाना है, तो जानना जरूरी है।ज्ञान और दुःख संयुक्त हैं। इसलिए जब कोई व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होता है, तो आनंद का ज्ञान नहीं होता। क्योंकि आनंद का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। केवल दुःख का ही ज्ञान हो सकता है। बीमारी का ज्ञान हो सकता है, स्वास्थ्य का कोई ज्ञान नहीं होता। स्वास्थ्य तुम स्वयं हो, बीमारी विजातीय है, वह अलग है, उसका ज्ञान होता है। आनंद तुम स्वयं हो। कैसे ज्ञान होगा? कौन है जानने वाला? कौन किसको जानेगा? एक ही बचा, वही आनंद है, वही जाननेवाला है, भेद न रहा। दुःख अलग है, दुःख स्वभाव नहीं है। इसलिए दुःख का ज्ञान होता है।

'वेद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।' और यहां एक दूसरी ही पीड़ा चल रही है, वह है हृदय की पीड़ा। और हृदय की पीड़ा से तुम यह मत समझ लेना, जिसको डाक्टर हृदय की बीमारी कहते हैं : हार्ट डीसिज, वह मत समझ लेना। कोई कबीर को हार्ट फेल का डर नहीं है और न कोई हार्ट अटैक हुआ है।हृदय एक तो शरीर का हिस्सा है, जिसको चिकित्सक

जानते हैं। और ह्रदय का गहरा हिस्सा तुम्हारी आत्मा का हिस्सा है, जिसे चिकित्सक नहीं जानते। चिकित्सक तो केवल फेफड़ों को ही जानते हैं, यंत्र को जानते हैं। उनके भीतर छिपा हुआ जो ह्रदय है, उसे नहीं जानते। इसलिए कोई सर्जन तुमसे राजी नहीं होगा, जब तुम कहते हो, कि मुझे बड़ी प्रेम की पीड़ा होती है और ह्रदय पर हाथ रख लेते हो। वह थोड़ा हैरान होगा, कि ह्रदय पर हाथ किसलिए रख रहे हो? क्योंकि वहां से प्रेम का क्या लेना-देना? वहां तो केवल फेफड़े हैं। खून को चलाने की व्यवस्था और यंत्र है। वहां हाथ किसलिए रख रहे हो?लेकिन सारी दुनिया में, समस्त जातियों में, समस्त कालों में जब भी किसी को प्रेम की पीड़ा उठती है तो वह अपना हाथ ह्रदय पर रखता है, कहीं और नहीं। इस फेफड़े के पीछे छिपा ह्रदय है। वह सूक्ष्म है, वह अदृश्य है।

'. . . करक कलेजे मांहि।'

उस कलेजे में पीड़ा है। वैद्य उसे न जान सकेगा और न वेद का ज्ञाता; चारों वेदों का जानकार उसे न जान सकेगा। शास्त्र उसे नहीं पहचान सकता। शास्त्र की पहुंच शरीर तक है, खोल तक है, आवरण तक है, अंतस तक नहीं है। और कबीर रो रहे हैं, कबीर पीड़ित हो रहे हैं, कबीर परेशान हो रहे हैं। ऐसा कबीर के जीवन में घटा या नहीं घटा; यह केवल कविता होगी—सूचक, सांकेतिक; लेकिन नानक के जीवन में यथार्थतः ऐसा घटा।नानक युवा थे और इस प्रेम के पागलपन ने उन्हें पकड़ लिया। और वे दिन-रात रोते। एक रात ऐसा हुआ; भादों की रात होगी। आकाश में बादल घिरे थे; चारों तरफ बिजली चमकती थी। और नानक गीत गाते रहे उस पी के मिलन का। नानक परमात्मा की स्तुति में डूबे रहे।आधी रात बीती, और भी रात बीतनी लगी, मां चिंतित हो गई। नानक जवान थे; होंगे कोई सोलह, सतरह-अठारह साल के। मां ने आकर, जब आधी रात बीत गई तो कहा, 'नानक, अब चुप हो जा, अब बहुत हो गया। अब थोड़ा सो ले। शरीर को सोने की भी जरूरत है।नानक, क्षण भर को मां ने कहा तो रुक गए, लेकिन फिर बोले कि नहीं। तो मां ने कहा, इतने जल्दी क्यों बदल गया? नानक ने कहा, कि सुन, आधी रात—और एक पपीहा 'पिऊ पिऊ' की पुकार किए जा रहा है। नानक ने कहा, जब तक यह पपीहा चुप नहीं होता, तब तक मैं कैसे चुप हो जाऊं? और इसकी प्रेयसी तो बहुत दूर न होगी, यहीं कहीं पास किसी वृक्ष में छिपी होगी। और मेरा प्रेमी तो बहुत दूर है। मुझे रोको मत।कबीर ठीक कहते हैं ः.

आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार। जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।

इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव।

लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौं पीव।। रात भर नानक गाते रहे। स्वभावतः अस्वस्थ हो गए। दूसरे दिन चिकित्सक बुलाया गया—यह वास्तविक घटना है। कबीर ने तो शायद प्रतीक में कही होगी— इस लड़के को कुछ हो गया। बाप थोड़े चिंतित हुए। और नानक के पिता एक साधारण गृहस्थ आदमी थे, चौथी कोटि के; जिनको यह सब व्यर्थ की बकवास थी। कहां का परमात्मा! किस को पाना? क्या करना? यह सब दिमाग की खराबी है।चिकित्सक को बुलाया। पर यही घटना घटी। चिकित्सक करेगा भी क्या बेचारा? कलेजे को जांचने का कोई उपाय भी तो नहीं है। तो उसने भी नानक की नब्ज पकड़ी और जांच की। और नानक हंसने लगे। और उन्होंने कहा कि वहां मेरी बीमारी नहीं है। मेरी बीमारी यहां ह्रदय में है।लेकिन लगता है, वह वैद्य सिफ वैद्य ही न रहा होगा। थोड़े से वेद से भी उसका संबंध रहा होगा। थोड़े भीतर के ज्ञान से भी संबंध रहा होगा। उसने नानक के पिता को कहा, कि मत इसे परेशान करो। और इसकी बीमारी मेरी सीमा के बाहर है। लेकिन किसी ज्ञानी को खोजो जो इसकी बीमारी में काम आ जाए; जो इसके कलेजे को पहचान ले। इतना मैं कहता हूं, कि शरीर इसका रुग्ण नहीं है, लेकिन भीतर कोई बड़ी गहरी पीड़ा है। और यह भी तुमसे कहता हूं कि यह पीड़ा सौभाग्य है। मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं साधारण वैद्य हूं। इसे किसी असली वैद्य की जरूरत है। धन्यभाग हैं उस व्यक्ति के, जो इस दशा में आ जाए, जब वह कह सके ः.

'सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै। .

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।'

क्योंकि वहीं से एक-एक कदम चल कर वह मंदिर पास आता है।

आज इतना ही।

चौदहवां प्रवचन

गुरु-शिष्य दो किनारे

प्रश्नसार

सबके इतने सारे प्रश्न पाकर क्या आप धर्म-संकट में नहीं पड़ते? न संदेह को बढ़ा सकता हूं; न श्रद्धा को शुद्ध कर सकता हूं; ऐसे में क्या करूं? भाव और विचार में कब और कैसे सही-सही फर्क करें। मन में कई प्रश्न का उठना किंतु न पूछने का भाव। जीवन में गहन पीड़ा का अनुभव। फिर भी वैराग्य का जन्म क्यों नहीं?

पहला प्रश्नः सबके इतने सारे प्रश्न पाकर क्या आप धर्म-संकट में नहीं पड़ते कि इसका जवाब दूं, या उसका, या किसका?प्रश्न तीन तरह के पूछे जाते हैं।एक तो, तुम्हारी मूढ़ता से जन्मते हैं।

उनका मैं कभी उत्तर नहीं देता। क्योंकि तुम्हारी मूढ़ता को उतना सहारा देना भी नुकसान, तुम्हें हानि पहुंचाएगा। तुम्हारी मूढ़ता को उतनी स्वीकृति भी देना—कि मूढ़ता से उठे प्रश्न का भी कोई अर्थ होता है, घातक है।मूढ़ता से उठे प्रश्न इस भांति पूछे जाते हैं कि जैसे पूछने वाला मुझ पर कोई पूछ कर एहसान कर रहा हो। उसका स्वर साफ होता है। मूढ़ता से भरे प्रश्न असंबंधित होते हैं। न कबीर से कोई नाता, न मुझ से कोई नाता, न तुमसे कोई नाता।जैसे आज ही एक प्रश्न है, कि यदि कम्यूनिज्म आ जाए, तो आपके संन्यासी तो काम कर लेंगे; आपका क्या होगा?अब इसका न तो कबीर से कुछ लेना-देना है, न तुमसे कुछ लेना-देना है, न मुझसे कुछ लेना-देना है। 'यदि' भी कोई प्रश्न होता है? 'यदि' से कहीं कोई प्रश्न शुरू होता है? फिर मेरी सारी शिक्षा यही है, कि 'अभी और यहां' जीयो। कल क्या होगा? कल तुम रहोगे, कल मैं रहूंगा। कल जो होगा, उसे हम सामना करेंगे।फिर कम्यूनिज्म कल आ जाए, इससे तुम्हारा क्या संबंध है? और मैं किसी मुसीबत में भी पडूंगा, तो वह तुम्हारी समस्या नहीं है। तुम्हारे पास अपनी समस्याएं काफी हैं, तुम उन्हें हल कर लो। या कि तुम्हारी समस्याएं चुक गइ, अब तुम मेरी समस्याएं हल करने की कोशिश में लगे हो?तुम ऐसे ही परेशान हो। मूढ़ता का अर्थ ही यह है, कि उसे पता ही नहीं है, कि उसके जीवन की समस्याएं हैं, जो हल करनी हैं, कि जीवन उलझन में है, उसे सुलझाना है; कि जीवन अटका है, यात्रा करनी है। वह जमाने भर के प्रश्न पूछेगा, जिनमें कोई तुक नहीं है, जिनमें कोई अर्थ नहीं। वह दूसरों की समस्याएं हल करने चला जाएगा।मूढ़ता से भरा प्रश्न ऐसा मानकर चलता है कि शायद इसका जवाब दिया नहीं जा सकता, इसीलिए पूछता है। उन प्रश्नों को मैं छोड़ देता हूं। वे निरर्थक हैं। वे मेरा और तुम्हारा समय खराब करेंगे। उनमें चुनने जैसा कुछ भी नहीं है।जब से मैंने कहा है, कि लोग दस्तखत करके दें, तब से मूढ़ता पूर्ण प्रश्नों की संख्या एकदम गिर गई है। इसीलिए मैंने दस्तखत करवाना शुरू किया। क्योंकि
उनकी संख्या काफी थी; करीब-करीब पचास प्रतिशत थी। जब से मैंने दस्तखत करवाने को कहा, उनकी संख्या ज्यादा से ज्यादा पांच प्रतिशत रह गई। पैंतालीस प्रतिशत एकदम से गिर गई। क्योंकि मूढ़ भी इतना तो सोचता है, कि यह प्रश्न अपने साथ संबंधित करना ठीक है कि नहीं।दूसरा बड़ा वर्ग है, उसके भी मैं उत्तर कभी नहीं देता। वे तुम्हारे पांडित्य से आते हैं। न तो मूढ़ का उत्तर देता हूं, न पंडित का।पांडित्य के प्रश्न इस तरह के होते हैं, कि वेद में ऐसा कहा है, आपने ऐसा क्यों कहा?वेद ने कुछ ठेका लिया है? मेरे ऊपर कोई वेद की जिम्मेवारी है, कि वेद ने ऐसा क्यों कहा है? तुम वेद के ऋषियों को कब्रों से उखाड़ो, उनसे पूछो। मैं क्या कह रहा हूं, उससे ज्यादा मेरी किसी के संबंध में कोई जिम्मेवारी नहीं है। और अगर वेद में कुछ कहा है और मैं उससे भिन्न कह रहा हूं, विपरीत कह रहा हूं, तो मैं कोई तालमेल बिठाने को नहीं हूं। मैं कोई समझौता करने को नहीं हूं। तुम अपने वेद को सुधार लो, अगर मेरी बात ठीक लगती हो। अगर मेरी बात ठीक न लगती हो, मुझे छोड़ दो; वेद को पकड़ लो, लेकिन व्यर्थ के प्रश्न मत उठाओ।पांडित्य के प्रश्न ऐसे होते हैं, जैसे कोई मेरी परीक्षा ले रहा हो। मूढ़ ऐसे पूछता है, जैसे इसका जवाब हो ही नहीं सकता। वह मुझ पर एहसान कर रहा है। पंडित ऐसे पूछता है, जैसे इसका जवाब उसे पहले से मालूम है। वह सिर्फ मुझे एक परीक्षा का मौका दे रहा है। इन दोनों को मैं छोड़ देता हूं।तब बच रहते हैं, मुश्किल से दस प्रतिशत प्रश्न, जो जिज्ञासा से जन्मते हैं, मुमुक्षा से। जो तुम्हारी

जीवन की खोज से आविर्भूत होते हैं। जो तुम्हारी जीवन की समस्या से संबंधित होते हैं। जो प्रामाणिक हैं। जिनको हल करने पर तुम्हारे जीवन का अर्थ निर्भर होगा। जो हल होंगे तो तुम्हारे जीवन का ढंग रूपांतरित होगा। जो तुम्हारी प्यास हैं, भूख हैं; बौद्धिक नहीं हैं, खोपड़ी से नहीं आ रहे हैं। तुम्हारे समग्र अस्तित्व से आविर्भूत हो रहे हैं। जिनके ऊपर तुम्हारी जिंदगी दांव पर लगी है। उनके हल होने पर बहुत कुछ निर्भर है। उनके हल होने पर तुम भी हल हो जाओगे। वे प्रश्न नहीं हैं उन प्रश्नों में तुम खुद हो। वे जीवंत हैं। न तो शास्त्रों से उधार लिए गए हैं, न अहंकार की जड़ता से पैदा हुए हैं।

जब मैं देखता हूं कि प्रश्न प्रामाणिक हैं—इसे देखने में देर नहीं लगती। क्योंकि तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारे आंसू छिपे होते हैं। तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारी प्यास छिपी होती है। तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारे प्राण धड़कते हैं। तुम्हारे प्रश्न में तुम मेरे पास आते हो। न तो तुम्हारे पास कोई उत्तर है पांडित्य का; और न तुमने किसी मूढ़तावश पूछ लिया है। तुमने मुमुक्षा से पूछा है। तुम खोजी हो। तुम यात्रा पर निकले हो। तुम्हारी यात्रा पर मैं तुम्हें थोड़ा साथ दे सकूं, तुम्हारा थोड़ा बोझ कम कर सकूं, तुम्हारे भटकाव को थोड़ा कम कर सकूं, तुम्हें मार्ग पर ले आ सकूं, उन्हीं प्रश्नों के उत्तर देता हूं।और ये जो प्रश्न हैं, इनके रूप ही भिन्न-भिन्न होते हैं; इनका प्राण एक ही होता है। अगर बहुत गौर से देखो, तो ये जो तीसरी कोटि के प्रश्न हैं, जिनके मैं उत्तर देता हूं, ये एक ही प्रश्न के विभिन्न ढंग हैं और इनका एक ही उत्तर है। जिस दिन तुम जानोगे, जागोगे, उस दिन तुम पाओगे, तुमने बहुत-बहुत ढंग से एक ही प्रश्न पूछा था; और मैंने बहुत-बहुत ढंग से एक ही उत्तर दिया था।जैसे ही मुझे उस एक की प्रतिध्वनि मिलती है किसी प्रश्न में, मैं सदा तत्पर हूं उत्तर देने को। इसलिए कोई धर्म-संकट खड़ा नहीं होता। मामला बिलकुल सीधा-साफ है। गणित बिलकुल स्पष्ट है। मुझे जरा भी दुविधा नहीं होती। तुम्हारे प्रश्न को हाथ में लेते ही, तुम्हारी पंक्तियों को पढ़ते ही तुम्हारे प्राण वहां उपस्थित हो जाते हैं, कैसे तुमने पूछा है।झेन कहानी है, कि टोकियो का गवर्नर एक झेन फकीर को मिलने गया। तो उसने अपना नाम लिखा और साथ में लिखा कि 'टोकियो का गवर्नर'। फकीर के पास चिट पहुंची, उसने चिट नीचे फेंक दी और कहा, इस तरह के आदमी को मैं जानता नहीं। और उससे कह दो, वापस लौट जाओ। यहां कोई जगह भी नहीं है, समय भी नहीं है।गवर्नर तो बहुत चकित हुआ। इस फकीर के चरणों में बहुत बार आया है। और यह फकीर उसे भलीभांति जानता है। आज क्या हो गया? लेकिन तभी उसे समझ आ गई बात। उसने 'टोकियो का गवर्नर'—जो कार्ड पर लिखा था, उसको काट दिया। फिर से कार्ड भेजा।फकीर ने कहा, 'अरे, तुम हो? भीतर आ जाओ।'

जो शिष्य कार्ड को लाया था, ले गया था दो बार, वह थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, यह आदमी वही है, यह कार्ड भी वही है। लेकिन उस फकीर ने कहा, सब बदल गया। इस आदमी का ढंग बदल गया। पहले यह आया था—टोकियो का गवर्नर। टोकियो के गवर्नर से फकीर का क्या लेना-देना? यह भीतर भी टोकियो के गवर्नर की तरह ही आता तो मुलाकात व्यर्थ थी, बातचीत असार थी। यह पूछता, हम बोलते, वह कहीं मेल नहीं खा सकता था। फकीर का गवर्नर से क्या लेना-देना? अब यह शुद्ध आदमी की तरह आया है, समझ कर आया है, गवर्नर को बाहर छोड़कर आया है। अब कुछ मुलाकात हो सकती है, कोई संवाद हो सकता है।तुम उसी प्रश्न को दोबारा पूछ कर देखना, जो मैंने तुम्हारा उत्तर न दिया हो। और अगर तुमने टोकियो के गवर्नर को छोड़ दिया तो मैं उत्तर दूंगा। और तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते। तुम किसी भी तरह प्रश्न को बनाना, उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर टोकियो का गवर्नर पीछे है, मैं उत्तर नहीं दूंगा।जिस दिन तुम सरलता से, सहजता से, समस्या को हल करने की आकांक्षा से, सद्‌भाव से पूछते हो, उस दिन मैं सदा तत्पर हूं। धर्म-संकट कुछ भी नहीं है। चीजें बिलकुल साफ हैं।जैसे तुम्हारे चेहरे पर मैं तुम्हारे क्रोध को पढ़ता हूं, तुम्हारी आंखों में तुम्हारे अहंकार को; ऐसे तुम्हारे हस्ताक्षरों में, तुम्हारे शब्दों में, तुम्हारे वचन के विन्यास में, तुम्हारे प्रश्न के बनाने में भी तुम्हें पढ़ता हूं। वह भी तुम्हारा है। तुम उसमें पूरे-पूरे मेरे सामने उपस्थित हो जाते हो।मैं तुम्हारे प्रश्न नहीं चुनता, तुमको चुनता हूं। और जब तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर न दूं, तो तुम विचार करना कि तुम क्यों नहीं चुने गए?तुम जरूर दो में से कोई एक बात पाओगे। या तो मूढ़ता से पूछा था, या पांडित्य से पूछा था; मुमुक्षा नहीं थी। मैं यहां हूं कि तुम्हारा मोक्ष सरल हो जाए। वह तुम्हारी मुमुक्षा के बिना नहीं होगा। मैं तुम्हें मोक्ष की तरफ इशारा तभी कर सकता हूं, जब तुम्हारे प्रश्न ने मुमुक्षा की तरफ आकांक्षा की हो; उससे अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं।

दूसरा प्रश्न : मैं तीसरी कोटि का व्यक्ति हूं। मेरी स्थिति है : खावै अरु रोवै; प्रवचन सुनै अरु रोवै। आप कहते हैं, पूरा संदेह कर लो, तो वह भी आपको देख लेने के बाद होना असंभव नजर आता है और श्रद्धा भी दूषित है। और आप जैसा वैद्य भी विद्यमान है, लेकिन बीमारी कुनकुनी है और आप की चिकित्सा की कड़वी कुनैन भी झेल पाने की स्थिति नहीं। मैं असहाय हूं। न संदेह को बढ़ा सकता हूं, न श्रद्धा को शुद्ध कर सकता हूं; ऐसे में क्या करूं?ऐसी ही अवस्था है; तुम्हारी ही नहीं, सभी की। तुम्हें दिखाई पड़ रही है, औरों को दिखाई नहीं पड़ रही है। और दिखाई पड़ जाना बहुत कीमती है, बहुमूल्य है।व्यक्ति अपने को असहाय पा ले, हेल्पलेस—कि कुछ भी किए नहीं होता। जो भी करता हूं, वही अधूरा रह जाता है। जो भी पैर उठाता हूं, वह भी कहीं नहीं पहुंचता मालूम पड़ता। सब कर लिया है, सब व्यर्थ पाया है। मंजिल नहीं आती। अपना किया हुआ कहीं ले जाएगा, इसका भरोसा भी टूट गया है। ऐसी असहाय दशा की तीव्र पीड़ा तुम्हें अनुभव हो जाए, तो यहीं से भक्त का जन्म होता है। असहाय समझ लेना भक्त होने की शुरुआत है।भक्ति का अर्थ क्या है?भक्ति का अर्थ है, परमात्मा! तू करेगा तो ही होगा। मेरे किए नहीं होता। मेरी पूजा भी अधूरी है, मेरी प्रार्थना भी संदिग्ध है, मेरी साधना भी काम-चलाऊ है। मैं जीवन को जुआरी की तरह दांव पर नहीं लगा पाता। मेरी व्यवसायिक बुद्धि सब जगह मौजूद है। मेरा संदेह मेरी श्रद्धा को दूषित कर जाता है।और संदेह भी पूरा नहीं हो पाता। क्योंकि श्रद्धा की भी छाया पड़ती रहती है। इस असहाय अवस्था को जितने गहरे उतर जाने दो, उतना लाभ होगा।तुम पूछ रहे हो, 'मैं क्या करूं?' मैं तुमसे कहूंगा, कुछ भी मत करो। अब असहाय अनुभव होना शुरू हुए हो; ठीक से असहाय ही हो जाओ। टोटल हेल्पलेसनेस, संपूर्ण असहाय हो जाओ। कह दो कि अब मुझसे किए कुछ भी नहीं होता। अब तेरी जो मर्जी। असहाय अवस्था में ही कोई कह सकता है, 'तेरी जो मर्जी।'जब तक तुम्हें लगता है, मेरे किए कुछ
हो सकता है, तब तक तो तुम किए ही जाओगे। तब तक तो थोड़ा-ना-बहुत तुम प्रयास जारी रखोगे। यत्न जारी रखोगे।असहाय अवस्था का अर्थ क्या है?इसका अर्थ है, मेरी अपने पर श्रद्धा उठ गई। अब अहंकार को खड़े होने की जगह न रही। भूमि खिसक गई नीचे से। अहंकार का बल टूट गया। अहंकार नपुंसक सिद्ध हुआ। क्योंकि जो भी किया व्यर्थ हुआ।यह बड़ी उपलब्धि है। तुम इसे ऐसे ही मत गंवा देना। असहाय अवस्था को पूरी तरह छा जाने दो। इसी असहाय अवस्था से प्रभु के शरण जाने का भाव उठता है। शरण कोई जाएगा कब? जब तक असहाय नहीं हुआ तब तक शरण जाने का भाव उठता है। शरण कोई जाएगा कब? जब तक असहाय नहीं हुआ, तब तक शरण जाएगा नहीं। जब असहाय हो गया, तभी शरण का बोध उठता है, तब छोड़ने का मन होता है। तुमने अपनी तरफ से काफी चला ली पतवार, नाव कहीं जाती नहीं, बल्कि उलटा तुम देखते हो, गोल-गोल घूमती है।कभी तुमने नाव चलाई? एक पतवार से चला कर देखना। एक पतवार से अगर नाव चलाओगे, गोल-गोल घूमेगी। वहीं-वहीं चक्कर काटेगी, कहीं जाएगी नहीं। और आदमी जैसी नाव चला रहा है, वह एक पतवार की नाव है। उसमें आदमी अकेला ही चला रहा है, परमात्मा का हाथ नहीं है। परमात्मा को तुमने काटकर अलग कर दिया है। तुम अकेले ही चला रहे हो। वह गोल-गोल घूमती है। एक दुष्ट चक्र पैदा हो जाता है—वहीं-वहीं। पुनरुक्ति करती है, कहीं जाती नहीं, कहीं यात्रा नहीं होती, कोई मंजिल नहीं आती।अब इस पतवार को भी रख लो। इससे कोई सहारा नहीं है। इसको भी नाव में रख लो। अब तो तुम पाल खोल दो नाव का। और परमात्मा को कहो, जहां तेरी मर्जी, जहां तेरी हवाएं ले जाएं, अब हम वहीं जाएंगे।नाव को चलाने के दो ढंग हैं : एक तो पतवार से, और एक पाल से।रामकृष्ण से कोई पूछता था, मैं क्या करूं? तो रामकृष्ण ने कहा, तुम कुछ मत करो। तुम काफी कर चुके हो। बहुत उपद्रव हो गया है। अब तुम पाल खोल दो और पतवार रख लो। रामकृष्ण ने कहा 'पहले मैंने भी पतवार चलाकर
देख ली, कहीं नहीं पहुंचा। फिर मैंने पाल खोल दिया और हवाएं नाव को ले जाने लगीं।'वह सदा तत्पर हैं तुम्हें ले जाने को। तुम ही राजी नहीं हो। तुम ही आनाकानी करते हो। उसका हाथ बढ़ा हुआ है, तुम थोड़ा हाथ बढ़ाओ। अगर हाथ नहीं बढ़ा सकते हो, तो खड़े रह जाओ। उससे कह दो अब तेरी ही मर्जी। तू ही हाथ बढ़ा।तो भी घटना घटती है। जिस दिन व्यक्ति सब कुछ छोड़ देता है—समर्पण! उसी दिन क्रांति शुरू हो जाती है।तो दुनिया में दो मार्ग हैं। एक मार्ग है साधक का और एक मार्ग है भक्त का। साधक के मार्ग पर तो संदेह पूर्ण होना चाहिए, ताकि श्रद्धा का जन्म हो जाए। भक्त के

मार्ग पर संदेह के पूर्ण होने की भी जरूरत नहीं है, किसी चीज के पूर्ण होने की कोई जरूरत नहीं है। भक्त के मार्ग पर तो असहाय अवस्था की प्रतीति होनी चाहिए। उसी असहाय अवस्था में से श्रद्धा का कमल निकल आता है।असहाय अवस्था तो बहुत बुरी लगती है। वह कीचड़ जैसी है। लेकिन जब उसमें से समर्पण का कमल निकलता है, तो कीचड़ और कमल में जमीन आसमान का फर्क है। निकलता कीचड़ से है, कीचड़ जैसा बिलकुल नहीं है। कीचड़ से बिलकुल विपरीत है, बिलकुल भिन्न है। कहां कमल, कहां कीचड़! अगर तुम्हें पता न हो कि कमल कीचड़ से पैदा होता है, तो कमल को देखकर तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि इसका कीचड़ से संबंध हो सकता है।समर्पण असहाय अवस्था से निकलता है। असहाय अवस्था कीचड़ है। जब तुम कीचड़ में फंसे हो, तब तुम सोच भी नहीं सकते कि इससे कमल के पैदा होने की संभावना है, कि कमल का बीज यहां छिपा है। लेकिन जब कमल निकलता है, तभी तुम जानोगे। असहाय अवस्था से लोगों ने समर्पण को पा लिया।तो तुम कुछ करो मत; करना छोड़ दो। तुम बहो; तैर लिए बहुत। तैरो मत। नदी ले जाएगी। नदी जा ही रही है सागर की तरफ। तुम नाहक ही शोरगुल मचाते हो, हाथ पैर तड़फाते हो। नदी उसी परमात्मा की तरफ जा रही है। जीवन उस तरफ बह ही रहा है। अगर तुम अड़चन न डालो तो काफी है। तुम पहुंच जाओगे।इसे थोड़ा समझ लो।

मेरे देखे परमात्मा और तुम्हारे बीच कोई विधायक बाधा नहीं है, कोई पाजिटिव हिंडरेंस नहीं है। एक निगेटिव, नकारात्मक बाधा है। नकारात्मक बाधा का अर्थ है कि तुम अड़चन खड़ी करते हो, इसीलिए परमात्मा से नहीं मिल पाते। अन्यथा कोई बाधा नहीं। तुम अड़चन खड़ी न करो, अभी मिलन हो जाए।ऐसे ही है, जैसे सूरज निकला है और तुमने दरवाजे बंद कर लिए हैं। सूरज के भीतर आने में कोई भी बाधा नहीं है; तुम ही दरवाजे बंद किए खड़े हो। दरवाजा खोल दो, सूरज अपने आप भीतर चला आता है। सूरज को भीतर थोड़े ही लाना पड़ता है! समझाना-बुझाना थोड़े ही पड़ता है किरणों को, कि आओ भीतर। फुसलाना थोड़े ही पड़ता है, कि आ जाओ भीतर, डरो मत! सिर्फ द्वार खुला हो, सूरज भीतर आ जाता है।और यह भी हो सकता है कि द्वार भी खुला है लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो। यह भी हो सकता है कि द्वार भी खुला है, पीठ भी तुम नहीं किए हो, सिर्फ आंख बंद किए खड़े हो। जरा सी पलक खोलने की बात है।असहाय अगर सच में ही अनुभव कर रहे हो—मैं कहता हूं, 'सच में' क्योंकि यह भी हो सकता है, कि तुम असहाय अनुभव न कर रहे हो और अभी भी कुछ करने की तमन्ना बाकी बची हो। जब तक करने की कोई भी तमन्ना बाकी बची है, तब तक तुम असहाय नहीं हो। तब तक तुम कहते हो, थोड़ा और करके देख लें। लेकिन जब तक तुम्हारी अस्मिता पूरी ही न टूट जाएगी, जब तक तुम बिलकुल ही गिर न जाओगे, जब तक तुम्हें यह न लग जाएगा कि कुछ होता ही नहीं मेरे किए, तब तक असहाय अवस्था भी पूरी नहीं है।तो तुम थोड़ा असहायता को समझो और असहाय अवस्था में जीयो। और असहायता से डरो मत, भागो मत। उसे छिपाओ भी मत। उसी असहाय-भाव की कीचड़ से तुम पाओगे, कमल उठने लगा।अगर कोई व्यक्ति पूर्ण असहाय हो जाए तो कुछ भी करने को बाकी नहीं रहा। पाल खुल गए, नाव चल पड़ी।तो तुमसे मैं कहता हूं और मत पूछो कि क्या करूं? क्योंकि मैं तुम्हें जो भी करने को कहूंगा, तुम उसको भी कुनकुना ही करोगे। तुमने कुनकुना ही सब करने की आदत बना ली है। तुम ध्यान भी करोगे, तो आधा-आधा ही करोगे। तुम प्रार्थना करोगे तो भी आधी-आधी होगी। आधा मन प्रार्थना करेगा, आधा बाजार में होगा, कहीं और होगा। तुम कहीं पूरे न हो पाओगे।लेकिन यह असहाय अवस्था तो करने की बात ही नहीं है, यह तो तुम्हें खुद अनुभव हो रही है। इसे तो तुम खुद ही जान रहे हो। यह कोई मैंने नहीं कहा है कि तुम करो। यह किसी ने तुम्हें सिखाया नहीं है, कि तुम करो। यह तो तुमने अपने ही जीवन की स्थिति को समझ कर पाया है, कि असहाय है स्थिति; हेल्पलेस हूं। बस, इसमें ही रम जाओ।अभी तो लगेगा कीचड़ में बैठ गए। लेकिन अगर कीचड़ में बैठने की हिम्मत हो, तो कमल कीचड़ से बहुत दूर नहीं। जरा सा फासला है। और जो भी कीचड़ में बैठने के लिए हिम्मत रखता है, उसके जीवन में कमल खिल जाता है।और सब तुम करके देख चुके, अब असहाय होकर ही देख लो। अब कुछ मत करो। अड़चन आएगी; क्योंकि तुम्हारा अहंकार कहेगा कि ऐसे बैठे रहने से क्या होगा? तुम्हारा अहंकार गणित रखता है। वह कहेगा, करने से नहीं हुआ तो न करने से कैसे होगा? जब कर-करके नहीं हुआ तो न-करने से तो बिलकुल डूब जाओगे। कर-करके कम से कम थोड़े बचे हो। कहीं पहुंचे नहीं यह ठीक; रास्ते पर तो हो;

मंजिल नहीं आई। यह न करके तो रास्ते के किनारे बैठ जाओगे।और मैं तुमसे कहता हूं, रास्ते के किनारे जो बैठ गया, वही मंजिल पर पहुंच जाता है। बैठ जाने में मंजिल है।जापान में एक पर्वत-शिखर पर एक मंदिर है, तीर्थ है। हजारों यात्री प्रतिवर्ष वहां जाते हैं। बुद्ध की बड़ी सुंदर प्रतिमा वहां विराजमान है। पहाड़ चढ़ते हैं।एक फकीर लिंची गया था तीर्थयात्रा को और पहाड़ के नीचे ही बैठा रहा, कभी ऊपर नहीं गया। लिंची जिस गांव से आया था, उस गांव के लोग जब यात्रा करने आए तो उन्होंने उसे पहचाना और कहा, कि तुम यहीं बैठे हो? आए थे यात्रा करने को!लिंची ने जो उत्तर दिया उसे तुम याद रख लो। लिंची बूढ़ा था, शरीर दुर्बल था, पहाड़ चढ़ने की क्षमता न थी। हां, चाहता तो किसी के ऊपर डोली में बैठ कर जा सकता था, लेकिन वह उसने ठीक न समझा, कि तीर्थयात्रा पर भी डोली में बैठकर जाना क्या शोभा देता है? अपने पैर से चलकर परमात्मा के मंदिर तक न आ सके? और अपने पैर से चलकर जहां नहीं पहुंचे, वहां पहुंचने में अर्थ भी क्या है? पहुंचने का अर्थ तो अपना ही पहुंचना है। तो लिंची यह सोचकर डोली पर सवार न हुआ। वहीं पहाड़ के नीचे बैठ गया और उसने कहा, मैं तो असहाय हूं, पैर मेरे कमजोर हैं, पहाड़ मैं चढ़ नहीं सकता, बूढ़ा हूं, जीवन का भी भरोसा नहीं। दूसरे के कंधे पर बैठकर जाना भी शोभा नहीं देता कि यह भी कोई यात्रा हुई? और दूसरे के कंधे पर बैठकर भी पहुंच गए तो क्या यह कोई पहुंचना हुआ? कम से कम तेरे मंदिर तक तो अपने पैर से चल कर आते। तो अब तो एक ही उपाय है, कि अगर तेरी मर्जी हो, तो तू ही आ जा। अन्यथा हम यहीं बैठे रहेंगे।और कहते हैं कि बुद्ध का आगमन वहीं हुआ।तो जब गांव के लोग आए और उन्होंने कहा, तुम यहीं बैठे हो? तो लिंची ने कहा, जरा मुझे गौर से देखो, मैं वही नहीं हूं, जो तुम्हारे गांव से यात्रा पर निकला था।निश्चित ही उनको भी लग रहा था, कि कोई महिमा प्रकट हुई है, आभा बदल गई है, आंखों में ज्योति किसी और लोक की है। चेहरे पर भाव इस संसार का नहीं है। यह शरीर ही किसी और महिमा से मंडित है। जैसे भीतर कोई दीया जल रहा है और शरीर से उसकी रोशनी बाहर आ रही है।उन्होंने कहा, वह तो हमें भी लग रहा है। लेकिन तुम ऊपर मंदिर तक पहुंचे कि नहीं? उसने कहा, मैं असहाय था, चढ़ना मुश्किल था, दूसरे के कंधे पर जाना उचित न था। मैं यहीं बैठा रहा। और मैंने कहा, मैं तो न चढ़ सकूंगा तेरे मंदिर तक; लेकिन अगर मेरी प्यास सच है तो तू मेरी असहाय अवस्था समझना। और अगर तेरी मर्जी हो, तो तू यहां आ जाना।और यह भी है; कि मैं तेरे मंदिर तक भी पहुंच जाऊं, लाखों लोगों को रोज मैं जाते-आते देखता हूं, लेकिन अगर तेरी मर्जी न हो तो वे खाली ही लौट आते हैं। तेरे मंदिर तक पहुंचकर लोगों को खाली लौटते देखता हूं, तो यह भी हो सकता है, कि मैं यहीं बैठा रहूं और भर जाऊं। अब तुझ पर ही छोड़ देता हूं।और लिंची ने न तो प्रार्थना की, न पूजा की, न कोई विधि-विधान किया।
वहीं नीचे पहाड़ के बैठे-बैठे वह बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। जब वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया तो लोगों को कहने लगा, कुछ करना जरूरी नहीं है, सिर्फ छोड़ देना जरूरी है।उस छोड़ देने का नाम समर्पण है।लेकिन छोड़ोगे कब? जब अहंकार सच में ही समझ लेगा कि बिलकुल असहाय हूं। छोड़ते ही घटना घट जाती है। इधर तुम मिटे नहीं, उधर परमात्मा आया नहीं। इस द्वार से तुम बाहर निकलो, उस द्वार से परमात्मा भीतर आ जाता है। तुम जरा जगह खाली करो। बस, तुम्हीं अटके हो बीच में। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं।असहाय-भाव बड़ा अदभुत है। असहाय ही रहो। सब उसी भाव से फलित हो जाएगा। थोड़ा सोचो, असहाय होने की भावदशा—उससे ज्यादा महिमापूर्ण और क्या तुम पा सकोगे? असहाय अवस्था में कैसे बचाओगे अपने अहंकार को? गिर पड़ेगा, विसर्जित हो जाएगा। तीसरा प्रश्न भक्त भाव से भरा होता है; लेकिन भाव और विचार में हम कब और कैसे सही-सही फर्क कर सकते हैं?विचार एक आंशिक घटना है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में चलती है। भाव एक सवा□ग घटना है, जो तुम्हारे पूरे अस्तित्व में गूंज जाती है; यही फर्क है। विचार तो तुम्हारी खोपड़ी में चलता है। वह तुम्हारे समग्र व्यक्तित्व को ओतप्रोत नहीं करता। तुम्हारे मन में एक विचार चल रहा है—भगवान का, तो तुम्हारा रोआं-रोआं उस भगवान के विचार से स्नान नहीं कर पाएगा। विचार मन में चलता रहेगा। हृदय की धड़कन में नहीं गूंजेगा। तुम विचार भगवान का करते रहोगे, लेकिन तुम्हारे पैरों को उसकी कोई भी खबर न मिलेगी। तुम्हारे हड्डी, मांस, मज्जा को उसकी कोई खबर न मिलेगी। वह विचार ऊपर-ऊपर चला जाएगा। वह ऐसे ही होगा जैसे सागर पर तुम एक कागज की नाव तैरा दो। वह ऊपर-ऊपर लहरों पर डगमगाती रहेगी। सागर की गहराइयों को पता ही नहीं चलेगा, कि ऊपर कोई कागज की नाव भी डांवाडोल हो रही है।विचार कागज की नावें हैं। वे

तुम्हारी मस्तिष्क की सतह पर डोलते रहते हैं। वहीं आते हैं, वहीं से तिरोहित हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर
तुम्हारी गहराई को उनकी कोई भी खबर नहीं मिल पाती। वे आए, इसका भी पता नहीं चलता; कब चले गए, इसका भी पता नहीं चलता।भाव सवा□ग अवस्था है। जब तुम परमात्मा के भाव से भरते हो तो तुम्हारा मस्तिष्क ही नहीं भरता; मस्तिष्क भरता ही है, तुम्हारा रोआं-रोआं, तन-प्राण सब भर जाता है।परमात्मा के भाव से भरे हुए व्यक्ति को कहना न पड़ेगा कि वह परमात्मा का विचार कर रहा है। तुम देखोगे, तुम पाओगे कि वह परमात्मा को जी रहा है।विचार और जीवन में जितना फर्क है, उतना ही फर्क विचार और भाव में है। भाव यानी सवा□गीणता, भाव यानी समग्रता।जब तुम कभी किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तब खोपड़ी में ही थोड़ी प्रेम रहता है! वह तुम्हारे हृदय में भी धड़कने लगता है। तुम्हारे रोएं-रोएं में भी पुलक आ जाती है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। कल भी तुम चलते थे। ऐसे चलते थे, जैसे पैरों को घसिटते हो। आज भी तुम चलते हो, पैर वही हैं, आकाश वही है, कुछ भी बदला नहीं; लेकिन आज तुम्हारे पैरों में एक नाच है। तुम किसी के प्रेम में पड़ गए हो।हालैंड में एक बहुत बड़ा चित्रकार हुआ, विन्सेंट वान गाग। इस सदी में जैसी वान गाग की ख्याति है, वैसी किसी दूसरे चित्रकार की नहीं है। वान गाग कुरूप था, बहुत कुरूप था। और कोई स्त्री कभी उसके प्रेम में न पड़ी। कुरूप ही नहीं था, विकर्षक था, रिपल्सिव्ह था; कि उसके पास जाकर दूर हटने का मन पैदा होने लगे, कि दोबारा इससे मिलना न हो।लेकिन बड़ा अदभुत चित्रकार था। सौंदर्य का बड़ा पारखी था। शरीर बड़ा कुरूप था। किसी तरह जी रहा था, काम करता था। एक चित्रशाला में रोज काम करने जाता था। काम भी कर देता था, चित्र भी बना देता था, चित्र बिक भी जाते थे। लेकिन चलता था घसिटता हुआ! जिसके जीवन में प्रेम की वीणा न बजी . . .प्रार्थना तो बहुत दूर है, परमात्मा तो बहुत दूर है। प्रेम तो बड़ी फीकी ध्वनि है प्रार्थना की, बड़ी फीकी! जैसे हजार-हजार पर्दों के पार से तुमने परमात्मा को देखा हो। बस एक झलक, छाया सरक गई हो, बस, ऐसा प्रेम है। लेकिन फिर भी प्रेम बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि जिनके जीवन में प्रार्थना
नहीं, परमात्मा नहीं, उनके जीवन में तो प्रेम ही एकमात्र घड़ी है, जब वे समग्रता को जानते हैं। अन्यथा सभी चीजें खंड-खंड हैं।वह घसिटता हुआ चलता था, जैसे पैर अलग चलते, हाथ अलग चलते, सिर अलग चलता। जैसे कोई चीज जोड़नेवाली न थी भीतर। जैसे भीतर कोई केंद्र न था। जैसे वह कोई एक एकता न था। जैसे यंत्र सब ढीला हो गया था और सब अस्थिपंजर—किसी तरह लटके चल रहे थे।एक दिन अचानक चित्रशाला के मालिक ने देखा, वान गाग की चाल बदल गई है। उसमें थोड़ी गति है; और गति ही नहीं है, एक पुलक है! न केवल पुलक है बल्कि उसके चेहरे पर एक ताजगी है। जैसे उसने आज कई वर्षों के बाद स्नान किया है। स्नान तो वह रोज करता था, लेकिन आज कोई भीतरी स्नान हो गया है, एक नाच है।उसके मालिक ने कहा, 'वान गाग! तुम्हें वर्षों से देख रहा हूं। तुमसे ज्यादा उदास, हताश, हारा हुआ आदमी नहीं देखा। आज क्या हो गया है? सीढ़ियां चढ़ते वक्त तुम सीटी बजा रहे थे। क्या मामला है? क्या किसी के प्रेम में पड़ गए?वान गाग ने कहा, 'हां, एक स्त्री ने मेरी तरफ मुस्कुरा कर देखा है।'एक स्त्री जब तुम्हारी तरफ मुस्कुरा कर देख ले, तो इतनी बड़ी घटना घट जाती है; और जब परमात्मा तुम्हारी तरफ मुस्कुरा कर देखेगा हजार-हजार आंखों से, हजार-हजार रूपों में—वृक्षों से, चांद-तारों से, झरनों से, पहाड़ों से, सब तरफ से तुम पर झुक आएगा; जैसे आषाढ़ में मेघ घिर गए हों, ऐसा सब तरफ से तुम पर झुक आएगा और वर्षा करने लगेगा प्रेम की, तब क्या तुम्हारी खोपड़ी में ही ऐसा भाव उठेगा, कि परमात्मा देख रहा है?नहीं, तब तुम नाच उठोगे। मीरा कहती है, 'पद घुंघरू बांध मीरा नाची'। उसी घड़ी में सोचने से काम न चलेगा; नाचना भी कम पड़ जाएगा। नाचने का अर्थ ही यह है कि तुम्हारी समग्रता ओतप्रोत हो गई, तुम्हारा रोआं-रोआं सम्मिलित हो गया, तुम्हारी धड़कन-धड़कन डूब गई, तुम्हारी श्वास-श्वास ने स्पर्श किया उसका।भाव-दशा का अर्थ है अखंड, पूरे तुम उसमें हो। इसलिए प्रेम विचार नहीं है, प्रेम भाव है। प्रार्थना भी विचार नहीं है, प्रार्थना भाव है। ध्यान भी विचार नहीं है, ध्यान भाव है।

और भाव को अगर तुम ठीक से समझ लो, तो वह विचार से बिलकुल उलटा है, क्योंकि उसका गुणधर्म निर्विचार का है। जितना ही भाव तुम्हें पूरा पकड़ लेता है, उतने ही विचार शांत हो जाते हैं, तरंगें खो जाती हैं। तुम इतनी गहरी अनुभूति से भरे होते हो, कि विचार करने की सुविधा कहां? जगह कहां? जरूरत कहां?प्रेम का विचार तो वही करता है, जिसने

प्रेम का भाव नहीं जाना। भोजन का विचार वही करता है, जो भूखा है और जिसने भोजन नहीं जाना। भरा-पेट आदमी कहीं भोजन का विचार करता है! भोजन से मिल जाती है तृप्ति, विचार खो जाते हैं। भूखा विचार करता है भोजन का। भूखा भोजन ही भोजन का विचार करता है, और कोई विचार आते ही नहीं।तो परमात्मा का विचार तो तभी तक आएगा, जब तक परमात्मा की भूख ही है। अभी तृप्ति नहीं हुई। प्यास ही है, कंठ पर जल की धार नहीं गिरी। अभी मिलन नहीं हुआ। एक हलकी सी फुहार भी नहीं पड़ी। भाव है तुम्हारा पूरा-पूरा संयुक्त किसी अवस्था में हो जाना। इसलिए सारा जोर समस्त साधनाओं का एक ही है, कि तुम विचार से भाव की तरफ हटो।और सारी संस्कृति, सारी सभ्यता, सारा समाज, सारी शिक्षा एक ही बात की है, कि तुम भाव से बचो और विचार में जीयो। स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी विचार सिखाती है, भाव नहीं—'सोचो'! और सोचने का अर्थ क्या होता है? सोचने का अर्थ होता है, जीने से बचना। जितना तुम सोचोगे, उतना जीने से बचते जाओगे। तुम सोचते ही रहोगे। आखिर में तुम पाओगे, खोपड़ी अपने भीतर ही सब कर लेती है। शरीर की कोई जरूरत ही नहीं रह गई।अभी पश्चिम में कुछ प्रयोग हुए हैं। मस्तिष्क की सर्जरी के प्रयोगों से एक बात अनुभव में आई है कि मस्तिष्क को शरीर से बाहर निकाला जा सकता है और अलग शरीर के रखा जा सकता है यंत्रों के सहारे; तो भी मस्तिष्क सोचता ही चला जाता है। तुम्हारी कोई जरूरत ही नहीं है मस्तिष्क को सोचने के लिए। मस्तिष्क को घंटों बाहर रख कर परीक्षण किए गए हैं। शरीर से बिलकुल बाहर निकाल लिया है। अब उसको यंत्रों के सहारे चलाते हैं। यांत्रिक फेफड़ा खून देता है। यांत्रिक फेफड़े से आक्सीजन मिलती है और मस्तिष्क सोचना जारी रखता है।

उस आदमी को पता भी नहीं होगा, कि कोई फर्क पड़ गया है। वह जो सोच रहा था—अगर वह पैसे का पागल था तो वह पैसे का सोच-विचार जारी रखेगा, हिसाब-किताब लगाता रहेगा भीतर। धन, रुपए गिनता रहेगा।अगर वह आदमी राजनीतिज्ञ था तो पद की आकांक्षा में लगा रहेगा। मिलता रहेगा अपने वोटर्स से। चुनाव का दौरा करता रहेगा। और शरीर के बाहर पड़ा है मस्तिष्क!अगर वह कामी था, तो कामवासना से भरा रहेगा। अब कामवासना के तृप्त करने का कोई उपाय भी नहीं, क्योंकि शरीर से अलग है मस्तिष्क।अगर वह किसी मंत्र का पागल था, कि 'ओम्, ओम्, ओम्, ओम्' जपना है, तो वह जपता रहेगा। विचार अकेले मस्तिष्क से चल सकते हैं, उनके लिए तुम्हारे पूरे होने की जरूरत नहीं है। इसलिए जितना विचारक विचार में डूबता चला जाता है, उतना ही उसका जीवन संकीर्ण होता चला जाता है, छोटा होता चला जाता है।पश्चिम में एक विचारक बहुत विचार करने के बाद परेशान होकर इस नतीजे पर पहुंचा, कि अगर किसी तरह विचार से मुक्ति हो जाए तो ही शांति मिल सकती है। तो उसने एक छोटा-सा प्रयोग किया है, वह बड़ा कीमती प्रयोग है। शायद तुम्हें भी काम का हो जाए। फिर तो वह बहुत प्रसिद्ध हो गया। फिर तो उसने एक छोटी-सी किताब लिखी अपने प्रयोग के बाबत।उसने एक प्रयोग किया, कि विचार से बहुत परेशान होने के कारण मानसिक चिकित्सा, मनो-विश्लेषण सब करवा लिया, कोई हल न पाया। और मन था कि पगलाए चला जाता है। मन की आंधी बढ़ती चली जाती, वहां धुआं इकट्ठा होता चला जाता और विक्षिप्तता करीब है।तो उसने एक छोटा सा प्रयोग किया। वह कैसे प्रयोग पर पहुंचा, कहना मुश्किल है, लेकिन वह बहुत पुराना तांत्रिक प्रयोग है। वह प्रयोग यह है, कि वह अपने को इस तरह अनुभव करने लगा, जैसे सिर है ही नहीं। राह फर चलता है, लेकिन एक खयाल रखता है, कि सिर कटा हुआ है। बस, गर्दन तक हूं, उसके पार नहीं। बैठता है, सोता है, लेकिन एक खयाल बनाए रखता है, कि गर्दन है ही नहीं। धीरे-धीरे वह चकित

हुआ, कि गर्दन न होने का खयाल; गर्दन कट गई, सिर के न होने का खयाल मन के विचारों को शांत करने लगा।उसे तो कुंजी मिल गई। फिर तो उसने इसका गहन प्रयोग किया। उठते, बैठते, चलते, सोते वह एक ही मंत्र बना लिया उसने कि खोपड़ी नहीं है। बस, नीचे का धड़ है, सिर नहीं है। और कोई साल भर के प्रयोग के बाद सारे विचार शून्य हो गए।तो अब तो वह गुरु हो गया। तो वह लोगों को समझाता है। और उसने एक छोटी सी तरकीब निकाली है। वह साथ में, अपने झोले में कागज की थैलियां रखे रहता है। थैलियां, जो दोनों तरफ से खुली हैं; लंबी थैलियां कागज की। वह लोगों को कहता है, इस में सिर डाल लो। वहां कुछ है ही नहीं, खाली थैली है। और वहां देखते रहो और सोचते रहो, कि सिर है ही नहीं। न तो कुछ देखने को है, न कोई देखनेवाला है।और अनेक लोगों को ध्यान की थोड़ी-थोड़ी झलकें उसकी थैलियों से

मिलना शुरू हो गइ। वह थैली काम की है, कारगर है, तुम भी प्रयोग करके देखना। बस, थोड़ी सी कागज की थैली, उसमें खोपड़ी डाल ली। और वहां कुछ है नहीं, खाली थैली है; वहां देखते रहे, देखते रहे। न कुछ देखने को है, न कोई देखनेवाला है।बस, इतना ही तो सारा ध्यान का शास्त्र है, न कुछ देखने को है, न कोई देखनेवाला है। न दृश्य है, न दर्शन है। फिर विचार कहां उठता है? फिर विचार खो जाता है।लेकिन विचार का खो जाना पर्याप्त नहीं है। यही भक्तों में और ध्यानियों में फर्क है। ध्यानी कहता है, विचार खो गया, सब हो गया। भक्त कहता है, विचार खो गया, यह तो केवल प्राथमिक चरण है। अभी भाव कहां जन्मा है? तो विचार खो जाने के बाद तुम पाओगे विचार तो नहीं रहा। मन शांत हो गया, लेकिन आनंद तुम न पाओगे।इसलिए ध्यान करनेवाला व्यक्ति शांत हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। आनंद की स्फुरणा न पाएगा। यही फर्क है बुद्ध के विचार और वेदांत का। बुद्ध का विचार शून्य तक पहुंचा देता है। बड़ी गहरी बात है शून्य तक पहुंचा देना; आधी मंजिल पूरी हो गई।लेकिन वेदांत कहता है, यह काफी नहीं है। शून्य तो हो गया, लेकिन अभी परमात्मा से भरा नहीं। जहर से तो खाली हो गया पात्र, लेकिन

अमृत अभी भरा नहीं। अच्छा हुआ कि जहर से खाली हो गया, काफी है यह भी। यह कितना मुश्किल है, लेकिन अधूरा है।यही वेदांत का और बुद्ध के चिंतन का फर्क है। वेदांत कहता है, जब तक शून्य पात्र ब्रह्म से न भर जाए, तब तक तुम शांत तो हो जाओगे, लेकिन आनंदित कैसे होओगे?इसलिए बुद्ध को तुम वृक्ष के नीचे शांत बैठा देखते हो। महावीर को तुम पहाड़ों में शांत खड़ा हुआ देखते हो; पर मीरा का नाच, चैतन्य का अहोभाव वह दिखाई नहीं पड़ता। कुछ कमी है। कुछ चूक रहा है। सब है—बैंड-बाजे बज गए, बराती आ गए, मेहमान इकट्ठे हो गए, दूल्हा खो रहा है। सब है, लेकिन कुछ फीका-फीका है। दरबार भरा है, दरबारी बैठे हैं, सिंहासन खाली है, सम्राट नहीं है। सन्नाटा है, प्रतीक्षा है, लेकिन कुछ चूक रहा है—कोई एक कड़ी!वेदांत परम शास्त्र है। उससे ऊपर कोई शास्त्र कभी नहीं गया। वेदांत परम दृष्टि है, क्योंकि वह शून्य में पूर्ण को उतार लेती है।मैं भी तुमसे कहता हूं, कि ध्यान जरूरी है, एकदम जरूरी है। उसके बिना तो कुछ भी न होगा। वह तो प्राथमिक है। उससे तो भवन निर्मित होगा। लेकिन फिर भी अतिथि के आने की जरूरत पड़ेगी।भूमि तैयार कर ली, बीज भी डालने पड़ेंगे। भूमि तैयार कर लेना बगीचे का लग जाना नहीं है। जब भाव उमगेगा, तभी बगीचा लगा। इसलिए जब तक तुम नाच न सको, तब तक समझना मंजिल नहीं आई। शांत हो जाओगे; खूब! बहुत खूब! अच्छा हुआ। लेकिन जब तक नाच न पाओ, तब तक समझना अभी थोड़ा-सा फासला बाकी है।बुद्ध खूब हैं, लेकिन कृष्ण के ओंठों पर रखी बांसुरी की कमी है। थोड़ा सा चूक रहा है। हो सकता है बुद्ध के भीतर वह पूरा भी है गया हो; लेकिन बुद्ध नाच नहीं सकते। उनकी सारी प्रक्रिया शून्यता की है, अहोभाव की नहीं। हो सकता है, भीतर वे आनंद को भी उपलब्ध हो गए हों, लेकिन वह आनंद उनके रोएं-रोएं से बहता नहीं। उसमें भी एक संयम मालूम पड़ता है। उसमें वे पागल होकर नाच नहीं उठते, बावले नहीं हो जाते।खयाल रखना—विचार, निर्विचार, फिर भाव। विचार से मुक्त होना है, निर्विचार को लाना है, ताकि भाव आ सके। और जब

भाव आ जाए तो संकोच मत करना और डरना मत; और भयभीत न होना और संयम मत रखना। फिर नाचना अबाध! तभी जीवन परम उत्सव को उपलब्ध होना है। और जीवन की आखिरी घड़ी अगर उत्सव न हो सके, तो कहीं कुछ कमी रह गई। थोड़ी सी रह गई हो, लेकिन कमी रह गई।नाचते हुए तुम मृत्यु में जा सको तो ही आवागमन से छुटकारा है। तुम्हारा मंदिर तुम्हारा नृत्यगृह बन जाए और तुम्हारा ध्यान तुम्हारे भीतर अनाहत नाद को जगा दे। तुम्हारी विचार-शून्यता में ओंकार का विस्फोट हो। तुम शून्य बनो और पूर्ण का अतिथि तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे। इससे कम पर राजी मत होना।धर्म अगर अंततः नृत्य और उत्सव न बन जाए तो धर्म पूरा नहीं है। चौथा प्रश्न मन में कई प्रश्न उठते हैं, किंतु जी चाहता है, कुछ न पूछूं; केवल चरण-कमलों के पास बैठा रहूं।मन में प्रश्न ऐसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। वे लगते ही चले जाएंगे। तुम कितना ही पूछो और मैं कितना ही जवाब दूं! मैं इस आशा में जवाब नहीं देता हूं कि मेरे जवाबों से तुम्हारे प्रश्न उठने बंद हो जाएंगे। वह भूल मैं नहीं कर सकता। मुझे भलीभांति पता है कि मेरा हर जवाब तुम्हारे भीतर और दस नए सवाल उठाएगा।इसलिए अगर मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता हूं, तो इस खयाल से नहीं कि तुम्हारे प्रश्न हल हो जाएंगे। सिर्फ इसी खयाल से कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि इतने प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं, फिर भी

प्रश्नों की भीड़ तो उतनी की उतनी बनी है। उसमें तो रत्ती भर कमी नहीं हुई। शायद थोड़ी बढ़ गई हो; नए प्रश्न उठ आए हों क्योंकि नए उत्तर मिले, जो तुम ने कभी सुने न थे। मन ने नए प्रश्न उठा दिए।अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो जाए— वही मेरी चेष्टा है; इसलिए तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता हूं, उत्तरों को हल करने को नहीं। कोई उत्तर किसी प्रश्न को कभी हल नहीं कर पाता। सिर्फ तुम्हें यह बोध देने को, कि कोई उत्तर किसी प्रश्न को कभी हल नहीं कर पाता; उलटे हर उत्तर नए प्रश्न को खड़ा कर जाता है।तो इस मार्ग से हल होनेवाला नहीं है। पूछ-पूछ

कर कभी कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। जानकारी को उपलब्ध हो जाए भला; खूब जान ले, लेकिन खूब जानने से कुछ ज्ञान का संबंध नहीं है। जागेगा नहीं, अनुभव नहीं होगा। शब्दों से चित्त भर जाएगा। और हर शब्द बीज की तरह नए शब्द पैदा करेगा। और इसकी कोई 137शृंखला का अंत नहीं है।अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि प्रश्न तो बहुत उठते हैं, लेकिन पूछने का जी नहीं होता, तो तुम एक बहुत महत्वपूर्ण घड़ी के करीब आ गए। यही तो मेरी सारी चेष्टा है, कि तुम्हारे मन में प्रश्न उठें और पूछने का जी न हो। क्योंकि तुम्हें यह समझ भी आ जाए, कि पूछने से क्या होगा।सभी शास्त्रों में सभी प्रश्नों के उत्तर भरे पड़े हैं। तुम खरीद ला सकते हो सब शास्त्र, पढ़ भी ले सकते हो, कुछ हल न होगा। लेकिन अगर तुम्हें यह समझ आ जाए, कि उठने दो प्रश्नों को, हम प्रश्नों में पड़ते ही नहीं। हम तो बैठेंगे सत्संग में। हम तो शांत, चुप—अगर किसी ने जाना है तो उसकी मौजूदगी का रस लेंगे। हम बुद्धि से बुद्धि के संवाद में न पड़ेंगे, हम तो अस्तित्व को अस्तित्व से जोड़ेंगे।जब तुम मुझसे कुछ पूछते हो, मैं तुम्हें कुछ उत्तर देता हूं, तब दो बुद्धियों का संवाद होता है। संवाद भी कठिन है। सौ में निन्यानबे मौके पर तो विवाद होता है।इधर मैं कह रहा हूं, उधर तुम सोच रहे हो, ठीक नहीं है। पता नहीं ठीक है या नहीं, या उत्तर दे रहे हो, जवाब खोज रहे हो, तुम्हारी मान्यता के अनुकूल नहीं है, तुम्हारे शास्त्र के विरोध में है—हजार तरह का विवाद चल रहा है।अगर तुम बहुत शांत चित्त के व्यक्ति हो, और शास्त्रीय नहीं हो, और शास्त्रों का बोझ नहीं ढो रहे हो अपने सिर पर, तो शायद संवाद हो जाए—तुम अगर प्रेमी हो। तुम्हारा मेरे पास होना एक प्रेमी का सान्निध्य है, तो शायद संवाद हो जाए। तो शायद तुम वही सुन लो, जो मैं कहने की कोशिश कर रहा हूं। तो शायद मेरे शब्दों में तुम्हें निःशब्द की थोड़ी झनकार आ जाए। तो शायद मेरे शब्दों के पार तुम मुझे देखने में थोड़े से सफल हो जाओ। तो शायद शब्दों के बीच जो खाली जगह है, वह तुम्हें सुनाई पड़ सके। वही ज्यादा मूल्यवान है।तो जब मैं रुक जाता हूं क्षण भर को और तुम्हारी तरफ देखता हूं, वही असली उत्तर है।यह अगर दिखाई पड़ जाए तो स्वाभाविक फिर तुम पूछना न चाहोगे। प्रश्न तो उठते

ही रहेंगे। जब तक मन है, उठते ही रहेंगे। वह मन का स्वभाव है। जैसे सड़क पर लोग चलते रहेंगे, नदियां बहती रहेंगी, आकाश में बादल सरकते रहेंगे, ऐसे ही तुम्हारे मन में विचार लगते रहेंगे। इससे कुछ अड़चन नहीं है।अगर तुम मेरे पास होने की उत्सुकता से भर जाओ तो उसी उत्सुकता में तुम अपने मन से दूर होने लगोगे। और या तो तुम मेरे पास हो सकते हो, या अपने मन के पास हो सकते हो। दोनों के पास तुम नहीं हो सकते।मत पूछो। अगर समझ आ गई है तो मत पूछो। चुप रहो। उठने दो, उपेक्षा करो। समझो, कि जन्मों-जन्मों का उपद्रव है, चल रहा है, थोड़े दिन चलेगा। चलने दो; उसमें बहुत रस भी मत लो, ध्यान भी मत दो। तुम थोड़े दूर हटने लगो। तुम मेरे पास होने लगो। सत्संग का यही अर्थ है। गुरु के पास होना। अपने से दूर होना, गुरु के पास होना, सत्संग का अर्थ है। क्योंकि दो में से एक ही बात हो सकती है। या तो तुम अपने पास हो सकते हो, या गुरु के पास हो सकते हो। अपने पास रहे, सत्संग नहीं हुआ। गुरु के पास रहे, सत्संग हो गया।तब तो इसका यह भी अर्थ हुआ कि तुम हजारों मील से भी तुम गुरु के पास हो सकते हो और गुरु के पास बैठकर भी दूर हो सकते हो। इसलिए सत्संग का कोई संबंध भूगोल से नहीं है। सत्संग का कोई संबंध न तो स्थान से है, न काल से है। क्योंकि अगर प्रेम गहन हो, तो तुम आज इसी क्षण बुद्ध के पास हो सकते हो; तो स्थान की दूरी भी कुछ दूरी नहीं है। समय की दूरी भी कुछ दूरी नहीं है। और अन्यथा तुम मेरे पास बैठे हो सकते हो और करोड़ों वर्षों का फासला है, और करोड़ों मीलों का फासला है। तुम जितने अपने निकट, उतने ही तुम मुझसे दूर हो।यह एक सदभाव का जन्म हुआ है। इस सदभाव को जीयो। पूछने की फिक्र छोड़ो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि दूसरे, जिनकी अभी पूछने की आकांक्षा है, वे पूछना बंद कर दें। उधार काम नहीं चलता। जिसके भीतर यह आकांक्षा उदय हुई है, कि अब पूछने में रस

नहीं है, सिर्फ पास होने में रस है, उसके लिए ठीक। जिसको अभी थोड़ी और खुजलाहट मन की बाकी हो, उसे खुजा लेना चाहिए।मस्तिष्क तो खुजली जैसा है। खुजाने में रस आता है। आखिर में खून ही निकलता है, तकलीफ ही होती है। पर जिसका निकल आता है खून, वही रुकता है। वह भी नहीं रुक पाता, क्योंकि पुरानी आदत कहती है,

थोड़ा और खुजला लो। खुजलाने में बड़ी मिठास मालूम पड़ती है। खुजली हुई हो कभी, तो तुम्हें पता होगा। न हुई हो, तो खुजली करवा कर देखने जैसी है। उसमें बड़े जीवन का सार छिपा है। क्योंकि सारी खोपड़ी खुजली है। खुजलाने में थोड़ा सा रस आता है। जानते हुए भी, कि खून निकलेगा, पीड़ा होगी, तकलीफ होगी; फिर भी खुजलाते वक्त रस आता है। तो अभी रस आ रहा हो, तो जारी रखो, क्योंकि तुम दूसरे का ज्ञान उधार नहीं ले सकते। यह तो तुम्हारा ही अनुभव जब तुम्हें इस जगह ले आएगा कि व्यर्थ है पूछना। क्योंकि कितने उत्तर मिले, कुछ भी तो पाया नहीं जाता। सुन लेते हैं। उलटे घड़े पर गिरे पानी की तरह सब बह जाता है। तुम वही के वही रह जाते हो।तो कब तक ऐसा करते रहोगे? तब चुप पास बैठ जाने की कला का धीरे-धीरे सूत्रपात होता है। और पास बैठने की कला गहनतम बात है।हमने अपने इस देश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञान की परंपरा को उपनिषद कहा है। उपनिषद शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ होता है, गुरु के पास बैठने की कला। उपनिषद का अर्थ होता है, पास बैठना।और दूसरा अर्थ होता है, गुह्य ज्ञान, गुप्त-ज्ञान।दो अर्थ हैं उपनिषद शब्द के : समीप होना, सत्संग; और गुप्त-ज्ञान। मगर दोनों अर्थ संयुक्त हैं। दोनों अर्थ एक ही तरफ इशारा करते हैं। मतलब यह है कि गुप्त ज्ञान तभी मिलता है, जब तुम समीप होने की कला सीख लेते हो। जब तुम गुरु के पास बैठ जाते हो, बैठना आ जाता है।बड़ा मुश्किल है गुरु के पास बैठना आना। क्योंकि उसका मतलब यह है कि चुप बैठना, मौन बैठना, बिना विचार के बैठना, भाव से बैठना। तब गुरु तुममें प्रवाहित होना शुरू हो जाता है। तब गुरु और तुम्हारे बीच जीवन की सरिता डोलने लगती है। तब गुरु एक किनारा हो जाता है, शिष्य एक किनारा हो जाता है। दोनों के बीच जीवन की धारा बहने लगती है।उस गंगा को बहाना हो—और उस गंगा के अतिरिक्त बाकी कोई गंगा, गंगा नहीं है। अगर उस रसधारा को बहाना हो, तो उपनिषद की कला सीखनी पड़े : चुप बैठ जाना।क्या पूछना है? पूछकर क्या पाना है? पूछकर कुछ मिल भी जाएगा तो शब्द ही मिलेंगे। तुम्हें लगी है भूख, और तुम पूछते

हो भोजन के संबंध में। और मैं भोजन के संबंध में समझाता हूं, मैं तुम्हें पूरा पाकशास्त्र समझा देता हूं; भूख कैसी मिटेगी? तुम कहोगे, भोजन चाहिए।तुम प्यासे हो, तुम पूछते हो जल के संबंध में और मैं तुम्हें समझाता हूं कि जल कैसे निर्मित होता है। एच0टू0ओ0 उसका फार्मूला है। आक्सीजन उदजन दोनों से मिलकर बनता है। उद्जन के दो परमाणु, आक्सीजन का एक परमाणु, तीनों से मिलकर बनता है। तुम कहोगे, इससे मेरी प्यास नहीं बुझती। समझ में आ गया, लेकिन इस एच.टू.ओ. से प्यास नहीं बुझती। किसी वेद से नहीं बुझ सकती, क्योंकि वेद यानी एच.टू.ओ. । किसी शास्त्र से नहीं बुझ सकती। कोई कुरान, कोई बाइबिल नहीं बुझा सकती। किसी गुरु का कोई वचन नहीं बुझा सकता।प्यास तो बुझेगी, पानी तुम्हारे कंठ से गुजरे तब। मेरे पास बैठो, पानी गुजर सकता है। सिर्फ तुम खुले द्वार रखो। पास बैठने का इतना ही अर्थ है, कि तुम रोकोगे न, रुकावट न डालोगे, दीवाल खड़ी न करोगे। तुम नग्न, निर्वस्त्र, शांत, चुप बैठे रहोगे।इसका यह मतलब नहीं है, कि तुम्हारे भीतर आज एकदम से विचार उठने बंद हो जाएंगे। वे तो चलते रहेंगे। उनको तुम चलने दो, तुम उनसे दूर होते जाओ। एक डिस्टेंस, एक फासला बनाओ; वे चल रहे हैं, ठीक है।श्री अरविंद ने लिखा है, कि जिस व्यक्ति से उन्होंने ध्यान सीखा, उसने एक छोटी सी बात उन्हें समझाई थी। कहा था, कि तुम ध्यान करने बैठ जाओ, शांत हो जाओ, निर्विचार हो जाओ। तो अरविंद ने कहा, लेकिन निर्विचार हो जाओ, यह क्या कहने से हो सकता है? हम बैठ जाएंगे; बैठना हो सकता है, निर्विचार कैसे होंगे? विचार तो चलते ही रहेंगे।तो उस व्यक्ति ने कहा, तुम ऐसा समझना कि जैसे तुम शांत बैठे हो और मक्खियां तुम्हारे चारों तरफ घूम रही हैं। विचार मक्खियों की तरह हैं। तुम उनको घूमने देना। तुम उनकी फिक्र न लेना। मक्खियों से क्या लेना-देना है? घूमने दो। तुम शांत रहना, विचारों को घूमने देना। कोलाहल चलता रहेगा तुम्हारे चारों तरफ, लेकिन तुम डांवाडोल मत होना।श्री अरविंद तीन दिन तक बैठे रहे वैसी अवस्था में। रस लग गया। जिसको कबीर कहते हैं, तारी लग गई। तीन दिन तक उठे ही नहीं, सोए भी नहीं, भोजन भी नहीं किया। ऐसा रस भीतर आने लगा, कि उठने का मन ही न रहा। यह असली

उपवास है। खयाल ही न आया भूख का, प्यास का, नींद का। ऐसा मजा आने लगा, ऐसा भीतर अमृत झरने लगा।और धीरे-धीरे मक्खियां दूर होने लगीं। अब भी थीं, मगर बड़े फासले पर। मीलों लंबा फासला था। फासला बड़ा होता चला गया; जैसे चांद-तारों के पास अब मक्खियां गूंज रही थीं, और तुम इतने दूर थे, क्या लेना-देना?विचार के साथ तादात्म्य तोड़ लो, बस! तुम उनसे अलग हो, तुम उनसे भिन्न हो। तुम विचार नहीं हो, तुम विचार के द्रष्टा और साक्षी हो; बस, इस साक्षीभाव से मेरे पास रह जाओ। तो तुमने जो प्रश्न नहीं भी पूछे हैं, उनका भी उत्तर मिल जाएगा। पूछ-पूछ कर तो तुम जो पूछते हो, उसका भी कहां मिलने वाला है? और जो मैं तुम्हें उत्तर देता हूं, वह तो बच्चों को खिलौने देने जैसा है। ताकि रस लगा रहे, बच्चे खेलने आते रहें; कभी उलझ जाएंगे। कभी खिलौना फेंक देंगे और असली चीज लेने को राजी हो जाएंगे।देना चाहता हूं तुम्हें शून्य; क्योंकि उसी से पूर्ण का मार्ग खुलता है। लेकिन तुम शब्द मांगते हो इसलिए शब्द देता हूं, कि ठीक, आते रहे तो किसी न किसी दिन रोग पकड़ ही जाएगा। यह रोग बड़ा संक्रामक है।गुरु से ज्यादा संक्रामक दुनिया में कोई और दूसरी चीज नहीं है। बस, आते रहो। उतनी हिम्मत अगर रखी आते रहने की, तो किसी न किसी दिन रोग पकड़ ही जाएगा। और यह रोग बिना मारे नहीं छोड़ता। यह बिलकुल मिटा ही डालता है। इसका कोई इलाज भी नहीं है; ला-इलाज है, इनक्योरेबल है। एक दफा लग गया, फिर छूटता नहीं। पांचवां प्रश्न : कभी-कभी जीवन में दुख और पीड़ा का इतना अनुभव होता है, कि लगता है इससे ज्यादा दुख नरक में भी नहीं होगा। फिर भी जीवन के प्रति वैराग्य पैदा क्यों नहीं होता?दुख से कभी वैराग्य पैदा होता ही नहीं, सुख से पैदा होता है। दुखी की आशा तो जिंदा रहती है; सिर्फ सुखी की आशा टूटती है। क्योंकि दुख में ऐसा लगता ही रहता है, कि आज दुख है, कल ठीक हो जाएगा। अभी दुख है, सदा थोड़े ही रहेगा! और दुख में ऐसा भी लगता है, कि कुछ न कुछ रास्ता है इसके पार जाने का।गरीब कितना ही गरीब हो, उसको लगता ही रहता है, अमीर होने का कोई न कोई उपाय

है। आखिर दूसरे हो गए हैं। इसलिए भिखमंगा कभी विरागी नहीं हो सकता। बड़ा मुश्किल है। भिखमंगे की आशा लगी रहती है। जिसके पास है ही नहीं, वह छोड़ेगा कैसे? जिसके पास है, वही छोड़ सकता है। सुख से असली वैराग्य पैदा होता है, दुख से नकली वैराग्य। इसलिए दुख से मैं तुम से कहता भी नहीं कि तुम दुख से वैराग्य की तरफ जाना; नहीं। वह कोई ठीक रास्ता नहीं है।अगर तुम दुख से वैराग्य की तरफ गए तो तुम कभी मोक्ष के आकांक्षी न बनोगे; ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग के। क्योंकि दुखी आदमी सुख मांगता है, आनंद नहीं। आनंद का उसे पता ही नहीं। सुख का ही पता नहीं, आनंद तो बड़ी दूर की बात है। और दुखी आदमी को जो यहां नहीं मिला है, वह परलोक में मांगता है। और दुखी आदमी को जो अपनी कोशिश से नहीं मिला है, वह परमात्मा से मांगता है। लेकिन दुखी आदमी विरागी नहीं हो सकता। मैंने किसी दुखी आदमी को कभी विरागी होते नहीं देखा। और अगर हो जाए, तो वह झूठा वैराग्य होगा।तुम्हें अपने संन्यासियों में, अगर तुम इस मुल्क में भ्रमण करो तो तुम्हें सौ में से निन्यानबे प्रतिशत ऐसे संन्यासी मिलेंगे, जो दुख के कारण संन्यासी हो गए हैं। दुख के कारण जो संन्यास आता है, उस संन्यास में भी दुख की छाया पड़ी रहती है और सुख की आकांक्षा बनी रहती है। इसीलिए दुख से तुम मुक्त न हो पाओगे और वैराग्य का कोई जन्म दुख से न होगा।सुख से वैराग्य का जन्म होता है। क्यों?क्योंकि जब सुख मिल जाता है, तब भी तुम पाते हो कि दुख तो मिटा ही नहीं। सुख भी मिल गया और दुख तो बरकरार है। जो मिलना था, वह मिल गया; मिला तो कुछ भी नहीं। भीतर तो सब खाली है। धन मिल गया और भीतर की निर्धनता न मिटी। जैसी सुंदर पत्नी चाहिए थी मिल गई, लेकिन कोई तृप्ति न मिली। जैसा पति चाहिए था, मिल गया, लेकिन सब सपने टूट गए। कोई सपना पूरा न हुआ।दुखी आदमी तो आशा कर सकता है, सुखी आदमी कैसे आशा करेगा? और आशा है राग। दुखी आदमी की तो आशा बनी रहती है कि यह पत्नी मिल गई दुष्ट। दुनिया में इतनी स्त्रियां हैं, एक अभागे हम इससे उलझ गए! कोई दूसरी स्त्री मिल जाती। और स्त्रियां दिखती हैं सड़कों पर हंसते, मुस्कुराते। और लोग दिखते हैं। और लगता है, कि लोग बड़े सुखी हैं, हम ही दुखी हैं।

वह जो प्रतीति है, वह प्रतीति आशा बंधाती है, कि कोई न कोई रास्ता निकल आए, कोई सुंदर स्त्री मिल जाए। हम गरीब हैं, इसलिए दुखी हैं। अगर महल होता तो दुखी न होते। और ऐसा लगता है, महलों में जो लोग हैं, वे दुखी नहीं हैं। क्योंकि अपनी असली शक्ल कोई भी नहीं दिखाता। बाहर लोग शक्लें ओढ़ कर आते हैं। भीतर दुखी होते हैं, बाहर हंसते

हुए निकलते हैं। पति-पत्नी लड़ रहे हों और मेहमान घर में आ जाए, दोनों मुस्कुरा कर बात करने लगते हैं। क्यों इस मेहमान को धोखा दे रहे हो? इसके वैराग्य होने की थोड़ी संभावना थी, वह भी मिटा दी। यह सोचेगा, कैसे सुख में जी रहे हैं। स्वर्ग उतरा है इस घर में। एक हम ही दुखी हैं कि कलह चलती है। और यही दशा तुम्हारे मित्र की है। जब वह तुम्हारे घर पहुंचता है, तुम भी मुस्कुराने लगते हो। बाहर बड़ा धोखा है। धनी यहां सुखी होने का धोखा दे रहा है। तो गरीब की आशा बंधी है। पढ़ा-लिखा, गैर-पढ़े-लिखे को धोखा दे रहा है, कि हम बड़े सुखी हैं।कोई सुखी नहीं है। यहां दो तरह के दुखी लोग हैं। एक वे लोग हैं दुखी, जिनके पास कुछ नहीं है—गरीब दुखी। और एक यहां वे लोग हैं जिनके पास सब है और दुखी हैं—अमीर दुखी। दो तरह के दुखी लोग हैं।लेकिन गरीब के दुख से छुटकारा बहुत कठिन है। कठिन इसलिए है कि तुम आशा को कैसे मिटाओगे? गरीबों के कारण ही तो तुम्हारे स्वर्ग पैदा हुए हैं—झूठे! वे आशाएं हैं गरीबों की। वहां कल्पवृक्ष हैं जिनके नीचे बैठकर सब कामनाएं पूरी हो जाती हैं। ये कामी पुरुषों ने ही बनाए होंगे कल्पवृक्ष। विरागी का कल्पवृक्ष से क्या संबंध है?तीन शब्द हैं हमारे पास ः नरक, स्वर्ग और मोक्ष। नरक का सभी अनुभव करते हैं। नरक कहीं है नहीं; तुम जहां हो, वहीं है। जिस दिन तुम यह समझ लोगे, तुम उससे भागना छोड़ दोगे। क्योंकि वह तुम्हारे होने में छिपा है। वह तुम्हारे होने का ढंग है। वह कोई ऐसा स्थान नहीं कि इधर से दूसरी जगह चले गए ट्रेन में बैठ कर। उससे कोई फर्क न पड़ेगा। वह तुम्हारे होने का ढंग है। तुम जहां हो, वहीं नरक में रहोगे। गरीब हो, तो गरीब का नरक होगा। अमीर हो तो अमीर का नरक होगा; मगर नरक होगा। क्योंकि तुम्हारे होने की व्यवस्था नारकीय है। तुम्हारे पास कला है नरक बनाने की। जब तक वह कला न छूट जाएगी, तब तक नरक होगा।इसलिए जो भी आदमी जहां है, वहीं नरक अनुभव करता है। मैंने अपने जीवन में लाखों लोगों को निकटता से देखा है। उनके जीवन
की उलझन को समझने की कोशिश की है। मैंने किसी आदमी को सुखी नहीं देखा। सुखी आदमी मिला ही नहीं। जैसे सुखी आदमी है ही नहीं! क्या मामला है? सब तरह के लोग मैंने देखे।एक आदमी आता है, वह कहता है, बच्चा नहीं है इसलिए मैं दुखी हूं। और दूसरा आदमी, वह गया नहीं और आता है और कहता है, बच्चों की वजह से बड़ा दुखी हूं।एक आदमी कहता है कि बड़ी चिंता है धन की, व्यवस्था की; सो ही नहीं पाता। इससे तो गरीब बेहतर। और दूसरा आदमी कहता है, हम मरे जा रहे हैं, गरीबी में।सब दुखी हैं। हर तरह के लोग। तो नरक कुछ होने का ढंग है। एक कला है, जो तुमको अगर आती है तो तुम जहां भी रहोगे, वहीं नरक बना लोगे। और नरक में सभी लोग हों, तो स्वर्ग की आकांक्षा पैदा होती है।नरक स्थिति है, स्वर्ग कल्पना है। नरक वास्तविकता है—तुम जहां हो वहीं। कहीं पाताल में नरक नहीं है। पाताल में तो अमरीका है। और अमरीका में भी लोग सोचते हैं, पाताल में नरक है। तुम पाताल में हो। जमीन गोल है।स्वर्ग आकांक्षा है और मोक्ष क्रांति है।जिस दिन तुम अपने भीतर नरक की व्यवस्था को तोड़ दोगे, उस दिन स्वर्ग नहीं मिलेगा। स्वर्ग तो नरक का ही प्रक्षेपण था। वह तो नरक में ही जीनेवाले आदमी की आकांक्षा थी। जिस दिन भीतर का नरक टूट जाता है, उस दिन स्वर्ग भी खो जाता है। उस दिन मोक्ष बचता है। उस दिन तुम मुक्त हो।मैंने सुना है 173ख्रुश्चेव मरा, तो वह सीधा स्वर्ग पहुंच गया। सेंट पीटर, जो ईसाइयों के स्वर्ग के द्वार पर पहरा देते हैं, वे जरा चिंतित हुए कि इस 173ख्रुश्चेव को भीतर लेना कि नहीं! तो उन्होंने कहा, आप जरा प्रतीक्षालय में बैठें; मैं पूछकर आऊं। भगवान को उन्होंने पूछा कि ख्रुश्चेव आ गया है। कम्युनिस्ट को भीतर लेना कि नहीं? नास्तिक है।भगवान ने कहा, अब जो भी आ गया है; आए हुए को लौटाना ठीक नहीं। सिर्फ एक शर्त उससे कर लेना कि यहां कम्यूनिज्म का प्रचार न करे। और किसी को समझाए-बुझाए न। और यहां कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि स्वर्ग में तो सभी कुछ है। यहां तो सभी अमीर हैं। सभी एक-दूसरे से ज्यादा
अमीर हैं। कल्पवृक्ष ही कल्पवृक्ष लगे हैं। किसी की कोई कामना अतृप्त नहीं है। तो यहां कोई सर्वहारा है ही नहीं, कोई गरीब है ही नहीं। यहां तो सभी सुखी हैं और अभिजात हैं। इसलिए यहां कोई जरूरत भी नहीं है। उसको कहना, यहां कोई जरूरत भी नहीं है। और तुम यह भर न करना; तो हम इस शर्त पर तुम्हें भीतर ले लेते हैं। और एक वर्ष के बाद हम जांच करेंगे। अगर सब ठीक पाया तो रुक सकते हो, अन्यथा जाना पड़ेगा।ख्रुश्चेव राजी हो गया। एक साल के बाद सेंट पीटर को बुलाया भगवान ने और कहा कि क्या खबर है ख्रुश्चेव के संबंध में? तो सेंट पीटर ने भगवान से कहा, 'कामरेड, सब

ठीक है।'उसने भड़का दिया सेंट पीटर तक को!अब ख्रुश्चेव यानी होने का एक ढंग। कम्यूनिस्ट यानी होने का एक ढंग। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; कम्यूनिस्ट अगर स्वर्ग में जाएगा तो वहां भी क्रांति की चर्चा चलाएगा।और अगर कोई संन्यस्त नरक में जाएगा तो वहां भी संतोष अनुभव करेगा। भक्त नरक में भी अहोभाव पाएगा, क्रांतिकारी स्वर्ग में भी क्रांति के उपाय खोज लेगा।तुम वही देखते हो, जो तुम हो। तुम अगर दुखी हो, तो तुम स्वर्ग से मुक्त नहीं हो सकते। स्वर्ग तुम्हारा पीछा करेगा। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, दुःख के कारण तुम यह मत सोचना कि संन्यास पैदा होगा, वैराग्य पैदा होगा। नहीं, वह अपेक्षा मत करो। दुख को समझने की कोशिश करो। सिर्फ दुख से कोई संन्यास पैदा नहीं हो जाएगा। उससे तो केवल आकांक्षा पैदा होगी। दुख को समझने की कोशिश करो, दुख क्यों है।और सभी धर्मगुरुओं ने तुम्हें व्यर्थ की बहुत सी बातें सिखा दी हैं। वे कहते हैं, दुख इसलिए है कि संसार है। संसार का स्वरूप दुख है।यह सब व्यर्थ की बात है। तुम्हारे होने के ढंग में दुख है। संसार से कुछ दुख का कोई लेना-देना नहीं है। यहीं इसी पृथ्वी पर सुखी होने की संभावना है। यहीं बुद्ध शांत हो जाते हैं, यहीं मीरा नाचती है अहोभाव से। यहीं तुम बैठे दुखी हो!दूसरे पर दोष डालने की मन की

बड़ी वृति है। और उसी वृति का यह सिद्धांत है, जो कहता है, संसार दुख-स्वरूप है। यहां तो, माया में दुखी होना ही पड़ेगा।मैं तुमसे कहता हूं कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे होने के ढंग बदलते ही यहीं सुख शुरू हो जाता है। सुख ही नहीं, आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है।दुख को समझो; दुख से भागो मत। वह जो तुम पूछते हो कि दुख से वैराग्य नहीं पैदा हो रहा; तुम यही पूछ रहे हो कि दुख से हम भाग क्यों नहीं रहे?दुख से भागकर जाओगे कहां? तुम जहां जाओगे, तुम्हारा दुख तुम्हारे भीतर है, तुम्हारे साथ है। जैसे मकड़ी जाला बुनती है; वह उसके भीतर से निकलता है। चारों तरफ फैला देती है, फिर अगर उसको डेरा बदलना हो तो वह अपने जाले को फिर से लील जाती है। और दूसरी जगह पहुंच जाती है। वहां जाकर फिर जाले को फैला देती है।तुम अगर जहां हो, वहां से भागोगे तो तुम अपने जाले को लील जाओगे। फिर तुम हिमालय चले जाओ, वहां तुम जाकर अपने जाले को फि132र फैला दोगे।तुम ही हो, जिससे उठना है। भागना नहीं है कहीं। परिस्थिति में नहीं है दुख; तुम्हारे होने के ढंग, तुम्हारे जीवन के दृष्टिकोण, तुम्हारे दर्शन में, तुम्हारी आधारशिला में दुख है। इसलिए मैं दुख से भागने को नहीं कहता, दुख से जागने को कहता हूं। जागकर समझो दुख को कि दुख क्यों है?तब तुम बड़े चकित होओगे। जितनी तुम्हारी सुख की मांग है, उतना ही ज्यादा दुख है। जितनी सुख की मांग कम हो जाती है, उतना दुख कम हो जाता है। जिसकी कोई सुख की मांग नहीं, उसका सारा दुख समाप्त हो जाता है। उसी क्षण एक विस्फोट होता है। नरक, स्वर्ग दोनों खो जाते हैं। तुम अचानक पाते हो कि तुम मुक्त हो ः जंजीरें गिर गइ। न तो लोहे की जंजीरें हाथ पर रहीं, न सोने की जंजीरें हाथ पर रहीं।इसलिए यह मत सोचो कि दुख से अपने आप कोई वैराग्य पैदा हो जाएगा। दुख के प्रति जागो; दुख क्यों है? और दूसरे को जिम्मेवार मत ठहराना। वही भूल तुम जन्मों-जन्मों से कर रहे हो। उसी भूल के कारण तुम अब तक जाग नहीं सके। जब दूसरा जिम्मेवार है, जागने की जरूरत ही नहीं है।जिम्मेवार तुम हो, सदा तुम हो। कोई

तुम्हें गाली दे और क्रोध तुम्हें आए, तो भी जिम्मेवार तुम हो, गाली देनेवाला नहीं। क्योंकि ऐसे लोग हैं, जिनको गाली दो और क्रोध न आए। तो गाली में कुछ रस न रहा, अर्थ न रहा। तुम भी अगर थोड़ी समझ से भर जाओगे तो कोई तुम्हें गाली देगा और तुम्हें क्रोध न आएगा। और यह भी हो सकता है कि कोई तुम्हें गाली दे और तुम्हें हंसी आए कि कैसा पागल है!तुम्हारी दृष्टि पर सब निर्भर है। तुमसे छीना जाए और तुम्हें पीड़ा न हो। तुम्हारे हाथ से खो जाए और तुम्हें अभाव न खले। यह शरीर मरने के किनारे आ जाए और तुम्हारे भीतर की जीवन-ज्योति में जरा सा कंपन न उठे, यह संभव है।कोई बाहर दुख नहीं है, भीतर है। तुम अपने दुख को, अपने नरक को अपने साथ लिए चल रहे हो। उसके प्रति जागो।दुख से भागकर जो वैराग्य लेगा, वह स्वर्ग के लिए वैराग्य लेगा, सुख के लिए वैराग्य लेगा। जो उसे यहां नहीं मिला, वह मंदिर में बैठकर प्रार्थना करेगा। परमात्मा, परलोक में मिल जाए! इसलिए तुम्हारा परलोक बड़ा काम से भरा है, वासना से भरा है। वहां अप्सराएं हैं सुंदर। जिन अभिनेत्रियों को तुम यहां नहीं पा सके, उनसे बहुत ज्यादा सुंदर अभिनेत्रियां वहां हैं। अप्सराएं यानी वेश्याएं। नाम बड़ा अच्छा है, वह स्वर्ग का नाम है। अर्थ उसका वेश्या है। क्योंकि

वह किसी एक से बंधी नहीं हैं, पतिव्रता का नियम नहीं हैं वहां। वेश्याएं हैं, और सोलह साल पर उनकी उम्र रुक गई है! उससे आगे बढ़ती ही नहीं।तुम्हारी कामना है, स्त्री सोलह साल पर रुक जाए। उसी कामना को तुमने स्वर्ग में बना लिया है। वहां वृक्षों के नीचे बैठकर तुम जो वासना करते हो, तत्क्षण पूरी हो जाती है। यहां तुम बहुत भटक लिए हो। वासना करते हो, वर्षों लग जाते हैं पूरा होने में। और जब तक पूरी होने के करीब आती है, तब तक तुम्हारी प्यास ही मिट गई होती है, या तुम ही मिटने के करीब पहुंच गए होते हो। कोई सार नहीं दिखता।इसलिए वहां तत्क्षण! समय नहीं खोता। कल्पवृक्ष के नीचे तुमने चाहा और हुआ। इन दोनों के बीच में पल नहीं खोता। इधर तुम्हारे मन में विचार उठा, उधर पूरा हुआ।मैंने सुना है, कि एक आदमी भूल से स्वर्ग में भटक गया। पहुंच गया कहीं भटक कर। एक कल्पवृक्ष के नीचे विश्राम करने लेट गया। आंख खुली तो उसे बड़ी भूख लगी थी। उसने ऐसे ही, जैसा तुम

सोचते हो, सोचा कि अगर कहीं भोजन मिल जाता. . .तत्क्षण थालियां चारों तरफ लग गइ□। वह इतना भूखा था कि उस समय उसने विचार भी नहीं किया, ये कैसे लग गइ□? कहां से आ गइ□? उसका पेट भर गया, तब उसने सोचा, पानी? पानी आ गया स्वादिष्ट, सुस्वादु। खूब खा गया था, खूब पानी पी लिया था तो उसने कहा, बस, अब बिस्तर की कमी है। बिस्तर आ गया!बिस्तर पर लेट रहा था, तब उसे खयाल आया कि यह हो क्या रहा है? ऐसे तो हम पहले भी सोचते रहे, लेकिन कभी ऐसा हुआ नहीं। यहां कोई भूत-प्रेत तो नहीं है? कि चारों तरफ भूत-प्रेत खड़े हो गए—कल्पवृक्ष!वह घबड़ाया। उसने कहा, मारे गए! वह मारा गया। भूत-प्रेत खा गए उसको वहीं।कल्पवृक्ष के नीचे भी तुम ही तो रहोगे। सब भी पूरा होगा, तो भी तुम मुश्किल में पड़ोगे। जल्दी ही तुम भी 'मारे गए' की अवस्था में पहुंच जाओगे। थोड़ा सोचो कि तुम कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हो, क्या मांगोगे? कितनी देर तक तुम्हारी मांग पूरी होती रहेगी और सब ठीक चलता रहेगा? तुम्हें अपने मन का ही कहां भरोसा है? और कल्पवृक्ष के नीचे ऐसा नहीं कि तुम कहो तब कल्पवृक्ष पूरा करता है। भीतर विचार उठा, कि पूरा हुआ।तुम कल्पवृक्ष से जरा दूर ही दूर रहना। अगर कहीं मिल जाए तो एकदम भाग खड़े होना। क्योंकि तुम्हारे मन में क्या उठ जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। क्या-क्या उठता रहता है, तुम्हें पता ही है। कुछ भी उलटा-सीधा! तुम्हारा मन तो विक्षिप्त है। कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर तुम पागल हो जाओगे।नहीं, दुख से भागोगे तो परलोक में भी तुम सुख ही खोजोगे। दुख से मत भागो, जागो। और जैसे तुम दुख से जागोगे, तुम पाओगे कि दुख का सार क्या है? सुख की आकांक्षा दुख का सार है। सुख की कामना दुख का बीज है। सुख की मांग दुख की शुरुआत है।अगर सच में दुख से बच जाना है, कहीं जाने की जरूरत नहीं है। न कोई पूजा, न कोई प्रार्थना, न कोई योग, न कोई तप। सिर्फ वह जो सुख की आकांक्षा है, उसे छोड़ दो। वह जैसे-जैसे छूटती जाएगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि तुम सुखी होते जाते हो। एक ऐसी घड़ी आती है आंतरिक संतुलन की, जहां सुख की आकांक्षा पूरी गिर जाती है। वहीं दुख समाप्त हो जाता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।तब तुम मुक्त हो। उस मुक्त को ही मैं संन्यस्त कहता हूं। उस मुक्त को ही मैं वीतराग कहता हूं।दुख से बचकर जो वैराग्य पैदा होता है, वह राग के विपरीत है। वह राग का ही उलटा रूप है, शीर्षासन है। दुख को समझकर, जानकर जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह वीतरागता है। वह दोनों के पार है। न तो वह राग है, और न विराग है।

आज इतना ही।

पंद्रहवां प्रवचन

आई ज्ञान की आंधी

संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बांधी।।
हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलींदा तूटा।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी निरचू चुवै न पानी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।।

आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन भीना।
कहै कबीर भान के प्रकटे उदित भया तम खीना।।

और ज्ञान में बड़ा फर्क है। एक तो ज्ञान है पंडित का और एक ज्ञान है प्रज्ञावान का। इन दोनों का भेद साफ न हो जाए तो अज्ञान के पार उठना कठिन है।और भेद बारीक है। भेद बहुत सूक्ष्म और नाजुक है। दोनों एक जैसे दिखाई पड़ते हैं। जुड़वां भाई जैसे मालूम होते हैं, लेकिन दोनों न केवल भिन्न हैं, बल्कि विपरीत भी हैं। दोनों का गुणधर्म शत्रुता का है।अज्ञान से भी ज्यादा दूरी प्रज्ञावान के ज्ञान की, पंडित के ज्ञान से है। एक बार अज्ञान के पार हो जाना आसान है, पंडित के ज्ञान के पार होना बहुत कठिन है।इसे थोड़ा समझें।पांडित्य का ज्ञान ऐसा है, जैसे कोई संग्रह करे। फिर चाहे वह संग्रह धन का हो, चाहे हीरे-जवाहरातों का हो, और चाहे ज्ञान की जानकारी का हो, सूचनाओं का हो। पंडित संग्रह करता है और पंडित स्वयं उस संग्रह से अछूता रहता है। वस्तुतः पंडित उस संग्रह का मालिक रहता है।जिस दूसरे ज्ञान की बात मैं कर रहा हूं, प्रज्ञावान का ज्ञान, वहां प्रज्ञावान अपने ज्ञान का मालिक नहीं होता, ज्ञान ही प्रज्ञावान का मालिक होता है। और प्रज्ञावान ज्ञान को संगृहीत नहीं करता है, उसकी तो आंधी आती है, जो सब उड़ा ले जाती है। असली ज्ञान एक तूफान है। असली ज्ञान एक आत्मक्रांति है। असली ज्ञान एक अराजक अवस्था है।तुम बचोगे ही न, असली ज्ञान की आंधी आएगी तो। जिस ज्ञान में तुम बच जाते हो, जान लेना वह ज्ञान धोखे का है। जो तुम्हारे अहंकार को छूता ही नहीं वरन और भी बढ़ाता है, वह ज्ञान नहीं है। वह ज्ञान का झूठा सिक्का है। वह तुम्हें ज्ञान का धोखा दे रहा है और बड़ा खतरनाक है। उससे तो अज्ञान भी बेहतर है। कम-से-कम अज्ञान अहंकार को तो नहीं बढ़ाता। अज्ञान कम-से-कम मनुष्य को विनम्र तो रखता है। अज्ञान कम-से-कम मनुष्य को यथार्थ तो रखता है, झूठा तो नहीं बनाता। अज्ञान का कोई पाखंड तो नहीं है।पंडित यानी पाखंड। वह पाखंड की जीती-जागती प्रतिमा है। भीतर तो अज्ञान है, बाहर उसने ज्ञान और शास्त्रों की दीवाल खड़ी कर रखी है। भीतर तो दीया जला नहीं है, लेकिन अपने घर के चारों तरफ उसने वेद-वचन इकट्ठे कर रखे हैं। वेद-वचन खोद दिए हैं दीवालों पर। स्वयं उसने तो कोई भी लकीर नहीं खींची है। वह स्वयं तो अछूता रह गया है। वह तो वैसा ही है, जैसा तब था, जब कुछ भी न जानता था। उसमें रंचमात्र भेद नहीं पड़ा। उसके जीवन की गुणवत्ता में कोई अंतर नहीं आया, कोई आंधी नहीं घटी, कोई तूफान नहीं आया, जिसमें पुराना मकान गिर गया हो और अचानक उसने पाया हो कि वह खुले आकाश के नीचे है। जिसमें पुरानी सारी धारणाएं टूट गई हों। और अचानक उसने पाया हो कि चित्त खो गया। जिसमें पुराने सारे विचार बह गए हों ऐसी कोई बाढ़ नहीं आई कि वह नग्न, शून्य और खाली रह गया हो।पंडित का ज्ञान बड़ा सुरक्षा से भरा है। तुम वही रहते हो, जो थे। तुम अपने को बचाते हुए ज्ञान को इकट्ठा करते चले जाते हो। ज्ञान तुम्हारी मुट्ठी में होता है। तुम उसके मालिक होते हो। ज्ञान तुम्हें नहीं मिटा पाता, वरन तुम ज्ञान का उपयोग करते हो, शोषण करते हो। तुम ज्ञान का धंधा कर सकते हो।लेकिन वह ज्ञान तुम्हें परमात्मा के पास न ले जाएगा। उस ज्ञान से 'हरि की गति' का कोई पता न चलेगा। वह ज्ञान ऐसे ही है जैसे राह चलते आदमी के ऊपर धूल जम जाती है, और वह स्नान न करे, और धूल की पर्त-पर्त जमती चली जाए। पंडित का ज्ञान ऐसा ही है। वह उस आदमी का ज्ञान है, जो चला तो बहुत, लेकिन जिसने कभी ध्यान का स्नान न किया; जो कभी नहाया न। जिसने यात्रा तो जन्मों-जन्मों में की, बहुत अनुभवों से गुजरा, सब कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया, लेकिन कभी स्नान न किया।तो बड़ा बोझ पंडित के ऊपर इकट्ठा हो जाता है। तुम अगर पंडित को चलते भी देखो, तो तुम समझ पाओगे कि उसके सिर पर पहाड़ रखे हैं, दबा जा रहा है।ज्ञान दबाएगा किसी को? ज्ञान तो मुक्त करता है। ज्ञान बोझ बनेगा किसी का? तो फिर निर्बोझ कौन करेगा? ज्ञान चिंता पैदा करेगा, तनाव पैदा करेगा? ज्ञान को भी ढोना पड़ेगा मजबूरी में, कर्तव्यवश? तो फिर प्रेम का जन्म कहां होगा? प्रेम की स्फुरणा कहां होगी? फिर सहजता का झरना कहां फूटेगा?पंडित असहज आदमी है। वह कभी-कभी अपने ज्ञान के अनुसार चलने की भी कोशिश करता है। लेकिन वह कोशिश करनी पड़ती है, वह सहज नहीं है। चेष्टा करनी पड़ती है, जबरदस्ती करनी पड़ती है। अपने को चलाने का आग्रह करना पड़ता है, अनुशासन थोपना पड़ता है।फिर भी अनुशासन टूट-टूट जाता है। वह टटोलता है अंधे आदमी की तरह। वह आंखवाले की यात्रा नहीं है, जिसे दिखाई पड़ता है कि दरवाजा कहां है। पंडित अगर कोशिश करके शीलवान भी हो जाए, तो उसका शील भी प्रफुल्ल नहीं होता, हंसता हुआ नहीं होता, नाचता हुआ

नहीं होता। उसके शील में भी दंश होता है शिकायत का। जैसे वह कह रहा है परमात्मा से कि देखो कितना चरित्रवान हूं! कितने नियम से चल रहा हूं और गैर-चरित्रवान मजा ले रहे हैं; और मैं दुख में पड़ा हूं।ध्यान रखना, वह सदा कहेगा कि पापी सुखी हैं और मुझ जैसा पुण्यात्मा और पंडित व्यक्ति दुख पा रहा है। यह कैसा न्याय है! उसकी प्रार्थनाएं शिकायतों से भरी होंगी। उसकी प्रार्थनाओं में पीड़ा होगी, धन्यवाद नहीं होगा। जितना ही कोई अपने को दबाएगा और जबरदस्ती करेगा, उतना ही परमात्मा से दूर होता चला जाता है।हरि की गति तो सहजता है। इसलिए कबीर बार-बार कहते हैं, 'साधो सहज समाधि भली'। सहज समाधि का अर्थ उसी ज्ञान से है, जहां जानने के पीछे आचरण अपने आप आता है। इसे तुम ठीक से याद रख लेना।और जब मैं कहता हूं, ठीक से याद रख लेना, तो दो तरह से याद रख सकते हो। क्योंकि ज्ञान दो तरह के हैं। तुम इसे अपनी स्मृति में सम्हाल कर रख सकते हो, जैसे कोई परीक्षा देनी हो; जहां ठीक-ठीक यही शब्द दोहराने पड़ें। जैसा विश्वविद्यालयों में बच्चे परीक्षा देते हैं। तब तुम्हारी स्मृति में यह संजोया रहेगा कि मैंने कहा था; ऐसा-ऐसा कहा था। तब तुम लकीर के फकीर रहोगे। शब्द-शब्द दोहरा दोगे, लेकिन वह शब्द मुर्दा होंगे; आएंगे तुम्हारे ओंठों से लेकिन उनका जन्म तुम्हारे हृदय में न होगा। तुम्हारे स्मृति के यंत्र से सीधे तुम्हारे ओंठों को पार करके आ जाएंगे। तुम्हारे हृदय को खबर भी न मिलेगी।सहज-समाधि का अर्थ है, जहां आचरण ज्ञान का अपने आप अनुसरण करता है, कराना नहीं पड़ता।तो एक तो अहिंसा है पंडित की, कि वह थोपता है, नियम लेता है। जमीन फूंक-फूंक कर पैर रखेगा कि चींटी न मर जाए। रात भोजन न करेगा, पानी छान कर पीएगा। सब ठीक कर रहा है, कुछ भी गलत नहीं है इसमें, लेकिन कहीं गहरे में कुछ गलती हो रही है।वह गलती यह है कि यह, वह कर रहा है, यह उससे हो नहीं रहा। इसमें योजना है। इसमें भविष्य का विचार है। इसमें पाप-पुण्य का लेखा-जोखा है, गणित है। यह वह कर रहा है। चींटी के प्रति कोई प्रेम नहीं उदय हुआ है। सिर्फ शास्त्र को पढ़ कर चालाकी पैदा हुई है कि अगर चींटी मरेगी तो तुम्हें इसका फल पाना पड़ेगा। चींटी को दुख दोगे तो तुम्हें दुख भोगना पड़ेगा। दुख वह भोगना नहीं चाहता। चींटी से कुछ लेना-देना नहीं है। चींटी मरे, न मरे; मुझसे न मर जाए। क्योंकि मेरा फिर पाप, और मेरा भविष्य का जीवन संकट में पड़ता है। यह उसका हिसाब है। अगर कोई शास्त्र बताता हो, कि मारो चींटी। जितनी ज्यादा चींटियों मारोगे, उतना ही जल्दी मोक्ष मिलेगा। तो यही आदमी खोज-खोज कर चींटियां मारने लगेगा। अगर शास्त्र सिद्ध कर दे कि अनछना पानी पीना ही पुण्य है—और इसमें कोई अड़चन नहीं है। यह सिद्ध किया जा सकता है। तर्क तो वेश्या है।मैं जिस गांव में पैदा हुआ, मेरे पड़ोस में एक जैन परिवार है। परंपरागत, रूढ़ि-ग्रस्त, पुराने ढंग के लोग हैं। उस घर की जो गृहिणी है, वह सामने ही कुएं पर रोज पानी भरती। तो जैसा जैन करते हैं, वह पानी ऐसे भरती फिर पानी को छानती, फिर कपड़े में जो कुछ भी बचा रहता—कुछ अगर बचा रहता—कूड़ा-करकट—कुछ भी, अदृश्य जीव—जिनका कि जैन हिसाब लगाते हैं; उन सब को उलटा कर वह कुएं में झड़ा देती। क्योंकि कुएं से निकाला है प्राणियों को, वे कुएं के बाहर मर न जाएं।मैंने उससे एक दिन कहा, ऐसे ही मजाक में कहा, यह तो ठीक है। लेकिन इतना फासला कुएं का, वे जो कीड़े-मकोड़े तू गिरा रही है वापस, जो किसी को दिखाई भी नहीं पड़ते, वे सब मर जाएंगे। इतने छोटे जीव हैं! कुएं के ऊपर से वापस उनको फेंकोगे नीचे, वे रास्ते में मर जाएंगे। चोट खाकर मर जाएंगे। वह तो घबड़ा गई। उसने कहा, तो मैं तो यह जन्म भर से कर रही हूं; तो अब तक तो न मालूम कितना पाप हुआ होगा!

अभी तक पुण्य था! पुण्य ही सोचकर कर रही थी। अब वह पाप हो गया। अब वह घबड़ा गई, वह मुझसे पूछने लगी, तो फिर क्या करना? वह जो छान लिया पानी, फिर जो बच गया छना हुआ हिस्सा, उसको क्या करना? छानी में जो बच गया, उसका क्या करना?मैंने उसको कहा, वे तो छानने में ही मर जाएंगे, जो आंख से नहीं दिखाई पड़ते। तो उसने कहा, क्या बिना ही छाने पानी पीना?उनसे तो कोई प्रयोजन नहीं है—जीवाणुओं से। किसको प्रयोजन है? उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। फिक्र अपनी है, अपने अहंकार की है, अपने सुख-दुख की है।तो जो व्यक्ति अहिंसा को साधता है, वह पांडित्य की अहिंसा है। वह ब्रह्मचर्य को भी साध सकता है। लेकिन उसने ब्रह्मचर्य की सहजता को जाना नहीं। वह उपवास भी कर सकता है, लेकिन उपवास का आनंद उसे कभी भी न छुएगा। वह सिर्फ परेशान रहेगा, भूखा मरेगा। उसका उपवास भूखा मरना ही होगा। और उसके चेहरे पर उसका सारा विषाद लिखा हुआ तुम पाओगे। अब यह बड़ी हैरानी की बात है

कि किसी ने उपवास किया हो, और बिना नाचे कर ले तो समझना कि उपवास बेकार था। क्योंकि जो वस्तुतः सहजता से उत्पन्न होगा उपवास, वह शरीर, मन को, तन को ऐसा ताजा कर देता है, ऐसा स्वस्थ कर देता है, कि तुम बिना नाचे रह न पाओगे। तुम्हारे पैरों में पंख लग जाएंगे। तुम्हारे अंतरतम में घूंघर बजने लगेंगे। तुम नाचोगे। लेकिन तुम जैन साधुओं को नाचते देखते हो? तुम उन्हें मुर्दे की तरह बैठे हुए देखते हो—मरे हुए। यह मृत्यु उपवास से नहीं आ रही है। यह ज्ञान के पीछे आचरण को चलाने से सदा आती है। ज्ञान के पीछे आचरण अपने से आना चाहिए, तो ही ज्ञान ज्ञान है। वह कसौटी है असली ज्ञान की।अगर तुम्हें कोई बात समझ आ गई—'समझ आ गई' याद रखना, तो क्या तुम उससे विपरीत कर सकोगे? तुम्हें समझ आ गया कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, तो क्या अब तुम्हें जाकर मंदिर में कसम लेनी पड़ेगी व्रत लेना पड़ेगा कि आज से कसम खाता हूं भगवान को साक्षी रखकर, कि अब कभी आग में हाथ न डालूंगा? अगर तुम ऐसी कसम लोगे, तो तुम मूढ़ समझे जाओगे। लोग हंसेंगे। और वह कहेंगे तो इसका तो अर्थ यही हुआ, कि न तो तुम्हें

पता है कि आग जलाती है; न तुम्हें इसका कोई अनुभव हुआ है। यह तुमने कहीं पढ़ लिया होगा, कि आग जलाती है, इसलिए तुम कसम ले रहे हो।व्रत तो पंडित लेते हैं, ज्ञानी नहीं लेता। ज्ञानी के जीवन में व्रत फलित होते हैं। जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं, लगाने नहीं पड़ते, ऐसे ज्ञानी के जीवन में व्रत लगते हैं।जब तुम्हें दिखाई पड़ता है, तब तुम उसके अनुसार चलते ही हो। उससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है। फिर कुछ किया ही नहीं जा सकता। जब दरवाजा दिखाई पड़ता है, तो तुम उससे निकलते हो। तुम दीवाल से कैसे निकलने की कोशिश करोगे? क्या तुम कसम लोगे कि आज से मैं बस दरवाजे से ही निकलूंगा, दीवाल से कभी भी न निकलूंगा?जहां समझ है, जहां बोध है, जहां वास्तविक ज्ञान है, वहां आचरण ऐसे ही आता, जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया आती है। उसको लाना थोड़े ही पड़ता है बांध-बांध कर! पीछे लौट-लौट कर देखना थोड़े ही पड़ता है कि छाया आ रही कि नहीं आ रही। कहीं चूक, भटक तो नहीं गई! कहीं कोई चुरा तो नहीं ले गया। कहीं संबंध तो नहीं टूट गया! भीड़-भाड़ बहुत थी, कहीं खो तो नहीं गई!छाया तुम्हारे पीछे आती है। आचरण छाया है वास्तविक ज्ञान का। लेकिन झूठे ज्ञान का आचरण जबर्दस्ती है, आग्रह है, आरोपण है।असली ज्ञान तो आंधी की तरह आता है और तुम्हें मिटा जाता है। तुम तुम्हारी पूरी हिंसा में, तुम तुम्हारे पूरे अज्ञान में, तुम तुम्हारे पूरे अहंकार में डूब जाते हो, मिट जाते हो। आंधी सब मिटा जाती है।इसलिए पहली बात खयाल रख लो कि वास्तविक ज्ञान आंधी है। उसमें तुम सुरक्षा मत खोजना। वह भयंकर झंझावात है। वह तो तुम्हें मिटाएगा। वह तुम्हें बचाने नहीं आया है।इसलिए तो लोग शास्त्रों की तलाश करते हैं। वहां से ऐसा ज्ञान खोज लेते हैं, जो तुम्हें मिटाए ही न; वरन तुम्हारा आभूषण बन जाए। तुम्हें और सजाए। तुम जैसे हो, वैसे ही तुम्हारी जड़ों को मजबूत कर दे। तुम्हारे घर को और थोड़े सहारे और बल्लियां लगा दे। तुम्हारा छप्पर, जो वैसे ही जराजीर्ण हुआ जा रहा था, उसको थोड़ा एक बरसात के योग्य और बना दे। और तुम्हारा घर जो अपने ही बोझ से गिरा जा रहा था, उसको थोड़ा

और बचा ले, थोड़े दिन और खींच ले।मैं तुमसे कहता हूं कि पाप ही काफी है तुम्हारे जीवन के घर को गिरा देने को। अगर ज्ञान का सहारा न मिले, तो हर पापी संत हो जाए। लेकिन ज्ञान का सहारा मिल जाता है। और पापी को जब पांडित्य का सहारा मिल जाता है, तो संतत्व बहुत दूर हो जाता है। तब तो तुम्हें सीमेंट मिल गई, जिससे तुम ठीक से सुरक्षा कर लो अपने घर की।कबीर इस सूत्र में बड़ी अनूठी बातें कह रहे हैं।पहली अनूठी बात तो यही है कि ज्ञान आंधी है, तूफान है। उसमें तुम बच न सकोगे। ज्ञान को निमंत्रण देना बड़ा दुस्साहस का काम है। वह निमंत्रण है अपनी मृत्यु को, अहंकार की मृत्यु को। तुम जैसे हो, उसके मिट जाने को। तुम्हारा नाममात्र भी न बचेगा। तुम्हारी रेखा भी न बचेगी। तुम ऐसे खो जाओगे जैसी रेत पर खींची गई रेखाएं आंधी के बाद खोजे भी नहीं मिलतीं।तुमने हस्ताक्षर कर रखे हैं रेत पर। सजा रखा है। बड़ी आशा कर रहे हो कि इतिहास में बचोगे। लोग सदियों तक तुम्हारा नाम याद रखेंगे।और जब ज्ञान की आंधी आती है, सब हस्ताक्षर पुछ जाते हैं। पता भी नहीं चलता, कहां तुम्हारे हस्ताक्षर थे! कहां तुमने सजाया था अपना घर!तुम बचोगे परमात्मा की भांति; तुम्हारी भांति तुम न बचोगे। तुम बचोगे अनंत की भांति, असीम की भांति। सीमा में तुम न बचोगे। तुम जैसे हो, वैसे न बचोगे, तुम जैसे होने को हो, वैसे बचोगे। तुम्हारा भविष्य बचेगा, तुम्हारा अतीत न बचेगा।यह आंधी

का तत्व खयाल में ले लेना।मेरे पास लोग आते हैं। दो तरह के लोग आते हैं। एक, वे जो मेरे पास आते हैं, कि उन्हें मैं कुछ सहारा दूं कि वे जैसे भी हैं, उसमें थोड़ी मजबूती, और थोड़ी शक्ति आ जाए। ये लोग गलत लोग हैं। और मेरे पास तो बिलकुल गलत आदमी के पास आ गए। इन्हें कहीं और जाना चाहिए। मेरे पास तो उसी आदमी का साथ बन सकता है, जो मिटने को आया हो। जिसने तय ही कर लिया हो कि चाहे कोई भी कीमत हो, अब दांव पर पूरा ही लगा देना है। अब दांव पर कुछ बचाना नहीं है।

क्योंकि जरा सा भी तुमने बचाया, कि पूरा बच जाएगा। जुआंरी चाहिए, व्यवसायी नहीं। व्यवसायी पंडित हो जाते हैं। जुआंरी ही ज्ञान को उपलब्ध होते हैं। जुआंरी का मतलब यह है, कि जो बिना फिक्र सब कुछ लगा देता है। इस पार या उस पार। होशियारी से नहीं चलता, चालाकी से नहीं चलता, गणित से नहीं चलता। एक दुस्साहसी अभियान है। खतरा मोल लेने को तैयार होता है।

'संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।'

कबीर कहते हैं, ज्ञान की आंधी आ गई है।

'भ्रम की टाटी सबै उड़ानी।' वे जो बना रखे थे बहुत से जाल भ्रम के, सपने सजा रखे थे, बड़े इंद्रधनुष फैलाए थे . . .'भ्रम की टाटी सबै उड़ानी'—वह सब उड़ गई,वह कोई परदा बचा नहीं। वे सब दीवालें गिर गइ।

'माया रहै न बाधीं।' और अब कोशिश भी करें कि माया रह जाए, तो रहने का उपाय नहीं दिखता।

'संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।' एक तो तुम्हारी माया है कि तुम हटाओ तो हटती नहीं। और कबीर कहते हैं कि ऐसी भी घड़ी आती है आंधी की, जब तुम माया को बांधो तो बंधती नहीं। अभी तुम हटाओ, हटती नहीं। अभी तुम माया से भागो, भगती नहीं; सदा तुम्हारे साथ है।क्योंकि माया यानी तुम ही हो। तुम्हारे सारे अज्ञान का केंद्र है माया। तुम्हारे होने के गलत ढंग की बुनियाद है माया। तुम्हारे सारे सपनों, कामनाओं, तृष्णाओं
की संग्रहीभूत स्थिति है माया। वह तुम्हारे भीतर भ्रांति का जोड़ है, सार-निचोड़ है। वह तुम्हारे गलत होने का ढंग है।अभी तुम उससे भागकर कहां जाओगे? अभी तो तुम जहां भी जाओगे, माया तुम्हारे साथ होगी। तुम जो भी करोगे, माया उस पर ही सवार हो जाएगी। तुम शास्त्र पढ़ोगे, माया शास्त्र पर ही सवार हो जाएगी। तुम त्याग करोगे, माया त्याग पर ही सवार हो जाएगी . . . तुम जो भी करोगे!तुम्हारे भीतर जब तक माया है, तब तक वह सभी को आच्छादित कर देगी। महल होगा तुम्हारे पास तो माया महल को पकड़ लेगी; झोपड़ी होगी तो, झोपड़ी को पकड़ लेगी। कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़ा साम्राज्य हो तो भी माया जीती है; छोटी-सी लंगोटी हो पास में, तो भी माया जीती है। कोई भेद नहीं पड़ता। माया के लिए इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि छोटी संपत्ति है कि बड़ी। कुछ भी हो पकड़ने को।समझो कि मुट्ठी है तुम्हारी, इसमें तुम कोहिनूर पकड़ो या कंकड़ पकड़ो, इससे क्या फर्क पड़ता है? मुट्ठी दोनों हालत में बंधी रहेगी। तुमने कोहिनूर पकड़ा है या कंकड़ पकड़ा है, इससे क्या भेद पड़ता है? मुट्ठी बंधी रहेगी। माया को पकड़ने को चाहिए कुछ। माया यानी पकड़। जो भी हो, उसी को पकड़ लेगी। लंगोटी भी काफी है, कंकड़ भी काफी है, पत्थर भी काफी हैं। बस, कुछ पकड़ने को चाहिए। तुम जहां भी जाओगे, अगर माया भीतर है, तुम जो भी करोगे उसी को पकड़ लेगी।इसके पहले कि तुम कुछ करने जाओ, ज्ञान की आंधी को निमंत्रण देना जरूरी है, जो तुम्हें निखार जाए; जो तुम्हें धो जाए; जो तुम्हें साफ कर जाए; जो तुम्हें स्नान करा दे। और स्नान कोई साधारण जल का स्नान नहीं है। इसे अच्छा होगा हम कहें, 'अग्नि-स्नान।' यह तुम्हें साफ ही नहीं करेगा, जलाएगा भी। क्योंकि जलाने से ही तुम शुद्ध हो सकोगे। तुम्हारा स्वर्ण अग्नि से गुजर कर ही निखर सकेगा।और जब एक उलटी दशा हो जाती है। कबीर कहते हैं, 'माया रहै न बांधी।' अब मैं चाहूं भी कि माया को बांधू, तो वह बंधती नहीं। अब मैं चाहूं कि माया मेरे साथ रहे, तो रहती नहीं। दूर-दूर चलती है।यह ऐसे ही है, जैसे घर में अंधेरा होता है, फिर तुम दीया जला लो; तो फिर अंधेरे को
तुम घर में बांधकर रख सकोगे? असंभव! अंधेरा दूर-दूर भागेगा। तुम दीया लेकर जहां-जहां जाओगे, अंधेरा वहीं-वहीं से दूर-दूर भागेगा। दीया न हो तो अंधेरा साम्राज्य बनाकर जीता है।जब तक भीतर का भान न हो—उसी को ज्ञान कह रहे हैं कबीर।

'संतों आई ज्ञान की आंधी रे।' और आंधी है वह। सब उखाड़ देती है। 'भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माय रहै न बांधी। हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी मोह बलींदा तूटा।' जिस खंभे पर सब सहारा लगा था घर का—आसक्ति का खंभा। 'थूनी' : जिस पर गांव में लोग घर के सारे छप्पर को सम्हाल कर रखते हैं। 'थूनी' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। ग्रामीण शब्द है। शहर में तो होने का कोई कारण भी नहीं। जिस खंभे पर सारा झोंपड़ा टिका होता है, उस खंभे के ऊपर दो हिस्से होते हैं। दो हिस्सों की थूनी पर ही, द्वैत पर ही सारा घर टिकता है। थूनी अर्थात् द्वैत।और कबीर कहते हैं, 'हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी।' वह जो दोहरे मुखवाली थूनी थी, जिस पर सारा घर टिका था, वह गिर गई। दो बातें खयाल रखनी जरूरी हैं कि द्वैत पर ही सारा घर टिका है। जब तक तुम्हें संसार में दो दिखाई पड़ते हैं, तब तक ज्ञान की आंधी नहीं आई। तब तक तुम जिंदा रहोगे। जब तक दो हैं, तब तक 'मैं' जिंदा रहेगा। क्योंकि 'तू' जिंदा रहेगा, तो 'मैं' भी जिंदा रहेगा। दो में से एक भी गिर जाए, तो न तो 'तू' बचता है, न 'मैं' बचता है। सब बंद हो गया। व्यवसाय समाप्त हो गया।वह दोहरे मुंहवाले खंभे पर खड़ा है सारा का सारा घर। और उस खंभे का नाम कबीर कह रहे हैं आसक्ति। आसक्ति के दो मुंह हैं सब तरफ। एक तरफ उसका नाम राग है, एक तरफ उसका नाम विराग है। एक तरफ उसका नाम प्रेम है, एक तरफ उसका नाम द्वेष है। एक तरफ उसका नाम, जो भी तुम्हारे जीवन

में हो, चुन लो, तुम तत्क्षण पाओगे कि उसका दूसरा विपरीत हिस्सा भी तुम्हारे साथ जुड़ा है।जब तक तुम प्रेम करोगे, तब तक तुम घृणा भी करोगे। और जब तक तुम्हें सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, तब तक तुम्हें कुरूपता भी दिखाई पड़ेगी। और जब तक तुम्हें कोई चीज शुभ मालूम होगी, तब तक अशुभ भी मालूम होगी। और जब तक तुम भरोसा करोगे, तब तक तुम संदेह भी करोगे। दोनों साथ ही होंगे। द्वैत साथ-साथ चलेगा। और इस द्वैत पर ही सारा का सारा घर टिका है तुम्हारे जीवन का। 'हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी मोह बलींदा तूटा।' और उस थूनी के ऊपर जो मोह का बांस रखा था, थूनी के गिर जाने से मोह का बांस टूट गया।1.15 'त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि' वह जो तृष्णा का छप्पर था, फैलाव था, वह गिर पड़ा।1.15 'कुबुधि का भांडा फूटा।' और उसी क्षण—क्योंकि जब तृष्णा का छप्पर गिर जाए तो कुबुद्धि के बचने के लिए कोई जगह नहीं बचती। 'कुबुधि' जीती है तृष्णा की छाया में। तृष्णा ही 'कुबुधि' का आधार है। तृष्णा के कारण ही तुम हजार तरह के अज्ञान से भरे हुए कृत्य करने को तैयार हो जाते हो। जानते हुए भी, समझते हुए भी, कि करना गलत है; लेकिन तृष्णा करवा लेती है।समझो, कि राह से तुम निकल रहे हो, हजार रुपए पड़े हैं। तुम जानते हो, उठाना गलत है। अंतःकरण पुकारे चला जाता है, अपने नहीं हैं। लेकिन कुबुधि चारों तरफ देखती है कि कोई देख भी नहीं रहा; उठा लेने में हर्ज क्या है? तृष्णा का विस्तार होता है कि कई दिन से सोच रखा था, कुछ चीजें खरीदकर घर लानी थीं, एक रेडिओ खरीदना था, कि टेलीविजन खरीदना था; सब सपने एकदम साकार होने लगते हैं। वह हजार रुपयों में न मालूम कितनी तृष्णा की तृप्ति छिपी मालूम होती है।

अंतःकरण की आवाज धीमी होती जाती है। अंतःकरण कहता रहता है, मत उठाओ। चोरी पाप है। लेकिन तृष्णा का छप्पर फैलने लगता है, बड़ा होने लगता है। उन हजार रुपयों में हजार संभावनाएं छिपी हैं। न मालूम कितने-कितने दिन से, न मालूम कितनी-कितनी वासनाएं अधूरी पड़ी हैं, वे सब पूरी हो सकती हैं। रास्ता खुल सकता है। हजार रुपए से धंधा कर सकते हो। हजार से दस हजार हो सकते हैं। दस हजार से दस करोड़ हो सकते हैं। सब संभावनाओं के द्वार हजार रुपए से खुल जाते हैं।अब यह छोटी-सी आवाज अंतःकरण की—'चोरी! चोरी!' और फिर संसार में कौन चोरी नहीं कर रहा है? सब चोर हैं। कौन है, जो ईमानदार है?तृष्णा जाल बुनती है कुबुद्धि का। भीतर अंतःकरण की आवाज धीमी-धीमी- धीमी होती हुई खो जाती है। तृष्णा का बाजार खड़ा हो जाता है। आवाज तो तब भी गूंजती रहती है, लेकिन सुनाई पड़ना मुश्किल हो जाता है। आवाज इतनी धीमी है, कि सुनने के लिए बड़ी शांति चाहिए। और तृष्णा उतनी शांति नहीं देती।'कोई देख भी नहीं रहा है, कोई पकड़ने की संभावना भी नहीं दिखाई पड़ती, उठा ही लो।'फिर तुम कब उठा लेते हो तुम्हें पता भी नहीं चलता। तुम उठा कर भागने लगे हो, तुम छिपने के उपाय में लग गए हो, पता भी नहीं चलता। तुम तो घर पहुंच कर ही सांस लेते हो, तभी तुम्हें खयाल आता है कि तुमने क्या कर लिया!कुबुद्धि का अर्थ है, एक बेहोश अवस्था। जब तुम क्या कर रहे हो उसका भी तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं चलता। तुम क्यों कर रहे हो उसका भी पता नहीं चलता। कुबुद्धि का

अर्थ है, एक तरह का नशा, जिसमें सब कुछ संभव है, क्योंकि तुम बेहोश हो। तुम्हें कोई भान नहीं है।कबीर कहते हैं, 'त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि'वह जो छाई है तृष्णा घर के ऊपर छप्पर की भांति, वह गिर पड़ी।1.15 'कुबुधि का भांडा फूटा।'

अब कुबुद्धि के रहने का कोई उपाय न रहा। वह घड़ा ही फूट गया। 'जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पानी।' और कबीर कहते हैं, अब हमने एक दूसरा ही घर बनाया। दूसरा घर बनाना ही पड़ा। आंधी ऐसी आ गई ज्ञान की, कि पुराना घर गिर गया। थूनी टूट गई, खंभे गिर गए, छप्पर जमीन पर आ रहा है। सब नष्ट हो गया। पुराना गया, अतीत विदा हुआ, और आंधी ने इस तरह तोड़ डाला सब, कि अब तो नया घर बनाना पड़ा।यही तो नया जन्म है। इसी को हम द्विज कहते हैं। वही ब्राह्मण है, जिसके जीवन में आंधी आ जाए; और आंधी जिसके पुराने घर को गिरा जाए और नया जन्म हो; जिसका ईसाई रिसरेक्शन कहते हैं।और ईसाइयों को बड़ी तकलीफ रही है समझाने में; वे कैसे समझाएं। वे कहते हैं, जीसस की मृत्यु हुई सूली पर और फिर तीन दिन बाद वे पुनरुज्जीवित हो गए। यह पुनरुज्जीवन का सिद्धांत ईसाई समझा नहीं पाए दो हजार सालों में। उनको खुद ही शक होता है, कि यह हो कैसे सकता है? जब फांसी लग गई, सूली लग गई, आदमी मर गया, खत्म हो गया, पुनरुज्जीवन संभव कैसे है? मुर्दा कैसे उठ सकता है?लेकिन वे भूल ही गए, कि रिसरेक्शन की बात, पुनरुज्जीव की बात एक गहरा प्रतीक है, एक संकेत है। उसका जीसस के वास्तविक शरीर से उठकर चलने का कोई संबंध नहीं है।जीसस की सूली भी प्रतीक है और उनका पुनरुजीवन भी। वह आंधी की खबर है। जब आंधी आती है तो पुराने को तो सूली लग जाती है। वह तो मरियम का बेटा जीसस था, वह तो मर गया। और अब परमात्मा के बेटे जीसस का जन्म हुआ। जीसस की मृत्यु हुई, क्राईस्ट का जन्म हुआ। वह द्विज है। उसी दिन जीसस ब्राह्मण हो गए। फांसी लगी इधर, उधर नए का जन्म हुआ। पुराना गया, नया आया। दोनों के बीच में एक अंतराल है।तो कबीर कहते हैं, जब आंधी आ गई, पुराना सब गिर गया; नया घर बनाना पड़ा।

'जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पानी।' और अब एक दूसरा ही घर बनाया, जिसमें पानी के चूने की भी संभावना नहीं। बड़ी जोग और जुगति से बनाया है। कबीर के ये शब्द बड़े ग्राम्य हैं, पर बड़े अर्थपूर्ण।जुगत—जुगत का अर्थ होता है डिवाइस। जुगत का अर्थ होता है बड़े होशपूर्वक की गई साधना। बड़ी सजगता से, सावधानी से, सावचेतता से जीया गया जीवन।जोग का अर्थ होता है : जोड़। योग का अर्थ होता है : जोड़। और परम अनुभूति तो जोड़ की है; जहां दो जुड़ जाते हैं। जहां दो समाप्त होते हैं और एक बचता है। जहां मैं और तू मिल जाते हैं। जहां पदार्थ और परमात्मा मिल जाता है। जहां दृश्य और अदृश्य का मिलन हो जाता है, वहां योग।और जुगत . . . उस योग की तरफ जाने के लिए साधक को जो-जो करना पड़ता है वह बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। क्योंकि जरा सी भी चूक . . . और तुम वापस लौट आओगे पुराने घर में। जरा सी चूक . . . और तुम फिर पुराना घर बनाने में लग जाओगे। जरा सी चूक . . . और नए ढंग से फिर पुरानी दुनिया वापस लौट आएगी।जीवन एक सतत सावधानी है। उस सावधानी का नाम है जुगत।1.00़ 'जोग जुगति करि संतौ बांधी . . .' और अब एक नया घर बनाया है, जिसको बड़े योग से—जिसे दो का सहारा ही नहीं दिया। जिसके लिए दो की थूनी नहीं लगाई; जिस पर दो मुंह वाला खंभा नहीं बांधा; जिस पर तृष्णा का छप्पर नहीं रखा। अब इसमें से पानी की एक बूंद भी नहीं चू सकती।यह थोड़ा सोचने जैसा है कि संसार के घर को तुम कितना ही मजबूत बनाओ, उसमें से दुःख तो चूता ही रहता है। कितना ही बनाओ सुंदर घर, स्वर्ग नहीं हो पाता। नरक चूता ही रहता है। कितना ही मजबूत छप्पर हो तृष्णा का, क्या फर्क पड़ता है? तृष्णा के नीचे आदमी असुरक्षित ही बना रहता है, पीड़ित ही बना रहता, दुखी ही बना रहता। कभी ऐसी घड़ी नहीं आती कि निश्चिंत हो जाए। चिंता बनी ही रहती है। मजबूत से मजबूत तृष्णा के छप्पर के नीचे भी चिंता का अंत नहीं होता; पानी चूता ही रहता है।

असल में तृष्णा में छेद है, इसलिए तुम तृष्णा का छप्पर बना नहीं सकते। तृष्णा का स्वभाव सछिद्र है।बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। वे कुएं पर, एक गांव से निकलते हुए एक कुएं पर पानी पीने के लिए खड़े हैं। उनका भिक्षु, उनका शिष्य आनंद भी उनके पास खड़ा है। एक आदमी पानी भर रहा है—पागल रहा होगा। पागलों की कोई कमी भी नहीं है। वे ही ज्यादा हैं। बुद्धिमान तो कहीं खोजे से कोई मिलता है।कोई पागल पानी भर रहा होगा। बुद्ध प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह पानी

भर ले, तो वे पानी पी लें और अपनी राह पर आगे बढ़ जाएं। बढ़ा शोरगुल मचाता है वह पागल। उसकी बालटी बड़ा शोरगुल मचाती है। उसमें छेद ही छेद हैं। तो जब वह नीचे कुएं में डालता है तो बालटी बिलकुल भर जाती है और जब खींचता है तो ऊपर-ऊपर तक आते बिलकुल खाली हो जाती है। उसमें छेद ही छेद हैं और पूरे कुएं में बड़ा शोरगुल मचता है। भारी काम चल रहा हो ऐसा मालूम पड़ता है और हाथ कुछ भी नहीं आता।बुद्ध थोड़ी देर खड़े रहे, फिर उन्होंने आनंद से कहा कि हम कहीं और चलें। इस आदमी के पास तो तृष्णा की बालटी है।तृष्णा में छेद ही छेद हैं। भरते हुए मालूम पड़ते हो जिंदगी भर, हाथ कुछ नहीं आता। तुम्हारे करोड़पति से करोड़पति भिखमंगे की तरह मरते हैं। तुम्हारे सिकंदर, तुम्हारे नेपोलियन सब रोते हुए विदा होते हैं। जिंदगी भर भरते हैं, कुएं में बड़ा शोरगुल मचाते हैं, दूसरों को भरने भी नहीं देते। खुद ही अड़े रहते हैं। और जब वे भरते हैं, तब आवाज भी ऐसी लगती है, पता नहीं कि पूरा कुआं से बाहर आ रहा है; कि पूरा सागर ही बाहर आ रहा है।लेकिन जब आती है, तो खाली बालटी वापस लौट आती है। बालटी में बड़े छेद हैं। बुद्ध ने आनंद से कहा, आनंद हम कहीं और चलें। यह आदमी पागल है, यह तृष्णा की बालटी में पानी भर रहा है।बुद्ध जैसे जागरूक पुरुषों का तो प्रत्येक वचन, और प्रत्येक घड़ी एक उदबोधन है। शायद बुद्ध उस कुएं पर इसीलिए रुके हों कि आनंद को कुछ कहना चाहते थे।तुम भी छिद्रवाली बालटी से भर रहे हो पानी। अछिद्र बालटी चाहिए, तब जीवन

तृप्त होता है। अछिद्र बालटी तभी हो पाती है, जब जीवन में कोई तृष्णा न हो।अब यह बड़ी उलटी बात है, बड़ी विरोधाभासी। जब तक तृष्णा हो, तब तक तृप्ति नहीं; और जब तृष्णा नहीं होती तब तृप्ति ही तृप्ति रह जाती है। तुम तृष्णा से तृप्ति की तरफ जाने की कोशिश कर रहे हो; वह असंभव है। जो भी तृप्त हुए हैं, वे तृष्णा को छोड़कर तृप्त हुए हैं। और तुम चाहते हो किसी तरह तृष्णातुर चित्त तृप्त हो जाए!यह तुम छिद्र-भरी बालटी से पानी भरने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारी प्यास कभी न बुझेगी।कबीर कहते हैं, कि जब तृष्णा का छप्पर गिर गया और कुबुद्धि का भांडा फूट गया, तब फिर हमने एक नया घर बनाया संतो। और वह घर हमने बनाया जोग-जुगति से। पहले तो हमने दो पर रखा था सहारा; अब हमने एक पर रखा सहारा। और पहले तो हमने बेहोशी में बनाया था घर; जैसे नींद में रखी हो दीवालों की इ□टें; वह गिरने ही वाला था। कहीं बेहोशी में कोई घर बने हैं! अब हमने होश से बनाया घर, जोग से, जुगति से। और अब एक बूंद पानी भी नहीं चूता। अब हम चादर तान कर सो सकते हैं संतो। अब अछिद्र है हमारा जीवन।1.00 'कूड़-कपट काया का निकस्या, 1.15् हरि की गति तब जानी।' शरीर का सारा कूड़ा-करकट निकल गया। वह उस घर में ही जुड़ा था। घर यानी शरीर अब इस घर की उपमा का एक दूसरा पहलू सामने आता है। घर यानी शरीर, घर यानी जिसमें तुम रह रहे हो।अभी जिस घर में तुम रह रहे हो, वह तृष्णा से बना है। अभी जिस घर में तुम रह रहे हो, वह द्वैत से बना है। अभी जिस घर में तुम रह रहे हो, उसमें छेद ही छेद हैं।अगर तुम कबीर के वचनों को ठीक से समझो, तो कबीर बार-बार कहते हैं कि इस नौ छेदवाले घर में मत रहो। क्योंकि शरीर में जो इंद्रियां हैं, वे नौ छेद हैं। कबीर कहते हैं, ये सारे छेद बंद कर लो, तो तुम वहां पहुंच जाओगे, जहां पहुंचने की तुम

आकांक्षा कर रहे हो। अछिद्र हो जाओ। आंख बंद कर लो तो भीतर दिखाई पड़ना शुरू होता है। कान बंद कर लो, तो भीतर का नाद अनुभव में आता है। संभोग बंद हो जाए, तो वही ऊर्जा समाधि बनने लगती है।सब छिद्र बाहर ले जाते हैं। छिद्र यानी बाहर जाने का द्वार। और जब सभी छिद्र शांत होते हैं, निष्क्रिय होते हैं और तुम अपने भीतर ही रह जाते हो तभी—तभी उससे मिलन होता है, जिससे मिले बिना तृप्ति न होगी, संतोष न होगा। जिससे मिले बिना अहोभाव न आएगा, कि पहुंच गए, मंजिल पूरी हुई, विश्राम का क्षण आ गया। अब रुक सकते हैं, सदा को रुक सकते हैं। अब शाश्वत की छाया मिल गई। अब सनातन घर मिल गया। अब कोई और छोटे-मोटे घर बनाने की जरूरत न रही। अब ऐसा घर मिल गया, जो कभी मिटेगा नहीं। अब अमृत उपलब्ध हुआ है।यह सारे घर का जो प्रतीक है, गौर से समझो, तो शरीर का प्रतीक है। इसे तुम बनाते हो तृष्णा से। एक आदमी मरा; जैसे ही वह मरता है, वैसे ही उसकी आत्मा तड़फने लगती है नए घर के लिए, नए मकान के लिए, नए शरीर के लिए। दौड़-धूप शुरू हो जाती है।इसलिए हिंदू जलाते हैं शरीर को। क्योंकि जब तक शरीर जल न जाए, तब तक आत्मा शरीर के आसपास भटकती है। पुराने घर का मोह थोड़ा

सा पकड़े रखता है।तुम्हारा पुराना घर भी गिर जाए तो भी नया घर बनाने तुम एकदम से न जाओगे। तुम पहले कोशिश करोगे, कि थोड़ा इंतजाम हो जाए और इसी में थोड़ी सी सुविधा हो जाए, थोड़ा खंभा सम्हाल दें, थोड़ा सहारा लगा दें। किसी तरह इसी में गुजारा कर लें। नया बनाना तो बहुत मुश्किल होगा, बड़ा कठिन होगा।जैसे ही शरीर मरता है, वैसे ही आत्मा शरीर के आसपास वर्तुलाकार घूमने लगती है। कोशिश करती है फिर से प्रवेश की। इसी शरीर में प्रविष्ट हो जाए। पुराने से परिचय होता है, पहचान होती है। नए में कहां जाएंगे, कहां खोजेंगे? मिलेगा, नहीं मिलेगा?इसलिए हिंदुओं ने इस बात को बहुत सदियों पूर्व समझ लिया कि शरीर को बचाना ठीक नहीं है। इसलिए हिंदुओं ने कब्रों में शरीर को नहीं रखा। क्योंकि उससे आत्मा की यात्रा में निरर्थक बाधा पड़ती है। जब तक शरीर बचा रहेगा थोड़ा बहुत, तब तक आत्मा वहां चक्कर लगाती रहेगी।

इसलिए हिंदुओं के मरघट में तुम उतनी प्रेतात्माएं न पाओगे, जितनी मुसलमानों या ईसाइयों के मरघट में पाओगे। अगर तुम्हें प्रेतात्माओं में थोड़ा रस हो, और तुमने कभी थोड़े प्रयोग किए हों—किसी ने भी प्रेतात्माओं के संबंध में, तो तुम चकित होओगे; हिंदू मरघट करीब-करीब सूना है। कभी मुश्किल से कोई प्रेतात्मा हिंदू मरघट पर मिल सकती है। लेकिन मुसलमानों के मरघट पर तुम्हें प्रेतात्माएं ही प्रेतात्माएं मिल जाएंगी। शायद यही एक कारण इस बात का भी है, कि ईसाई और मुसलमान दोनों ने यह स्वीकार कर लिया, कि एक ही जन्म है। क्योंकि मरने के बाद वर्षों तक आत्मा भटकती रहती है कब्र के आस-पास।हिंदुओं को तत्क्षण यह स्मरण हो गया कि जन्मों की अनंत 137शृंखला है। क्योंकि यहां शरीर उन्होंने जलाया कि आत्मा तत्क्षण नए जन्म में प्रवेश कर जाती है। अगर मुसलमान फिर से पैदा होता है, तो उसके एक जन्म में और दूसरे जन्म के बीच में काफी लंबा फासला होता है। वर्षों का फासला हो सकता है। इसलिए मुसलमान को पिछले जन्म की याद आना मुश्किल है।इसलिए यह चमत्कारी बात है, और वैज्ञानिक इस पर बड़े हैरान होते हैं कि जितने लोगों को पिछले जन्म की याद आती है, वे अधिकतर हिंदू घरों में ही क्यों पैदा होते हैं? मुसलमान घर में पैदा क्यों नहीं होते? कभी एकाध घटना घटी है। ईसाई घर में कभी एकाध घटना घटी है। लेकिन हिंदुस्तान में आए दिन घटना घटती है। क्या कारण है?कारण है। क्योंकि जितना लंबा समय हो जाएगा, उतनी स्मृति धुंधली हो जाएगी पिछले जन्म की। जैसे आज से दस साल पहले अगर मैं तुमसे पूछूं, कि आज से दस साल पहले उन्नीस सौ पैंसठ, एक जनवरी को क्या हुआ? एक जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ में हुई, यह पक्का है; तुम भी थे, यह भी पक्का है। लेकिन क्या तुम याद कर पाओगे एक जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ?तुम कहोगे कि एक जनवरी हुई यह भी ठीक है। मैं भी था यह भी ठीक है। कुछ न कुछ हुआ ही होगा यह भी ठीक है। दिन ऐसे ही खाली थोड़े ही चला जाएगा! ज्ञानी का दिन भला खाली चला जाए, अज्ञानी का कहीं खाली जा सकता है? कुछ न कुछ जरूर हुआ होगा। कोई झगड़ा-झांसा, उपद्रव, प्रेम, क्रोध, घृणा—मगर क्या याद आता है?

कुछ भी याद नहीं आता। खाली मालूम पड़ता है एक जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ, जैसे हुआ ही नहीं।जितना समय व्यतीत होता चला जाता है, उतनी नई स्मृतियों की पर्तें बनती चली जाती हैं, पुरानी स्मृति दब जाती है। तो अगर कोई व्यक्ति मरे आज, और आज ही नया जन्म ले ले तो शायद संभावना है, कि उसे पिछले जन्म की थोड़ी याद बनी रहे। क्योंकि फासला बिलकुल नहीं है। स्मृति कोई बीच में खड़ी ही नहीं है। कोई दीवाल ही नहीं है।लेकिन आज मरे, और पचास साल बाद पैदा हो तो स्मृति मुश्किल हो जाएगी। पचास साल! क्योंकि भूत-प्रेत भी अनुभव से गुजरते हैं। उनकी भी स्मृतियां हैं; वे बीच में खड़ी हो जाएंगी। एक दीवाल बन जाएगी मजबूत।इसलिए ईसाई, मुसलमान और यहूदी; ये तीनों कौमें जो मुर्दों को जलाती नहीं, गड़ाती हैं; तीनों मानती हैं कि कोई पुनर्जन्म नहीं है, बस एक ही जन्म है। उनके एक जन्म के सिद्धांत के पीछे गहरे से गहरा कारण यही है, कि कोई भी याद नहीं कर पाता पिछले जन्मों को।हिंदुओं ने हजारों सालों में लाखों लोगों को जन्म दिया है, जिनकी स्मृति बिलकुल प्रगाढ़ है। और उसका कुल कारण इतना है कि जैसे ही हम मुर्दे को जला देते हैं—घर नष्ट हो गया बिलकुल। खंडहर भी नहीं बचा कि तुम उसके आसपास चक्कर काटो। वह राख ही हो गया। अब वहां रहने का कोई कारण ही नहीं। भागो और कोई नया छप्पर खोजो।आत्मा भागती है; नए गर्भ में प्रवेश करने के लिए उत्सुक होती है। वह भी तृष्णा से शुरुआत होती है। इसलिए तो हम कहते हैं, जो तृष्णा के पार हो गया, उसका

पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि पुनर्जन्म का कोई कारण न रहा। सब घर कामना से बनाए जाते हैं। शरीर कामना से बनाया जाता है। कामना ही आधार है शरीर का। जब कोई कामना ही न रही, पाने को कुछ न रहा, जानने को कुछ न रहा, यात्रा पूरी हो गई, तो नए गर्भ में यात्रा नहीं होती।तो कबीर कहते हैं,.75¸ 'कूड़ कपट काया का निकस्या . . .' सब कूड़ा-करकट शरीर का

जल गया। वह जो पुराना घर गिरा, उसी में वह सब समाप्त हो गया।1.00 'हरि की गति जब जानी . . .' और जब काया शुद्ध होती है, और जब सब कूड़ा-करकट जल जाता है, शुद्ध कुंदन बचता है, शुद्ध सोना बचता है।1.00¸ 'हरि की गति तब जानी . . .' और तभी पता चलती है कि हरि की गति क्या है? हरि का रहस्य क्या है? परमात्मा का राज क्या है?जब तुम बिलकुल मिट जाते हो, तुम्हारा घर जलकर राख हो जाता है, आंधी आती है और तुम्हें सब उखाड़ डालती है, तुम्हारा कुछ भी नहीं बचता, तभी तुम्हें हरि का रहस्य पता चलना शुरू होता है। जब तक तुम हो, तब तक हरि नहीं।कबीर ने कहा है,जब तक मैं हूं, तब तक हरि नाहीं, 'जब हरि तब मैं नाहीं।'और जब हरि हैं, तब फिर मैं नहीं।हरि का और तुम्हारा मिलना कभी होगा नहीं। तुम मिलोगे उसी दिन जिस दिन तुम न रहोगे। तुम्हारा खाली रूप ही परमात्मा से मिलेगा। तुम्हारी शून्यता ही उसके द्वार पर दस्तक देगी, तुम नहीं। तुम्हारी अनुपस्थिति ही प्रवेश करेगी उसके भवन में, तुम नहीं। तुम्हारा न होना ही उसके होने के लिए उपाय है। तुम इतने ज्यादा हो! तुम्हारे इतने ज्यादा होने के कारण ही वह तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। तुम इतने भरे हुए हो कि जगह ही नहीं है। थोड़ी जगह चाहिए, स्थान चाहिए।और जब विराट को बुलाना हो तो थोड़ी जगह से काम न चलेगा। फिर तो विराट जगह चाहिए। आकाश जैसी जगह चाहिए।.35 .25 'कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।' इसके दो अर्थ हो सकते हैं। और दोनों

अर्थ महत्वपूर्ण हैं।एक अर्थ तो यह है कि जब सब कूड़ा-करकट निकल गया तब हरि की गति का पता चला।दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है जब हरि की गति का पता चला, तभी सब कूड़ा-करकट निकला। और दूसरा अर्थ पहले से गहरा है।मगर दोनों संयुक्त हैं। वे ऐसे ही संयुक्त हैं, जैसे मुर्गी और अंडा संयुक्त हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहां शरीर का कूड़ा-करकट निकल जाता है, तृष्णा टूटती है, माया-मोह का जाल टूटता है, कुबुद्धि का भांडा फूटता है, वहां हरि की गति अनुभव में आने लगती है। उधर हरि की गति अनुभव में आती है और यहां जो भी बचा-खुचा है, वह भी विदा हो जाता है।ये दोनों साथ-साथ घटते हैं। असल में हम जब कहने चलते हैं, तब दो हिस्से हो जाते हैं। घटना में एक साथ ही घटता है, युगपत घटता है। जैसे जब तुम दीया जलाते हो तो कोई अगर तुमसे पूछे कि जब तुम दिया जलाते हो तब दीया जलाने के बाद अंधकार जाता है बाहर कमरे के, या अंधकार के बाहर चले जाने के बाद दीया जलता है?तुम जरा मुश्किल में पड़ जाओगे। क्योंकि अगर तुम कहो कि अंधकार पहले चला जाता है, तब दीया जलता है, तो उसका अर्थ हुआ कि दीये के जलने की कोई जरूरत ही न रही। अंधकार जब बाहर ही चला गया, तो दीया बुझा भी रहे तो भी प्रकाश होगा। अगर तुम यह कहो कि जब दीया जल जाता है, तब अंधकार बाहर जाता है, तब भी मुश्किल है। इसका मतलब यह हुआ, कि दीया भी जल गया और अंधकार भी भीतर रहा। थोड़ी देर ही सही। तो फिर दीया भी अंधकार को मिटा नहीं पाता।घटना ऐसी है कि दीये का जलना और अंधकार का जाना एक ही घटना के दो पहलू हैं। एक साथ घटता है। युगपत। जरा भी फासला नहीं है। इंच भर का फासला भी—मुश्किल खड़ी हो जाएगी। फिर पहेली हल न हो पाएगी। अगर अंधेरा पहले चला जाए तो दीये की कोई जरूरत नहीं। अगर दीया जले और अंधेरा एक क्षण भी भीतर रह जाए, तो दीया फिजूल, नपुंसक! उसका कोई मूल्य ही नहीं।कब जाता है अंधेरा? कब आता है प्रकाश?—एक साथ

अगर और भी ठीक से समझना हो, तो यह कहना भी उचित नहीं है कि ये दो घटनाएं हैं। दीये का जलना और अंधेरे का जाना एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। चाहो, कहो अंधेरा चला गया; चाहो, कहो दीया जल गया; एक ही बात है। ये दो बातें नहीं हैं। लेकिन भाषा में दो हो जाती हैं। क्योंकि भाषा द्वैत पर खड़ी है। वह जो भाषा की थूनी है, वह दो पर खड़ी है। भाषा का मतलब ही है, दो के बीच का संबंध। तुम अगर अकेले रह जाओ जंगल में, तो तुम भाषा बोलोगे? क्या करोगे? अगर तुम अकेले होते पृथ्वी पर तो कोई भाषा पैदा होती? किसलिए पैदा होती?भाषा तो तब पैदा होती है, जब दूसरा हो। दूसरे के लिए भाषा है। दूसरे से बोलते हो। और अगर तुम कभी अकेले में भी बोलते हो, तो भी तुम दूसरे की

कल्पना कर लेते हो, तभी बोलते हो; नहीं तो नहीं बोल सकते। अकेले में कभी-कभी लोग बोलते हैं। एकांत में बैठे हैं, कोई नहीं है, थोड़ी बात करते हैं। तो शायद उनकी पत्नी मायके गई हो, उससे बात कर रहे हैं। या मित्र से बात कर रहे हो; या रिहर्सल कर रहे हो, कल किसी से बात करनी है उसको।लेकिन दूसरा सदा मौजूद है; चाहे कल्पना में ही क्यों न हो। दो के बिना भाषा नहीं है। सब भाषा द्वैत है। इसलिए भाषा जब भी किसी चीज को प्रकट करती है, तभी अद्वैत टूट जाता है।और जीवन अद्वैत है। यहां प्रकाश का जलना और अंधेरे का जाना एक साथ घटता है, एक साथ घटता है वह भी भाषा की गलती है। वे दो नहीं हैं, इसलिए कैसे कहें कि एक साथ घटता है? वह एक ही है। दो की तरह मालूम पड़ता है। 'कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी। आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन भीना। कहै कबीर भान के प्रकटे, उदित भया तम खीना।।

आंधी के पीछे जो जल की वर्षा हुई . . .ज्ञान सब कुछ नहीं है। ज्ञान तो सिर्फ आंधी है। पंडित के लिए ज्ञान सब कुछ हो जाता है। लेकिन असली ज्ञान तो सिर्फ शुरुआत है, सिर्फ प्रारंभ है।आंधी आ गई, आंधी थोड़े ही सब कुछ है! वह तो आनेवाली जल-वृष्टि की सूचना है। वह तो सिर्फ खबर है कि खाली करो जगह; कि तैयार हो जाओ—कि बनो शून्य, और बादल बरसने को है।तो ज्ञान तो आंधी है, और अमृत आनंद की वर्षा। 'आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन भीना' और जो हरि के प्रेम में मतवाले हैं, आंधी के पीछे वे नाचते हैं। और जो हरि के प्रेम में मतवाले नहीं, वे आंधी के पीछे बैठकर रोते हैं। क्योंकि उनका घर गिर गया। उनका सब खो गया। वे बरबाद हो गए। उनका दिवाला निकल गया।जब भी नासमझ का अहंकार टूटता है, तो वह रोता है और जब ज्ञानी का अहंकार टूटता है, तो वह नाचता है। क्योंकि वह कहता है कि यही तो एक उपद्रव था, जो समाप्त हुआ। जब अज्ञानी का शरीर छूटता है तो वह चीखता-चिल्लाता है। ज्ञानी का शरीर छूटता है तो वह परमात्मा को धन्यवाद कहता है, कि थोड़ी सी बाधा थी, वह भी मिट गई।कबीर ने कहा है, 'कब मरिहों कब भेंटिहों पूरन परमानंद'—कब मिटूंगा, कब मिलूंगा पूर्ण परमानंद से?ज्ञानी के लिए मृत्यु भी परमात्मा का द्वार है। अज्ञानी घबड़ाता है। 'आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन भीना।' वे जो हरि के प्रेम में दीवाने हैं, वे

तो भीग गए। वे तो अमृत से भीग गए। वे तो आर्द्र हो गए। उनके तो रोएं-रोएं में अमृत भर गया। वे तो झील की तरह भर गए। खाली थे, तरंगे लेने लगा परमात्मा उनमें।

'कहै कबीर भान के प्रकटे, उदित भया तम खीना।' और जब भान उगा, भीतर का सूरज उगा, तब अंधकार क्षीण हो गया। सदा के लिए क्षीण हो गया।बाहर का सूरज उगता है, अंधकार क्षीण होता है—सदा के लिए नहीं। फिर रात आ जाती है। दीया जलाओ, अंधकार बाहर जाता है, कब तक? थोड़ी देर में तेल चुक जाएगा, बाती बुझ जाएगी, अंधकार फिर भीतर आ जाएगा।बाहर का प्रकाश क्षणिक है और अंधकार शाश्वत है। यह बड़े मजे की बात है। अंधकार को करने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। बिना दीये के चलता है, बिना तेल के जलता है। दीये को जलाओ—तेल लाओ, बाती लाओ, हजार उपद्रव हैं। फिर भी क्षण भर जलता है, फिर बुझ जाता है।बाहर अंधकार शाश्वत है, प्रकाश क्षणिक है। भीतर इससे ठीक उलटी स्थिति है; अंधकार क्षणिक है, प्रकाश शाश्वत है। एक बार मिटा लो, सदा के लिए मिट जाता है। अगर भीतर का प्रकाश भी तेल और बाती पर निर्भर होता, तो फिर आत्मा को पा-पा कर खोना पड़ता। परमात्मा से मिल-मिल कर टूटना पड़ता। पहुंच-पहुंच कर मार्ग खो जाता है। मंजिल आ-आ कर भटक जाती। बहुत उपद्रव हो जाता।वह जो भीतर का प्रकाश है, वह जलता है बिन बाती बिन तेल। एक बार उसकी प्रतीति हो जाए—वह जल ही रहा है। अभी भी तुम्हारे भीतर जल रहा है। वह कभी बुझता ही नहीं। उसे जलाना नहीं है, सिर्फ आंख मोड़नी है। सिर्फ नजर डालनी है। सिर्फ पहचानना है।'कहै कबीर भान के प्रकटे'—और जब भीतर का भान, भीतर का सूरज प्रकट होता है;'उदित भया तम खीना—'और तम सदा के लिए क्षीण हो गया। ज्ञान की यह आंधी—इसके दो हिस्से हैं। पहले तो तुम्हें मिटाती है, फिर तुम्हें आर्द्र कर देती है, भिगाती है। पहले तुम्हें कूटती है, पीटती है, नष्ट करती है। अगर तुम राजी हुए टूटने को, मिटने को, खाली होने को तो फिर तुम्हें भरती है।जो खाली होने से ही डर गया, उसके जीवन में दूसरा चरण नहीं घट पाता। तो पांडित्य पैदा हो सकता है। पांडित्य बड़ा सुरक्षापूर्ण है। उसमें न कोई आंधी है, न तूफान है, न कोई खतरा है। शास्त्र लिए

बैठे रहो; अध्ययन करते रहो। तुम अछूते बने रहोगे।ज्ञानियों ने सदा कहा है कि वीतराग पुरुष संसार में ऐसे जीता है, जैसे कमल पानी में। कमल को पानी छूता नहीं, ऐसे ही पंडित ज्ञान में जीता है; ज्ञान उसे छूता नहीं—कमलवत्। जीता है ज्ञान में, चारों तरफ वेद, उपनिषद, कुरान, बाइबिल का ढेर लगाए बैठा रहता है। जीता है वहीं, लेकिन कमलवत। छूता नहीं ज्ञान उसे। और अगर ज्ञान न छुएगा तो कैसे तुम्हारा अज्ञान मिटेगा?पंडित का ज्ञान अज्ञान को ढांक लेता है, मिटाता नहीं। और ढंका हुआ अज्ञान उघड़े अज्ञान से ज्यादा खतरनाक है। वह ऐसे ही है, जैसे किसी ने अपने फोड़े को ढांक लिया हो। पहले तो ढांका हो कि दूसरों को पता न चले; फिर धीरे-धीरे खुद भी भूल गया हो। तो फिर फोड़ा बढ़ते-बढ़ते भीतर नासूर बनेगा और कैंसर बनेगा। फोड़े का इलाज चाहिए; ढांकने से कुछ भी न होगा। अज्ञान को ढांको मत, ढांकने से तुम्हारी आत्मा और अंधकार से भर जाएगी। अज्ञान को उघाड़ो, प्रकट करो। उसे काटना है। और उसे काटने का उपाय यही है कि तुम ज्ञान की आंधी को निमंत्रण दो।वह निमंत्रण ध्यान से संभव होता है। जैसे-जैसे तुम शांत होते हो, निर्विचार होते हो, ध्यान में उतरते हो, तुम आंधी को बुला रहे हो।शायद तुम्हें पता हो; बाहर के जगत में जो आंधी घटती है—कैसे घटती है, तुम्हें मालूम है? अभी दो दिन पहले जोर की आंधी आई; हिला गई वृक्षों को, गिरा गई वृक्षों को। वह कैसे आती है? बाहर आंधी कैसे घटती है? कौन उसे बुलाता है?उसको बुलाने की एक प्रक्रिया है। और किसी दिन विज्ञान के हाथ में यह बात आ जाएगी। जानकारी तो हाथ आ गई है; किसी दिन विज्ञान कर भी सकेगा। रूस में वे कुछ प्रयोग करते भी हैं।

आंधी के आने का ढंग यह है, कि जहां भी जोर की गर्मी पड़ती है, सूरज जहां जोर से तपता है, वहां की हवा विरल हो जाती है, सूखी हो जाती है। सूखी होने के कारण गर्म होने के कारण, फैल जाती है। जब हवा फैल जाती है तो वहां पैदा हो जाते हैं। चारों तरफ की हवा भरी होती है और कुछ जगह हवा के पैदा हो जाते हैं। उन्हीं के कारण दूर से हवा खींच ली जाती है। जैसे तुम बर्तन में पानी भर लो नदी से, तो पैदा हो जाता है। चारों तरफ का पानी दौड़कर उस को भर देता है।सूरज गर्मी पैदा करता है। जहां-जहां बहुत गर्मी हो जाती है, वहां हवा विरल हो जाती है, पैदा हो जाते हैं हवा में। उन हवाओं के को भरने के लिए पास की हवाएं जोर से दौड़ती हैं। वह दौड़ ही आंधी है। इसलिए जितनी भयंकर गर्मी पड़ेगी, उतनी भयंकर आंधी आनेवाली है। इसलिए लोग कहते हैं, जब बहुत गर्मी पड़ती है, वे कहते हैं, अब वर्षा होगी। क्योंकि बहुत गर्मी का मतलब है आंधी आएगी; आंधी का मतलब, साथ में बादल उड़े चले आ एंगे।ठीक वही भीतर का सूत्र भी है। इसलिए हमने भीतर की साधना को तपश्चर्या कहा है। तप का अर्थ होता है, गर्मी। तप का अर्थ होता है, उत्तप्त भीतर की अवस्था।ध्यान तुम्हारे भीतर एक निश्चित ताप पैदा करेगा। तुम्हारी ऊर्जा उत्तप्त होगी। तुम्हारे भीतर की अग्नि जलेगी। तुम यज्ञ बन जाओगे। तुम्हारे भीतर सब उत्तप्त होकर खाली होने लगेगा, शून्य होने लगेगा। और जैसे ही भीतर शून्य निर्मित होता है, परमात्मा की आंधी भागती चली आती है।और जब आंधी आती है, तब साथ में अमृत के बादल भी आते हैं।

संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बांधी।।
हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलींदा तूटा।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पानी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।।
आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन भीना।
कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम खीना।। आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

सुरति का दीया

प्रश्नसार

ज्ञानी साथ साथ रोता और हंसता है।

क्या देखकर रोता है और क्या देखकर हंसता है?

क्या हम सबकी मनःस्थितियों को देखकर भी आप कह सकते हैं 'साधो सहज समाधि भली'?

आपके पास कभी-कभी अकारण सघन पीड़ा का अनुभव। यह क्या है?

कृपया बताएं, कि ऊंट किस करवट बैठे?

पहला प्रश्न : सुना है, कभी-कभी ज्ञानी साथ-साथ रोता है और हंसता है। वह क्या देखकर रोता है और क्या देखकर हंसता है?कभी-कभी नहीं, सदा ही ज्ञानी साथ-साथ रोता और हंसता है। हंसता है अपने को देखकर, रोता है तुम्हें देखकर। हंसता है यह देखकर, कि जीवन की संपदा कितनी सरलता से उपलब्ध है। रोता है यह देखकर, कि करोड़ों-करोड़ों लोग व्यर्थ ही निर्धन बने हैं। हंसता है यह देखकर कि सम्राट होना बिलकुल सुगम था और रोता है यह देखकर कि फिर क्यों अरबों लोग भिखारी बने हैं?जिसे तुम पाकर ही पैदा हुए हो, जिसे तुमने कभी खोया नहीं, जिसे तुम चाहो तो भी खो न सकोगे, जिसे खोने का उपाय ही नहीं

है, उसे तुमने खो दिया है यह देखकर रोता है।यह देखकर हंसता है, कि जो मुझे मिल गया है, उससे मिलाने के लिए कुछ भी करने की कभी कोई जरूरत न थी। कहीं जाने की, किसी यात्रा की कोई जरूरत न थी। यह देखकर हंसता है कि सभी मेरे भीतर था और मैं कैसे चूकता रहा!और अचानक एक क्षण में आती है आंधी और सब कूड़ा-करकट उड़ जाता है। और भीतर परमा9त0मा विराजमान है। तुम उसके मंदिर हो।तो जब भी भीतर देखता है, मुस्कुराता है; जब भी बाहर देखता है, उसकी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं।और ऐसा एक ज्ञानी के साथ नहीं होता, सभी ज्ञानियों के साथ होता है—और होगा ही। इससे अन्यथा होने का उपाय नहीं है।इतना सरल है और इतना कठिन हो गया है!कबीर कहते हैं, कि मुझे हंसी आती है कि मछली पानी में क्यों प्यासी है? चारों तरफ पानी ही पानी है, बाहर भीतर पानी ही पानी है; मछली पानी में ही पैदा होती है, पानी में ही जीती है, पानी में ही लीन हो जाती है; फिर भी प्यासी! तो कबीर कहते हैं, 'मुझे आवै हांसी'; मुझे बड़ी हंसी आती है।आदमी परमा9त0मा में ही पैदा होता है, जैसे परमा9त0मा सागर हो तुम्हारे चारों तरफ—और चारों तरफ ही नहीं, भीतर भी। वही हो भीतर, वही हो बाहर और फिर भी तुम अतृप्त रह जाओ। अहअनश उसका नाद बज रहा हो और तुम्हें धुन भी न सुनाई पड़े, एक कण भी तुम्हारे कानों में न आए। चारों ओर उसी के फूल खिलते हों और तुम्हें कोई सुगंध न मिले। सब तरफ उसी की रोशनी हो और तुम अंधे ही बने रहो और अपने अंधेरे में ही जी लो।इस उलझन को देखकर ज्ञानी हंसता भी है, रोता भी है। तुम पर उसे दया भी आती है और तुम्हारी अ9त0यंत हास्यास्पद स्थिति देखकर वह हैरान भी होता है।और इसलिए अक्सर ज्ञानी पागल मालूम होगा। क्योंकि तुम उस आदमी को भी समझ सकते हो, जो रोता हो—दुखी होगा। तुम उस आदमी को भी समझ सकते हो, जो हंसता

है—सुखी होगा। वह आदमी तुम्हारी समझ के बाहर हो जाता है, जो हंसता भी है, रोता भी है साथ-साथ!अलग-अलग तुम समझ लेते हो। तुम भी हंसे हो, तुम भी रोए हो। हंसे हो, जब प्रसन्न थे; एक मनोदशा थी। रोए हो, जब दुखी थे; एक दूसरी मनोदशा थी। कभी दिन था, कभी रात थी; कभी सुख था, की दुख था; कभी खिले थे, कभी मुरझा गए थे। उन दोनों स्थितियों को तुम जानते हो; लेकिन दोनों साथ-साथ तो तुमने या तो पागल में देखी हैं, या ज्ञानी में देखी हैं।पागलखाने में जाओ तो तुम्हें पागल कभी-कभी, हंसते-रोते, साथ-साथ मिल जाएंगे। और ज्ञानी में फिर यही घटना घटती है।तो ज्ञानी पागल जैसा लगता है। इसलिए बहुत बार ज्ञानियों से हम वंचित ही रह गए हैं। क्योंकि बेबूझ मालूम पड़ती है, वह जो कहता है, पहेलियां मालूम होती हैं। वह जो कहता है, उससे कुछ सुलझता नहीं, और उलझता मालूम पड़ता है। उसे देखकर ऐसा नहीं लगता है, कि कोई समाधान मिल जाएगा। ऐसा लगता है, कि तुम वैसे ही उलझे थे, इसे देखकर और उलझ जाओगे।हंसता और रोता है साथ-साथ, इसका गहरा अर्थ है। इसका अर्थ है, कि जिनको तुमने अब तक विपरीत की तरह जाना है, ज्ञानी उन्हें एक की तरह जानता है। उपनिषद कहते हैं, 'एकं सत विप्रा बहुधा वदंति'। एक ही स9त0य है; जानने वालों ने उसे बहुत ढंग से कहा। एक ही अवस्था है जीवन की, अभिव्यक्ति बहुत तरह से हो सकती है।वही रोता है, वही हंसता है; वह एक ही है—एकं सत। वह स9त0य एक ही है, जो हंसता है और रोता है। जो

दुखी होता है, जो सुखी होता है, वह एक ही है।लेकिन तुम कभी उसे देख नहीं पाए। या तो तुमने उसे दुखी देखा, जब दुखी देखा, तब तुम सुख को भूल गए। और जब तुमने उसे सुखी देखा, तब तुम दुख को भूल गए। इसलिए तुम्हारे जीवन में अधूरापन है। तुम उसे अखंड न देख पाए, कि वही हंसता है, वही रोता है। और अगर तुम यह देख पाओ कि वही हंसता है, वही रोता है, तो तुम दोनों के पार हो गए। हंसना एक भाव-दशा रह गई, रोना भी एक भाव-दशा रह गई, तुम साक्षी हो गए। तुम जाग गए।तो ज्ञानी जागता है। उस जागने में सभी अवस्थाएं सम्मिलित हो जाती हैं एक साथ। तुम खंड-खंड हो, ज्ञानी अखंड है। इसलिए ज्ञानी के सुख में भी तुम दुख की छाया पाओगे। और ज्ञानी के दुख में भी तुम सुख का रंग देखोगे।

बुद्ध की प्रतिमा को गौर से देखो या महावीर की प्रतिमा को गौर से देखो, तो तुम्हें एक बात बड़ी हैरानी की लगेगी। जितना तुम गौर से देखोगे तुमने शायद गौर से न देखी होगी। जैन भी नहीं देखते। मंदिर में जाकर पूजा के फूल चढ़ा कर भाग खड़े होते हैं। फुरसत कहां है महावीर की तरफ देखने की? सुविधा कहां है? एक काम है, कृ9त0य है, निपटा देना है। जब महावीर के सामने हाथ जोड़कर खड़े होते हैं, तब भी बाजार में होते हैं। तब भी मन कहीं और होता है। हो सकता है वेश्या के द्वार पर दस्तक दे रहा हो, तिजोड़ी के रुपए गिन रहा हो। मन कहीं और होता है। कौन देखेगा महावीर को?अगर गौर से देखोगे, तो तुम देखोगे दोनों बातें एक साथ—कि महावीर की प्रतिमा में एक अखंड आनंद की भाव-दशा मालूम होती है। लेकिन वह आनंद उथला नहीं है। वह छिछला नहीं है। जैसा सड़क पर हंसते हुए लोगों का आनंद है, होटल में बैठे हुए मजाक करते लोगों का आनंद है, वैसा छिछला नहीं है। बड़ा गहरा है। जैसा बड़ी गहरी नदी बहती है, जिसमें आवाज भी नहीं होती। छिछली नदी बहती है, कंकड़-प9त0थरों पर बड़ा शोरगुल करती है।तो महावीर के आनंद में से खिलखिलाहट नहीं दिखाई पड़ेगी। एक बड़ी गहरी दशा है। और उस गहराई में अगर तुम उतरोगे तो पाओगे, एक बड़ी गहरी उदासी भी है। एक आनंद है, पर उदासी संयुक्त है। उदासी ही आनंद को गहराई देती है। एक सुख है, लेकिन दुख की छाया साथ है।क्या मतलब है इसका? इसका मतलब यह है कि जो व्यक्ति भी पार हो गया, उसमें दोनों लीन हो जाते हैं; उसमें द्वैत लीन हो जाता है। वह एक को नहीं चुनता दो के बीच से; वह दोनों को ही एक साथ स्वीकार कर लेता है। इस स्वीकार में ही वह दोनों से भिन्न हो जाता है। वह दोनों से भिन्न हो जाना ही आ9त0मवान हो जाना है।तो ज्ञानी हंस सकता है, रो सकता है एक साथ। या पागल हंस सकता है, रो सकता है एक साथ। ज्ञानियों और पागलों में थोड़ा-सा साम्य है। ज्ञानियों और बचचों में थोड़ा-सा साम्य है। ज्ञानियों में और पशुओं में थोड़ा-सा साम्य है। वह साम्य समझ लेना चाहिए।जब ज्ञानी अपने ज्ञान की परम अवस्था में पहुंचता है, तो अज्ञानियों जैसा हो जाता है।

क्योंकि अब उसे यह भी खयाल नहीं रहता कि मैं जानता हूं। क्योंकि यह 'मैं जानता हूं', यह भी अज्ञान का हिस्सा है। यह भी अहंकार है। यह भी अज्ञानी की प्रतीति है कि मैं जानता हूं। यह भी अकड़ है। यह अकड़ भी खो जाती है। जो वस्तुतः जान लेता है उसकी यह अकड़ भी चली जाती है कि मैं जानता हूं। कौन जानने वाला? किसको जानेगा? एक ही है। वही जाना जाता है, वही जानने वाला है। कौन किसको जानेगा? बात ही खो गई। धीरे-धीरे वह यह भूल ही जाता है कि मैं जानता हूं।तब उसकी अवस्था में एक साम्य हो जाता है छोटे बचचों जैसा, जो कुछ भी नहीं जानते। साम्य है, वैषम्य भी है। साम्य इतना है कि बचचा भी नहीं जानता, ज्ञानी भी नहीं जानता। वैषम्य इतना है, कि बचचे को अभी जानना पड़ेगा; ज्ञानी जान चुका। बचचा अभी यात्रा के पहले है, ज्ञानी यात्रा के बाद। दोनों विश्राम कर रहे हैं। एक की यात्रा शुरू नहीं हुई, इसलिए विश्राम कर रहा है। एक की यात्रा पूर्ण हो गई, इसलिए विश्राम कर रहा है। दोनों यात्रा में नहीं हैं, इतना साम्य है। लेकिन बड़ा वैषम्य है।पशुओं और ज्ञानियों में तुम्हें साम्य दिखेगा। बुद्ध की आंखों में कभी गौर से झांको और अपनी गाय की आंखों में झांको। तुम पाओगे, एक साम्य है। एक सरलता है, जो दोनों में एक जैसी है। न तो गाय की आंखों में चिंता तैरती, न बुद्ध की आंखों में। गाय की आंखें ऐसी हैं, जैसी गहरी झील। वैसी ही आंखें बुद्ध की भी हैं। वही नीलिमा, वही खुला आकाश गाय की आंखों में है, जो बुद्ध की आंखों में है। एक साम्य है ज्ञानियों में और पशुओं में, क्योंकि पशु अभी विकृत नहीं हुए—होंगे। ज्ञानी विकृति के पार उठ गया। पशु अभी पाप में नहीं पड़े, ज्ञानी पाप से उठ गया। पशु आज नहीं कल भ्रशट होंगे, ज्ञानी भ्रशट हो चुका; अब भ्रशट होने को जान चुका और सम्हल गया। साम्य

है, वैषम्य है।ऐसे ही पागलों और ज्ञानियों में साम्य और वैषम्य है। पागल बुद्धि से नीचे गिर गया, ज्ञानी बुद्धि के पार चला गया। तुम्हारे पास थोड़ी बुद्धि है, ज्ञानी के पास पूर्ण हो गई, पागल के पास पूरी नशट हो गई। तुम मध्य में अटके हो। पागल नीचे गिर गया, उसकी बुद्धि खो गई। अब वह सोच नहीं सकता, विचार नहीं सकता। ज्ञानी की बुद्धि पूर्ण हो गई। अब उसे सोचने की जरूरत न रही, विचारने की जरूरत न रही। नहीं कि सोच नहीं सकता; सोचने का प्रयोजन ही न रहा। विचार की कोई बात ही न रही। जान लिया

जानने यौंय। विचार को उसने उठाकर किनारे रख दिया कि तू अब रुक। हो गया तेरा काम पूरा। ज्ञानी घर लौट आया। और पागल इतना भटक गया राह के किनारे कि कहीं भी बैठकर उसने अपना घर मान लिया।दोनों में एक साम्य है। और कई बार तो ऐसा हो सकता है, बहुत बार हुआ है; और अभी पश्चिम में मनस्विद इस संदेह से भर गए हैं, कि पश्चिम के पागलखानों में कुछ ज्ञानी भी बंद हैं। पश्चिम के कुछ बड़े मह9त0वपूर्ण मनोचिकि9त0सक इस बात को एहसास कर रहे हैं कि पागलखानों में बंद सभी लोग पागल नहीं हैं। उनमें कुछ लोग तो बड़े गहरे अनुभव के लोग हैं और ऐसा लगता है, कि हम से ऊपर चले गए हैं। लेकिन हमें वे पागल जैसे लगते हैं; उनको भी उठाकर पागलखानों में बंद कर दिया है।तुम थोड़ा सोचो, अगर रामकृशण परमहंस योरोप या अमरीका में पैदा हुए होते तो पागलखाने में होते; या किसी अस्पताल में उनकी चिकि9त0सा चल रही होती। इसके अतिरिक्त कुछ हो नहीं सकता था। क्योंकि जब रामकृशण समाधिस्थ होते थे, तो उस समाधि की अवस्था में ऐसा ही लगता था, जैसे एपिलेप्टिक फिट आ गया, जैसे मिर्गी आ गई। मिर्गी में और समाधि की कुछ अवस्थाओं में साम्य है। क्योंकि मिर्गी में भी आदमी का मस्तिशक जराजीर्ण हो जाता है। और शरीर की विद्युत मस्तिशक में दौड़ती है और मस्तिशक एक तरह के विद्युत के शाक में डांवाडोल होकर गिर पड़ता है। मुंह से फसूकर गिरने लगता है। आदमी बेहोश हो जाता है।समाधि में भी वैसी घटना घटती है कि आदमी इतने भीतर, इतने भीतर उतर जाता है कि शरीर से संबंध टूट जाता है। शरीर बड़े फासले पर हो जाता है। आदमी इतने भीतर हो जाता है कि शरीर को जितनी ऊर्जा मिलनी चाहिए स्वयं से, वह नहीं मिल पाती। शरीर तड़फने लगता है। जैसे मछली तड़फने लगे बिना पानी के, ऐसा जीवन की ऊर्जा न मिलने से शरीर तड़फने लगता है। मिर्गी जैसा मालूम होने लगता है।रामकृशण के मुंह से फसूकर गिरने लगता था छह-छह घंटे। और कभी-कभी तो छह-छह दिन तक वे बेहोश पड़े रहते थे। कुछ लोगों ने पश्चिम में तो लिखा भी है कि हमें संदेह है, कि यह आदमी ज्ञानी है। यह तो इपिलेप्टिक फिट है। इसका तो इलाज होना चाहिए।

अगर मीरा को दुर्भौंय से पश्चिम में पैदा होना पड़ता, तो वह भी किसी मनोवैज्ञानिक की कोच पर लेटी इलाज करवा रही होती। क्योंकि मनोवैज्ञानिक, मीरा जो कह रही है, जो हाव-भाव प्रकट कर रही है, उससे कुछ और ही समझता।क्योंकि कुछ साम्य है। वह साम्य वैसे ही है, जैसे कभी कोई पागल प्रेमी अपनी प्रेयसी के लिए दीवाना हो जाता है, होश खो देता है। या कोई प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए पागल हो जाती है, होश खो देती है, लोक-लाज छोड़ देती है।वही घटना मीरा को घट गई थी। प्रेमी कहीं अज्ञात में था। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता था। लेकिन जो मीरा दिखाई पड़ती थी, उस पर जो घटना घट रही थी, वह घटना वही थी जो अ9त0यंत कामाविशट अवस्था में घटती है। पश्चिम के लोग और पश्चिम के मनोवैज्ञानिक तो कहते, यह तो कामविकार है, सेक्स पर्वर्शन है। और फिर अगर मीरा के पद उनकी समझ में आ जाते तो वे कहते, पक्की हो गई बात।क्योंकि वह कहती, हे कृशण! तेरे लिए मैंने सेज सजाई है, फूल बिछाए हैं। मैं जागकर तेरी राह देखती हूं, तू कब आएगा?ये प्रतीक तो प्रेम के हैं, काम के हैं। मीरा कहती है, 'तेरे लिए मैंने सब लोक-लाज खो दी है। तेरे बिना मुझे अब कुछ और रस नहीं आता। तू ही दिखाई पड़ता है। तू ही मेरा प्राण है, तू ही मेरी सांस है।' और मीरा नाचती है।मनोवैज्ञानिक कहेगा कि कामविकार है। इसकी कामवासना तृप्त नहीं हो पाई। उसी कामवासना के आधार पर इसका मन विकृत हो गया है। ये गीत, यह रहस्य—न तो रहस्य है इसमें, न गीत है कुछ। यह सीधा दबा हुआ काम है : सप्रेस्ड सेक्स।एक साम्य है। साम्य से भ्रांति में मत पड़ जाना। साम्य के साथ ही साथ वैषम्य भी है। जब कोई व्यक्ति कामातुर होता है, तो तुम उसमें पीड़ा देख सकते हो, दुख देख सकते हो, आनंद नहीं। वहां वैषम्य है। जब कोई स्त्री कामपीड़ित होती है, तो उसका चेहरा कुरूप हो जाता है, सुंदर नहीं। और मीरा जैसा सुंदर चेहरा हमने कभी देखा नहीं।

जब कोई स्त्री कामपीड़ित होती है और उसका काम तृप्त नहीं होता, तो वह विक्षिप्त हो जाती है। लेकिन मीरा जैसा होश हमने नहीं देखा। और मीरा के जीवन में जो शांति की सुगंध है, वह तो कामवासना से कैसे उठेगी? जो
आनंद का अहोभाव है—उसके चारों तरफ जैसे मंदिर चल रहा है, एक पवित्रता है। एक अलौकिक शुद्धि, एक अलौकिक कुंआरापन है। लेकिन उसके प्रतीक तो वही हैं।कठिनाई यह है, कि इस जगत में ही तो संत पैदा होता है, परम ज्ञानी पैदा होता है। उसमें तुमसे बहुत सी बातें मिलती-जुलती दिखाई पड़ेंगी। लेकिन उनसे तुम भूल में मत पड़ जाना। अगर तुम्हें कभी भी साम्य दिखाई पड़े, तो तुम त9त0क्षण खोजना कि वैषम्य कहां है? और उस साम्य के नीचे छिपा हुआ तुम वैषम्य पाओगे।पागल भी रोते हैं, हंसते हैं साथ-साथ; ज्ञानी भी रोता है, हंसता है साथ-साथ। पर दोनों की जीवन की गुणवत्ता अलग है। दोनों के जीवन का ढंग अलग है। ज्ञानी सुलझा हुआ है, पागल बिलकुल उलझा हुआ है। पागल को सुलझाने के लिए दूसरों की जरूरत है। ज्ञानी दूसरों के उलझाव को सुलझा देता है। ज्ञानी को समाधान उपलब्ध हो गया है।और तुम अगर उसके निकट बैठोगे और समझने की कोशिश करोगे, तो उसका समाधान तुम्हारी समझ में आना शुरू हो जाए भीतर सब तूफान शांत हो गया है। एक शून्य आविर्भाव हुआ है। प्रभु का मंदिर भीतर निअमत हुआ है।भीतर वह देखता है तो हंसता है। तुम्हारी तरफ देखता है तो रोता है। उसकी करुणा रोती है, उसका ज्ञान हंसता है।और बुद्ध ने कहा है, ज्ञानी के दो ही लक्षण हैं—प्रज्ञा और करुणा। प्रज्ञा का अर्थ है, स्वयं को जानना, आ9त0मज्ञान, और करुणा का अर्थ है, दूसरे के लिए चिंता, फिघ। उसकी करुणा रोती है, उसकी प्रज्ञा हंसती है। और उसमें सब संयुक्त हो जाता है। वह अखंड है। उसके भीतर पुराने खंड नहीं रहे।इसलिए ज्ञानी को समझना बड़ी अड़चन की बात है। इसलिए केवल वे ही ज्ञानी को समझ पाते हैं, जो बड़ी श्रद्धा, बड़े प्रेम और बड़ी आस्था से उसके करीब आते हैं। जिनके मन में संदेह है, वे कैसे समझ पाएंगे? संदेह ने समझने का द्वार ही बंद कर दिया।दुनिया में दूसरे को समझने का एक ही उपाय है और वह प्रेम है। वस्तुओं को समझना हो तो विज्ञान सहयोगी हो सकता है। व्यक्तियों को समझना हो, तो प्रेम, तो काव्य, तो संगीत। अगर वस्तुओं को समझना हो, तो बिना प्रेम के भी समझ सकते हो।
वैज्ञानिक को वस्तु को समझने के लिए कोई प्रेम की जरूरत नहीं है। जिन्होंने अणु खोजा, उनके लिए कोई प्रेम की जरूरत नहीं है। अणु खोजा जा सकता है।लेकिन जिन्होंने जीवन के परम रहस्य खोले हैं, उन्हें समझने का उपाय तो एक ही है, कि तुम्हारा हृदय उन्हें समझने की चेशटा करे। वस्तुएं मस्तिशक से समझी जाती हैं, व्यक्ति हृदय से। और ज्ञानी तो व्यक्ति9त0व की परम गरिमा है। वह तो गौरी शंकर है, वह तो आखिरी शिखर है। उसे समझने के लिए तो तुम्हें बहुत हृदयपूर्वक होकर आना पड़े, तो ही उसे समझ सकते हो। अगर तुम संदेह से, आलोचना से भरे हुए गए, तो समझना मुश्किल है।मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक नए व्यक्ति आकर बसे। उसके तो देखने का ढंग ही आलोचना है। सभी पड़ोसियों की वह निंदा मुझसे कर चुका है। नए पड़ोसी आए तो मैंने सोचा, देखें, क्या कहता है! तो उससे मैंने पूछा, कि नए पड़ोसी आ गए, क्या खबर है उनके संबंध में? क्या सोचते हो?उसने कहा, ेंयारह भाई हैं। पहला भाई राजनेता है और दूसरा उससे भी गया बीता। तीसरा भाई विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है और चौथा उस से भी गधा। पांचवां मनोवैज्ञानिक है, छठवां भी पागल। सातवां दुकानदार है, आठवां भी चोर। नौवां कवि है और दसवां भी लफंगा। और ेंयारहवां अपने बाप-जैसा ही बाल ब्रह्मचारी है।एक देखने का ढंग है, जहां चीजें बुरी से बुरी, और बुरी से बुरी दिखाई पड़ती हैं। एक चश्मा है संदेह का, निंदा का, घृणा का, वैमनस्य का, दुर्भाव का, वहां हर चीज अपने बुरे से बुरे रूप में दिखाई पड़ती है।एक सदभाव की वृति है. . .झेन फकीर हुआ रिंझाई। एक गांव में मेहमान था। एक आदमी से उसने कहा कि मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक संगीतज्ञ है। एक बांसुरीवादक है, उसके स्वर बड़े अनूठे हैं। कहते हैं कि ऐसे स्वर कभी कृशण के थे या यूनान में हुए आफ132र्यूअस के।उस आदमी ने कहा, 'छोड़ो बकवास! वह आदमी क्या बांसुरी बजाएगा? वह निपट बेईमान और चोर है।'दूसरे आदमी से भी उसके बाद. . . वह आदमी
बैठा ही था, कि दूसरा आदमी आया। रिंझाई ने उससे भी कहा, कि 'मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक चोर है, बेईमान है, बहुत बुरा आदमी है।'उस आदमी ने कहा, 'मैं समझ गया, तुम किसकी बात कर रहे हो। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, कि वह चोर हो नहीं सकता, वह बेईमान हो नहीं सकता। एक बार उसकी बांसुरी सुन लो, तुम भी विश्वास कर लोगे कि वह

चोर हो नहीं सकता; अफवाह है। वह इतनी सुंदर बांसुरी बजाता है, चोर हो कैसे सकता है?'एक ही आदमी! वह दोनों हो सकता है। चोर भी हो, बेईमान भी हो, बांसुरी भी बजाता हो, कोई अड़चन नहीं है। बांसुरी चोरी में कोई बाधा नहीं डालती। चोरी की कोई अड़चन नहीं है बांसुरी में। उससे कोई प्रयोजन भी नहीं है।लेकिन ये दो आदमी हैं। एक आदमी इसलिए नहीं मान सकता कि वह अचछा बांसुरीवादक है, क्योंकि चोर है। और एक आदमी इसलिए नहीं मान सकता कि वह चोर हो सकता है, क्योंकि वह अचछा बांसुरीवादक है।ये आस्तिक और नास्तिक की दृशिटयां हैं। ये श्रद्धा और संदेह की दृशिटयां हैं।ज्ञानी को समझना हो, तो बड़े भाव और बड़े प्रेम से ही समझा जा सकता है। अन्यथा वह पागल मालूम पड़ेगा। रामकृशण के पास जाओ, तो संदेह लेकर मत जाना; अन्यथा लगेगा कि ये मिर्गी के मरीज हैं। मीरा के पास जाओ, तो प्र132ायड की बुद्धि लेकर मत जाना; अन्यथा लगेगा कि ये मीरा मानसिक रोग से ग्रस्त है। महावीर के पास जाओ, तो मनोविश्लेषण करने मत जाना; नहीं तो लगेगा यह आदमी नेंन खड़ा है, एक्झिबिशनिस्ट है। पुलिस को खबर करो। यह आदमी अपने को नंगा दिखाने में उ9त0सुक है।एक बीमारी होती है, मनोवैज्ञानिक उसको एक्झिबिशनिज्म कहते हैं कि कुछ लोग बीमार होते हैं। उनको मजा आता है इसमें कि वे अपना नेंन रूप तुम्हें दिखा दें। एकांत में, सड़क पर चलते हुए कोई न देखेंगे, वहां वे जल्दी से अपना पाजामा गिरा देंगे, ताकि तुम उन्हें नेंन देख लो। वह रोग है।महावीर नेंन खड़े हैं। पाजामा ही नहीं गिराते, बिलकुल ही सब गिराकर खड़े हैं—जरूर रेंण हैं। कहीं कोई गड़बड़ है।

महावीर के पास मनोवैज्ञानिक की तरह मत जाना। क्योंकि तुम तब जा ही न सकोगे। ये इतनी महिमा-मंडित स्थितियां हैं, कि इनके पास तुम्हें जाना हो, तो तुम्हें पर्वत-शिखर की यात्रा करनी होगी। और अपनी बुद्धि के सारे बोझ नीचे रख देने होंगे। अन्यथा तुम पर्वत-शिखरों तक जा न सकोगे। फिर तुम जो निर्णय लेकर लौट आओगे, वे तुम्हारे अपने ही निर्णय होंगे। उनका महावीर से कोई संबंध न होगा।ज्ञान इस जगत में सबसे बड़ी पहेली है, अगर तुम्हारी जगह से देखा जाए। असंभव घटता है ज्ञानी में। जो नहीं घटना चाहिए, वह घटता है। तुम्हें भरोसा नहीं आता, ऐसी घटना घटती है। क्योंकि ज्ञानी का अर्थ है, जिसके भीतर परमा9त0मा घटा। वह असंभव घांति है। वह असंभव घांति है। उस पर भरोसा आता नहीं। यह हो कैसे सकता है कि किसी में परमा9त0मा घट जाए?तुम्हारा मन इनकार करता है। लेकिन उस इनकार से तुम्हीं खोओगे कुछ, ज्ञानी का कुछ भी नहीं खोता है। उस इनकार से तुम ही बंद हो जाओगे। उस इनकार से तुम्हारा ज्ञानी से संबंध निअमत नहीं हो पाएगा। और उस संबंध के निअमत होने में तुम्हारी भी घांति की संभावना छिपी थी। जो असंभव ज्ञानी के भीतर घटा है, वह तुम्हारे भीतर भी घट सकता है। बीज रूप से तुम भी वही हो। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतु'—उपनिषद कहते हैं, 'तू भी वही है श्वेतकेतु।'लेकिन यह होना तभी संभव है, जब तुम्हें कोई महिमा-मंडित व्यक्ति पर भरोसा आ जाए। वह भरोसा ही तुम्हारे भीतर के बीज को तोड़ेगा, अंकुरित करेगा, तुम भी खुले आकाश में उठोगे। कभी संभावना है, कि तुम्हारे भी फूल खिल सकें।-18255प्रश्न ः क्या हम सब की मनःस्थितियों को देखकर भी आप कबीर की भांति कह सकते हैं, 'साधो सहज समाधि भली?'कबीर ने तुम्हारी मनःस्थिति देखकर ही कहा था। तुम्हारे जैसे ही लोग कबीर के पास इकट्ठे थे। अलग तरह के लोग लाओगे कहां से?दो ही तरह के लोग हैं। ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं। और जब भी कभी कोई ज्ञानी का दीया जलता है, तो जो दीये की खोज में हैं, रोशनी की खोज में हैं; वे इकट्ठे हो जाते हैं। तुम ही

बुद्ध के पास थे, तुम ही महावीर के, तुम ही कबीर के। तुम्हारे जैसे ही लोग!तुम से ही कहा था 'साधो सहज समाधि भली;' किसी और से नहीं। अगर किसी और से कहा होता तो मैं तुम्हें समझाता ही नहीं, फायदा ही क्या? अगर किसी और को कहा था, तो तुमको समझाने की क्या जरूरत है? तुमसे ही कहा था। उस बार तुम चूक गए; सोचता हूं, शायद इस बार समझ जाओ!और क्यों कहा था, 'साधो सहज समाधि भली?'क्योंकि तुम सब के मन में यह खयाल है, कि समाधि बड़ी कठिन बात है। कठिन ही नहीं, असंभव! और यह खयाल तुमने ही पैदा कर लिया है। कोई ज्ञानी नहीं कहता कि समाधि कठिन बात है। यह तुमने ही पैदा कर लिया है। यह तुम्हारी तरकीब है।तुम्हें जो काम नहीं करना, उसको तुम असंभव कहते हो। जिससे तुम्हें बचना है, उसे तुम कठिन कहते हो। जिस तरफ तुम्हें जाना ही नहीं, उस तरफ तुम कहते हो, यह होने वाला ही नहीं; यह बहुत मुश्किल है। यह अपने वश के बाहर है। जो वश के भीतर है, वही हम करें।यह तो वश के बाहर है—मोक्ष, निर्वाण, आनंद। सुख तो मिल नहीं रहा हमें, आनंद कैसे मिलेगा? यह तो असंभव है। हम तो

सुख खोज लें। यह परम-धन मिलेगा, नहीं मिलेगा! सांसारिक धन ही नहीं मिल पा रहा है; पहले तो हम इसे खोज लें। क्षु(पर ही हाथ नहीं आ रहे, विराट पर कैसे आएंगे? क्षु(का ही द्वार नहीं खुल रहा, चाबी नहीं लग रही, विराट का द्वार कैसे हम से खुलेगा?कठिन है। असंभव है। ऐसे तुम स्थगित कर देते हो। इस तरकीब से तुम टाल देते हो।तुम ध्यान रखना इस बात का कि जब तुम किसी चीज को कठिन कह देते हो, तो तुम्हारे प्रयोजन क्या हैं? क्यों तुम कठिन कहते हो? वस्तुतः कठिन है या तुम बचना चाहते हो? या तुम कहते हो अभी समय मेरा नहीं आया, अभी मुझे करना नहीं है, इसलिए कठिन कहते हो?मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, शांति चाहिए। उनसे मैं कहता हूं, थोड़ा ध्यान करो। वे कहते हैं, समय नहीं है।अशांति के लिए समय है, और शांति
के लिए समय नहीं! और शांति चाहिए, मुफ132त चाहिए। कोई दे दो। प्रसाद में कहीं बटती हो, मिल जाए।इन्हीं लोगों को मैं सिनेमा में बैठे देखूं, इन्हीं लोगों को होटल में बैठे देखूं; ये ही ताश खेलते हैं। इनको ही तुम घर में बैठे देखो, उसी अखबार को तीसरी बार पढ़ रहे हैं! सुबह दो बार पढ़ चुके हैं। अब कुछ काम नहीं है, उसी को फिर पढ़ रहे हैं। इनसे तुम कभी मिलो घर पर तो इनसे पूछो, कि क्या कर रहे हैं? तो कहते हैं क्या करें, समय नहीं कटता।और जब इनसे कहो ध्यान करो, तो ये ही सज्जन, जो समय नहीं कटता, जो ताश खेल-खेल कर समय काट रहे हैं, सिनेमा देख-देख कर समय काटते हैं, हजार तरह की मूर्खताएं कर के समय काटते हैं; अचानक उनके मुंह से एकदम निकलता है, समय नहीं है।और ऐसा नहीं कि वे सोच कर कह रहे हों। यह हो ही कैसे सकता है, कि समय न हो? क्योंकि समय तो सभी के पास बराबर है। चौबीस घंटे से ज्यादा न तो बुद्ध के पास है, न तुम्हारे पास है, न कम है। अगर चौबीस घंटे में ही कोई बुद्ध9त0व को उपलब्ध हो गया तो तुम भी चौबीस घंटे में ही उपलब्ध हो सकते हो। और तुम यह आशा मत रखो कि तुम्हें कोई पचचीसवां अतिरिक्त घंटा दिया जाएगा, तब तुम बुद्ध9त0व को उपलब्ध होओगे।चौबीस ही घंटे हैं। और तुम सोचते हो, कि क्या कर रहे हो तुम? आठ घंटे कम से कम सोते हो। अगर ध्यान में सच में ही उ9त0सुकता है, और जगह से न काट सको, नींद में से एक घंटा काट सकते हो। नहीं, लेकिन नींद में से कैसे काटोगे?छह घंटे दफ132तर में रहते होओगे, पांच घंटे। दो-चार घंटे खाना-पीना, दफ132तर आने-जाने में लग जाते हैं। बाकी समय का क्या कर रहे हो? आठ घंटे सो लेते हो, आठ घंटे समझो दफ132तर में लगा देते हो, चार घंटे खाना-पीना स्नान में लग जाते हैं; बाकी चार घंटे बचते हैं। चार घंटे भी मैं नहीं कहता। कहता हूं, एक घंटा काफी है।एक घंटा भी तुम्हारे पास नहीं है? तो फिर कौन फिल्म देख रहा है? सिनेमा घरों के बाहर जो क्यू लगे हैं, उनमें कौन खड़ा है? तुम को ही खड़ा देखता हूं। ताश कौन खेल रहा है? अखबार कौन पढ़ रहा है? रेडिओ कौन सुन
रहा है? टेलिविजन कौन देख रहा है? होटलों में बैठकर गपशप कौन कर रहा है? क्लब किसने बनाए हैं? कौन लायंस क्लब में बैठा है? कौन रोटरी क्लब में जाकर फिजूल की बातें कर रहा है? पूना क्लब में तुम्हीं बैठे मिलते हो। यह सब किसके लिए चल रहा है रागरंग?और जब भी तुमसे मैं पूछता हूं, तो तुम कहते हो समय नहीं है। तुम्हें होश भी नहीं है, तुम क्या कर रहे हो। तुम टाल रहे हो। तुम बात यह कह रहे हो कि समय है ही नहीं; इसलिए करने का कोई सवाल न रहा। जिम्मेवारी समाप्त हो गई।अशांति पैदा करने के लिए तुम्हारे पास चौबीस घंटे हैं। शांति पैदा करने के लिए तुम्हारे पास एक घंटा नहीं है। परमा9त0मा को लोग कहते हैं बहुत कठिन है। तुमने ही कहानियां गढ़ ली हैं। तुम ही कहते हो कि जन्मों-जन्मों का पाप जब कटेगा, तब परमा9त0मा मिलेगा।किस नासमझ ने तुमसे कहा है? तुम ही अपने शास्त्र बना लेते हो। तुम बड़े कुशल हो! अगर जन्मों-जन्मों का पाप कटने में उतना ही समय लगेगा, जितने में तुमने पाप किया, तब तो परमा9त0मा कभी भी नहीं मिलेगा। जन्मों-जन्मों से तुम पाप कर रहे हो, जन्मों-जन्मों तक काटने में लगेगा; अगर इसको हम मध्यबिंदु समझ लें, तो अतीत एक अनंतता है। क्योंकि कभी कोई जगत का प्रारंभ तो हुआ नहीं। तुम सदा से ही हो और पाप कर रहे हो। और आधा समय तो तुमने पाप में बिता दिया, अब आधा तुम काटने में बिताओगे, परमा9त0मा मिलेगा कैसे? कब मिलेगा?और जब तुम अपने पाप काट रहे हो, तब भी तुम पाप करना बंद कर दोगे क्या? इस बीच भी तो पाप जारी रहेंगे, कर्म तो लगते ही रहेंगे। कुछ तो करोगे! उनका कर्म-बंध होता रहेगा। तब तो छुटकारा कभी नहीं दिखाई पड़ता।नहीं, ये तुमने ही सिद्धांत गढ़ लिए हैं अपने को समझाने के लिए। वास्तविक अवस्था

बिलकुल अन्य है। जैसे अंधेरे में दीया जलता है और हजारों साल का अंधेरा क्षण भर में मिट जाता है, वैसे ही हजारों साल के पाप ध्यान के दीये के जलते ही मिट जाते हैं।क्योंकि तुमने जो पाप किए हैं, वे तुमने मूचर्छा में किए हैं। उनका तुम पर कोई दायि9त0व भी नहीं है। बेहोशी में किए हैं, नशे में किए हैं। शराब पीए थे और कर लिए। कोई अदालत भी तुम पर मुकदमा नहीं चला

सकती; परमा9त0मा तो तुमको कैसे नरक में डालेगा?मैंने सुना है, अकबर निकलता था एक रास्ते से; और एक आदमी ने अपने छप्पर पर खड़े होकर उसे गालियां देनी शुरू कर दीं। आदमी पकड़ लिया गया, जेलखाने में डाल दिया गया। दूसरे दिन अकबर के सामने लाया गया। अकबर ने पूछा, कि क्या हुआ? क्यों तू गालियां बक रहा था? और किसलिए तूने यह उप(व किया?उस आदमी ने कहा, कि क्षमा करें; मैंने गाली बकी ही नहीं। अकबर ने कहा, मैं खुद मौजूद था, किसी गवाह की कोई जरूरत नहीं। तू गाली बक रहा था।उस ने कहा, मैं फिर आप से कहता हूं, गाली आपने सुनी होगी, किसी ने बकी होगी, लेकिन मैंने नहीं बकी, क्योंकि मैं शराब पीए था, मुझे होश ही न था।क्या करोगे इस आदमी को? अकबर ने कहा, अगर होश ही न था तो छोड़ दो। आगे से थोड़ा होश रखने का खयाल रख।गाली देने के लिए जिम्मेवारी ख9त0म हो गई। होश ही न हो. . .छोटे बचचों को अदालत भी दंड नहीं देती क्योंकि उन्हें होश नहीं है। शराबी को अदालत भी छोड़ देती है, क्योंकि क्या करोगे? पागल को कोई अदालत दंड नहीं देती। वह ह9त0या भी कर दे, तो भी उसको क्या दंड दिया जा सकता है? उसे पता ही नहीं, वह क्या कर रहा है।तुमने जन्मों-जन्मों में जो किया है, उसका तुम्हें पता है? या तो तुम बचचे हो, या शराब में हो, या पागल हो। नींद में तुमने किया है। सपना था तुम्हारा अतीत। उसी सपने को हम माया कहते हैं। माया का अर्थ ही यह है, कि जिसमें तुमने जो भी किया है, वह सपने के बराबर है। उसका कोई मूल्य नहीं है।तब तक जागे नहीं हो, तब तक मूल्य है। रात सपना देखते हो; जब तक जागे नहीं, तब तक सपने में मूल्य है। तुमने एक आदमी की ह9त0या कर दी है और तुम घबड़ा गए और भाग रहे हो और बच रहे और छिप रहे हो पहाड़ों में और तब सपना टूट गया! अब तुम क्या करोगे? छिपोगे, डरोगे, कि पुलिस कहीं पकड़ न ले? तुम सिर्फ हंसोगे; तुम कहोगे, सपना टूट गया। सपने में ह9त0या की थी, सपने में ही भाग रहा था।माया का केवल अर्थ इतना है कि

सोए हुए तुमने सारे कृ9त0य किए हैं। सोए हुए ही तुम उनसे बचने की कोशिश कर रहे हो।और सारी साधना का सूत्र एक है कि तुम जाग जाओ। जागते ही, सोए हुए तुमने जो किया है, वह व्यर्थ हो जाता है। वह सपने से ज्यादा नहीं है।लेकिन तुम्हारी तरकीबें हैं। तुम कहते हो कि जब तक अनंत जन्मों के पाप न कटेंगे, तब तक कैसे ज्ञान होगा? ज्ञान कहीं त9त0क्षण हो सकता है?और मैं तुमसे कहता हूं, ज्ञान जब भी होता है, त9त0क्षण होता है। ज्ञान कोई घमिक प्रघिया नहीं है कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे होता है। तुम जब सुबह जागते हो तो धीरे-धीरे जागते हो? एक क्षण पहले नींद थी और एक क्षण बाद होश है। दोनों के बीच में कोई ऐसी जगह होती है, जब तुम कह सको कि आधा होश है, आधा होश नहीं है? क्योंकि अगर आधा होश भी है तो नींद टूट गई। अगर तुम कहो कि जरा सा होश है, बाकी नींद है; तो भी नींद टूट गई। क्योंकि जिसको इतना भी पता है, कि जरा सा होश है, वह जाग गया।ऐसी ही घटना घटती है अंतस के लोक में। तुम जाग जाते हो क्षण में।लेकिन तुम कहते हो—असंभव, कठिन, मुश्किल! तुम कहते हो मैं पापी; मुझसे कैसे होगा? मैंने बड़े बुरे कर्म किए हैं, मैं कैसे परमा9त0मा को पा सकता हूं?सभी ने कर्म किए हैं और सभी ने बुरे कर्म किए हैं। क्योंकि बेहोशी में कोई अचछे कर्म कर ही कैसे सकता है? पाप से परमा9त0मा को पाने में कोई बाधा नहीं है। जब तक तुमने परमा9त0मा को नहीं पाया है, तब तक पाप जारी रहेगा। परमा9त0मा से पाप में बाधा पड़ती है, पाप से परमा9त0मा में बाधा नहीं पड़ती। और अगर पाप से परमा9त0मा में बाधा पड़ जाए तो पाप बड़ा हो गया है, परमा9त0मा छोटा हो गया। पाने-यौंय भी न रहा । दो कौड़ी का हो गया। फेंक दो उसे कचरे-घर में।जब प्रकाश आता है, तो अंधेरे में बाधा पड़ती है। अंधेरे से प्रकाश में बाधा नहीं पड़ती। दीया जला, अंधेरे में बाधा पड़ जाती है। लेकिन क्या तुम अंधेरा ला सकते हो बाहर से टोकरियों में भरकर और दीये पर पटक सकते हो, कि दीया बुझ जाए अंधेरे से? तुम अंधेरा कैसे टोकरियों में लाओगे? तुम दीये

के पास अंधेरे को न ला सकोगे। कोई उपाय नहीं है।तुम्हारे ध्यान के पास कभी पाप नहीं आता। और ध्यान बाधा बनता है पाप में, पाप बाधा नहीं बनता ध्यान में। लेकिन तुम बड़े होशियार हो। तुम अपने को बचाने की कोशिश में लगे हो।इसलिए तुम कहते हो कि बड़ा कठिन है। फिर कठिन है, तो बड़े कठिन मार्ग तुम निअमत करते हो। जहां एक कदम रखकर पहुंचा जा सकता है, वहां तुम हजारों मील की यात्रा करके पहुंचते हो। वह भी पोस्टपोन करने का, स्थगित करने का उपाय है। तुम कहते हो पूजा करेंगे, प्रार्थना करेंगे, यज्ञ करेंगे, घियाकांड करेंगे, तब कहीं पहुंचेंगे।इससे कुछ संबंध नहीं पहुंचने का। यह तुम करते रहो। इससे कुछ लेना-देना नहीं पहुंचने का। यह तुम जन्मों-जन्मों तक करते ही रहे हो। इसलिए कबीर जैसे लोग, जिन्होंने जान लिया, वो कहते हैं, साधो सहज समाधि भली। व्यर्थ ही असहज मत बनो। व्यर्थ ही शीर्षासन करके खड़े मत हो जाओ; इससे कुछ हल नहीं है। व्यर्थ के उपघम मत करो।बड़ी सीधी है बात, सीधा है स9त0य। होना भी चाहिए। अस9त0य तिरछा है, आड़ा टेढ़ा है स9त0य तो सीधा और सरल है। स9त0य तो बिलकुल निकट है, अस9त0य दूर है। स9त0य में तो कोई उलझन नहीं है। सिर्फ तुम्हारा मन भर उलझा हो, तो उलझन दिखाई पड़ती है। मन सुलझ जाए, स9त0य बिलकुल साफ है। सदा से सुलझा हुआ है। कभी उलझा न था।तो कबीर कहते हैं, साधो सहज समाधि भली।' सहज-समाधि का अर्थ है : तुम उठो, बैठो, चलो, जीयो; यही तुम्हारी जीवन-साधना बन जाए। इससे अन्यथा कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम उठो तो होश से, चलो तो होश से, बैठो तो होश से। तुम बाजार में रहो भला, लेकिन स्मरण परमा9त0मा का बना रहे बस! मंदिर जाने से कुछ हल नहीं है। क्योंकि मंदिर भी जाकर क्या होगा अगर स्मरण बाजार का बना रहा? और वैसा ही बना रहता है। कोई फर्क नहीं पड़ता।मैंने एक सूफी कहानी सुनी है, कि एक आदमी बहुत भक्त था एक सूफी फकीर का। लेकिन उसकी प9त0नी बड़ी अधाअमक थी। न तो कभी धर्म-चर्चा सुनती, न संतों के दर्शन को जाती, न मंदिर, पूजा, प्रार्थना, मस्जिद इससे कुछ लेना-देना था। पति बहुत चिंतित था कि किसी तरह

प9त0नी भी धाअमक हो जाए। तो उसने अपने गुरु को कहा, कि मैं तो थक चुका। अब आप ही एक दिन घर आएं; शायद आप ही उसे जगा सकें।गुरु हंसा; लेकिन निमंत्रण दिया था तो वह दूसरे दिन सुबह आया। सुबह-सुबह प9त0नी बुहारी लगा रही थी और पति अपने ध्यान-गृह में बैठकर ध्यान कर रहा था। उस सूफी फकीर ने कहा कि तुम्हारे पति ने मुझे निमंत्रण दिया था, तो मैं आ गया सुबह-सुबह। मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम ध्यान में क्यों उ9त0सुक नहीं हो? वह प9त0नी हंसने लगी। उसने कहा, आप समझकर भी पूछ रहे हैं। मैं आपसे कहती हूं कि मेरे पति को थोड़ा ध्यान में लगाओ।सूफी हंसने लगा। उसने कहा कि तू मुझे बता, तेरे पति अभी कहां हैं? उस प9त0नी ने कहा कि मेरे पति इस समय बाजार में हैं। और एक जूते की दुकान पर जूता खरीद रहे हैं। और चमार से उनका झगड़ा हो गया है और मारपीट की नौबत आ गई है।पति सुन रहा था अपने ध्यान कक्ष में बैठा हुआ कि यह तो बिलकुल सरासर. . .मैं ध्यान कक्ष में बैठा हूं। सुबह-सुबह अभी दुकान खुली भी नहीं, बाजार भी नहीं खुला और यह प9त0नी सरासर झूठ बोल रही है!वह भागा हुआ बाहर आया। उसने कहा, मैं घर में मौजूद हूं। गुरु से कहा, देख लें इसको—यह क्या अवस्था मेरी कर रखी है! यह कह रही है, कि बाजार. . .बाजार अभी खुला नहीं, चमारों की दुकानें अभी बंद हैं। और मैं यहां ध्यान कर रहा हूं और यह कह रही है चमार की दुकान पर. . उस फकीर ने कहा कि तुम आंखें बंद करो और ठीक से देखो क्योंकि मैं भी मानता हूं, तुम्हारी प9त0नी ठीक है।तब तो वह घबड़ाया। उसने आंख बंद की और उसने गौर किया तो उसने पाया कि प9त0नी ठीक कह रही है। जूते फट गए हैं और वह कल रात से सोच रहा है कि बाजार खरीदने जाना है। तो ऐसे बैठा था ध्यान करने, माला फेर रहा था, लेकिन वह माला हाथ में ही फिर रही थी। भीतर कल्पना में वह बाजार पहुंच गया था और चमार की दुकान पर जूते खरीद रहा था। मोल-भाव हो रहा था और झगड़ा बढ़ गया। वह बहुत ज्यादा दाम मांग रहा था और वह कम बता रहा था, और फजीहत हो गई ज्यादा और एक दूसरे के गर्दन को पकड़ लिया। और जब इस प9त0नी ने बताया फकीर को, तब वह गर्दन को पकड़े ही था; मारपीट होने

के करीब थी।तुम अपने मंदिर में बैठ कर भी चमार की दुकान पर हो सकते हो। तुम चमार की दुकान में होकर भी मंदिर में हो सकते हो। इसलिए मंदिर में होने का सवाल नहीं है; सवाल तुम्हारे चित्त के गुण का है, तुम्हारे स्मरण का है। तुम कहां

हो यह सवाल नहीं है; तुम क्या हो, वही सवाल है।तुम दुकान पर बैठो, लेकिन स्मरण परमा9त0मा का रहे। तुम रास्ते पर चलो, लेकिन स्मरण परमा9त0मा का रहे। तुम भोजन करो, लेकिन स्मरण परमा9त0मा का रहे। तुम बिस्तर पर सोओ, लेकिन स्मरण परमा9त0मा का रहे। परमा9त0मा का स्मरण धीरे-धीरे रोएं-रोएं में समा जाए।और अगर परमा9त0मा को मानना कठिन हो, जो कि बहुत लोगों के लिए कठिन है। वह भी तुमने कठिन बना रखा है मानना। क्योंकि मानेंगे तो फिर खोजना पड़ेगा। मानेंगे तो फिर बदलना पड़ेगा। इसलिए अधिक लोग नास्तिक हैं। नास्तिकता का कुल इतना ही अर्थ है, कि हम मानते ही नहीं, इसलिए झंझट ही नहीं खोज की। फिर जो हम कर रहे हैं, ठीक है। उससे अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता।तुम मानते भी नहीं हो। मानने की कोई जरूरत भी नहीं है। नास्तिक हो अगर तुम, तो परमा9त0मा का स्मरण मत करो, अपना स्मरण करो। असली सवाल स्मरण है—किसका, यह भी सवाल नहीं है। राम का, रहीम का, कृशण का, बुद्ध का—यह भी सवाल नहीं। अपना ही करो।अंग्रेज कवि हुआ टेनिसन। और उसने अपने संस्मरण में एक बड़ी अनूठी बात लिखी है। उसने लिखा है कि मैं छोटा बचचा था और मुझे घर में जल्दी सोने भेज दिया जाता। घर के लोग तो देर तक जागते, लेकिन बचचे को जल्दी भेज देते। मुझे नींद न आती और कोई उपाय न था और अंधेरे में मुझे डर भी लगता। अंधेरा कर देते कमरे में और दरवाजा बंद कर देते और कहते, कि सो जाओ। और सोना पड़ता। और नींद न आती और अंधेरे में भूत-प्रेत दिखाई पड़ते और डर भी लगता।तो मैं आंख बंद करके, कि क्या करूं—पिता नास्तिक थे इसलिए कोई प्रार्थना कभी सिखाई नहीं थी। परमा9त0मा का कोई नाम नहीं सिखाया, तो क्या करूं? तो मैं अपना ही नाम दोहराता : 'टेनिसन-टेनिसन-टेनिसन'। उससे थोड़ी हिम्मत बढ़ती, थोड़ी गर्मी आती और 'टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन दोहराते-दोहराते मैं सो जाता।

धीरे-धीरे यह अघयास हो गया। और जब भी चिंता पकड़ती, कोई तनाव होता तो टेनिसन कहता है, बस तीन बार भीतर आंख बंद करके मुझे इतना ही कहना पड़ताः 'टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन; और सब शांत हो जाता। मंत्र हो गया अपना ही नाम।और टेनिसन ने लिखा है, कि मैं इससे बड़े गहरे ध्यान में उतरने लगा। यह तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि इसे लोग ध्यान कहते हैं।अपना ही नाम का स्मरण भी तुम्हें परमा9त0मा तक पहुंचा सकता है। यह सवाल नहीं है, क्योंकि सभी नाम उसके हैं। तुम्हारा नाम भी उसी का है। टेनिसन भी उसी का नाम है। अल्लाह उसी का नाम है, राम उसी का नाम है। कोई दशरथ के बेटे ने ठेका लिया है? तुम भी किसी दशरथ के बेटे हो। तुम्हारा नाम भी उसी का नाम है।तुम अपना ही नाम भी अगर दोहराओ, तो भी परिणाम वही होगा। क्योंकि असली सवाल बोधपूर्वक भीतर स्मरण को जगाने का है। अगर 'टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन' या 'राम, राम, राम' कुछ भी तुम दोहराते हो, उस के दोहराने के क्षण में ही भीतर एक शांत अवस्था बनने लगती है। और उसको दोहराते-दोहराते तुम्हें यह दिखाई पड़ने लगता है कि दोहराने वाला अलग है और जो दोहराया जा रहा है, वह अलग है। तुम धीरे-धीरे साक्षी-भाव को उ9त0पन्न होने लगते हो।स्मरण साक्षी-भाव की सीढ़ियां हैं। जितना स्मरण गहरा होता है, उतने तुम साक्षी-भाव से भर जाते हो। इसे तुम करके देखो। अगर न हो परमा9त0मा पर भरोसा, कोई चिंता नहीं, तुम अपना ही स्मरण करो।बुद्ध ने यही कहा है, कि न कोई परमा9त0मा है, न कोई आकाश में बैठा हुआ नियंता है। तो साधक क्या करें? तो बुद्ध ने कहा है, होश से चले, होश से बैठे, होश से उठे।बुद्ध का एक भिक्षु आनंद पूछने लगा; वह एक यात्रा पर जा रहा था और उसने पूछा कि भगवान, कुछ मुझे पूछना है। स्त्रियों के संबंध में मन में अभी भी काम-वासना उठती है; तो स्त्रियां मिल जाएं तो उनसे कैसा व्यवहार करना?तो बुद्ध ने कहा, 'स्त्रियां अगर मिल जाएं तो बचकर चलना। दूर से निकल जाना।'

आनंद ने कहा, 'और अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि बचकर न निकल सकें?तो बुद्ध ने कहा, ' आंख नीची झुकाकर निकल जाना।आनंद ने कहा, और यह भी हो सकता है कि ऐसी स्थिति आ जाए कि आंख भी झुकाना संभव न हो। समझो, कि कोई स्त्री गिर पड़ी हो और उसे उठाना पड़े। या कोई स्त्री कुएं में गिर पड़ी हो और जाकर उसको सहारा देना पड़े; या कोई स्त्री बीमार हो; ऐसी स्थिति आ जाए कि आंख बचाकर भी चलना मुश्किल हो जाए?तो बुद्ध ने कहा, 'छूना मत।'और आनंद ने कहा, 'अगर ऐसी अवस्था आ जाए कि छूना भी पड़े?तो बुद्ध ने कहा, कि जो मैं इन सारी बातों से कह रहा हूं, उसका सार कहे देता हूं : छूना, देखना, जो करना हो करना—होश रखना।इन सारी बातों में मतलब वही है।

स्त्री से बचकर निकल जाना, तो भी होश रखना पड़ेगा। स्त्री को बिना देखे निकल जाना, तो भी होश रखना पड़ेगा। बेहोशी में तो आंख स्त्री की तरफ अपने आप चली जाती है। बेहोशी में तो पैर स्त्री की तरफ चलने लगते हैं, विपरीत नहीं जाते। बेहोशी में तो भीड़ में स्त्री को धक्का लगाने के लिए शरीर त9त0पर हो जाता है। बच कर निकलना तो दूर, अगर स्त्री बच कर निकलना चाहे तो भी उसको बच कर निकलने देना मुश्किल हो जाता है। बेहोशी में तो स्त्री को छूने का मन होता है।तो बुद्ध ने कहा, फिर मैं तुझे सार की बात कहे देता हूं। ये तो गौण बातें थीं। लेकिन उन सब गौण बातों में वही धागा अनुस्यूत था। जैसे माला के मनकों में धागा अनुस्यूत होता है। मनके दिखाई पड़ते हैं, धागा दिखाई नहीं पड़ता—वह है होश।कबीर उसको ही सुरति कहते हैं। और जिस व्यक्ति का होश सध जाए, फिर उसे कोई असहज घम नहीं करना पड़ता उलटा-सीधा। कबीर कहते हैं, न तो मैं नाक बंद करता, न आंख बंद करता, न उलटी-सीधी सांस लेता, न प्राणायाम करता, न उलटा सिर पर खड़ा होता, न शीर्षासन करता; कुछ भी नहीं करता; सिर्फ होश को सम्हालकर रखता हूं। सिर्फ सुरति को बनाए रखता हूं। बस, सुरित का दीया भीतर जलता रहता है। और जीवन
पवित्र हो जाता है।सुरति का दीया भीतर जलते-जलते एक ऐसी घड़ी आती है, जब निशकंप हो जाता है। उस घड़ी का नाम समाधि।शुरू-शुरू में सुरति का दीया कंपता है। पुरानी वासनाओं के झोंके आएंगे, पुरानी आदतों के झोंके आएंगे, पुराने संस्कार के झोंके आएंगे। बहुत बार दीया झुकेगा, कंपेगा, लौ कंपित होगी, जीवन भीतर चंचल रहेगा, भान कभी रहेगा, कभी छूटेगा, कभी होश सम्हलेगा, कभी नहीं भी सम्हलेगा, कभी गिरोगे, कभी उठोगे, शुरू में स्वाभाविक है।तो सुरति की दो स्थितियां हैं। जब भीतर की चेतना कंपती रहती है, उस स्थिति का नाम ध्यान। और जब भीतर की चेतना अकंप हो जाती है, उस स्थिति का नाम समाधि। और कबीर कहते हैं, सहज ही सध जाती है; तुम व्यर्थ के उप(व क्यों कर रहे हो?और यही मैं तुमसे भी कहता हूं। क्योंकि कबीर को भी सुननेवाले तुम ही थे, तुम ही हो। लेकिन तुम तरकीबें निकाल लेते हो। कबीर से बच जाते हो, बुद्ध से बच जाते हो, कृशण से बच जाते हो, तुम बचे चले जाते हो।बुद्ध ने जो स्त्री से बचने को कहा, वही तुम बुद्धों के साथ व्यवहार कर रहे हो! पहले तो बुद्ध दिखाई पड़े तो बच कर निकल जाना! अगर मजबूरी आ जाए और देखना ही पड़े, पास से निकलना पड़े तो आंख झुकाकर निकल जाना! अगर फिर भी मजबूरी खड़ी हो जाए और आंख भी न झुका पाओ तो छूना मत! अगर छू भी लो, तो होश रखना कि यह आदमी बुद्ध है, अछूत है, बीमारी है! यह तुम्हें मिटा डालेगा।इस भांति तुम चल रहे हो। इससे तुम चूकते गए हो। और जितना तुम चूकते हो, उतना ही तुम सोचते हो कठिन होगा, कठिन होगा, तभी तो हम चूक रहे हैं। तुम चूक रहे हो चालाकी से।स9त0य कठिन नहीं है, तुम्हारी चालाकी बड़ी जटिल है।-18255प्रश्न आपके पास आकर पीड़ा का रूप ऐसा बदल गया है कि पहले कारण पता चलता था, अब तो कारण
ही कभी-कभी पता नहीं चलता है और पीड़ा बहुत घनी होती है। यह क्या है?शुभ लक्षण है।पीड़ा का कारण बाहर नहीं है, तुम्हारे होने का ढंग है। लेकिन साधारण आदमी की तरकीब यह है कि वह सदा बाहर कारण खोजता है। तुम दुखी हो। तुम त9त0क्षण कारण खोजते हो बाहर कि कौन मुझे दुखी कर रहा है? क्या कारण है मेरे दुख का?और बड़ा संसार है चारों तरफ। कोई न कोई कारण तुम खोज लेते हो। वह कारण झूठा है। दुखी तुम हो बिना कारण। क्योंकि तुम्हारे जीवन का ढंग मूचर्छा से भरा है। और मूचर्छा का अर्थ है दुख। मूचर्छा में दुख ही फलता है और कुछ नहीं फलता। मूचर्छा में दुख के ही फूल लगते हैं और कोई फूल नहीं लगते। दुख के कांटे लगते हैं, कहना चाहिए। जहर ही लगता है।लेकिन कारण तुम बाहर खोजते हो। तुम दुखी हो, तो तुम कारण बाहर खोजते हो। तुम घोधित हो, तो तुम कारण बाहर खोजते हो, कि किसी ने अपमान किया होगा जरूर! कोई दुख दे रहा है तभी तो मैं दुखी हूं।जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान सम्हलेगा, वैसे-वैसे तुम्हें दिखाई पड़ेगा कारण तो कोई भी नहीं है, तुम ही हो। तब धीरे-धीरे तुम पाओगे कि किसी के गाली देने से तुम घोधित नहीं होते; तुम घोधित होते हो, क्योंकि घोध तुम्हारे भीतर है। गाली तो सिर्फ निमित्त है।गाली तो ऐसे है, जैसे किसी ने कुएं में बालटी डाली और पानी भरके बालटी में बाहर आ गया। अगर कुएं में पानी न होता तो बालटी पानी ला सकती थी? गाली तो बालटी है। किसी ने तुम्हारे भीतर डाली; अगर घोध न होता तो गाली की बालटी घोध को बाहर ला सकती थी? कुआं अगर खाली होता तो बालटी भटकती, थोड़ा शोरगुल करती, उठती-गिरती खाली वापस लौट

आती।और जब मैं यह कह रहा हूं, तो ऐसा होता रहा है। बुद्ध को भी तुमने गालियां दी हैं, जीसस को भी गालियां दी हैं, तुम्हारी बालटी खाली ही वापस लौट आई है। कोई घोध वहां से वापस नहीं लौटा।गाली ज्यादा से ज्यादा निमित्त हो सकती है, लेकिन कारण नहीं है। कारण और निमित्त का यही फर्क है। कारण तो तुम हो, गाली निमित्त है। और अगर आज कोई गाली न

देता तो तुम कोई और निमित्त खोज लेते।निमित्त तुम खोजते ही; क्योंकि तुम्हारे भीतर जो घोध उबल रहा था, उसे बाहर निकलने के लिए कोई सहारा चाहिए था। अगर बिना सहारे निकलेगा तो तुम पागल मालूम पड़ोगे। तुम कोई न कोई कारण खोज लेते। तुम घर आते और प9त0नी के व्यवहार में तुम्हें कोई कमी दिखाई पड़ जाती, या रोटी जली हुई मालूम पड़ती। रोज भी ऐसी ही जली थी, लेकिन कल जली दिखायी न पड़ी थी। आज भीतर घोध उबल रहा है, तुम कोई बहाना खोज रहे हो। तुम कहीं न कहीं टूट पड़ते। तुम कारण खोजकर बहते। मवाद भीतर है। तुम जरा सा धक्का बाहर का चाहते हो। कोई दे दे तो ठीक; कोई न दे, तो तुम कल्पित कर लेते कि किसी ने धक्का दिया। क्योंकि मवाद बहना चाहेगी।दुख तुम्हारे भीतर है, पीड़ा तुम्हारे भीतर है। तुम जैसे हो, पीड़ा की एक गांठ हो। तुम जैसे हो, एक घाव हो, एक नासूर हो, जो सदा दुख रहा है। किसी तरह सम्हाल कर उसको चलते हो। किसी का धक्का लग जाता है।कभी तुमने खयाल किया? पैर में चोट लग गई है, तो फिर उस दिन, दिन भर पैर में ही चोट लगती है। तुम भी चकित होते हो कि मामला क्या है? आज दरवाजा पैर में ही क्यों लगता है? कुर्सी की टांग पैर में ही क्यों लगती है? बचचा भी आकर उसी पैर पर क्यों खड़ा हो गया? यह सारी दुनिया पैर के पीछे क्यों पड़ी है?कोई पीछे नहीं पड़ा है। रोज भी यही होता था, लेकिन रोज तुम्हारे पैर में दर्द न था, आज दर्द है तो चोट लगती है। बचचा रोज उसी पैर पर खड़ा हो जाता था आकर, पता ही न चलता था। आज पता चलता है। जहां घाव होता है, वहां पीड़ा पता चलती है।पीड़ा तुम हो। जैसे-जैसे ध्यान बनेगा, सधेगा, वैसे-वैसे कारण गिरते जाएंगे। तब बड़ी घबड़ाहट होगी। घबड़ाहट यह होगी कि मैं अपने ही कारण दुख में हूं। जब कोई कारण न दिखेगा, तभी तुम्हें मूल कारण दिखाई पड़ेगा, कि मैं ही कारण हूं, मैं ही अपना नरक हूं।और यह बहुत बड़ा अनुभव है। इससे गुजरना ही पड़ता है। बहुत पीड़ादायी है। बड़ा संतापपूर्ण है। छेद देता है बुरी तरह प्राणों को। तड़फड़ाते हो। पीछे लौट जाने का मन होगा, कि वही दुनिया अचछी

थी, दूसरे पर दोष डालकर जी तो लेते थे! अब तो कोई दूसरा दोषी भी न रहा। हम ही दोषी हो गए।लेकिन अगर हिम्मत से इसको पार कर गए, तो तुम पाओगे कि जो व्यक्ति हिम्मत से इसे पार कर जाता है, पहले दूसरों पर से कारण हट जाते हैं। सब कारण स्वयं में आ जाते हैं। और जब सब कारण स्वयं में आ जाते हैं तो जीवन-घांति अनिवार्य हो जाती है।अब तक तुम सोचते थे दूसरों को बदल दें। प9त0नी सोचती थी, पति बदल जाए तो सब शांति होगी। पति सोचता था, प9त0नी बदल जाए, तब सब शांति होगी। बेटा सोचता था बाप बदल जाए, बाप सोचता था बेटा बदल जाए। अभी तक का तर्क यह था कि सारी दुनिया बदल जाए तो हम शांत होंगे। और यह होनेवाला नहीं; इसलिए तुम शांत होने के लिए कोई उपाय ही न पाते थे।अब सारा तर्क यह होगा, कि अब मुझ को ही को बदलना है। किसी को बदलने का सवाल नहीं। संसार को नहीं बदलना है, स्वयं को बदलना है।जिसे ऐसा दिखाई पड़ गया, वह मंदिर के बिलकुल द्वार पर खड़ा हो गया। भाग सकता है मंदिर के द्वार से। क्योंकि पुरानी दुनिया ज्यादा राहतपूर्ण मालूम होती थी। दूसरे को दोष दे लेते थे। चित्त को राहत मिल जाती थी।अब यह बड़ी पीड़ा मालूम होगी। पीड़ा सघन होगी। हम ही दुख हैं, इसे झेलना मुश्किल होगा। लेकिन अगर तुम झेल गए तो इसी झेलने से घांति पैदा होती है। जब तुम देख लेते हो, मैं ही कारण हूं। तो अब तुम्हारे हाथ में है। दुखी होना हो, तो जैसे हो वैसे ही बने रहो। दुखी न होना हो, रूपांतरित हो जाओ। और दुनिया में कोई किसी दूसरे को नहीं बदल सकता, सिर्फ स्वयं को बदल सकता है। एक ही बदलाहट संभव है, वह तुम्हारी अपनी। किसी दूसरे को बदलने का कोई भी उपाय नहीं है। जितने जल्दी तुम समझ लो उतना अचछा, कि कोई किसी को कभी नहीं बदल पाया है। ज्यादा से ज्यादा कोई अपने को बदल लेता है। लेकिन अपने को बदलते ही सारी दुनिया बदल जाती है। तब एक नया जन्म होता है तुम्हारा। और जैसे कल तक तुम पीड़ा के घाव थे, अब तुम भीतर एक आनंद के नृ9त0य हो जाते हो। और अब एक दूसरी यात्रा शुरू होती है कि हर कोई कारण बन जाता है तुम्हारे आनंद के बहने के लिए।

एक बचचा मुस्कुराता हुआ निकल जाता है और तुम अपूर्व पुलक से भर जाते हो। एक फूल खिलता है और तुम्हारे भीतर कुछ नाचने लगता है। आकाश में तारे उगते हैं और तुम मेंन हो जाते हो। कोई वीणा बजाता है और तुम्हारे भीतर के तार छिड़ जाते हैं। झरने में कलकल का नाद होता है और तुम्हारा हृदय आकंठ भर जाता है किसी अपूर्व आनंद से। अब सब तरफ आनंद के कारण मिलने लगते हैं। जैसे कल सब तरफ दुख के कारण मिलते थे, अब सब तरफ आनंद के कारण मिलने लगते हैं।तुम ही हो दुख, तुम ही हो नरक, तुम ही हो स्वर्ग, तुम ही हो महासुख। महावीर ने कहा है तुम ही हो शत्रु अपने और तुम ही हो मित्र। न तो तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु है, और न तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र है। शत्रु हो, अगर तुम दुख को दूसरों पर खोज रहे हो। अगर मित्र बनना है अपने, तो आनंद को भीतर पैदा कर लो और तुम पाओगे, सारा जगत तुम्हारे उ9त0सव में सम्मिलित हो जाता है। सारा जगत उ9त0सव मना ही रहा है। वह तुम्हारे लिए रुका भी नहीं है। पक्षी गीत गाए चले ही जा रहे हैं। वृक्षों में हवाएं नाच रही हैं। आकाश में बादल तिर रहे हैं। झीलें परम शांति से भरी हैं। हिमालय के शिखर परम आनंद में उठे हैं।सब तरफ आनंद है। एक तुम अपने भीतर दुख की गांठ लिए चल रहे हो। अब वह गांठ पक गई है बुरी तरह। जरा भी छू जाती है, तो बस नरक फूट पड़ता है। इस गांठ को हटा दो। यह हट सकती है, इसके हटाने का पहला उपाय तो यह है कि तुम दूसरों फर दोष देना बंद कर दो। सब बात के लिए स्वयं दोषी हो जाओ। यही है रिस्पांसिबिलिटी; यही है उत्तरदायि9त0व कि तुम अपने लिए स्वयं जिम्मेदार हो। कोई दूसरा जिम्मेदार नहीं है।इससे ही पहली आ9त0मभावना पैदा होती है। फिर नरक से गुजरना पड़ेगा। थोड़े दिन बड़ी पीड़ा होगी, जैसी कभी न थी। जैसे सुबह होने के पहले गहन अंधकार हो जाता है, ऐसे ही स्वर्ग के उठने के पहले नरक बहुत सघन हो जाता है।-18255प्रश्न ः तृशणा, पीछा न छोड़े, मन कोलाहल से भरा हो और बेईमानी चोरी का साम्राज्य हो; करें तो मुश्किल, न करें तो मुश्किल, इस स्थिति में आचरण तो कोई भी अंदर से न आएगा। कृपया बताएं, कि ऊंट किस करवट बैठे—विधायक या निषेधा9त0मक?ऊंट का बैठना जरूरी नहीं है।

इस तरह के सारे प्रश्न यह मानकर चलते हैं कि दो ही विकल्प हैं। 'ऊंट किस करवट बैठे'— यह हम मान ही लेते हैं कि ऊंट को बैठना ही पड़ेगा। करवट लेनी ही पड़ेगी, इसलिए चुनाव जरूरी है।तर्कशास्त्र में एक तर्क की व्यवस्था है, जिसको डायलेमा कहते हैं; मेढ़ा-न्याय। उसमें इस तरह के प्रश्न होते हैं कि तुम भैंस के दो सींगों के बीच फंसे हो तो तुम कौन सा सींग चुनोगे? कुआं या खाई? मान लिया जाता है कि दो ही विकल्प हैं। और तब अड़चन खड़ी होती है, क्योंकि कोई भी सींग चुनो, दुख पाओगे। कोई भी करवट ऊंट बैठे, दुख पाएगा।चुनाव किया कि दुख पाया।अगर तुम्हारे भीतर कामवासना उठ रही है—उदाहरण के लिए— अब दो ही विकल्प हैं। दो ही सींग हैं भैंस के। या तो विवाह कर लो और या ब्रह्मचारी हो जाओ। विवाह करो, तो भी दुख पाओगे। जाकर विवाहित लोगों को देख लो। सभी विवाहित लोग सोचते हैं कि ब्रह्मचारी ही रह गए होते तो अचछा था। ऐसा विवाहित आदमी तुम्हें न मिलेगा खोजने से, जिसके मन में कई बार यह खयाल न उठा हो कि अविवाहित ही रह गए होते तो अचछा था।दुख पाओगे। करवट चुन ली।फिर ब्रह्मचारी हैं। तुम यह मत समझना कि वे सुखी हैं। वे दुखी हैं, क्योंकि कामवासना उन्हें सता रही हैं। विवाह नहीं किया, इससे क्या होता है? सपने में सताती है, मन में घूमती है, चारों तरफ से ग्रसती है। विवाहित व्यक्ति से भी ज्यादा कामातुर हो जाता है ब्रह्मचारी का मन। क्योंकि विवाहित को तो थोड़ा सा निकास है। ब्रह्मचारी को तो कोई निकास न रहा।और कामवासना कोई ऊपर से थोपी गई चीज नहीं है कि तुमने फिल्मों में देखकर सीख ली है, जैसे दूसरे तुम्हारे मूढ़ साधु-संन्यासी समझते रहते हैं कि लोग कामातुर हुए जा रहे हैं? तो जानवर भी फिल्म देख रहे हैं? वे काहे को कामातुर हुए जा रहे हैं? कि लोग कामुक हो गए हैं, क्योंकि गलत साहि9त0य पढ़ रहे हैं। वृक्ष भी कामातुर हैं; नहीं तो 132न लगेंगे, 132न लगेंगे। पक्षी भी कामातुर हैं। वह जो कोयल बोल रही है, वह काम का गीत है। जो मोर नाच रहा है, वह काम का नृ9त0य है। उन्होंने कौन सी गंदी किताबें पढ़ी हैं?

कौन सा अश्लील साहि9त0य पढ़ा है?कामवासना नैसअगक है। इसलिए तुम उसे, सिर्फ निर्णय कर लेने से कि हम विवाह न करेंगे, बच नहीं सकते। इसलिए ब्रह्मचारी और भी ग्रसता है, और भी बुरी तरह फंसता है । और तुम ऐसा ब्रह्मचारी न पाओगे, जिसके मन में यह खयाल न आता हो कि विवाह ही कर लिया होता तो अचछा था।यह बड़ी मुश्किल

की बात है। ऊंट किसी करवट बैठे, फंसता है। और अगर तुम कहते हो कि दो ही विकल्प हैं तो मैं कहता हूं, विवाह करके ही फंसना।अगर दो ही विकल्प हैं तो मैं कहता हूं, विवाह करके ही फंसना।अगर दो ही विकल्प हैं! यद्यपि वह मेरी मान्यता नहीं। तीसरा विकल्प मैं तुमसे कहूंगा। लेकिन अगर ऐसा हो कि दो ही विकल्प सूझते हों, तो कर के पछताना बेहतर है, बजाय न करके पछताने के। क्यों? क्योंकि करके आदमी कुछ सीखता है। न कर के कुछ भी नहीं सीखता। तो विवाहित आदमी किसी न किसी दिन ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है ऊब कर, थककर, उप(व से परेशान होकर, देखकर, जीवन की स्थिति को समझकर प्रौढ़ हो सकता है।लेकिन जो ब्रह्मचारी रह गया है पहले से, वह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न हो पाएगा। उसके मन में दमित वासना अपना जाल फैलाती रहेगी। इसलिए मैं देखता हूं कि अगर आदमी ठीक से गृहस्थ रहा हो, तो पचास साल के करीब आते-आते अपने आप ही एक सहज ब्रह्मचर्य पैदा होना शुरू हो जाता है।इसलिए हिंदुओं ने—जो कि संसार में बहुत ही ज्यादा निसर्ग के अनुकूल धर्म है। उससे ज्यादा निसर्ग के अनुकूल कोई धर्म नहीं है। महावीर और बुद्ध का धर्म निसर्ग के अनुकूल नहीं मालूम पड़ता। लेकिन हिंदू बहुत निसर्ग के अनुकूल हैं। शायद इसका कारण है कि हिंदू इतनी पुरानी जाति है, और इसने इतने अनुभव लिए हैं हजारों प्रकार के, वह उन सब का निचोड़ है।तो हिंदू कहते हैं पचचीस वर्ष तक, शुरू के प्रथम चरण में जीवन के विद्यार्जन करना, तब ब्रह्मचर्य को साधना। लेकिन वह ब्रह्मचर्य

अस्थायी है। वह कोई जीवन का व्रत नहीं है। वह तो सिर्फ विद्या-अर्जन के लिए साधा जा रहा है; ताकि सारी ऊर्जा विद्या-अर्जन में लग जाए। वह कोई व्रत नहीं है, आ9त0यंतिक नहीं है। बल्कि बड़े मजे की बात है; हिंदू कहते हैं अगर वह ब्रह्मचर्य ठीक साधा गया, तो उसके बाद आने वाला जो चरण है गृहस्थ का, वह बहुत सुखपूर्ण हो जाएगा।आज वैज्ञानिक भी इस बात से राजी हैं कि जिन लोगों ने भी अपनी वीर्य ऊर्जा को खो दिया है विवाह के पूर्व, उनका विवाह कभी भी सुखी न हो पाएगा, क्योंकि सुख की संभावना तभी थी, जब वे ऊर्जा से भरे हों, परिपूर्ण भरे हों, बाढ़ हो, तो काम का ठीक-ठीक अनुभव हो जाता। और जिस चीज का ठीक अनुभव हो जाता है, उससे मुक्ति हो सकती है। मुक्ति बिना अनुभव के होती ही नहीं।तो पचचीस वर्ष तक, पहले जीवन के चरण में ब्रह्मचर्य और फिर पचचीस वर्ष ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ। ऊर्जा इक16ी है, पचचीस वर्ष बांधकर रखा है। संयमित रहा है व्यक्ति। एक तेज है, एक शक्ति है। अब वह गृहस्थ में गुजरेगा। इस ऊर्जा से गुजरेगा कि अनुभव प्रगाढ़ हो जाए। हिंदू कहते हैं, पचचीस वर्ष तक गृहस्थ।पचास वर्ष में फिर वानप्रस्थ हो जाए। अब अनुभव हो गया। जान लिया, जो जानना था और पहचान लिया, जो पहचानना था। अब सपने नहीं सता सकते। क्योंकि सपने तभी तक सताते हैं, जब तक अनुभव न हो। देख लिया जीवन को। उसका रस पहचान लिया। और देख लिया कि रस में भी कुछ है नहीं—खाली है, ऊपर-ऊपर है, भीतर रिक्त है। इस अनुभूति से आदमी वानप्रस्थ हो जाए। वानप्रस्थ का अर्थ है, अभी जंगल न जाए, जंगल की तरफ मुंह हो जाए। अभी पहुंच ना जाए जंगल एकदम से, क्योंकि हिंदू बड़े नैसअगक ढंग से चलना चाहते हैं। वे कहते हैं, अभी मुंह जंगल की तरफ कर ले। बैठे दुकान पर, लेकिन मुंह जंगल की तरफ। काम करे, लेकिन मुंह जंगल की तरफ।उसका कारण है। पचचीस वर्ष के बाद उसके अपने बचचे अब घर लौटने के करीब होते होंगे। पचचीस वर्ष वह खुद ब्रह्मचारी था, फिर पचचीस वर्ष जब वह गृहस्थ रहा, उसके बचचे पैदा हुए, बचचे गुरुकुल गए। अब वे गुरुकुल से घर आते होंगे। अभी बाप अगर घर छोड़ कर भाग जाए तो यह बड़ा अनैसअगक घम

हो जाएगा। बचचों को कौन सम्हालेगा?बचचे घर लौटते होंगे। अब वे तैयार हो गए हैं, उनके विवाह करने हैं, उनको घर-गृहस्थी जमानी है, उनको जीवन में उतार देना है। तो इसलिए वानप्रस्थ हो जाए। मन तो हटा ले, शरीर भर रहने दे। मन तो पूजा में लग जाए, स्मरण में लग जाए, शरीर घर में बना रहे। मन जंगल चला जाए।यह वानप्रस्थ शब्द बड़ा प्यारा है। मन से तो प्रस्थान हो ही गया, जंगल जा चुके। मन तो जंगल में रमने लगा। लेकिन अभी घर रुके हैं, कर्तव्य पूरा कर देना है। बचचे घर लौट आए, उनका विवाह हो गया।पचहत्तर वर्ष की उम्र में आदमी संन्यासी हो जाए। क्योंकि अब तो बचचों के वानप्रस्थ होने का वक्त आ गया। और हिंदुओं की व्यवस्था यह थी कि जब बचचे घर आ जाएं तो फिर पिता के बचचे पैदा नहीं होने चाहिए। वह अशोभन है।यह मुझे भी लगता है कि यह बात अशोभन है। जब बचचे को बचचे पैदा

होने लगें, फिर भी तुम्हें बचचे पैदा होते जाएं—बचचा तुम्हें कैसे आदर देगा? वह पाएगा तुम भी उसी कामवासना में पड़े हो, उसी नरक में पड़े हो, जिसमें वह पड़ा है। तुम भी वैसे ही गैर-अनुभवी हो, जैसा वह है। तुम भी बचकाने हो। तुम्हारे भी जीवन की प्रौढ़ता नहीं आई। यह सोचकर भी बचचे की श्रद्धा नशट होती है, कि उसके मां और पिता अभी भी संभोग करते हैं।जब बचचा घर आए गुरुकुल से तब उसे पता होना चाहिए कि मां-बाप पार हो गए। गुजरे उस अवस्था से, लेकिन ऊपर उठ गए। अब वह बचचों का खेल उनके लिए नहीं रहा। और जब बचचों के बचचे होने लगे और उनका गुरुकुल से आना शुरू हो जाए, तो वक्त आ गया कि अब तुम विदा हो जाओ। अब तुम्हारे यहां होने की कोई जरूरत नहीं। अब तुम्हारा लड़का पचास साल का होता होगा। अब वह सम्हाल लेगा सब पीछे आने वालों को, अब तुम हटो। और यह अनुभव है सभी गृहस्थों का कि पचहत्तर वर्ष के बाद बूढ़े बोझिल हो जाते हैं घर पर। उनकी अब किसी से उ9त0सुकता नहीं रह जाती और न उनमें किसी की उ9त0सुकता रह जाती है। उनकी दुनिया जा चुकी। अब भी अगर वे अटके रहे तो वे उप(व पैदा करते हैं, झगड़ा-झंझट खड़ी करते हैं। चिढ़चिढ़े हो जाते हैं। उन्हें जंगल चले जाना चाहिए। उनके संन्यास का

समय आ गया। और ये जो जंगल चले जाएंगे ये ही गुरु हो जाएंगे छोटे बचचों के, जो अभी आने हैं पढ़ने के लिए।हमने एक वर्तुल पूरा कर लिया। पचहत्तर वर्ष की उम्र के लोग—जिन्होंने जीवन को पूरा जान लिया, निचोड़ लिया और पाया कि व्यर्थ है और निचोड़ कर फेंक दिया। जो संसार में गए और संसार के बाहर आ गए—अछूते, ये ही यौंय हैं गुरु होने के।ये गुरुकुल बना लेंगे। जंगल में रहेंगे, छोटे बचचे आते होंगे पढ़ने उनको ये जीवन का सार दे देंगे। यह हमने जीवन के दो छोरों को मिला दिया—बूढ़ों को, जन्म और मृ9त0यु को; वर्तुल हमने पूरा कर दिया।एक नैसअगक व्यवस्था है। और नैसअगक व्यवस्था हमेशा अनुभव से जाती है। अप्राकृतिक व्यवस्था अनुभव को छोड़ने का आग्रह करती है। नैसअगक व्यवस्था अनुभव को भोगने का आग्रह करती है।उपनिषदों का बड़ा अदभुत वचन है—तेन 9त0यक्तेन भुंजीथाः। यह बड़ा घांतिकारी सूत्र है। यह कहता है, वे ही 9त0याग सकते हैं, जिन्होंने भोगा। जो भोग के पहले भाग गए, वे भोग से सदा पीड़ित रहेंगे। जिन्होंने भोग लिया, उनकी स्थिति शांत हो गई, उफशम को उफलब्ध हो गए। अब वे जा सकते हैं। अब कोई उन्हें रोकने वाला न रहा।तो मैं तुमसे कहूंगा,'अगर करें तो मुश्किल, न करें तो मुश्किल'— ऐसी दुविधा हो, तो करना। 'ना-करना' मत चुनना। उसको जिसने चुना, वह भटकेगा।अगर तुम्हारे मन में ऐसा सवाल हो कि कामवासना में उतरें कि न उतरें, तो उतरना क्योंकि सवाल उठ रहा है। इसका मतलब ही यह है कि तुम्हारे जीवन में अनुभव पका नहीं। अगर तुम्हारे सामने सवाल उठे कि झूठ बोलें कि सच; सवाल उठ रहा है, उसका मतलब ही यह है कि झूठ का रस कायम है—बोलना! क्योंकि अगर बोलोगे न, तो रस सदा के लिए कायम रह जाएगा। बोलो! झूठ की पीड़ा झेलो, झूठ में भटको, गिरो, हाथ-पैर तोड़ो, ताकि अनुभव हो; वापस आ सको।भूल करने से कभी मत डरना। क्योंकि जो भूल करने से डरता है, उसकी यात्रा ही बंद हो जाती है। हां, इतना ही स्मरण रखना, एक ही भूल बार-बार मत करना। नई-नई भूल करना, मगर एक

ही भूल बार-बार मत करना। एक भूल को पूरी तरह कर लेना, ताकि दोबारा करने का सवाल भी न रह जाए।मेरी अपनी दृशिट यह है कि ब्रह्मचर्य एक संभोग में भी उ9त0पन्न हो सकता है, अगर संभोग परिपूर्ण है। क्योंकि फिर तो पुनरुक्ति ही है उसी-उसी की। लेकिन वह परिपूर्ण नहीं हो पाता, क्योंकि तुम पूरे मन से अपने को संभोग में नहीं डाल पाते।संस्कृति, सघयता, नीति, शिक्षा, धर्म सब तुम्हें रोके हुए हैं। उन्होंने सब जहरीला कर दिया है।तो तुम संभोग में भी उतरते हो डरते-डरते, कंपते-कंपते, आधे-आधे। इसलिए अनुभव कभी पूरा नहीं हो पाता। और इसीलिए मरते दम तक संभोग पीछा करता है, कामवासना पकड़े रहती है।मरता है आदमी, राम का स्मरण नहीं उठता; वहां भी काम का ही स्मरण चलता रहता है। मरते आदमी की भी खोपड़ी तुम खोलो, तो वहां तुम्हें स्त्री मिलेगी, परमा9त0मा नहीं। अधूरा रह गया सब, अटका रह गया।मेरी दृशिट में स्त्रियां पुरुषों से सरलता से कामवासना से मुक्त हो जाती हैं। और उसका कारण है, क्योंकि स्त्रियां उतनी सघय नहीं हैं, जितना पुरुष। स्त्रियां ज्यादा प्राकृतिक हैं, पुरुष ज्यादा सामाजिक है। स्त्रियां अभी भी प्रकृति का हिस्सा हैं।इसलिए स्त्रियों को रोना होता है, तो रो लेती हैं, पुरुष नहीं रोता। हंसना होता है, तो हंस लेती है।

पुरुष हर चीज को रोकता है। रोना कैसे संभव है? मर्द होकर और रो रहे हो? अब परमा9त0मा ने मर्दों की आंखों में भी उतनी ही ग्रंथियां बनाई हैं आंसुओं की, जितनी स्त्रियों की आंखों में। तो परमा9त0मा ने बड़ी भूल की! मर्द की आंख में आंसू की ग्रंथी बनाई ही क्यों, अगर मर्द को रोना ही नहीं है? लेकिन तुम रोने को भी रोक रहे हो, क्योंकि मर्द कैसे रो सकता है?स्त्री प्राकृतिक है। थोड़ी करीब है प्रकृति के। और ज्यादा बौद्धिक नहीं है। इसलिए बहुत सिद्धांत और शास्त्र उसको परेशान नहीं करते। वह जी लेती है। और स्त्रियां जल्दी मुक्त हो जाती हैं।यह मेरे अनुभव में आया कि मेरे पास सैकड़ों स्त्रियां आती हैं, जो कहती हैं हम कामवासना से थक गए हैं, लेकिन
पति हमें घसीट रहा है। लेकिन ऐसे पुरुष कभी मुश्किल से आते हैं, जो कहते हैं, हम कामवासना से थक गए हैं और प9त0नी हमें घसीट रही है। अगर निन्यानबे स्त्रियां आती हैं ऐसा कहने, तो एक पुरुष आता हैः यह अनुपात है।इसके पीछे कुछ कारण होगा। पुरुष ज्यादा सघय हो गया है, बौद्धिक हो गया है, शिक्षित हो गया है, सामाजिक हो गया है, प्राकृतिक नहीं रह गया है।तो मैं तुमसे कहता हूं,—'करें तो मुश्किल, न करें तो मुश्किल'— अगर ऐसा सवाल हो, और तुम्हें दो ही विकल्प दिखाई पड़ें, तो करना और मुश्किल भोगना। न-करने वाली मुश्किल से करने वाली मुश्किल बेहतर है। ऊंट को उसी करवट बिठाना। क्योंकि जिसने किया ही नहीं, वह हमेशा अटका रह जाता है। और हमेशा मन में लगा रहता है अगर कर लेते—पता नहीं कर लेते तो कितना सुख मिलता!मुझे संन्यासी आकर कहते हैं; एक जैन मुनि ने मुझसे कहा, कि पचास साल हो गए हैं मुनि हुए, बीस साल के थे, तब उन्होंने दीक्षा ली। अब तो सत्तर साल के ऊपर उम्र हो गई। उन्होंने मुझे कहा, लेकिन अभी मेरे मन में यह सवाल बना रहता है कि कहीं मैंने भूल तो नहीं की! कहीं ऐसा तो नहीं है, सांसारिक लोग मजा ले रहे हैं और मैं नाहक ही परेशान हुआ!और यह स्वाभाविक है। क्योंकि आनंद तो कुछ मिला नहीं है। सिर्फ परेशानी मिली। तुम संन्यासी की परेशानी समझ ही नहीं सकते।तुमने कभी उपवास किया है? एक तीन दिन उपवास करके देखो! तो भोजन ही भोजन की याद आएगी। चाहे मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ, रेस्त्रां ही दिखाई पड़ेगा। चाहे गीता खोलो, चाहे कुरान, भोजन ही तैरते हुए दिखाई पड़ेंगे। पूअणमा की रात आकाश में देखो, लगेगा सफेद रोटी तैर रही है। जहां देखोगे, वहां भोजन दिखाई पड़ेगा।वही दशा तुम्हारे संन्यासियों की हो जाती है। जहां देखते हैं वहीं कामवासना, वहीं कामवासना दिखाई पड़ती है। समझाते हैं चौबीस घंटे उसी के विपरीत। वह भी इसीलिए समझाते हैं. . . तुम यह मत समझना कि तुम्हें समझाते हैं, जोर-जोर से बोलकर अपने को ही समझाते हैं कि बड़ा पाप है। इसमें पड़ना ही मत। दूसरों के बहाने अपने को ही समझाते हैं। लेकिन मुक्त नहीं हो पाते।
मुक्ति का एक ही मार्ग है; वह है ः अनुभव, ज्ञान।तो अगर तुम्हें चुनना ही पड़े तो करके मुश्किल भोगना। मुश्किल तुम भोगोगे। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि करने से तुम्हें मुश्किल नहीं होगी। करने से भी होगी, न-करने से भी होगी। लेकिन करने वाली मुश्किल से कुछ लाभ है—ज्ञान उपलब्ध होता है। न-करने वाली मुश्किल से कुछ उपलब्ध नहीं होता । वह मुश्किल नपुंसक है, बांझ है, उससे कुछ पैदा नहीं होता।लेकिन अगर तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाए, तो मैं तुमसे कहता हूं दो में चुनने की कुछ जरूरत ही नहीं है। तुम साक्षीभाव चुनना। वह तीसरा विकल्प है।कामवासना उठे, तुम देखते रहना। कामवासना उठेगी, साथ ही दो विचार भी उठेंगे-भोग लें, न भोगें; तुम दोनों को देखते रहना। तुम चुनना ही मत। ऊंट को बैठने ही मत देना, खड़ा ही रखना।उसी को होश कहा है ज्ञानियों ने, साक्षीभाव कहा है। ऊंट खड़ा ही रहे। ऊंट की बड़ी इचछा होगी। ऊंट कहेगा, ऐसे नहीं तो ऐसे बैठ जाएं। बैठना सुगम मालूम पड़ता है। लेकिन तुम ऊंट से कहना, कि हमने खड़ा होना ही तय किया है। हम मध्य में ही खड़े रहेंगे। हम चुनेंगे ही नहीं।इसको कृशणमूअत चवाइसलेसनेस कहते हैं—निअवकल्पना। इसी निअवकल्पना को साधते-साधते, जिसको पतंजलि ने कहा है, निअवकल्प समाधि, वह उपलब्ध होती है।चोरी करना कि नहीं करना—दोनों को तुम देखते रहना। न इसको चुनना, न उसको चुनना। विवाह करना कि ब्रह्मचारी रहना—न इसको चुनना, न उसको चुनना। तुम दोनों को देखते रहना। तुम कहना, मैं तो (शटा मात्र हूं, मैं सिर्फ132 देखूंगा। मैं कर्ता नहीं बनूंगा, मैं चुनूंगा नहीं। मन में उठने देना लहरें। सब तरह की उठेंगी, तुम देखते रहना। अगर तुमने हिम्मत रखी देखते रहने की और ऊंट को खड़ा रखा, तो धीरे-धीरे पाओगे, सागर शांत हो जाता है। दोनों ही लहरें खो जाती हैं। कोई भी विकल्प चुनना नहीं पड़ता।और उस निअवकल्प दशा में ही

जीवन की परम अनुभूति, जीवन का परम आकाश उपलब्ध होता है। उस निअवकल्प दशा में ही अमृत के बादल बरसते हैं। उस निअवकल्प को ही चुनो। अगर चुनना ही है तो 'न-चुनने' को चुनो।

अगर यह तुम्हारी समझ के बाहर हो, तो करने को चुनना।लेकिन निअवकल्प को अगर चुन सको—निअवकल्प को चुनने का मतलब है कुछ भी न चुनना; तब तुम जीवन से ऐसे गुजर जाओगे जैसा कबीर ने कहा है,—'ज्यों कि 9त0यों धर दीन्हीं चदरिया।खूब जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की 9त0यों धर दीन्हीं।'यह जतन. . . ऊंट खड़ा ही रहा। बैठा ही नहीं। होश रखा, चादर खराब न हो जाए। ऐसी, जैसी पाई थी, वैसी ही परमा9त0मा को लौटा दी।अगर तुम दो विकल्पों के बीच निअवकल्प रह सको, तो तुम्हारे जीवन में परम सूत्र का आविर्भाव हो गया। वही है कुंजी उसके द्वार की।आज इतना ही।

सत्रहवां प्रवचन

उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै

अवधू मेरा मन मतिवारा।उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।। गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, व भाठी करि भारा। सुखमन नारी सहज समानी, पीवै पीवन हारा।। दोउ पुड़ जोड़ि चिंगाई भाठी, चुया महारस भारी। काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी।। सुंनि मंडल में मंदला बाजै, तहि मेरा मन नाचै। गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।।

पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी। कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहिं जोति समानी।।

उपनिषदों में एक वचन है : 'उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत।' उठो, जागो और जो मिला ही हुआ है, उसे पा लो।—जो मिला ही हुआ है। जिसे तुम खोजते हो, उसे अगर तुमने खो दिया होता तो उसे पाने का कोई उपाय न था। इस विराट अस्तित्व में खोए को खोज लेने का कोई उपाय नहीं। तुम खुद इतने छोटे हो, और तुमने अगर अपना आनंद खो दिया, आत्मा खो दी तो तुम इस विराट अस्तित्व में उसे कहां खोजोगे? असंभव। तुम अपने को खोज ही न पाओगे, अगर खो चुके हो। फिर खोजेगा कौन? अगर तुम खो ही चुके हो, तो खोजने वाला भी तो बचेगा नहीं।इसलिए उपनिषद कहते हैं, उसे पा लो, जो पाया ही हुआ है। तुम सिर्फ भूल गए हो। विस्मरण से ज्यादा और कोई बड़ी दुर्घटना नहीं घट गई है। खोया नहीं है, स्मृति खो गई है। है मौजूद, सो गए हो। नींद लग गई है। आंख झपक गई है।और तब तुम जो भी करोगे इस झपकी हुई आंख की दशा में, वह सब विस्मृति को घना करेगा। जितना ही तुम दौड़ोगे, खोजोगे उतना ही लगेगा कि पाना मुश्किल है। उतनी ही यात्रा असंभव प्रतीत होगी।दौड़ने से नहीं मिलेगा वह, जो तुम्हारे भीतर छिपा है। दौड़ने से तो उसका मिलना हो सकता है, जो तुम्हारे बाहर है, दूर है। जो पास ही है, उसे दौड़कर कहीं कोई पा सकेगा? उसे पाना है, तो भीतर पाना है।भीतर पाने का अर्थ है रुक जाना, दौड़ना नहीं; ठहर जाना। विश्राम के क्षण में मिलेगा वह। विराम के क्षण में मिलेगा वह। शांति के क्षण में मिलेगा। भाग-दौड़, आपा-धापी में तो तुम उसे और खोते चले जाओगे।और जितना ही तुम जाल बुनते हो खोजने का, आखिर में पाते हो, वही जाल गले की फांसी हो गया। ऐसी है दशा तुम्हारी, जैसे मकड़ी

ने जाल बुना हो और खुद ही फंस गई हो और अब तड़फती हो और निकलना चाहती हो। और निकल न पाती हो। और अपना ही बुना जाल है।जन्मों-जन्मों में तुम जो खोज रहे हो, उसके कारण ही तुमने अपने चारों तरफ एक जाल बुन लिया है रास्तों का, विधियों का, मार्गों का, क्रियाकांडों का, धर्मों का, शास्त्रों का, सिद्धांतों का। अब उस जाल में तुम फंसे हो। अब उस जाल से निकलना मुश्किल मालूम पड़ता है।लेकिन एक बात स्मरण आ जाए कि तुम्हारा ही बुना हुआ है, कि तुम बाहर निकल गए। फिर निकलने को कुछ करना नहीं पड़ता। तुम फंसे थे, वह भी भ्रांति थी। इस फंसाव को ठीक से समझ लो। क्योंकि सारे उपद्रव की जड़ वहां है। और सारा विज्ञान भी उसी के समझने में छिपा है।जार्ज गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, अगर तुम एक बात समझ लो, तो सब समझ में आ जाए। उस बात को वह कहता था आयडेंटिफिकेशन, तादात्म्य। अगर तुम यह समझ लो कि कैसे तुम उससे एक हो गए हो, जो तुम नहीं हो, तो तुम्हें मार्ग मिल जाए वह होने का, जो तुम हो।और ऐसा रोज हो रहा है, ऐसा प्रतिपल हो रहा है, कि तुम उसके साथ अपने को जोड़

लेते हो, जो तुम नहीं हो। फिर तुम जो हो, उससे टूट जाते मालूम पड़ते हो। तुम उसकी याद से भर गए हो, जो तुम नहीं हो। और इसलिए उसकी विस्मृति हो गई है, जो तुम सदा से हो।एक आदमी को मैं जानता हूं। वह रामलीला में रावण का अभिनय किया करता था। हर वर्ष गांव में रामलीला होती तो वहां अभिनय करता। आसपास के गांव में होती तो वहां अभिनय करता। धीरे-धीरे उस आदमी के चेहरे में रावण का भाव आ गया था। जब रामलीला न भी चलती तब भी तुम उसे रास्ते पर चलते देखते तो तुम्हें रावण की याद आ जाती।फिर तो एक बड़ी अजीब घटना घटी कि वह धीरे-धीरे रावण के साथ इतना एकात्म हो गया, कि एक बार रामलीला में उसने उपद्रव खड़ा कर दिया। रामलीला शुरू होती है, सब राजे-महाराजे स्वयंवर में इकट्ठे हो गए हैं खबर आती है कि रावण की लंका में आग लगी है, उसे जाना चाहिए। वह चला जाए, तो राम धनुष को तोड़ लें और सीता से विवाह हो जाए।

हर बार वह चला जाता था। थोड़ा होश रहा होगा कि यह अभिनय है। लेकिन एक वर्ष वह भूल ही गया बिलकुल। उसने खड़े होकर जोर से कहा, कि लगी रहने दो आग। झपट कर उठा लिया धनुष-बाण। धनुष-बाण कोई रामलीला का धनुष-बाण था, बांस का बना था। उसने तोड़कर उसके चार टुकड़े करके जनता में फेंक दिया और कहा जनक से, निकाल तेरी सीता। अब की बार विवाह करके ही जाएंगे।उसको बा-मुश्किल खींच-तान कर बाहर निकाला गया, क्योंकि वह मजबूत आदमी था। और रात भर वह चिल्लाता रहा, कि कहां है सीता! जब मैंने धनुष-बाण भी तोड़ दिया, तो फिर मुझसे विवाह क्यों नहीं हो रहा है? यह अन्याय है। कोई दो महीने वह पागल रहा।तादात्म्य हो गया। रावण का पार्ट अदा करते-करते, करते-करते वह यह भूल ही गया कि वह रावण नहीं है।और ऐसा बहुत बार हुआ है। अमरीका में एक आदमी लिंकन का पार्ट करता रहा। तो वह ठीक लिंकन जैसा चलने भी लगा, क्योंकि लिंकन थोड़ा-सा लंगड़ाता था—जरा-सा। तो पार्ट करता था, वह तो ठीक था, मंच पर लंगड़ाता था, वह भी ठीक था, लेकिन लंगड़ापन उसमें प्रविष्ट हो गया। वह लंगड़ा था नहीं। वह रास्ते पर चलता, तो भी वह लंगड़ाता। लिंकन थोड़ा हकलाता था, जैसे नेहरू थोड़े हकलाते थे। मंच पर वह हकलाता था वह तो ठीक, लेकिन साधारण बातचीत में हकलाने लगा!तब घर के लोगों को चिंता पैदा हुई। और फिर तो ऐसा हुआ, कि वह लिंकन के ही कपड़े पहन कर आम जिंदगी में भी चलने लगा। वे ही कपड़े, वही छड़ी, वही ढंग चलने का। वह भूल ही गया धीरे-धीरे कि वह कौन है! घर के लोग समझा-समझा कर परेशान हो गए। मनोचिकित्सक समझा-समझा कर परेशान हो गए। चिकित्सा हुई, इलाज हुआ, लेकिन वह अब्राहम लिंकन ही बना रहा।गांव में लोग कहने लगे कि जब तक, जैसे अब्राहम लिंकन को गोली लगी और वह मरा, जब तक इसको गोली न लगेगी, यह मारने वाला नहीं।फिर एक यंत्र का आविष्कार हुआ, लाय-डिटेक्टर; जिसमें आदमी झूठ बोले तो पकड़ में आ जाता है। अदालतों में

उपयोग किया जाता है। तो किसी ने सुझाव दिया कि लाय-डिटेक्टर का उपयोग करके देखा जाए, कि यह आदमी क्या सच में ही अपने को लिंकन मानता है? मशीन पर आदमी खड़ा कर दिया जाता है, उससे पूछा जाता है। दो-चार, छः सवाल पूछे जाते हैं। जैसे पूछा जाता है, इस समय तुम्हारी घड़ी में कितना बजा है? तो वह अपनी घड़ी देखता है, कहता है, आठ बजे हैं। अब इसमें तो झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। पूछा जाता है, दीवाल का रंग कैसा है? वह कहता है, सफेद है।ऐसे चार-पांच प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनमें झूठ बोलने का कोई कारण ही नहीं है। उसका हृदय एक तरह से धड़कता है। तुम भी जानते हो, जब तुम झूठ बोलते हो, हृदय पर एक चोट लगती है। क्योंकि भीतर से तो तुम जानते हो, जो सही है। और ऊपर से तुम थोपते हो, जो झूठ है। तुमसे कोई पूछता है, तुमने चोरी की? भीतर से तो उत्तर आता है, 'हां।' हृदय तो कहता है, 'हां', क्योंकि तुमने की है। लेकिन ऊपर से तुम कहते हो, 'नहीं'। तो तुम्हारे हृदय में एक कशमकश होती है। हां और ना का एक संघर्ष हो जाता है। क्षणभर का एक संकट खड़ा हो जाता है। वह संकट का क्षण लाय-डिटेक्टर पकड़ लेता है कि भीतर कोई संकट खड़ा हुआ है। तो जो ग्राफ बनाता है लाय-डिटेक्टर, झूठ पकड़ने वाला यंत्र, उस ग्राफ में संकट पकड़ में आ जाता है। पहले तो लकीरें लयबद्ध चल रही थीं। अब लकीरों में एक अचानक छलांग लग जाती है। सब गड़बड़ हो जाता है, अस्त-व्यस्त हो जाता है। तो इस आदमी को लाय-डिटेक्टर फर खड़ा किया। दस-पांच सवाल पूछे, फिर पूछा कि क्या तुम अब्राहम लिंकन हो? अब तक उसने यह बात कभी भी न कही थी।

अब तक वह सदा कहता था हां, और कौन हूं? थक चुका था, वह अब इस उपद्रव से। तो उसने लाय-डिटेक्टर पर खड़ा होकर कहा, कि नहीं; मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं।लेकिन डिटेक्टर ने बताया, कि यह आदमी झूठ बोल रहा है!समझे आप मतलब? उस आदमी ने कहा, कि नहीं मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन डिटेक्टर ने बताया कि यह आदमी है, यह झूठ बोल रहा है। क्योंकि उसके हृदय में बात इतनी गहरी उतर गई थी, कि हृदय ने कहा, हो तो तुम अब्राहम लिंकन। अब

बचने के लिए कह रहे हो, तो बात और। इतना तादात्म्य हो गया। वह आदमी अब्राहम लिंकन की तरह ही मरा। वह भूल ही गया।तुम्हें पागलखानों में बहुत इस तरह के लोग मिलेंगे, जिन्होंने अपने को कुछ समझ रखा है, मान रखा है। वे उसी तरह जीते हैं। वही मान्यता उनका जीवन हो गई है।लेकिन पागलखाने को छोड़ दो, विराट जगत को विचार करो, अपने को विचार करो, तो भी तुम पाओगे तुमने भी न मालूम कितनी मान्यताएं मान रखी हैं, जो तुम नहीं हो। शरीर तुम नहीं हो लेकिन तुमने मान रखा है कि तुम हो। यह उतना ही झूठ है, जितना कि किसी अभिनेता का मान लेना, कि वह अब्राहम है। यह उतना ही झूठा है, जितना कि किसी अभिनेता का मान लेना कि वह रावण हो गया। तुमने अपने को जवान मान रखा है, बूढ़ा मान रखा है, सुंदर मान रखा है, कुरूप मान रखा है; ये मान्यताएं झूठ हैं। ये संसार के बड़े मंच पर खेला जाता अभिनय है।कौन सुंदर है? क्या है सौंदर्य की परिभाषा? अब तक कोई कर नहीं पाया परिभाषा कि सौंदर्य क्या है? जितनी जातियां हैं, उतनी परिभाषाएं हैं। जितने लोग हैं, उतनी परिभाषाएं हैं।मान्यताएं हैं तुम्हारी। नाम तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें बचपन में दे दिया, अब तुम उसको मानकर बैठ गए हो कि तुम्हारा नाम है। उस नाम में और लिंकन के नाम में और रावण के नाम में कोई बड़ा फर्क है? तुम्हें एक नाम दे दिया है। नाम तो कामचलाऊ है। और तुमने उससे तादात्म्य कर लिया है कि तुम वही हो। अब अगर उस नाम को लेकर कोई गाली दे दे तो जान लेने-देने को तुम उतारू हो जाते हो।और नाम में रखा क्या है? मां-बाप ने कुछ और नाम दिया होता तो तुम ऐसे ही निकल जाते। यह आदमी गाली देता रहता विष्णुप्रसाद को और तुम्हारा नाम विष्णुप्रसाद न होता; तुम्हारा नाम अल्लाहबख्श होता तो तुम निकल जाते। हालांकि मतलब दोनों का एक ही होता है। विष्णुप्रसाद का भी मतलब वही होता है, अल्लाहबख्श का भी मतलब वही होता है। मगर तुम निकल जाते। तुमसे कोई लेना-देना नहीं था। किसी हिंदू को गाली दे रहा है। तुम मुसलमान हो। तुम्हारा नाम अल्लाहबख्श है।तुम्हें नाम तो कोई भी दिया जा सकता था, क्योंकि नाम तुम हो नहीं। अनाम पैदा

होते हो, फिर नाम के जाले में फंस जाते हो। फिर जिंदगी भर नाम और नाम को ही ढोते रहते हो। उसी के लिए जीते हो, उसी के लिए मरते हो। लोग समझाते हैं, नाम का खयाल रखो। किस घर में पैदा हुए हो, किस बाप के बेटे हो। नाम को बचाओ। नाम की प्रतिष्ठा है। नाम का गुणगान है।तो न तो नाम तुम हो, न रूप तुम हो। क्योंकि रूप कितना बदलता है! रोज बदलता है। तुम तो वही रहते हो, तुम कब बदले? जब तुम बच्चे थे तब भी तुम्हारे भीतर का तत्व वही था, जो अब है। कल जब तुम बूढ़े हो जाओगे, देह जरा-जीर्ण होगी, लोग अरथी बनाने की तैयारी करने लगेंगे, तब भी तुम तो भीतर वही रहोगे। मरते क्षण में भी तुम वही रहोगे, जो तुम जन्मते क्षण में थे। रत्ती भर भी भेद न पड़ेगा।तो तुम्हारा रूप भी तुम नहीं हो। न तो नाम तुम हो, न रूप तुम हो। इसलिए हिंदू कहते हैं, जो नाम-रूप के ऊपर उठ गया, वह ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। नाम-रूप से जिसका तादात्म्य छूट गया, वह उसे जान लेता है, जो वह है।'उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत'—उठो, जागो, उसे पा लो, जो पाया ही हुआ है।जाग जाओ, बस!नींद क्या है?तादात्म्य नींद है। वही तंद्रा है।सारा धर्म इस एक छोटे से शब्द में समाया जा सकता है—तादात्म्य का तोड़ देना।तादात्म्य का बनाना संसार है।तादात्म्य का मिटा देना मोक्ष है, मुक्ति है।तादात्म्य मन है और तादात्म्य के ऊपर उठ जाना, उन्मन अवस्था है—अमन; जिसको झेन फकीर 'नो-माइंड' कहते हैं। उसको कबीर उन्मनी अवस्था कहते हैं।यह सूत्र उन्मनी अवस्था का है। इसे समझने की कोशिश करो।

'अवधू मेरा मन मतिवारा'दो तरह की मादकताएं हैं। दो तरह की शराबें हैं।

एक तो शराब है तादात्म्य की, मूर्च्छा की, बेहोशी की, नींद की। एक तो शराब है तुम्हारे विस्मरण की, जब तुम भूले हुए हो। जब तुम्हें अपनी बिलकुल याद भी नहीं है।और एक शराब है स्मरण की; जब तुम्हें अपनी याद आती है और अपने घर के दर्शन होते हैं, और अपना स्वरूप-बोध होता है।पहली शराब शराबखानों से मिल जाती है। दूसरी शराब अगर

खोजनी है, तो किसी शराबखाने में न मिलेगी। उसका शराबखाना तो सिर्फ परमात्मा के हाथों में है। अगर पहले तरह की शराब खोजनी है, तो कोई भी साकी पिला देगा। दूसरे तरह की शराब खोजनी हो, तो परमात्मा ही साकी बनता है।उमर खैयाम ने अपनी रुबाइयात में उसी दूसरी तरह की शराब की बात की है। लेकिन फिट्जराल्ड गलत समझा। और फिर सारी दुनिया गलत समझी। और लोगों ने समझा कि उमर खैयाम शराबखाने की बात कर रहा है, साकी की बात कर रहा है, नशे की बात कर रहा है। उमर खैयाम सूफी फकीर है। वह उसी कोटि का आदमी है, जिस कोटि के कबीर।हां, अगर खैयाम की और कबीर की मुलाकात होती तो वे एक-दूसरे को बिलकुल समझ जाते। रत्तीभर भी अड़चन न होती। बोलने की भी जरूरत न पड़ती, एक दूसरे को देखकर समझ जाते। क्योंकि वह भी दूसरी शराब है, उसका नशा आंख में देखा जा सकता है।जैसे पहली शराब का नशा देखा जा सकता है। क्या शराबी को रास्ते पर देखकर तुम्हें पूछना पड़ता है कि शराब पी है? उनकी चाल बताती है, उनका ढंग बताता है, उनकी दुगध बताती है। कुछ पूछना नहीं पड़ता। हालांकि शराबी छिपाता है। तो भी कुछ छिपा नहीं पाता। हर कोई जानता है, कि वे जरा ज्यादा पी गए हैं। छिपाने की कोशिश में भी उनका मतवालापन जाहिर होता है।भीतर की शराब को भी कोई कभी नहीं छिपा पाया। जब बाहर की शराब नहीं छिपती, तो भीतर की क्या छिपेगी? क्षणभंगुर जो नशा है, वह नहीं छिपता तो शाश्वत का नशा कैसे छिपेगा? कबीर और उमर खैयाम अगर सामने होते तो दोनों हाथों में हाथ डालकर नाचते। दोनों पहचान लेते कि दोनों ने एक ही साकी से पी है। दोनों एक मधुशाला के दीवाने हैं। मंदिर भी मधुशाला है।

उमर खैयाम का बड़ा अदभुत पद है :

'मंदिर मसजिद लड़वाते एक कराती मधुशाला।' तुम्हारे मंदिर मसजिद तो लड़वाते हैं। ये मंदिर मसजिद तो कोई मंदिर मसजिद नहीं हैं। 'एक कराती मधुशाला।'लेकिन अगर कभी तुम असली मंदिर में प्रवेश कर गए तो वह मधुशाला है। मधुशाला में तुमने किसी को फिक्र करते देखा है—कि कोई पूछता है, कि जैन हो, तुम हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि? साधारण मधुशाला में भी कोई नहीं पूछता। पीनेवाले को क्या फिक्र—कि कुरान की पूजा करता है, कि गीता की? पीनेवाले सब एक हैं। मधुशाला में कोई हिसाब नहीं; न हिंदू का, न मुसलमान का। मधुशाला में हिंदू-मुसलमान का दंगा होता ही नहीं।तुम्हारे मंदिर तो साधारण मधुशाला से गए-बीते हैं। वहां सिवाय उपद्रव के कुछ भी नहीं है। जमीन तुड़वा दी है उन्होंने।लेकिन अगर असली मंदिर हो, तो ये मधुशालाएं जो बाहर की हैं, क्या जोड़ेंगी? जिसने भीतर की शराब पी ली, वह सबसे जुड़ गया। क्योंकि वह अपने से जुड़ गया। जो अपने से जुड़ गया, वह किसी से टूटा नहीं रह जाता, क्योंकि तुम्हारे भीतर ही तो वह सुरंग है, जो उस परमात्मा की तरफ ले जाती है। तुम्हारे भीतर ही तो वह झरना है, जो सबसे जुड़ा है। अपने को जान कर तुम अचानक पाते हो कि तुम तो खो गए। बूंद विसर्जित हो गई, सागर ही बचा।एक शराब है, जो तुम अपने को भुलाने के लिए पीते हो। एक और भी शराब है, जो तभी उपलब्ध होती है, जब तुम जाग जाते हो। कबीर उसी शराब की बात कर रहे हैं। वे कहते हैं—

'अवधू मेरा मन मतिवारा।' मैं मतवाला हो गया हूं।

'उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै, त्रिभुवन

भया उजियारा।' —कि मैं नशे में डूब गया हूं। लेकिन इस नशे में डूबने में मजा यह है कि होश बढ़ता है, घटता नहीं। यह होश का ही नशा है। यह होश की ही शराब है। 'उनमनि चढ़ा. . .'साधारण आदमी जब नशे में होता है तो नीचे गिरता है, चढ़ता नहीं। जीवनधारा नीचे आती है। जितना तुम्हारा तादात्म्य होता है, उतने तुम नीचे आते हो।और तुमने कभी खयाल किया कि हर तादात्म्य से नशा आता है? कभी देखो किसी आदमी को, जो पागल है धन के पीछे। तुम पाओगे कि उसे शराब पीने की जरूरत नहीं है, धन काफी शराब है। उसकी आंखों में एक दौड़ पाओगे तुम। उसकी आंखों में रुपए की खनक पाओगे तुम। उसकी आंखों में रुपए की धार पाओगे तुम। वह न सोएगा, न जागेगा। वह चौबीस घंटे धन और धन का चिंतन और स्मरण कर रहा है। वह सब भूल जाता है। न परमात्मा की फिक्र, न पत्नी की, न बच्चों की, न प्रेम की। धन सब कुछ है। वह धन के साथ एक हो गया है। अगर तुम उसका धन छीन लो, तो वह पाएगा कि तुमने उसकी आत्मा छीन ली। अगर उसका धन चला जाए, तो वह आत्महत्या कर लेगा। धन ही सब कुछ था। वही

उसकी आत्मा थी। वह चली गई। अब जीना किसलिए? अब जीने का सार क्या है, अर्थ क्या है?वह तो था ही नहीं। उसके प्राण तो रुपयों में थे। उसका परमात्मा तो वहीं छिपा था। वही उसकी पूजा थी, वही उसकी अर्चना थी। वही उसके जीवन का सार निचोड़ था।धन से जिसने एकात्म कर लिया, तुम उसमें एक दौड़ पाओगे, एक नशा पाओगे। उसे शराब पीने की जरूरत नहीं है। वह शराबियों की निंदा करेगा। वह अक्सर शराब-बंदी के पक्ष में होगा। क्योंकि वह एक ऐसी शराब पीता है, जिसको तुम बंद कर ही नहीं सकते।राजनीतिज्ञ है; पद की दौड़ में लगा है। एक नशा है। मोरारजी देसाई हमेशा शराब-बंदी के पक्ष में हैं, क्योंकि पद की शराब पी रहे हैं। वह नशा बड़ा है। छोटे-मोटे शराबी, जो मधुशाला में बैठकर एकाध कुल्हड़ पी लेते हैं उनके लिए नाराज हैं! लेकिन पद की शराब बड़ी पुरानी है। और जितनी पुरानी शराब हो, उतनी गहरी होती है।पद का नशा बहुत बड़ा है। पद के लिए आदमी सब छोड़ने को तैयार होता है। पद

के लिए सब कुर्बान करने को तैयार होता है। आमरण अनशन भी करना पड़े, तो भी तैयार होता है। पद की एक दीवानगी है, एक पागलपन है।तो यह बड़े मजे की बात है कि जो पद की दौड़ में हैं, वे कहेंगे, कि बंद करो शराब। शराब की क्या जरूरत है? उनके लिए काफी शराब उनके पद के नशे से मिल रही है।जो धन की दौड़ में हैं, वे भी कहेंगे, बंद करो। असल में तुम शराबखाने में उन्हीं लोगों को पाओगे, जिनको न धन की दौड़ है, न पद की दौड़ है, न मोक्ष की दौड़ है; उन्हीं को तुम पाओगे। दौड़ने वालों को तो शराबखाने जाने की फुरसत नहीं। वे अपनी शराब अपने घर में ही निचोड़ते हैं। वे अपनी शराब खुद ही बनाते हैं। और उसका नशा बड़ा तेज है।शराबखानों में तुम उन लोगों को पाओगे, जो जीवन में बिलकुल दीन-हीन हैं। जिनकी जीवन की कोई महत्वाकांक्षा नहीं। जो किसी तरह अपने को ढो रहे हैं। वे दया के योग्य हैं।असली खतरनाक लोग तो वे हैं, जो धन, पद, प्रतिष्ठा के मोह में; धन, पद प्रतिष्ठा की शराब में डूबे हुए हैं। ये खतरनाक लोग हैं। हिटलर शराब नहीं पीता था। पीने की जरूरत नहीं है। हिटलर इतनी बड़ी शराब पी रहा था जितनी दुनिया में कभी कोई दो-चार लोग ही पी सके हैं—कभी कोई सिकंदर, कोई नेपोलियन। हिटलर को शराब पीने की जरूरत न थी। क्या जरूरत? इतने नशे में डूबा था वह। उसके पैर जमीन पर न पड़ रहे थे। तुम्हारी साधारण शराब की जरूरत न रही उसे। उसने बड़ी असाधारण शराब पी ली है।एक बात ख्याल रखो : कि शराब का अर्थ होता है, जिससे तुम अपने को भूल जाओ। वह शराब बोतलों में बंद हो सकती है। वह शराब शास्त्रों में बंद हो सकती है। वह शराब मंदिर के विधि-विधान में बंद हो सकती है। वह शराब राजधानियों में हो सकती है। वह शराब तिजोड़ियों में, बैंक में जमा हो सकती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।जिस चीज से भी तुम अपने को भूल जाते हो, जिसमें तुम इतने लग जाते हो, कि तुम्हें याद ही नहीं रहती, कि अपने को भी पाना है और जागना है। जो भी तुम्हें अपने से दूर ले जाती है, वह शराब है। यह बाहर की शराब है।

एक और शराब है, जो तुम्हें अपने पास ले आती है। कबीर उसी शराब की बात कर रहे हैं। वे उसी शराब को बनाने का रास्ता बता रहे हैं।1.00़ 'अवधू मेरा मन मतिवारा, 1.00़ उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै' और बाहर की शराब का लक्षण है, कि वह तुम्हें नीचे उतारती है। और भीतर की शराब का लक्षण है कि वह तुम्हें ऊपर ले जाती है। भीतर की शराब सीढ़ियां हैं परमात्मा की तरफ। जैसे-जैसे होश बढ़ता है, वैसे-वैसे तुम ऊपर उठते हो। जैसे-जैसे होश कम होता है, वैसे-वैसे तुम नीचे गिरते हो। जब होश बिलकुल नहीं रह जाता, तब तुम पत्थर जैसे निर्जीव हो। और जब होश परिपूर्ण हो जाता है, तब तुम परमात्मा जैसे परम चैतन्य हो, सच्चिदानंद हो।1.00 'उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै' और अब मैं चढ़ गया हूं उन्मन में। वहां पहुंच गया हूं, जहां मन नहीं है। वहां चढ़ गया, जहां मन नहीं।तुम्हारे भीतर वह जगह है, जहां मन नहीं है। और वहीं तुम हो। जहां तक मन है, वहां तक संसार है। जहां तक मन है, वहां तक बाहर-बाहर। जहां मन समाप्त होता है, वहीं भीतर की शुरुआत है। वहीं से अंतर्यात्रा शुरू होती है।मन यानी बाहर, उन्मन यानी भीतर।थोड़ा सोचो, जब तक तुम्हारे मन में विचार चलता है, तब तक तुम बाहर ही रहोगे। क्योंकि सब विचार बाहर के हैं। भीतर का कोई विचार ही नहीं होता।मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम ध्यान करते हैं, हम आत्मा का विचार करते हैं। मैं उनसे कहता हूं, आत्मा का विचार कैसे करोगे? आत्मा का अनुभव होता है; विचार कैसे करोगे? अगर विचार करोगे तो उसका आत्मा से कोई संबंध ही न रहा। शास्त्र में पढ़ लिया होगा सिद्धांत, कि आत्मा क्या है। फिर उसका तुम विचार कर सकते हो। वह

तो बाहर की बात हो गई। शास्त्र बाहर है, सत्य भीतर है।

आत्मा का तुम विचार कैसे करोगे? परमात्मा का विचार कैसे करोगे? ये कोई विचार की बातें हैं! जब तुम निर्विचार हो जाते हो तभी तुम्हारा जोड़ बनता है। तभी सांधा बैठ जाता है।.75¸ 1.00¸ 'उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै. . .।' और जैसे-जैसे तुम ऊपर चढ़ते हो, वैसे-वैसे गगन का रस बरसता है। जैसे-जैसे तुम नीचे जाते हो, वैसे जीवन के साधारण रस, गगन का रस नहीं—शरीर के रस, इंद्रियों के रस, पदार्थ का रस—भोजन का, भोग का—बड़े क्षुद्र, निम्न, साधारण।जिनको तुम भी सोचोगे तो पछताओगे। तुम पछताए हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो संभोग के बाद न पछताता हो। ऐसी स्त्री खोजनी मुश्किल है, जो संभोग के बाद एक ग्लानि से न भर जाती हो और मन में एक निर्णय न उठता हो, कि बस, बहुत हुआ। अब काफी। फिर भूल होती है वह बात दूसरी; लेकिन पछतावा तो होता ही है। फिर चौबीस घंटे में, अड़तालीस घंटे में भूल जाती है बात। तुम्हें अपनी याद ही नहीं है। तुम कैसे स्मरण रखोगे कि पछताए थे? वह भी भूल जाता है।क्रोध में भी एक तरह का रस तो है। नहीं तो लोग क्रोध क्यों करें? कुछ न कुछ मिलता ही होगा। कुछ मजा आता ही होगा; यद्यपि मजा जहर से जुड़ा है। चाहे बूंद भर मजा हो और सागर भर जहर हो, लेकिन मजा कुछ मिलता ही होगा तभी तो लोग जहर को भी पीने को तैयार होते हैं। क्रोध में जलने को राजी होते हैं। पछताते हैं पीछे, लेकिन क्रोध के क्षण में फिर भूल जाते हैं।कुछ रस होगा। वह रस है अहंकार का रस। जब तुम क्रोध से भरे हो, तब तुम दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हो, अपने को ऊपर दिखाने की कोशिश कर रहे हो।इसलिए अहंकारी कभी क्रोध से मुक्त नहीं हो सकता। सिर्फ निरहंकारी ही मुक्त हो सकता है। सिर्फ वही मुक्त हो सकता है, जिसने अपने को पीछे ही खड़ा कर लिया है। जो सबसे पीछे खड़ा हो गया

हो। जिसने अपने को महत्त्वाकांक्षा से शून्य कर लिया, फिर उसे कोई क्रोध नहीं होगा। उसे कोई क्रोध पैदा नहीं करवा सकता।अहंकारी तो जलेगा; क्रोध से जलता ही रहेगा। पछताएगा, क्योंकि जब भी क्रोध करेगा, तभी अपना भी हाथ जलेगा। दूसरे का जले न जले, अपना तो जल ही जाता है। घाव छूट जाते हैं।नीचे के रस हैं; मिश्रित हैं, उनमें दुख जुड़ा है। संसार में सुख है। नहीं है, ऐसा मैं न कहूंगा। नहीं तो इतने लोग भटकते कैसे? इतने लोग गवाह हैं। अरबों-खरबों लोग गवाह हैं कि संसार में रस है। हां, रस बहुत विरस से जुड़ा है। एक बूंद है अमृत की, लेकिन पूरी प्याली जहर की है। जब तुम देखते हो, तो अमृत की बूंद दिखाई पड़ती है। जब तुम पीते हो, तो जहर रग-रग रोएं-रोएं में फैल जाता है। तब तुम पछताते हो, कसम लेते हो, व्रत लेते हो छोड़ देने का, लेकिन ऐसे कभी कुछ छूटा नहीं है। तुम अगर नीचे की तरफ रहोगे बहते, मूर्च्छा की तरफ, कुछ भी छूट न सकेगा।तुम अगर ऊपर की तरफ जाओगे तो एक दूसरे ही महारस का आविर्भाव होता है। उसको कबीर कह रहे हैं, गगन-रस। तब आकाश से कुछ चूना शुरू होता है।नीचे के जो रस हैं उनका केंद्र है कामवासना।ऊपर के जो रस हैं, उनका केंद्र है सहस्रार।ये दो केंद्र खयाल में रखने जरूरी हैं। मूलाधार—वह नीचे के रसों का स्रोत है। क्रोध भी वहीं से पैदा होता है, काम-वासना से। काम भी वहीं से पैदा होता है, लोभ भी वहीं से पैदा होता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, मोह सब वहीं से पैदा होते हैं। वे सब काम के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। और जब तक तुम वहां जीते हो, वह निम्नतम अवस्था है चेतना की। उससे नीचे चेतना बिलकुल खो जाती है।ऊपर का, गगन का रस अगर पीना हो, तो सहस्रार। वह आखिरी केंद्र है तुम्हारा।सात चक्र हैं; पहला है मूलाधार, अंतिम सहस्रार। इसे सहस्रार कहा है, क्योंकि यह सहस्त्र कमलदल जैसा है। जैसे कोई कमल का फूल खिले जिसमें सहस्त्र पंखुड़ियां हों, हजार-हजार पंखुड़ियां हों। यह अपूर्व अनुभव

है आनंद का। जैसे तुम्हारी पूरी जीवन-चेतना कमल बन जाती है। तुम खिलते हो और तुम्हारे कमल पर गगन बरसता है।लेकिन इसके लिए जरूरी है कि तुम सीढ़ियां चढ़ो। मन से उन्मन की तरफ जाओ। मन मूलाधार से बंधा है। जैसे-जैसे ऊपर बढ़ोगे, मन कम होने लगेगा, उन्मन ज्यादा होने लगेगा।हृदय बिलकुल मध्य में है। तो हृदय में मन करीब-करीब आधा रह जाता है और आधा उन्मन हो जाता है। इसलिए तो निरंतर ज्ञानी कहते हैं कि अगर चुनना हो, और मन और हृदय के बीच ही चुनना हो, तो हृदय को चुनना। क्योंकि हृदय में कम से कम मध्य में खड़े हो सीढ़ी पर। वहां से ऊपर की यात्रा भी खुलती है।जैसे-जैसे ऊपर बढ़ते हो वैसे-वैसे उन्मन होते जाते हो। मन खोता जाता है, विचार खोते जाते हैं।

मन यानी विचार की प्रक्रिया। वह बंद होती जाती है। निर्विचार का जन्म होने लगता है। अंतराल आने लगते हैं। क्षण भरको ऐसा लगता है कोई विचार नहीं है भीतर में। और जब विचार नहीं होते, तभी एक छलांग में चेतना सहस्त्रदल कमल वाले उस केंद्र पर पहुंच जाती है। एक छलांग में उत्तुंग शिखर को छू लेती है।उसी क्षण में तुमसे और गगन का संबंध जुड़ जाता है। मूलाधार से तुम पृथ्वी से जुड़े हो, सहस्त्रार से तुम गगन से जुड़ते हो।मनुष्य एक सीढ़ी है, जिसका एक पाया नीचे जमीन से टिका है और दूसरा पाया ऊपर आकाश से टिका है।.35 .25 'उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।' और जब तुम उस गगन के रस को पीते हो, तभी अंधकार खो जाता है। तीनों लोकों में प्रकाश हो जाता है। यह प्रकाश तुम्हारे भीतर से आता है। यह ज्योति तुम्हारे भीतर होती है। यह प्रकाश बाहर का नहीं है। यह बाती और तेल का प्रकाश नहीं। यह सूरज का प्रकाश भी नहीं है। क्योंकि वह भी बाती और तेल का ही है। कभी चुक जाएगा। वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार साल में सूरज चुक जाएगा। उसका तेल चुकता जा रहा है। चार हजार साल में बुझ जाएगा। करोड़ों वर्ष चलता है, लेकिन फिर भी सीमा है।

जिस दिन तुम्हारे सहस्त्रार पर गगन का मिलन होता है, अनंत की वर्षा होती है, मेघ घिरते हैं परमात्मा के तुम्हारे ऊपर, उस दिन तुम्हारे भीतर एक प्रकाश का अनुभव होता है, जिसकी न तो कोई शुरुआत है, और न कोई अंत। जो शाश्वत है, अनादि अनंत है, जिसका कोई जन्म और मृत्यु नहीं।तभी तीनों लोक तुम्हारे लिए प्रकाशित हो जाते हैं।.35 .25 'उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा। गुड़ करि ग्यान. . .'अब यह भीतर की शराब बनाने का शास्त्र।.35 .25 'गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, भव भाठी करि मारा।' ज्ञान को गुड़ बना लिया—मिठास। ध्यान को महुआ बना लिया—शराब का असली स्रोत।ध्यान रखना, ज्ञान को कोई महुआ नहीं बना सकता। और जो बनाने की कोशिश करता है वही पंडित है और ऐसे ही मर जाता है। गुड़ खाकर कहीं नशा चढ़ा है? हां, गुड़ की भी उपयोगिता हो सकती है। अगर नशा तैयार हो, तो थोड़ी सी मिठास डाल देना उपयोगी होगी। गुड़ का थोड़ा उपयोग हो सकता है। गुड़ ना हो, तो भी चल जाएगा। महुए में भी अपनी मिठास है, लेकिन शायद शराब थोड़ी तिक्त और कड़वी होगी। थोड़ा गुड़ मिलाना अच्छा हो जाएगा।तो ज्ञान अगर थोड़ा पास हो—लेकिन उसकी उपयोगिता द्वितीय है, प्रथम नहीं है। महुआ पास न हो तो गुड़ कितना ही हो, क्या करोगे? उससे तुम नशे को उपलब्ध न हो जाओगे।ध्यान है महुआ। ज्ञान के बिना भी चल सकता है, लेकिन ध्यान के बिना नहीं चल सकता। हां, अगर ध्यान का महुआ पास हो और थोड़े ज्ञान का गुड़ भी पास हो, तो सोने में सुगंध आ जाती है। ऐसे सोना बिना सुगंध के भी काफी अच्छा है, चल सकता

है। लेकिन सोने में सुगंध आ जाती है।ज्ञान का इतना ही उपयोग है कि वह ध्यान में सहयोगी हो जाए। अगर ज्ञान, ध्यान में बाधा बनता हो, तब तो वह ज्ञान ही नहीं। वह तो अज्ञान से बदतर है। अगर ज्ञान, ध्यान में सहयोगी बन जाता हो तो वह मिठास है। वह महुए में थोड़ी मिठास ला देगा। शराब थोड़ी मीठी हो जाएगी, सुस्वादु हो जाएगी।मैं तुमसे बोल रहा हूं। चाहो, तो तुम इन शब्दों को इकट्ठा करके सिर्फ गुड़ इकट्ठा कर ले सकते हो। तब तुम पंडित हो जाओगे। लेकिन अगर साथ-साथ तुमने ध्यान के महुए भी इकट्ठे किए, तो जो मैं तुमसे बोल रहा हूं—जब तुम्हारी शराब तैयार होगी, तो तुमसे जो जो मैंने कहा है, उसकी मिठास तुम उसमें मिला दे सकोगे। सुस्वादु हो जाएगी।.35 .25 'गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, भव भाठी करि मारा।' और सारे जीवन को भट्टी बना दी। सारे जीवन को यज्ञ बना दिया। सारे जीवन की तपश्चर्या को ताप बना दिया, अग्नि बना दिया। सारे जीवन के अनुभव को भट्टी बना दिया।इसलिए तुमसे कहता हूं, बिना अनुभव के तुम कहीं भी पहुंच न सकोगे। युवक आते हैं मेरे पास। वे कहते हैं, हम क्या करें? विवाह करें, न करें? उनसे कहता हूं, करो। नहीं तो तुम्हारे जीवन में अनुभव न होगा। जाओ, भटको थोड़ा। भटकाव का भी प्रयोजन है। भूल की भी सार्थकता है।नहीं तो महुआ भी पास होगा, गुड़ भी पास होगा, और जीवन के अनुभव की भट्टी ही न होगी तो महुआ खा लेने से नशा न आएगा। जीवन की भट्टी से गुजरना जरूरी है। कच्चे-कच्चे कभी कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं हुआ है, पकना अत्यंत आवश्यक है। यह पृथ्वी इसीलिए है कि तुम पको। यह जीवन का इतना फैलाव इसीलिए है कि तुम अनुभव से गुजरो, परिपक्व बनो! एक मेच्योरिटी, एक प्रौढ़ता तुम्हारे जीवन में आ जाए।जीवन से बिना गुजरे कैसे तुम प्रौढ़ बनोगे? इसलिए अक्सर यह होता है, कि जिन लोगों ने जीवन को बहुविध रूपों में देखा है, बुरे और भले सब रूपों में

देखा है, उनके जीवन में एक परिपक्वता होती है; जो कि उन लोगों के जीवन में नहीं होती, जिन्होंने जीवन
के सब रूप नहीं देखे।अगर कोई व्यक्ति सज्जन रहकर ही संत हो गया, तो उस संत में तुम कुछ कमी पाओगे। वह थोड़ा सा बेस्वाद होगा। उसमें तुम पाओगे कि जीवन की गरिमा, प्रगाढ़ता, गहराई नहीं है। वह थोड़ा उथला-उथला होगा।अगर किसी व्यक्ति ने जीवन का वह रूप भी देखा, जो शुभ है वह रूप भी देखा, जो अशुभ है; जिसने शैतान से भी मुलाकात की; और जो नरको से भी गुजरा और स्वर्गों से भी; जिसने अंधेरी रातें भी देखीं और प्रकाशोज्वल दिन भी देखे; जिसने पतझड़ भी देखा और वसंत भी; जो रोया भी और हंसा भी; जो गिरा भी और उठा भी, उस आदमी के जीवन में एक गहराई होती है। उस आदमी के जीवन में एक गहनता होती है; एक त्वरा और तीव्रता होती है। ऐसा व्यक्ति जब संतत्व को उपलब्ध होता है तो वह परिपूर्ण पका हुआ फल है। कच्चे फल थोड़े ही चढ़ाए जाते हैं पूजा में—पके हुए फल! पक जाना सबसे महत्वपूर्ण है।और कबीर कहते हैं, 'भव भाठी करि मारा।' और जीवन के सारे अनुभवों को भट्टी बना दिया, अग्नि बना दिया। और उस अग्नि में डाल दिया ध्यान का महुआ। और ध्यान के महुए में डाल दिया ज्ञान का गुड़।'सुखमन नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा।'अब यह जरा बहुत सूक्ष्म बात है—1.00 'सुखमन नारी सहज समानी. . .'पश्चिम में कार्ल गुस्ताव जुंग ने इस सदी में एक बहुत महत्वपूर्ण खोज की। और वह खोज यह थी कि हर पुरुष के भीतर एक स्त्री छिपी है और हर स्त्री के भीतर एक पुरुष छिपा है। कोई स्त्री सिर्फ स्त्री नहीं है कोई पुरुष सिर्फ पुरुष नहीं है।यह ठीक भी है। होना भी ऐसा ही चाहिए। क्योंकि प्रत्येक बच्चा मां-बाप—दो से पैदा हुआ है।और दोनों उसके भीतर होंगे। जब बच्चा पैदा होता है तो कुछ पिता है उसमें, कुछ मां। दोनों संयुक्त हैं। दो धाराएं बह रही हैं उसमें। गंगा जमुना उसमें मिली हैं। अगर तुम गौर से देखो, तो तुम गंगा-जमुना की धाराओं को अलग देख सकते हो प्रयाग में।

अगर किसी व्यक्ति की जीवन-चेतना में तुम गौर से देखने की कला समझ जाओ, तो तुम देख सकते हो कि पिता और मां—कैसे अलग-अलग रंगों की दो धाराएं बह रही हैं। स्त्री है उसके भीतर, पुरुष है उसके भीतर। और वह जो भीतर छिपी स्त्री हैं पुरुष के भीतर, वही तो पुरुष का आकर्षण है बाहर की स्त्री में। भीतर का तो उसे पता नहीं है। एक पुकार है, एक प्यास है, एक तड़फन है। और भीतर का उसे पता नहीं है, भीतर जाने का भी उसे कुछ पता नहीं है, भीतर जैसी कोई चीज है, इसका भी उसे पता नहीं है। वह अपने घर के पोर्च के ही पास खड़ा जी रहा है। उसे घर भीतर क्या है, उसका पता भी नहीं है। द्वार इतने दिन से बंद हैं, कि दीवाल जैसा लगता है। पोर्च को ही घर समझ लिया। वहीं जीता है।और नजर उसकी सड़क पर लगी है। क्योंकि आंख बाहर ही देख रही है। भीतर देखने को तुम्हें कुछ अंदाज ही नहीं है। वह भीतर देखना ही तो ध्यान है। वह महुआ तुम्हें अभी मिला नहीं।तो भीतर एक नारी है पुरुष के; वही आकर्षण है बाहर की नारी में। और भीतर एक पुरुष है नारी में, वही आकर्षण है बाहर के पुरुष में। इसलिए बड़ी अड़चन भी है। आकर्षण भी; अड़चन भी, उपद्रव भी।क्योंकि जब तक तुम्हें तुम्हारी भीतर की नारी जैसी नारी बाहर न मिल जाए, तब तक तृप्ति न होगी। क्योंकि उसे तुम खोज रहे हो।और यह असंभव है। करीब-करीब असंभव है। अगर कुछ प्रतिशत भी बाहर की नारी मिल जाए तो भी तृप्ति मालूम होगी, लेकिन पूरा मिल जाना तो असंभव है। इसीलिए सुंदरतम जोड़े भी, पूर्णतम जोड़े भी अपूर्ण रह जाते हैं। कुछ कमी रह जाती है।जिसकी खोज है, वह भीतर छिपी है। उसे तुम बाहर खोज रहे हो। थोड़ा-बहुत तालमेल बैठ जाए तो काफी है। इसलिए सौ में निन्यानबे विवाह असफल होते हैं। वे सफल हो ही नहीं सकते। उनकी बुनियाद में ही सफलता संभव नहीं है।कैसे खोजोगे उस नारी को?तुम एक प्रतिमा लिए हो भीतर, उसकी ही तलाश है। किसी स्त्री में वह झलक मिल जाती है किसी दिन; तुम प्रेम में पड़ जाते हो। जिसको तुम प्रेम में पड़ना कहते हो

वह कुछ और नहीं है, तुम्हारी भीतर की नारी की झलक तुमने किसी स्त्री में देख ली है। कोई स्त्री तुम्हारे लिए दर्पण बन गई और तुमने अपनी भीतर की नारी का थोड़ा सा प्रतिबिंब उसमें पा लिया, थोड़ी छवि पकड़ ली। तुम प्रेम में पड़ गए।अब तुम पागल हो गए कि जब तक यह स्त्री नहीं मिलेगी, शांति नहीं। यह तुम्हें मिल भी जाएगी; लेकिन थोड़े ही दिन शांति और सुख रहेगा। क्योंकि जैसे-जैसे तुम इसे ज्यादा पहचानोगे, वैसे-वैसे पाओगे, तुम्हारी भीतर की नारी से मेल खाता नहीं। फर्क है। रोज-रोज फर्क बड़ा होता जाएगा। जैसी पहचान बढ़ेगी, वैसे-वैसे फर्क बड़ा होता जाएगा। दूर

से लगता था जो, वह पास से आकर ठीक नहीं पाया जाएगा। जितनी निकटता होगी, उतनी दूरी बढ़ जाएगी और इसलिए स्त्री और पुरुष के संबंध बड़े ही दुखद हैं—होंगे ही। कामचलाऊ हो सकते हैं।तंत्र की यह बड़ी पुरानी खोज है। जुंग ने तो इस सदी में पश्चिम में यह कहा; लेकिन तंत्र की यह सदियों पुरानी खोज है; हजारों वर्ष पुरानी खोज है। हमने शिव की मूर्ति बनाई है अर्धनारीश्वर। आधे शिव पुरुष हैं और आधे स्त्री हैं। वह हमारी खोज है। उस मूर्ति में हमने कह दिया मनुष्य का यह सत्य।और जब तक तुम्हारे भीतर की नारी तुम्हारे भीतर के पुरुष से मिल न जाए, आलिंगनबद्ध न हो जाए—उसको तंत्र कहता है, 'युगनद्ध'; जब तुम अपने भीतर अपने द्वैत को मिला न लो, भीतर संभोग घटित न हो जाए, तब तक तुम अतृप्त रहोगे।.50 'गुड़ करि ज्ञान ध्यान करी महुआ, भव भाठी करि मारा।.50, सुखमन नारी सहज समानी. . .'और इस आनंद की दशा में भीतर की जो नारी है, वह सहज ही भीतर के पुरुष में समा जाती है। वे दोनों एक हो जाते हैं। अर्धनारीश्वर पैदा हो जाता है।'पीवै पीवन हारा'. . .और अब सिवाय पीने के कुछ भी नहीं बचा : संसार में प्यास ही प्यास है, परमात्मा में पीना ही पीना। संसार में अतृप्ति ही अतृप्ति है,

परमात्मा में तृप्ति ही तृप्ति। संसार में सवाल ही सवाल हैं, परमात्मा में समाधान ही समाधान।.50 'सुखमन नारी सहज समानी, पीवै पीवन हारा।'यह घटना कब घटती है?यह सहस्रार में घटती है। मूलाधार में तो तुम बाहर की नारी को खोजोगे, या बाहर के पुरुष को खोजोगे और भटकोगे। वही तो संसार है। बाहर की नारी की खोज, बाहर के पुरुष की खोज संसार है।जैसे-जैसे ऊर्जा ऊपर चलेगी, वैसे-वैसे तुम्हारा परिचय होगा, भीतर ही छिपी है तुम्हारी प्रेयसी। भीतर ही छुपा है तुम्हारा प्रियतम। वह जो मीरा ने सेज सजाई है, वह बाहर के प्रियतम के लिए नहीं। वे जो फूल बिछाए हैं, बाहर के प्रियतम के लिए नहीं। वह भीतर के प्रियतम के लिए तैयारी है। वह भीतर के पुरुष से मिलन हो रहा है।सहस्रार—जैसे-जैसे ऊर्जा, भान, बोध ऊपर जाता है वैसे-वैसे भीतर के द्वैत में दूरी कम होती जाती है। एक घड़ी आती है, अनायास एक दिन तुम पाते हो—'सुखमन नारी सहज समानी।' तुम्हें कुछ करना नहीं होता; सिर्फ जागते जाना है। सहज समाना हो जाता है।'पीवै पीवन हारा'—फिर तो पीना ही पीना बचा। फिर तो परमात्मा का साकी ढाले जाता है और तुम पीए जाओ। और भीतर की मधुशाला न तो कभी बंद होती, और भीतर की मधुशाला न कभी चुकती। वह शाश्वत और सनातन है।दोउ पुड़ि जोड़ि चिंगाई भाठी, चुया महारस भारी।.75 'दोउ पुड़ जोड़ि चिंगाई भाठी'. . .वे जो दो पुड़ हैं तुम्हारे—स्त्री और पुरुष के भीतर; वह जो द्वैत है तुम्हारे भीतर, जो डुआलिटी है, जो दुई है— दोउ पुड़ जोड़ि चिंगाई भाठी; उन दोनों के मिल जाने से प्रबल अग्नि जलती है। तुम्हारे भीतर की भट्टी परिपूर्ण रूप से जलती है। फिर उस अग्नि के लिए किसी इ धन की जरूरत नहीं।

अब यह थोड़ा, बड़ा बारीक है मामला। विज्ञान कहता है कि अगर हम अणु को तोड़ें, तो महाअग्नि पैदा होती है। अणु का विस्फोट वही है। हिरोशिमा, नागासाकी उसी में जले। कि अणु को अगर हम तोड़ दें, दो कर दें, तो महाअग्नि प्रकट होती है। यह विज्ञान की खोज है।और योग और तंत्र की खोज यह है कि अगर हम दो को जोड़ दें तो भी महाअग्नि पैदा होती है। दो को तोड़ें, एक को तोड़कर दो कर दें तो महाअग्नि पैदा होती है; यह बाहर की घटना है। और भीतर जहां दो हैं, उनको अगर हम एक कर दें, तो महाअग्नि पैदा होती है। वह भीतर की घटना है।और भीतर और बाहर के नियम विपरीत हैं। बाहर तोड़ने से अग्नि पैदा होती है। भीतर जोड़ने से अग्नि पैदा होती है। बाहर का विज्ञान विश्लेषण है, भीतर का विज्ञान संश्लेषण है।इसलिए हमने उसको योग नाम दिया है। योग का अर्थ है जोड़ना-जोड़ना— जोड़ते जाना। उस समय तक जोड़ते जाना, जब तक कि एक ही न बच जाए।.50 'दोउ पुड़ि जोड़ि चिंगाई भाठी, चुया महारस भारी।' और महारस बरसने लगा।काम क्रोध दोइ किया बलीता'—काम, क्रोध दोनों पलीते बन गए अग्नि को जलाने में।'. . . छूटि गई संसारी।'जब उस मधुशाला में प्रवेश होता है, तभी संसार छूटता है। क्योंकि जब तक परमात्मा की शराब न मिल जाए, तब तक तुम्हें किसी न किसी तरह की शराब संसार में मांगनी ही पड़ेगी; अन्यथा जीयोगे कैसे?कुछ तो सहारा चाहिए, कुछ तो सुख चाहिए। बूंद-बूंद ही सही। सागर न मिले तो बूंद-बूंद मिले। कुछ तो सहारा, कुछ तो आशा चाहिए। तो तुम संसार में भटकोगे।लेकिन जैसे ही 'चुया महारस भारी, छूटि गई संसारी।'फिर संसार गया। इसलिए कबीर जैसे ज्ञानी तुमसे संसार छोड़ने को नहीं कहते। वे कहते हैं, महारस को बरसा लो, संसार छूट ही जाएगा। सिर्फ अज्ञानी

तुमसे कहते हैं, संसार छोड़ दो। ज्ञानी तुमसे कहते हैं, संसार छोड़कर तुम जाओगे कहां? तुम जहां जाओगे वहीं संसार बना लोगे। तुम अज्ञानी हो। अभी छोड़कर जाने की कोई भी जरूरत नहीं।मेरे पास लोग आते हैं, वे मुझसे पूछते हैं, हम सब छोड़ दें? हम हिमालय चले जाएं?हिमालय तुम क्या करोगे? हिमालय ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम हिमालय के पीछे क्यों पड़े हो? तुम जाओगे हिमालय—तुम ही जाओगे न? तो तुम जो यहां कर रहे हो, वही हिमालय में करोगे। सिर्फ हिमालय जाने से तुम भिन्न कैसे हो जाओगे?तुम यहीं रहो। हिमालय पर कृपा करो। तुम अपने को बदलो। तुम उस बड़े रस को उपलब्ध हो जाओ, छोटे रस अपने से छूट जाते हैं। तुम उनकी चिंता ही मत करो। उनकी चिंता करना भी घातक है। क्योंकि चिंता करने में उन पर ध्यान देना होता है। तुम ध्यान ही मत दो उन पर।जिसको हीरे मिल जाएंगे, क्या वह कंकड़-पत्थर हाथ में ढोता फिरेगा? क्या उसे हमें समझाना पड़ेगा, कि कंकड़-पत्थर छोड़ नासमझ! हीरे हैं, इनको उठा। वह हमारी प्रतीक्षा करेगा? वह कंकड़-पत्थर खुद ही छोड़ देगा। उसे पता भी न चलेगा कब छोड़ दिए कंकड़-पत्थर, कब भर लिए हीरे झोली में।'चुया महारस भारी, छूटि गई संसारीसुंनि मंडल में मंदला बाजै, तहि मेरा मन नाचै।'और अब शून्य आकाश में अनहद के बाजे बज रहे हैं। और अब मैं वहीं नाच रहा हूं।कबीर तुम्हें जहां दिखाई पड़ते हैं, वहां नहीं हैं। दिखाई तो पड़ते हैं देह में। वहां तो अब बस, जुड़ा हुआ एक धागा भर रह गया है। कबीर को खोजना हो, तो दूर शून्य गगन में खोजना। वहीं वे नाच रहे हैं। अगर तुमने कबीर को शरीर में देखा, तो तुम्हें अपने जैसा ही शरीर दिखाई पड़ेगा। वहां तो बस, जरा सा धागा जुड़ा रह गया। जैसे नाव बस जरा एक रस्सी से बंधी किनारे पर रही हो, छूटने को तैयार हो। छूट ही चुकी हो। तड़फ रही हो छूटने को।लेकिन असली कबीर को खोजना हो तो शून्य गगन में खोजना, क्योंकि

वहीं अब उनका नाच चल रहा है। जहां अनहद का बाजा बज रहा है; जहां वीणा बज रही है परमात्मा की, वहीं वे नाच रहे हैं।अब तुम उन्हें शरीर में न पा सकोगे। शरीर में देखोगे तो चूक हो जाएगी। सदा लोग इसी तरह चूके हैं बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, कबीर को, नानक को, मोहम्मद को। तुम शरीर में देखते हो, क्योंकि तुम अपने को शरीर में मानते हो। वही भ्रांति तुम उनकी तरफ भी लगाते हो।वहां वे नहीं हैं। वहां तो बस, जरा सा संबंध रह गया है; वह भी तुम्हारी करुणा के कारण। तुम्हारे प्रति करुणा के कारण। जुड़े हैं, ताकि शरीर का थोड़ा सा उपयोग कर लें तुम्हारे लिए। तुम शरीर के बिना न समझ पाओगे। थोड़ी तुमसे बात कह दें। जो मिला है, उसकी थोड़ी खबर तुम्हें दे दें। जो पा लिया है, उस तरफ तुम्हें भी गतिमान कर दें। थोड़ा इशारा कर दें। हाथ की अंगुलियों से इशारा कर लें, क्योंकि फिर अदृश्य हाथों को तुम न देख सकोगे। अन्यथा. . .'सुंनि मंडल में मंदला बाजै, तहि मेरा मन नाचै।गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।'और गुरु के प्रसाद से अमृत का फल मिल गया। अब सब सहज हो गया, सब शांत हो गया। अब परम आनंद, सहजानंद। अब उसमें रत्तीभर कमी नहीं रह गई।लेकिन कबीर सदा याद रखते हैं एक बात—गुरु प्रसादि। क्योंकि तुम्हारे यत्न से बहुत कुछ होगा, अंतिम घटना न घटेगी। तुम्हारे प्रयत्न से बहुत कुछ होगा; अंतिम घटना की तैयारी बनेगी। अंतिम घटना तो गुरु-प्रसाद से घटेगी।ऐसा क्यों है?क्योंकि तुम आखिरी क्षण तक अज्ञात में कैसे उतर पाओगे? अज्ञात तुम जानते नहीं हो। तुम तैयार भी हो जाओगे तो भी तुम ज्ञात को ही पकड़े रखोगे। डरोगे अज्ञात में जाने से। गुरु ही तुम्हें धक्का देगा। वही तुम्हें आश्वस्त करेगा। वही कहेगा, कूद जाओ। अगर आस्था हुई तो कूद सकोगे। कूदकर ही पाओगे, सब पा लिया। मिटकर ही सब पाया जाता है।तो जब तक तुम बच रहोगे, तब तक परमात्मा से मिलन न होगा। जरा सी बारीक रेखा

खिंची रहेगी तुम्हारे और परमात्मा के बीच में। और उसको मिटाने का एक ही उपाय है, कि गुरु तुम्हें धक्का दे दे।गुरु का मतलब है, जिस पर तुम्हारा भरोसा इतना है, कि वह अगर तुम्हें मरने को कहे तो तुम मरने को राजी हो। तो ही तो, वह जब तुम्हें धक्का देगा, तुम राजी रहोगे। वह तुम्हें दुश्मन न मालूम पड़ेगा; वह तुम्हें मित्र मालूम पड़ेगा। और उस पर आस्था इतनी है, कि तुम अज्ञात में छलांग लगाने को राजी हो जाओगे। तुम जैसे हो, वैसे मरने को राजी हो जाओगे जिस दिन, उसी दिन तो तुम्हारा परम रूप प्रकट होगा।'गुरु प्रसादि' !इसलिए कबीर इसे कभी नहीं भूलते। सारी यात्रा का अंतिम पड़ाव, वे सदा 'गुरु प्रसादि' से करते हैं।'गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहज सुषमना काछै।'अब सब हो गया, जो होना

था। पा लिया, जो पाना था। लेकिन पाया गुरु के प्रसाद से।'पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो, तन की तपति बुझानीकहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।''पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यौ'—आधा-आधा मिलने से सुख नहीं उपजता, दुख और बढ़ता है।मनस्विद कहते हैं, कि जितना मिलता है, उतना दुख बढ़ता है। क्योंकि उतने ही पूरे मिलने की आशा बढ़ती है। तुमने 'निन्यानबे का चक्कर'—ये शब्द सुने हैं। इसका मतलब यह होता है कि जिसके पास निन्यानबे हों, वह सौ की कोशिश में लग जाता है। क्योंकि जब तक सौ न हो जाएं, वह खटकती है कमी। निन्यानबे हैं, और एक कम है, तब तक सुख नहीं मालूम पड़ता। लेकिन वह चक्कर ऐसा है कि जैसे ही सौ हो जाते हैं, वैसे ही एक सौ एक हो जाएं, एक सौ दो हो जाएं—चक्कर चलता ही चला जाता है।इस संसार में तो पूरा कभी हो ही नहीं सकता, इसलिए इस संसार में कभी कोई सुखी हो नहीं सकता। सुख की आशा करो, लेकिन उपलब्धि कभी नहीं होगी। इस संसार में कुछ भी कभी

पूरा नहीं होता। कुछ न कुछ बाकी रहता है। कुछ न कुछ बाकी रहता है और जितना ज्यादा बाकी रहता मालूम होता है, उतनी पीड़ा बढ़ती जाती है।अब यह बड़े मजे की बात है। गरीब आदमी उतना परेशान नहीं होता, क्योंकि उसके पास एक रुपया भी नहीं है। निन्यानबे जिसके पास हैं, वह ज्यादा परेशान होता है। क्या मामला है? मामला यह है कि गरीब को अभी महत्वाकांक्षा ही नहीं जगती पूरा करने की। जरा भी नहीं है पास में, पूरा क्या करना? जरा सा भी टुकड़ा नहीं मिला है, पूरे की वासना कैसे जगे? तो गरीब को जो मिलता है, ठीक है।मैंने सुना है, एक सम्राट का एक नाई था। वह बड़ा प्रसन्न था। सम्राट भी ईर्ष्या करता था उससे। कि वह बड़ा मस्त आदमी था। सम्राट की मालिश करता, दाढ़ी बनाता, हजामत बनाता, गीत गुनगुनाता रहता, गपशप करता रहता। हमेशा प्रसन्न था।एक दिन उदास हो गया। फिर उसकी उदासी बढ़ती गई। सम्राट ने पूछा, क्या मामला है? उसने कहा, मेरी तनख्वाह बड़ा दें। तनख्वाह दुगुनी कर दी गई। सम्राट उसको प्रेम करता था। लेकिन कुछ हल न हुआ। तनख्वाह तिगनी कर दी गई, कुछ हल न हुआ। वह और भी सूखता गया, और दुबला हो गया!आखिर एक दिन सम्राट ने कहा, 'सुन! तू जंगल तो नहीं गया था?'उसने कहा, 'मैं गया था।''तू एक पीपल वृक्ष के नीचे तो नहीं था, जहां किसी ने आवाज दी हो कि ले, यह धन अपने साथ ले जा?'उसने कहा, 'अरे! आपको पता कैसे चला?'उसने कहा, 'तू वह मटका वापस लौटा दे। उसी के चक्कर में तू पड़ा है। एक दफे मैं भी उसी चक्कर में पड़ चुका हूं। वह पीपल के वृक्ष में एक यक्ष रहता है। और उसके पास एक मटका है, जिसमें निन्यानबे रुपए हैं। और जो भी वहां से निकलता है, वह लोगों से कहता है कि ले जाओ। यह मटका ले जाओ।'और जो भी ले जाता है, वह मुश्किल में पड़ जाता है। क्योंकि जब वह घर जाकर गिनता है निन्यानबे, तो सौ करने की

वासना पैदा होती है।ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसके पास निन्यानबे हों, और सौ करने की वासना पैदा न हो।वह वैसा ही स्वाभाविक है, जैसे तुम्हारा दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। पहले कभी नहीं जाती थी! वर्षों तक वह दांत वहां था, तुमने कभी चिंता न की, न जीभ ने उसकी खोज खबर ली। आज दांत टूट गया। उठते, बैठते, सोते, जागते जीभ वहीं-वहीं जाती है। वह जगह खाली हो गई। वह खाली जगह को भरने का मन होता है।वे जो निन्यानबे रुपए हैं, खतरनाक हैं। उस राजा ने कहा, 'तू जा वापस और मटका लौटाकर आ। मैं भी उस झंझट में पड़ चुका था। और बड़ी मेरी जान मुसीबत में पड़ गई थी।'क्योंकि जिस दिन से वह मटका उस नाई को मिल गया, वह मुश्किल में पड़ गया। उसे एक रुपया रोज मिलता था राजा से। उसने सोचा, कल उपवास ही कर लें। एक दिन की ही तो बात है। एक रुपया डाल देंगे, सौ हो जाएंगे। लेकिन जब वे सौ हो गए, तो लगा, एक सौ एक करने में और भी ठीक रहेगा। फिर बढ़ती गई बात। फिर कभी अंत नहीं आता।इस जगत में पूरा तो मिल ही नहीं सकता। पूरा तो सिर्फ परमात्मा ही मिल सकता है। और कोई चीज पूरी नहीं मिल सकती। पूरा तो तुम्हें तुम्हारा स्वरूप ही मिल सकता है और कोई चीज पूरी नहीं मिल सकती।इसलिए जिन्होंने खोजा है, जिन्होंने पाया है, उन्होंने कहा है, जब तक अपने को ही न पा लोगे, तब तक दुखी ही रहोगे, तड़पोगे।1.00 'पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो' तभी सुख उपजा।1.00¸ '. . . तन की तपनि बुझानी' और तब सब तप, ताप, सब प्यास, सब जलन, सब खोज खो गयी।

1.00 '. . . तन की तपनि बुझानी' .50 कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।' और उसी क्षण, जिस दिन पूरा स्वभाव प्रकट होता है, तब तुम बचते नहीं। तब तो जैसे छोटी सी ज्योति सूरज में समा जाए—फिर तुम्हारा दीया

अलग नहीं रह जाता। तुम व्यक्ति की तरह बचते नहीं। तुम परम-प्रकाश के साथ एक हो जाते हो—'जोतिहि जोति समानी।'इस शराब को बनाना सीख लो। घर-घर भट्टी होनी चाहिए इस शराब की। और घर-घर भट्टी होगी, तभी तुम इसे बना पाओगे। क्योंकि बाहर तो यह मिलती नहीं। किसी फैक्टरी में बनाई नहीं जा सकती। तुम ही जब कारखाने बन जाओगे इसे बनाने के; और तुम्हारी शराब तुम दूसरे को नहीं पिला सकते, तुम ही पी सकते हो। वहां शराबी और शराब, और साकी सभी एक हैं। वही पीने वाला है। वही पिलाने वाला है और वही है जिसे पीना है और जो पीया जाएगा।ऐसी मधुशाला तुम बन जाओ, तो ही तुम्हारे जीवन में, जिसकी तुम संभावना लिए हो वह पूरा हो सकता है। जिसके तुम बीज हो, वह प्रकट हो सकता है।और जब तक तुम्हारा बीज वृक्ष न बने, तुम तड़पोगे। तड़पोगे वृक्ष होने को। जब तक तुम्हारी गंगा सागर में न गिरे, तुम तपोगे। प्यास, जलन—तुम रोओगे विरह से। जब तक तुम्हारी भीतर की प्रेयसी और भीतर का प्रियतम मिल न जाएं, आलिंगनबद्ध न हो जाएं, तब तक तुम भटकोगे। खोजोगे और पाओगे नहीं।बहुत खोजा है बाहर। बहुत मधुशालाओं के द्वार खटखटाए, अब आखिरी मधुशाला का द्वार खटखटा लो। उसको पाते ही सब पा लिया जाता है। क्योंकि उसको पाने के बाद ही कुछ भी पाने को शेष नहीं रह जाता है।.50 'कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।' आज इतना ही।

अठारहवां प्रवचन

गंगा एक घाट अनेक

प्रश्नसार

जब आप पूना आए। तब यहां कुछ तोते थे; लेकिन अब एक वर्ष में ही न जाने कितने प्रकार के पक्षी यहां आ गए। क्या ये आपके कारण आ गए हैं? क्या आपका उनसे भी कोई विगत जन्म का वादा है?

आपसे प्रश्नों का समाधान तो मिलता है, पर समाधि घटित नहीं हो पा रही है। क्या करूं?

ज्ञानी का मार्ग भक्त के मार्ग से क्या सर्वथा भिन्न है? यदि होश हो तो प्रेम कैसे घटेगा?

कबीर किस गुरु के प्रसाद से आनंद विभोर हुए जा रहे हैं?

सत्य की उपलब्धि भीतर, फिर बाहर समर्पण पर इतना जोर क्यों?

पहला प्रश्नः इक्कीस मार्च को आपका पूना में इस जगह आगमन हुआ, तब यहां कुछ तोते थे; लेकिन एक साल में न जाने यहां कितने प्रकार के पक्षी आ गए हैं और हर रोज अपनी सुरीली आवाज में गाए चले जा रहे हैं। प्रश्न उठते हैं कि क्या ये आपके कारण आ गये हैं? क्या यहां आने से इनकी भी कोई आध्यात्मिक तरक्की संभव है? आपकी कौन-सी अभिव्यक्ति इन्हें सुहावनी लगती है—मौन या मुखर? क्या हमारी तरह आपने गत जन्म में उन्हें भी वायदा किया था जो अब पूरा हो रहा है?जीवन एक गहन प्रयोजन है। और वह प्रयोजन मनुष्य तक ही सीमित नहीं है, सीमित हो भी नहीं सकता। या तो प्रयोजन है तो पूरे अस्तित्व में है, या प्रयोजन कहीं भी नहीं है।मनुष्य अलग-थलग नहीं है; मनुष्य एक है। अगर पत्थर व्यर्थ ही हैं तो मनुष्य भी व्यर्थ है और अगर मनुष्य के जीवन में कोई सार्थकता है, तो पत्थरों के जीवन में भी सार्थकता होनी ही चाहिए।परमात्मा है तो उसका हस्ताक्षर सभी चीजों पर है। आदमी विशिष्ट नहीं है; सारी प्रकृति विशिष्ट है। तुम ही नहीं कोई विकास कर रहे हो; सारा अस्तित्व विकासमान है। पौधे, पक्षी, पत्थर-सभी ऊंचाइयों के शिखर को छूने के लिए यात्रा पर चल रहे हैं। धीमी होगी किसी की गति, तेज होगी किसी की गति, कोई बेहोश पड़ा होगा, कोई होश से चल रहा होगा; लेकिन मंजिल है। मंजिल का नाम ही परमात्मा है। और जब तक मंजिल न मिल जाए, तब तक एक बेचैनी बनी ही रहेगी। वह बेचैनी मनुष्य के भीतर ही है, ऐसा नहीं; वह सारे अस्तित्व में है।कठिनाई होती है हमें यह सोचकर, क्योंकि मनुष्य का अंहकार ऐसा मान लेता है कि परमात्मा सत्य, प्रेम, बस हमारी बपौती है। तो हमें अड़चन होती है।बुद्ध ने अपने पिछले जीवन की कहानियां कही हैं। वह जमाना था जब उस तरह की बातें कही जा सकती थीं; लोग उनका लाभ ले सकते थे। लोग सरल थे और मनुष्य अहंकारी न था। आज अगर कोई उस तरह की अतीत जीवन की कहानियां कहेगा तो भरोसा मुश्किल हो जाएगा। लोग बहुत जटिल हैं और

लोगों का अहंकार बहुत प्रगाढ़ है।बुद्ध ने कहा है, कभी मैं जंगल में एक हाथी था। जंगल में आग लग गई थी। सारे पशु-पक्षी भागे जा रहे थे।दुःख से कौन नहीं बचना चाहता है? तुमने पशु-पक्षियों को दुःख से बचने के लिए भागते देखा है, क्या उससे तुम्हें यह खयाल नहीं आता कि जो दुःख से बचना चाहते हैं वे सुख भी चाहते होंगे। जो दुःख से बचना चाहता है और सुख चाहता है, क्या तुम्हें खयाल नहीं
आता कि कभी अनजाने-जाने उसके हृदय में भी वह आकांक्षा जगती होगी, जो आनंद की है? पशु भी जानते हैं सुख, पशु भी जानते हैं दुःख, और उस पीड़ा को भी जानते हैं जो सुख-दुःख में उलझ कर मिलती है। कभी उनकी चेतना में भी वह क्षण आता है, जब दोनों के पार हो जाने का भाव उठता होगा। निश्चित ही वह विचार उतना स्पष्ट नहीं हो सकता जितना मनुष्य का। मनुष्य को भी कहां बहुत स्पष्ट है? कितने थोड़े-से मनुष्यों को स्पष्ट है! अधिक मनुष्यता तो पशु पक्षियों जैसी ही जीती है।तो बुद्ध ने कहा, सारे जंगल के पशु भागने लगे, मैं भी भागा। थक गया था। एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया क्षण भर विश्राम को। और जैसे ही मैंने पैर उठाया वहां से हटने को, एक खरगोश भागा हुआ आया, और जो जगह खाली हो गई थी मेरे पैर के उठाने से, उस जगह आकर बैठ गया। पैर उठा हुआ ऊपर हाथी का, खरगोश नीचे बैठ गया।बुद्ध ने कहा, मेरे मन में हुआ, मैं भी भाग रहा हूं प्राण को बचाने को, यह खरगोश भी भाग रहा है प्राण को बचाने को—प्राण को बचाने के संबंध में किसी में कोई भेद नहीं है। मेरे पास बहुत बड़ी देह है, इस खरगोश के पास बड़ी छोटी देह है। मेरे पैर के पड़ते ही यह विनष्ट हो जाएगा। लेकिन दुःख से सभी बचना चाहते हैं। सुख की सभी की आकांक्षा है। उसमें तो कोई भेद नहीं है, छोटे-बड़े का कोई फर्क नहीं। करूणा का आविर्भाव हुआ!और बुद्ध ने कहा कि मैं खड़ा रहा, जब तक कि यह खरगोश हट न जाए, क्योंकि मैं पैर रखूंगा तो यह मर जाएगा। आग बढ़ती गई, खरगोश भागा नहीं; वह सुरक्षित था। शायद उसने सोचा हो कि जब हाथी भी नहीं भाग रहा है तो कोई डर नहीं है। बड़ों के पीछे छोटे चलते हैं। तो वह बैठा ही रहा सुरक्षित। आग भयंकर हो गई और हाथी जल कर मर गया।बुद्ध ने कहा है, उस जन्म में ही मैंने मनुष्यत्व को पाने की क्षमता पाई—उस घड़ी में जब मैंने खरगोश पर करूणा की और मैं पैर को रोके खड़ा रहा। उसी क्षण मैंने मनुष्य होने की क्षमता अर्जित कर ली। आज मैं मनुष्य हूं उसी घड़ी के वरदान-स्वरूप।सारा जगत—पौधे भी. . . तुम्हें खयाल में न आते हो, लेकिन प्राण वहां संवादित है, प्राण वहां पुलकित है, वहां भी धड़कन है और वहां भी भाव की दशाएं हैं।

अब तो पश्चिम में विज्ञान बड़ी खोज कर रहा है। और जिन खोजों को महावीर और बुद्ध ने सारी दुनिया को दिया, लेकिन अब तक जो काव्य मालूम पड़ती थी; अब विज्ञान के आधार से वे तथ्य बनती जा रही हैं।पश्चिम में पिछले पांच वर्षों में बहुत से प्रयोग किए गए हैं, जिनसे यह पता चला कि पौधे बहुत संवेदनशील हैं। उनकी संवेदना अद्भुत है! और न केवल संवेदनशील है, बल्कि टेलीफैथिक हैं। और मनुष्य ने भी वह क्षमता खो दी है—दूसरों के विचार को पकड़ लेने की, दूसरे के विचार को पढ़ लेने की; उसमें भी पौधे सक्षम हैं। यह भरोसे की बात नहीं मालूम पड़ती। लेकिन अब तो विज्ञान ने बड़े प्रयोग कर लिए हैं।पौधा पकड़ता है दूसरे के विचार को भी।एक वैज्ञानिक पौधों पर काम कर रहा था कि उनमें संवेदना कितनी है। सर जगदीशचंद्र बसु ने जो काम अधूरा छोड़ दिया था, उसको वह पूरा कर रहा था—वह उनका एक शिष्य है, अमरीकी है—और चाहता था कि उन्होंने जो काम छोड़ दिए उसे आगे बढ़ाया जाए। तो एक पौधे के पास बैठा था, पौधे के साथ उसने तार जोड़ रखे थे विद्युत के। जैसे कि डाक्टर आपके हृदय की जांच करता है, कार्डियोग्राम लेता है, तो तार जोड़ देता है और फिर हृदय की धड़कन कागज पर ग्राफ बनाने लगती है—ऐसे उसने पौधे पर तार जोड़े दिए थे कि पौधे की क्या मनोदशा है, क्या धड़कन है उसके हृदय की? वह कागज पर ग्राफ बनने लगा था।वह ग्राफ बन रहा था, तभी उसने सोचा कि अगर मैं छुरी को उठाकर इस पौधे को आधा काट दूं तो क्या होगा? वह हैरान हो गया! ग्राफ पर तो खबर पहुंच गई। अभी उसने काटा नहीं है, अभी उसने छुरी उठाई नहीं है; सिर्फ एक भाव कि अगर मैं छुरी उठाकर आधा इसको काट दूं तो इसकी क्या भाव-दशा होगी? ग्राफ में तो घबड़ाहट आ गई। ग्राफ में तो कंपन आ गया—वैसा ही कंपन, जैसे कोई तुम्हारी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाता है, तब जैसा कंपन तुम्हारे कार्डियोग्राम में आ जाएगा, ठीक वैसा ही कंपन पौधे पर आ गया। लेकिन अभी कोई छुरा लेकर खड़ा भी न हुआ था। अभी किसी ने छुरा

उठाया भी न था। अभी सिर्फ भाव में बात उठी थी। लेकिन पौधे ने भाव को पकड़ लिया। पौधा भाव से भयभीत हो गया।इस वैज्ञानिक ने लिखा है कि पौधे को यह भूलने में कई दिन लगे, क्योंकि जब भी वह प्रयोगशाला के भीतर आता पौधा घबड़ा जाता। इस आदमी को पहचानने लगा कि यह आदमी खतरनाक है, इसके मन में एक बुरा विचार है।यह बात आई-गई हो गई। न इसने छुरा उठाया, न पौधे को काटा। लेकिन जब भी यह अंदर आता तो पौधा थोड़ा शंकित हो जाता, उसके ग्राफ में फर्क पड़ जाता। कोई बीस दिन लगे पौधे को यह बात भूलने में कि यह आदमी बुरा नहीं है, बीस दिन इसने काटा नहीं है, काटने का विचार नहीं किया। तब कहीं जाकर पौधा आश्वस्त हुआ।एक दूसरा वैज्ञानिक केंचुओं पर प्रयोग कर रहा था और केंचुओं को गर्म पानी में डाल रहा था, और यह देख रहा था वह कि गर्म पानी का क्या परिणाम होता है केंचुओं पर—तड़फते हैं, मर जाते हैं तत्क्षण, स्वीकार कर लेते हैं मरने को, या संघर्ष करते हैं बचने का? पास में ही एक कैक्टस का पौधा रखा था। उसके साथ तार जुड़े थे, उस पर भी प्रयोग चल रहा था। लेकिन यह तो आकस्मिक घटना घटी। जैसे ही उसने केंचुए को गर्म पानी में डाला, पौधा घबड़ा गया और पौधे का ग्राफ बदल गया। यह तो आकस्मिक था। यह किया नहीं था प्रयोग उसने। लेकिन यह जानकर वह हैरान हुआ कि न केवल तुम पौधों को हानि पहुंचाओ, तब पौधे के प्राण में पीड़ा होती है; तुम किसी भी जीवित चीज को नुकसान पहुंचाओ, पौधा कांपता है और घबड़ाता है।अब तो बहुत काम पौधे पर किये गए हैं। और एक अनूठी किताब पश्चिम में प्रकाशित हुई है; 'दि सिक्रेट लाइफ आफ दि प्लांट्स'। बाइबल और कुरान और धम्मपद की कीमत की किताब है। क्योंकि जो महावीर और बुद्ध कहे, उसे इस किताब ने परिपूर्ण रूप से सिद्ध करने की कोशिश की है कि पौधों का एक अज्ञात जीवन है जिसका हमें कोई पता नहीं।और अगर पौधों का अज्ञात जीवन है, तो पक्षियों का तो कहना ही क्या! पक्षी तो बहुत विकसित अवस्था है।वे जो पक्षी तुम्हें गीत गाते दिखाई पड़ते हैं, वे भी आकस्मिक नहीं आ गए हैं। तुम भी आकस्मिक नहीं आ गए हो। आकस्मिक
कुछ होता ही नहीं। इस संसार में आकस्मिक शब्द झूठा है। ऐक्सीडेंटल जैसी बात कुछ होती ही नहीं। यहां सभी चीजें तारतम्य में बंधी हैं। यहां जो भी घटता है, उसके आगे-पीछे बड़े सूत्रों का जाल है।तुम अगर यहां हो तो ऐसे ही नहीं, जन्मों-जन्मों का हाथ होगा। तुम्हें पता न हो, क्योंकि तुम्हें अपना पता ही कहां है! इसलिए जो पक्षी वृक्ष पर बैठकर गीत गा रहा है, उसे पता न हो कि इसी वृक्ष को उसने क्यों चुन लिया है? आज की सुबह ही गीत गाने को क्यों चुन लिया है? तुम्हें भी पता नहीं, मनुष्य को पता नहीं तो फक्षी को तो पता क्या होगा!लेकिन जगत में आकस्मिक कुछ भी नहीं है, अकारण कुछ भी नहीं है; एक विराट प्रयोजन प्रवाहित है। पत्थर से भी उस प्रयोजन का संबंध है, पहाड़ से भी उस प्रयोजन का संबंध है, पक्षियों से भी, पौधों से भी। एक विराट प्रयोजन सारे जगत को एक बड़ी तीर्थयात्रा पर ले जा रहा है।सब खोज रहे हैं। अहर्निश खोज चल रही है। उस खोज में कोई थोड़े आगे हैं, कोई थोड़े पीछे हैं। जो पीछे हैं, वे भी कभी आगे आ जाएंगे; जो आज आगे आ गए हैं, वे भी कभी पीछे थे।इसलिए तो अहिंसा का शास्त्र जन्मा। वह धर्म का शिखर था। जब धर्म की अनुभूति बड़ी प्रगाढ़ हो गई, तब अहिंसा का शास्त्र जन्मा; इस बात की प्रतीति जन्मी कि हम ही नहीं खोज रहे हैं सत्य को, सभी खोज रहे हैं। और सत्य की यात्रा से किसी को भी वंचित करना हिंसा है। और सत्य की यात्रा से किसी की भी जीवन-व्यवस्था को खंडित करना महापाप है।तुम किसी पक्षी को मार डाल सकते हो खेल में—पत्थर पड़ा था, गुलेल हाथ में थी, मार दिया। लेकिन तुम्हें पता नहीं है, तुमने एक बड़े प्रयोजन की यात्रा को हानि पहुंचा दी; तुमने एक जीवन की छोटी-सी धारा—जो खिल रही थी, गीत गा रही थी, किसी यात्रा निकली थी, कहीं पहुंचने की आकांक्षा से भरी थी—तुमने उसे खंडित कर दिया, तुमने व्यवधान खड़ा कर दिया।बन सके तो सहायता देना; न बन सके तो कम से कम बाधा मत देना।तो निश्चित ही जो पक्षी यहां आ गए हैं, अचानक नहीं आ गए हैं। अचानक कुछ होता ही नहीं है, इसे तुम सिद्धांत की तरह समझ लेना। वे भी तुम्हारे जैसे ही आ गए हैं।महावीर की पहली उपदेशना हुई तो जैन शास्त्रों में बड़ी मीठी कथा है कि महावीर जब पहली दफा बोले तो सुनने वाला कोई मनुष्य था ही नहीं। पर वे बोले। तो बाद में उनके शिष्य पूछने लगे कि आप किससे बोले? कोई मनुष्य तो मौजूद न था। तो महावीर ने कहा, जो तुम्हें दिखाई पड़ते हैं, तुम सोचते हो कि बस उनकी ही मौजूदगी सब कुछ है?जैन कथाएं कहती हैं, देवता मौजूद थे। निश्चित ही देवताओं को फहले खबर लगी होगी महावीर की। मनुष्यों से ज्यादा उनका चैतन्य विकसित है, ज्यादा

जागरूक हैं, ज्यादा दिव्य हैं। उनको पहले खबर लगी होगी। फिर पशुओं को खबर लगी होगी। फिर पक्षियों को खबर लगी होगी। फिर पौधों को खबर लगी होगी। फिर पत्थरों को, खनिजों को खबर लगी होगी। जितनी मूर्च्छा है, उतनी देर से खबर लगती है।मनुष्यों में भी तो सभी को एक साथ खबर नहीं लगती। मनुष्यों में भी पहले जो देवस्वरूप हैं, उनको खबर लगेगी; फिर जो मनुष्य-स्वरूप हैं उनको खबर लगेगी; फिर जो पशु-स्वरूप हैं उनको खबर लगेगी; फिर जो पक्षी-स्वरूप हैं उनको खबर लगेगी। ऐसे मनुष्यों में भी तो भेद होंगे।फिर महावीर की खबर मनुष्यों तक पहुंची, फिर जानवरों तक पहुंची, फक्षियों तक फहुंची। और जैन-शास्त्र कहते हैं कि फिर महावीर की उपदेशना में सभी मौजूद होते थे। अदृश्य लोग, अदृश्य जीवात्माएं, जो दिखाई नहीं पड़ती हैं वे भी; दृश्य, जो दिखाई पड़ते हैं वे भी; और दृश्य में भी वे जो हमें बहुत विकास में पीछे मालूम पड़ते हैं, वे भी मौजूद होने लगे।एक बड़ी अदभुत घटना है कि महावीर का एक शिष्य था गोशालक। बाद में वह बगावती हो गया और महावीर के विरोध में हो गया। महावीर कहते थे, जीवन में सभी कुछ नियति से बंधा है, भाग्य है और यहां सब जो होने को है, वही हो रहा है, और जो होने को है वही होगा। इसलिए मनुष्य व्यर्थ कर्ता का भाव न ले। भाग्य के सिद्धांत का सारा सार इतना है, कि तुम अपने अहंकार को निर्मित मत करो।शिष्य गोशालक के साथ महावीर एक जंगल सें गुजर रहे हैं। गोशालक को उनकी बातों पर शक है। गोशालक ने कहा कि आप कहते हैं, जो होना है वही होगा। यह पौधा लगा है, एक छोटा-सा पौधा लगा था। क्या कहते हैं आफ, यह बचेगा कि नहीं बचेगा?महावीर ने कहा, यह बचेगा। गोशालक ने उस पौधे को उखाड़कर फेंक दिया। वह महावीर को यह दिखला रहा था कि देखें, आप कहते हैं, बचेगा; यह नहीं बचता। कहां गया आपका सिद्धांत? वह खिलखिलाकर हंसने लगा। उसने कहा महावीर से बोले, अब कहें। महावीर ने कहा, थोड़ी प्रतीक्षा! थोड़े समय की जरूरत है।वे दोनों गांव चले गए। दुपहर वर्षा हुई। सांझ जब वे वापस लौट रहे थे, महावीर ने कहा, देख! उस पौधे ने फिर जड़ें जमा ली थीं। वर्षा हो गई थी, जमीन गीली हो गई थी। वह फिर खड़ा हो गया था। उसने जड़ें जमा ली थीं। महावीर ने कहा, यह पौधा बचेगा। और कहते हैं, गोशालक की भी हिम्मत न पड़ी दुबारा उसे तोड़कर फेंकने की।सामने ही खड़ा था!जो हमें नहीं दिखाई पड़ते जीवन के सूत्र, वे भी अहर्निश संलग्न हैं। वृक्ष भी अकारण नहीं हैं, पशु भी अकारण नहीं हैं, पक्षी भी अकारण नहीं हैं क्योंकि अकारण अस्तित्व नहीं है।तुम जैसे आए हो, वैसे ही सभी आए हैं। तुम जहां से आए हो, वहीं से सभी आए हैं। तुम जहां जा रहे हो, वहीं सभी जा रहे हैं। यह सिर्फ मनुष्य का अहंकार है, जो सोचता है, हम परमात्मा को खोज रहे हैं, कि हम धर्म को खोज रहे हैं। सभी की खोज वही है। और निश्चित ही जिसकी खोज है उसकी तरक्की भी है; जिसकी खोज है उसका विकास भी है।दो-तीन दिन पहले तूफान आया और एक पक्षी जो निरंतर यहां गीत गा रहा था और निरंतर प्रसन्न था और प्रमुदित था; तूफान में उसके पंख भीग गए होंगे; तूफान से लड़ता रहा होगा, क्षत-विक्षत हो गया था। सांझ जब मैं खाना खाने बैठा; वह आकर पैर में गिर पड़ा और मर गया। विवेक मुझसे पूछने लगी कि क्या इसे इस भांति मरने से कुछ लाभ होगा? क्या इस भांति आपके चरणों में मरने से इसे कुछ लाभ होगा?निश्चित ही लाभ है, क्योंकि वह कहीं भी मर सकता था। और एक क्षण नहीं लगा उसे मरने में। तो बड़ी चेष्टा करके ही वहां तक पहुंच पाया था। उसके पंख बिलकुल क्षत-विक्षत थे। तूफान भयंकर था। वर्षा जोर से हो रही थी। उसका कहीं भी गिर पड़ना स्वाभाविक था। वह वहां तक पहुंच सका वापस और एक क्षण भी नहीं जिया, एक सांस भी उसने नहीं ली, गिरा और मर गया। कोई प्रबल आकांक्षा उसे ले आई होगी। उसे भी पता नहीं होगा। निश्चित ही उसका लाभ है। इतनी प्रबल आकांक्षा जब हो तो जीवन में एक केंद्र निर्मित होता है—उसी केंद्र का नाम तो आत्मा है। वह पक्षी आत्मवान होकर मरा। वह पक्षी संकल्पवान होकर मरा। वह पक्षी यूं ही नहीं मर गया; कुछ उपलब्ध करके मरा। एक चेष्टा थी। उस चेष्टा में वह हारा नहीं। तूफान छोटा पड़ गया, पक्षी बड़ा हो गया। आंधी को हरा दिया। आंधी मिटा न पाई उसे; मार डाला, मिटा न पाई। पक्षी जीत कर मरा है, अपनी मर्जी पूरी करके मरा है और परम शांति से मरा है। कहें कि पक्षी समाधिस्थ होकर मरा है, परम समाधान में मरा है। जहां आना चाहता था, वहां आ गया है। अब मरने में उसे कुछ डर नहीं है, कोई भय नहीं है।निश्चित ही उनका भी विकास हो रहा है।और पूछा है कौन-सी अभिव्यक्ति उन्हें सुहानी लगती है—मौन या मुखर?उन्हें दोनों से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि मौन और वाणी दोनों ही एक ही सिक्के के दो

फहलू हैं। मनुष्य के लिए मौन महत्वफूर्ण मालूम फड़ता है, क्योंकि वाणी महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है। पक्षी के लिए कोई भाषा नहीं है इसलिए न तो पक्षी को वाणी का कोई मूल्य है और न मौन का कोई मूल्य है। क्योंकि मौन भी वाणी का ही हिस्सा है। जब तुम नहीं बोलते, तब मौन; जब तुम बोलते हो, तब वाणी—दोनों ही बोलने के ही दो पहलू हैं। पक्षियों, पौधों को, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उनको तो एक ही भाषा समझ में आती है, वह उपस्थिति की भाषा है, मौजूदगी की भाषा हैं। तुम मौजूद हो तो वे समझते हैं। तुम पास हो, तुम्हारे प्रेम की और करूणा की भाषा है—वे उसे एहसास करते हैं। कुछ ही दिन पहले हम एक सूफी कहानी पढ़ रहे थे कि एक युवक जब भी समुद्र के किनारे जाता तो हजारों पक्षी उसके पास आकर खेलते, उसके कंधों पर सवार हो जाते, उसके सिर पर बैठ जाते, नाचते और आनंदित होते। यह अनूठा दृश्य था। गांव भर के लोग भरोसा नहीं कर पाते थे, क्योंकि कोई भी दूसरा जाता तो पक्षी भाग जाते। और जब यह युवक आता समुद्र के तट पर तो बड़ी भीड़ भर जाती, बड़ा उत्सव, एक मेला लग जाता पक्षियों का।एक दिन उस युवक के बाप ने कहा कि हमने सुना है कि तुम्हारे पास बहुत पक्षी आते हैं, जब तुम सागर के तट पर जाते हो। मैं तो बूढ़ा हूं, चल भी नहीं सकता, जा भी नहीं सकता। तुम ऐसा करना, एक-दो पक्षी पकड़ कर ले आना, तो मुझे भी भरोसा आ जाए।उस दिन युवक गया, लेकिन पक्षी नहीं आए। उड़े दूर-दूर, सिर के पास मंडराए, लेकिन कंधों पर न बैठे। आज युवक वही न था, जो कल तक था; आज बात बदल गई थी। आज प्रेम न था; आज आनंद न था आज उनके साथ खेलने की वह सहज वृत्ति, भाव न था। आज एक धंधा था मन में, आज एक वासना थी, एक चाह थी। आज दुश्मनी थी। आज कठोरता थी, हिंसा थी मन में।बहुत-से फकीरों के जीवन में ये कहानियां हैं। फ्रांसिस के जीवन में बड़ी कहानियां हैं कि वे जहां जाते, पक्षी उनके साथ जाते। जाना ही चाहिए। संत फ्रांसिस जैसा प्रेम से भरा आदमी मुश्किल से हुआ है। यह ठीक ही है कि वे पक्षी भी प्रेम की भाषा समझ पाए और संत फ्रांसिस के निकट आ सके।कहते हैं, संत फ्रांसिस नदी में जाते तो मछलियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती, नदी पार करना मुश्किल हो जाता।सेंट फ्रांसिस के विरोध में था पोप। क्योंकि जब भी कोई संत पैदा होता है, तो जो संप्रदाय है, चर्च है, पुरोहित है, वह तो विरोध में हो ही जाता है, क्योंकि वह खतरा है संत। संत की कोई व्यवस्था तो होती नहीं; संत तो सहज होता है। संप्रदाय की व्यवस्था होती है; संत तो सब तोड़ दे।तो पोप ने फ्रांसिस को बुलवाया। फ्रांसिस सैकड़ों मील पैदल चल कर आया। जब पोप के आंगन में आ कर फ्रांसिस खड़ा हुआ तो हजारों पक्षी आ गए। वे फ्रांसिस के प्रेमी थे। पोप ने कहा, इस आदमी को कुछ भी कहना ठीक नहीं। जिसकी भाषा पक्षी भी समझते हैं, अब उससे विवाद भी क्या करना? यह जो भी कहता होगा, ठीक ही कहता होगा।वह पोप निश्चित ही समझदार आदमी रहा होगा। उसने विवाद नहीं किया। उसने कहा, जिसकी भाषा पक्षी भी समझते हैं, वह ठीक ही कहता होगा। क्योंकि पक्षी कोई तर्क तो समझते नहीं, शास्त्र नहीं समझते, सिर्फ हृदय समझते हैं।तो, न तो उन्हें संबंध है इस बात से कि मैं क्या बोल रहा हूं, न इस बात से कोई संबंध है कि मैं चुप बैठा हूं। पक्षियों और पौधों को क्या लेना-देना है। वे कोई भाषा तो जानते नहीं। सब भाषा आदमी की है। मौन भी आदमी का है। पक्षी तो मौन और भाषा दोनों के पार हैं। वहां तो सिर्फ एक प्रेम के आह्लाद को समझा जाता है, एक अस्तित्व को, एक उपस्थिति को समझा जाता है।और जिस दिन तुम भी वैसी ही अवस्था को उपलब्ध हो जाओगे, उस दिन जो मैं कह रहा हूं, वह तो तुम समझ ही लोगे; जो मैं हूं, वह भी तुम समझ लोगे। और वही असली बात है। वही समझने की बात है।जो मैं कह रहा हूं, अगर तुम उसी को समझते रहे तो तुम मुझसे चूक ही जाओगे। पूरा समझ लो जो मैं कह रहा हूं, तो भी तुम मुझसे चूक जाओगे क्योंकि वह पूरा भी बहुत अधूरा है।कृष्ण की गीता को तुमने अगर समझ लिया तो कृष्ण की बांसुरी का एक स्वर समझा, बस; कृष्ण गीता से बहुत बड़े हैं। यह तो एक स्वर है। ऐसे करोड़ स्वर कृष्ण से पैदा हो सकते हैं। तुमने अगर गीता को ही कृष्ण समझ लिया तो तुम भूल में पड़ गए। जैसे तुमने मेरी अंगुली को ही मुझे समझ लिया; अंगुली तो एक इशारा थी। अंगुली से मैं बड़ा हूं। सभी शब्द अंगुलियां हैं। सभी गीताएं, सभी कुरान अंगुलियां हैं। उनको समझना। उन पर रुकना मत। उनको तुम पूरा भी समझ लो तो भी बहुत सार नहीं है। उनके पार जाना जरूरी है, तभी पूरे पर पकड़ आती है। पूरा शब्द के पार है और पूरा मौन के भी पार है।जहां मौन और भाषा दोनों खो जाते हैं, वहीं ध्यान है।तुम्हें मुश्किल होगी यह बात जानकर क्योंकि साधारणतः तुम्हें मैं समझता हूं कि मौन हो जाना ध्यान है। वह समझाने के लिए है। क्योंकि अभी तो तुम्हें मौन होना ही

मुश्किल है। अभी तो तुम आंख बंद करो, मुंह बंद करो तो भी भीतर वाणी चलती है, शब्द चलते हैं, भाषा तैरती है, बोलना जारी रहता है। अभी तो मौन ही हो जाओ तो बहुत मुश्किल है। मौन जब तुम हो जाओगे, तब मैं तुमसे कहूंगा, अब तुम मौन भी छोड़ दो। तभी ध्यान का जन्म होगा।भाषा छोड़ो, तब मौन का जन्म होता है। लेकिन मौन में भी मन शेष रहता है। इसलिए तो हम उसे मौन कहते हैं। मन ही बचा बिना भाषा का—इसलिए मौन। फिर वह भी छूट जाए। सिक्का पूरा ही फेंकना है, एक पहलू फेंकने से न होगा। भाषा भी गई, मौन भी गया, तब जो बच रहा, वही ध्यान है। उस ध्यान में तुम्हें समझ में आ जाएंगे पक्षियों के गीत भी; वृक्षों में बहती हवाओं का कोलाहल भी; फूलों में चलती गतिविधि भी; पृथ्वी में छिपा रहस्य, आकाश में छिपा रहस्य—सभी तुम्हें समझ में आ जाएगा।तुम चुप हो जाओ पहले और फिर चुप्पी भी छूट जाए, तब तुम में और अस्तित्व में कोई भेद नहीं रह जाता। तब तुम्हारे जीवन में भी बड़े अनूठे फूल खिलेंगे और पक्षियों जैसे अनूठे गीतों का जन्म होगा। तुम भी नाच सकोगे कबीर जैसा। तुम भी कह सकोगे : राम रतन धन पाया!

दूसरा प्रश्न : आपसे प्रश्नों का समाधान तो मिलता है, पर समाधानों से समाधि घटित क्यों नहीं हो पा रही है? समाधानों में मुझे क्या जोड़ना आवश्यक है?समाधानों से समाधि कभी घटित नहीं होती। उस भूल में मत पड़ जाना। तुम्हारे प्रश्नों का समाधान भी हो जाए अगर, तो भी समाधि घटित न होगी, क्योंकि तुम तो भीतर वैसे के वैसे रहोगे। प्रश्न हल हो गए, तुम थोड़े ही हल हो गए! जब तुम हल हो जाते हो, तब समाधि घटित होती है। प्रश्न का उत्तर तो समाधान लाता है; तुम्हारा उत्तर, तुम्हारे पूरे जीवन को उत्तर मिल जाता है जिस क्षण, उस क्षण समाधि घटित होती है।तो प्रश्नों के उत्तर तो मैं दे सकता हूं, क्योंकि प्रश्न तुम पूछ सकते हो; लेकिन तुम्हारा उत्तर तो तुम्हें खोजना पड़ेगा। तो अगर मेरे प्रश्न और उनके समाधान इतना ही कर सकें कि तुम्हें सजग कर दें और तुम्हें उस यात्रा पर गतिमान कर दें, जहां समाधि उपलब्ध होती है, तो बस काफी है। ये तो मील के पत्थर हैं, इनको पकड़ कर मत बैठ जाना; ये मंजिल नहीं हैं।मील के पत्थर पर तीर बना रहता है—और आगे जाना है, और आगे जाना है! जो भी मैं तुमसे कह रहा हूं, हर उत्तर पर तीर लगा है—और आगे जाना है, और आगे जाना है! —जब तक तुम न हल हो जाओ! तुम एक उलझन हो। तुम्हारे प्रश्न तो तुम्हारी उलझन से पैदा हो रहे हैं। प्रश्नों के कारण थोड़े ही तुम उलझे हुए हो; तुम्हारी उलझन के कारण प्रश्न पैदा हो रहे हैं। प्रश्न तो केवल ऊपर के सिंपटम्स हैं। जैसे किसी आदमी को बुखार चढ़ा, शरीर गरम है—अब शरीर गरम होना थोड़ी बीमारी है! वह तो केवल लक्षण है। तुम बर्फ ले कर ठंडा मत करने लगना उसके शरीर को। ठंडा कर भी दो तो हो सकता है कि मरीज बिलकुल ठंडा ही हो जाए। यह शरीर का गरम होना बीमारी नहीं है; शरीर के भीतर कोई बहुत उपद्रव मचा है, कोई गृह-युद्ध चल रहा है, उसकी वजह से सारा शरीर उत्तप्त हो गया है। उस गृह-युद्ध को मिटाना है। उसके लिए औषधि खोजनी होगी।तुम्हारे प्रश्न तुम्हारी भीतर की आंतरिक उलझन से पैदा होते हैं। मैं एक प्रश्न हल कर दूंगा; तुम्हारी आंतरिक उलझन हजार नए प्रश्न खड़े करती जाएगी। यह बीमारी सदा चल सकती है। इसका कोई अंत नहीं है।मनुष्य ने करोड़ों प्रश्न पूछे हैं, करोड़ों उत्तर दिए गए हैं। ऐसा कोई प्रश्न नहीं है, जिसका उत्तर न दिया गया हो; लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? उत्तर किताबों में बंद रहते हैं, आदमी अपनी मुसीबत में।उत्तर से कोई उत्तर नहीं मिलता। उत्तर से तुम्हें इतना ही दिखाई पड़ जाए कि तुम्हारे भीतर तुम्हारी आत्मा ही रुग्ण है और वहां कुछ करना जरूरी है . . .। इसलिए तो मेरा सारा जोर ज्ञान पर नहीं है, सारा जोर ध्यान पर है। ध्यान का अर्थ है : भीतर की आत्मिक उलझन को सुलझाना है और ज्ञान का अर्थ है : तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर समझ लो।तुम पूछोगे आज, मैं तुम्हें समझाऊंगा, समझ में भी आ जाएगा : तुम यहां से जा भी न पाओगे, रास्ते पर भी न पहुंच पाओगे कि हजार प्रश्न खड़े हो जाएंगे। और अगर तुम बहुत कुशल हो, ज्यादा बीमार हो, क्रानिक हो तो यहीं बैठे-बैठे जब मैं तुम्हें उत्तर दे रहा हूं, तभी तुम्हें पच्चीस प्रश्न खड़े होते रहेंगे।उत्तर से कोई प्रश्न हल नहीं होने वाला। तुममें प्रश्न ऐसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। अब पत्तों को काट दो, इससे क्या होता है? एक पत्ता काटो तो तीन पत्ते लगते हैं। वृक्ष समझता है, तुम कलम कर रहे हो। जड़ तो तब कटेगी, जब तुम ध्यान से जुड़ोगे। ज्ञान से जुड़ने से थोड़ी-बहुत राहत मिल सकती है।इसलिए कबीर ने कहा है कि ज्ञान गुड़, ध्यान महुआ और जीवन के अनुभव की भट्टी में बनती है शराब; और वह शराब ही समाधि है। जीवन की भट्टी में, जीवन के अनुभव से! इसलिए कच्चे जो भागना चाहते हैं; जो जीवन के अनुभव से बचना चाहते हैं; जो कहते हैं, हमें बचाओ—उनको नहीं

बचाया जा सकता। तुम्हें अनुभव से तो गुजरना ही पड़ेगा।सस्ते समाधि नहीं मिलती। उसकी कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी। तुम्हें जीवन के अनेक-अनेक रास्तों पर भटकना ही पड़ेगा। बहुत द्वार खटखटाने पड़ेंगे। कूड़ा-कर्कट बटोरना पड़ेगा। बड़ी व्यर्थता को जीना पड़ेगा। दुःख और विषाद को झेलना पड़ेगा। उस सबसे तुम पकोगे। वही तो जीवन की भट्टी है। लेकिन ध्यान का महुआ अगर न हो तो भट्टी तो जलती रहेगी, शराब तैयार न होगी।तो ध्यान का महुआ लेकर जीवन की भट्टी से भागना मत। बहुत से लोग भाग जाते हैं। ध्यान का महुआ हाथ लगा कि वे चले हिमालय। वे भट्टी को छोड़कर ही भाग रहे हैं, महुए को ही लेकर क्या करोगे? बिना भट्टी के शराब न बनेगी। महुए से थोड़े ही नशा आता है! महुए को आग से गुजरना जरूरी है।और कबीर बड़ी सीधी बात कहते हैं। वे कहते हैं, ज्ञान ज्यादा से ज्यादा गुड़। अगर महुए की शराब बना ली तो थोड़ी तिक्त होगी अगर गुड़ पास न हो, बस। नशा तो चढ़ जाएगा।तो बिना ज्ञान के भी समाधि उपलब्ध हो सकती है, लेकिन ज्ञान मात्र से समाधि उपलब्ध नहीं होती। कबीर कोई बहुत बड़े ज्ञानी थोड़े ही हैं। जो प्रश्न तुम मुझसे पूछ रहे हो, वही अगर तुम कबीर से पूछते तो तुम उत्तर की आशा नहीं कर सकते थे। कबीर तो बेपढ़े-लिखे आदमी हैं। कबीर तो बिलकुल गंवार हैं। तुम उनसे शास्त्रों की पूछो, उन्हें कुछ पता नहीं। हां, सत्य की पूछो तो उन्हें फता है। शब्दों की पूछो, उन्हें कुछ पता नहीं। निःशब्द की पूछो तो वे इशारा कर देंगे।कबीर तो बेपढ़े-लिखे हैं, न सुसंस्कृत हैं, न शास्त्री हैं, न किसी विश्वविद्यालय में कोई शिक्षा पायी है; बस जीवन की भट्टी में जल कर ही जो पाया है, वही पाया है।हां, बुद्ध से पूछो तो तुम्हें उत्तर दे सकेंगे वे सभी—राजपुत्र हैं, सुशिक्षित हैं; जीवन की भट्टी में भी जले हैं, ज्ञान का गुड़ भी हाथ है। तो कबीर की शराब तो जिसको गांव में लोग ठर्रा कहते हैं—बिलकुल घरु, देसी, शुद्ध! वह कोई फ्रांस से आई हुई शैम्पेन नहीं है। हां, बुद्ध शैम्पेन दे सकते हैं। परिष्कृत है! लेकिन जिसको समाधि चाहिए, क्या लेना-देना कि शराब घरु थी कि फ्रांस में बनी थी? कोई लेना-देना नहीं है। जिसे मस्त हो कर नाचना है, उसके लिए ठर्रा भी काफी है।तो कबीर कहते हैं, ज्ञान ज्यादा से ज्यादा गुड़! पकड़ ली उन्होंने बात कि थोड़ा मिला दोगे तो थोड़ी स्वादिष्ट होगी, बस इतनी बात है। वैसे स्वाद कितनी देर रहता है?—जरा-सा! जब मुंह में गई और कंठ तक पहुंची, तब तक; फिर जब नीचे उतर गई, आकंठ डूब गए उसमें, फिर कहां स्वाद! किसको स्वाद! सब खो जाता है।समाधि को कबीर शराब कहते हैं—जीवन के अनुभव से मिलेगी, ध्यान के महुए से मिलेगी। ज्ञान का थोड़ा गुड़ रहा पास तो अच्छा।तो मेरे प्रश्न-उत्तरों से, मेरे बोलने से अगर तुम थोड़ा-सा गुड़ जमा कर लो, बस उतना काफी है। लेकिन अगर गुड़ ही गुड़ इकट्ठा कर लो, महुआ पास न हो, जीवन का अनुभव पास न हो तो वह गुड़ मिठास तो न देगा, बड़ी सड़ांध पैदा करेगा।पंडित सड़ जाता है। उसके पास गुड़ ही गुड़ है। उससे दुर्गंध उठने लगती है; उससे मिठास नहीं उठती। वह गुड़ का ही धंधा करने लगता है। तुम गुड़ के व्यवसाय में मत पड़ जाना। थोड़ा-सा गुड़ पास रहे, अच्छा। इसलिए मैंने कहा कि सोने में थोड़ी सुगंध आ जाती है। अन्यथा सोना तो ऐसे ही सोना है, कोई सुगंध की जरूरत नहीं है। लेकिन समाधि में थोड़ी सुगंध आ जाती है।मेरे प्रश्नों से, मेरे उत्तरों से कोई समाधान तो मिल सकता है, समाधि नहीं मिल सकती। और जब तक समाधि न मिले, तब तक समाधान भी क्या समाधान है?समाधि ही समाधान है। उसके बाद फिर कोई प्रश्न नहीं उठते। नहीं कि तुम्हें सब प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं; समाधि का अर्थ है, वहां प्रश्न उठने बंद हो जाते हैं, उत्तर की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम निष्प्रश्न हो जाते हो—तब समाधि की दशा। तब तुम नाचोगे, गाओगे; पूछोगे नहीं। तब तुम्हारे जीवन में शब्दों का जो बहुत बड़ा व्यापार चलता था, वह बंद ही हो जाएगा। तब तुम पहली दफा अस्तित्व के साथ सीधे-सीधे मिलोगे, साक्षात्कार होगा।मुझे सुनो! उस सुनने से बस एक बात सीख लो कि महुए खोजने हैं, महुए बीनने हैं। झाड़ मैं तुम्हें बताए देता हूं, बीनने तुम्हें ही होंगे। कोई दूसरा तुम्हारे लिए नहीं बीन सकता।यह तो जीवन की शराब है, यह उधार नहीं मिल सकती। यह तुम्हें ही निचोड़नी होगी और तभी इसका महारस तुम्हारे ऊपर बरसेगा।ध्यान में जाओ! ध्यान में डूबो। ध्यान में मिटो! ध्यान में मरो! ध्यान बचे, तुम न बचो। वहीं समाधि है। वहीं समाधान है।

तीसरा प्रश्न : ज्ञानी का मार्ग भक्त के मार्ग से क्या सर्वथा भिन्न है? जिस होश की आप चर्चा करते हैं, वह प्रेमी का मार्ग है या ज्ञानी का? यदि होश हो तो प्रेम कैसे घटेगा?तीन संभावनाएं हैं। एक, कि कोई व्यक्ति ज्ञान के मार्ग से खोजे। जो व्यक्ति ज्ञान के मार्ग से खोजेगा, ध्यान उसकी विधि होगी, ध्यान उसका रास्ता होगा। जिस दिन उपलब्धि होगी, समाधि

फलेगी, जीवन में चैतन्य का फूल लगेगा, उस दिन वह अचानक पाएगा कि करता तो जीवन भर ध्यान रहा और समाधि मिली; लेकिन अब समाधि के साथ अचानक प्रेम का आविर्भाव हुआ है। प्रेम फल की भांति आता है ध्यानी को। ध्यान साधन बनता है और प्रेम फल की भांति आता है। परिणाम बनता है।दूसरा मार्ग है, कि तुम भक्ति के मार्ग से चलो। भक्ति के मार्ग पर प्रेम साधन है। और जब मंजिल आती है और भक्त मंदिर पर पहुंचता है तो अचानक चकित हो जाता है कि ध्यान की लवलीनता उपलब्ध हो गई है। वह परिणाम है।तो, जो ध्यान के मार्ग से चलते हैं, वे प्रेम को पाते हैं अंत में; जो प्रेम के मार्ग से चलते हैं, वे ध्यान को पाते हैं अंत में। ज्ञानी भक्त हो जाते हैं, भक्त ज्ञानी हो जाते हैं।और एक तीसरा मार्ग है कि तुम दोनों पर एक साथ चल सकते हो। तुम प्रेम को भी साथ साध सकते हो। तुम ध्यान को भी साथ साध सकते हो। तब तुम प्रेमी-भक्त, ज्ञानी-भक्त या भक्त-ज्ञानी हो।मेरी पूरी चेष्टा यही है कि तुम दोनों साथ-साथ साध लो। क्यों इतनी देर भी प्रतीक्षा करनी! ध्यान के साथ ही प्रेम साधा जा सकता है। और जब ध्यान के साथ प्रेम को साधोगे तो तुम्हारे ध्यान में एक रससिक्तता होगी जो खाली ध्यान साधने वाले में नहीं होती। उसमें प्रेम तो होता नहीं।इसलिए खाली ध्यानी रूखा, मरुस्थल जैसा हो जाता है, उसमें मरुद्यान नहीं होते। उसमें तुम कहीं वृक्षों की छाया न पाओगे। वह रूखा हो जाएगा, कठोर हो जाएगा। तुम उसको पाओगे कि जीवन के प्रति उसके मन में एक उपेक्षा है, एक गहरी उदासी है। वह जीवन की तरफ पीठ कर लेगा, भगोड़ा हो जाएगा।अगर तुम ध्यान ही ध्यान साधोगे तो प्रेम फलेगा अंत में, लेकिन पूरे रास्ते वह जो प्रेम की वर्षा साथ-साथ हो सकती थी, उससे तुम वंचित रह जाओगे। मैं कहता हूं, क्यों वंचित रहना?जो व्यक्ति प्रेम को साधेगा, उसके जीवन में प्रेम तो रहेगा, रस रहेगा, माधुर्य रहेगा; लेकिन ध्यान से जो शांति फलित होती है, वह जो परम शून्यता फलित होती है, वह फलित नहीं होगी। उसके जीवन में रंग तो होगा, प्रसन्नता भी होगी; लेकिन प्रसन्नता के भीतर शून्यता की शांति नहीं होगी। तो कभी-कभी तुम पाओगे कि उसका परमात्मा भी एक रागरंग है, उसकी भक्ति भी एक रागरंग है।ये दोनों ही थोड़े अपंग होंगे—एक-एक पैर से चलने की कोशिश कर रहे हैं। और ये दोनों एक-दूसरे के विपरीत होंगे, क्योंकि मार्ग पर ध्यानी को पता नहीं है कि अंत में प्रेम भी आ जाता है; और मार्ग में प्रेमी को भी पता नहीं है कि अंत में ध्यान भी आ जाता है। तो ध्यानी कहेगा, क्या व्यर्थ ही पूजा-प्रार्थना में लगे हो, किसके लिए हाथ जोड़ रहे हो? वहां कोई भी नहीं है। आंख बंद करो, परमात्मा भीतर है। गिराओ मंदिरों को, हटाओ मस्जिदों को—इनसे क्या सार है?ज्ञानी ब्रह्मज्ञान की बात करेगा। और भक्त? भक्त कहेगा, क्या आंख बंद करके बैठे हो? सब तरफ परमात्मा की लीला हो रही है। देखो, आंख खोलो।ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर औरत हुई—राबिया। वह ध्यानी थी। एक भक्त हसन नाम का फकीर, उसके घर में मेहमान था। सुबह सूरज उगा और हसन बाहर नाचने लगा। क्योंकि, भक्त को तो सभी इशारे उसी के हैं—सूरज उगे तो वही उगा; फूल खिले तो वही खिला; पक्षी गाए तो वही गाया। वही दिखायी पड़ता है। बाकी तो सब रूप रह जाते हैं, भीतर वही दिखाई पड़ता है। तो हसन नाचने लगा और हसन ने जोर से आवाज दी कि राबिया, क्या भीतर बैठी है अंधेरे में? बाहर आ, देख कैसा सूरज निकला है! देख, परमात्मा कैसे प्रकट हुए हैं!राबिया ने भीतर से ही कहा : हसन! मैं आंख बंद किए हूं और मैं निश्चित ही भीतर हूं। और मैं तुमसे कहती हूं, तुम भी भीतर आ जाओ। बाहर के सूरज को देखने से क्या होगा? हम भीतर उसी को देख रहे हैं जिसने सूरज को बनाया।यह प्रेमी और भक्त का विरोध है। मगर दोनों अधूरे हैं। दोनों अधूरे हैं, एकांगी है। दोनों पहुंच जाते हैं। इसलिए किसी को अगर एकांगी ही हो कर चलना हो—कुछ लोग शौकीन होते हैं, एक टांग से ही उनको यात्रा करनी है, क्या करोगे?—तो ठीक है, मौज है, स्वतंत्रता है, ऐसे ही चलो। किसी ने यह ही तय कर लिया कि एक टांग से ही परमात्मा के मंदिर तक पहुंचना है, पहुंचो। लेकिन तुम अचानक मंदिर के द्वार पर पाओगे कि परमात्मा दोनों ही टांगें पसंद करता है, नहीं तो वह दो देता ही नहीं। उसने दो दी हैं, उसका प्रयोजन है। उसने दो पंख दिए हैं कि उड़ो संतुलन से। उसने दो पैर दिए हैं कि चलो संतुलन से। जीवन में एक संतुलन हो। संतुलन यानी संयम।तो, कभी-कभी भक्ति भी अति हो जाती है, वह भी असंयम है; और ध्यान भी अति हो जाता है, वह भी असंयम है। ध्यान अगर ऐसा हो जाए कि तुम सब बाहर को बिलकुल भूल ही जाओ तो बाहर भी परमात्मा था, तुम्हारा परमात्मा अधूरा हो गया। और भक्ति ऐसी अगर हो जाए कि तुम मंदिर में बैठे प्रार्थना करते रहो, कभी भीतर आंख बंद ही न करो, देखते रहो कि कृष्ण का कैसा सुंदर रूप है, कैसे

मोर-मुकुट, कैसी पैर में पैंजनियां, और उसी रूप को निहारते रहो, और उसी में डूबे रहो—तो भीतर भी परमात्मा था, उससे तुम वंचित रह गए।अंत में तो तुम्हें पूरा हो जाना पड़ेगा। परमात्मा के पास पहुंचकर तो तुम्हें पूरा हो जाना पड़ेगा इसलिए भक्त ज्ञानी हो जाता है, ध्यानी हो जाता है; ध्यानी भक्त हो जाता है। लेकिन जो अंत में हो जाना है, मैं कहता हूं, पहले से ही क्यों न हो जाओ? मंजिल पर ही जा कर क्यों पूरे को उपलब्ध करो; यात्रा को भी क्यों न मंजिल बना लो? हर कदम क्यों न मंजिल हो जाए? राह भी क्यों न मंजिल हो जाए? साधना भी क्यों न साध्य हो जाए?तो, मेरी सारी चेष्टा यह है कि तुम ध्यान भी करो, तुम नाचो भी। तुम प्रेम भी करो, तुम भक्ति भी करो; तुम शून्यता में भी जाओ और तुम पूर्णता के गीत भी गाओ। और जिस दिन तुम दोनों को साध लोगे, उस दिन तुम पाओगे कि अद्वैत सधा। नहीं तो ज्ञानी भक्तों के खिलाफ हैं, भक्त ज्ञानियों के खिलाफ हैं—संप्रदाय खड़े होते हैं, विरोध खड़ा होता है, द्वैत खड़ा होता है।विभाजन करो ही मत। तुम्हें परमात्मा ने हृदय भी दिया है, उसे भक्ति में डूबने दो; तुम्हें परमात्मा ने प्रज्ञा दी है, बुद्धि दी है, उसे ध्यान में डूबने दो। ये तुम्हारे दो पंख—दोनों ही उड़ें। परमात्मा का खुला आकाश, बड़ा आकाश! तुम क्यों लंगड़ाने को उत्सुक हो?लेकिन मैं जानता हूं, कारण है। लंगड़ाने की उत्सुकता में राज है। राज यह है कि एक को चुनने में सरलता लगती है, जटिलता नहीं लगती; सीधा-सीधा मामला लगता है; दो और दो चार, ऐसा मालूम पड़ता है। दोनों को चुनने में विरोधाभास हो जाता है।अगर तुम ध्यान को और भक्ति को एक साथ चुनोगे तो तुम पाओगे कि ये दोनों बड़ी विरोधी चीजें हैं। कहां प्रेम! उसमें तो दूसरे से जुड़ना है, परमात्मा के चरण खोजने हैं। और कहां ध्यान! उसमें तो सब दूसरे को छोड़ देना है, अकेले रह जाना है। दोनों विपरीत लगते हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम दो विपरीत के बीच एकता को न देख पाए तो तुम अंधे ही हो।जैसे दिन है और रात है, और श्रम है और विश्राम है, और जन्म है और मृत्यु है—ऐसे ही भक्ति है और ध्यान है। तुम जन्मे, तुम मरोगे भी। तुम यह नहीं कह सकते कि जन्मे, अब मर कैसे सकते हैं? क्योंकि जन्म और मृत्यु में तो बड़ा विरोध मालूम पड़ता है—एक में तो आते हैं, दूसरे में जाते हैं।तुम यह नहीं कहते कि दिन में तो सूरज उगता है, प्रकाश ही प्रकाश; रात में अंधकार हो जाता है—यह विरोध बरदाश्त के बाहर है।जीवन विरोध से बना है, जीवन विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है। जीवन का रस और मजा ही यही है कि यहां पुरुष ही पुरुष नहीं हैं, स्त्रियां भी हैं। विरोध है। नदी के दो किनारे हैं और तभी तो सेतु बन पाता है, नहीं तो सेतु बने ही न। एक ही किनारे पर कैसे तुम सेतु बनाओगे? यहां अंधकार भी है, उजाला भी है। यहां भीतर की तरफ यात्रा भी हो सकती है और बाहर की तरफ भी यात्रा हो सकती है। और अगर तुम दोनों को साथ-साथ सम्हाल लो—कभी भीतर डुबकी ले लो, कभी बाहर भी डुबकी लो; बाहर भी वही है, और भीतर भी वही है। यह फर्क ही तुम्हारी नासमझी का है कि तुम बाहर और भीतर को दो कर रहे हो। एक ही है। जो आकाश तुम्हारे घर के बाहर है, वही तुम्हारे आंगन में भी है। आंगन के आकाश का गुणधर्म नहीं बदलता और तुम्हारी दीवारों के भीतर जो कमरा घिरा है, उसमें जो आकाश है, उसका भी गुणधर्म नहीं बदलता; वह भी वही है। तुम्हारी अंतरात्मा और बाहर फैला हुआ परमात्मा एक ही है।अगर इस एक को तुम शुरू से ही साधो तो तुम्हारे जीवन में बड़ा अदभुत अर्थ प्रकट होगा, जो साधारण ध्यानी के जीवन में प्रकट नहीं होता।जैसे मैं तुम्हें कहूं, जैन धर्म, बौद्ध धर्म ध्यान पर खड़े हैं। वे दोनों अंतर्मुखी धर्म हैं। तो तुम उनके साधुओं के जीवन में किसी तरह की रसधार न देखोगे; सूखे-सूखे, मरे-मरे! जितना मरा हुआ साधु हो, जैनी कहते हैं, उतना ही पहुंचा हुआ कि देखो, बिलकुल मरा हुआ है; देखो कैसा तप चल रहा है! शरीर बिलकुल पीला पड़ जाए तो वे कहते हैं, स्वर्ण जैसी काया! शरीर पीला पड़ गया उपवास कर-करके, मगर वे कहते हैं, देखो कैसी तपश्चर्या कि कुंदन जैसा चेहरा दिखाई पड़ रहा है। यही पता हो उनको कि यह आदमी संन्यासी नहीं है तो वे पूछेंगे : 'भाई, कौन-सी बीमारी हो गई है? पीलिया हो गया है, क्या हो गया है? अस्पताल में भरती हो जाओ!' लेकिन ये मुनि महाराज हैं, तो उनके चरण छू रहे हैं, गुणगान गा रहे हैं, क्योंकि उनको पीलापन नहीं दिखाई पड़ता, स्वर्ण दिखाई पड़ता है।अपनी धारणा है। तो जैन साधु, बौद्ध भिक्षु धीरे-धीरे सूख गए हैं, रस नहीं है। तुम उन्हें हंसते हुए न पाओगे। अगर जैन मुनि हंस दे तो भक्तों को शक हो जाएगा कि यह कैसा मुनि, हंस रहा है, खिलखिला रहा है? यह कहीं साधु का लक्षण है? अगर वह छोटी-छोटी बातों में रस ले तो अनुयायी छोड़ देंगे उसे। उसे तो रस लेना ही नहीं है। उसे तो ऐसा डरा हुआ, दूर अपने को सिकोड़े हुए खड़ा रहना है। तो

एक भ्रांति पैदा हुई है।फिर दूसरी तरफ हिंदू हैं। उनके साधु-संन्यासी हैं। भक्ति-संप्रदाय हैं— रामानुज का, वल्लभ का। तुम उनको पाओगे, कि वे सिर्फ खा-पी रहे हैं और मोटे हो रहे हैं, और कुछ नहीं। खीर-पूड़ी। वह उनके जीवन की कुल साधना है। क्योंकि वही भोग भगवान को लगाते हैं, भगवान तो बहाना है, वही भोग खुद को लगाते हैं। तुम उनको मोर-मुकुट पहने हुए देखोगे। वे तुम्हें विदूषक मालूम पड़ेंगे। किसी सर्कस में होते, नाटक में होते, जंचते; यहां क्या कर रहे हैं? उनका व्यक्तित्व तुम्हें भोगी का मालूम पड़ेगा; योगी का नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन भक्त कहेंगे कि यह तो भक्ति का रस है।ये दोनों ही बातें अधूरी हो गई हैं और दोनों ने नुकसान पहुंचाया। तो मैं तो तुमसे कहता हूं, दोनों को साथ ही लेना और दोनों के बीच एक रिदम, एक छंदबद्धता पैदा कर लेना : कभी बाहर रस से भरे नाचते हुए; कभी भीतर शांत, शून्य—दोनों ही। और अगर तुम दोनों ही किनारों को छू कर बह सको तो तुम्हारी जीवन-सरिता सागर तक निश्चित ही पहुंच जाएगी। और तब तुम परमात्मा को पा कर ऐसा न पाओगे कि कुछ नया पा रहे हो; तुम ऐसा पाओगे कि यह तो पाया ही हुआ था, प्रतिपल पाया हुआ था। थोड़ा बड़ा हो गया, बड़ा हो गया, अब विराट हो गया; लेकिन ऐसा नहीं था कि कभी ऐसा भी था कि न पाया हो—थोड़ा था, हर कदम पर था।इसको मैं कदम-कदम को मंजिल बना लेना कहता हूं।लेकिन ऐसा व्यक्ति विरोधाभासी होगा। कभी तुम उसे नाचते पाओगे, कभी उसे तुम शांत ध्यान करते पाओगे। कभी तुम उसे भोजन का आनंद लेते हुए भी पाओगे क्योंकि वह कहेगा, अन्नम् ब्रह्म—कि अन्न ब्रह्म है। कभी तुम उसे उपवास करते हुए भी पाओगे, क्योंकि वह भीतर इतना डूब गया कि भोजन की याद ही न रही।ऐसा व्यक्ति ही मेरे लिए जीवन का काव्य है। ऐसा व्यक्ति मेरे लिए परिपूर्ण है।अंत में तो यह घटना सभी को घटती है; लेकिन शुरू से घट जाए तो सौभाग्य। इसलिए मैं तीन विभाजन करता हूं।एक : ज्ञानी, ध्यानी—वह लंगड़ा है। पहुंच जाता है लंगड़ाते; लंगड़े भी पहुंच जाते हैं।फिर भक्त—रस से भरा; लेकिन अधूरा है, उसे भीतर का कोई अनुभव नहीं है, शून्य की कोई प्रतीति नहीं है। वह परमात्मा की स्तुति तो गा सकता है, लेकिन चुप और मौन नहीं हो सकता; प्रार्थना कर सकता है, लेकिन ध्यान नहीं कर सकता। ध्यान और प्रार्थना का यही फर्क है। प्रार्थना है भक्त का अंग—जोर-जोर से बोलता है, भगवान की स्तुति करता है, सुनता ही नहीं किसी की। मैंने पढ़ा है, एक बहुत बड़ा मूर्तिकार और चित्रकार हुआ—माइकल ऐंजिलो। उसके जीवन को मैं पढ़ता था। तो एक बढ़ा चर्च बन रहा था—सिसटाइन चैपल। और उसकी सीलिंग पर उसने वर्षों तक चित्र खोदे हैं, माइकल ऐंजिलो ने। बड़ा कठिन काम था, क्योंकि चौबीस घंटे पड़ा रहता, सीलिंग पर खोदता रहता, पीठ पर पड़े-पड़े खोदना पड़ता।एक दिन उसने देखा—थक गया था, तो हाथ थोड़े रुक गए थे—नीचे देखा कि कोई भी नहीं है, सिर्फ एक औरत जो सदा आती है और सदा प्रार्थना करती है बड़े जोर-जोर से। वह परमात्मा से बातें कर रही है, बड़े जोर-जोर से। उसे ऐसा मजाक सूझा—थका-मांदा था, थोड़ी हंसी हो जाएगी, थोड़ा मन-बहलाव हो जाएगा—उसे मजाक सूझा। तो उसने जोर से कहा कि देखो, मैं जीसस क्राइस्ट हूं, और जो तुझे मांगना हो मांग ले। ऊपर चढ़े हुए अपनी सीढ़ी से, वहीं से वह चिल्लाया। उस औरत ने ऊपर भी न देखा, उसने कहा, 'चुप रहो, बकवास बंद करो। मैं तुम्हारे बाप से बात कर रही हूं।भक्त कहीं किसी की सुनता है! वह अपनी धुन में है। 'मैं परम पिता परमात्मा से, तुम्हारे बाप से बात कर रही हूं। तुम बीच में न बोलो'—उसने कहा।माइकल ऐंजिलो ने लिखा है, कि मैं भी चौंक गया! मैं तो सोचता था, कि यह मजाक समझेगी। बाकी वह अपने में लगी थी इतना कि उसको यह भी पता नहीं चला कि मैंने क्या कहा, क्या मामला था।भक्त अपनी लगाए हुए है स्तुति। चुप होना वह जानता ही नहीं। वह भी अधूरापन है। वे भी पहुंच जाते हैं। लेकिन द्वार पर दोनों एक हो जाते हैं।मैं तुमसे कहता हूं, तुम अभी से एक हो जाओ। मेरा मार्ग तीसरा है और उसमें प्रेम और ध्यान संयुक्त हैं। जितने तुम शांत हो सको, जितने मौन हो सको, उतने मौन हो जाओ; और जितना तुम प्रेम दे सको, उतना तुम प्रेम दे दो। एक ऐसी घड़ी तुम्हारे जीवन में आ जाए कि शरीर तो नाचे और तुम ध्यान में संलग्न; भीतर सब चुप, बाहर गीत चलता रहे; भीतर ध्यान, बाहर प्रार्थना होती रहे। वह मेरे लिए परिपूर्ण पुरुष का लक्षण है। और जिस दिन दुनिया में वैसा धर्म होगा, उस दिन दुनिया में अधिकतम लोगों के लिए धर्म के द्वार खुल जाएंगे। क्योंकि, लंगड़े-लंगड़े जाना बहुत थोड़े लोगों के लिए संभव है; दोनों पैर से जाना बहुत लोगों के लिए संभव हो सकता है।

चौथा प्रश्न : कबीर किस गुरु के प्रसाद को पाकर बार-बार आनंद-विभोर हुए जा रहे हैं?कबीर गुरु का नाम तो लेते ही

नहीं। गुरु का कोई नाम होता भी नहीं। गुरु चेतना की एक दशा है। नाम जानना चाहो तो कबीर के गुरु रामानंद थे। लेकिन कबीर उसका नाम भी कभी लेते नहीं हैं। सिर्फ एकाध जगह कहा हैः 'रामानंद चेताये।' बाकी साधारणतः वे नाम भी नहीं लेते कि कौन गुरु हैं। प्रश्न है ही नहीं कि कौन गुरु हैं।गुरु तो एक पद है, एक चैतन्य की दशा है, एक अवस्था है, और गुरु तो एक संबंध है, शिष्य का एक भाव है और शिष्य की एक आंतरिक निकटता है, सामीप्य है।गुरु शिष्य का एक अनुभव है।तो वे जो कहते हैं बार-बार, गुरु के प्रसाद से मिला, गुरु के प्रसाद से मिला—वे यह कह रहे हैं कि मेरे प्रयास से नहीं मिला। इसमें किस गुरु के प्रसाद से मिला, यह गौण है। गुरु के प्रसाद से मिला, 'प्रसाद' से मिला, यह महत्त्वपूर्ण है। सारी एम्फेसिस, सारा जोर प्रसाद पर है। किस गुरु के प्रसाद से मिला, यह फिजूल की बात है। किस नदी में तुमने पानी पीया और प्यास बुझायी, यह कोई अर्थ की बात है? किस कुएं पर पानी पीया, उसका नाम याद रखने की क्या जरूरत है? लेकिन एक बात पक्की है कि कुएं से प्यास बुझी। बस उतना कहना जरूरी है।इसलिए कबीर कहते हैं : गुरु-प्रसाद से सब हुआ। जोर इस बात का है कि अपनी चेष्टा से जो न हो पाया, वह उसकी कृपा से हुआ। और गुरु तो एक ही है। अब इसे थोड़ा समझना मुश्किल होगा।समझो, बुद्ध हैं और उनका एक शिष्य है सारिपुत्र। सारिपुत्र समर्पित हो गया, शिष्य हो गया। जैसे ही सारिपुत्र शिष्य हुआ, सारिपुत्र मिट गया, शिष्य रह गया। शिष्य का मतलब होता है, जो सीखने को तैयार हो। और सीखने को वही तैयार हो सकता है जो सारिपुत्र न रह गया हो। क्योंकि सारिपुत्र का तो मतलब होता है अतीत, कल, तो कुछ जाना, समझा, बूझा, जो-जो सिर पर बोझ लेकर आया, वही सारिपुत्र। वह तो मिट गया, शिष्य रह गया, खाली रह गया, एक शून्य, एक कोरा कागज—कि लिखो, जो लिखना हो लिख दो; अब मेरी तरफ से कोई लिखावट न बची। और जब शिष्य इतना खाली हो जाता है नाम-रूप से, तो उसे बुद्ध में भी नाम-रूप थोड़ी दिखाई पड़ती है फिर! तुम्हें अपना नाम मालूम होता है तो गुरु का भी नाम दिखाई पड़ता है। तुम्हें अपना रूप दिखाई पड़ता है तो गुरु का भी रूप दिखाई पड़ता है। जिस दिन तुमने अपना नाम-रूप छोड़ दिया उस दिन तुम्हें गुरु में वह अखंड ज्योति दिखाई पड़ती है, जिसका कोई नाम-रूप नहीं है। वह तो ऊपर की खोल है बुद्ध अब। वह जो गौतम सिद्धार्थ है, वह जो ऊपर की खोल है। उसके लिए थोड़े ही समर्पण किया है। समर्पण तो भीतर की ज्योति के लिए किया है, जिसका कोई नाम नहीं है। वह है गुरु।और जब यह प्रसाद बटेगा, जब इस ज्योति का तुम्हारी भीतर की ज्योति से मिलन होगा। कबीर कहते हैं : ज्योति में ज्योति समानी—वह ज्योति ज्योति में समाएगी, जब तुम्हारा बुझा दीया अचानक जल उठेगा। एक लपक—और गुरु की ज्योति तुममें समा जाएगी, और तुम शिष्य न रह जाओगे, तुम स्वयं भी गुरु जैसे हो गए, गुरु हो गए—उस घड़ी में तुम क्या कहोगे—बुद्ध की कृपा से? वह ठीक न होगा, क्योंकि वह तो गुरु का एक नाम हो गया गुरु की कृपा से!फिर रामानंद के पास कबीर बैठा है। फिर कबीर समर्पित हो गया। अब रामानंद भी रामानंद न रहे; वही अखंड ज्योति भीतर जलने लगी, जो सारिपुत्र को गौतम बुद्ध में दिखाई पड़ी। वही कबीर को रामानंद में दिखाई पड़ी। वही अनंत-अनंत काल में अनंत-अनंत शिष्यों को अनंत-अनंत गुरुओं में दिखाई पड़ी। वह ज्योति एक है; वह जैसे ही शिष्य खोता है, वह अनुभव में आ जाती है, दिखाई पड़ने लगती है, प्रतीत होने लगती है।हजारों शिष्य हुए, हजारों गुरु हुए; लेकिन घटना तो एक ही है—वह शिष्य और गुरु के बीच समान घटती है। उसका कोई भेद हीनहीं पड़ता। हजारों कंठ, हजारों प्यासे कंठ, हजारों कुएं—और जब पानी गले में कंठ से मिलता है तो प्यास बुझती है, जो तृप्ति होती है, वह तो एक ही है। उसका क्या कोई नाम है?तुम्हारे कंठ में जब प्यास लगती है और पानी की बूंद जाती है तो तुम सोचते हो, कोई अलग तरह की तृप्ति होती है जैसा किसी दूसरे को नहीं होती? वही तृप्ति है। कंठ होंगे अलग-अलग, प्यास तो एक है। जल के घाट होंगे अलग-अलग, जलधार तो एक है, जल का स्वभाव तो एक है। और जब जल और प्यास का मिलन होता है तो जो तृप्ति होती है, उसका स्वभाव कैसे भिन्न हो सकता है?तो, जो सारिपुत्र को अनुभव हुआ बुद्ध के पास, जो गौतम को अनुभव हुआ महावीर के पास, जो ल्यूक को मैथ्यू को अनुभव हुआ जीसस के पास, जो अली को अनुभव हुआ मुहम्मद के पास, वही कबीर को अनुभव हुआ रामानंद के पास।नामरूप की बात तो सब व्यर्थ है। इसलिए क्या कहना, किससे हुआ? गुरु से हुआ। जिसने जाना था हमसे पहले, उससे हुआ। जो जाना ही हुआ था, जागा ही हुआ था, उससे हुआ। हम थे सोए, किसी जागे हुए आदमी ने जगाया। हम थे बुझे, किसी जलते ने जलाया। हम थे खोए, किसी

पहुंचे हुए ने हाथ का सहारा दिया।इसलिए कबीर कोई नाम नहीं लेते; बार-बार कहते हैं, बस गुरु की कृपा से हुआ। जोर इस बात पर है कि उसकी अनुकंपा से हो रहा है, मेरी चेष्टा और प्रयास से नहीं। वह निरहंकार अवस्था की बात है, जब तुम्हें लगता है कि तुम्हारी चेष्टा से कुछ भी नहीं हो रहा। तुम्हारी चेष्टा से कभी कुछ हुआ ही नहीं; बाधा भला पड़ी हो, उपद्रव हुआ हो, अड़चन आई हो, तुम्हारी चेष्टा पत्थर बन गई हो राह की, लेकिन सीढ़ी कभी नहीं बनी। तुम्हारे अहंकार ने तुम्हें कहां पहुंचाया? भटकाया होगा। पहुंचते ही अनुभव होता है कि मैं ही भटकने का सूत्र था।तो जब गुरु की वर्षा होती है तब तुम्हें अनुभव होता है कि मेरे मिटने से ही हुआ—मेरे मिटने से हुआ, गुरु की अनुकंपा से हुआ। मेरे होने से तो नहीं हो सकता था; मैं मिटूं तो ही हो सकता है। क्योंकि जब तक मैं हूं, तब तक गुरु की अनुकंपा प्रवेश नहीं कर सकती, मैं बाधा डालता हूं। और ये बाधाएं बड़ी सूक्ष्म हैं।महावीर का शिष्य हुआ गौतम । गौतम महावीर का सर्वाधिक ज्ञानी शिष्य था, बड़े से बड़ा पंडित था। वही उनका प्रथम गणधर हुआ, उसीने उनके शास्त्र संभाले। लेकिन उसके पहले बहुत दूसरे शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो गए, वह सबसे आखिर में हुआ; आखिर में भी नहीं हुआ, महावीर के मरने पर हुआ। महावीर उसे बहुत दफा कहे—कि गौतम, तू होश संभाल!लेकिन वह बड़ा पंडित था। वह ज्ञानी था। अगर ज्ञान की ही बात की जाए तो शायद वह महावीर से भी विवाद में जीत सकता था। वह बड़ा कुशल पंडित था। उसके खुद के हजारों शिष्य थे, जब वह महावीर का शिष्य हुआ था। लेकिन एक बात महावीर की पकड़ गई उसको—जो उसने सुना था और शास्त्र में पढ़ा था, वह इस आदमी में देखा। बिलकुल अंधा नहीं था। पंडित भी रहा होगा, तो भी अभी थोड़ा बोध था उसमें, पांडित्य ने बिलकुल नहीं मार डाला था। इस आदमी में अभी कुछ दिखाई पड़ा। इससे विवाद करने जैसा न लगा। वह इसका शिष्य हो गया लेकिन शिष्य होने पर भी क्या फर्क पड़ता है?वह बड़ा पंडित था, तत्क्षण वह प्रमुख शिष्य हो गया। पट्टशिष्य हो गया, क्योंकि सभी उससे कमजोर थे बातचीत में, विवाद करने में, शास्त्रार्थ में। कौन उससे जीतता। वह महावीर से तो विवाद नहीं करता, लेकिन शिष्यों को तो वह हरा ही सकता था। वह अटका रहा। अनेक जो पीछे से आए—वे भी ज्ञान को उपलब्ध हो गए। उसकी पीड़ा बढ़ती गयी।महावीर ने मरने के दिन उसे संदेश भेजा। वह गांव के बाहर गया था, कहीं उपदेश करने गया था। वह लौट कर आता था, राहगीरों ने रास्ते में कहा कि महावीर ने प्राण छोड़ दिए शरीर छोड़ दिया। तो वह रोने लगा कि मेरा क्या होगा अब? मैं उनके जीते-जी ज्ञान को उपलब्ध न हो सका, अब तो मेरी कोई संभावना न रही। मेरे लिए कोई संदेश छोड़ गए हैं वे?तो यात्रियों ने कहा : 'हां! मरने के पहले उन्होंने तुम्हारी ही याद की थी और कहा है, गौतम को इतना कह देना कि तू पूरी नदी पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुका है?'जरा-सी पकड़! तुमने नदी तैर ली, अब किनारे को पकड़ लिया; लेकिन बाहर कैसे निकलोगे अगर किनारे को पकड़े हो? नदी तैरने से तो कोई बाहर नहीं निकल जाता; किनारे को भी छोड़ना पड़ता है। जैसे तुमने नाव में बैठकर नदी पार कर ली, अब नाव को पकड़कर बैठ गए, ऐसा वह किनारे को पकड़कर बैठा।यह महावीर का वचन सुनते ही, कहते हैं, गौतम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। जो महावीर के जीवन में घटा, वह महावीर की मृत्यु में घटा!क्या पकड़े हुए था, वह कौन-सा किनारा था? जरा-सी रेखा रह गयी थी अपने ज्ञान की, अहंकार की। वह शिष्य नहीं हो पाया था; पट्टशिष्य हो पाया था; शिष्य नहीं हो फाया था। शिष्यों में प्रमुख हो गया हो लेकिन गुरु के चरणों में समर्पित नहीं हो पाया। वह समर्पण के घटते ही घटना घट जाती है। इधर तुम मिटे, उधर प्रकाश प्रवाहित हुआ।तब तुम कैसे कहोगे, अपने से हुआ? तब तो इतना ही रह जाएगा कहने को : 'गुरु प्रसादी . . .।' तो कबीर वही कहते हैं कि 'गुरु प्रसादी' से हुआ, गुरु प्रसाद से हुआ।प्रसाद शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है, अंग्रेजी में जिसे ग्रेस कहते हैं। प्रसाद का अर्थ है, जो बिना मांगे दिया गया हो। मांग कर मिले—भीख; छीन कर ले लिया जाए—चोरी; खरीद कर ले लिया जाए—प्रसाद नहीं। प्रसाद का मतलब है खरीद कर न मिले, खरीदना चाहो खरीद न सको, बिकता न हो। प्रसाद का कोई बाजार नहीं है, कोई दुकान नहीं है, चोरी न कर सकते हो जिसकी। कैसे करोगे प्रसाद की चोरी? क्योंकि वह केवल निरहंकार को मिलता है। निरहंकारी चोरी नहीं कर सकता। कैसे खरीदोगे प्रसाद को? क्योंकि उसके कोई सिक्के नहीं हैं, सिर्फ अहंकार को छोड़ने से ही खरीदा जा सकता है। और अहंकार को छोड़ते ही खरीदने वाला मर जाता है। उसको तुम मांग नहीं सकते, क्योंकि प्रसाद इतना महिमापूर्ण है कि उसे भीख की तरह नहीं दिया जा सकता। तुम्हारा मांगने से नहीं दिया जा सकता, तुम्हारी तैयारी से दिया

जाता है। तुम जिस दिन तैयार होते हो, जिस दिन तुम्हारा भीतर अंतरतम तैयार होता है, जब तुम बिलकुल खाली होते हो, शून्य होते हो, तब अचानक सब तरफ से वर्षा हो जाती है।

आखिरी प्रश्न : सभी संतों ने, बुद्ध पुरुषों ने सत्य को अपने अंदर ही पाया, फिर कहीं भी बाहर समर्पण पर इतना जारे क्यों दिया गया है? अपने स्वभावानुसार या भटक कर शायद कभी कहीं और सत्य की झलक मिल भी जाए, पर बाहर तो अंधे गुरु भी मौजूद हैं जो रात को दिन और दिन को रात कहेंगे . . .?णइसे समझना जरूरी है।समर्पण बाहर होता ही नहीं, समर्पण भीतर की घटना है। गुरु बाहर हो; समर्पण भीतर की घटना है।समझो, तुम किसी के प्रेम में पड़ गए तो प्रेमी तो बाहर होता है; लेकिन प्रेम तो तुम्हारे भीतर की घटना है, वह तो तुम्हारे हृदय में जलता है। प्रेमी मर भी जाए तो भी प्रेम जारी रह सकता है; जारी रहेगा ही, अगर था। प्रेमी की राख भी न बचे तो भी प्रेम अहर्निश गूंजता रहेगा। धड़कन-धड़कन में श्वास-श्वास में बहता रहेगा।प्रेम-पात्र तो बाहर होता है, प्रेम भीतर होता है। समर्पण का पात्र तो बाहर होता है, गुरु बाहर होता है, लेकिन समर्पण तो भीतर होता है। वह घटना बाहर की नहीं है। और गुरु भी तभी तक बाहर दिखाई पड़ता है, जब तक हमने समर्पण नहीं किया। जिस दिन तुमने समर्पण किया, गुरु भी भीतर है। बाहर-भीतर का भेद ही गिर गया, सीमा ही टूट गई। समर्पण करते ही, जैसे ही तुमने अपनी सुरक्षा की दीवाल तोड़ दी, सब तरह से गुरु तुम्हारे भीतर बह आता है।इसलिए तो हमने गुरु को परमात्मा कहा है और भीतर छुपी आत्मा को परम गुरु कहा है। इससे बड़ी पहेलियां पैदा हो जाती हैं। पश्चिम के बहुत-से लोग जब भारत के शास्त्रों का अध्ययन करते हैं तो उनको लगता है कि ये तो बिलकुल पहेलियां हैं। इनमें कोई व्यवस्था नहीं है, कोई तर्कबद्धता नहीं है। कहीं कहते हो गुरु बाहर, कहीं कहते हो गुरु भीतर! लेकिन ये सभी बातें सच हैं। भारत की भी मजबूरी है, क्योंकि भारत सत्य को ही कहना चाहता है, वह जैसा है। उलझन भी भला खड़ी हो जाती हो, लेकिन हम सत्य को वैसा ही कहना चाहते हैं, जैसा है।जब तक शिष्य समर्पित नहीं है तब तक गुरु बाहर है। वस्तुतः तब तक गुरु गुरु ही नहीं है, इसलिए बाहर है। तुम क्या सोचते हो, तुम्हारे समर्पण के पहले कोई गुरु हो सकता है?एक स्त्री रास्ते से जा रही है। क्या तुम्हें प्रेम न हुआ हो इसके प्रति तो क्या तुम इसे प्रेयसी कह सकते हो, कि यह मेरी प्रेयसी है, अभी हालांकि मेरा प्रेम नहीं हुआ? तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे। जिसके प्रति समर्पण नहीं हुआ, क्या तुम उसे गुरु कह सकते हो? वह किसी और का गुरु होगा, वह किसी और की प्रेयसी होगी; लेकिन तुम्हारा इससे क्या लेना-देना? तुम्हारा तो गुरु तभी घटता है, जब तुम्हारा समर्पण होता है।और यह बड़े मजे की बात है कि अगर तुम सच में ही समर्पण कर दो तो तुम्हें कोई गुरु भटका नहीं सकता। वस्तुतः सचाई तो यह है कि अगर समर्पण करनेवाला शिष्य मिल जाए तो भटका हुआ गुरु भी रास्ते पर आ जाएगा। समर्पण इतनी बड़ी घटना है! जब तुम्हें रास्ते पर ला सकता है, समर्पण, तो गुरु को भी ला सकता है।लेकिन कठिनाई ऐसी है कि सदगुरु को भी शिष्य नहीं मिलते, असदगुरु को शिष्य मिलना तो बहुत मुश्किल है। अनुयायियों की बात नहीं कर रहा हूं, शिष्य की बात कर रहा हूं—जिसको नानक ने सिक्ख कहा है। सिक्ख शिष्य का अपभ्रंश है। लेकिन सिक्खों की बात नहीं कर रहा हूं—नानक के सिक्ख! वह बात ही और है!जब तुम्हारे भीतर शिष्यत्व का भाव जन्मता है, तब कोई तुम्हारे लिए गुरु होता है। और अगर तुम्हारा समर्पण पूरा हो तो तुम बिलकुल फिक्र ही छोड़ दो कि गुरु कुगुरु है, कि सदगुरु है, कि क्या है। तुम चिंता ही छोड़ो। समर्पण इतनी बड़ी घटना है कि वह तुम्हें तो बदलेगी ही, उस गुरु को भी बदल डालेगी।समर्पण का मतलब है अटूट श्रद्धा। समर्पण का अर्थ है बेशर्त आस्था। समर्पण का अर्थ है, गुरु कहे, मरो तो मरने की तैयारी; जीओ तो जीने की तैयारी।क्या तुमने इतना बुरा आदमी दुनिया में देखा है, जो अटूट श्रद्धा को धोखा दे सके? अखंड श्रद्धा को धोखा देने वाला आदमी कभी पृथ्वी पर हुआ ही नहीं। हां, अगर तुम्हें कोई धोखा दे पाता है तो इसलिए, कि तुम्हारी श्रद्धा अखंड नहीं। तुम भी बेईमान, गुरु भी बेईमान। तुम भी रत्ती-रत्ती देते हो, वह भी समझता है कि तुम कैसे दे रहे हो; वह भी छीनने की कोशिश करता है। और तुम सोचते हो कि यह गुरु बेईमान है, ठीक गुरु नहीं है, भटका देगा; अगर समर्पण किया तो भटक जाएंगे।तुम समर्पण नहीं करना चाहते; तुम हजार बहाने खोजते हो। तुम डरे हो। और तब तुम पक्का समझो कि तुम्हें सदगुरु तो मिलनेवाला ही नहीं है; तुम्हें कोई चालबाज ही मिलेगा। तुम्हारे भीतर का यह जो संदेह है, यह तुम्हें किसी असदगुरु से ही मिला सकता है। संदेह का और असदगुरु का मिलना हो सकता है। श्रद्धा और असदगुरु का मिलना होता

ही नहीं। या तो गुरु भाग खड़ा होगा श्रद्धावान शिष्य को पाकर और—या बदल जाएगा।तुम कभी किसी पर श्रद्धा करके तो देखो। श्रद्धा बड़ी क्रांतिकारी कीमिया है। जिस पर तुम श्रद्धा करोगे उसे तुम बदलना शुरू कर दोगे। छोटे बच्चे घर में पैदा होते हैं, मां-बाप को बदल देते हैं। छोटे बच्चे पर ध्यान रखना पड़ता है तो बाप को सिगरेट नहीं पीनी, शराब नहीं पीनी, कहीं यह छोटा बच्चा बिगड़ न जाए।छोटा बच्चा भी इतना छोटा नहीं है जितना श्रद्धा से भरा हुआ शिष्य होता है। उसकी सरलता का तो मुकाबला ही नहीं है। वह इतना सरल होता है कि गुरु भी डरने लगेगा कि इतनी सरलता को धोखा देना? इतनी सरलता को धोखा देनेवाला कोई शैतान पैदा ही कभी नहीं हुआ।तुम उस भय को छोड़ो। तुम यह चिंता ही मत करो। तुम सिर्फ समर्पण की फिक्र करो। अगर तुम समर्पण कर सकते हो तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम पत्थर के प्रति भी समर्पण कर दो, तो भी क्रांति घटेगी। आदमी की तो बात और, पत्थर के प्रति भी—और क्रांति हो जाएगी। क्रांति समर्पण से होती है।अब इस बात को भी समझ लो। गुरु थोड़ी क्रांति करता है! शिष्य को लगता है, गुरु ने की—यह उसका निरहंकार भाव है। अगर तुम गुरु से पूछो तो गुरु ऊपर इशारा करेगा, कहेगा : उसने की! क्योंकि वह भी जानता है, गुरु ने नहीं की, परमात्मा ने की।जीसस एक गांव से गुजरते हैं। एक बाजार में बड़ी भीड़ है और एक स्त्री आती है। उसे कोढ़ हो गया है। वह बीमार है। उसे गांव के बाहर फेंक दिया गया है। वह डरती है जीसस के सामने आने में भी। लेकिन उसे पक्की श्रद्धा है कि अगर वह जीसस का स्पर्श कर ले तो वह ठीक हो जाएगी। लेकिन उसे डर है कि वह भीड़ गांव में उसे अंदर भी आने देगी? तो वह किसी तरह छिपी भीड़ के अंदर प्रवेश कर जाती है। वह जीसस के सामने जाने में डरती है। वह उनसे प्रार्थना करने में डरती है। यह भी कोई बात है कहने की? इस काम में भी उनको लगाना क्या उचित है? वह सिर्फ किनारे से, भीड़ से आकर जीसस का कपड़े का एक कोना छू लेती है। जीसस चौंक कर खड़े हो जाते हैं। उन्होंने कहा : 'किसने मुझे इतनी श्रद्धा से छुआ?' और उस स्त्री का सवा□ग बदल गया है। उसी स्त्री ने अपने शरीर को देखा होगा भरोसा न कर सकी। उसने कहाः 'लेकिन मैं बदल गई!'जीसस ने कहा : 'तू अपनी श्रद्धा के कारण बदली है, मेरा इसमें कुछ हाथ नहीं। धन्यवाद देना हो तो परमात्मा को धन्यवाद देना। करनेवाला सभी वही है।यही तो कबीर कहते हैं कि गुरु-प्रसाद से हुआ। गुरु से पूछें, तो रामानंद यह न कहेंगे। रामानंद राम की तरफ बताएंगे, राम की कृपा से हुआ। राम की कृपा से कहने का मतलब यह है कि कोई भी नहीं कर रहा है; समर्पण के भीतर ही घटना घटती है। कोई करनेवाला नहीं है।तुम इस चिंता में मत पड़ो, कि समर्पण बाहर है। समर्पण भीतर है। और इस चिंता में भी मत पड़ो, कि जब तक हमें पक्का न हो जाए, जब तक अदालत सर्टिफिकेट न दे दे कि यह आदमी ईमानदार है, कि सच्चा गुरु है। कौन अदालत देगी? किस अदालत के बस के भीतर है? कौन सर्टिफिकेट देगा? कौन प्रमाणित करेगा? और तुम अपनी बुद्धि से कैसे खोज कर पाओगे? तुममें इतनी ही बुद्धि होती तो गुरु की जरूरत ही क्या थी? तुम कैसे पहचानोगे, कौन सदगुरु है, कौन नहीं है? तुम इस उलझन में ही मत पड़ो। तुम पत्थर को भी पकड़ लो; पत्थर के स्पर्श से भी तुम्हारा रोग चला जाएगा। असली सवाल हृदय का है। असली सवाल समर्पण का है। असली सवाल आस्था का है।तो, मैं तुमसे कहता हूं, न तो गुरु करता है, न शिष्य करता है; श्रद्धा करवाती है। श्रद्धा से होता है; समर्पण में होता है। गुरु भी बहाना है। वह बहाना है ताकि तुम श्रद्धा कर सको, अन्यथा तुम्हें मुश्किल होगा। बिना बहाने के श्रद्धा करनी मुश्किल होगी। तुम्हें कोई सहारा चाहिए, कोई निमित्त चाहिए, अन्यथा तुम कैसे श्रद्धा करोगे?अगर तुम बिना किसी में श्रद्धा किए भी श्रद्धा कर सको, मात्र श्रद्धा कर सको तो भी घटना घट जाएगी। लेकिन तब मुश्किल होता जाएगा। वह ऐसे ही होगा कि बिना प्रेयसी के और प्रेम, बिना प्रेमी के प्रेम; बस प्रेम! कोई है ही नहीं जिसको प्रेम करना है, मगर प्रेम का भाव। कठिन होगा। होता तो है। हो सकता है। प्रेम तुम्हारी भाव-दशा बन सकती है। इसलिए तो बुद्ध जैसे लोग कहते हैं, कोई जरूरत नहीं है; तुम सिर्फ प्रेम से भर जाओ, घटना घट जाएगी।प्रेम अग्नि है। श्रद्धा महा अग्नि है, क्योंकि श्रद्धा प्रेम का निखरे से निखरा रूप है, नवनीत है।

आज इतना ही।□□

उन्नीसवां प्रवचन

सुरति करौ मेरे सांइयां

सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बाहिं।।
अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।
जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।।
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौ उस पीव सो, क्यों कर रहसी रंग।।
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।
अहंकार है सारी पीड़ाओं का स्रोत, नरक का द्वार। लेकिन तुमने समझ रखा है, कि वही स्वर्ग की कुंजी है। और अहंकार को सिर पर लेकर तुम लाख उपाय करो, सुख की कोई संभावना नहीं है, न शांति का कोई उफाय है, न स्वर्ग का द्वार खुल सकता है। अहंकार के लिए द्वार बंद है, द्वार के कारण नहीं, अहंकार के कारण ही बंद है।और अहंकार बिलकुल अंधा है। उसे दिखाई भी नहीं पड़ता। और उस अंधेपन में जिसे मिटाना है, उसे तुम बचाते हो। जिसे छोड़ना है, उसे तुम पकड़ते हो। जिसे फेंकना है, उसे तुम सम्हालते हो।हीरे-मोती तो फेंक देते हो, कूड़ा-करकट बचा लेते हो। जो असार है, उसे तो सम्हाल कर रखते हो, जो सार है उसकी खबर भूल जाती है।रोज ही यह मुझे अनुभव होता है। क्योंकि रोज ही लोग आते हैं। उनकी पीड़ा है, उनका कष्ट है। और उनका कष्ट वास्तविक है। लेकिन कष्ट मिटता नहीं, पीड़ा जाती नहीं, अशांति खोती नहीं। और जब मैं उनसे बात करता हूं, तो पाता हूं कि वे उसे बचा रहे हैं।कल रात ही एक महिला आई। पढ़ी-लिखी है, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है, पी.एच.डी. है, सुसंस्कृत है। उसने मुझे कहा, कि मेरे मन में बड़ी उदासी है। उदासी जाती नहीं। तो मैंने पूछा, डाक्टरों को पूछा? डाक्टर क्या कहते हैं?उस महिला ने कहा, 'डाक्टर! डाक्टर क्या ठीक करेंगे!'जैसे कि बीमारी इतनी विशिष्ट है कि डाक्टरों का क्या वश कि ठीक कर सकें! जिस ढंग से उसने कहा, जिस भाव-भंगिमा से कहा, कि डाक्टर क्या करेंगे; उसमें ऐसा लगा, कि उसकी बीमारी डाक्टरों के लिए एक चुनौती है। और डाक्टर न कर पाएंगे, क्योंकि वह करने न देगी। डाक्टरों और उसके बीच जैसे कोई संघर्ष, कोई प्रतिस्पर्धा चल रही है।और उसने कहा, कि संतों के यहां भी गई; कुछ हुआ नहीं। अब आपके चरणों में आई हूं।संतों को भी हरा चुकी है! अब वह मुझको हराने आई है। कहती तो यही है ऊपर से, कि आपके चरणों में आई हूं; लेकिन भीतर भाव यह है, कि एक मौका आप को भी देना उचित है—एक अवसर! चरणों में नहीं आई है, सेवा लेने आई है। उससे मैंने कहा, रुक जाओ दस दिन ध्यान कर लो।वह संभव नहीं है। अभी तो विश्वविद्यालय खुलने के करीब है।अगर बीमारी सच में बीमारी है और कष्ट दे रही है, तो आदमी हजार उपाय करेगा उसे दूर करने का। लेकिन यह महिला उसे बचाती मालूम पड़ती है।मैंने कहा, ध्यान करो। उसने कहा, एक दिन कल करके देखा!बीमारी को तो जन्मों-जन्मों तक आदमी इकट्ठा करता है। ध्यान को एक दिन में करके देख लेता है!मैंने उससे कहा, तो ऐसा करो, जब तक न आ सको—जब आ सको तो दस दिन का वक्त निकाल कर आ जाओ, ताकि पूरा ध्यान का शिविर कर सको। जब तक न आ सको तो मैंने जो-जो कहा है, उसे पढ़ जाओ।उसने कहा, पढ़ने से क्या होगा? आपका आशीर्वाद चाहिए।जैसे कि आशीर्वाद मांगे जा सकते हैं!आशीर्वाद मिलते हैं, मांगे नहीं जा सकते। आशीर्वाद पाने की पात्रता चाहिए। मांगने से उनका कोई संबंध नहीं है। तुम जब तैयार होते हो, तब आशीष बरस जाती है, छीनी-झपटी नहीं जा सकती।लेकिन ऐसा लगता है, महिला जिद करके बैठी है। उसकी उदासी कोई मिटा न सकेगा। और जब तुम ही जिद करके बैठे हो, तो कौन मिटा सकेगा? और असली सवाल मिटाने का नहीं है। उदासी क्यों है? उदासी इसीलिए होगी, कि अहंकार ने बड़ी महत्वाकांक्षा की होगी, वह पूरी नहीं हो पाई है। अहंकार ने बड़ी सफलताएं चाही होंगी वह पूरी न हो पाई, अहंकार ने बड़े आभूषण उपलब्ध करने चाहे होंगे, सजाना चाहा होगा स्वयं को; वह पूरा नहीं हो पाया। वह कभी पूरा नहीं होता।सुसंस्कृत महिला है, पढ़ी-लिखी है, इसका अर्थ ही यह हुआ, कि महत्वाकांक्षा साधारण स्त्रियों से ज्यादा है। पुरुषों जैसी महत्वाकांक्षा है, पुरुषों जैसा अहंकार है, एक दौड़ है। उसमें सफल नहीं हो पा रही है। कोई कभी सफल नहीं हो पाता।कहीं भी पहुंच जाओ, अहंकार की भूख

तृप्त होती ही नहीं। क्योंकि अहंकार की भूख झूठी है। सच हो, तो तृप्त हो जाए। झूठी भूख को तृप्त करने का कोई उपाय नहीं। जितना करो तृप्त, उतनी बढ़ती चली जाती है। इसलिए उदासी है। अब उदासी अहंकार के कारण है। और आशीर्वाद तब तक नहीं मिल सकता, जब तक अहंकार न मिटे।इसे थोड़ा ठीक से समझ लो। यह गणित सभी के जीवन के काम का है। आशीर्वाद तभी मिल सकता है, जब अहंकार न हो। और मजा यह है, कि अहंकार न हो, तो आशीर्वाद के बिना भी उदासी मिट सकती है। आशीर्वाद की कोई जरूरत भी नहीं है। अहंकार हो, तो आशीर्वाद की जरूरत है, क्योंकि उदासी रहेगी। लेकिन अहंकार के रहते आशीर्वाद नहीं बरस सकता।और अहंकार गलत को बचाए चला जाता है।एक सज्जन कुछ दिन पहले आए। संन्यास लेना चाहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं, शांत होना चाहते हैं। लेकिन 'मैं' का स्वर बड़ा प्रगाढ़ है। मैंने उनसे पूछा, 'कहां से आए हैं?' मैंने यह पूछा नहीं, कि आप कौन हैं, क्या हैं; सिर्फ इतना ही पूछा, कि कहां से आए हैं? बस, उन्होंने शुरू कर दिया, कि मैं समाज सुधारक हूं, कि मैं आदिवासियों का काम कर रहा हूं, कि मैंने इतनी संस्थाएं चला दीं; कि मैं फलां काफ्रेंस में इंग्लैंड में भाग लिया और जर्मनी में भाग लिया।और इतनी तेजी से वे चलने लगे यह सब बताने में, कि संध भीछन दी उन्होंने मुझे, कि मैं किसी तरह उन्हें रोकूं, कि रुको। यह मैंने पूछा नहीं है। यही तो तुम्हारी बीमारी है। वे चले ही जा रहे हैं—'मैं. .मैं. .मैं।'लोगों के पत्र मेरे पास आते हैं। वे 'मैं' से ही शुरू करते हैं हर वाक्य। सब 'मैं' से भरा है और नीचे दस्तखत होते हैं, 'आपका विनम्र।' वह विनम्रता बड़ी झूठी है। वह विनम्रता भी अहंकार का ही एक आभूषण, एक सजावट होगी।अहंकार पीड़ा का स्रोत है। और उसी के कारण तुम अपने स्वभाव को नहीं पा सकते; न परमात्मा को पा सकते हो। आशीर्वाद तुम पर बरसेगा ही नहीं। अहंकार के कारण तुम उलटे घड़े हो। वर्षा होती रहेगी तो भी तुम पर बूंद न पहुंचेगी। तुम खाली के खाली रह जाओगे। काश, तुम अहंकार से खाली हो जाओ तो तुम आज भर सकते हो, इसी क्षण भर सकते हो। कहीं कोई रुकावट नहीं है, तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई बाधा नहीं है। इसलिए गहरा सवाल प्रार्थना करने का नहीं है, गहरा सवाल यह जो करने वाला है, इसको मिटाने का है। नहीं तो यही दुकान चलाता है, यही प्रार्थना करेगा। यह मिट जाए, तो तुम्हारा जीवन प्रार्थना है।कबीर उसी को सहज-योग कहते हैं। यह मिट जाए, तो तुम्हारा प्रतिपल पूजा है, परिक्रमा है, तो घर में ही स्नान, गंगा-स्नान है। तो तुम जहां हो, वहीं धर्म है, वहीं तीर्थ है। तो तुम्हारी श्वास-श्वास स्मरण है।पर अहंकार मिट जाए। नहीं तो पूजा भी व्यर्थ, प्रार्थना भी व्यर्थ। अहंकार का विष सभी को विषाक्त कर देता है।एक करोड़पति मैंने सुना है, बहुत अड़चन में था। करोड़ों का घाटा लगा था। और सारी जीवन की मेहनत डूबने के करीब थी। नौका डगमगा रही थी। कभी मंदिर नहीं गया था, कभी प्रार्थना भी न की थी। फुरसत ही न मिली थी। ऐसे उसने पुजारी रख छोड़े थे। और मंदिर भी बनवा दिया था, जहां वे उसके नाम से पूजा किया करते थे।लेकिन आज इस दुःख की घड़ी में कांपते हाथों वह भी मंदिर गया। सुबह जल्दी गया, ताकि परमात्मा से पहली मुलाकात उसी की हो, पहली प्रार्थना वही कर सके। कोई दूसरा पहले ही मांग कर परमात्मा का मन खराब न कर चुका हो। लेकिन देख कर हैरान हुआ कि गांव का भिखारी उससे पहले मौजूद था। अंधेरा था अभी। वह भी पीछे खड़ा हो गया, कि भिखारी क्या मांग रहा है।धनी आदमी देखता है, कि मेरे पास तो मुसीबतें हैं; भिखारी के पास क्या मुसीबतें हो सकती हैं? और भिखारी सोचता है, देखता है, कि मुसीबतें मेरे पास हैं। धनी आदमी के पास क्या मुसीबतें होंगी?दोनों मुसीबत में जीते हैं। अपने-अपने ढंग की मुसीबतें हैं; मुसीबतें जरूर हैं।भिखारी की मुसीबत भिखारी के लिए बहुत बड़ी थी, धनपति के लिए कुछ बड़ी न थी। उसने सुना, कि भिखारी कह रहा है, हे परमात्मा! अगर पांच रुपए आज न मिलें तो जीवन नष्ट हो जाएगा। आत्महत्या कर लूंगा। ये तो चाहिए ही। पत्नी बीमार है और दवा के लिए पांच रुपए होना बिलकुल आवश्यक हैं। मेरा जीवन संकट में है।इस अमीर आदमी ने यह सुना। और वह भिखारी बंद ही नहीं कर रहा है और कहे जा रहा है और प्रार्थना जारी है। तो उसने अपने खीसे से पांच रुपए निकालके उस भिखारी को दिए और कहा, कि ये पांच रुपए तू ले और जा। फिर उसने परमात्मा से कहा, 'सर, नाउ यू केन गिव मी युअर अनडिवाइडेड अटेनशन : अब आप अनबटा ध्यान मेरी तरफ दे सकते हैं। यह भिखारी से छुटकारा हुआ। मुझे पांच करोड़ रुपए की जरूरत है।'अहंकार का सूत्र है : ए सर्च फार अनडिवाइडेड अटेनशन। एक खोज है अहंकार की, कि ध्यान तुम्हें मिल जाए।अब इसे तुम समझ लो। अहंकार ध्यान मांगता है और निरहंकार ध्यान देता है। अहंकार मांगता है, सारी दुनिया की नजरें मुझ

पर हों। अहंकार कहता है, जहां से मैं निकलूं, लोग मुझे देखें—'मुझे।' अहंकार की मांग है कि ध्यान मुझे मिले; और निरहंकार की मांग है, मैं कितना ध्यान बांट सकूं।फूल के पास से भी गुजरूं, तो मेरी पूरी आत्मा को ध्यान के द्वारा फूल पर उंडेल दूं। और अगर तुम पूरी आत्मा से फूल पर अपने ध्यान को उंडेल दो, तो फूल परमात्मा हो जाता है। जहां ध्यान समग्र रूप से उंडेल दिया जाता है, वहीं मंदिर निर्मित हो जाता है। वह मंदिर बनाने की कला है।और जब तुम ध्यान मांगते हो, वहीं नरक खड़ा हो जाता है।ध्यान देना साधना है, ध्यान मांगना संसार है।अब जो ध्यान देने को राजी है, वह तभी राजी हो सकता है, जब उसने अपने भीतर का सूत्र तोड़ डाला हो, जो सदा मांगता है। अहंकार भिखारी है, विनम्रता सम्राट है।यह बड़ा विरोधाभास है। क्योंकि हमें तो लगता है अहंकार सम्राट होने की कोशिश कर रहा है। लेकिन अहंकार सदा भिखारी है, मांगता है। ध्यान मांगता है। लोग मेरी तरफ देखें, प्रतिष्ठा दें, इज्जत दें। संसार मुझे जाने, मेरा नाम लिखा जाए स्वर्ण अक्षरों में। मेरा रूप खुदा रह जाए इतिहास के पन्नों पर। मैं भी चला हूं यहां। मेरे पद-चिन्ह कभी मिटें न। अहंकार की सारी चेष्टा यही है।निरहंकार की चेष्टा क्या है? निरहंकार की चेष्टा है कि किसी को पता भी न चले, कि मैं यहां था। मेरे कोई पद-चिन्ह न छूटे। मेरी कोई रेखा भी न खिंचे संसार में। जैसे पानी पर खींची हुई रेखा मिट जाती है, ऐसे मैं मिट जाऊं। मैं कहीं भी संसार को गंदा न कर पाऊं। मेरा होना न होना बराबर हो।एक गांव में क्यू लगा था। राशन कार्ड का होगा, कि मिट्टी के तेल के लिए होगा। मुल्ला नसरुद्दीन देर से पहुंचा था, लेकिन आगे खड़े होने की कोशिश कर रहा था। स्वभावतः जो पुलिसवाला देखरेख कर रहा था उसने कहा, कि मुल्ला, पीछे जा कर खड़े होओ। उसने इतनी कड़क से कहा, फिर पुलिसवाला।तो मुल्ला को जाना पड़ा, लेकिन थोड़ी देर बाद वह फिर वापस आ गया और फिर कोशिश करने लगा। उस पुलिसवाले ने कहा, 'तुम फिर आ गए? मैंने कहा, पीछे जा कर खड़े होओ।'मुल्ला ने कहा, 'भाई! वहां तो पहले ही से कोई खड़ा है।'पीछे पहले से ही कोई खड़ा है! और जब किसी को हटा कर ही खड़ा होना हो, तो आगे ही हटा कर क्यों न खड़ा होना? जब जद्दोजहद ही करनी है, झंझट ही करनी है, तो आगे ही हटा कर खड़ा होना ठीक है। पीछे तो पहले से कोई खड़ा है।अहंकार आगे खड़े होने का संघर्ष है। और अहंकार सदा देखता है, कि पीछे की जगह तो भरी है। मजा यह है, कि पीछे की जगह कभी नहीं भरी है। पीछे तो कोई होना ही नहीं चाहता। वह जगह सदा खाली है। और फीछे खड़े होने के लिए पीछे के आदमी को थोड़े ही हटाना है! तुम उसके पीछे खड़े हो सकते हो। आगे खड़े होने के लिए आगे के आदमी को हटाना पड़ेगा। वह संघर्ष है।अहंकार एक संघर्ष है, निरहंकारिता शांति है। फिर संघर्ष से तनाव फैदा होता है। संघर्ष से उदासी, विफलता, विषाद फैदा होता है। फिर संघर्ष के हजार रोग पैदा होते हैं, पागलपन पैदा होता है। फिर तुम उनके इलाज में निकलते हो। लेकिन मूल जड़ को तुम सींचते चले जाते हो। पत्तों को काटते हो, जड़ को सींचते हो। जड़ को काटो; पत्तों को काटने से कुछ भी न होगा।और कबीर की सारी शिक्षा यही है, कि तुम अगर अपने 'मैं' को मिटा दो—और मिटाना क्या है? वह है ही नहीं। जानना भर है। छाया की तरह है। है नहीं; मालूम पड़ता है। एक सपना है। एक झूठ है, जो तुम्हारे मानने की वजह से सच मालूम पड़ता है। तुम न मानो तो अपने आप गिर जाता है, नष्ट हो जाता है। तुम्हारे सहारे से ही खड़ा है। सहारा छोड़ दो, वह अपने से गिर जाता है। ताश के पत्तों का बनाया घर है। कागज की नाव है, जो हो सकता है थोड़ी देर लहरों पर इतरा ले; लेकिन डूबना निश्चित है। और जो उसमें बैठ कर भवसागर को पार करने चला है, वह तो निश्चित ही डूबेगा।कबीर कहते हैं,

'आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बांहि' अपने आप तो हम बह जाएंगे, अगर तुम्हारा हाथ न आया।यह 'आपे' शब्द बहुत अच्छा है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं, कि अपने आप तो हम बह जाएंगे। और 'आपे' का एक अर्थ अहंकार भी होता है। 'आपे ही बहि जाएंगे'—यह जो आपा है, यह जो 'मैं' भाव है, इससे तो हम बह जाएंगे।समझने की चेष्टा करें;

'सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।

आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बांहि।।'

कबीर की पहली शिक्षा तो है, कि तुम सुरति से भरो; कि तुम स्मरण से भरो परमात्मा के। जैसे-जैसे तुम परमात्मा के स्मरण से भरोगे जैसे-जैसे उसकी याद सघन होगी, तुम्हें अपने अहंकार का भाव कम होता जाएगा। ये दोनों साथ नहीं रह सकते। ये तो एक म्यान में दो तलवारें हैं, ये साथ नहीं चल सकतीं। यह राह बड़ी संकरी है, बड़ी बारीक है।

'प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाहि।'

यहां या तो परमात्मा का स्मरण बचेगा, या अहंकार का स्मरण। दोनों स्मरण साथ नहीं चल सकते। अगर परमात्मा को पाना है, तो स्वयं को छोड़ना होगा। अगर स्वयं को पकड़ना है, तो परमात्मा छूटा ही हुआ समझो।यह तो तुम भूल कर भी मत सोचना, कि तुम परमात्मा को पा लोगे। तुम कभी भी न पाओगे। पाना हो सकता है; लेकिन तुम न रहोगे, तभी पाना होगा। पाने की घटना घटेगी, लेकिन तुम न रहोगे तभी। जब तक तुम हो, तब तक बाधा बनी रहेगी। तब तक तुम्हारे कारण ही तुम परमात्मा को दूर हटाते रहोगे।तो कबीर कहते हैं, पहले तो मेरी सुरति सध जाए; कि मुझे परमात्मा का स्मरण सध जाए। लेकिन कबीर जानते हैं, कि जिन्होंने ऐसा सोच लिया कि हमें सुरति सध गई, वे एक नए अहंकार से भर गए। जो कहने लगे, कि हम तो परमात्मा के भक्त हैं; कि हम तो उसकी ही याद करते हैं; कि हम तो उसकी याद से भरे हैं। उन्होंने एक नया 'मैं' जन्मा लिया। पुराना 'मैं' नया हो गया, और मजबूत हो गया। पुराना 'मैं' सांसारिक था, यह धार्मिक हो गया। यह जहर और खतरनाक है।तो एक तो अहंकार है, कि तुम्हारे पास बड़ी दुकान है; और एक अहंकार है, कि तुम रोज पूजा करते हो। एक अहंकार है कि तुम्हारे पास धन है; और एक अहंकार है कि तुमने बहुत त्याग किया है। एक अहंकार है, कि दुनिया में तुम्हारा बड़ा बल है; और एक अहंकार है, कि परमात्मा के पास तुम्हारी बड़ी पहुंच है।वह दोनों ही एक जैसे हैं। दूसरा ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि पहले की मूढ़ता तो दिखाई पड़ जाए, दूसरे की मूढ़ता दिखाई भी न पड़ेगी। दूसरे की मूढ़ता दिखाई न पड़ेगी, क्योंकि वह शास्त्रों में ढंकी है; प्रार्थना, पूजा, धूफ, दीप, अर्चना में ढंकी है। पहली मूढ़ता तो नग्न है, बाजार में खड़ी है। दूसरी मूढ़ता छिपी है मंदिर में, मसजिद में, गुरुद्वारे में। पहली मूढ़ता तो बहुत लोगों में है। इसलिए दिखाई पड़ना बहुत कठिन नहीं है। उसके मरीज तो बहुत हैं। दूसरी मूढ़ता बड़ी न्यून है। उसके मरीज बेजोड़ हैं। वह बीमारी कभी-कभी होती है, मुश्किल से होती है। इसलिए उस बीमारी में भी अकड़ पैदा हो जाती है।तो कबीर पहले सूत्र तो देते हैं, कि तुम सुरति से भर जाओ; लेकिन इस तरह मत पकड़ लेना सुरति को, कि सुरति ही अहंकार को भरने का कारण हो जाए।भक्तों को देखो, उनकी अकड़ देखो! ज्ञानियों को देखो, उनकी अकड़ देखो! त्यागियों को देखो, उनकी अकड़ देखो! पुरानी अकड़ चली गई, नई अकड़ पकड़ गई। अकड़ इतनी सूक्ष्म है, कि तुम एक तरफ से छोड़ते हो, कि दूसरी तरफ से पकड़ लेते हो।तो इस अकड़ की संभावना ही मिट जाए इसलिए कबीर दूसरा सूत्र देते हैं—'सुरति करौ मेरे सांइयां।' इसलिए वे परमात्मा से कहते हैं, कि मैं तो तुम्हारे स्मरण से भरने की कोशिश कर रहा हूं। पर वह काफी नहीं है। मैं अकेला भव-सागर पार न कर सकूंगा। मैं तो डूब ही जाऊंगा। मेरा त्याग, मेरी पूजा, मेरी साधना पर्याप्त नहीं है। जरूरी हो सकती है, पर्याप्त नहीं है। मेरी तरफ से मैं जो भी कर रहा हूं, वह अंधेरे में टटोलने जैसा है। उससे द्वार खुलेगा ही यह पक्का नहीं है।उससे द्वार क्या खुलेगा! मैं ही कैसे द्वार को खोल पाऊंगा? अंधा! अंधेरे में! सब तरफ से बेचैन और परेशान। पुकारता हूं तुम्हें, लेकिन मेरी पुकार ही तुम तक पहुंच पाएगी? न तो तुम्हारा पता मुझे मालूम, न ठिकाना मुझे मालूम। तुम कहां हो, यह भी मुझे मालूम नहीं। पुकारता हूं, और पुकार में भी कहीं न कहीं मेरा संदेह छिपा है। मैं हूं ऐसा। मेरी सुरति भी पूरी नहीं है। वह भी खंड-खंड है। कभी भूल जाता हूं, कभी याद कर लेता हूं।

'सुरति करौ मेरे सांइयां' इसलिए तुम्हें भी मेरी याद करनी पड़ेगी। मैं तो चल रहा हूं, अपनी चेष्टा कर रहा हूं। मुझे पता भी नहीं, कि यह तुम्हारी ही दिशा है, जिसमें मैं चल रहा हूं? तुम्हें पुकारता चल रहा हूं, लेकिन मुझे पता नहीं यह पुकार तुम्हारे घर की तरफ जा रही है, नहीं जा रही है? इसलिए अकेले न हो सकेगा।'सुरति करौ मेरे सांइयां'—तुम भी मेरी थोड़ी याद करो। 'हम हैं भवजल मांहि।' सागर बड़ा है। संसार बड़ा सूक्ष्म है, किनारा दिखाई नहीं पड़ता। डूबना ज्यादा निश्चित मालूम पड़ता है, उबरने के। अपनी ही सुरति की नाव को बना कर तुम्हारे किनारे को पा लेंगे, यह संदिग्ध मालूम पड़ता है। हम ही तो बनाएंगे उस नाव को; हमारी सामर्थ्य क्या! हमारी पात्रता कितनी! हमारी बनाई हुई नाव भी तो हमारी ही नाव होगी। हमसे ही बनी होगी, हमसे बड़ी तो नहीं हो सकती। हमसे महत्वपूर्ण तो नहीं हो सकती। हमारी सब भूलें उस नाव में होंगी। हमारे सब छिद्र उस नाव में होंगे।बनानेवाले से बनाई गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। एक चित्रकार चित्र बनाता है; तो चित्रकार ही तो बनाता है। तो चित्रकार की सारी भूलें उसमें होंगी। चित्रकार की सारी मनोदशा उसमें

झलकेगी। चित्रकार के सारे मनोभाव उसमें चित्रित हो जाएंगे।एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। मूर्ति क्या कभी मूर्तिकार से बड़ी हो सकती है? कैसे होगी? बनानेवाले से बनाई गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। सृष्टि सदा ही स्रष्टा से छोटी होगी।तो कबीर कहते हैं, सुरति करौ मेरे सांइयां। हे प्रभु, तुम मेरी याद करो। मैं तुम्हारी याद कर रहा हूं।

हम हैं भवजल मांहि।' हम अब डूबे तब डूबे की हालत में हैं। पुकारते हैं, चिल्लाते हैं, लेकिन तुम तक पहुंचती है आवाज? कैसे हमें भरोसा हो, जब तक कि तुम्हारी आवाज भी हम तक न पहुंचे? हम तो हाथ फैला रहे हैं अंधेरे में—स्वभावतः, क्योंकि प्रकाश अगर होता तो हम तुम्हें पुकारते ही क्यों? हमारा हाथ अंधेरे में फैला है, लेकिन हमें कैसे पक्का पता चले, कि तुम्हारे हाथ तक पहुंच गया है, जब तक तुम्हारा हाथ हमारे हाथ का स्पर्श न करे?यह अहंकार को बिलकुल जड़ से मिटा देने की चेष्टा है। थोड़ा सा बच सकता है साधक में, तपस्वी में; भक्त में बिलकुल नहीं बच सकता। क्योंकि भक्त यह नहीं कहता कि मेरी ही सामर्थ्य से पहुंच जाऊंगा। तेरा सहारा चाहिए। 'सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि। आपे ही बहि जाएंगे. . .' अगर हम अपनी ही चेष्टा करते रहे, तो बह जाना निश्चित है।और यह अहंकार इतना भयंकर है, कि हम छोड़-छोड़ कर इसे पकड़ लेते हैं। एक तरफ से छोड़ते हैं, दूसरी तरफ से पकड़ लेते हैं। इधर से विदा करते हैं, कि वह पीछे के दरवाजे से भीतर आ जाता है। उसे हम फिर पाते हैं, वह सिंहासन पर विराजमान है। उससे हम बच नहीं पाते।यह जो विनम्र निवेदन है, यह जो अहंकार का साफ-साफ स्वीकार है, यही विनम्र आदमी का लक्षण है। अहंकारी तो कहेगा, मैं विनम्र हूं। विनम्रता ही उसका अहंकार बन जाएगी। विनम्र आदमी कहेगा, पक्का नहीं है। अहंकार सूक्ष्म है। जाल कठिन है। बाहर निकलना मुश्किल है। चेष्टा करता हूं, लेकिन जीत मालूम नहीं होती।यह विनम्र आदमी कहेगा, जिसने निश्चित ही अहंकार को छोड़ने के प्रयास किए हैं और पाया है कि हर बार अहंकार किसी न किसी रूप में बच जाता है।बड़े जटिल मार्ग हैं अहंकार के। तुम धन छोड़ देते हो, क्योंकि तुम सोचते थे, धन के कारण हैं। अचानक अहंकार कहता है, 'देखो! तुम जैसा त्यागी इस संसार में कोई भी नहीं।'तुम घर-द्वार छोड़ देते हो, जंगल में बैठ जाते हो। अहंकार कहता है, देखो! पाफी तो सब संसार में हैं, तुम कैसे पुण्यात्मा! तुम यहां जंगल में हिमालय की गुफा में बैठे हो।इससे तुम कैसे भागोगे? कहां जाओगे? यह तुम्हारे साथ ही खड़ा रहेगा।विनम्र आदमी इसको पहचान लेता है। विनम्र आदमी स्वीकार करता है, कि अहंकार बहुत कठिन है। इसलिए विनम्र परमात्मा से कहेगा, 'आपे ही बहि जाएंगे।' अपने से तो तर न पाएंगे, बह जाएंगे।

'. . .जे नहिं पकरौ बांहि।' तुम्हारा हाथ अगर न बढ़ा तो हमारा डूब जाना निश्चित है।चिल्लाते हैं, पुकारते हैं, रोते हैं; लेकिन यह काफी कहां है? शुरुआत हो सकती है, अंत नहीं। अंत तो तुम्हारा हाथ हमारे हाथ में आ जाए, तभी! तुम्हारा सहारा मिल जाए—'सुरति करौ मेरे सांइयां।'

'अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।' तपस्वी तो हिसाब रखता है, कितनी तपश्चर्या की! साधक हिसाब रखता है कितने उपवास किए, कितनी पूजाएं कीं, कितने मंत्र जपे—करोड़, दो करोड़, पांच करोड़! वह सब अहंकार का ही हिसाब है। वह खाते-बही सब संसार की ही है। अहंकार के अतिरिक्त कोई दावेदार ही नहीं है दुनिया में। दावेदारी कुछ भी हो; कि मैंने इतने मंत्र पढ़े, इतनी पूजा की।भक्त का भाव कुछ और है। भक्त कहता है, 'अवगुण मेरे बापजी।' भक्त कहता है, अवगुणों का मुझे पता है। उन्हें मैं मिटा नहीं पाया, यह भी मुझे पता है। उन्हें मैं मिटा न पाऊंगा यह भी मुझे पता है। तेरे बिना कुछ भी न होगा। तो मैं यह नहीं कहता, कि मैं गुणी हूं इसलिए तू हाथ बढ़ा; यहीं फर्क है।अहंकारी वहां भी कहता है, कि देख मैंने इतने उपवास किए, अभी तक तेरा हाथ नहीं मिला? अन्याय हो रहा है। बेईमान तरे जा रहे हैं, ईमानदार डूब रहा है। अनैतिक पार हुए जा रहे हैं और जिन्होंने तपश्चर्या की, साधना की, तुझे पुकारा, राम-राम जप कर जीवन गुजारा, वे डूब रहे हैं। यह अन्याय है।जहां अहंकार है, वहां सदा शिकायत होगी। शिकायत अहंकार के पीछे ऐसी चलती है, जैसे छाया तुम्हारे पीछे।जहां अहंकार नहीं है, वहां अहोभाव होगा। वहां दीनता की स्वीकृति होगी और उसके दान के प्रति अहोभाव होगा। जहां अहंकार है, वहां सदा यह लगेगा, कि जो मुझे मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। जिसके मैं योग्य हूं, वह मुझे नहीं मिल रहा है। जो मेरी पात्रता है, उससे कम मुझे मिल रहा है। यही तो विषाद है। यही तो उदासी है अहंकार की। यही तो उसकी असफलता है।लेकिन कबीर कहते हैं, 'अवगुण मेरे बापजी।' मुझे पता है। कुछ

छिपा नहीं है मुझसे। कुछ तेरे द्वार पर मैं दावा लेकर नहीं आया हूं। और अगर यह कहता हूं, कि तू हाथ बढ़ा, तो इसलिए नहीं कहता हूं कि मैं इसके योग्य हूं।इस भेद को ठीक से समझ लेना; क्योंकि उसी भेद पर भक्त की सारी की सारी कीमिया, सारी कला निर्भर है।मैं इसलिए नहीं कहता हूं, तू हाथ बढ़ा, क्योंकि मैंने पात्रता अर्जित कर ली है। पात्रता कहां? अपात्र हूं बिलकुल। 'अवगुण मेरे बापजी'— अवगुणों का मुझे पता है। शायद तुझे भी पता न हो मेरे अवगुणों का; मुझे पता है। मुझे तो अवगुणों अवगुणों का ही पता है।'. . .बकस गरीब निवाज।' तो तुझसे यह नहीं कहता कि मैंने अर्जित कर लिया है तेरा हाथ। इतना ही कहता हूं, कि मैं जानता हूं तू गरीब निवाज है। तू उन पर दया करता है, जिनके पास कुछ भी नहीं। तेरी करुणा अपार है। मैं तेरी करुणा को पुकार रहा हूं; अपनी पात्रता की घोषणा नहीं कर रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं, कि अब दे, अगर देर हुई तो अन्याय होगा। मैं जानता हूं, कि जब भी मुझे मिलेगा, तेरी करुणा के कारण मिलेगा, मेरी पात्रता के कारण नहीं।इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है। बड़ा प्राचीन विवाद है। सारे संसार के सभी धर्मों के सामने उठा है। और वह विवाद यह है, कि परमात्मा न्यायपूर्ण है या करुणावान?बड़ा कठिन है विवाद। तय करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि अगर न्यायपूर्ण हो, तो करुणावान नहीं हो सकता। न्याय का तो मतलब है, जिसने बुरा किया उसे दंड मिलना चाहिए; जिसने भला किया, उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। करुणावान का अर्थ है, जिसने बुरा किया उसको भी प्रसाद मिल जाता है। करुणावान का अर्थ है, कि जिसने कमाया नहीं, उस पर भी वर्षा हो जाती है।

तो परमात्मा क्या है? जस्ट—न्यायपूर्ण; या कम्पैशनेट— करुणावान? दोनों एक साथ तो कैसे होगा? क्योंकि अगर मजिस्ट्रेट अदालत में न्यायपूर्ण हो, तो करुणावान नहीं हो सकता। क्योंकि अगर करुणा करने लगे, तो फिर न्यायपूर्ण कैसे होगा?एक आदमी ने चोरी की है उसे करुणा आ जाए, कि बेचारा गरीब! तो फिर न्याय न कर सकेगा। अगर उसे माफ कर दे, तो जिसकी उसने चोरी की थी, उसके साथ अन्याय हो गया।और अगर न्याययुक्त हो, ठीक वही करे, जो न्याय कहता है तो फिर करुणा कहां होगी?जिन लोगों ने माना, कि परमात्मा न्यायपूर्ण है, उन्होंने धीरे-धीरे परमात्मा को हिसाब के बाहर ही कर दिया। क्योंकि अगर परमात्मा न्यायपूर्ण है, तो उसकी जरूरत ही नहीं रह जाती। फिर तो नियम काफी है, परमात्मा की क्या जरूरत है?इसलिए जैनों ने परमात्मा को इनकार कर दिया। क्या जरूरत है? अगर वह सदा ही न्यायपूर्ण है, तो नियम काफी हैं। पाप के कारण दुःख मिलता है, यह नियम है। जैसे कोई आदमी आग में हाथ डालता है, हाथ जल जाता है। आग कोई सोचती थोड़े ही है, कि इस आदमी पर दया करें, या दंड दें। आग तो एक नियम के अनुसार चलती है। इसलिए जैनों ने तय कर लिया, कि परमात्मा को बाद दी जा सकता है, उसकी कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती। अगर वह सदा ही न्यायपूर्ण है और कभी नियम के बाहर नहीं जाता, तो नियम काफी है। उसकी क्या जरूरत?और अगर यह सदा ही नियम के अनुसार चलता है तो वह नियम से नीचे है, नियम से ऊपर नहीं है। तो नियम ही असली परमात्मा है। इसलिए बुद्ध और महावीर दोनों ने कहा, धर्म परमात्मा है। और कोई परमात्मा नहीं है—नियम। धर्म यानी नियम। वह जो जीवन का शास्त्र है, उसका नियम। जो आग में हाथ डालता है उसका हाथ जल जाता है। बस, ऐसे ही जो फाफ करता है, उसे दुःख मिलता है; जो फुण्य करता है, उसे सुख मिलता है। यह कर्म का सिद्धांत है।अगर ठीक से समझो, तो परमात्मा के साथ कर्म का सिद्धांत मेल नहीं खाता। यह तुमने कभी सोचा न होगा। हिंदुओं को या तो परमात्मा को पकड़ना चाहिए या कर्म का सिद्धांत छोड़ देना चाहिए। जैन ज्यादा तर्क-युक्त हैं। उन्होंने कर्म का सिद्धांत पकड़ा, परमात्मा को छोड़ दिया।क्योंकि जब नियम ऐसा है, कि जैन यह पूछते हैं, परमात्मा अगर चाहे तो क्या पापी को भी स्वर्ग भेज सकता है? अगर भेज सकता है, तो यह जगत एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था है। और यह परमात्मा, परमात्मा नहीं है, यह तो एक अन्यायी व्यक्ति है। और ऐसे व्यक्ति का न होना बेहतर है।और तब पुण्य करने में भी क्या सार है? क्योंकि जैन कहते हैं, अगर पापी स्वर्ग जा सकता है, तो इससे उलटा भी हो सकता है, कि पुण्यात्मा नरक भेज दिया जाए। क्योंकि यह तो फिर परमात्मा की दिमागी करुणा पर निर्भर है। नाराज हो जाए—नियम तोड़ा जा सकता है अगर पापी के पक्ष में, तो पुण्यात्मा के विपरीत भी तोड़ा जा सकता है। एक दफा नियम अगर तोड़ा जा सकता है, तो नियम का फिर कोई भरोसा नहीं है।तो परमात्मा तो फिर एक तरह का तानाशाह है। वह ढंग हिटलर और स्टेलिन जैसा है फिर उसका। जैन कहते हैं,

ऐसे परमात्मा को हम बर्दाश्त नहीं करते। अन्याय को हम बर्दाश्त नहीं करते। हम तो नियम और नीति और न्याय को चाहते हैं। इसलिए नियम काफी है। परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है।हिंदू दोनों मानते हैं। हिंदू दुनिया में बड़ा विरोधाभासी धर्म है। और वही उसकी खूबी भी है, वही उसकी मुश्किल भी है। खूबी यह है, कि वह दोनों बातें एक साथ मानता है, कि परमात्मा न्यायपूर्ण है और परमात्मा करुणावान है। क्योंकि हिंदू कहते हैं, कि अगर सिर्फ नियम है तो जीवन इतना रूखा-सूखा हो जाता है कि वहां कोई करुणा की छाया नहीं। अगर कानून से ही सब चल रहा है तो जीवन में फिर रस, संगीत, और रहस्य की क्या जगह रही? गणित का हिसाब है; धर्म का क्या उपाय रहा?इसलिए जैन शास्त्र अगर तुम पढ़ो, तो तुम पाओगे वह गणित का फैलाव है। उनमें तुम्हें उपनिषदों का रस न मिलेगा।मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, आप कुंदकुंद पर क्यों नहीं कभी बोलते, जैसा कबीर पर बोलते हैं?कुंदकुंद परम ज्ञानी हुए। जरूर मैं चाहूंगा, कि उन पर बोलूं। लेकिन अड़चन वहां आ जाती है, कि एकदम सब रूखा-सूखा है। एक मरुस्थल मालूम होता है— नियम! कोई काव्य नहीं है, कोई करुणा नहीं है, कोई रसधार नहीं बहती। चलो मरुस्थल में, लेकिन कहीं कोई पानी की बूंद नहीं मिलती। और सब गणित का ही हिसाब है।तो ऐसा लगता है, जैसे जीवन एक गणित है। उसमें से काव्य खो जाता है। जीवन एक कविता नहीं रह जाती। शुद्ध गणित हो जाता है—हिसाब। दो और दो चार होते हैं, ऐसा हिसाब हो जाता है। दो और दो न तो पांच होते, न तीन होते।हिंदू बड़े अदभुत हैं इस अर्थ में। वे कहते हैं, कि जीवन में नियम है, लेकिन नियम ही सब कुछ नहीं है। नियम के पीछे करुणावान हृदय भी छिपा है।जीसस की एक कहानी है। वह जीसस ने निश्चित ही हिंदुओं से इसी मुल्क में सीखी है। क्योंकि यहूदी उसको बिलकुल नहीं समझ पाए और यहूदियों के लिए बिलकुल बेबूझ हो गई। यहूदी भी राजी हैं, कि फरमात्मा न्याययुत्त है। इसलिए यहूदियों का परमात्मा बड़ा कठोर है, जैसा नियम कठोर होता है। आग जलाती है। छोटा बच्चा हाथ डाले तो भी जलाती है, पहलवान हाथ डाले तो भी जलाती है। आग सोचती नहीं, कि छोटा बच्चा है, क्षमा करो, छोड़ दो एक दफा। एक दो दफा भूल करता है, सीख लेने दो।नहीं नियम बड़ा कठोर है। इसलिए यहूदियों का परमात्मा एकदम नियम का प्रतीक है, बड़ा कठोर है। तुमने भूल की, वह तुम्हें सड़ाएगा, नरको में डालेगा, काटेगा। तुमने ठीक किया, वह तुम्हें स्वर्गो में उठाएगा। तुम्हारे जीवन में सुख ही सुख की धाराएं बह जाएंगी। पुरस्कृत होओगे, दंडित होओगे; और सब नियम से चलेगा। परमात्मा नियम है।जीसस ने एक कहानी जब कहनी शुरू की, तो यहूदियों के लिए बड़ी अड़चन हुई। जीसस की कहानी बड़ी साधारण, सरल, सीधी-साफ है।जीसस ने कहा, कि एक आदमी का एक अंगूरों का बगीचा था। और उसने सुबह अपने मुनीम को भेजा, कि तू जा और गांव से मजदूरों को ले आ। वह गया, वह कुछ मजदूरों को लाया लेकिन और मजदूरों की जरूरत थी। दोफहर होते-होते उसे फिर भेजा गया, वह फिर और मजदूरों को लाया। लेकिन और भी मजदूरों की जरूरत थी। मालिक जल्दी में था और काम सांझ तक पूरा कर लेना था तो दोपहर के बाद भी कुछ मजदूर आए। फिर भी उसे भेजा गया। कुछ मजदूर तो तब आए जब काम बंद होने के ही करीब था। वे आए ही; काम करने का उन्हें मौका ही नहीं मिला और सूरज ढल गया।फिर उस मालिक ने सभी मजदूरों को इकट्ठा किया और सभी को बराबर पैसे बांट दिए। जो सुबह आए थे उन्हें भी, और जो अभी-अभी आए थे, उन्हें भी।निश्चित ही इसमें थोड़ा अन्याय मालूम पड़ा। जो सुबह से मेहनत कर रहे थे उन्होंने कहा, यह अन्याय है। क्योंकि हम सुबह से जी-जान तोड़ रहे हैं। कुछ लोग दोपहर में आए, उन्हें आधा मिलना चाहिए। कुछ लोग और भी बाद में आए, उन्हें तो पाव ही मिलना चाहिए। और कुछ लोग तो अभी-अभी आए हैं, उन्हें देने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।उस मालिक ने कहा, कि तुम्हें जितना मिलना चाहिए था, उतना मिला या नहीं?'उन्होंने कहा, 'हमें तो उतना मिल गया।'तो मालिक ने कहा, 'फिर तुम फिक्र मत करो। तुम्हें जितना मिलना चाहिए था, वह तुम्हें मिल गया। इन्हें मैं अपनी खुशी से देता हूं। मेरे पास देने को बहुत है। इनकी मजदूरी के कारण नहीं देता, अपने ज्यादा होने के कारण देता हूं। इसमें तुम्हें कोई एतराज है?'यह कहानी जीसस ने निश्चित ही हिंदुओं से सीखी होगी। इस कहानी का सूत्र कहीं हिंदुओं की धारणा में है। हिंदू कहते हैं, परमात्मा न्यायपूर्ण है; मगर न्याय का उपयोग वह पुण्यात्माओं के साथ करता है।यह जरा समझ लेना। यह बड़े मजे की बात है। न्याय का उपयोग करता है पुण्यात्माओं के साथ, क्योंकि उनको करुणा की जरूरत ही नहीं है। उन्होंने करुणा कभी मांगी ही नहीं। तो उन्हें जितना मिलना चाहिए, उतना मिल जाता है। उन्होंने

मेहनत की सुबह से सांझ तक। तप किया, उपवास किया, भूखे रहे, जंगल गए, उलटी-सीधी सांसें साधीं, प्राणायाम किया, सिर के बल खड़े रहे, योग किया। हजार उपाय किए, जुगुत की, जोग की। निश्चित ही उन्होंने बड़ी मेहनत की सुबह से सांझ तक।परमात्मा उन्हें उतना देता है, जितना उन्होंने अर्जित कर लिया। करुणा उन्होंने मांगी नहीं। उन्होंने अपने श्रम की मांग की है। इसलिए यह बड़े मजे की बात है, कि महावीर और बुद्ध के धर्म का नाम श्रमण है। श्रमण का अर्थ होता है, जो श्रम पर आधारित है।हिंदुस्तान में दो संस्कृतियां हैं; एक ब्राह्मण और एक श्रमण। श्रमण संस्कृत का अर्थ होता है, हम अपने श्रम से जो अर्जित है उसकी मांग कर रहे हैं। निश्चित उतना मिलेगा। उससे कम कभी भी नहीं मिलेगा, क्योंकि परमात्मा न्यायपूर्ण है।लेकिन जिन्होंने सिर्फ अर्जित किया है, वे बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे परमात्मा के द्वार पर; जब वे देखेंगे, कि पापियों को भी मिल रहा है और खूब मिल रहा है। और उतना ही मिल रहा है, जितना उन्हें मिल रहा है। तब परमात्मा उनसे कहेगा, कि यह मैं अपने आधिक्य से देता हूं। यह मेरे पास बहुत ज्यादा है, इसका मैं क्या करूं? तुमने जितना कमाया, तुम्हें मिल गया। फिर भी बहुत मेरे पास बचा है, उसका मैं क्या करूं?यह गणित के बाहर है बात। मगर जीवन गणित है ही नहीं। ऐसा नहीं है, कि गणित से चलनेवाले लोग नहीं पहुंचेंगे; पहुंचेगे। पर उतना ही पाएंगे जितना उनकी जरूरत है, जितना उन्होंने कमाया है।अंत में एक बड़ा अदभुत अनुभव होता है, कि उनको भी मिल जाता है, जिन्होंने कमाया न था, लेकिन जिन्होंने अनुभव किया था, हम अवगुणी हैं; जो निरहंकारी थे। कमाई तो अहंकार की घोषणा है। अहंकार के साथ पूरा न्याय किया जाता है। लेकिन ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने कमाया नहीं; या कमाया भी तो भी पाया, कि हमारी कमाई का क्या दावा हो सकता है? उन्होंने अपने अवगुणों की बात कही है . . . 'अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।' उन्होंने कहा, कि अवगुण ही अवगुण हैं हममें। दावा हमारा कुछ नहीं। अगर न मिलेगा तो हम शिकायत न कर सकेंगे और कहीं अपील न कर सकेंगे तुम्हारे खिलाफ। कोई अदालत है भी नहीं अपील की। कोई शिकायत भी न कर सकेंगे। हम पाएंगे, कि ठीक है। जो हुआ, वह अपने अवगुणों के कारण हुआ। तुमसे हमारी कोई शिकायत न होगी। लेकिन हम तुम्हारी करुणा को तो पुकार सकते हैं। अब अस्तित्व में दोनों तत्त्व हैं; न्याय के और करुणा के। न्याय को पुकारता है ज्ञानी, करुणा को पुकारता है भक्त। नियम को पुकारता है ज्ञानी, करुणा को पुकारता है भक्त। भक्त निर्भर होता है इस अस्तित्व की प्रीति पर। ज्ञानी निर्भर होता है इस अस्तित्व के नियमों पर।इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, अगर ज्ञानी ही सिर्फ ठीक हो, तो किसी न किसी दिन धर्म, विज्ञान का एक छोटा-सा हिस्सा हो कर समाप्त हो जाएगा। क्योंकि विज्ञान भी नियम पर निर्भर है। वह भी नियम की खोज है। इसलिए आइंस्टीन में और महावीर के विचार में बहुत फर्क नहीं है। एक न एक दिन तालमेल बैठ जाएगा। आइंस्टीन भी रिलेटिविटी की बात करता है, सापेक्ष की; और महावीर भी बात करते हैं। महावीर के वचनों में और आइंस्टीन के वचनों में विरोध खोजना कठिन है।कभी न कभी विज्ञान, जैन धर्म और बौद्ध धर्म से राजी हो जाएगा। उस दिन जैन धर्म और बौद्ध धर्म खो जाएंगे। क्योंकि जिस दिन विज्ञान ही इन काम को पूरा कर देगा, उस दिन इन धर्मों की कोई जरूरत न रह जाएगी। जो धर्म नियम पर आधारित हैं, उनके खोने का दिन जल्दी करीब आ जाएगा। उस दिन तो वे ही धर्म बचेंगे जो नियम के बाहर हैं, जरा बेबूझ हैं, पहेली जैसे हैं।हिंदू धर्म बहुत बेबूझ है। गहरी से गहरी पहेली है उसकी; और वह यह कहता है, कि वे भी पहुंच जाते हैं, जिन्होंने कमाने का दावा ही नहीं किया। जिन्होंने केवल अपने दुर्गुणों की स्वीकृति की, जिन्होंने अपनी कमियों को स्वीकार किया, वे भी पहुंच जाते हैं। वे निरहंकारिता के कारण पहुंचते हैं। और मेरी अपनी समझ यह है, कि वे और भी गहरे पहुंच जाते हैं, जिन्होंने परमात्मा के हृदय से पहुंचने की कोशिश की। जो परमात्मा के मस्तिष्क से पहुंच रहे हैं, नियम के अनुसार, गणित के अनुसार; वे भी पहुंचते हैं, लेकिन उतने गहरे नहीं पहुंच पाते।

'अवगुण मेरे बापजी . . .' भक्त परमात्मा से संबंध जोड़ता है। क्योंकि भत्त यह मान ही नहीं सकता, कि अस्तित्व के साथ हमारा जीवन अनजुड़ा है। जीसस कहते हैं परमात्मा को, 'मेरे पिता।' कबीर कहते हैं, 'बापजी'। 'बापजी' शब्द बड़ा प्यारा है।मैं राजस्थान में घूमता था, तो राजस्थान में ग्रामीण जब भी आते हैं किसी संत के पास, तो वे कहते हैं बापजी या बापू—गुजरात में भी। तो कभी-कभी ऐसा होता— उदयपुर के महाराजा के पिता मुझे मिलने आए। वे बड़े सादे भक्त हैं, बड़े सीधे आदमी हैं। दस-पच्चीस लोग ही मैंने मुल्क में देखे हैं, जिनमें वैसा गुण है। वे तो बहुत बूढ़े हैं। मेरे पिता से भी

उनकी उम्र ज्यादा है। मेरे पिता के पिता की उम्र के होंगे।वे मुझसे जब 'बापजी' कहने लगे तो मैंने उनको कहा, 'रुकें। मुझे आप बापजी मत कहें। आप तो मेरे पिता के भी पिता की उम्र के हैं।'वे कहने लगे, कि नहीं। शरीर की बात ही नहीं है। उम्र का सवाल ही नहीं है। हम तो आपमें बापजी को ही देखते हैं।बापजी का अर्थ है, परमात्मा। बापजी का अर्थ है, जिससे सारा जगत हुआ और जिसमें लीन हो जाएगा। वह एक संबंध है प्रेम का।परमात्मा कोई न्यायाधीश नहीं है। न्यायाधीश से भी कोई संबंध होते हैं? न्यायाधीश से तो बड़ा फासला होता है। न्यायाधीश तो संबंध बनाता ही नहीं किसी से।इसलिए न्यायाधीश को हम वर्ष दो वर्ष में एक गांव से दूसरे गांव में बदली करते रहते हैं। क्योंकि वह एक जगह ज्यादा देर रह जाए तो लोगों से संबंध हो ही जाएंगे। आदमी आखिर आदमी है! जब संबंध हो जाएंगे तो न्याय में बाधा फड़ने लगेगी। किसी से ज्यादा परिचय हो जाएगा और उसका लड़का चोरी में पकड़ा जाएगा, तो दो साल की सजा न देकर दो महीनों में निपटा देगा। किसी से झगड़ा हो जाएगा, विरोध बन जाएगा तो जहां दो महीने की सजा देनी थी, दो साल की दे देगा।इसलिए हम न्यायाधीशों को एक गांव में ज्यादा देर टिकने नहीं देते। और गांव में भी टिकें तो उनसे गांव से संबंध नहीं बनने देते। उनको दूर रहना चाहिए, फासले पर रहना चाहिए, मित्रता नहीं बनानी चाहिए।ऐसे धर्म हैं, जिनका परमात्मा से नाता न्यायाधीश का है। यह भी कोई नाता हुआ! यह तो बात ही खराब हो गई। जीवन की सारी रसधार ही सूख जाएगी। तुम फिर नाच न सकोगे। अदालतों में कहीं नाच हो सकता है?इसलिए तो चर्च उदास हो गए, मसजिदें खाली हो गइ, मंदिरों में नौकर बैठ गए पूजा करने। सब काम अदालती हो गया।संबंध सीधा होना चाहिए। वह संबंध ऐसा होना चाहिए जैसे बेटे और पिता के बीच होता है; मां और बेटे के बीच होता है; पति-पत्नी के बीच होता है; प्रेमी-प्रेयसी के बीच होता है। वह संबंध कहीं निकटता का होना चाहिए। वह संबंध किसी न किसी रूप में प्रेम का होना चाहिए।और बहुत तरह के संबंध भक्तों ने खोजे हैं। सूफी फकीर उसको प्रेयसी कहते हैं। उसका भी अपना राज है। हिंदू भक्त—मीरा, चैतन्य उसे पति की तरह पूजते हैं। बंगाल में एक भक्तों का संप्रदाय है, राधा संप्रदाय। पुरुष भी अपने को राधा ही मानता है। कृष्ण एक ही हैं, पति एक ही है।लेकिन कबीर का जोर पिता और बेटे के संबंध पर है। इसमें कोई बातें समझने जैसी हैं। अगर वह पिता है, तो पिता और बेटे के बीच बड़ा अनूठा नाता है।एक तो, बेटा पिता का ही फैलाव है। वह उससे अलग है, अलग नहीं भी है। यह बात पहली समझ लेनी जरूरी है। क्योंकि बेटा है तो पिता का ही वीर्याणु। वह उसकी ही यात्रा है, जीवन-धारा है। कितनी ही दूर हो जाए, फिर भी दूर नहीं, अपना ही है। आत्मज कहते हैं हम बेटे को, कि वह अपने से ही जन्मा है।तो हम परमात्मा से कितनी ही दूर हो जाएं और कितनी ही पीठ कर लें और कितनी ही यात्रा पर निकल जाएं संसार में; कोई फर्क नहीं पड़ता। हम उससे ही पैदा हुए हैं।पति-पत्नी का संबंध हमारा बनाया हुआ है। पिता-बेटे का संबंध हमारा बनाया हुआ नहीं है। पत्नी को हम बदल ले सकते हैं, डायवोर्स हो सकता है। पिता को बदलने का कोई उपाय नहीं। पत्नी हम दूसरी चुन सकते हैं, लेकिन पिता दूसरा कैसे चुनिएगा? कैसे चुनेंगे दूसरा पिता? वह बात हो गई, हो गई। उसके न होने की कोई सुविधा नहीं है।पिता को बदला नहीं जा सकता। वह अपरिवर्तनीय संबंध है। और बेटा कितना ही बड़ा हो जाए, बाप से बड़ा कभी नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। बेटा बाप से जान ले ज्यादा, ज्यादा ज्ञानी हो जाए, ज्यादा त्यागी हो जाए, ज्यादा धन कमा ले, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। बाप बाप है, बेटा बेटा है। और फासला और अनुपात वही का वही है, जो सदा था। बेटा बूढ़ा हो जाए तो भी बाप के लिए बेटा ही है। कोई अंतर नहीं पड़ता।बाप और बेटे का संबंध कई और आयामों में भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बेटे और बाप के बीच जो संबंध है, वह अत्यंत गहन श्रद्धा का है। श्रद्धा प्रेम का नवनीत है। वह आखिरी चरण है प्रेम का। पति-पत्नी में संबंध प्रेम का है। वह टूट सकता है। प्रेम घृणा में बदल सकता है। लेकिन श्रद्धा का संबंध एक बार निर्मित हो जाए, तो वह कभी अश्रद्धा में नहीं बदल सकता। अगर बदल जाए तो समझना कि वह निर्मित ही न हुआ था। श्रद्धा में वापस लौटने का उपाय ही नहीं है। वह पाइंट आफ नो रिटर्न है। वहां से कोई वापस नहीं लौटता।गुर्जिएफ पश्चिम का एक बहुत बड़ा संत, अपने आश्रम के बाहर दीवाल पर लिख रख छोड़ा था, कि जिसने अपने मां-बाप को आदर देना नहीं सीख लिया है, उसके लिए मंदिर के द्वार बंद हैं।बड़ी हैरानी की बात थी। इस बात को वहां लिखने की क्या जरूरत थी? लोग पूछते भी गुर्जिएफ से, कि यह क्या मामला है? इससे मां-बाप से क्या लेना-देना!गुर्जिएफ कहता, कि जिसने इस संसार के मां-बाप से संबंध श्रद्धा

का नहीं बना लिया, उसके पास सीढ़ी ही नहीं है उस ऊपर के पिता की तरफ चढ़ने की। उसकी सीढ़ी नहीं है उसके पास। उसके पास मौलिक अनुभव नहीं है, जिसका बीज बन जाए और जिसका वृक्ष हो सके। उसके पास पहली कुंजी ही नहीं है। इसलिए पूरब में, जहां धर्मो का जन्म हुआ—सारे धर्मो का जन्म पूरब में हुआ। पश्चिम में एक भी धर्म पैदा नहीं हुआ है। जैसे सूरज पूरब में उगता है, वैसे सारा धर्म पूरब में पैदा हुआ है। पूरब में जितने धर्मो का जन्म हुआ—सभी धर्मो का हुआ—और पूरब में सभी लोगों ने एक बात पर जोर दिया है; वह है, बेटे के द्वारा पिता के प्रति एक अनन्य श्रद्धा, जिसको तोड़ा नहीं जा सकता।कारण है उसका। कारण है, क्योंकि अगर तुम इस पृथ्वी पर अपने पिता के प्रति एक श्रद्धा का भाव पैदा नहीं कर पाए, तो तुम उस अज्ञात पिता के प्रति तो कैसे श्रद्धा का भाव पैदा कर पाओगे? मूल सीढ़ी खो रही है। इसलिए जिन लोगों का भी अपने पिता से बहुत अच्छा संबंध नहीं है, उन्हें उस संबंध को सुधार लेना चाहिए। उसको बिना सुधारे उनके और परमात्मा के बीच थोड़ी सी झंझट बनी रहेगी।पश्चिम में परमात्मा की धारणा टूटती गई है। और वह उसी हिसाब से टूटी है, जिस हिसाब से बेटे और बाप का संबंध टूटा है। पिछले तीन सौ वर्षो में जिस हिसाब से बेटे और बाप का संबंध टूटा है, उसी हिसाब से मनुष्य का और परमात्मा का संबंध टूटा है। अब तो पश्चिम में बेटे बाप का संबंध जैसा कोई संबंध नहीं रह गया है। परमात्मा से भी कोई संबंध नहीं रह गया है।जीवन में हर चीज कड़ी की तरह जुड़ी है। पृथ्वी के संबंध भी आकाश के संबंध की कड़ियां बनते हैं।प्यारा शब्द है बापजी।

'अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।
जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।।

' और मुझे पता है, मैं दावा नहीं कर सकता सपूत होने का। हो सकता है, मैं कपूत हूं, लेकिन यह मेरी भूल-चूक है; इससे तुझे लज्जा में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। यह मेरी गलती है। जो भी भूल-चूक है, वह मेरी है; इससे तुझे लज्जा में फड़ने की कोई भी जरूरत नहीं।

'जे मैं कपूत हों, तउ पिता को लाज।' और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कि बेटा कपूत हो, कि सपूत हो। पिता के प्रेम में कोई फर्क नहीं पड़ता। और पड़ता हो प्रेम में फर्क, तो वह पिता का प्रेम नहीं है। हालत तो उलटी है। अक्सर ऐसा होता है कि कपूत बेटे के प्रति पिता का ज्यादा प्रेम और ज्यादा लगाव होता है।जीसस की दूसरी कहानी है; कि एक बाप के दो बेटे थे। छोटा बेटा उपद्रवी था, लंपट था। उसने आधी संपत्ति ले ली और शहर चला गया गांव छोड़ कर। वहां उसने संपत्ति बरबाद कर दी जुए में, शराब में, स्त्रियों में। भिखारी हो गया, दर-दर भीख मांगने लगा।बड़ा बेटा बाप के पास रहा। उसकी खेती में, उसके बगीचों में काम किया, मेहनत की। बाप बूढ़ा था। जो संपत्ति उसे मिली भी, उसकी उसने चारगुनी, पांचगुनी कर दी।फिर एक दिन भीख मांगते छोटे बेटे को याद आई, कि मैं भीख मांग रहा हूं। ऐसे न मालूम कितने भिखारियों को मेरे पिता रोज भीख देते हैं। मैं जिनसे भीख मांग रहा हूं, ऐसे लोग मेरे पिता के खेत पर काम करने आते हैं, नौकर-चाकर हैं। क्या मेरे पिता मुझे क्षमा न कर सकेंगे? एक दफा कोशिश कर लेनी उचित है।उसने खबर भेजी, कि वह वापस आना चाहता है। पिता ने बड़ा स्वागत समारंभ किया। सारे गांव को भोज पर निमंत्रित किया। पुरानी से पुरानी शराब तलघरों से निकलवाई। मोटी से मोटी भेड़ काटने की आज्ञा दी। घर में दीये जलाए, सुगंध छिड़की गई, बैंड-बाजे बजाए, फूल-हार लटकाए। बेटा लौट रहा है। बाप बड़ा प्रसन्न था।किसी ने जाकर बड़े बेटे को खेत में खबर दी, जो अब भी वहां मेहनत कर रहा था, कि तुम्हें पता है, घर पर क्या हो रहा है? अन्याय हो रहा है। तुम्हारा छोटा भाई लौट रहा है लंपट आवारा! सब बरबाद करके, सब प्रतिष्ठा खो कर। और बाप उसके स्वागत का समारंभ कर रहा है। फूलबत्ती जलाई जा रही है, दीप सजाए जा रहे हैं, सारे गांव को निमंत्रण मिला है। पुरानी से पुरानी शराब निकाली गई है। मोटी से मोटी भेड़ को काटने की आज्ञा दी गई है। और तुमने सदा बाप की सेवा की है, और कभी तुम्हारे लिए ऐसा समारंभ न हुआ? कोई उत्सव न हुआ? यह अन्याय है।बड़े बेटे को भी लगा, यह अन्याय है। वह बड़े क्रोध में बगीचे से वापस लौटा। यह सब देख कर, वह तो हैरान हो गया। उसने बाप से कहा, कि आप मेरे साथ क्या कर रहे हैं? मेरे लिए कभी दीये न जले, मेरे लिए कभी भोज न दिया गया। और मैं सदा से तुम्हारे चरणों की सेवा कर रहा हूं। और ये दीये उसके लिए जल रहे हैं, जिसने तुम्हारी आधी संपदा बरबाद कर दी और तुम्हारे नाम को कालिख लगा दी। बाप ने कहा, तू तो

मेरे पास ही है सदा। तेरे लिए अलग से स्वागत की कोई जरूरत नहीं। तू तो मेरे हृदय के पास है। लेकिन जो भटक गया है और वापस आ रहा है—स्वागत के बिना ठीक से वापसी न हो सकेगी। हम उसे स्वागत न देंगे, तो उसे लगेगा कि हमने स्वीकार नहीं किया, अंगीकार नहीं किया। तू तो मेरा ही है। तू कभी दूर ही न गया। लेकिन उसके लिए स्वागत की जरूरत है, ताकि उसका आत्मगौरव वापस लौट आए।जैसे जीसस कहते हैं परमात्मा पुण्यात्माओं के लिए शायद स्वागत-समारंभ न भी दे, लेकिन जिन्होंने अपने अवगुण स्वीकार कर लिए हैं और जिन्होंने प्रार्थना भेजी है, कि हम वापस लौट आना चाहते हैं, उनके लिए बड़ा स्वागत-समारंभ रचा जाता है।जीसस ने कहा है, जैसे गड़ेरिया अगर उसकी एक भेड़ खो जाए तो अपनी सौ भेड़ों को अंधेरी रात में, अकेले पहाड़ पर छोड़ कर खोई भेड़ को खोजने निकल जाता है। और जब भेड़ मिल जाती है तो उसे कंधे पर लेकर लौटता है और बड़ा खुश होता है। और जो भेड़ें सदा उसके पास थीं, उन्हें कभी कंधे पर लेकर नहीं चला और न कभी प्रसन्न हुआ। कोई जरूरत ही न थी। भक्त की धारणा यह है, कि अगर तुम अपने हृदय को पूरा परमात्मा के सामने खोल दो; अपने पाप को, अपने अफराध को, अपनी दीनता को, दरिद्रता को—वही खोल देना, वही कन्फेशन, वही स्वीकारोक्ति उसके हाथ का तुम्हारे तरफ बढ़ने का उपाय हो जाएगा।तुम उससे भटक गए हो, वह भी तुम्हें खोज रहा है। उसका हाथ भी अंधेरे में तुम्हें टटोल रहा है। तुम अकेले ही नहीं खोज रहे हो, अस्तित्व भी तुम्हें खोज रहा है। अगर तुम अकेले ही खोज रहे हो और अस्तित्व बिलकुल निरपेक्ष है, तो खोज पाकर भी क्या समाधि घटित होगी? खोज पाकर, घर लौट कर भी अगर वहां कोई दीये जलते न मिले, कोई स्वागत न मिले, कोई स्वागत-समारंभ न हुआ, तो घर आना भी क्या घर आना होगा? फिर धर्मशाला और घर में क्या फर्क होगा?नहीं, अस्तित्व भी खोज रहा है। ईसाइयत की बड़ी से बड़ी देन दुनिया को एक ही है, कि मनुष्य ही परमात्मा को नहीं खोज रहा है, परमात्मा भी मनुष्य को खोज रहा है। उसका हाथ भी तुम्हें टटोल रहा है।

'जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।

मन परतीत न प्रेम रस'— न तो कोई प्रतीति है मन में; कोई अनुभव नहीं। न कोई प्रेम का रस है।'ना कछु तन में ढंग'—न शरीर ही कोई ढंग का है। किस मुंह से तेरे सामने आऊं? किस हिम्मत से तेरे द्वार को खटखटाऊं? किस आधार पर पुकारूं, चिल्लाऊं तुझे? किस पात्रता पर दावा करूं?

'मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।

ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।।'

और न कभी तुझे देखा, न कभी तुझे जाना।

प्यारे से कभी पहचान ही न हुई। उस प्रियतम से कभी मिलना ही न हुआ।

'ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।'तो कैसे समझूं, कि कौन सा रंग, कौन सा रहस्य, कौन सा रास, कौन सा आनंद घटित होगा तेरे द्वार पर? कैसी तैयारी करूं? किस रंग में अपने को रंगू?' किस रहस्य में डुबाऊं? तेरे द्वार पर कौन स्वीकृत होता है, कैसे मुझे पता चले?

'ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।'

तो किस भांति नाचूं, कौन सा गीत गाऊं? कौन से वाद्य तुझे प्रिय हैं? कौन सा रंग, कौन सा रास? कुछ भी तो पता नहीं है।

'मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु

तन में ढंग।

ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।।'

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर।।

' भक्त का यही भाव है, कि अगर मेरा मुझमें कुछ है, तो वे सब दुर्गुण हैं। अगर मेरा मुझमें कुछ है, तो वह सब अंधकार

है। अगर मेरा मुझमें कुछ है, तो वे सब बीमारियां हैं, उपाधियां हैं। उनकी तो तुझसे बात भी क्या करें! उनसे तो कोई पात्रता बनती नहीं, न मेरी कोई योग्यता सम्हलती है, न मेरा दावा निर्मित होता है।और तू कैसा है, तेरी क्या पसंद है, क्या लेकर तेरे द्वार पर आऊं? कैसे चेहरे तुझे प्रिय हैं? कैसी आंखें तुझे प्यारी लगती हैं? कैसे हृदय को तू हृदय लगा लेता है? तेरा ही पता नहीं है; तो मैं तेरे द्वार पर गलत ही पहुंचूंगा। ठीक पहुंचने का उपाय कहां है?तो गलत तो मुझमें बहुत है, भक्त कहता है। और जो कुछ ठीक हो, उसका मैं क्या दावा करूं?

'मेरा मुझमें कुछ नहीं . . .' अगर कुछ ठीक हो, तो वह तेरी सुगंध है, तेरा दान है, वह तेरी जीवन-धार है। तू ही है।

'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।' कुछ भी अगर कहने योग्य हो, प्रशंसा योग्य हो, तो वह तेरा है। और समर्पण करने में मुझे अड़चन क्या?'तेरा तुझको सौंपते'—तेरा ही तुझे सौंप रहा हूं।'क्या लागत है मोर?मेरा लगता ही क्या है? मेरा खर्च ही क्या हो रहा है?लोग परमात्मा पर समर्पण भी करते हैं तो ऐसे, जैसे कोई एहसान करते हैं। कभी-कभी मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि हमने तय कर लिया कि अब सब आप ही समर्पण करते हैं। लेकिन वे इस ढंग से कहते हैं, कि जैसे कोई बहुत बड़ा एहसान कर रहे हैं किसी पर।समर्पण तो तुम तभी कर पाओगे जब तुम समझोगे, कि तुम्हारे पास समर्पण करने योग्य कुछ भी तो नहीं है। है क्या, जिसको तुम समर्पण कर रहे हो? था क्या, जिसको तुम समर्पण करने ले आए हो? कुछ भी तो नहीं है।और फिर परमात्मा के द्वार पर तो एक ही बात हो सकती है। वह कबीर ठीक कह रहे हैं।

'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।' यही समर्पण का भाव है।दो बातें, दो शब्द तुम याद रख लो—एक है अहंकार और दूसरा है समर्पण। अहंकार यानी संसार, समर्पण यानी मुक्ति। अहंकार यानी तुम, और समर्पण यानी परमात्मा। अहंकार यानी नरक, समर्पण यानी स्वर्ग।छोड़ दो अपने को उस के हाथ में। नदी बही ही जा रही है सागर की तरफ। तुम नाहक ही तैरने की कोशिश कर रहे हो। छोड़ दो नदी में। तैरने की भी जरूरत नहीं है। निवेदन कर दो, कि जैसा हूं, मुझे स्वीकार कर लो। और अन्यथा होना मैं जानता भी कहां हूं?और मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम ऐसा कर पाओगे, उसी क्षण अन्यथा हो जाओगे। जिस क्षण तुम कह सकोगे, कि मेरे पास है ही क्या, जो तुझे दूं? जो है, तेरा ही है। समर्पण भी किस मुंह से करूं? किसका करूं? अपना कुछ होता तो समर्पण की अकड़ भी बचती। तेरा ही तुझे लौटाता हूं। तुझसे ही जो आया वह तुझे ही मे वापस लौटता है। तेरी ही जलधार तेरे सागर में वापस गिरती है; इसमें क्या गौरव है? क्या गरिमा है?तू अंगीकार कर ले, इतना ही काफी है। क्योंकि राह में बहुत धूल, कूड़ा, कचरा, मिट्टी मैंने इकट्ठी कर ली। तेरी जलधार उतनी शुद्ध नहीं है, जितनी तूने भेजी थी।आकाश में बादल घिरते हैं, मेघों से जल बरसता है शुद्ध, फिर जमीन पर आता है। जमीन पर आते-आते ही अशुद्ध होने लगता है। हवाओं में धूल-कण हैं, जल की बूंदें पकड़ लेती हैं। फिर मिट्टी पर गिरता है, फिर सब तरह की गंदगी पकड़ लेती है। सब तरह का स्थूल पदार्थ का जगत जल को ओतप्रोत कर लेता है। फिर बहता है सागर की तरफ।जैसे-जैसे बहता है, गांव की, नगरों की, शहरों की गंदगी मिलती चली जाती है। शुद्ध जल तो परमात्मा का है; वह जो मेघ से घिरा था। लेकिन बाकी जो राह में गंदगी इकट्ठी कर ली है, वह तुम्हारी है।और जब वापस नदी सागर में गिरेगी तो किस मुंह से तुम कहोगे समर्पण करता हूं? तब तुम यही कहोगे, जो कबीर कहते हैं—

'सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बांहि।।
अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।
जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।।
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन
में ढंग।
ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।।
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।' समर्पण की यह भावदशा है। दुर्गुण मेरे हैं, सदगुण तेरे हैं। दुर्गुण छोड़ना मुझे आता नहीं; नहीं तो छोड़ ही दिए होते। सदगुण पैदा करना मुझे आता नहीं; नहीं तो पैदा कर लिए होते।तो अब सब छोड़ देता हूं। दुर्गुण, सदगुण—सब तेरे ही चरणों में रख देता हूं। तू ही सम्हाल ले। जो तुझे करना हो।और यही रहस्य है जीवन का, कि जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा में इस भांति समर्पित हो जाता है, सभी दुर्गुण अचानक सदगुण के लिए उपयोगी हो जाते हैं। अंधकार पृष्ठभूमि बन जाता है प्रकाश की। क्रोध रूपांतरित होकर करुणा बन जाता है। कामवासना उर्ध्वगमन करती है, ब्रह्मचर्य हो जाती है। मोह बदलता है ढंग, और प्रेम हो जाता है।सब बदल जाता है। समर्पित करते ही, अहंकार के हटते ही, सागर में गिरते ही सब शुद्ध हो जाता है।फिर मेघ उठने लगते हैं सागर से परम शुद्ध होकर, फिर गंगोत्री पर बरसने की तैयारी हो जाती है।जीवन, चेष्टा नहीं है, समर्पण है। 'लेट गो' है; छोड़ देना है। जितना तुम लड़ोगे उतना ही तुम मुश्किल में पड़ोगे। अहंकार संघर्ष है, समर्पण असंघर्ष की दशा है।पर तब सभी स्वीकार कर लेना है छोड़ कर। फिर जो उसकी मर्जी! जैसा वह रखे, जैसा वह चलाए, जहां वह ले जाए, जो वह करे।अचानक तुम पाओगे, सब हलका हो गया। गरीब रखे तो गरीब; अमीर रखे तो अमीर।
स्वर्ग ले जाए तो स्वर्ग; नरक ले जाए तो नरक।जिस दिन तुमने सब उसके हाथ पर छोड़ दिया, उसका हाथ तत्क्षण तुम्हें सम्हाल लेता है। उसके हाथ का सवाल है। उसके हाथ में हाथ हो, तो नरक स्वर्ग हो जाता है। दुःख सुख हो जाते हैं। पीड़ाएं बड़े अपूर्व आनंद में रूपांतरित हो जाती हैं। क्षुद्र विराट हो जाता है।सीमा तो अहंकार की है, समर्पण की कोई सीमा नहीं। तत्क्षण, अहंकार के गिरते ही तुम असीम हो जाते हो।अभी तक तुमने समझा था। तुम दीवाल में घिरे आंगन हो; अब तुम सब जानते हो तुम सब तरफ फैले आकाश हो।

'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।' आज इतना ही।

बीसवां प्रवचन

सत्संग का संगीत

प्रश्नसार

आपकी भक्ति साधना में प्रार्थना का क्या स्थान होगा?

कबीर पर बोलते हुए आपने सत्संग पर बहुत जोर दिया। आज के परिप्रेक्ष्य में सत्संग पर कुछ और प्रकाश डालेंगे?

समर्पण कब होता है?

पहला प्रश्न : संत कबीर पर बोलते हुए आपने भक्ति को बहुत-बहुत महिमा दी। लेकिन कबीर की भक्ति तो जगह-जगह प्रार्थना करती मालूम होती है। यथा—'आपै ही बहि जाएंगे जो नहिं पकरौ बांहि।' और आपने प्रार्थना को भी ध्यान बना दिया है। आपकी भक्ति-साधना में प्रार्थना का क्या स्थान होगा?ध्यान और प्रार्थना मार्ग की दृष्टि से तो बड़े भिन्न-भिन्न हैं; विपरीत भी। मंजिल की दृष्टि से एक हैं। प्रस्थान के बिंदु पर तो बड़ा भेद है, लेकिन पहुंचने की जगह बिलकुल एक है।ध्यान की यात्रा शुरू होती है विचार को निर्विचार करने से। उसका केंद्र मस्तिष्क है, मन है। साधारण मन की अवस्था है, विचारों के ऊहापोह से भरे रहना। विचारों की भीड़ चलती है। रास्ता भरा है मन का; भीड़ ही भीड़ है विचारों की। न सोते, न जागते रुकती है; चलती ही रहती है।इस धारा को तोड़ देने का नाम ध्यान है। जब रास्ता खाली हो जाता है, कोई ट्रैफिक नहीं, विचार के यात्री आते-जाते नहीं, सुनसान पड़ जाता है—रात, जैसे आधी रात रास्ते पर कोई भी न हो, ऐसी चित्त की निर्विचार दशा का नाम ध्यान है।भक्ति का स्रोत और प्रारंभ और प्रस्थान-बिंदु हृदय है। वह मस्तिष्क से शुरू नहीं होती, हृदय से शुरू होती है। विचार से शुरू नहीं होती, प्रेम से शुरू होती है।दोनों अलग जगह से चलते हैं। साधारणतः प्रेम किसी के प्रति होता है : पत्नी के प्रति, पति के प्रति, बच्चों के प्रति, धन के प्रति। प्रेम का कोई आबजैक्ट, कोई विषयवस्तु होती है।जब तक प्रेम की कोई विषयवस्तु है, तब तक प्रेम का नाम है राग। और जब प्रेम समष्टि के प्रति

होता है, सर्व के प्रति होता है, अस्तित्व के प्रति होता है, तब उस प्रेम का नाम है भक्ति।परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, परमात्मा समष्टि है। परमात्मा का अर्थ है, जो है, सब उसका जोड़। तो जब प्रेम एक के प्रति प्रवाहित नहीं होता, वरन सब के प्रति प्रवाहित होता है, अशेष भाव से बहता है, बेशर्त बहता है, तब भक्ति।जैसे ही प्रेम अशेष भाव से बहने लगता है, विचार अपने आप बंद होने लगते हैं। क्योंकि जहां राग छूटा, वहां विचार की जड़ कटनी शुरू हो जाती है।तुम विचार करते हो, क्योंकि तुम्हारा कहीं राग है। जहां राग है, उसी का तुम विचार करते हो। अगर तुम्हारा राग काम-वासना में है, तो काम के विचार आते हैं। अगर तुम्हारा राग महत्त्वाकांक्षा में है, तो महत्त्वाकांक्षा के विचार आते हैं। अगर तुम बहुत बड़े धन का संग्रह कर लेना चाहते हो, तो धन ही धन के विचार आते हैं। अगर तुम भूखे हो, तो भोजन ही भोजन के विचार आते हैं।जहां भी तुम्हारा राग होता है, वहीं से विचार का झरना फूट पड़ता है। और जब राग कोई भी नहीं रह जाता—परमात्मा का राग, विराग की दशा है। क्योंकि उसमें तुम किसी दिशा में जाते ही नहीं, सभी दिशाओं में जाते हो। कोई चुनाव नहीं रह जाता। तुम सिर्फ बहते हो, अनंत की तरफ। और सब रूपों में बहते हो।जैसे ही प्रार्थना बढ़नी शुरू होती है, वैसे ही वैसे विचार का स्रोत कट जाता है। निर्विचार अपने से सधता है।या, अगर तुमने ध्यान से यात्रा शुरू की और विचार को काटना शुरू किया तो जैसे-जैसे विचार कटेगा, वैसे-वैसे राग कटेगा। क्योंकि वे दोनों संयुक्त हैं। बिना राग के विचार नहीं होता, बिना विचार के राग नहीं हो सकता। और जब राग कटेगा तो तुम अचानक पाओगे, धीरे-धीरे-धीरे तुम्हारे प्रेम की विषयवस्तुएं खोने लगीं। तुम्हारा प्रेम अब सर्व के प्रति प्रवाहित होने लगा।ध्यान जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रार्थना आविर्भूत होती है। जैसे-जैसे प्रार्थना बढ़ती है, ध्यान आविर्भूत होता है। और एक घड़ी आती है अंत में, जहां तय करना मुश्किल हो जाता है, कि यह प्रार्थना है या ध्यान!विचार शून्य हो जाते हैं दोनों में ही। और दोनों में ही प्रेम की अशेष धारा बहने लगती है। इसलिए अंतिम घड़ी में मंजिल पर भक्त और ध्यानी मिल जाते हैं। यात्रा में भेद हो सकता है, अंतिम पड़ाव बिलकुल एक है।जैसे कोई पहाड़ के शिखर पर चढ़ता हो—बहुत तरफ से चढ़ सकता है, लेकिन जब शिखर पर पहुंचेगा, तब मंजिल एक ही हो जाती है। कहीं से भी चढ़े, राह कोई भी रही, कोई फर्क नहीं पड़ता। गंतव्य एक है।और दो तरह के व्यक्ति हैं संसार में। जैसे स्त्रियां हैं और पुरुष हैं, ऐसे ही भीतर के मनस में भी दो तरह के भेद हैं। ध्यानी हैं और प्रार्थी हैं। प्रार्थना स्त्रैण-चित्त का जोड़ है, ध्यान पुरुष-चित्त का। स्त्रैण-चित्त हृदय से ही यात्रा शुरू कर सकता है क्योंकि स्त्रैण-चित्त हृदय में ही वास करता है। जहां वास है, वहीं से तो चलोगे।पुरुष-चित्त हृदय में वास नहीं करता, पुरुष-चित्त मन में वास करता है, मस्तिष्क में वास करता है। वहीं से तुम निकलोगे। यात्रा तो वहीं से होगी, जहां से तुम हो। तुम्हारे होने की जगह ही तो पहला कदम बनेगी।मैं जब कहता हूं पुरुष-चित्त, स्त्री-चित्त; तो मेरा मतलब ऐसा नहीं है, कि सभी स्त्रियों के पास स्त्री-चित्त है। ऐसी स्त्रियां हैं, जिनके पास पुरुष-चित्त है। नहीं तो मैडम क्यूरी कैसे पैदा हो? कैसे नोबल प्राइज ले सके?ऐसे पुरुष हैं, जिनके पास स्त्रैण-चित्त है। नहीं तो चैतन्य महाप्रभु कैसे पैदा हों? चैतन्य को नाचते देख कर तुम्हें चैतन्य में और मीरा में रत्ती भर भी फर्क नहीं मालूम पड़ेगा। देह भला पुरुष की हो, अंतर्मन स्त्री का है।नीत्से ने बुद्ध और जीसस के विरोध में जो कुछ बातें कही हैं, उनमें एक बात—उसने तो विरोध में कही है, लेकिन मेरी दृष्टि से बिलकुल ठीक है। वह यह है, कि उसने क्रोध में और खंडन में और निंदा में बुद्ध और जीसस को स्त्रैण कहा है—फैमिनिन। उसने तो नाराजगी में कहा है और उसने तो खंडन के लिए कहा है। और उसने तो कहा है, कि इन दो आदमियों ने सारी दुनिया को स्त्रैण बना दिया। लेकिन उसकी बात में थोड़ा-सा सच है, थोड़ी-सी सचाई है। पुरुष में स्त्रियां हो सकती हैं, स्त्रियों में पुरुष हो सकते हैं।तुम्हें अपना तय करना पड़ेगा, कि तुम्हारे जीवन की धारा अभी कहां है। तुम मस्तिष्क में जीते हो? सोच-विचार में; चिंतन-मनन में; तर्क में, वितर्क में; वाद-विवाद में; शास्त्र में; शब्द में? अगर तुम वहां जीते हो, तो वहीं से तुम्हें चलना पड़ेगा। हर्ज कुछ भी नहीं है। वहां से भी यात्रा हो सकती है।अगर तुम प्रेम में जीते हो, संगीत में, काव्य में, गीत में, नृत्य में, तो तुम्हारा हृदय संवेदनशील है। वहां से यात्रा होगी।रवींद्रनाथ स्त्रैण चित्त के व्यक्ति हैं। तभी तो गीतांजलि जैसे महाकाव्य का आविर्भाव हो सका। इतना बड़ा काव्य मस्तिष्क से पैदा नहीं होता, हो ही नहीं सकता। मस्तिष्क बड़ा गणित पैदा कर सकता है, बड़ा काव्य नहीं। मस्तिष्क के पास उतना रस ही नहीं है। रूखा-सूखा हिसाब है।आइंस्टीन और रवींद्रनाथ की मुलाकात हुई थी। वह पुरुष चित्त और

स्त्रैण चित्त का मिलन है। वह मुलाकात बड़ी मजेदार है। आइंस्टीन कुछ कहता है, रवींद्रनाथ कुछ कहते हैं। ये बातें करीब-करीब मालूम पड़ती हैं, फिर भी समानांतर चलती मालूम पड़ती हैं। जैसे समानांतर रेल की पटरियां चलती हैं; पास-पास होती हैं, मिलती कहीं नहीं। रवींद्रनाथ और आइंस्टीन की चर्चा वैसी है। बड़ा मधुर वार्तालाप है। क्योंकि उतने बड़े दो मनीषी मिले हैं, तो उसमें माधुर्य तो होगा। बड़ी मित्रता है, बड़ी आत्मीयता है, पर बड़ा फासला भी है। कोई विरोध भी नहीं है एक-दूसरे का। लेकिन अपनी-अपनी अभिव्यक्ति है; वह अभिव्यक्ति ही भिन्न है।आइंस्टीन गणित का आदमी है—शिखर गणित का। रवींद्रनाथ हृदय के आदमी हैं—शिखर हैं वे भक्ति के। दोनों बहुत करीब-करीब खड़े हैं। ऐसा लगता है कि मिलने में देरी क्या है इनकी? लेकिन जैसे रेल की पटरियां दूर क्षितिज के पास मिलती मालूम पड़ती हैं, लेकिन फिर भी मिलती नहीं। जब तुम जाओगे चल कर, तब तुम पाओगे वहां भी नहीं मिलतीं; और आगे मिलती मालूम पड़ती हैं।ऐसी लंबी चर्चा चलती है। घंटों रवींद्रनाथ और आइंस्टीन साथ-साथ रहे, पर एक बिंदु पर भी कहीं मिलना नहीं होता। वह मिलना हो नहीं सकता। उनका प्रस्थान-बिंदु भिन्न है। एक हृदय की बात कर रहा है, एक विचार की बात कर रहा है। अब हृदय और विचार में इतना ही फासला है, जितना जमीन और आसमान में—प्रस्थान बिंदु पर। अंतिम मंजिल में कोई फासला नहीं है।तो कहां से तुम चलते हो यह सवाल नहीं है, असली सवाल यह है, कहां तुम पहुंचते हो। और इसलिए ठीक से निर्णय कर लेना कि तुम किस तरह के व्यक्ति हो। वहां अगर भूल हो गई तो तुम मंजिल पर कभी न पहुंच पाओगे। और बहुत कठिन है तय करना। कठिन इसलिए है तय करना, कि जो व्यक्ति मस्तिष्क में जीता है, वह मस्तिष्क से ही प्रेम भी करता है। वह प्रेम नहीं करता, वह प्रेम का भी विचार करता है। जब वह किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तब भी वह सोचता है, कि मैं प्रेम में पड़ गया हूं। यह भी उसका सोच-विचार है।और जब हृदय से भरा हुआ व्यक्ति गणित भी करता है, तब भी वह सोचता-विचारता नहीं। तब भी, गणित में भी उसका हृदय ही धड़कता है। वह हृदय से ही सोच-विचार भी करता है।इसलिए बड़ी अड़चन है पहचान लेने में। और अगर संतों ने गुरु की इतनी महत्ता कही है, तो उसके बहुत बिंदु हैं गुरु की महत्ता के; उसमें एक प्राथमिक बिंदु यही है, कि तुम शायद न पहचान पाओ कि तुम कहां खड़े हो; तुम शायद ठीक से निदान न कर पाओ अपनी जीवन-व्यवस्था का। और निदान अगर भूल हो जाए तो औषधि गलत हो जाएगी। निदान आधे से ज्यादा इलाज है, बाकी इलाज तो विस्तार की बात है। निदान ठीक से हो जाए, कि तुम कहां हो, तो तुम्हें कहां जाना है, वह साफ हो जाए।शायद गुरु ज्यादा गौर से तुम्हारे भीतर देख सके। वह मंजिल पर खड़ा है। उसे दोनों रास्ते दिखाई पड़ते हैं। वह गौरीशंकर पर खड़ा है। तुम पूरब से चढ़ो कि पश्चिम से; कि दक्षिण से आओ कि उत्तर से; चारों तरफ सब उसे दिखाई पड़ता है। उसकी दृष्टि विहंगम की दृष्टि है, पक्षी की दृष्टि है। वह ऊपर से देख रहा है। उसे सब दिखाई पड़ता है। तुम कहां हो, उसे दिखाई पड़ता है। क्योंकि उसे पूरा का पूरा परिप्रेक्ष्य साफ है। वह तुम्हें ठीक से पहचान लेगा, तुम कहां हो। और वहीं से चलना है, जहां तुम हो। अगर तुमने जरा भी समझ लिया कि तुम कहीं और हो, तो भटक जाओगे। क्योंकि वहां से तुम चलोगे कैसे, जहां तुम नहीं हो?और गलत स्थान से यात्रा शुरू कर ली, तो वह मानसिक यात्रा होगी, वास्तविक नहीं हो सकती। तुम कभी भी पहुंच न पाओगे।जैसा तुम चिकित्सक के पास जाते हो; माना कि बीमारी तुम्हें है, इसलिए कोई यह भी कह सकता है कि जिसको बीमारी है, वही ठीक निर्णायक हो सकता है। माना कि बीमारी तुम्हें है, लेकिन निर्णायक तुम ठीक नहीं हो सकते। बड़े मजे की बात तो यह है कि कभी जब चिकित्सक भी बीमार पड़ जाता है, तो वह भी दूसरे चिकित्सक के पास जाता है। अपनी बीमारी का निर्णय चिकित्सक भी नहीं कर पाता। क्योंकि तुम इतने करीब होते हो अपनी बीमारी के, फासला नहीं होता। थोड़ा फासला चाहिए। देखने के लिए, दर्शन के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। और तुम अपनी बीमारी से इतने पीड़ित होते हो, कि तुम उस पीड़ा में निरीक्षक नहीं हो सकते।इसलिए बड़े से बड़ा सर्जन भी अपना आपरेशन नहीं कर सकता। चाहे आपरेशन छोटा ही क्यों न हो। ऐसा भी क्यों न हो, जो किया जा सके। समझो, कि पैर का आपरेशन है, दोनों हाथ मुक्त हैं, पैर का आपरेशन खुद किया जा सकता है। लेकिन नहीं; बड़े से बड़ा सर्जन भी अपना आपरेशन नहीं करेगा। अपना तो दूर, अगर उसकी पत्नी बीमार है तो उसका भी आपरेशन बड़ा सर्जन नहीं कर पाएगा; किसी और से करवाना पड़ेगा।पत्नी से भी इतना लगाव है, इतना पास है पत्नी के, कि निरपेक्ष नहीं रह सकता। दूर खड़े होकर तटस्थ भाव से नहीं देख सकता। इतना उत्सुक है ठीक करने

में, वह उत्सुकता ही बाधा बन जाएगी। इतनी आशा से भरा है कि ठीक हो ही जाएगी, वही आशा हाथों को कंपा देगी। इतनी चाह है भीतर, कि पत्नी बच जाए, वही चाह जहर बन जाएगी।कोई चाहिए, जिसको न फिक्र है बचने की, न मरने की। बचे तो ठीक, न बचे तो ठीक। जैसे इससे कुछ लेना-देना ही नहीं है। जैसे भविष्य का कोई सवाल ही नहीं है। जैसे इस स्त्री में तो कोई उत्सुकता ही नहीं है। जिसे सारी उत्सुकता अपनी कुशलता में है, कि वह कैसे इसका आपरेशन करता है; जिसके लिए आपरेशन एक कला है। दूसरी तरफ कोई जीवित व्यक्ति है, इसका भी उसे हिसाब नहीं है।मैंने सुना है, कि एक बार एक मरीज एक चिकित्सक के पास आया। मरीज ऐसा था, कि वैसी बीमारी कभी करोड़ में एक आदमी को होती है। एक खास ढंग का ट्यूमर था उसके पेट में। चिकित्सक ने उसका पेट काटा, ट्यूमर निकाला और कहते हैं, चिकित्सक नाचने लगा। उसने कहा, 'हाउ ब्यूटिफूल!'वह जो ट्यूमर था, वह जो रोग की गांठ थी, उसको निकाल कर वह नाचा और उसने कहा, 'कैसा सुंदर है! क्योंकि कभी करोड़ों में एक—जैसा कोहिनूर हीरा होता है, ऐसा वह ट्यूमर है। कभी करोड़ों में एक आदमी होता है वैसी बीमारी। और कभी हजारों में एक चिकित्सक को मौका मिलता है उसका आपरेशन करने का।तो बड़ी सुंदर चीज है। बीमार से उतना मतलब नहीं है उसे। वह जो टेबिल पर पड़ा है, उस आदमी से मतलब नहीं है, उसे मतलब ट्यूमर से है। और सौभाग्यशाली है वह, कि उसे इस ट्यूमर को देखने का सौभाग्य मिल गया। ऐसा कभी-कभी किसी चिकित्सक को मिल पाता है।अब तुम सोच ही नहीं सकते, कि ट्यूमर कैसे सुंदर हो सकता है! तुम्हारे पास चिकित्सक की आंख नहीं है। ट्यूमर और सुंदर! बात ही बेहूदी लगती है। लेकिन चिकित्सक दूर है। उसे बीमारी, और बीमारी को ठीक करने में ज्यादा रस है; बीमार से कोई प्रयोजन नहीं है।यह बड़ा भारी फर्क है। जब तुम्हारी उत्सुकता बीमार में है, तब बीमार बीच में आ जाता है; बीमारी पीछे हो जाती है। तुम्हारे सामने बीमार है, उसके पीछे बीमारी है। और यह बीमार से तुम्हारा अगर रस बहुत है, अगर यह तुम्हारी प्रेयसी है और उससे तुम्हारा विवाह होनेवाला है, तो तुम्हारे सब हाथ-पैर, रोएं-रोएं कंप जाएंगे। तुम कितने ही कुशल चिकित्सक होओ, सब कुशलता मिट्टी हो जाएगी। अगर यह तुम्हारा ही बेटा है, और मरने के करीब है, तो बीमारी पीछे हो जाएगी, बीमार आगे हो जाएगा।जब कोई चिकित्सक बिना किसी संबंध के, राग के किसी की चिकित्सा करता है, तो बीमार पीछे होता है, बीमारी सामने होती है। बीमार से कोई लेना-देना नहीं होता। बीमारी और चिकित्सक का सीधा साक्षात्कार होता है। तभी कुछ वैज्ञानिक घटना घट सकती है, निदान हो सकता है।गुरु की उत्सुकता चिकित्सक की उत्सुकता है। वह बीमारी को सामने रखता है, तुम को सामने नहीं। वह बीमारी को मिटा देने में उत्सुक है। तुम पीछे हो। तुम्हारे व्यक्तिगत लगाव, आसक्तियों का कोई मूल्य नहीं है। गुरु ठीक से देख पाता है, कि तुम कहां हो। गुरु ठीक से तुम्हें चला पाता है। बड़ी कठिनाइयां इस संबंध में पैदा हुई हैं अतीत के इतिहास में।बुद्ध ने—स्वभावतः वे पुरुष थे; जिस पद्धति और जिस साधना से जीवन-दृष्टि पाई, फिर उसी पद्धति को उन्होंने समझाना शुरू किया। हजारों लोग, लाखों लोग दीक्षित हुए, ज्ञान को उपलब्ध होने लगे। स्त्रियां भी उत्सुक हुइ, लेकिन बुद्ध स्त्रियों को दीक्षा नहीं देते। वे इनकार किए चले जाते। उस इनकार का कारण है। उस इनकार का बुनियादी कारण यही है, कि बुद्ध की सारी साधना-पद्धति पुरुष चित्त के लिए विकसित की गई है। और स्त्रियों को उस साधना-पद्धति में डालना, साधना पद्धति को भ्रष्ट करना होगा। स्त्रियां कहीं पहुंचेगी यह तो संदिग्ध है, लेकिन साधना-पद्धति भ्रष्ट हो जाएगी।वे स्त्रियों को हटाते रहे। महावीर ने—उनके सामने भी वही सवाल था—दूसरे ढंग से उसे हल किया। लेकिन मामला वही का वही है। महावीर ने स्त्रियों को नहीं हटाया। जब स्त्रियों ने मांगी दीक्षा, तो उन्होंने दी। लेकिन महावीर की जीवन पद्धति में, उन्होंने यह व्यवस्था की, कि कोई भी स्त्री, स्त्री रहते मुक्त नहीं हो सकेगी, मोक्ष नहीं पा सकेगी। पहले उसे पुरुष की तरह जन्म लेना पड़ेगा। पुरुष की पर्याय लेनी पड़ेगी।तो इस जीवन की साधना इतना ही कर सकती है, कि अगले जीवन में वह पुरुष हो जाए और फिर वह मुक्त हो सकेगी। इसमें कोई स्त्रियों की निंदा नहीं है। इसमें कुल मामला इतना है कि महावीर की पद्धति तो बुद्ध से भी ज्यादा पुरुष की पद्धति है। बुद्ध की पद्धति में तो थोड़ी बहुत गुंजाइश भी हो सकती है स्त्री के लिए, महावीर की पद्धति में तो कोई गुंजाइश नहीं है। वह तो शुद्ध पुरुष की है, वह तो विशुद्ध ध्यान की है। और उस ध्यान के कारण उस पद्धति से जो चलेगा, उसमें स्त्री को पुरुष हो कर ही मोक्ष मिल सकता है।मुझसे लोग कभी पूछते हैं, कि क्या यह स्त्रियों का विरोध है? कुछ विरोध नहीं है। यह सिर्फ पद्धति है।

इसका यह मतलब नहीं, कि कोई स्त्री रह कर मोक्ष को नहीं पा सकता; लेकिन महावीर की पद्धति से न पा सकेगा।फिर उसको मीरा की राह पकड़नी पड़े, चैतन्य की राह पकड़नी पड़े, कृष्ण का मार्ग पकड़ना पड़े; लेकिन महावीर के मार्ग से न पाया जा सकेगा। महावीर के मार्ग से तो यही होगा, कि स्त्री पुरुष की तरह पैदा होगी और फिर मुक्त होगी।तो जैन इतिहास में एक घटना है, जो बड़ी मधुर है। ऐसा कहते हैं, कि एक स्त्री तीथ□कर हो गई। यह होना तो नहीं चाहिए था। अघट घटा। वह स्त्री पुरुष जैसे ही रही होगी। उसमें स्त्रैण तत्त्व नहीं रहा होगा, इसलिए घट गया।मल्लीबाई नाम की एक स्त्री सीधे ही मोक्ष को उपलब्ध हो गई। जैनियों ने उसका नाम ही बदल डाला। वे उसको मल्लीनाथ कहते हैं, मल्लीबाई ही नहीं कहते। क्योंकि उन्होंने कहा, कि यह बात ही फिजूल है यह कहना, कि यह स्त्री है। क्योंकि इसने तो सिद्ध ही कर दिया; इस की मुक्त दशा ने सिद्ध कर दिया कि यह पुरुष है। इसके शरीर की हम फिक्र नहीं करते। इसलिए उन्होंने उसको मल्लीबाई कहा ही नहीं। उसका नाम ही मल्लीनाथ कर दिया। वह भी चौबीस तीथ□करों में पुरुष की ही तरह स्वीकृत हो गई, स्त्री की तरह स्वीकृत नहीं रही। वह अपवाद था, लेकिन यह हो सकता है। अब पश्चिम में विज्ञान जानता है कि कभी-कभी किसी स्त्री का शरीर पुरुष के शरीर में रूपांतरित हो जाता है; हार्मोन बदल जाते हैं। कभी-कभी हार्मोन की मात्रा बिलकुल करीब होती है।जैसे समझो, कि इक्यावन प्रतिशत हार्मोन पुरुष के हैं और उनचास प्रतिशत हार्मोन स्त्री के हैं, तो इस व्यक्ति में स्त्री और पुरुष के बीच बस, जरा-सा ही फासला है। किसी बीमारी में हार्मोन बदल जाएं, या इंजेक्शन और दवाओं से हार्मोन बदल जाएं और स्त्री-तत्त्व की मात्रा बढ़ जाए तो यह पुरुष स्त्री हो जाए, या स्त्री पुरुष हो जाए। बहुत से रूपांतरण हुए हैं।मुझे लगता है मल्लीबाई इसी तरह की घटना रही होगी। उसके भीतर करीब-करीब पचास-पचास प्रतिशत पुरुष-स्त्री तत्त्व समतुल रहे होंगे। और वह पुरुष के मार्ग से मोक्ष को उपलब्ध हो गई। ठीक ही किया जैनों ने, कि उसका नाम बदल दिया। क्योंकि उससे व्यर्थ अपवाद के कारण अड़चन आती।जैन विचार-पद्धति में स्त्री का सीधा मोक्ष नहीं हो सकता, यह मैं भी कहता हूं। मैं यह नहीं कहता कि स्त्री का सीधा मोक्ष हो ही नहीं सकता; जैन पद्धति में नहीं हो सकता। वह सारी की सारी पद्धति ध्यान की है। प्रार्थना की उसमें कोई जगह नहीं है। प्रार्थना का वहां कोई अर्थ नहीं है।महावीर कहते हैं, किससे प्रार्थना करते हो? किसकी प्रार्थना करते हो? प्रार्थना से कुछ न होगा, ध्यान में उतरो। चुप होओ, मौन बनो, भीतर जाओ। ये हाथ किसके लिए जोड़े हुए हैं? वहां कोई भी नहीं है, जिसके लिए तुम हाथ जोड़ रहे हो।अत्यंत एकांत! अत्यंत शांत! इसलिए महावीर ने अपनी परम-ज्ञान की अवस्था को कैवल्य कहा है, जहां केवल तुम रह गए; जहां बस तुम्हारी चेतना बची। वह समाधि की आखिरी अवस्था है।लेकिन मीरा है, चैतन्य है, वे भी पहुंच जाते हैं। वे नाचते हुए पहुंचते हैं, गीत गाते हुए पहुंचते हैं, परमात्मा के रंग में डूबे हुए पहुंचते हैं। इनका पहुंचने का ढंग दूसरा है। ये प्रेम से पहुंचते हैं, ध्यान से नहीं।ये इतनी प्रार्थना करते हैं—इसे थोड़ा समझना; बारीक है। ये इतनी प्रार्थना करते हैं, इतनी प्रार्थना करते हैं कि प्रार्थना करने वाला मिट जाता है। बस, प्रार्थना सुनने वाला ही रह जाता है। ध्यानी में परमात्मा मिट जाता है, आत्मा रह जाती है। प्रेमी में आत्मा मिट जाती है, परमात्मा रह जाता है। दोनों में एक बचता है। 'एक' उपलब्धि है। अद्वैत बचता है।लेकिन ध्यानी 'तू' को काट देता है। प्रेमी 'मैं' को काट देता है। ध्यानी की सारी चेष्टा है, कि 'मैं' अलग, पृथक, भिन्न कैसे हो जाउं। इसलिए महावीर के शास्त्र का एक नाम है भेद-विज्ञान कि कैसे तुम भिन्न हो जाओ। वही तो सारा धर्म है : अलग हो जाओ सब से। बस, तुम ही बचो; वहां कोई भी न बचे। तुम्हारे उस परम एकांत में ही खिलेगा फूल चैतन्य का। तुम मुक्त हो जाओगे।भक्त कहते हैं, ऐसी घड़ी, जहां हम न बचे, तू ही बचे। जहां हम बिलकुल पुछ जाएं। हमारा कोई होना न हो, खोज खबर न मिले। हमारा कोई पता ही न चले। हम ऐसे हो जाएं, जैसे कभी थे ही न—शून्यवत! बस, तू ही हो।जहां मैं कट जाता है पूरा, और परमात्मा ही शेष रह जाता है, वहां भी मोक्ष हो जाता है। मोक्ष होता है एक के बचने से। न तो मैं का सवाल है, न तू का सवाल है। ये तो दो ढंग हैं। मोक्ष मिलता है अद्वैत के बचने से। कौन बचता है, उसको तुम मैं का नाम देते हो या तू का, यह तो सिर्फ भाषा की बात है। तुम उसे आत्मा कहते हो या परमात्मा, यह तो सिर्फ भाषा की बात है। तुम उसे बाहर देखते हो कि भीतर, यह तो सिर्फ देखने की बात है। क्योंकि भीतर भी वही है, बाहर भी वही है।प्रार्थना है भावदशा, ध्यान है चित्तदशा। समाधि में दोनों एक हो जाते हैं।लेकिन थोड़ा सा फर्क अभिव्यक्ति में तब भी बाकी रहेगा। जो व्यक्ति ध्यान से गया है, वह जब समाधिस्थ हो जाएगा,

जब उसे यह भी अनुभव हो जाएगा, कि प्रेमी भी यहीं पहुंच गए; तब भी उसमें एक थोड़ा-सा फर्क रहेगा। वह शांत ही रहेगा। तुम उसे बुद्ध की तरह वृक्ष के नीचे शांत बैठा देखोगे तुम उसे महावीर की तरह जंगलों में शांत खड़ा हुआ पाओगे।क्योंकि जीवन की उसने जो पद्धति अपनाई थी, जो ढंग अपनाया था, वह उसका व्यक्तित्व बन गया है। भीतर वह जानता है कि प्रेमी भी पहुंच जाते हैं, क्योंकि प्रेमी भी पहुंच रहे हैं। लेकिन अब अपने ढंग को नहीं बदला जा सकता। जिस रास्ते से तुम गुजरते हो, वह रास्ता तुम्हें भी बनाता है।जिस रास्ते से तुम गुजरते हो—जैसे समझो, कि तुम एक मार्ग से गुजरे, जिस पर लाल मिट्टी थी और उसने तुम्हें लाल कर दिया। जब तुम मंजिल पर पहुंचे तो तुम लाल ढंग से रंगे हुए पहुंचे। एक दूसरा आदमी ऐसे रास्ते से गुजरा, जहां लाल मिट्टी नहीं थी। वह अपने सफेद कपड़ों को बचा कर पहुंच गया।तुम दोनों मंजिल पर पहुंच गए, लेकिन बाहर का ढंग रास्ते ने तय कर दिया। जीवन की शैली रास्ता बनाता है। जीवन की आखिरी अनुभूति तो भीतर होती है, लेकिन जीवन का ढंग और शैली रास्ते से बनती है। अब बुद्ध जहां से पहुंचे हैं चल कर, वह खोल बन गई है उनके व्यक्तित्व की। अगर बुद्ध नाचना भी चाहें आज अचानक, तो पैर न उठेंगे। आज गीत गाना चाहें, तो कंठ में स्वर न फूटेगा। आज हाथ में बांसुरी भी आ जाए, तो वे उलट-पुलट कर देखेंगे; समझ न पाएंगे, इसका क्या करना। उत्सव न मना सकेंगे। उनका उत्सव भी मौन होगा, शांत होगा।जो नाचते ही पहुंचा है, गीत गाते ही पहुंचा है, पैर में घूंघर बांध कर पहुंचा है, तो परमात्मा की पूजा और प्रार्थना करते पहुंचा है, वह भी जान लेगा पहुंच कर, कि जो चुपचाप आए हैं, वे भी पहुंच गए हैं। लेकिन अब जीवन की शैली निर्णीत हो गई।तुम मीरा को वृक्ष के नीचे बुद्ध की तरह शांत न बिठा सकोगे। वह बात जमेगी ही न। वह जीवन की पद्धति बन गई। पहुंचते-पहुंचते-पहुंचते, साधन करते-करते अब नाचना ही सोहता है।बहुत कठिन है, जो कहीं भी नहीं पहुंचे हैं, उनके लिए जानना, कि नाचती हुई मीरा के भीतर वैसी ही शांति है, जैसी बुद्ध के भीतर। शांत बैठे बुद्ध के भीतर वैसा ही नृत्य है, जैसा मीरा के भीतर। लेकिन दोनों का बाहर का रूप अलग-अलग होगा। और इस कारण दुनिया के धर्मों में बड़ा विवाद चलता है। व्यर्थ है विवाद जो चलाते हैं उन्हें कोई अनुभव नहीं है, उन्हें स्वाद नहीं है।जिन्होंने जाना है, उन्होंने दूसरे में भी सत्य को देख लिया। लेकिन दूसरे में सत्य को देख लेना ही काफी नहीं है। फिर भी हो सकता है बुद्ध यही कहे चले जाएं, कि ध्यान से ही पहुंचोगे। क्योंकि बुद्ध को वह रास्ता जाना-माना है, पहचाना हुआ है। और अगर वे कहें कि प्रार्थना से भी पहुंच सकते हो, तो उन्हें लगेगा, कहीं आदमी भटक न जाए। तुम जिस रास्ते से आते हो उसी से मार्गदर्शन दूसरे को दे सकते हो। इसलिए अगर कोई बुद्ध से पूछेगा भी कि 'प्रार्थना?' वे कहेंगे, 'छोड़ो। ध्यान से ही कोई पहुंचता है।' जानते हुए, कि प्रार्थना से भी लोग पहुंच गए हैं। लेकिन बुद्ध को वह रास्ता अपरिचित है।मार्गदर्शन तो उसी का दिया जा सकता है, जिस पर वे चले हों। ऐसे बहुत थोड़े लोग संसार में हुए हैं, जो दोनों रास्तों से चले हैं। जो दोनों से चले हैं, वे दोनों पर मार्गदर्शन दे सकते हैं। अन्यथा गुरु एक मार्ग से चलकर पहुंच जाता है; फिर जरूरत भी नहीं रहती कि दूसरे मार्ग पर चल कर देखे।रामकृष्ण ने एक अनूठा प्रयोग इस सदी के प्रारंभ में किया—पिछली सदी के अंत में; कि पहुंचने के बाद उन्होंने दूसरे मार्गों पर भी चल कर देखा, कि वहां से भी कोई पहुंचता है कि नहीं? समाधिस्थ हो जाने के बाद। यह पहली ही घटना है मनुष्य-जाति के इतिहास में। इसलिए रामकृष्ण बड़े अनूठे हैं। उनका अनूठापन इसमें है।यह बात ही व्यर्थ लगती है : जब तुम स्टेशन पहुंच गए, तब लौट कर गांव में जाना और यह देखना कि दूसरे रास्ते से भी पहुंच सकते हैं कि नहीं। बात ही फिजूल लगती है। स्टेशन आ गया, बात खत्म हो गई। प्यास लगी थी, नदी आई, पानी पी लो। अब इसमें क्या पड़ी है कि तुम गांव में फिर जाओ और देखो, कि दूसरे रास्तों से भी पहुंचना होता है कि नहीं?रामकृष्ण ने पहली दफा प्रयोग किए। रामकृष्ण सर्वधर्म समभाव के पहले प्रतीक हैं। और सभी धर्म पहुंचा देते हैं, इसका पहला प्रयोग है। अनुभव हो जाने के बाद उन्होंने दूसरी साधनाएं कीं। इस्लाम की साधना की, ईसाइयत की साधना की, तंत्र की साधना की—जानने के लिए, कि क्या पहुंचना हो जाता है?निश्चित ही जो पहुंच चुका है एक दफा, उसे देर नहीं लगती है फिर दूसरे मार्ग से भी पहुंचने में। उसे पता तो है ही मंजिल का। अब यह तो खेल हो जाता है। जो एक सीढ़ी से चढ़ गया मंजिल पर, चढ़ने की कठिनाई तो समाप्त हो गई, चढ़ना तो उसे आ ही गया। अब तुम सीढ़ी दूसरी रख दो, इससे कोई बहुत अड़चन थोड़े ही पड़ती है! चढ़ना तो उसे आता ही है।रंग अलग होगा सीढ़ी का, पायदान थोड़े बड़े-छोटे होंगे, किसी और कारखाने में

ढली होगी, लोहे की होगी, लकड़ी की होगी, प्लास्टिक की होगी—कुछ हजार फर्क होंगे, लेकिन जो चढ़ना जानता है और एक दफा चढ़ गया शिखर तक, वह घड़ी भर में दूसरी से भी चढ़ जाएगा।रामकृष्ण ने जब इस्लाम की साधना की तो वे तीन दिन में वहीं पहुंच गए, जहां पहुंचने में जनम-जनम लगे थे उनको पहली यात्रा से। जब उन्होंने ध्यान की साधना की बुद्ध के मार्ग पर, तो वे छह महीने में वहीं पहुंच गए।अब यह थोड़ा सोचने जैसा है, कि बुद्ध के मार्ग पर उनको छह महीने लगे, इस्लाम के मार्ग पर तीन दिन लगे; मामला क्या है?मामला यह है, कि रामकृष्ण की जो पहुंचने की व्यवस्था थी, वह स्त्रैण थी; वह प्रार्थना का मार्ग था। इस्लाम का भी मार्ग प्रार्थना का है। इसलिए हिंदू धर्म में, इस्लाम धर्म में उतना फासला नहीं है, जितना हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में फासला है। हिंदू धर्म और इस्लाम तो एक से हैं। उनमें गुणधर्म का कोई फासला ही नहीं है। मंदिर, मसजिद बिलकुल करीब हैं। क्योंकि दोनों ही प्रार्थना पर आधारित धर्म हैं। अब यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी। साधारणतः हम सोचते हैं, कि जैन, बौद्ध और हिंदू ज्यादा करीब हैं क्योंकि हिंदुओं से ही तीनों पैदा हुए हैं। वह बात गलत है। ईसाई ज्यादा करीब हैं हिंदुओं के। मुसलमान ज्यादा करीब हैं। जैन और बौद्ध बहुत फासले पर हैं। क्योंकि ये सब मार्ग हृदय के हैं। जैन और बौद्ध मार्ग ध्यान के हैं, प्रेम के नहीं हैं।तो रामकृष्ण को छह महीने लगे ध्यान से पहुंचने में। प्रार्थना से तो वह पहुंच चुके थे। यह सीढ़ी जरा बड़ी टेड़ी-मेढ़ी थी उनके लिए। बड़ी रस शून्य थी। यह रास्ता बड़ा सूखा था, निर्जन था। वे नाचते हुए पहुंचे थे, गीत गाते हुए पहुंचे थे। यहां चुपचाप पहुंचना था। वह बिलकुल उलटा था मामला। पहले जब पहुंचे थे, तब अपने को मिटा कर पहुंचे थे, परमात्मा को बना कर पहुंचे थे। अब अपने को बनाना था और परमात्मा को मिटाना था। यह बड़ा कष्टपूर्ण था।जिस सिद्ध के नीचे वे सीखते थे, बड़ी कठिनाइयां आइ। क्योंकि वह जो काली थी, जो मां थी, जिसको अनुभव किया था उन्होंने अपने को मिटा कर, वह बाधा बनने लगी। यह बिलकुल विपरीत मार्ग था। यह पूरब-पश्चिम जैसा मामला था। तो जिस तांत्रिक के नीचे वे ध्यान सीख रहे थे, उस तांत्रिक ने एक दिन कहा, कि मैंने तुमसे ज्यादा अपात्र शिष्य नहीं पाया। और हालांकि मैं जानता हूं, कि तुम सिद्ध पुरुष हो। और जहां तक तुम्हारी प्रार्थना से पहुंचने का संबंध है, मैं तुम्हारे पैर छूता हूं। मगर तुमसे ज्यादा अपात्र मैंने शिष्य नहीं पाया। और अगर आज तुम न कर पाए ध्यान तो मैं छोड़ कर चला जाऊंगा। मेरे छह महीने खराब कर दिए। क्या लगा रखा है यह काली-काली-काली! आंख बंद करो और फेंको इसको, अलग करो। हटाओ इस काली को।यह बात ही भक्त को बड़ी बेहूदी लगती है। और वह जाने को तैयार हो गया और वह बड़ा सिद्ध पुरुष था। और अगर इसके पास साधना न हो पाई तो रामकृष्ण जानते हैं, ऐसा आदमी खोजना बहुत मुश्किल होगा। वे जानते हैं, कि यह आदमी ठीक कह रहा है। यह भी समझ में आता है, कि बात ठीक है, इस रास्ते पर यह काली बीच-बीच में आती है। पर वे करें क्या? वे आंख बंद करें और काली खड़ी! वे आंख बंद करें और भूल ही जाएं उस सिद्ध को, जो सामने बैठा है। काली बीच में खड़ी है। वे मगन हो गए। धुन बन गई भीतर। नशा छा गया, डोलने लगे। और वह कह रहा है, कि डोलना नहीं है। डोलना ही तो छोड़ना है। रोआं न कंपे। वह एक कांच का टुकड़ा ले आया एक बोतल तोड़ कर और उसने कहा, कि देखो, तुमसे नहीं होता, मुझे ही करना पड़ेगा। आज तुम आंख बंद करो, या तो मैं, या तुम्हारी काली—दो में से तुम चुन लो। आंख बंद करो, और जब काली खड़ी हो जाए तुम्हारे भीतर, उसी वक्त मैं तुम्हारे माथे को इस कांच के टुकड़े से काट दूंगा। जब मैं तुम्हारा माथा काटूं और लहू बहने लगे और दर्द हो, उसी वक्त हिम्मत करके तुम भी एक तलवार उठा कर काली को दो टुकड़ों में काट देना। रामकृष्ण के रोएं-रोएं कंप गए। उन्होंने कहा, यह तो बहुत ज्यादा हो जाएगा; यह तो मत करवाएं। और यह वे जानते हैं कि वह नहीं करवा रहा, खुद ही करने को उत्सुक हैं। इस प्रयोग को करके देखना है।तो उसने कहा, मैंने कभी तुम्हें कहा नहीं। तुम उत्सुक हो। जरूरत भी मुझे मालूम नहीं होती, कि कोई जरूरत भी है, लेकिन यह तुम चाहते हो, तो करना पड़ेगा। तो फिर पूरा करना पड़ेगा। यह काली को साथ नहीं लिया जा सकता। एक साधन के जगत में जो सहयोगी है, वही चीज दूसरे साधन के जगत में बाधा हो जाती है। इसे तुम्हें छोड़ना ही होगा। और यह आज आखिरी है उपाय। हिम्मत करके रामकृष्ण ने आंख बंद की। आंख से आंसू बह रहे हैं। क्योंकि काली को काटना पड़ेगा, तलवार उठानी पड़ेगी। उस काली को, जिसके लिए अपने को मिटाया था—उसको काटना है! बड़ा कठिन है।तुम सोच सकते हो, अगर तुमने कभी किसी को प्रेम किया हो, उसको काटना है। फिर भी तुम पूरा न सोच

पाओगे, क्योंकि जैसा रामकृष्ण ने काली को प्रेम किया है, ऐसा तुमने किसी को भी न किया होगा। क्योंकि उतना प्रेम तुम किसी को भी कर लो, तो परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।आंख से आंसू बह रहे हैं, हृदय जार-जार रो रहा है। लेकिन वह सिद्ध-पुरुष कठोर है। वह मार्ग अलग है। वहां यह सब बात फिजूल है। वहां यह काली सिर्फ कल्पना है। उस मार्ग पर यह सब मन का ही जाल है, यह सब विचार है, प्रक्षेपण है।उसने कांच को उठाया और रामकृष्ण के माथे को बहुत गहरा काट दिया। जिंदगी भर वह निशान बना रहा फिर। लहूलुहान हो गए। उन्होंने भी भीतर एक दफा हिम्मत की; क्योंकि करना तो है, नहीं तो यह सिद्ध-पुरुष छोड़ कर चला जाएगा। फिर ध्यान की संभावना न रह जाएगी। उठाई तलवार, काट दी। काली दो टुकड़े हो कर भीतर गिर गई, ध्यान उपलब्ध हो गया।लेकिन छह महीने लगे इस घड़ी को आने में। ध्यान उपलब्ध हुआ, तब जाना कि यह तो वही की वही बात है। वही बच रहता है। एक ही बच रहता है, उसके नाम भर अलग हैं। कहो आत्मा, अगर महावीर के मार्ग पर चले तो उसका नाम आत्मा; अगर मीरा के मार्ग पर चले तो उसका नाम कृष्ण, परमात्मा; लेकिन वह एक ही बात है।और जैसे ही 'मैं' मिटता है, 'तू' भी मिट जाता है। 'तू' मिटता है, 'मैं' भी मिट जाता है। बस, एक ही बच रहता है। वह एक विराट है।रामकृष्ण ने अनूठे प्रयोग किए। इस सदी के लिए जरूरत थी। बड़ी जरूरत थी, कि कोई सारे धर्मों के सार को निचोड़ कर के रख दे। जो रामकृष्ण ने किया वह अधूरा है। वह पूर्वार्ध है। और मैं जो कर रहा हूं, वह उत्तरार्ध है।रामकृष्ण ने खुद तो अनुभव कर लिए और कह भी दिया कि सभी मार्ग वहीं पहुंचा देते हैं। लेकिन रामकृष्ण बिलकुल बेपढ़े-लिखे आदमी थे। शब्दों से, सिद्धांतो से, शास्त्रों से उनकी कोई भी संगति न थी। अपढ़ संत थे। दूसरी कक्षा तक मुश्किल से पढ़े थे।संसार में तीन सौ धर्म हैं। तीन सौ धर्मों के तीन सौ धर्मशास्त्र हैं। बड़े अनूठे धर्मशास्त्र हैं। एक-एक धर्मशास्त्र अपने आपमें अदभुत है। इतना कह देना काफी नहीं है, कि मैंने अनुभव किया, सब पहुंचा देते हैं। इसको बड़े विस्तार से, इसको बड़े वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तावित करना जरूरी है। अनुभव तो भीतर होता है। मैंने अनुभव कर लिया, इससे क्या हल होता है? मेरा अनुभव इतनी प्रगाढ़ता से उपस्थित किया जाना चाहिए, कि वह हजारों लोगों के मन की आकांक्षा बनने लगे।रामकृष्ण के पास बुद्ध जैसी क्षमता न थी, कि करोड़ों लोग रूपांतरित हो जाएं। न ही महावीर जैसी प्रतिभा थी कि वे जो कहें, वह उनके कहने के कारण सत्य मालूम होने लगे। ग्रामीण संत थे, लेकिन बड़ा अनूठा प्रयोग किया, पायोनियर थे। उस दिशा में उन्होंने पहला कदम उठाया।उस दिशा में और कदम उठाए जाने जरूरी हैं। इसलिए मैं सभी साधना-पद्धतियों पर बोल रहा हूं। और तुम बड़ी मुश्किल में भी पड़ जाते हो। क्योंकि आज मैं कहता हूं यह ठीक है, कल कहता हूं वह ठीक है। वस्तुतः दोनों ठीक हैं।तुम्हारी अड़चन यह हो जाती है, कि तब तुम क्या करो, कहां चलो, कैसे चलो। तुम्हारे अड़चन के कारण ही तो संप्रदाय पैदा हो गए हैं। इसलिए बुद्ध ने कहा, कि यही ठीक है—तुम्हारी अड़चन को बचाने के लिए। तुम्हारी अड़चन तो बची। लेकिन सारी दुनिया संप्रदायों में विभाजित हो गई। अब वह बड़ी अड़चन हो गई। अब मैं तुम से कहूंगा कि सभी ठीक हैं, तब तुम्हें एक खयाल रखना होगा, तुम्हें सभी मार्गों पर नहीं चलना है, तुम्हें अपना व्यक्तित्व समझ लेना है। मैं सभी मार्गों पर बोलता रहूंगा।केमिस्ट की दुकान में तुम जाते हो, वहां हजारों बीमारियों की दवाइयां रखी हुई हैं। इससे तुम्हें प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे पास तो डाक्टर का प्रिस्क्रिप्शन है। तुम अपने प्रिस्क्रिप्शन की दवा ले कर लौट जाते हो। तुम यह नहीं पूछते, कि इतनी सारी दवाएं! मैं तो मर जाऊंगा ले ले कर। इतनी सारी दवाएं तुम्हें लेना भी नहीं है। मैं तो केमिस्ट हूं। तुम्हें इतनी सब दवाएं लेने की जरूरत नहीं है। इतनी सब दवाएं तो तुम्हें मार ही डालेंगी। तुम तो अपनी बीमारी पकड़ लो। तुम अपनी बीमारी पहचान लो। वह भी मैं तुम्हें पहचनवा देने को तैयार हूं। और तुम अपने योग्य दवा चुनलो। सारी दुकान को तुम भूल जाओ। तुम्हारे लिए तो एक ही विधि पहुंचा देगी। न तुम्हें रामकृष्ण होने की जरूरत है, कि तुम सारी सीढ़ियों से चढ़ कर देखो। न तुम्हें मुझ जैसा होने की जरूरत है, कि तुम सारी सीढ़ियों की चर्चा करो; कि सारी सीढ़ियां सही हैं, ऐसा सिद्ध करो। इस सब प्रयोजन में तुम्हें कुछ सार नहीं है। वह तुम्हारी नियति नहीं है।तुम्हारे लिए तो इतना जरूरी है कि तुम अपनी प्यास पहचान लो, अपना घाट पहचान लो, अपनी प्यास बुझा लो। अपनी नाव पहचान लो, अपनी नाव पर सवार हो जाओ और पार हो जाओ।

दूसरा प्रश्न : कबीर पर बोलते हुए आपने सत्संग का या साधु-संगत पर बहुत जोर दिया। आज के परिप्रेक्ष्य में सत्संग पर क्या कुछ और प्रकाश डालेंगे?सत्संग और साधु-संगत दोनों अलग बातें हैं। एक ही बात के दो नाम नहीं हैं। साधु-संगत

पहला चरण है, सत्संग दूसरा चरण है।साधु-संगत का अर्थ है, साधुओं के साथ होना। अभी तुमने गुरु नहीं चुना। अभी तुम्हें जहां खबर मिल जाती है कि कोई साधु पुरुष है, कोई सत्पुरुष है, तुम वहीं जाते हो। साधु-संगत का अर्थ है, जहां से भी रोशनी मालूम होती है, खबर मिलती है, वहां जाते हो। बैठते हो साधुओं के पास। रमते हो उनके साथ। थोड़ी डुबकी लेते हो उनके रस में।जब ऐसी डुबकी लेते-लेते, साधु-संगत करते-करते कोई एक साधु तुम्हारे लिए विशिष्ट हो जाता है; तुम किसी साधु के प्रेम में पड़ जाते हो; तब सत्संग शुरू हुआ।बहुत साधु हैं; गुरु तो एक ही होगा। साधुओं के पास रमते-रमते, साधुओं के निकट होते-होते किसी दिन तुम पहचान लोगे, कौन तुम्हारा गुरु है। कौन साधु तुम्हारे लिए है। किससे तुम्हारा तालमेल बैठ गया। किसकी चाबी तुम्हारे ताले से मिल जाती है। कौन है, जिससे तुम्हारे हृदय के स्वर छिड़ते हैं। कौन है, जिसके पास जाते ही तुम रोमांचित हो जाते हो। कौन है, जो तुम्हें अहोभाव से भर देता है। किसके पास, सिर्फ पास होने से स्नान हो जाता है।यह तो तुम साधुओं की संगत करते-करते पहचानोगे। तो साधु- संगत पहला चरण है। उससे रस लगेगा, समझ बढ़ेगी, स्वाद थोड़ा-थोड़ा आएगा, लेकिन वह काफी नहीं है। दूसरा चरण सत्संग है। सत्संग का अर्थ है, कि अब तुमने चुन लिया। अब तुम यूं ही नहीं तलाश रहे हो। अब तुमने एक की बांह पकड़ ली। अब सत्संग शुरू हुआ।साधु-संगत में तो थोड़ा सा संदेह बना रहेगा, विचार बना रहेगा। क्योंकि संदेह न होगा, विचार न होगा तो चुनोगे कैसे? खोजोगे कैसे? तो साधु-संगत तो संदेह का और विचार का ही अंग है। लेकिन जैसे ही तुमने चुना—हां, चुनने के पहले जितना संदेह कर लेना हो, कर लेना। चुनने के पहले जितना विचार करना हो, कर लेना। वर्षों रुकना हो, रुक जाना। साधु-संगत पूरी तरह कर लेना।लेकिन जब चुनो, तो चुनाव का अर्थ होता है, कि अब संदेह छोड़ देना; नहीं तो चुनाव हुआ ही नहीं। साधु-संगत जारी रही, सत्संग शुरू न हुआ। सत्संग क्रांति है। साधु-संगत से छलांग है। अब तुमने किसी को चुन लिया। अब तुम अंधे होते हो। अब तुम अपनी आंख बंद करते हो। अब तुम कहते हो, हम किसी और की आंख से चलेंगे। अपनी आंख से इतना काम ले लिया, कि उसको पहचान लिया जिसकी आंख से चलना है। अपने संदेह का उपयोग कर लिया। उसके हाथ पकड़ लिए, जिसके हाथ में भरोसा छोड़ा जा सकता है।सत्संग का अर्थ है, श्रद्धा। साधु-संगत का अर्थ है, विचार। बहुत साधुओं में घूमोगे, खोजोगे, पहचानोगे, समझोगे; लेकिन जब मिल जाए कोई, तब विचार मत करते खड़े रहना। तब डूब लेना श्रद्धा में। तब हाथ पकड़ लेना और तब कहना, अब जहां ले चलो।इसके पहले जितना विचार करना है, उचित है। इसके बाद विचार करना अनुचित है। क्योंकि अगर इसके बाद भी विचार जारी रखा तो सत्संग शुरू ही नहीं हुआ। क्योंकि सत्संग तो एक बड़ा भीतरी रसायन है। सत्संग का अर्थ है, किसी के पास इतनी परम श्रद्धा से होना, कि अगर वह दिन को रात कहे तो भी संदेह न उठे। मन में यही खयाल हो, कि जरूर कोई कारण होगा। वह ठीक ही कहता होगा।सत्संग तो प्रेम जैसा है, अंधा है। सारी दुनिया कहेगी, तुम्हारी प्रेयसी कुरूप है, सुंदर नहीं है; इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम तो अंधे हो। तुम्हारी आंखों में तो वह सुंदर ही दिखाई पड़ती है।श्रद्धा एक अर्थ में परम दृष्टि है और एक अर्थ में परम अंधापन। तुम अपने विचार को उपयोग कर लिए, अब तुम उसे हटा कर रख देते हो। अब तुम कहते हो, अब और नहीं सोचना है। सोच-सोच कर पा लिया, अब ये चरण मिल गए; अब बस, श्रद्धा से पकड़ लेना है।सत्संग का अर्थ है, किसी के पास अनन्य श्रद्धा के साथ होना। धीरे-धीरे, जब इतनी अनन्य श्रद्धा होती है तो अपने आप विचार क्षीण होते जाते हैं, शून्य होते जाते हैं। सत्संग ध्यान बन जाता है। सत्संग करनेवाले को ध्यान करने की अलग से जरूरत ही नहीं पड़ती। वह तो गुरु के पास होते-होते, होते-होते-होते गुरु जैसा हो जाता है। समान तुम्हारे भीतर, अपने समान को ही पैदा कर देता है। अगर प्रकाश श्रद्धा कर ले, तुम्हारे भीतर छिपा हुआ प्रकाश अगर श्रद्धा कर ले बाहर के प्रकट प्रकाश में तो वह भी प्रकट हो जाएगा। तुम जिसमें श्रद्धा करते हो, धीरे-धीरे वैसे ही हो जाते हो।श्रद्धा एक रसायन है, एक अल्केमी है, गुरु के पास होने का ढंग है। अब तुम हो, बस! तुम उसके पास बैठते हो। वह बोलता है, सुनते हो। वह चुप होता है, तो उसकी चुप्पी सुनते हो। वह नहीं बोलता तो उसका न बोलना सुनते हो; उसका मौन सुनते हो। वह उठता है, चलता है, बैठता है, तुम उसके साथ ऐसे डोलते हो जैसे तुम वही हो। तुम उसकी छाया बन गए होते हो।धीरे-धीरे, जैसे-जैसे तुम मिटते हो, गुरु तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है। तुम जगह खाली करते हो, वह जगह को भरता जाता है। एक ऐसी घड़ी आती है, शिष्य विलीन हो जाता है, गुरु ही शेष रह जाता

है।सत्संग अगर आ जाए, तो कुछ और चाहिए नहीं। अगर तुम प्रेमी हो, तो सत्संग प्रार्थना बन जाएगा। अगर तुम ध्यानी हो, सत्संग ध्यान बन जाएगा।सत्संग कोई मार्ग नहीं है। सत्संग तो सभी मार्गों का सार-निचोड़ है। सत्संग न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई। सत्संग न तो स्त्रैण-चित्त है, न पुरुष-चित्त। सत्संग तो दोनों के लिए समान है। मैं फर्क देखता हूं—सत्संगी में फर्क होगा। अगर स्त्रैण-चित्त व्यक्ति मेरे पास आता है, या स्त्रियां मेरे पास आती हैं, तो मैंने अनुभव किया, कि उनका लगाव मुझसे पहले होता है। फिर मुझसे लगाव है, इसलिए जो भी मैं कहता हूं, वह उन्हें ठीक मालूम होता है।अगर पुरुष-चित्त का व्यक्ति या पुरुष मेरे पास आते हैं, तो मैं जो कहता हूं, वह ठीक है, यह उन्हें पहले अनुभव में आता है। फिर इस कारण मुझसे लगाव पैदा होता है। स्त्रियां पहले मेरे प्रेम में पड़ जाती हैं—स्त्रैण चित्त मेरा मतलब; उन्हें मुझसे लगाव हो जाता है सीधा, फिर मैं जो भी कहता हूं, वह उन्हें ठीक लगता है। पुरुष पहले जो मैं कहता हूं वह उन्हें ठीक लगने लगता है, तब वे मेरे प्रेम में पड़ जाते हैं।सत्संग तो दोनों के लिए खुला है, हालांकि दोनों के ढंग में इतना फर्क होगा। प्रार्थना वाला चित्त पहले प्रेम में पड़ेगा, फिर जो भी कहा जा रहा है, वह ठीक लगने लगेगा, उसका अनुसरण करेगा। ध्यान वाला चित्त पहले विचार को उपलब्ध होगा, फिर जो भी विचार में ठीक मालूम पड़ा है, उसका प्रेम जन्मेगा।इतना सा फर्क होगा, लेकिन सत्संग में दोनों मिल जाते हैं। सत्संग संगम है। वहां सब मिल जाते हैं। इसलिए ऐसा कोई धर्म नहीं दुनिया में, जिसने सत्संग की महिमा न गाई हो। ईश्वर को माननेवाले धर्म हैं, न माननेवाले धर्म हैं, आत्मा को माननेवाले धर्म हैं, न माननेवाले धर्म हैं; पुनर्जन्म को माननेवाले धर्म हैं, न माननेवाले धर्म हैं; लेकिन ऐसा कोई धर्म नहीं, जो सत्संग को न मानता हो। साधु-संगत और सत्संग तो सभी धर्मों का सार है।पहले साधुओं के पास उन्मुख होना; जो भले लोग हैं, उनके पास रहना, ताकि भले का थोड़ा-सा रोग तुम्हें भी लग जाए। भलों के साथ रहोगे तो भलाई का थोड़ा-सा रंग लग ही जाएगा। अब काजल की कोठरी से कोई गुजरेगा तो थोड़ी कालिख लग ही जाएगी।साधु-संगत का इतना ही मतलब है, कि तुम उनके साथ रहना जिनको परमात्मा का रंग लग गया है, तो तुम्हें भी थोड़ा-बहुत रंग लग जाएगा। उस रंग से यात्रा शुरू होगी। उससे पहले दफा अभीप्सा का जन्म होगा, कि मैं भी खोजूं, मैं भी पाऊं।फिर साधु-संगत से धीरे-धीरे तुम साधुओं के बीच एक को चुनना। क्योंकि सभी साधु तुम्हें न ले जा सकेंगे। सभी साधु तुम्हारे लिए नहीं हैं। तुम्हारे लिए तो कोई एक है। उससे मिलते ही तुम्हारे भीतर कुछ सांधा बैठ जाता है। एकदम से सांधा बैठ जाता है। उसके पास आते ही तुम्हारे भीतर कोई चीज टूट जाती है, बदल जाती है। फिर तुम कभी वही आदमी नहीं हो सकते, जो तुम पहले थे। तुम उसे छोड़कर न जा सकोगे। तुम उससे भाग न सकोगे। भागने के तुम उपाय भी करो, तो भी उपाय काम न आएंगे।जब ऐसी घड़ी आ जाए, तब सत्संग। तब भागने की, संदेह की, विचार की सब यात्राओं को बंद कर देना और बैठे रहना गुरु के पास। तब बैठे-बैठे ही सब मिल जाएगा। तब न तो कुछ पूछने को है, न कुछ जानने को है। पूछना, जानना साधु-संगत में चलेगा।मेरे पास दोनों तरह के लोग हैं। कुछ, जो साधु-संगत कर रहे हैं; कुछ, जिनका सत्संग शुरू हो गया। जो साधु-संगत कर रहे हैं, वे मेरे मेहमान हैं। कभी आते हैं, जाते हैं। अभी उनको और साधुओं की संगत भी करनी है। अभी उनका चुनाव नहीं हुआ है।कुछ हैं, जिनका सत्संग शुरू हो गया; जिन्होंने छलांग ले ली। जिन्होंने छलांग ले ली है, अब उन्हें कहीं नहीं जाना है। उनकी मंजिल आ गई। जिसे खोजना था, उसे उन्होंने खोज लिया। अब सिर्फ उसके पास होना है।जिस दिन सत्संग शुरू होता है, उसी दिन बड़ी तृप्ति मालूम होने लगती है। साधु-संगत में तो एक बेचैनी रहेगी। खोजना है, पाना है, जांच-पड़ताल करनी है। बड़ा बाजार है साधुओं का भी। भिन्न-भिन्न तरह के साधु हैं, भिन्न-भिन्न तरह के संत हैं। उनके ढंग अलग, उनकी शैलियां अलग। बहुत बार वे बड़े विरोध में भी मालूम पड़ते हैं—वह भी उनका ढंग है। एक-दूसरे का खंडन भी करते हैं—वह भी उनका ढंग है।तुम उनके खंडन से परेशान मत होना। तुम इस चिंता में ही मत पड़ना कि वे क्या कहते हैं। क्यों किसी का खंडन करते हैं, क्यों किसी का विरोध करते हैं? तुम तो इसी की फिक्र करना, कि इस कौन से तुम्हारा राग मिल जाता है। कौन से तुम्हारा संगीत मिल जाता है। किसके हृदय के पास तुम्हारा हृदय एक सी ही धड़कन से धड़कने लगता है। किसके हृदय के साथ तुम्हारी धड़कन की गति और छंद बैठ जाता है।बस, वह तुम्हारे लिए है। मंजिल आ गई। सत्संग शुरू हुआ। अब सिर्फ साथ होना काफी है, पास होना काफी है। अब सिर्फ गुरु की मौजूदगी काफी है, उपस्थिति काफी है। और उसकी

उपस्थिति एक अग्नि है। जैसे ही तुम सत्संग में प्रविष्ट हुए, तुम्हारे भीतर कचरा जलना शुरू हो जाएगा और स्वर्ण निखरने लगेगा।कबीर ने, नानक ने साधु-संगत और सत्संग के बड़े गीत गाए हैं। लेकिन मैं समझता हूं, किसी ने कभी ठीक से साफ नहीं किया है कि साधु-संगत और सत्संग अलग-अलग बातें हैं। एक ही प्रक्रिया है, लेकिन बड़ी भिन्न है।कुछ लोग साधु-संगत करते-करते ही मर जाते हैं। सत्संग का मौका ही नहीं आ पाता। कभी-कभी साधु-संगत करना ही एक रोग हो जाता है, कि आज इसको सुना, कल उसको सुना, परसों वहां गए। जा रहे हैं इस आश्रम उस आश्रम। धीरे-धीरे यह जाना-आना ही रोग हो जाता है। चुनने का खयाल ही भूल गया। तो तुम एक ऐसे आदमी हो गए, जैसे कुछ लोग बाजार जाते हैं, उन्हें खरीदना कुछ भी नहीं है। वे सिर्फ इस दुकान में झांक कर देखते हैं, उस दुकान में झांक कर देखते हैं। कभी-कभी अंदर जाकर चीजों के दाम-भाव भी पूछते हैं, कभी मोल-भाव भी करते हैं। लेकिन उन्हें कुछ खरीदना नहीं है। वे सिर्फ समय गुजारने चले आए।साधु-संगत समय गुजारना भी हो सकता है। तब उसमें कभी सत्संग का फल न लगेगा। तब वह व्यर्थ है। उसका कोई अर्थ नहीं है। किसी न किसी दिन निर्णय लेना पड़ेगा। निर्णय का मतलब है, कमिटमेंट। निर्णय का अर्थ है, कि अब तुमने एक को चुना और तुम उसके पीछे जाने को राजी हुए।खतरे हैं। लेकिन किसी न किसी दिन खतरा तो लेना ही पड़ता है। जोखिम उठानी ही पड़ती है। बिना जोखिम के संसार में कोई भी विकास नहीं है। और बिना खतरे के कोई क्रांति घटित नहीं होती। दांव पर तो लगाना ही पड़ेगा। यह तो बड़ा जुआ है। इससे बड़ा कोई जुआ नहीं है।पश्चिम से लोग आते हैं। पश्चिम में लोग कमिटमेंट के बहुत ज्यादा खिलाफ हैं, प्रतिबद्धता के खिलाफ हैं। वे कहते हैं, किसी से क्यों बंधना?मेरे पास वे आते हैं, वे कहते हैं कि हम आपको सुनना चाहते हैं, ध्यान भी करना चाहते हैं, लेकिन बंधना नहीं चाहते। किसी से क्यों बंधना? मैं उनको कहता हूं, 'तुम्हारी मर्जी। तुम खुले रहो।'लेकिन तुम्हें पता नहीं है, कि जब तक तुम किसी के साथ इस भांति नहीं बंध जाते, कि तुम्हारी और यात्रा बंद हो गई, तब तक तुम्हारी ऊर्जा न तो संग्रहीत होगी, और न तुम्हारी ऊर्जा में कोई रूपांतरण होगा।आज तुम मेरे पास हो, कल तुम श्री अरविंद आश्रम में हो, परसों तुम अरुणाचल आश्रम में हो, नरसों तुम कहीं और हो—तुम जाते रहोगे। तुम घर के न घाट के हो जाओगे। तुम भटकते रहोगे। धीरे-धीरे यह भटकन कहीं तुम्हारी जिंदगी हो गई, तो मैं कहता हूं, भटकन से तुम्हारी प्रतिबद्धता हो गई, तुम्हारा कमिटमेंट हो गया। अब तुम भटकने से बंध गए। अब तुम ऐसे हो गए जैसे कि नदी में बहता हुआ पत्थर होता है। उस पर कोई काई नहीं जम जाती, क्योंकि वह बहता ही चला जाता है। साधु-संगत भटकन न हो। कहीं तुम नदी में बहते पत्थर न हो जाओ।बहुत तीर्थ आएंगे मार्ग में; लेकिन तुम्हें बहने की आदत पड़ गई, तो तुम कोई काई जमा न कर पाओगे। काई तो तभी जमा होती है, जब पत्थर किसी घाट पर रुक जाता है, किसी तीर्थ को घर बना लेता है। वह प्रतिबद्धता है, कमिटमेंट है। लेकिन जब तुम प्रतिबद्धता में उतरते हो, जब तुम कहते हो, ठीक! अब मैं छोड़ता हूं अपने को और राजी होता हूं एक यात्रा के लिए—उसी क्षण तुम्हारा अहंकार समाप्त हो जाता है। वह अहंकार ही बाधा डालता है प्रतिबद्धता में। वह कहता है, बंधो मत। सार ले लो, जितना लेना है; बंधते क्यों हो?लेकिन जो बहुत भीतर का राज है, वह तो केवल उन्हीं को बांटा जा सकता है, जिनका अहंकार गिर गया है। तो तुम थोड़ा सा उच्छिष्ट प्राप्त कर लोगे, लेकिन तुम कभी भीतर के मंदिर में प्रवेश न कर पाओगे।साधु-संगत जरूरी है, काफी नहीं। उससे गुजरना, उसमें ही ठहर मत जाना। वह एक पड़ाव है, रुकाव नहीं। वह घर नहीं है। घर तो सत्संग है।

तीसरा प्रश्न ः क्या समर्पण सारे अस्तित्व के प्रति हो तो समर्पण होता है अथवा केवल गुरु के प्रति हो, तो समर्पण होता है?सारे अस्तित्व के प्रति समर्पण तो तुम्हें बिलकुल असंभव है। वह तो ऐसे ही है, जैसे आदमी प्रेम करना ही न जानता हो, किसी एक आदमी को भी प्रेम न किया हो और कहे, कि मैं सारी मनुष्यता को प्रेम करना चाहता हूं। वह तो तरकीब है तुम्हारी एक से बचने की। अक्सर मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जो एक को प्रेम करने में असमर्थ हैं। क्योंकि एक को प्रेम करना बड़ा कठिन काम है। बड़ी दूभर यात्रा है, बड़ा संघर्ष है। प्रतिपल एक चुनौती है।मनुष्यता को प्रेम करने में कोई चुनौती नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। मनुष्यता कोई है थोड़ी! एक स्त्री तुम्हें ठिकाने लगा दे, एक पुरुष तुम्हें ठिकाने लगा दे। पूरी मनुष्यता तुम्हें ठिकाने नहीं लगा सकती। मनुष्यता को प्रेम मजे से करो। मनुष्यता कहीं है ही नहीं। वह तो एब्स्ट्रेक्शन है। मनुष्यता को कहां मिलोगे प्रेम करने को? कहां आलिंगन करोगे?मनुष्यता तो सिर्फ कोरा शब्द है। मनुष्य है, मनुष्यता

तो कहीं भी नहीं है। इसलिए जो लोग प्रेम करने में असमर्थ हैं, वे अक्सर मनुष्यता को प्रेम करते हैं। एक स्त्री को प्रेम नहीं कर सकते, क्योंकि वहां कठिनाई खड़ी हो जाती है। वहां अहंकार को झुकना पड़ता है। वहां कुछ तालमेल बिठाना पड़ता है। कुछ समझौते करने पड़ते हैं। वहां कुछ सीखना पड़ता है, कुछ काटना पड़ना है, कुछ बदलना पड़ता है; वह कठिन है।पूरी मनुष्यता को प्रेम करते हैं! मेरे पास ऐसे लोग आ जाते हैं; सर्वोदयी हैं, समाज-सुधारक हैं, वे पूरी मनुष्यता को प्रेम करते हैं! उनकी शकल पर प्रेम का कोई चिन्ह नहीं मालूम पड़ता। वे बचाव कर रहे हैं।न तो कोई पूरी मनुष्यता को प्रेम करने की जरूरत ही है। तुम एक मनुष्य को प्रेम करो। क्योंकि उससे ही तुम सीखोगे। वही सिखावन अगर इतनी गहरी हो जाए, कि तुम एक मनुष्य के भीतर इतने गहरे उतर जाओ प्रेम में, कि उसका शरीर तुम्हें भूल जाए, तो तुमने मनुष्यता के सार को पकड़ लिया। भीतर जो छिपा है अरूप, निराकर, उसे पकड़ लिया। तो फिर तुम सभी को प्रेम कर सकते हो। अभी तो तुम्हारा सभी को प्रेम झूठ होगा, तरकीब होगी, धोखा होगा।गुरु के प्रति समर्पण किए बिना तुम समस्त के प्रति समर्पण न कर पाओगे। कहां है 'समस्त'? सर्व कहां है? तुम किसी एक में उसकी थोड़ी झलक देखो। आकार में तुम पहले निराकार को खोजो, तभी तुम्हें निराकार से मिलन हो पाएगा।तो गुरु के प्रति समर्पण कोई अंतिम बात नहीं है। वह तो सिर्फ द्वार है। नानक ने अपने मंदिरों को गुरुद्वारा कहा है; वह बिलकुल ठीक कहा है—गुरुद्वार। वह शब्द बड़ा कीमती है। उसका मतलब इतना ही है, कि गुरु तो सिर्फ द्वार है। उससे तो जाना है, गुजर जाना है। लेकिन तुम अगर द्वार से ही गुजरने को राजी नहीं हो, तो तुम मंदिर में न पहुंच पाओगे।गुरु मंदिर नहीं है, गुरु तो सिर्फ द्वार है। तुम कहते हो, ऐसा नहीं हो सकता, हम मंदिर में ही पहुंच जाएं और द्वार से न गुजरना पड़े?तुम जरा असंभव बात पूछ रहे हो। कोई उपाय नहीं है मंदिर में पहुंचने का; द्वार से गुजरना ही पड़ेगा। क्योंकि द्वार पर तुम झुकोगे, झुकना सीखोगे।पुराने मंदिरों के द्वार बड़े छोटे होते थे, वह ठीक था। वे प्रतीक थे, कि वहां झुक कर जाना पड़ेगा। अब तो हम जो मंदिर बनाते हैं, बड़ा द्वार बनाते हैं। और उसमें कोई घोड़े-हाथी पर भी बैठ कर जाए तो जा सकता है। बात ही भूल गए हम। बिलकुल छोटे ही द्वार होने चाहिए, जिसमें झुक कर ही जाना पड़े; जिसमें सिर को झुकाना ही पड़े। मंदिर का द्वार बड़ा नहीं हो सकता। मंदिर का द्वार छोटा होगा।वह छोटा सा द्वार गुरु है। वह परमात्मा का द्वार है। उससे अगर तुम झुके और समर्पण किया, तो तुम उससे प्रवेश कर जाओगे। समर्पण करते ही गुरु मिट जाता है। तुम मिटे, कि गुरु मिटा। गुरु तो मिटा ही हुआ है। तुम्हारे अहंकार की वजह से दिखाई पड़ता है। तुम मिटे, कि तुम्हें दिखाई पड़ता है गुरु तो था ही नहीं। वह तो सिर्फ द्वार है, खाली जगह है, जिसमें से गुजर जाना है।जिन्होंने गुरु के प्रति समर्पण किया उन्होंने तो पाया, गुरु नहीं, परमात्मा है। इसलिए अगर हिंदुओं ने कहा, कि गुरु विष्णु, गुरु महेश। अगर हिंदुओं ने कहा, कि गुरु परमात्मा है, तो उसका क्या अर्थ है?उसका अर्थ है, जिन्होंने समर्पण किया, उन्होंने पाया, गुरु तो था ही नहीं। वह हमारे अहंकार की वजह से दिखाई पड़ता था। जैसे ही हम झुके, पाया कि मंदिर खुल गया, द्वार खुल गया। परमात्मा विराजमान है।गुरु में परमात्मा को देख लेना है अर्थ समर्पण का। और अगर तुम्हें गुरु में नहीं दिखाई पड़ सकता तो तुम्हें पौधों में, वृक्षों में, फत्थरों में, फहाड़ों में बहुत मुश्किल है दिखाई पड़ना। गुरु का अर्थ है, जिसके भीतर परमात्मा सर्वाधिक सजगता से जी रहा है; और तो कोई अर्थ नहीं है। चट्टान के भीतर ही परमात्मा है लेकिन बिलकुल सोया हुआ। तुम्हारे भीतर भी परमात्मा है लेकिन शराब पीया हुआ। चोर के भीतर भी परमात्मा है, लेकिन चोर। हत्यारे के भीतर भी परमात्मा है, लेकिन हत्यारा।गुरु का क्या मतलब है? गुरु का इतना ही मतलब है, जिसके भीतर परमात्मा अपने शुद्धतम रूप में प्रकट है। जिसमें अग्नि शुद्धतम रूप में जल रही है, जिसमें धुआं बिलकुल नहीं है। निर्धूम अग्नि—गुरु का अर्थ है।अगर तुम्हें वहां नहीं दिखाई पड़ती अग्नि, तो तुम्हें कहां दिखाई पड़ेगी? जहां धुआं ही धुआं है, वहां दिखाई पड़ेगी? जब निर्धूम अग्नि नहीं दिखाई पड़ती, तो जहां धुआं ही धुआं है, वहां तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगी? वहां तो धुएं के कारण तुम्हारी आंखें बिलकुल बंद हो जाएंगी।गुरु के पास तुम्हारी आंख नहीं खुलती तो तुम्हारी आंख पत्थरों के पास कैसे खुलेगी? गुरु तो केवल प्रतीक है। अर्थ है, जिसने जान लिया। अगर तुम उसके पास झुको, तो तुम भी उसकी आंखों से देख सकते हो। और तुम भी उसके हृदय से धड़क सकते हो। और तुम भी उसके हाथों से परमात्मा को छू सकते हो।एक बार तुम्हारी पहचान करवा देगा वह, फिर तो बीच से हट जाता है। फिर बीच में कोई जरूरत नहीं है। पर एक बार तुम्हारी पहचान करवा देना जरूरी है। गुरु का इतना ही मतलब

है, कि परमात्मा तुम्हें अपरिचित है, उसे परिचित है। तुम भी उसे परिचित हो, परमात्मा भी उसे परिचित है। वह बीच की कड़ी बन सकता है। वह तुम्हारी मुलाकात करवा दे सकता है। वह थोड़ा परिचय बनवा दे सकता है। वह तुम दोनों को पास ला दे सकता है। एक दफा पहचान हो गई, फिर वह हट जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं है फिर।लेकिन यह मत सोचो, कि तुम समर्पण अस्तित्व के प्रति कर सकते हो। कर सको, तो बहुत अच्छा। वही तो है सारी शिक्षा सभी गुरुओं की, कि तुम समर्पित हो जाओ अस्तित्व के प्रति। लेकिन धोखा मत देना अपने को। कहीं यह न हो, कि गुरु से बचने के लिए तुम कहो, हम तो अस्तित्व के प्रति समर्पित हैं।अस्तित्व क्या है? वृक्ष के सामने झुकोगे? पत्थर के सामने झुकोगे? कहां झुकोगे? झुकने की कला अगर तुम्हें आ जाए, तो गुरु तो केवल एक प्रशिक्षण है। वह तुम्हें झुकना सिखा देगा।तिब्बत में जब शिष्य दीक्षित होता है, तो दिन में जितनी बार गुरु मिल जाए उतनी बार उससे साष्टांग दंडवत करना पड़ता है। कभी-कभी हजार बार। क्योंकि जितनी बार गुरु . . . आश्रम में शिष्य रहता है; गुरु गुजरा, फिर शिष्य मिल गया। पानी लेने जा रहे थे, बीच में गुरु मिल गया; भोजन करने गए, गुरु मिल गया। जब मिल जाए तभी साष्टांग दंडवत। पूरे जमीन पर लेट कर पहला काम साष्टांग दंडवत।एक युवक एक तिब्बती मानेस्ट्री में रह कर मेरे पास आया। मैंने उससे पूछा, तूने वहां क्या सीखा? क्योंकि वह जर्मन था और दो साल वहां रह कर आया था। उसने कहा, कि पहले तो मैं बहुत हैरान था, कि यह क्या पागलपन है! लेकिन मैंने सोचा, कुछ देर करके देख लें।फिर तो इतना मजा आने लगा। गुरु की आज्ञा थी, कि जहां भी वह मिले उसको झुकूं, फिर धीरे-धीरे जो भी आश्रम में थे, जो भी मिल जाते! साष्टांग दंडवत में इतना मजा आने लगा, कि फिर मैंने फिक्र ही छोड़ दी कि क्या गुरु के लिए झुकना! जो भी मौजूद है।फिर तो मजा इतना बढ़ गया, कि लेट जाना पृथ्वी पर सब छोड़ कर। ऐसी शांति उतरने लगी, कि कोई भी न होता तो भी मैं लेट जाता। साष्टांग दंडवत करने लगा वृक्षों को, पहाड़ों को। झुकने का रस लग गया।तब गुरु ने एक दिन बुला कर मुझे कहा, वह युवक मुझसे बोला, अब तुझे मेरी चिंता करने की जरूरत नहीं। अब तो तुझे झुकने में ही रस आने लगा। हम तो बहाना थे, कि तुझे झुकने में रस आ जाए। अब तो तू किसी के भी सामने झुकने लगा है। और अब तो ऐसी भी खबर मिली है, कि तू कभी-कभी कोई भी नहीं होता और तू साष्टांग दंडवत करता है। कोई है ही नहीं और तू दंडवत कर रहा है।उस युवक ने मुझे कहा, कि बस, झुकने में ऐसा मजा आने लगा।जर्मन अहंकार संसार में प्रगाढ़ से प्रगाढ़ अहंकार है। समस्त जातियों में जर्मन जाति के पास जैसा प्रगाढ़ अहंकार है, वैसा किसी के पास नहीं है। इसलिए दो महायुद्ध वे लड़े हैं। और कोई नहीं जानता, कि कभी भी वे युद्ध के लिए तैयार हो जाएं।यह जर्मन युवक झुकने को भी तैयार नहीं था। यह बात ही फिजूल लगती थी, लेकिन फंस गया। लेकिन जब झुका, तो रस आ गया।एक दफा झुकने का रस आ जाए, एक दफा तुम्हें यह मजा आने लगे, कि नाकुछ होने में मजा है, मिटने में मजा है, खोने में मजा है, तो गुरु हट जाता है। गुरु बुला कर तुम्हें कह देता है, बात खतम हो गई। अब तुम मुझे परेशान न करो। क्योंकि तुम्हारे दंडवत करने से तुमको ही परेशानी होती है, तुम समझ रहे हो। तुमसे ज्यादा गुरु को परेशानी होती है। क्योंकि तुम्हारे लिए तो एक गुरु है, गुरु के लिए हजार शिष्य हैं। हजार का झुकना, और हजार के नमन को हजार बार स्वीकार करना—गुरु की भी तकलीफ है।जैसे ही तुम तैयार हो जाते हो, कि झुकना सीख गए; गुरु कहता है, अब भीतर चले जाओ, अब दरवाजे पर मत अटको। अब मुझे छोड़ो। एक दिन गुरु कहता है, मुझे पकड़ लो अनन्यभाव से। अगर तुमने पकड़ लिया तो एक दिन गुरु कहता है, अब मुझे तुम बिलकुल छोड़ दो, क्योंकि अब परमात्मा पास है, अब तुम मुझे मत पकड़े रहो।कबीर ने कहा है,

'गुरु, गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पांव।'

बलिहारी गुरु आपकी दियो गोविंद बताय।।' दोनों खड़े हैं सामने। ऐसी घड़ी आती है भक्त को एक दिन, जब गुरु के पास झुका बैठा है भक्त और परमात्मा भी सामने आ जाता है। तब सवाल उठता है, किसके चरण छूऊं?'बलिहारी गुरु आपकी'—तो कबीर कहते हैं गुरु ने इशारा कर दिया, कि परमात्मा के चरण छू और मुझे छोड़। बहुत मेरे चरण पकड़े, अब बस बात खतम हो गई। यह तो सिर्फ एक अभ्यास था। जैसे तैरने का अभ्यास किसी को कराते हैं, तो उथले पानी में कराते हैं। कहीं तुम डूब न जाओ। गुरु यानी उथला पानी। फिर जब तैरना आ गया तो गुरु कहता है, जब जरा गहराइयों में जाओ। गुरु यानी अभ्यास का स्थल।नहीं, समस्त के प्रति तुम अभी न झुक पाओगे। और मन बहुत बेईमान है। और मन

ऐसी तरकीबें समझा देता है, कि एक के प्रति क्या झुकना! सभी के प्रति झुक जाएंगे। यह न झुकने की तरकीब है। झुक सको, बड़ी कृपा! झुक पाओ, धन्यभाग! मगर कहीं यह तरकीब बचने की न हो। सौ में निन्यानबे मौके बचने की तरकीब के हैं। मन धोखेबाज है। मन प्रवंचक है। इससे सावधान रहना।गुरु सदा के लिए तुमसे नहीं कहेगा, कि तुम उसे पकड़े रहो। लेकिन जिन्होंने पकड़ा है, वे ही छोड़ने में समर्थ हो पाएंगे। जिन्होंने पकड़ा ही नहीं, उनसे गुरु कैसे कहेगा छोड़ो?नीत्से ने बड़ी अदभुत किताब लिखी है—'दस स्पेक जरथुस्त्र।' दुननिया की पांच-सात श्रेष्ठतम किताबों में एक है। उसमें अंतिम वचन जरथुस्त्र अपने शिष्यों को कहता है, और वह यह है—सारी शिक्षाओं के बाद जब जरथुस्त्र पहाड़ की तरफ जाने लगा, अपने शिष्यों से विदा लेने लगा, उस की घड़ी आ गई विदा की . . .और घड़ी एक दिन गुरु की आएगी ही। और यह उसकी आखिरी घड़ी है। इसके बाद वह वापिस नहीं लौट सकेगा। इस शरीर में उसका होना आखिरी है। जिन्होंने ले लिया लाभ, ले लिया। यह द्वार सदा नहीं रहता। वह तो मिट ही जाएगा।तो जरथुस्त्र ने कहा, मैं जा रहा हूं, तुम्हें मैं अपना आखिरी संदेश दे दूं। और वह आखिरी संदेश उसने कहा, 'बीवेअर आफ जरथुस्त्र' : अब तुम मुझसे सावधान रहना।शिष्य तो हैरान हुए। उन्होंने कहा, तुमसे और सावधान? तुमने ही तो सिखाया समर्पण और श्रद्धा; अब तुमसे सावधान? तुमने ही तो सिखाया सब तुम पर छोड़ देना, अब तुमसे सावधान?यह वचन बड़ा कीमती है—जरथुस्त्र से सावधान। लेकिन जरथुस्त्र यह बात उनसे ही कहेगा, जिन्होंने समग्र भाव से समर्पण कर दिया हो। तब वह कहेगा, बस! बहुत हुआ। तैर लिए मुझमें, अब आगे बढ़ो। अब मुझे मत पकड़ कर रुक जाना।क्योंकि बहुत बार यह भी हो सकता है। पहले तो तुम सीढ़ी चढ़ने में डरते हो। फिर तुम चढ़ जाते हो सीढ़ी, तो सीढ़ी को पकड़ लेते हो। पहले सीढ़ी पर चढ़ना जरूरी है, फिर सीढ़ी को छोड़ देना जरूरी है।सब साधन पकड़ने जरूरी हैं और सब साधन छोड़ देने जरूरी हैं। राह पर उतरना जरूरी है, राह पर चलना जरूरी है, फिर राह को छोड़ देना जरूरी है। नहीं तो मंजिल कैसे आएगी? जिसने साधन को पकड़ लिया, वह फिर साध्य से वंचित रह जाता है।दो तरह के वंचित लोग हैं; एक तो वे, जिन्होंने साधन कभी पकड़ा ही नहीं। एक वे, जिन्होंने साधन जोर से पकड़ लिया। एक वे हैं, जो गुरु के पास कभी आए ही नहीं। और एक वे हैं, जो गुरु के पास आए और गुरु को छोड़ने में असमर्थ हो गए।गुरु तुम्हें तैयार करता है पहले झुकने को, फिर खड़ा होने को। पहले मिटने को फिर होने को।एक ही बात खयाल रखना, मन धोखा न देता हो; फिर ठीक है। अगर तुम समस्त के प्रति समर्पण करने में सफल हो, इससे सुंदर और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन अगर धोखा हो, तो साधु-संगत करो, फिर सत्संग करो, किसी गुरु के चरण पकड़ो। वह गुरु ही तुम्हें फिर किसी दिन तैयार कर देगा चरण छोड़ देने को। वह तो तभी तक अभ्यास है, जब तक कि प्रभु के चरण पास नहीं आ जाते।

आज इतना ही।